प्रकाशकीय



इस "वनौषधि रत्नाकर" द्वितीय भाग के साथ सुधानिधि अपने १५ वर्ष पूर्ण करके १६वें वर्ष मे प्रवेश करने का गौरव प्राप्त कर रहा है। पिछले १५ वर्षों मे सुधानिधि ने आयुर्वेद जगत् को एक से एक उपयोगी विशेषाक प्रस्तुत करके जिस गौरवशाली परम्परा का निर्वाह किया है वह अपने आप मे एक अप्रतिम उपलब्धि है। सुधानिधि ने अपने प्रारम्भिक वर्षों मे महिला, पुरुष तथा शिशुरोगो पर उपयोगी विशेपाको का प्रकाशन किया और उसके वाद कुछ अन्य विषयो पर विशेषाक प्रकाशित करने के बाद तीन विशेपाक शृङ्खलाओ का प्रकाशन प्रारम्भ किया जिसमे प्रयोगसग्रह शृङ्खला का प्रकाशन पूर्ण हो चुका है। निदान चिकित्सा विज्ञानाक के तीन भाग प्रकाशित हो चुके है और वनौषधि विषयक वनौषधि रत्नाकर शृङ्खला का प्रथम भाग प्रकाशित होने के वाद यह द्वितीय भाग पाठको के हाथो मे है। सुधानिधि के इन विशेपाको की उपादेयता इस वात से ही प्रमाणित होती रही है कि यह विशेषाक शीघ्र ही समाप्त होकर अनुपलब्धि की स्थिति मे पहुँच गये हैं। इस वनौषधि रत्नाकर शृङ्खला के प्रथम भाग का आयुर्वेद जगत् मे जो अभूतपूर्व स्वागत हुआ है वह सुधानिधि के पिछले विशेषाको से भी कही अधिक है। इसके प्रथम भाग के प्रकाशन के वाद इसकी प्रशसा मे हमे और इसके सम्पादक वैद्य गोपीनाथ जी पारीक को बधाई देने के लिये कार्यालय मे पत्रो की झडी लग गयी। अनेक पाठक जो इस वात के लिये शकालु थे कि यह विशेपाक धन्वन्तरि के पूर्व प्रकाशित वनौषधि विशेपाक के स्तर तक पहुँच सकेगा या नही ? उनकी शका भी इसके प्रथम भाग के अवलोकन के वाद निर्मूल हो गयी। विशेषाक के प्रथम भाग का अध्ययन कर जिन सहस्रो पाठको ने हमे पत्र लिखकर साधुवाद अर्पित किया है हम उन सभी को इस प्रकाशकीय के माध्यम से अपना आभार प्रगट करते हैं।

वनौषधि रत्नाकर प्रथम भाग के प्रशंसा सम्वन्धी पत्रों के साथ-साथ कुछ सुझावात्मक पत्र भी हमे प्राप्त हुये थे जिन्हे हमने इसके विशेष सम्पादक गोपेश जी के पास भेज दिया था। उन सुझावों पर अमल करते हुये ही उन्होने इस विशेपाक की रचना की है। पाठक जव इस द्वितीय भाग का अवलोकन करेंगे तो वह इसे इसके प्रथम भाग से भी अधिक उपयोगी पावेंगे। इस विशेपाक मे पाठको को एक विशेपता यह देखने को भी मिलेगी कि विशेपाक मे प्रस्तुत कुछ वनौपधियो के वर्णन के प्रारम्भ मे सुधानिधि के विशेष सम्पादक आचार्य द्विवेदी जी ने अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करके इस विशेषाक की उपादेयता मे चार चाद लगा दिये हैं। इस तरह यह वनौषधि रत्नाकर (द्वितीय भाग) अपने प्रथम भाग से भी अधिक पाठको के लिये उपयोगी प्रमाणित हो सकेगा ऐसा हमारा विश्वास है।

इस वर्ष के लघु विशेषांक



सुधानिधि के लघु विशेषाक भी उपादेयता की दृष्टि मे वृहद् विशेपाको की तरह ही उपयोगी होते हैं। गत वर्ष प्रकाशित आन्त्रिक ज्वर (द्वितीय भाग), कैंसर रोगाक (प्रथम भाग) तथा वाजीकरण अङ्क ने विशेष प्रशसा प्राप्त की। इस वर्ष जिन लघु विशेपाको के प्रकाशन का निर्णय किया गया है उनका विवरण निम्न प्रकार है—

(१) कैंसर रोगांक [द्वितीय भाग]—इसके प्रथम भाग का प्रकाशन गतवर्ष किया गया था और पाठको ने इसे अत्यधिक उपयोगी पाया था। अब इसके द्वितीय भाग का प्रकाशन अप्रैल + मई के संयुक्त अङ्क के रूप मे किया जावेगा। इसके द्वितीय भाग का सम्पादन भार डा० महेश्वरप्रसाद "उमाशकर" को सोंपा गया है।

(२) रोगी परीक्षा एवं निदान अङ्क [चतुर्थ भाग]—सुधानिधि रोगी परीक्षा सम्वन्धी आधुनिक ज्ञान को इन लघु विशेपाको के माध्यम से प्रकाशित कर रहा है। इसके ३ भाग गत ३ वर्षों में प्रकाशित हो चुके हैं और अब इसका चतुर्थ भाग जौलाई माह मे प्रकाशित होगा इसके चतुर्थ भाग का सम्पादन डा० रवीन्द्रकुमार सिन्हा ही करेंगे।

(३) आमवात अङ्क—आमवात जैसे प्रचलित रोग पर सुधानिधि सितम्बर माह मे आमवात अङ्क डा० जहानसिंह चौहान के सम्पादन में प्रकाशित करने जा रहा है।

(४) प्रमेह रोगांक—नवयुवको को बुरी तरह से परेशान करने वाले प्रमेह रोग पर उचित मार्गदर्शन प्रदान करने के लिये प्रमेहरोगाक का प्रकाशन सुधानिधि द्वारा नवम्बर माह मे किये जाने का निश्चय किया गया है। इसका सम्पादन सुधानिधि के स्थायी सम्पादक मण्डल द्वारा किया जावेगा।

उपरोक्त ४ लघु अङ्को के द्वारा हम एतदविपयक उपयोगी साहित्य को पाठको के समक्ष प्रस्तुत करेंगे और हमे विश्वास है कि इनके द्वारा पाठक पर्याप्त लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

सुधानिधि पुरस्कार योजना



सुधानिधि सम्पादक मण्डल तथा निर्णायक समिति द्वारा सुधानिधि मे गतवर्ष प्रकाशित ३ सर्वश्रेष्ठ लेखो का इस तरह चयन किया गया है—

[१] मन्थर ज्वर तथा उसकी सफल आयुर्वेदिक चिकित्सा—आन्त्रिकज्वर अक द्वितीय भाग वैद्य दाताराम शर्मा (प्रथम)

[२] क्लैब्य विवेचन (बाजीकरण अङ्क)—डा० गजेन्द्रसिंह छोकर (द्वितीय)

[३] रक्तस्राव (जून ८७)—वैद्य नरहरि शास्त्री (तृतीय)

उपरोक्त तीनो लेखो पर क्रमश प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार के रूप मे १५१ रुपये, १०१ रुपये तथा ५१ रुपये पुरस्कार रूप मे प्रेषित किये जा रहे है। तीनो महानुभावो को हम हार्दिक बधाई देते है।

आगामी विशेषांक



आगामी वर्ष सुधानिधि का "निदान चिकित्सा विज्ञानाक" का चतुर्थ भाग प्रकाशित किया जायगा। इस निदान चिकित्सा सम्बन्धी विशेषाक शृङ्खला मे अकारादि क्रम से रोगो के निदान तथा चिकित्सा का वर्णन विस्तार से किया जा रहा है। इसके पूर्व प्रकाशित ३ भागो मे "क" वर्ग तक के रोगो का उल्लेख हो चुका है आगामी चतुर्थ भाग मे "च" वर्ग के रोगो का वर्णन किया जावेगा। इस विशेषाक के पूर्व ३ भागो का सम्पादन सुधानिधि के स्थायी सम्पादक मण्डल द्वारा किया गया था। अब इसके चौथे भाग का सम्पादन किसी मूर्धन्य विद्वान् को दिये जाने का निर्णय किया गया है।

पाठकों एवं लेखको से अनुरोध



(१) सुधानिधि के ग्राहक मूल्य मे जनवरी १९८८ से २ ०० की मूल्य वृद्धि की गयी है। कई वर्षों से हम १ वर्ष छोडकर सुधानिधि के ग्राहक मूल्य मे वृद्धि करते रहे हे लेकिन इस वर्ष पोस्ट व्यय के अत्यधिक बढ जाने तथा कागज और छपाई के व्यय मे विशेष वृद्धि होने के कारण इस वर्ष पुन हमे मूल्य वृद्धि करने के लिये बाध्य होना पडा है, आशा है हमारी विवशता समझते हुये पाठक इस मूल्य वृद्धि को स्वीकार कर अपना पूर्ववत् सहयोग बनाये रखेगे।

(२) सुधानिधि का यह विशेषाक काफी विलम्ब से इस बार पाठको के हाथो मे पहुँचेगा। ४ माह से रात-दिन परिश्रम करने के बाद भी हम पाठको को समय पर विशेषाक प्रस्तुत न कर सके इसका हमे खेद है। सुधानिधि की ग्राहक सख्या बढ जाने से पुरानी सिलेण्डर मशीन से समय पर सुधानिधि का प्रकाशन सम्भव नही हो पा रहा, अब हम नई ओटोमेटिक प्रिन्टिग मशीन लगाने के लिये प्रयत्नशील हैं। आशा है इस मशीन के लगने के बाद सुधानिधि का प्रकाशन समय पर सम्भव हो सकेगा। विशेषाक के प्रकाशन मे विलम्ब के लिये हम पाठको से क्षमाप्रार्थी है। आगामी अको का प्रकाशन समय पर हो सके इसके लिये प्रयत्नशील हैं।

(३) सुधानिधि के साधारण अको मे हम गतवर्षो मे पर्याप्त सुधार करते रहे है पाठको से मिलने वाले पत्रों से हमे यह विश्वास हुआ है कि इन सुधारो को पाठको ने बहुत पसन्द किया है। सुधानिधि के लेखको से हमारा अनुरोध है कि वह सुधानिधि के बदलते स्तर के अनुरूप लेख भेजे।

(४) सुधानिधि का आगामी वर्ष "निदान चिकित्सा विज्ञानाक" (तृतीय भाग) प्रकाशित किया जावेगा। इसका सम्पादन भार हम किसी मूर्धन्य विद्वान् को सोपना चाहते है। जो विद्वान् इस भार को स्वीकार करने की इच्छा रखते हो वह हम से पत्र-व्यवहार करे। पाठको से भी अनुरोध है कि वह इस विशेषाक के लिये अपने सुझाव भेजना चाहे तो भेज सकते है।

और अन्त मे पाठको से सुधानिधि के नवीन ग्राहक बनाने की पुन -पुन प्रार्थना के साथ मै आप सभी के सुस्वास्थ्य एव समुज्वल भविष्य की कामना करता हुआ विराम लेता हूँ।

२०-४-८८ —मुरारीलाल गर्ग।

वनौषधि रत्नाकर

[द्वितीय भाग]

की

विषयानुक्रमणिका



विशेषांक में सम्मिलित वनौषधियों के चित्रों की सूची



वनौषधि रत्नाकर (प्रथम भाग) मे अग्निमन्थ (Premna integrifolia) का चित्र रह गया था उसका चित्र इस भाग के प्राक्कथन मे दिया गया है, पाठक उसे यथा-स्थान ग्रहण करें।

औषधि-वन्दन



इन औषधियो को नमन-नमन ।
जो स्वास्थ्य सुधा नित कर वितरित ,
मेटे जन-जन का करुण रुदन ।।

वेदों ने जिनके गुण गाये ,
ऋषियो ने वे गुण समझाये ।
धारण कर वसुधा धन्य बनी ,
सुरभित पुलकित ये दिशा-गगन ।।१।।

इनमे जीवन का नवल राग ,
इनमे मानव का प्रबल भाग ।
नीरस जीवन रसमय करती ,
मृत प्राय हेतु ये संजीवन ।।२।।

इनमे रवि की है उज्वलता ,
इनमे शशि की है शीतलता ।
इनकी लखकर सुखमय शोभा ,
जा छुपा हुआ है नन्दनवन ।।३।।

फैले है जग मे कई रोग ,
निर्दिष्ट पंथ विपरीत लोग ।
अनुकूल विश्व के लिए आज ,
इन औषधियो का है प्रचलन ।।४।।

थाके गुण गाते चतुरानन ,
थाके सुरेश ऋषिवर मुनि गण ।
विद्वज्जन थाके फिर कैसे ,
"गोपेश" अज्ञ कर सके कथन ।।५।।

—"गोपेश"

शुभ-कामनायें

परम कोटि के बुद्धिवादी, गम्भीर अन्वेषी, आयुर्वेद के प्रत्येक विषय पर ज्ञान प्रभा विकीर्ण करने वाले, विशेषतः द्रव्य-गुण-विज्ञान के मर्मज्ञ मनीषी आचार्य श्रीयुत् प्रियव्रत जी शर्मा

का

शुभाशीर्वाद

[illegible]
वाराणसी-५[illegible]
दिनांक २-६-[illegible]

प्रिय [illegible] जी,

आपका पत्र पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आपका [illegible] "गुणबोध" [illegible] प्रकाशित होने जा रहा है। [illegible] उत्पन्न हो रही है। मुझे आशा है कि यह [illegible] समस्या के समाधान में सफल होगा। [illegible] के लिए मैं हार्दिक शुभ-कामना प्रेषित करता हूँ।

भवदीय
प्रियव्रत शर्मा

अत्यन्त जागरूक, मननशील मेधावी, विचारक, आयुर्वेद मनस्वी, वनौषधि

विज्ञानवित्, समर्थ लेखक डा० श्रीयुत् मायाराम जी उनियाल शास्त्री

का

शुभ-कामना संदेश



मा० प्रवेश जी,

आपका पत्र 'वनौषधि रत्नाकर अङ्क'' के सन्दर्भ में प्राप्त हुआ। यह सर्व विदित है कि धन्वन्तरि कार्यालय विगत कई दशकों से आयुर्वेद प्रचार-प्रसार में कार्यरत है, जिसमें कतिपय वनौषधि विशेषांकों से आयुर्वेद-जगत् एवं जन-सामान्य भलीभांति सुपरिचित है। वैद्य गोपालशरण गर्ग सम्पादक सुधानिधि के कुशल संचालन में कतिपय महत्वपूर्ण अङ्कों का प्रकाशन किया जाता रहा है, जिनका कि आयुर्वेद-विज्ञान में विशेष आदर है। यह जानकर अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ कि इस वर्ष सुधानिधि वनौषधि रत्नाकर अङ्क का द्वितीय भाग प्रकाशित करने जा रहा है, जिसका विशेष सम्पादन आपने किया है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक आयुर्वेद चिकित्सक वनौषधि-कर्माभ्यास करे। प्रकाशित अङ्क में वनौषधियों के रेखाचित्रों द्वारा पहिचान करने में सुविधा होगी। एक ही स्थान पर वानस्पतिक परिचय, रासायनिक संगठन एवं गुण-धर्म की जानकारी दी गई है। इस विशेषांक के प्रकाशन हेतु आप एवं श्री गोपालशरण गर्ग बधाई के पात्र हैं। सुधानिधि के प्रधान सम्पादक आचार्य रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी का आशीर्वाद इस पत्रिका को निरन्तर रूप में प्राप्त है। अतः विशेषांक की सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभ कामनायें हैं। आशा करता हूँ कि सुधानिधि परिवार इस परम्परा को सदैव अबाधगति से निरन्तर विकसित करता रहेगा।

बी-३८ अवन्तिका रोहिणी सेक्टर-१

नई दिल्ली-८५

दिनांक . १५-२-८८

भवदीय

वैद्य मायाराम उनियाल

विद्यानुरागी, स्वतन्त्रचेता, अध्येता, अनेकानेक ग्रन्थों के प्रणेता एवं [illegible]

श्रीयुत् ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी का

शुभ-कामना संदेश



[illegible]
वाराणसी

श्री [illegible] जी,

नमस्कार !

आपका पत्र मिला, प्रसन्नता है कि [illegible] विद्वान् ने "वनौषधि रत्नाकर" का सम्पादन [illegible] किया है। [illegible] इस रत्नाकर में [illegible] कुछ [illegible] प्रकट [illegible] वास्तविक रूप में [illegible]। इसकी सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।

भवदीय
ब्रह्मानन्द त्रिपाठी



विद्याविनयसम्पन्न, धर्मशास्त्रों के सच्चे साधक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी [illegible]

डा० श्रीयुत् राजेन्द्रप्रकाश जी भटनागर का

शुभ-कामना संदेश



प्रिय भाई श्री गोपीनाथ जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपका पत्र मिला, धन्यवाद । "वनौषधि रत्नाकर" के प्रकाशन की आपकी योजना [illegible] प्रशंसनीय है । इस प्रकाशन से वनौषधियों सम्बन्धी आयुर्वेद की विपुल सामग्री एकत्रित और सुव्यवस्थित रूप से उपलब्ध हो जावेगी । इस हेतु मेरी हार्दिक शुभ कामनायें ।

२६, कानजी का अहाता
उदयपुर

भवदीय
राजेन्द्रप्रसाद भटनागर

आयुर्वेद के स्तम्भ, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के महामन्त्री, आयुर्वेदाचार्य

वैद्य श्रीयुत् श्रीराम जी शर्मा का

शुभ-कामना सन्देश

आदरणीय श्री गोपथ जी,

सादर नमस्कार !

यह समाचार जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपके कुशल सम्पादकत्व में आयुर्वेद-जगत् का सुप्रसिद्ध पत्र सुधानिधि अपना वनौषधि रत्नाकर नामक विशेषाङ्क प्रकाशित कर रहा है।

चिकित्सा के चतुष्पाद में द्रव्य अपना विशेष महत्व रखते हैं अतः उसके विषय में यावच्छक्य अधिकतम ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक चिकित्सक के लिए आवश्यक है।

स्वस्थ एवं आतुर शरीर में द्रव्य सेवन के पश्चात् विभिन्न स्तर पर होने वाले द्रव्य के गुण-धर्मों का विवेचन करने वाले साहित्य का द्रव्यगुण शास्त्र की एक शाखा के रूप में विकास भी बहुत आवश्यक है।

आशा है आपके कुशल मार्गदर्शन में प्रकाशित होने वाला यह विशेषाङ्क सुधानिधि के विशेषाङ्कों की प्राचीन परम्परा का संरक्षण करेगा, तथा आयुर्वेद का स्थायी संग्रहणीय साहित्य सिद्ध होगा। मैं आपके इस शुभ कार्य के लिए अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएं प्रेषित करता हूँ।

अग्रवाल नगर, डा० अम्बेडकर रोड
माटुंगा, बम्बई
दिनाङ्क २-३-८८

भवदीय
वैद्य श्रीराम शर्मा

ज्ञानगरिमा से विभूषित यशस्वी, आयुर्वेद शिरोमणि [illegible]

वैद्य श्रीयुत् सीताराम जी मिश्र का

शुभ-कामना सन्देश

प्रिय श्री गोपीनाथ जी,

सप्रेम जय आयुर्वेद !

आपका पत्र मिला, धन्यवाद ! मुझे प्रसन्नता है कि [illegible] "वनौषधि रत्नाकर" (द्वितीय भाग) आपके सम्पादकत्व में प्रकाशित किया जा रहा है। [illegible] मासिक पत्रिका का यह कार्य प्रशंसनीय है। पूर्व में भी इस तरह का [illegible] प्रतिष्ठान ने किया है। आज के इस वैज्ञानिक युग में शोध [illegible] प्रकाशित करने से आयुर्वेद का [illegible] प्रचार एवं प्रसार होगा।

"वनौषधि रत्नाकर" [illegible]

[illegible]
जयपुर-६
दिनांक १४-३-[illegible]

[illegible]
वैद्य सीताराम मिश्र

"वनौषधि रत्नाकर" के विशेष सम्पादक

वैद्य श्री गोपीनाथ पारीक "गोपेश" का

संक्षिप्त जीवन परिचय

जन्म तथा कौटुम्बिक परिचय--वैद्य गोपीनाथ जी का जन्म 11 [illegible] 1947 को राजस्थान प्रान्त में सीकर जिले के अन्तर्गत रामगढ़ तहसील के पचार कस्बे में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती सरस्वतीदेवी तथा पिता का नाम श्री रघुनाथप्रसाद पारीक था। आप अपने माता पिता की चतुर्थ सन्तान हैं। आपके पूज्य पिता जी श्री रघुनाथप्रसाद पारीक अपने क्षेत्र के प्रख्यात चिकित्सक, सेवाभावी, धर्मनिष्ठ एवं समाजसेवी व्यक्ति थे। श्री गोपीनाथ जी के जीवन में अपने पूज्यनीय पिता का विशेष प्रभाव रहा है यही कारण है कि आपको अपने पिता श्री से कवि की प्रेरणा, चिकित्सा की प्रेरणा, तथा [illegible] की आराधना जैसे महान् गुण विरासत में मिले हैं।

शिक्षा--आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आपके जन्मस्थान [illegible] की पाठशाला में ही [illegible] हुआ। [illegible] माध्यमिक शिक्षा पचार में प्राप्त करने के बाद आपने 1 वर्ष जयपुर में दादू महाविद्यालय में संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की, फिर प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री चन्द्रशेखर जी द्विवेदी (सम्प्रति जगतगुरु शंकराचार्य स्वामी श्री निरंजन देव तीर्थ आचार्य) के चरणों में संस्कृत महाविद्यालय जयपुर में संस्कृत की शिक्षा पायी। तदनन्तर आयुर्वेद की शिक्षा के लिये राजकीय आयुर्वेदिक कालेज जयपुर में प्रवेश लिया और भिषगाचार्य की उपाधि वहां से प्राप्त की।

उपाधियां तथा सम्मान--भिषगाचार्य की उपाधि के साथ-साथ आपने साहित्यरत्न, [illegible], [illegible]रत्न, आयुर्वेद बृहस्पति आदि अनेक उपाधियां भी प्राप्त की। राजकीय आयुर्वेद कालेज में अध्ययन-काल के समय आपको महाविद्यालय के श्रेष्ठ कवि के रूप में भी पुरस्कृत किया गया।

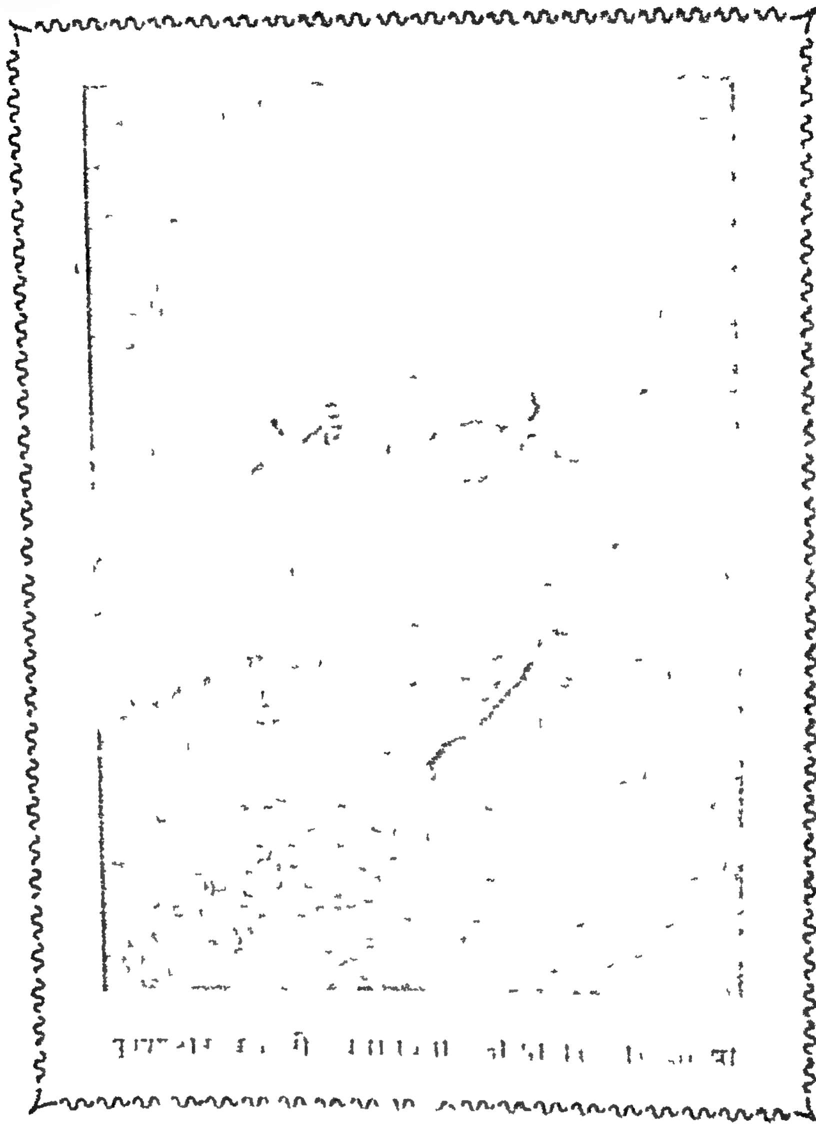
राजकीय सेवा--भिषगाचार्य का शिक्षण पूरा होने के बाद आप अगस्त 1967 से राजस्थान सरकार के आयुर्वेद विभाग में चिकित्सक पद पर कार्यरत हैं तथा अब तक अनेक स्थानों पर आयुर्वेदिक चिकित्सालयों के मुख्य चिकित्सक रहते हुए सम्प्रति नागौर जिले के डावा ग्राम के चिकित्सालय में मुख्य चिकित्सक हैं।

आयुर्वेद पत्रकारिता में योगदान--आपका आयुर्वेद पत्रकारिता में विशेष योगदान रहा है, लगभग 20 वर्ष पहले आपका लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ जो निरन्तर गतिशील रहते हुये आयुर्वेद की सेवा कर रहा है। आपके विद्वतापूर्ण लेख आयुर्वेद की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। आपके सम्पादन में धन्वन्तरि का "[illegible]व्याधि चिकित्सा विशेषांक" प्रकाशित हुआ। सुधानिधि के "प्रयोग संग्रह अंक" का आपको सहायक सम्पादक भी नियुक्त किया गया। आपकी सम्पादन प्रतिभा से प्रभावित होकर सुधानिधि ने इस "वनौषधि रत्नाकर" विशेषांक शृंखला का सम्पादक आपको नियुक्त किया है।

साहित्यिक रुचि--आपका जितना अनुराग आयुर्वेद से है उतना ही स्नेह साहित्य से है। आप एक [illegible] कवि, कहानीकार एवं [illegible] के पटुतर लेखक हैं। आपका राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा देववाणी संस्कृत पर समान अधिकार है। आपकी साहित्यिक रचनायें अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं।

[illegible] मान, मृदुभाषी, आस्तिक विचारों से ओत-प्रोत, बहुमुखी व्यक्तित्व वाले गोपेश जी [illegible] [illegible] प्राण-प्रण से जुटे हैं। आयुर्वेद की सेवा में आपका [illegible] [illegible]। यही भगवान् धन्वन्तरि से हमारी कामना है। --गोपालशरण गर्ग।

समर्पणम् :—



यः साहित्यरसानुरागरसिकः धर्मक्रियातत्परः [illegible] शास्त्रानिलक्षणो गुरुवरो वैद्याग्रणीः सज्जनः ।
राधावल्लभपूजनेन विमलः धन्यो दयासागरः सोऽयं श्रीरघुनाथशर्मविबुधः पूज्यः पिता राजते ॥
गुरो ! कृपाकटाक्षात् ते प्रारब्धं लेखनं मया ।
[illegible] [illegible] सोत्सवम् अर्पयन्ते ते करान्जयो ॥

– चरणारविन्दचञ्चरीकः
गोपीनाथः

प्रस्तावना

शिखिमुकुटविशेष नीलपद्माङ्गदेश विधुमुखकृतकेश कौस्तुभापीतवेशम् ।
मधुर रवकलेश श भजे भ्रातृशेष व्रजजनवनितेश माधव राधिकेशम् ॥

जिस विज्ञान किंवा शास्त्र मे सुखायु, दु खायु और अहितायु -इन चार प्रकार की आयु के हित (पथ्य), अहित (अपथ्य) एवं आयु के मान और आयु के स्वरूप का वर्णन किया गया है, उसे आयुर्वेद विज्ञान किंवा जीवन शास्त्र कहते हैं। आरोग्य स्थिति किंवा प्राप्ति की रीति बताने के लिए ही आयुर्वेद का उदय हुआ है—

आरोग्यविधिबोधार्थमायुर्वेदोदयोऽभवत् ।
तद्विज्ञानमतिश्रेष्ठ सार्वभौम च शाश्वतम् ॥ —अ० स० सु० सप्तशती ।

आयुर्वेद विज्ञान द्वारा जीवन के लिए हितकर तथा अहितकर जितने द्रव्य, गुण और कर्म है उन सबको जानकर एव उनके सेवन और त्याग द्वारा पूर्णरूपेण स्वास्थ्य लाभ करने से व्यक्ति पूर्ण दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। उक्त कारणो तथा कार्यो से अन्य व्यक्तियो की जीवन स्थिति को पूर्णतया जानकर उनको भी सुखायु तथा हितायु मे पूर्ण दीर्घ जीवन उपलब्ध कराने मे समर्थ बना जा सकता है।

इस त्रिस्कन्ध आयुर्वेद मे औषधिस्कन्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है। उपर्युक्त प्रकार से "आयुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेद" (चरक० सू० ३०) वर्णित आयुर्वेद की परिभाषा इसका महत्व प्रदर्शित करती है। आयुर्वेद मे द्रव्य शब्द से औषधियो का ग्रहण होता है। सुतरा द्रव्यगुण शास्त्र से औषधियो के रस, गुण, वीर्य, विपाक एव प्रभाव का ग्रहण होता है—

"औषधग्रहणाद् द्रव्य-रस-गुण-वीर्य-विपाकानामादेश." —सुश्रुत० सू० १/३६।

औषधग्रहणेन निर्दिष्टाना संशोधनादीना स्थावरादीना ग्रहण तावन्मुख्यमेव, साक्षादनुक्ताना द्रव्य-रस-गुण-वीर्य-विपाकानामप्यादेश । —चक्रपाणिदत्त ।

द्रव्यो के रस गुण वीर्य विपाक के सम्यक् ज्ञान पर आयुर्वेद की औषधि योजना उसी प्रकार आधारित है जिस प्रकार त्रिदोष विज्ञान पर उसका रोगनिदान ।

द्रव्य—सम्पूर्ण जगत का मन्थन कर ऋषियो ने विश्व मे सामान्य, विशेष, द्रव्य, गुण कर्म और समवाय इन ६ पदार्थो का निश्चय किया। सम्पूर्ण विश्व का सचालन द्रव्य-गुण-कर्म के सामान्य विशेष तथा समवाय के कारण होता है। इनमे भी द्रव्य, गुण तथा कर्म को ही सत्तावान् माना गया है। इन तीनो सत्तावान्-पदार्थो मे भी द्रव्य का महत्व सर्वोपरि है यत गुण, कर्म भी द्रव्य के ही आश्रित रहते हैं। अब यदि हम यह कहें कि सम्पूर्ण विश्व का सचालन केवल द्रव्य जातीय पदार्थ से होता है तो इसमे कोई अतिशयोक्ति न होगी ।

दार्शनिक रीत्या आयुर्वेद मे द्रव्य शब्द से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, आत्मा, मन, काल और दिशा इन ९ का ग्रहण होता है, तथापि द्रव्य गुण के प्रकरण मे द्रव्य शब्द से आहार और औषध रूप में उपयुक्त पाञ्चभौतिक कार्यद्रव्य ही अभिप्रेत हैं। "द्रव्याणि पुनरौषधय." एवं विध महर्षि सुश्रुत के मतानुसार

औषधि द्रव्यो तक इनका क्षेत्र सीमित रह जाता है। भगवान् चरक ने भी इसी भाति औषधियों को द्रव्य माना है। आयुर्वेद के द्रव्य सूक्ष्म एव स्थूल दोनो प्रकार से परिगणित होते हैं, सुतरा इस द्रव्य की परिभाषा है—

यत्राश्रिता· कर्मगुणा· कारण समवामियत् ।
तद् द्रव्यम् ································· ॥ —चरक० ।
द्रव्यलक्षण तु क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति । —सुश्रुत० ।
द्रव्य समवायिहेतु· गुणकर्माश्रय मतम् ।
तत् सामान्यविशेषाभ्या प्रयुक्त देहिना हितम् ॥ —प्रियनिघन्टु ।
रसादीना पचाना भूताना यदाश्रयभूत तद् द्रव्यम । —भाव० ॥
रसो गुणो तथा वीर्य विपाक· शक्तिरेव च ।
पंचाना यत् समाहारः तद् द्रव्यमिति कथ्यते ॥ —वाचस्पत्यभिधान

सब द्रव्य पञ्चभूतो से निष्पन्न होते हैं। पञ्चमहाभूतो से बाहर कुछ भी न बचने से सभी द्रव्य औषध है। पञ्चमहाभूतो मे एक एक की उल्वणता के अनुसार पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य और नाभस नाम से द्रव्य पञ्चविध होते है।

पुनश्च ये द्रव्य तीन प्रकार के हैं—औद्भिद, पार्थिव और जान्तव। इनमे भी औद्भिद द्रव्य प्रधान है। "द्रोर्विकार" (जो वनस्पतियो से प्राप्त किया जाय) —यह द्रव्य शब्द की निरुक्ति उसकी प्रधानता को प्रकट करती है। सुतरा, हमारा यहा यही वर्ण्य विषय है।

गुण—गुण-पर्यालोचना पूर्वक द्रव्योपयोग ही चिकित्सा मे सफलता के सूत्र का मन्त्र है, सुतरा गुणो का वर्णन आवश्यक है। जो द्रव्य मे आधेय रूप से रहने वाला हो, निष्क्रिय हो, जो गुण-रहित हो और जो स्वसमान गुण की उत्पत्ति मे कारण हो उसे गुण कहा जाता है। यथाहि—

समवायी तु निश्चेष्टः कारण गुण । —चरक०
अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निष्क्रिया निर्गुणा गुणा· । —कारिकावली ।
विश्वलक्षणागुणाः (विश्व विकीर्ण भिन्न लक्षण येषा ते विश्वलक्षणा गुणाः) । —र० वै० ।
द्रव्याश्रितत्वान्निश्चेष्टकारणत्वात्तथैव च ।
हेतुतोऽसमवायित्वाद् गौणत्वाद् गुणसज्ञकाः ॥ —प्रि० नि० ।

शरीर को इन्द्रिय-सत्व एव आत्मा का सयोग रूप मानने से औषधिद्रव्याश्रित गुर्वादि बीस गुणो के अतिरिक्त इन्द्रियो के गुणपचक तथा आत्मा के गुण आदि की भी इनमे परिगणना की गई है। इस प्रकार इन गुणो की सख्या ४१ है—द्रव्य मे रहने वाले गुर्वादि बीस गुण, शब्दादि पाच गुण, बुद्धि आदि ६ गुण और परादि दस गुण। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाच शब्दादिगुण वैशेषिक गुण कहलाते है। बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख और प्रयत्न ये आत्मगुण कहलाते हैं। परत्व, अपरत्व, युक्ति, सख्या, सयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, सस्कार और अभ्यास ये परत्वादि दस गुण सामान्य गुण कहलाते हैं। गुर्वादि बीस गुण शारीर गुण कहे जाते हैं, क्योकि इन गुणो का शरीर पर प्रयुक्त होने वाले द्रव्यो से ही विशेष सम्बन्ध है। ये गुर्वादि गुण हैं—

गुरुमदहिमास्निग्ध श्लक्ष्णसाद्रमृदुस्थिराः ।
गुणा· ससूक्ष्मविशदा विंशति· सविपर्यया· ॥ —अ० हृ० सू० १/२६

तत्र द्रव्ये गुर्वादयो दश गुणाः सविपर्यया विंशतिर्ज्ञेयाः। एषां क्रमाद्विपरीता लघुतीक्ष्णोष्णरूक्षखरद्रवकठिनसरस्थूलपिच्छिलाः ॥ —अरुणदत्त ।

इनमे शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, गुरु, लघु, मृदु और तीक्ष्ण इन दश गुणो को रसवैशेषिकसूत्रकार भदन्त नागार्जुन ने कर्मण्य गुण कहा है। लघु, उष्ण, रूक्ष, तीक्ष्ण, सर, कठिन, विशद, खर सूक्ष्म गुण अपतर्पण (लंघन) करने वाले हैं तथा गुरू, शीत, स्निग्ध, मन्द, स्थिर, मृदु, पिच्छिल, श्लक्ष्ण, स्थूल, बहल (सान्द्र) सतर्पण (बृंहण) करने वाले है। गुण द्रव्य को आश्रय करके ही रहते है स्वतन्त्र नही रह सकते अतः गुरु-लघु आदि शब्दो से यहा गुरु-लघु आदि गुणयुक्त द्रव्य यह अर्थ लिया जाता है। इन गुणों का कर्मों के द्वारा शरीर में अनुमान होता है। उत्कर्ष के आधार पर उक्त महाभूतो की अधिकता इन गुणो मे होती है—

भूत का नाम	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
मुख्य गुण (चेतन मे)	शब्द	शब्द स्पर्श	शब्द स्पर्श रूप	शब्द स्पर्श रूप रस	शब्द स्पर्श रूप रस गंध
मुख्य गुण (अचेतन मे)	अनाहत शब्द	चल	उष्ण	द्रव	खर
१	मृदु	—	उष्ण	मृदु	—
२	लघु	लघु	—	—	—
३	सूक्ष्म	सूक्ष्म	लघु	—	—
४	श्लक्ष्ण	—	सूक्ष्म	—	—
५	—	शीत	—	शीत	—
६	—	रूक्ष	रूक्ष	—	—
७	—	खर	—	—	खर
८	—	विशद	विशद	—	विशद
९	—	—	उष्ण	—	—
१०	—	—	तीक्ष्ण	—	—
११	—	—	—	द्रव	—
१२	—	—	—	स्निग्ध	—

१३	—	—	—	मंद	—
१४	—	—	—	पिच्छिल	—
१५	—	—	—	—	गुरु
१६	—	—	—	—	कठिन
१७	—	—	—	—	स्थिर
१८	—	—	—	—	सान्द्र
१९	—	—	—	—	स्थूल
२०	—	—	—	सर	—

१ गुरु (Heavy)—गुरु गुण (वाला द्रव्य) शरीर की ग्लानि मलो की वृद्धि, कफ, तृप्ति और शरीर की पुष्टि करने वाला चिरपाकी और वातहर होता है—

बृंहणे गुरु—हेमाद्रि । यथा—दूध, घृत, माष, मधुर रस वाले द्रव्य तथा शतावरी, बिदारी, एरण्ड आरग्वध आदि ।

२ लघु (Light)—उत्साह, स्फूर्ति, मल का क्षय, अतृप्ति, दुर्बलता और कृशता लाने वाला, कफघ्न वातकर, परम पथ्य, शीघ्रपाकी, व्रणरोपण करने वाला, शरीर को हल्का करने वाला है—"लघने लघु:"—हेमाद्रि । यथा—शालि षष्टिक, मुद्ग, आमलक, एला, कुटज आदि ।

३ शीत (Cold)—शीतगुण, उष्ण, पीडित को सुख देने वाला, शारीरिक स्रावो का स्तम्भन करने वाला तथा मूर्च्छा, तृषा, स्वेद और दाह को मिटाने वाला होता है—"स्तम्भने हिम"—हेमाद्रि । यथा—शालि, षष्टिक, यव, गोधूम, मसूर, तण्डुलीयक, चन्दन, उशीर, मंजिष्ठा, कमल, नारिकेल आदि ।

४ उष्ण (Hot)—सर, पाचक, तथा मूर्च्छा, तृषा, स्वेद और दाह को उत्पन्न करने वाला है—"स्वेदने उष्ण" हेमाद्रि, "उष्मवान् उष्णस्पर्श."—मधुकोषकार । "उष्णत्व शीघ्रकारित्वम्" के अनुसार यह शरीर की क्रिया को तीव्र करता है किंवा क्रिया मे उग्रता लाता है । यथा—मरिच, चित्रक, शुंठी, भल्लातक, दन्ती, गुग्गुल, हरिद्रा आदि ।

५ स्निग्ध (Unctuous)—स्निग्ध गुण शरीर मे स्निग्धता और मृदुता उत्पन्न करने वाला, बल और वर्ण को बढाने वाला, कफकर, वातहर तथा वृष्य है—"क्लेदने स्निग्ध."—हेमाद्रि । यथा—घृत, दुग्ध, दधि, तिल, एरण्ड, करञ्ज, शिग्रु आदि ।

६ रूक्ष (Dryness)—शरीर मे रुखापन और खुरदरापन लाने वाला, शोषण करने वाला, बल व वर्ण का ह्रास करने वाला, कफहर, वातकर एव अवृष्य है—"शोषणे रूक्ष"—हेमाद्रि । यथा—श्यामाक, कोद्रव, नीवार, यव, बाजरा, तुवरी, करीर, त्रिफला, गुडूची, गोमूत्र, सुरा आदि ।

७ श्लक्ष्ण (Smooth)—यह स्पर्शानुमेय गुण है । चिकना किन्तु कठिन (मणिवत्) होने से यह सज्ञा की गई है । यह पिच्छिल गुण की भाति कार्य करने वाला, वल्य, सधानकर, श्लेष्मल-व वातहर है । इसमे व्रण रोपण का कार्य विशेष पाया जाता है—"रोपणे श्लक्ष्ण" हेमाद्रि । यथा—अभ्रक, वज्र, वैक्रान्त, मणि, माणिक्य, मुक्ता, प्रवाल, शख, दुग्धपाषाण आदि ।

८. खर (Roughness)—विशद गुण के समान वलहारक, कफहर, वातकृत् लघु है। इसका विशेष-कर्म लेखन है—"लेखने खरः"–हेमाद्रि। "खरा कर्कोटकफलवत्"--मधुकोषकार। यथा-मुक्ता, प्रवाल, शख, शुक्ति आदि। इसे कर्कश भी कहा जाता है।

९ स्थिर (Dense)—वात, मल, मूत्र, स्वेद का स्तम्भन (धारण) करने वाला और अधिक समय तक नष्ट नही होने वाला होता है–"धारणे स्थिर."—हेमाद्रि। "स्थिराः अचचलाः"–मधुकोषकार। यथा—सुधा, प्रवाल, खदिर, अश्वगधा, वला एव प्रायः सब निर्यास (गोंद) आदि।

१०- सर—यह अपान, मल मूत्र की प्रवृति करने वाला होता है–"प्रेरणे सर –हेमाद्रि। यथा—हरीतकी, कटुका, आरग्वध, त्रिवृत्, इन्द्रायण आदि।

११ विशद—यह पिच्छिलगुण से विपरीत कर्म करने वाला तथा क्लेद का शोषण करने वाला और व्रण को सुखाने वाला है "क्षालने विशद"--हेमाद्रि। विशद अजीवनो, अश्लेपी--असधान. कार्श्यकृत्--हाराणचन्द्र.। यथा--तैल, मद्य, मुग्द, कदम्ब, तक्रपिण्ड आदि।

१२ पिच्छिल (Sliminess)—मलो की वृद्धि, चिकनाहट, उपलेप, जीवन, वलकारक, सन्धानकफकारक और गुरु होता है। पिच्छिल को भाषा मे लुआव कहते हैं। "लेपने पिच्छल"--हेमाद्रि। यथा--क्षीर, फाणित, माष, ईसवगोल, श्लेष्मान्तक, निर्यास आदि।

१३. स्थूल (Bulkiness)—शरीर को स्थूल करने वाला, स्रोतो मे अवरोध उत्पन्न करने वाला और गुरुपाक होता है--"सवरणे स्थूल"--हेमाद्रि। यथा—पिष्ठ, पिण्याक, कूचिका, पेडा, श्रीखड, घृतपूर आदि।

१४ सूक्ष्म—स्रोतो को खोलने वाला तथा उनमे प्रवेश करने वाला होता है–विवरणे सूक्ष्म.–हेमाद्रि (विवरण संकोच एवं प्रसरण दोनो अर्थ मे आता है)। महर्षि सुश्रुत के मतानुसार ये स्रोतो के अन्दर की मर्यादा कम करते हैं। यथा–लवण, पारद, तैल, शिलाजीत, मधु आदि।

१५ तीक्ष्ण—दाह, स्राव, और पाक करने वाला, पित्तहर, कफवातनाशक, शोधन तथा व्यवायी होता है–"शोधने तीक्ष्ण"–हेमाद्रि। यथा–मरिच, पिप्पली, चित्रक, शुठी, गधक, जयपाल आदि। आचार्य श्री विश्वनाथ जी ने इसके दाहक, तीक्ष्ण दाहक, तीव्र प्रदाहक एव धातुनाशक चार भेद किये है। विस्तृत विवरण-औषधि विज्ञान शास्त्र मे देखे।

१६ मन्द—देरी से कार्य करने वाला, सव कर्मो मे शिथिल और शामक होता है–"शमने मन्द"–हेमाद्रि। यथा–अतीस, गुडूचीसत्व, कुटजघन, वत्सनाभ आदि।

१७ सान्द्र (वहल)—स्थूलवत् और प्रसादन करने वाला है–"प्रसादने सान्द्र"–हेमाद्रि। साद्र द्रव्य धातुवधन करते हैं। यथा–वला, अतिवला, अष्टवर्ग आदि।

१८ द्रव—(Liquid) स्यदन, प्रक्लेदन और विलोडन (मथना) करने वाला है—"विलोडनेद्रव"–हेमाद्रि। यह सासिद्धिक किंवा स्वाभाविक और नैमित्तक भेद से दो प्रकार है। स्वाभाविक यथा—दुग्ध, इक्षुरस, फलरस, पारद आदि। नैमित्तक–अग्निसयोग या द्रव मे मिलकर द्रवत्व प्राप्त करते हैं यथा—लवण, शर्करा, अम्ल, भाँग, वग आदि।

१९ कठिन (Hard) अवयवो को दृढ करने वाला होता है—"दृढने कठिनः',—हेमाद्रि। यथा—अश्वगन्धा, शतावरी, अष्टवर्ग, दुग्ध, घृत आदि।

२० मृदु (Emollient)—दाह, पाक और स्राव को दूर करने वाला तथा अवयवो को ढीला व कोमल करने वाला है—"श्लथने मृदु"—हेमाद्रि। "मृदु.कोमलम्" —मधुकोषकार । यथा—गोधूम, शालि, षष्टिक, द्विदल, तैल, घृत, नवनीत आदि ।

रस—जिह्वा से ग्राह्य विषय को रस कहा जाता है। इसका आधार भूत कारण जल तथा पृथ्वी है। रसो के निर्माण एव इनमे पृथकता उत्पन्न करने मे आकाश, वायु एव अग्नि ये तीन कारण हैं। जल एवं पृथ्वी तत्व को सब रसो का आधार भूत माना गया है और आकाश, वायु व अग्नि को सब रसो का विभेदक माना गया है। ये रस छ माने गये हैं—मधुर अम्ल, लवण, कटु तिक्त, और कषाय । इन रसो का त्रिदोष चिकित्सा मे विशेष महत्व है। चरकसहिता के आत्रेयभद्रकाप्यीय एव रसविमान नामक अध्यायो मे इस विषय का सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। आत्रेयभद्रकाप्यीय मे रसो को सख्या निर्धारण का अतीव सरस वर्णन है। महर्षि आत्रेय ने एक परिषद बुलाई। सभी मनीषियो ने अपने विचार रखे और अपने अपने तर्क रखे। इन्होने एक से लेकर आठ प्रकार के रसो का प्रतिपादन किया। कात्यायन ने रसो को अपरिसख्येय कहा। अन्त मे महर्षि आत्रेय पुनर्वसु ने अपने निर्णय मे छ रस ही कहे और अपने तर्को से इस निर्णय की पुष्टि की। तब से आज तक छ. रस ही माने जाते रहे हैं। मधुरादि के तारतम्य से रसो को असख्येय मानने की बात को गुण धर्म और जाति सामान्य का कारण देकर वृद्ध वाग्भट ने समाप्त कर दिया। आधुनिक मूलत. चार रस ही मानते है—मधुर (Sweet), अम्ल (Sour), लवण (Salt), और तिक्त (Bitter)। कषाय (Astringen), और कटु (Pougent) को ये मूल रस नही मानते। एक ही द्रव्य मे विविध रस विद्यमान होने पर उसके प्रधान रस को जानने मे तीन नियम प्रदर्शित किये गये—

१ द्रव्य की आर्द्रावस्था से शुष्कावस्था तक विद्यमान रहने वाला रस ही प्रधान रस माना जाना चाहिये। यदि इस रस मे परिवर्तन होता है तो शुष्कावस्था मे विद्यमान रहे वही प्रधान रस कहा जायेगा।

२ रसना के सयोग मात्र से ही जिस रस की अनुभूति हो, वही प्रधान रस है।

३ जो रस पूर्णतया व्यक्त हो वही प्रधान है, अन्त मे प्रतीत होने वाला रस तो अनुरस कहा जायेगा।

मधुर रस पृथ्वी एव जल महाभूतो से, अम्ल रस अग्नि एव पृथ्वी से, लवण जल एव अग्नि से, तिक्त आकाश एव वायु से, कटु वायु एवं अग्नि से तथा कषाय रस वायु एव पृथ्वी महाभूतो से निष्पन्न होता है। इनमे कषाय की अपेक्षा कटु, कटु की अपेक्षा तिक्त, तिक्त की अपेक्षा लवण और लवण की अपेक्षा अम्ल और अम्ल की अपेक्षा मधुर रस अधिक बलकारक है। इनमे मधुर, अम्ल, लवण ये तीन रस वायु को शान्त करते हैं, कषाय, मधुर, तिक्त ये तीन रस पित्त को शान्त करते हैं, और कषाय, कटु, तिक्त ये तीन रस कफ को शान्त करते हैं। इसके विपरीत मधुर, अम्ल, लवण कफ को बढाते है, अम्ल, लवण, कटु पित्त को बढाते हैं और कटु, तिक्त कषाय वायु को बढाते हैं। ये षड्रस सामान्य विशेष सिद्धान्त पर धातुओ की वृद्धि क्षय करके काम करते हैं।

इनमें मधुर रस गुरु, शीत, स्निग्ध है तथा वात पित्त को शान्त करता है। यह बृंहण, जीवनीय, बल्यस्तन्यजनन तथा सन्धानीय है। इसका अति उपयोग करने से मद एव कफ के कारण स्थौल्य, प्रमेह, अग्निमान्द्य, अर्बुद आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अम्ल रस स्निग्ध उष्ण एव लघु है। यह कफ पित्त को प्रकुपित करने वाला, दीपन, रोचन, हृद्य, सारक एव अनुलोमन है। इसके अतियोग से दौर्बल्य, तिमिर, भ्रम, अम्लपित्त, ज्वर, रक्त-विकार पाण्डु, तृष्णा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। लवण रस गुरु, उष्ण, स्निग्ध तथा पित्त कफ

का प्रकोपक है। यह दीपन, रोचन, छेदन, भेदन तथा द्रवता उत्पन्न करने वाला है। इसके अतियोग से शोथ, कुष्ठ, वलि, तृष्णा, रक्तविकार, पालित्य, खालित्य, कृशता तथा धातुक्षय आदि उत्पन्न होते हैं। तिक्त रस रूक्ष, लघु, शीत तथा कफ पित्त का शामक है। यह क्लेद का शोषक, स्रोतों का शोधक, रुचिवर्धक, कृमिघ्न, विषनाशक, ज्वरहर तथा रक्तविकारोपयोगी है। इसका अतियोग शोष और वातविकारो को उत्पन्न करता है। कटु रस उष्ण, लघ, रूक्ष है तथा वातपित्त को बढाता है। यह दीपन, पाचन, ग्राही, रुचिकर तथा मेद का शोषक है। इसके अतियोग से शुक्रक्षय, दौर्बल्य, मूर्च्छा, दाह, कम्प आदि उत्पन्न होते है। कषाय रस रूक्ष, शीत, गुरुपाकी तथा कफपित्त शामक है। यह स्तम्भन, शोषण, मेदोनाशक तथा त्वचा को निर्मल बनाने वाला है। इसका विशेष प्रयोग अतिसार तथा रक्तस्राव मे होता है। इसका अतियोग अग्निमाद्य, क्लैव्य, वातव्याधि आदि रोगो को उत्पन्न करता है।

इस प्रसग मे यह भी स्मरण रखने योग्य है कि कालस्थिति, पात्रस्थिति, सयोग, पाक, आतप, भावना, देश, परिणाम, उपसर्ग और विक्रिया आदि भौतिक किवा रासायनिक परिवर्तनो से विभिन्न अवस्थाओ मे अनेक द्रव्यो का रस रूपान्तर होता है, जो प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसका विस्तृत वर्णन जानने के इच्छुक व्यक्तियों को यादवजी महाराज एव आचार्य प्रियव्रत जी के द्रव्यगुण विज्ञान का अवलोकन करना चाहिये।

विपाक—जिस प्रकार त्रिदोष सिद्धान्त को अक्षुण्ण रखते हुये शल्यकोविदो ने रक्त को विशेष महत्व दिया है, उसी प्रकार कायचिकित्सको ने अग्नि को विशेष महत्व दिया है। आयुर्वेद वाङ्मय मे अग्नि की सज्ञा प्राण दी गई है, सुतरा जीवित शरीर के सम्यक् ज्ञान के लिये अग्निव्यापारो का ज्ञान अत्यावश्यक है। यहा पर १३ अग्नियो का वर्णन उपलब्ध होता है। यथा—पचभूताग्नि, सप्तधात्वग्नि तथा जाठराग्नि को पचभूतानि धात्वग्नि के समूहात्मक यत्न से उत्पन्न होने वाली कहा है।

भुक्त द्रव्य का द्विविध पाक होता है—अवस्थापाक और निष्ठापाक। जो निष्ठापाक है वही विपाक कहा जाता है। आत्रेयसप्रदायमत विपाक को रस विशेष मानते है। "रसैरसौ तुल्यफलः" के अनुसार विपाक का फल रसो के समान होता है। महास्रोत मे जठराग्नि द्वारा परिपाक होकर जो रस विशेष उत्पन्न होता है, वही निष्ठापाक किवा विपाक कहा जाता है—

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्।
रसाना परिणामान्ते स विपाक इति स्मृत ॥ —अ० हृ० सू० ९/२०।

द्रव्यों के पाचन क्रम मे सर्व प्रथम जाठराग्नि का, तदनन्तर भूताग्नि का तथा अन्त मे धात्वग्नि का व्यापार होता है। महर्षि सुश्रुत चरक की भाति रस विपाकवादी न होकर गुणविपाकवाद के पक्षपाती हैं, अत. उनके मत से जाठराग्नि पाक के परिणाम को विपाक कहा जा सकता है किन्तु जाठराग्नि, भूताग्नि तथा धात्वग्नि के व्यापार पर विचार करने से विपाक का सम्बन्ध मुख्यत' भूताग्नि से सिद्ध होता है। यह बात आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने एक लेख (स० आयुर्वेद फर० ६९) मे स्पष्ट की है। आपने आचार्य वाग्भट के उक्त श्लोक को इस प्रकार अकित किया है—

भौतिकेनाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्।
रसाना परिणामान्ते सविपाक इति स्मृत ॥

अपने प्रिय निघण्टु मे भी आपने तीनो अग्नियो के अनुसार विपाक को भी त्रिविध कहा है—

विपाक. कर्मनिष्ठा स्यादग्नीना परिणामजा।
औदर्य भूतधात्वग्नि भेदतस्त्रिविधश्च स.॥

सुश्रुतोक्त "तत्रस्थमेव चात्मशक्त्या शेषाणामपि पित्तस्थानाना शरीरस्य चाग्निकर्मणानुग्रह करोति" की व्याख्या मे चक्रपाणि लिखते है कि "शेषाणा पित्तस्थानानामिति तथा शरीरस्य चाग्निकर्मणेति पञ्चभूताग्निसप्तधात्वग्निकर्मणा"।

इससे यह स्पष्ट है कि पाच प्रकार के पित्त के अन्तर्गत १३ प्रकार की अग्नियो का अन्तर्भाव हो जाता है। पित्त पचक मे भूताग्नियो को इस प्रकार समझा जा सकता है—याकृत पाचकपित्त पार्थिवाग्नि रूप से मुख्यतया बलवान् है क्योकि यह शरीर पार्थिव है, इसमे पार्थिवाग्नि की ही मुख्यता होनी चाहिये। परत जलीयाग्नि—इसके आमाशयस्थ रंजकपित्त है, और उसके बाद आग्नेयाशयस्थ आग्नेयाग्नि आलोचक पित्त है, और वाय्वग्नि भ्राजक पित्त है तथा आकाशाग्नि साधक पित्त है क्योकि साधक पित्त का कार्य भी बुद्धिमेधाभिमानादि सूक्ष्म अमूर्त है अतएव इसे आकाश प्रधानाग्नि कहना उचित होगा। वस्तुत यही पचभूताग्नि है ग्नि‌विज्ञानम्)।

विपाक के प्रकार मानने मे भिन्न-भिन्न मत हैं—

१ षड्विध विपाक, २ पचविध विपाक, ३ त्रिविध विपाक (आत्रेय सम्प्रदाय), ४ द्विविधि विपाक (धन्वन्तरि सम्प्रदाय)। इनमे द्विविध विपाक और त्रिविध विपाक ही अधिक मान्य है, इनमे से त्रिविध विपाक की सर्वाधिक मान्यता है। धन्वन्तरि सम्प्रदाय के मत से गुण के अनुसार विपाक दो प्रकार है—गुरु और लघु जो क्रमश बृहण एव लघन कर्म करता है। आत्रेय सम्प्रदाय मधुर अम्ल और कटु तीन विपाक मानते है, जो क्रमश कफ, पित्त एव वात को बढाते हैं। कटु, तिक्त एव कषाय द्रव्यो का विपाक प्राय कटु होता है। अम्ल द्रव्यो का विपाक अम्ल तथा मधुर एव लवण द्रव्यो का विपाक मधुर होता है। मधुर विपाक कफवर्धक मलसारक तथा धातुवर्धक होता है। अम्ल विपाक पित्तवर्धक, मलसारक तथा धातुनाशन होता है। कटु विपाक वातवर्धक, मलरोधक तथा धातुनाशन है। इनमे मधुर विपाक गुरु तथा अम्ल एव कटु लघु है।

वीर्य—शरीर मे जो भी परिवर्तन सक्रिय रूप मे अनुभव मे आते हैं वे दो ही प्रकार के होते है—शीत और उष्ण। इस प्रकार का कार्य द्रव्य मे निहित शक्ति तत्त्वो के कारण ही होता है। यद्यपि वे शक्ति के घटक तो पाञ्चभौतिक द्रव्य सघठन मे उपादान के स्वरूप मे आते हैं और उन्ही के कारण द्रव्यगत गुण और रस निस्पन्न होते है, साथ ही शीत और उष्ण द्रव्य के गुणो के अन्तर्गत आ जाते हैं, तथापि शीत और उष्ण के रूप मे द्रव्य का जो विशिष्ट कार्य होता है, उसका निवेदन और ज्ञान करने के लिये वीर्य को पृथक् ग्रहण करना उचित समझा गया है।

आयुर्वेद मे वीर्य के सम्बन्ध मे तीन मत पाये जाते हैं—(१) शक्तिरूप वीर्य-चरक इस मत के अनुयायी है। (२) उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न गुणरूपी वीर्य–इसे पारिभाषिक वीर्य या गुणवीर्य भी कहा जाता है। सुश्रुत, वृद्ध वाग्भट और वाग्भट इस मत के अनुयायी है। (३) कर्म लक्षण रूप वीर्य—भदन्त नागार्जुन इस मत के अनुयायी हे।

डा० बालकृष्ण अमरजी पाठक इस सम्बन्ध मे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—औषध द्रव्यो मे ऐसी कौन शक्ति है जिसका उनके (औषध द्रव्यो के) गुणो, रस, विपाक और प्रभाव मे समावेश नही हो सकता ? तथा तुल्य गुण, रस, विपाक और प्रभाव वाले द्रव्यो के औषधीय कर्मो मे भिन्नता का कारण क्या है ? वीर्य के अस्तित्व के विषय मे तो कोई शङ्का ही नही है। मेरी नम्र बुद्धि के अनुसार वीर्य का अर्थ है—औषध द्रव्यो मे स्थित विशिष्ट गुणोत्पादक तत्व (Active Principles)"

आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी ने आचार्य पाठक के उक्त "एक्टिव" प्रिंसिपल को वीर्य मानने की युक्ति का "एकांगी अर्थ का बोधक" बतलाते हुये खंडन किया है और इस पर व्यक्तिगत विचार का आरोप लगाया है।

आचार्य श्री प्रियव्रत जी शर्मा ने मीमांसा दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चरक के शक्ति रूप वीर्यवाद को शुद्ध एवं आदिम कहा है—"मेरे विचार मे गुण से वीर्य की प्रथक् सत्ता रखने मे मीमासा दर्शन का शक्तिवाद सहायक रहा होगा। इस प्रकार यह द्रव्य, गुण और कर्म से पृथक् होने पर भी इन तीनो के साथ सयुक्त होकर कर्म मे कारणभूत होती है। सभवत इसी आधार पर द्रव्यवीर्यवाद, गुणवीर्यवाद और कर्मवीर्यवाद की धारणायें पल्लवित हुई होंगी। आचार्य चरक का विचार इस सम्बन्ध मे स्पष्ट है। वह शक्ति को किसी मे न बांधकर नितान्त स्वतन्त्र रखते है और जिस किसी से भी कर्म हो वहा शक्ति की कल्पना करते है, शक्ति का यही शुद्ध एव आदिम रूप है।" —आयुर्वेद विकास मार्च ७५।

धन्वन्तरि एवं शिवदाससेन द्रव्यवीर्यवाद को, सुश्रुत-वाग्भट आदि गुणवीर्यवाद को तथा निमि-विदेह, भदन्त नागार्जुन आदि कर्म वीर्यवाद को महत्व देते हैं। आधुनिक आचार्यो ने इन तीनो वादो का सामञ्जस्य करते हुये वीर्य का विवेचन प्रस्तुत किया है।

द्रव्य गुणविज्ञान पर प्रभावपूर्ण प्रथम लेखनी उठाने वाले श्री यादवजी आचार्य ने वीर्य की परिभाषा इस प्रकार की है—

द्रव्यगत भूतप्रसादातिशय रूप जिस कार्यकारिणी शक्ति के द्वारा जीवित शरीर पर सशोधन सशमन आदि कुछ भी कार्य-कर्म होता है, उस शक्ति को, वह शक्ति चाहे द्रव्यस्वभाव (द्रव्यो की पार्थिव-आप्य आदि पाञ्चभौतिक रचना) रूप हो, रस रूप हो, विपाक रूप हो, उत्कृष्ट शक्ति सपन्नशीतोष्णादि गुणरूप हो या द्रव्यगतसार भाग-सत्वांश (एक्टिव प्रिंसिपल) रूप हो, उसको वीर्य कहते हैं।

वीर्य शब्द का अर्थ द्रव्यो की कोई भी कार्यकारिणी शक्ति भी होती है और उष्ण-शीत आदि शक्ति विशेष भी होता है। दोनो के लिए वीर्य शब्द का व्यवहार प्राचीनो ने किया है। इस बात को न समझकर शक्तिसंज्ञक वीर्यवादी, अष्टविध वीर्यवादी, और द्विविध वीर्यवादी इत्यादि प्रकरणो का निर्माण किया जाता है, जिनसे ऐसी भ्रमणा होती है कि प्राचीन आचार्यो मे कोई मतभेद है। —वैद्य श्री रणजितराय।

चरक ने वीर्य के शक्ति स्वरूप पर बल दिया और शक्ति तो गुणरूप ही है अत सुश्रुत और वाग्भट ने गुणोत्कर्ष पर जोर दिया है। वीर्य अनेक कर्मो का कारण है अत नागार्जुन ने कर्म की दृष्टि से वीर्य को कर्म लक्षण माना और चूकि यह द्रव्य मे आश्रित है अत कतिपय आचार्य द्रव्य के उत्कृष्टांश को प्रधान मानकर उसी को वीर्य कहने लगे। वस्तुतः इसके सम्बन्ध मे समन्वित दृष्टिकोण से विचार होना उचित है। एकांगी दृष्टिकोण से किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है।

वीर्य शक्ति रूप है, शक्ति एक उत्कृष्ट गुण है, यह द्रव्य के सार भाग मे स्थित है, तथा इसी के द्वारा द्रव्यो के कर्म निष्पन्न होते हैं। वीर्य का यह स्वरूप विभिन्न मतवादो के समन्वय से स्पष्ट होता है।

इस प्रकार वीर्य का स्वरूप शक्तिमात्र है। द्रव्य का उत्कृष्टांश उसका अधिष्ठान है एवं गुरु, लघु गुण (उपाधिरूप) और छर्दिनीय अनुलोमनीय आदि कर्म उसके सहचर है —आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा।

पुनश्च, जगत मे सब द्रव्य पाञ्चभौतिक है, तथापि पञ्च महाभूतो मे अग्नि और सोम (जल) ये महा-बलवान होने से सब द्रव्यो पर इनका प्रभाव विशेष होता है और काल भी आदान (आग्नेय) और विसर्ग

(सौम्य आग्नेय) त्रिविध है एतावता उष्ण और शीत दो प्रकार के वीर्य ही विद्वानो ने स्वीकार किये हैं। मधुर तिक्त, कषाय रस शीतवीर्य और कटु, अम्ल, लवण रस उष्णवीर्य हैं। इसी प्रकार गुरु विपाक द्रव्य शीतवीर्य तथा लघु विपाक द्रव्य उष्णवीर्य होते हैं।

रस का ज्ञान प्रत्यक्ष, विपाक का अप्रत्यक्ष या कार्यानुमेय तथा वीर्य का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार से होता है। द्रव्य के अन्त प्रवेश से लेकर उसके शरीर मे निवास की सम्पूर्ण अवधि मे वीर्य कार्मुक रहता है। उसके बाद जब द्रव्य निर्वीर्य हो जाता है तब वह शरीर से मल-मूत्र आदि के द्वारा बाहर निकल जाता है।

प्रभाव—द्रव्यगत कार्यकारिणी शक्ति दो प्रकार की होती है—चिन्त्य और अचिन्त्य। चिन्त्य शक्ति को वीर्य एव अचिन्त्य शक्ति को प्रभाव कहा जाता है। जिसका द्रव्यो के पाञ्चभौतिक सगठन, गुण रस या विपाक द्वारा उनके कर्मों के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध न दिखाया जा सके, उस अचिन्त्य शक्ति को प्रभाव कहते हैं—

रसवीर्यविपाकानां सामान्य यत्र लक्ष्यते।
विशेष कर्मणा चैव प्रभावस्तस्य स स्मृत॥ —चरकसहिता।

प्रभावः स विशिष्टा या कर्मशक्ति स्वभावजा।
शिरीषस्य विषघ्नत्वं यथा हृद्यत्वमर्जुने॥ —प्रियनिघण्टु।

चरक एवं वृद्ध वाग्भट के वर्णनानुसार इसे विशदरूप से इस प्रकार समझा जा सकता है—

जिस द्रव्य मे रस, वीर्य और विपाक का सामान्य हो (शास्त्रानुसार समान हो), परन्तु कर्म मे विशेषता हो तो उस विशेष कर्म का कारण प्रभाव ही समझना चाहिये। जैसे चित्रक रस मे कटु है, उसका विपाक कटु होता है और उसका वीर्य उष्ण है इसके विपरीत कोई विशेष कार्य देखने मे नही आता। परन्तु दन्ती चित्रक के समान रस, वीर्य और विपाक वाली होने पर भी विरेचन रूप विशेष कर्म उसका देखने को मिलता है, दन्ती के इस विरेचन रूप कर्म का कारण प्रभाव है। मुनक्का, मुलहठी के समान होने पर भी मुलहठी विरेचन नही कराती और मुनक्का विरेचन कराती है। घृत दूध के समान होने पर भी दूध दीपन नही है, परन्तु घृत दीपन है। मणि, मन्त्र और औषधियो के धारण करने से नाना प्रकार के कर्म देखे जाते हैं, शल्यो का आकर्षण, पुत्र प्रजा उत्पन्न करना, राक्षसादि से रक्षा करना, रसायनो का आयुष्य बढाना, शखपुष्पी आदि का मेधा-बुद्धि को बढाना, अगद के दर्शन आदि से विष का नाश होना, विदारीकन्द आदि द्रव्यो का शीघ्र शुक्र उत्पन्न करना, मदनफल का वमन कराना, हरीतकी का विरेचन कराना, आमलक का तीनो दोषो का शमन करना—ये सब कर्म प्रभाव से ही होते हैं। सुतरा प्रभाव अचिन्त्य है अर्थात् रस वीर्य और विपाक से उसकी कल्पना नही की जा सकती।

कर्म—ससार के प्रत्येक प्राणी प्रतिक्षण कुछ न कुछ कार्य करते रहते हैं—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश कर्म सर्व. प्रकृतिजैर्गुणै.॥ —श्रीमद्भगवतगीता ३/५

सभी कर्मों के मूल मे प्रयत्न होता है। प्रयत्न आत्मा (चेतना) का एक गुण है जो समस्त क्रियाओ को प्रेरित करता है। यह प्रयत्न दो प्रकार का है—ऐच्छिक और अनैच्छिक। बाह्य पेशियो के कर्म तो व्यक्ति की इच्छा के अधीन होते हैं किन्तु आभ्यन्तर अङ्गो की क्रिया स्वत निष्पन्न होती रहती है। प्राणियों की इस प्रयत्नमूलक चेष्टा को कर्म कहते हैं। इसके अतिरिक्त द्रव्यो द्वारा सयोग विभाग के रूप मे किये जाने वाली

क्रिया भी कर्मनाम से जानी जाती है। सिद्धान्तत ये कर्म द्रव्याश्रित होते है परन्तु व्यवहारत. कर्म द्रव्य मे स्थित नही होता अपि तु कर्म की प्रवृत्ति द्रव्य से प्रारम्भ होती है। गुण की भाति द्रव्य मे कर्म उपस्थित नही होने से द्रव्यगुण कर्मविज्ञान न कहकर द्रव्यगुणविज्ञान किंवा शास्त्र कहा जाता है। आत्मा किंवा मन किंवा दोनों की प्रेरणा से ही कर्म द्रव्य से प्रवृत्त होता है। द्रव्य स्वत द्रव्य के प्रति तथा गुण और कर्म के प्रति समवायी कारण होता है। गुण भी द्रव्य के प्रति तथा गुण और कर्म के प्रति असमवायी कारण होता है किन्तु कर्म स्वय कर्म के प्रति कारणभूत नही होता।

वैशेषिक दर्शन मे कर्म का जो लक्षण दिया गया है प्राय. उसी के अनुसार चरकसहिता मे भी वर्णित है—

सयोगे च विभागे च कारण द्रव्यमाश्रितम्।
कर्त्तव्यस्य क्रियाकर्म कर्म नान्यदपेक्षते॥ —च० सू० १/५२।

यह कर्म पाच प्रकार का कहा गया है—उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुचन, प्रसारण और गमन।

उपर्युक्त कर्म के लक्षणों मे सयोग और विभाग इन शब्दो का प्रयोग हुआ है। ये सयोग और विभाग गति के रूप हैं। आधुनिक विज्ञान मे यह गति "वेग" के नाम से जानी जाती है। इस विषय का मार्मिक वर्णन श्रीयुत मदनगोपाल जी वैद्य ने इस प्रकार किया है—

"सूक्ष्मरूप मे ध्यान देने पर गति सयोग विभाग कर्म का स्वरूप है। सयोग विभाग मे प्रयुक्त बल या वेग के अनुसार कार्य गति भी घटती-बढती है। कर्म का माप गणित की भाति हो सकता है। सयोग की क्रिया गणित के योग Addition की भाति तथा विभाग की क्रिया विभजन Division की भाति होती है। प्राच्य पडित अब तक कर्म का माप मौखिक कर्मफल से करते थे पर अब इसका भाव चिकित्सा व प्रत्येक मे गणित द्वारा सम्भव है। कर्म चाहे दृश्य हो या अदृश्य पर उसका फल अवश्य माप मे आयेगा। अब पदार्थ विज्ञान शास्त्र केवल मौखिक वाग् विलास का विषय न रहकर प्रत्यक्ष व गणितीय पद्धति से मापन योग्य हो गया है।" —चरकरहस्य प्रकाशिकाव्याख्या।

आयुर्वेद रीत्या द्रव्य की शरीर पर होने वाली वमन-विरेचन-बृहण आदि क्रियाये द्रव्य का कर्म हैं। चिकित्सा के सारे उपक्रम बृहण और लघन मे ही अन्तर्भूत है। इसका उपयुक्त वर्णन आचार्य वाग्भट ने सूत्रस्थान मे किया है। सयोगानुकूल कर्म बृहण तथा विभागानुकूल कर्म लघन है। सयोग तीन प्रकार का कहा गया है—सर्वकर्मज, द्वन्द्वकर्मज और एककर्मज। औषधि के स्तर पर एक द्रव्य मे एक कर्मज, दो द्रव्यो के यौगिक मे द्वन्द्वजकर्मज तथा दो से अधिक द्रव्यो के यौगिक मे सर्वकर्मज सयोग होता है। सयोग की भाति विभाग के भी तीन प्रकार दर्शनशास्त्र मे किये गये हैं। भगवान् चरक ने "विभागस्तु विभक्ति स्याद् वियोगो भागशोग्रह" ऐसा कहा है। उक्त वाक्य मे निर्दिष्ट विभक्ति, वियोग और भागसग्रह को व्याख्याकारो ने प्राय. पर्यायवाची माना है। किन्तु आचार्य प्रवर श्रीयुत प्रियव्रत जी ने इन्हे पृथक् पृथक् कहकर आयुर्वेदोपयोगी परिभाषायें प्रस्तुत की हैं—

"विभक्ति—किसी वस्तु को काटकर टुकडे करना यथा गुडूचीकाण्डस्य विभक्ति। वियोग—सयोग के विपरीत, पृथक् करना यथा "प्राणैर्वियुज्यते"। इसी को विश्लेष भी कहा गया है। यथा अल्प औषधि की महार्थता और प्रभूत औषध की अल्पार्थता सयोग, विश्लेष आदि से करने का उपदेश किया गया है—

अल्पस्यापि महार्थत्व प्रभूतस्याल्पकर्मता।
कुर्यात् सयोगविश्लेषकालसस्कारयुक्तिभि.॥ —चरक क० १२/५२।

भागमय्ह –किसी वस्तु को कई भागो मे बाट कर लेना।' —सचित्र आयुर्वेद मई ७५।

आयुर्वेद म द्रव्यो का जीवित मानव शरीर पर होने वाली उनकी क्रियाओ के अनुसार अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया गया है, जिनका द्रव्य जन के अन्य पर (इन अङ्को मे) विस्तृत वर्णन किया गया है। उनका वर्णन यहा पर करने से पुनरुक्ति दोष होगा।

अन्त मे यह महत्वपूर्ण प्रकरण का यहा पर उल्लेख कर देना समीचीन होगा। मनुष्य के पास यद्यपि ज्ञानार एव कर्मार्थ कारणस्वरूप एकादश इन्द्रिया है जिनसे वह विभिन्न कर्म करता है तथापि सब कार्यो के लिए सभी इन्द्रिया आवश्यक नही होती है। अर्थात् कुछ कार्य ऐसे हैं जिनमे एकाधिक इन्द्रियो की आवश्यकता होती है तथा कुछ कार्य ऐसे है जिनमे मात्र विशिष्ट इन्द्रिय ही सहायक होती है। ठीक उसी तरह द्रव्य भी अपने कुछ कार्य रस, गुण, वीर्य, विपाक व प्रभाव से मिलकर करता है तथा कुछ कार्य मात्र रसादि से ही कर सकता है। द्रव्यगत रस गुणादि मे जो प्रबल होता है वह अपना कार्य करता है परन्तु सामान्यतया रस से गुण, गुण से वीर्य, वीर्य से विपाक और विपाक से प्रभाव प्राय बलवत्तर होते है—

किञ्चिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन चापरम्।
गुणान्तरेण वीर्येण प्रभावेणैव किंचन।
यद्यद् द्रव्ये रसादीना बलवत्वेन वर्तते।
अभिभूयेतरास्तत्तत् कारणत्व प्रपद्यते॥
विरुद्धगुणसयोगे भूयसाऽल्प हि जायते।
रस विपाकस्तौ वीर्य प्रभावस्तान्यपोहति॥ —अ० हृ० सू० ६।

प्राय द्रव्यगत रस गुणादि एक दूसरे से परस्पर सामजस्ययुक्त होते है। ऐसे द्रव्य जिनमे रस एव द्रव्य के आरम्भक महाभूत समान हो तथा एक-एक रस के कार्यो के अनुसार हो सभी रसो के कार्य जो द्रव्य करता हो उसे प्रकृतिसमसमवेत द्रव्य कहा जाता है। कुछ ऐसे भी द्रव्य होते है जिनमे द्रव्यारम्भक महाभूत एव उपस्थित रसारम्भक महाभूत परस्पर विपरीत है सुतरा उनके कार्मुकत्व की व्याख्या तथा सम्भावित कार्य का अनुमान नही किया जा सकता। ये विकृति विषमसमवेत कहलाते है।

गुरुजनो के आशीर्वाद एव अनेक मनीषियो के सहयोग से मुझ अकिंचन द्वारा वनौषधि रत्नाकर का प्रथम भाग प्रस्तुत किया गया था। इस अङ्क का अवलोकन कर अनेकानेक ज्ञानयज्ञ के अप्रतिम पुरोधाओ ने सराह कर मेरा साहस बढाया, एतदर्थ आभारी हूँ। "आयुर्वेद विकास" "सचित्र आयुर्वेद" "शुचि" आदि आयुर्वेदीय प्रमुख पत्रो मे माननीय सम्पादको ने इसकी समालोचना प्रकाशित कर अपनी सहृदयता का परिचय दिया, एतदर्थ भी मे कृतकृत्य हूँ। प्रतिक्रिया स्वरूप निज दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले विद्वानो के पत्र इतनी सख्या मे प्राप्त हुये कि उन पर विचार विमर्श करने हेतु मुझे विजयगढ बुलाया गया। उन पत्रो मे प्रशसा, त्रुटिया, सुझाव आदि विद्यमान थे। कई व्यक्तियो ने त्रुटियो की ओर इङ्गित कर भविष्य हेतु सचेत किया एतदर्थ मैं विशेषत प्रभावित हूँ। प्रगति के लिए त्रुटियो की जानकारी आवश्यक है। "निज कवित्त केहि लाग न नीका" के अनुसार कृतिकार को अपनी कृति सर्वाङ्गसुन्दर लगती है। प्रबुद्ध पाठक जब उनमे त्रुटियो की ओर इङ्गित करते है, तो उसे भान होता है, और वह भविष्य मे अधिक जागरुक होने हेतु सचेष्ट होता है। सुतरा उन महानुभावो की शुभेच्छामय भावना हेतु मे कृतज्ञ हूँ। उदारचेता विद्वानो से मेरा सतत यही निवेदन है—

वरदहस्त मम शीष धरे नित सतत सलेख प्रबोधन दे,
मुझको तो निज पद-पकज षट्पद का सबोधन दें।
सकल विश्व है दोषपूर्ण त्रुटिया मानव की सहज बने,
करबद्ध निवेदन करू मुझे, सुस्नेह, क्षमा, सशोधन दे।

भगवान् चरक ने उपदेश दिया है कि—

सुमुखा सर्वभूताना प्रशान्ता शसितव्रता।
सेव्या सन्मार्गवक्तार. पुण्यश्रवणदर्शना॥

तदनुसार विजयगढ से लौटते समय आयुर्वेद की महान् विभूति आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी से मिला। हाथरस मे उनके निवास स्थान पर सुधानिधि के सहायक सम्पादक कविवर श्री मदनमोहनलाल जी चौरै के साथ गया। अल्पकालीन उस सौहार्दमय मिलन को पाकर मै धन्य हो उठा। उनका उदात्त-व्यक्तित्व सत्यव्रती के लक्षणो को अक्षरश. सजोये हुए है—

दार्ढ्य सन्तुलन दूरदर्शित्व भीति-हीनता।
प्रसादश्चोज्ज्वले नूनं भविष्ये प्रत्ययो दृढ॥
स्वाभाविका गुणा ह्येते वसन्ति तस्य मानसे।
प्रकाशन्ते विशुद्ध हि स्वरूप चास्य मानुषम्॥
विनय सौजन्यपूर्णा वाणी सत्प्रेमसयुता।
मधुरा च प्रिया भद्रा परेषा हितकारिणी॥

बन्धुवर श्रीयुत गोपालशरण जी एव पूज्य प्रवर चरौरे जी इन सम्पादकत्रय के सत् परामर्श के पश्चात् पुन: अग्रिम लेखन प्रारम्भ किया गया। गुरुजनो का शुभाशीर्वाद एव स्नेहीजनो का सहयोग पाकर ही मैं द्वितीय भाग पूर्ण करने मे सफल हुआ। यह जैसा भी मुझ अज्ञ से बन सका है, आप प्रबुद्ध पाठको के समक्ष है। मै तो केवल पूज्यपाद स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी महाराज के शब्दो मे यही निवेदन कर सकता हूँ—

सोऽहं कृताञ्जलिर्भूत्वा भूयो-भूयो विमर्षितुम्।
दोष सप्रार्थये मुग्धो विदग्ध प्रवरान् बुधान्॥

वनौषधि रत्नाकर प्रथम भाग मे केवल अनुभूत प्रयोग ही दिये गये थे। पेटेण्ट प्रयोगो का प्रथम भाग मे वर्णन नही किया गया था। एक-दो स्थानो पर जो इङ्गितमात्र किया गया था, उसे पढकर विचारशील पाठको ने प्रत्येक वनौषधि से सम्बन्धित पेटेण्ट प्रयोगो का वर्णन करने हेतु मुझे लिखा था। आज चिकित्सा मे पेटेण्ट प्रयोगो की अधिकता होती है। यदि यह कहे कि "यह युग पेटेण्ट औषधियो का है" तो अतिशयोक्ति नही होगी। सम्प्रति प्रत्येक औषध निर्माणशाला पेटेण्ट (असामान्य अधिकार) औषधियो के निर्माण में ही विशेष ध्यान दे रही है। शास्त्रीय औषधिया प्राय लुप्त होती जा रही हैं। मेरा भी पेटेण्ट औषधियो के प्रयोग मे ध्यान कम ही रहता है। अत मै जिस विचार परम्परा से अनुस्यूत हूँ वे स्वनामधन्य गुरुवर्य अनुभूत प्रयोग किंवा पेटेण्ट प्रयोगो के पक्षपाती नही रहे है। आयुर्वेद मार्तण्ड विश्रुतकीर्ति श्रीयुत लक्ष्मीराम जी स्वामी महाराज की चिकित्सा-चातुरी का वर्णन उनके ही पट्ट शिष्य चिकित्सक चूडामणि माननीय पडित प्रवर श्री नन्दकिशोर जी शर्मा ने एक स्थान पर लिखा है —

"मुझे यह लिखते अत्यधिक हर्ष होता है कि आर्षग्रन्थो के प्रयोगो के अतिरिक्त पूज्य स्वामी जी महाराज, किसी भी अनुभूत योग का स्वागत कई दिनो तक अपने शास्त्रीय विचारो की तुला पर तोल कर यदा-

कदाचित् करते हो तो कोई आश्चर्य नही परन्तु मुझे तो खूब याद है कि शास्त्रीय चिकित्सा पद्धति और प्रयोगो का अनुसरण ही एकमात्र उनके जीवन का ध्येय रहा है। भगवान् करे वैद्यो की इस सम्बन्ध मे शास्त्रीय प्रयोगो पर विश्वास करने की प्रवृत्ति बने और वे पचकर्म, शिराव्यध क्षारकर्म, अग्निकर्म आदि बातो का पुनः विचार करें और व्यर्थ के अनुभूत विचित्र नि सार प्रयोगो की खोज मे अपना समय नष्ट न करें तो आयुर्वेद साहित्य का उद्धार होने मे लेशमात्र भी सन्देह नही है।"

चिकित्सा मे शास्त्रीय प्रयोगों पर ही विशेष बल देते हुये इसी प्रकार के विचार पूज्य स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी महाराज के उत्तराधिकारी सौम्यता एव विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति स्वामी श्रीयुत जयरामदास जी महाराज ने व्यक्त किये हैं—

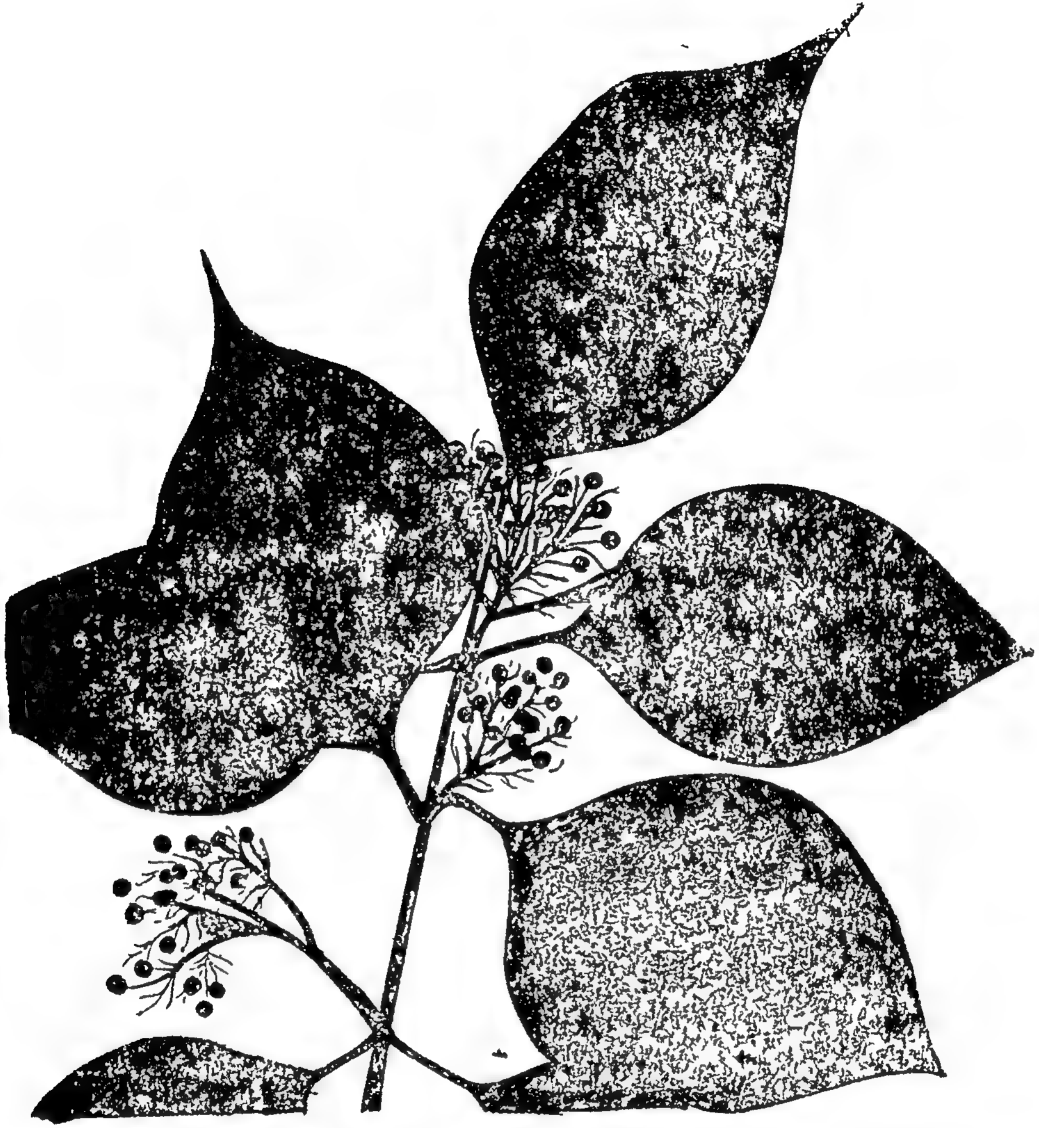
"मेरा खयाल है कि आयुर्वेद के सिद्धान्त पर जब हम विचार करते हैं तो सभी प्रयोग गुप्त तथा सिद्ध हैं, यदि प्रयोक्ता ठीक है तो, अन्यथा यदि प्रयोक्ता ठीक नही है तो सिद्ध प्रयोग भी अपना कुछ असर नहीं कर सकते एव बजाय लाभ के बहुत बडी हानि कर देते है। इसलिये आयुर्वेद के शास्त्रीय प्रयोग अनुभवगम्य हैं, अनुभव ही उनको सिद्ध बनाता है।"

वस्तुत. मनुष्यत्व समान होने पर भी प्रकृति, स्वभाव, शारीरिक स्थिति, देश और काल आदि के भेद से प्रत्येक व्यक्ति मे एक भिन्नता उपलब्ध होती है। चिकित्सा कार्य मे प्रबुद्ध वैद्य को प्रत्येक व्यक्ति की चिकित्सा के समय उसकी विशेष स्थिति का विचार करना आवश्यक हो जाता है।

योगमासा तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्।
पुरुष-पुरुष वीक्ष्य स विज्ञेयो भिषगुत्तम ॥

सुतरा एक प्रयोग सभी पर ही लाभकारी हो, यह आवश्यक नही। एक रोगी के विभिन्न समयों मे होने वाली तथाकथित एक ही रोग की स्थिति भी एक समान नही होती। ऐसी स्थिति मे सदैव एक ही योग लाभप्रद हो, यह भी आवश्यक नही है। तब ही तो योगो द्वारा ही चिकित्सा करना अपराध कहा गया है। कौन-सा प्रयोग किस व्यक्ति के लिये उपयोगी हो सकता है—यह निर्णय करना कुशल चिकित्सक का पुनीत कर्त्तव्य है। पेटेण्ट प्रयोग किवा अनुभूत प्रयोगो को सभी व्यक्तियो मे समानरूपेण प्रयुक्त करना इस चिकित्सा अपराध मे प्राय वृद्धि करता है। किन्तु आजकल इनके उपयोग मे भी सूक्ष्म चिन्तन की आवश्यकता समझी जा रही है। एक ही रोग मे विभिन्न रसायनशालाओ द्वारा विनिर्मित विभिन्न प्रयोगो की उपयोगिता समझकर उपयोग मे लाया जाना चाहिये। तब यह अपराध नही कहा जा सकेगा। रोगी रोग की सर्वविध स्थिति को देखकर ही इन प्रयोगो की व्यवस्था करनी चाहिये। तब ही ये प्रयोग सफल सिद्ध हो सकेंगे। इन प्रयोगो के उपयोग मे आयुर्वेद के सिद्धान्त पक्ष को कभी भूलना नही चाहिये। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति पर हमें गर्व होना चाहिये जो बहुत सी विशेषताये रखकर आतुरजन के कष्टो के निवारण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। आज जो वैद्यो मे आत्मसम्मान का अभाव होता जा रहा है उसका यही एकमात्र कारण है कि वे अपने महत्वपूर्ण प्रयोगो को भूलते जा रहे है।

कौन-सी औषधि निर्माणशाला कौन-सी वनौषधि के सयोग से प्रयोग का निर्माण करती है, यह देखने के पश्चात् उस वनौषधि की मात्रा एव अन्य द्रव्यो के समवाय पर भी विचार कर लेना चाहिये। यहा पर औषधियो का एव विधविवेचन प्रस्तुत किया गया है। विस्तृत विवरण के लिए निर्माणशालाओ की विवरणिका देखनी चाहिये। समयानुकूल चाहना के अनुसार इनका इस अङ्क मे सक्षिप्त वर्णन किया गया है। वनौषधि रत्नाकर (प्रथम भाग) मे अग्निमन्थ का चित्र नही दिया जा सका था, उसे यहा सकलित किया गया है।



अग्निमन्थ (Premna integrifolia)

विभिन्न नाम : संस्कृत–अग्निमन्थ। हिन्दी–अरणी। गुजराती–अरनी। मराठी–ऐरण। लैटिन–प्रेम्ना-इन्टेग्रिफोलिया।

प्राप्ति स्थान : बंगाल, बिहार, गढवाल, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दक्षिणी भारत।

उपयोगी अङ्ग : पत्र, मूलत्वक्।

दोषकर्म : कफवातशामक।

रोगोपयोग : शोथरोग, वातरोग, मन्दाग्नि, पाण्डु आदि।

मुख्य योग : अग्निमन्थकषाय, दशमूलारिष्ट।

सर्व प्रथम सुधानिधि सपादक श्री गोपालशरणजी गर्ग का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे इस ग्रन्थ सम्पादन कर पुन पुन शास्त्रानुचिन्तन का सुअवसर प्रदान किया। उनकी सुधानिधि के माध्यम से उत्तमोत्तम साहित्य प्रदान करने की सतत लालसा—श्लाघनीय है।

गुरुजनो का शुभाशीर्वाद ही मुझे इस निमित्त सतत सामर्थ्य प्रदान करता रहा है। वस्तुतः प्रत्येक वस्तु का चाह का जनक भाव है। भाव ही बीज है। अविकारी, सशक्त एवं विशुद्ध भाव ही ईश्वर का रूप है— "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"। यह ईश्वर ही निष्ठा श्रद्धा और विश्वास से प्रकट हो भावरूप होकर गुरुजनों से प्रकट होता है। तप पूत गुरुवर्य आचार्य प्रवर डा० श्रीयुत नारायणजी कानूनगो की प्रेरणा पुनीत कृपा पल-पल में प्राप्त होती रहती है और मैं पदे-पद पुलकित होकर पुनीत होता हूँ।

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्त ।
तीर्णा स्वयं भीमभवार्णवं जना न हेतुनान्यानपि तारयन्त ॥

परमादरणीय पूज्य पिता श्री वैद्यराज रघुनाथप्रसाद जी के कर-कमलों में यह कृति समर्पित करने में स्वयं को अतीव धन्य मानता हूँ, जिनके व्यक्तित्व का यह गुणगरिमा निरूपित किये गये हैं।

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽति गम्भीरता ।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽति विज्ञानिता
कर्त्तव्ये पटुता हरौ भजनिता सत्स्वेव संदृश्यते ।

गौरव मे माता के बाद पिता का स्थान आता है—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ —मनुस्मृति २/१४५।

परम सम्माननीय पूज्य भाई जी श्री रमेशचन्द्र जी का भी पद-वन्दन करता हूँ, जिन्होंने "नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदया प्रति" का पुन पुनः पाठ पढ़ाया है।

उन मनीषियो का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने शुभ कामना सन्देश भेजकर मुझे कृतार्थ किया है। इसी प्रकार जिन्होने इस अङ्क मे अपने अनुभव प्रेषित किये हैं, उनके लिए भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और भविष्य मे भी इसी प्रकार के सहयोग की आकाक्षा करता हू, यत —

सर्वं सर्वं न जानाति सर्वमेलेन सिध्यति ।
आदान च प्रदान च विचाराणा सदोत्तमम् ॥ —अभि० म० स० सप्तशती।

अन्त मे कविकुल गुरु के शब्दो से सभी की मगल कामना करता हूँ—

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥ —विक्रमोर्वशीयम् ५/२५।

हनुमान-जयन्ती
वि० सं० २०४५

विदुषामनुचर
गोपीनाथ पारीक "गोपेश"
पचार—सीकर (राज०)

उदुम्बर [FICUS GLOMERATA]

भगवान् चरक ने कषायस्कन्ध मे उदुम्बर का उल्लेख किया है। रसानुसार द्रव्यों का विवरण प्रस्तुत करने वाली "अभिधानरत्नमाला" मे भी कषायस्कन्ध के अन्तर्गत उदुम्बर का वर्णन है। यह उत्तम मूत्रसग्रहणीय कहा गया है। जो द्रव्य वार-वार अतिप्रमाण मे आने वाले मूत्र को कम करे उसको मूत्र सग्रहणीय (यूरिन डिमिनिशर Urine diminisher) कहते है। ये द्रव्य हैं—"जम्ब्वाम्रप्लक्षवटकपीतनोदुम्बरा श्वत्थभल्लात-काश्मन्तकसोमवल्का इति दशेमानि मूत्रसग्रणीयानि भवन्ति।" —च० सू० ४/१५।

महर्षि सुश्रुत ने इसे न्यग्रोधादिगण के अन्तर्गत वर्णित किया है एवं इस गण के गुणो को इस प्रकार व्यक्त किया है—

न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्य संग्राही भग्नसाधक।
रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोपहृत्॥
—सु० सू० ३८।

आचार्य भावमिश्र ने पञ्चक्षीरी वृक्षो के अन्तर्गत उदुम्बर का वर्णन किया है। इन वृक्षो की छाल को पञ्चवल्कल कहा जाता है—

न्यग्रोधोदुम्वरा श्वत्थपारिपप्लक्षपादपा।
पञ्चेते क्षीरणो वृक्षास्तेषा त्वक् पञ्चवल्कलम्॥

भावप्रकाश निघण्टु के वटादिवर्ग मे इस औषधि का वर्णन उपलब्ध होता है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा कृत द्रव्यगुणविज्ञान मे मूत्रलादि वर्ग मे तथा इसके मूत्रसंग्र-हीय नामक उपवर्ग मे उदुम्वर का वर्णन उपलब्ध होता है।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह वटकुल (मोरेसी Maroceae) की वनौषधि है।

ऐतिहासिक महत्व—वेदो मे १५० से भी अधिक वनौषधियो का उनके गुणधर्मों तथा उपयोगो सहित उल्लेख हुआ है। अश्वत्थ, अपामार्ग के साथ उदुम्वर का भी उल्लेख मिलता है।

औदुम्वरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
—अथर्व १९/३१/१।

उदुम्वर, खदिर आदि वृक्ष यज्ञ मे काम आने के कारण यज्ञाङ्ग कहे जाते है। उदुम्वर के पर्यायो मे "यज्ञाङ्ग", नाम आया है सुतरा प० श्री चन्द्रशेखर जी कहते है।

सन्निधि यह यज्ञाङ्ग है सुरतरुसम सुखधाम।
सुमन सुदर्शन से विदित करे पूर्ण सब काम॥

नवग्रहो की शान्तिहेतु इन औषधियो की समिधाये प्रयुक्त होती है।

अर्क पलाश खदिर अपामार्गोऽथ पिप्पल।
औदुम्वर शमी दूर्वा कुशाश्च समिध क्रमात्॥
—याज्ञवल्क्य स्मृति ३०२।

साहित्यिक महत्व—३४४ ई० से षष्ठी शती के मध्य का काल गुप्तकाल के नाम से जाना जाता है। इस काल को साहित्य का स्वर्णकाल कहा गया है। इस अवधि मे सस्कृत भाषा किवा साहित्य की जितनी उन्नति हुई उतनी अन्यकालो मे नही। शूद्रक का "मृच्छकटिक", विशाखदत्त का "मुद्राराक्षस", भारवि का "किरातार्जुनीय" भर्तृहरि के "त्रय शतक" और विष्णुशर्मा का "पञ्चतन्त्र" इसी युग मे लिखे गये। विद्वानो का मत है कि महाकवि कालिदास इसी युग मे हुये। इनके अनेक काव्यो मे मेघदूत भी एक प्रसिद्ध खण्डकाव्य है। इस काव्य मे यक्ष मेघ को कहता है कि देवगिरि (आधुनिक देवगढ) को जाते समय तुम्हारे नीचे से सुगन्धित एव उदुम्वरो को पकाने वाली हवा वहेगी।

नीचैर्वास्यत्युपलिगभिपोर्देवपूर्व गिरिं ते।
शीतो वायु परिणमयिता काननोदुम्वराणाम्॥
—पूर्वमेघ० ४६।

१०१९ ई० मे परमारवशी राजा भोज हुये जो ज्योतिष, कोष, व्याकरण, धर्मशास्त्र अलङ्कार आदि विषयो के पूर्ण विद्वान् थे। इन्होने "आयुर्वेद सर्वस्व"

नामक वैद्यक ग्रन्थ की भी रचना की। वाल्मीकि वर्णित रामचरित से सुजनो को तृप्त करने हेतु इन्होने भी "चम्पू रामायण" नामक काव्य की रचना की। इस काव्य मे अनेक वनौषधियो का उल्लेख मिलता है। सीता को ढूढने मे व्यग्र जब हनुमान जी रावण की अशोकवाटिका मे आये तो वहा उन्होने बहुत वृक्ष देखे। अशोकवाटिका मे अमलतास, उदुम्बर, देवदारु, बकुल, अशोक, आंवला, कदम्ब, पीपल, आम, चन्दन, कटहल आदि के वृक्ष देखे।

—चम्पू रामायण सु० का० १६।

हिन्दी का इतिहास प्राय दशवी शदी से प्रारम्भ होता है। उस इतिहास को चार युगो मे विभाजित किया है। वे हैं—वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल। भक्तिकाल मे रामभक्ति रूप सगुणधारा के प्रधान कवि गोस्वामी तुलसीदास हुये।

सत्कथा राम की लिख पुनीत
तुमने उमडाई सुखद प्रीत,
गूजे जन मन मे शब्द मधुर
हो गये भक्ति मे जन तन्मय ॥

रामचरितमानस जैसा महाकाव्य ससार की किसी भी भाषा मे नही है। जन जीवन की भाषा मे वर्णित होने मे उसका व्यापक प्रचार हुआ है। इसमे अन्य विषयों की भांति आयुर्वेद का पदे-पदे वर्णन हुआ है। एक प्रसग मे उदुम्बर फल की उपमा देकर इसे स्मरण किया गया। लकाकाण्ड के अङ्गद-रावण सवाद प्रसग मे, अङ्गद गर्व युक्त वचन कहता है।

गूलरि फल समान तव लका।
बसहु मध्य तुम्ह जन्तु असका॥
मैं वानर फल खात न बारा।
आयसु दीन्ह न राम उदारा॥

"बसहु तुम्ह जन्तु असका" से उदुम्बर के "जन्तुफल" पर्याय की ओर इङ्गित है और मैं "वानर फल खात न बारा" वानरो को प्रिय होने का उल्लेख किया गया है। इसी भांति अन्य काव्यों मे भी उदुम्बर का वर्णन मिलता है।

नाम—

संस्कृत—उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाग, ब्रह्मवृक्ष, सदाफल, हेमदुग्धक (यद्यपि इसका दुग्ध निकलते समय श्वेत होता है किन्तु हवा लगने पर थोडी देर के पश्चात् पीला हो जाने के कारण इसे हेमदुग्धक कहा जाता है)।

हिन्दी—गूलर, गुल्लड, गुल्लर।
गुजराती—उम्बरो, उमरडो।
मराठी—उम्बर।
बंगला—यज्ञडम्बर।
तामिल—अति।
मलयालम—अति।
कन्नड़—अति।
तेलगु—अत्ति।
पंजाबी—गूलर।
राजस्थानी—गूलर।
उड़िया—डिमरी।
अरबी—जम्भैज।
फारसी—अजीरे आदम, अजीरे अहमक्।
अंग्रेजी—क्लस्टर फिग (Cluster Fig) कण्ट्री फिग (Country Fig)।
लैटिन—फाइकस ग्लोमरेटा (Ficus glomerata Roxb)।

उत्पत्तिस्थान—भारत मे प्राय सर्वत्र विशेषतया राजस्थान एव आसाम मे पाया जाता है।

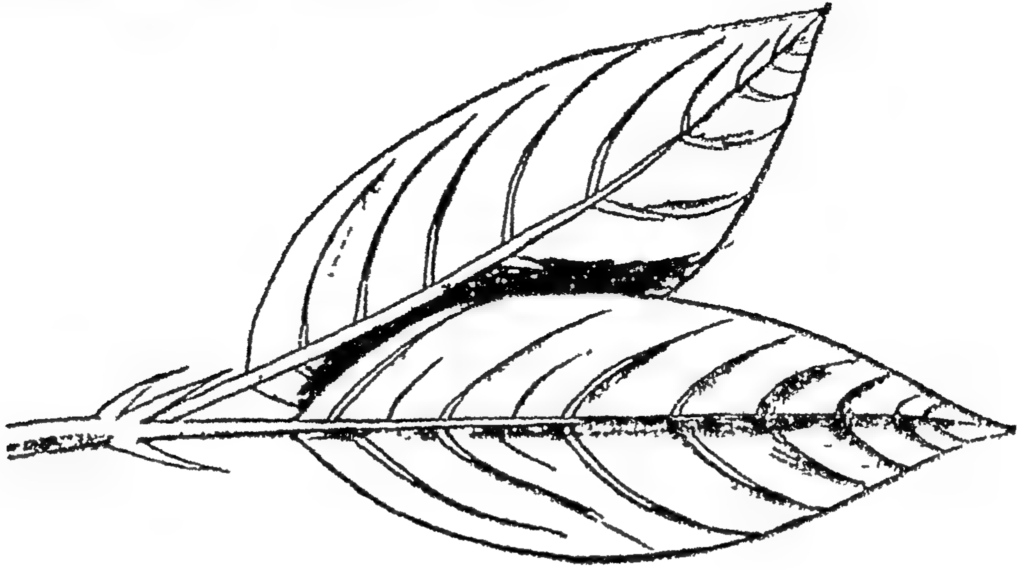
रासायनिक संघटन—इसके फल मे आर्द्रता १३ ६, अलव्युमिनायड ७ ४, वसा ५ ६, कार्वोहाइड्रेट ४९, रजक द्रव्य ८ ५, सूत्र १७ ९, भस्म ६ ५, सिलिका ० २५ तथा फास्फोरस ० ९१ प्रतिशत होता है।

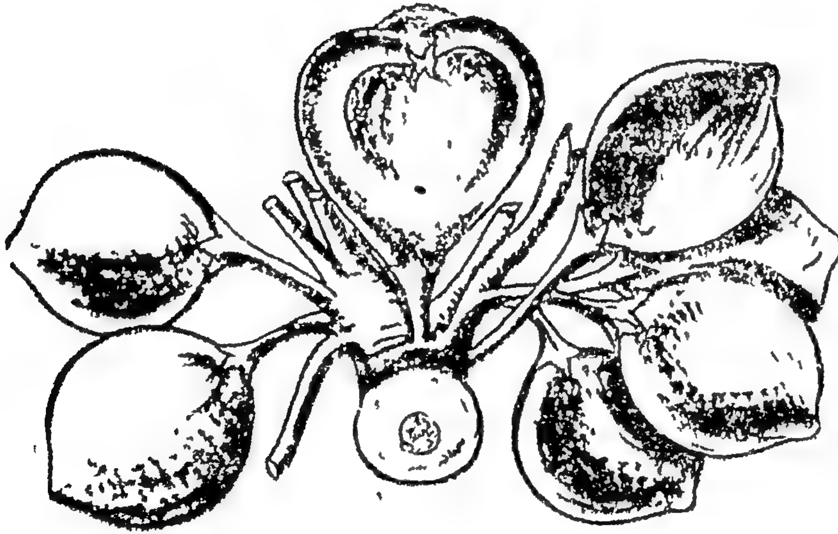
छाल मे १४ प्रतिशत होता है। दूध मे ७.४ प्रतिशत कॉउचुक (रवड) होता है।

रासायनिक सघटन के आधार पर उपयोगी अङ्ग को यथा रोग मे प्रयोग मे लाना चाहिये।

वानस्पतिक परिचय—यह क्षीरीवृक्ष सर्वदा हरित रहने वाला १०-१० मीटर तक ऊचा होता है। इसकी छाल रक्ताभ धूसर होती है। शाखायें ऊर्ध्वमुखी होती हैं।

वनौषधि रत्नाकर (द्वितीय भाग)—





उदुम्बर [Ficus Glomerata]

विभिन्न नाम : सस्कृत–उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाग, ब्रह्मवृक्ष, सदाफल। हिन्दी–गूलर, गुल्लर। गुजराती–ऊम्बरो। लेटिन–फाइकस ग्लोमरेटा (Ficus glomerata)।

प्राप्ति स्थान : भारत मे प्राय सर्वत्र, राजस्थान एव आसाम मे विशेषतया।

उपयोगी अंग : त्वक्, फल, क्षीर।

विशिष्ट योग : ऊदुम्बर सार।

दोषशमन कफपित्तज विकार।

रोगोपयोग : रक्तातिसार, प्रवाहिका, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, प्रमेह।

पत्र—३-४ इञ्च लम्बे, १।।-३ इञ्च चौडे लट्वाकार-भालाकार, किञ्चित्तीक्ष्णाग्र, तीन सिराओ से युक्त, स्निग्ध एव चमकीले होते है। ये पत्ते बड के पत्तो से मिलते [illegible] होते हैं किन्तु उनसे कुछ छोटे होते हैं।

पुष्प—गुप्तरूपेण, सूक्ष्म, पुष्पकर्णिकान्तर्गत होते हैं। इस विषय का वर्णन आगे किया जायेगा।

फल—सूक्ष्म पुष्प ही परिवर्धित होकर बडे गुच्छो मे निम्न शाखाओ पर लगते है। ये प्राय गोलाकर या गुण्डाकार, १-२ इञ्च व्यास के, मासल होते है। ये अञ्जीर के फल सदृश होते है। ये फल कच्ची अवस्था मे हरे तथा पकने पर लाल हो जाते हैं।

मार्च-जून मे फल लगते है तथा दिसम्बर-जनवरी मे नये पत्र निकलते है।

भेद—उक्त उदुम्बर के अतिरिक्त एक उदुम्बर और होता है जिसे काकोदुम्बर (कौवो का भक्ष्य जगली उदुम्बर), फल्गु (छोटे फल वाला), एव काष्ठोदुम्बर (काठ के समान कठिन फल होने से) कहा जाता है। यह भी कफ पित्त शामक है किन्तु विशेषतया कुष्ठघ्न है। इसका लैटिन नाम फाइकस हिस्पिडा (Ficus Hispida) है। प० श्री भागीरथ जी स्वामी ने काकोदुम्बर की एक छोटी जाति का भी उल्लेख किया है जिसे भूमि उदुम्बर किंवा नदी उदुम्बर कहा गया है। उन्होने व्यक्त किया है—

"उदुम्बर (यज्ञोदुम्बर), नदी उदुम्बर, काकोदुम्बर नाम से उदुम्बर तीन प्रकार के होते है। अञ्जीर भी काकोदुम्बर की जाति मे ही है। यज्ञोदुम्बर का वृक्ष बडा होता है। इसका दूध कागज पर सूखने से पीताभ मालूम होता है। इसके पक्व फलो मे उडने वाले भुनगे (कीडे) होते है। पत्ते चिकने और बडे होते है। नदी उदुम्बर (नदी गूलर) नदी के किनारे पर होते हैं। इसके वृक्ष छोटे होते है। इसी प्रकार पत्ते फल गूलर से छोटे-छोटे आकार मे यज्ञोदुम्बर के समान होते है। कहीं-कहीं [illegible] के किनारे के वृक्ष मोटे होकर शाखा जमीन पर ही [illegible] है। इस प्रकार के वृक्ष बिहार मे वृक्ष पाये जाते है। [illegible] यज्ञोदुम्बर से न्यून माने जाते है, यह [illegible] है। यह [illegible] प्रकार का विष है। काकोदुम्बर यज्ञोदुम्बर की तरह बहुत बडा नही होता है किन्तु आकार मे ३ गज के लगभग ऊचा अनेक शाखा विशिष्ट होता है। पत्ते झालरदार खरखरे चौडे ८-१० इञ्च लम्बे होते है। शाखाओ तथा पत्तो के तोडने से दूध निकलता है। लकडी पोली होती है। फल ठीक यज्ञोदुम्बर (गूलर) के समान होते है। बङ्गाल आदि मे इसके कच्चे फलो का शाक खाया जाता है। इसमे फूल नहीं होते है किन्तु केवल फल ही होते हैं।

—सन्दिग्ध निर्णय बनो० शा०

काकोदुम्बर (कठगूलर)—

रस—तिक्त, कषाय। **गुण**—रूक्ष, लघु। **वीर्य**—शीत। **विपाक**—कटु।

दोष कर्म—यह तिक्त कषाय और रूक्ष होने से कफ का तथा तिक्त कषाय एव शीत होने से पित्त का शमन करता है।

प्रयोज्य अङ्ग—मूलत्वक् फल, क्षीर।

मात्रा—त्वक् चूर्ण १-३ ग्राम।

गुण धर्म—

काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलयूर्जघने फला।
मलयू स्तम्भकृत्तिका शीतला तुवरा जयेत्॥
कफपित्तव्रणश्वित्रकुष्ठपाण्ड्वर्शकामला ।

—भा० प्र० नि०।

यह कुष्ठघ्न, व्रण शोधक एवं शोथहर होने से इन रोगो मे उपयोगी है। कुष्ठ, श्वित्र आदि रोगो मे मूलत्वक् एव दूध का लेप करने से लाभ होता है। दूध लेखन किंवा स्फोटजनन होने से दद्रु रोग मे लेप करने से इस रोग का शमन होता है। इसके क्वाथ से व्रण धोने से व्रण का शोधन होता है। गडमाला पर पक्व फल पीसकर लगाने से शोथादि कम होते हैं।

फल पित्तसारक होने से कामला मे तथा रेचक होने से अर्श, आध्मान एव उदररोगो मे लाभप्रद है। रक्त प्रसादन होने से रक्त विकारो मे एव शोथहर होने से शोथ मे यह हितकर है। इसका पक्व फल रक्त स्तम्भक है अतः रक्तपित्त मे इसका स्वरस देना चाहिये। पक्व फल स्तन्यजनन होने से प्रसूता स्त्रियो मे स्तन्य की न्यूनता मे प्रयोग मे लाना चाहिये। इसकी छाल का क्वाथ विषम

ज्वर मे हितकर है। ज्वर के बाद की दुर्बलता मे मूलत्वक् के चूर्ण को काम मे लाना चाहिये। विशेषतया यह कुष्ठ की औषधि है। सुश्रुतसहिता के चि० अ० ९ मे विधि वर्णित है।

श्वित्ररोगी को इसका क्वाथ पिलाकर धूप मे बैठावे। इससे श्वित्र मे फोडे उठेंगे। उन्हे फोडकर उन पर चीते या हाथी के चर्म की भस्म को तैल मे मिलाकर लेप करे। इससे श्वित्र अच्छा होता है।

कुक्कुरविष मे ३ ग्राम मूलत्वक् और १ ग्राम धतूरबीज पीसकर तण्डुलोदक से दे।

काकोदुम्बरमूलन्तु धुस्तूरफलान्वितम्।
पिबेत्तण्डुल तोयेन सारमेयविषापहम् ॥
—वङ्गसेन।

अपुष्प वनौषधि—एक विचार

चरकसहिता के प्रथम अध्याय श्लोक ७२ की टीका मे चरकचतुरानन चक्रपाणिदत्त ने कहा है—"फलैर्वनस्पतिरिति विना पुष्पैः फलैर्युक्ता वटोदुम्बरादय.। यदुक्त हरीते तेषामपुष्पा फलिनो वनस्पतय इति स्मृता इति।" इसी प्रकार सुश्रुत सहिता के प्रथम अध्याय सूत्र २८ के "अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतय" की व्याख्या मे डल्हणाचार्य ने कहा है कि—"अपुष्पा इति अविद्यमानपुष्पा, फलवन्त इति फल येषामस्ति ते वनस्पतय इति, के पुनरीदृशा.? प्लक्षोदुम्बरादय।" इस पर आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला सपादक आचार्य श्री यादवजी ने अपनी टिप्पणी "अपुष्पा इति अदृश्यपुष्पा इत्यर्थ." कहकर इस विषय को अधिक स्पष्ट किया है। इन वृक्षो मे फल की प्रारम्भिक अवस्था मे जो सूक्ष्म अकुर फूटते हैं उन्हे चीरकर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता से देखने पर अतिसूक्ष्म पुष्प दृष्टिगोचर होते हैं। ये अकुर किंवा पुष्पाधार (Receptacles) बडे होने पर फल रूप मे परिवर्तित हो जाते है। सुतरा इनमे पुष्प दिखाई नही देते हे। प्राच्य वैज्ञानिको को यह सब ज्ञान था, तब ही तो उदुम्बर को अन्त.पुष्प एव अश्वत्थ को गुह्यपुष्प कहकर पुकारा गया है। महर्षि वात्स्यायन कामसूत्र मे वर्णन करते है कि विना ऋतुस्राव के जो स्त्री गर्भवती हो जाती है वह अन्त पुष्पा है। इस अन्त पुष्पा के वर्णन मे उन्होने पनस, उदुम्बर आदि का उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उदुम्बर मे पुष्प तो होते है किन्तु वे दिखाई नही देते है—

द्वादशाब्दे व्यतीते तु यदि पुष्प वहिर्न हि।
अन्त पुष्प भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत् ॥

गूलरगुण विकास के रचयिता प० श्री चन्द्रशेखरधर शर्मा ने कहा हे कि "गूलर के पेडो मे विचकिल (वेला) के फूल के समान फूल भी होते है जो सवको नही देख पडते। कभी-कभी भाग्यवान् को मिल जाते हे। विद्वच्छिरोमणि परमपद प्राप्त पण्डित नकछेदरामजी द्विवेदी के भतीजे तथा पण्डित रुद्रदत्तजी द्विवेदी के पुत्र काशीप्रवासी प० काशीनाथ द्विवेदी, दो घण्टो के लिए ही दो फूल देख पाये, जिनके दो फल भी आपको मिले। परसण्डी रियासत जिला सीतापुर मे पहले एक साधारण गृहस्थ को गूलर का फूल मिला जिसके प्रभाव से आप अच्छे जमीदार हो गये। फिर एक और फूल मिला जिससे आप राजा हो गये। दोनो फूल सोने के सम्पुटो मे अब तक वहा रखे है।"

इसके पुष्पाधार मे ही गालवास्प (Gall Wasp) नामक सूक्ष्म जन्तु होते है। ये जन्तु ही फल की वृद्धि मे कारणभूत होते है। ते जन्तु इसके भीतर ही उत्पन्न होते हैं। तव ही तो उदुम्वर को "जन्तुफल" नाम दिया गया।

अव इसके गुण-धर्म का विवेचन किया जा रहा है—

रस—कषाय, मधुर।

गुण—गुरु रूक्ष।

वीर्य—शीत।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—कफ-पित्त शामक।

प्रयोज्य अङ्ग—त्वक्, फल, क्षीर (दुग्ध)।

मात्रा— चूर्ण—३-६ ग्राम।
क्वाथ—५०-१० मि० लि०।
क्षीर—५-१० वूद।

हानिकारक—अधिक मात्रा मे फल आध्मान करते है।

दर्पनाशक—अनीसून और सिकजवीन।

गुण प्रकाशिका संज्ञा—शीतवल्कल, शीतफल, सौम्य।

गुण-धर्म—

उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरु पित्तकफास्रजित्।
मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपण ॥
—भा० प्र० नि०।

उदुम्बरो हिमो व्रण्यो गुरु पित्तकफास्रनुत्।
—म० वि० निघण्टु।

उदुम्बर कषाय स्यात् पक्व तु मधुर हितम्।
कृमिकृत् पित्तरक्तघ्न मूर्च्छादाहतृपापहम् ॥
—धन्व० निघण्टु।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधाना फलानि च।
कषायमधुराम्लानि वातलानि गुरूणि च ॥
—चरक० सू० २७।

उदुम्बर श्रेष्ठतम- पयस्विनामनोकहाना स हि देहिना- हित ।
हिम कषाय. कफपित्तशामक द्रवोपशोषी रुधिरावरोधक ॥
मलातिसारे रुधिरप्रवाहिणे प्रमेह रोगे प्रदरे प्रवाहणे।
गदेऽर्शसि स्रावयुते व्रणादिषु प्रशस्यतेऽसौ भिषजामुदुम्बर ॥
—प्रियनिदान।

कफपित्त शामक होने से उदुम्बर प्राय सभी प्रमेहो मे लाभप्रद है। श्री गोविन्ददास भिषग्वर ने कहा है—"गन्चान्यच्छ्लेष्मपित्तघ्न वहिरन्तश्च तद्धितम्।" शास्त्रोक्त न्यग्रोधादि चूर्ण प्रमेह की प्रमुख औषधि है। प्रमेह के पथ्यो मे विश्वनाथ कविराज ने उदुम्बर का उल्लेख किया है। वहुमूत्र की उदुम्बर प्रमुख औषधि है। प्रसिद्ध "वहुमूत्रान्तक रस" तथा "हेमनाथ रस" का तो निर्माण ही उदुम्बरफलस्वरस मे होता है। इसके अतिरिक्त वहुमूत्र सोमरोगाधिकारोक्त "तारकेश्वर रस" एव "तालकेश्वर रस" भी उदुम्बर फल के साथ ही प्रयुक्त होते है। इनके वर्णन प्रसग मे कहा गया है—

उदुम्बर फलं पक्व चूर्णित कर्षमात्रकम्।
सलिह्यान्मधुना सार्धमनुपान सुखावहम् ॥
—रसेन्द्र चिन्तामणि ६।

उक्त रसो मे से उचित रस की योजना करनी चाहिए। २५० मि० ग्रा० रस के साथ पक्व उदुम्बर फल चूर्ण १-२ ग्राम मिलाकर मधु के साथ देना वहुमूत्र मे लाभप्रद है।

प्रमेह के उपद्रव निम्नाकित कहे गये है—

उपद्रवास्तु खलु प्रमेहिणा तृष्णातीसारज्वरदाह दौर्बल्यारोचकाविपाका पूतिमासपिडिकालजीविद्रध्यादयश्च तत्प्रसङ्गाद्भवन्ति। —चरक० नि० ४/४८।

उदुम्बर मे इन सभी उपद्रवो को प्राय शान्त करने की क्षमता है। जिसका यथा प्रसग वर्णन किया जायेगा। तृषा (पिपासा) वहुमूत्र का प्रमुख उपद्रव है। उदुम्बर को तृष्णा शामक कहा गया है—

पर्यागतोदुम्बरजो रसस्तु।
सशर्करस्तत्क्वथितोदक वा ॥
—सुश्रुत० उ० ४८/२२।

पर्यागतोदुम्बरजो रस इति पक्वोदुम्बरस्वरस। तत्क्वथितोदक पक्वदुम्बरक्वथितजलम्। —डल्हण।

कविराज एस० एन० वोस ने (स० आ० मधुमेहाङ्क) मे मुख्यतया पाच औषधि द्रव्य मधुमेह मे हितकर कही है जिनमे द्वितीय औषधि उदुम्बर को कहा है और वर्णित किया है कि उदुम्बर का वग देश मे विशेष प्रचलन है।

प्रमेह पिटिकाओ पर उदुम्बर दुग्ध मे वाकुची बीज चूर्ण मिलाकर लेप करना हितावह कहा गया है—

क्षीरमौदुम्बर यत्नाद्वाकुची च प्रयोजयेत्।
पिटिकासु समस्तासु लेपन सप्रशान्तये ॥
—योगरत्नाकर।

स्त्री रोगो मे उदुम्बर सोमरोग, प्रदर, योनिव्यापत् रोगो के अतिरिक्त गर्भपात निवारणार्थ, गर्भधारणार्थ एव अपरापातनार्थ भी प्रयुक्त होता है।

क्षौद्रयुक्त फलरसमौदुम्बरभत्र पिवेत्।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥
—भावप्रकाश।

सलाक्षा कदलीकन्द जम्वूदुम्वरयोस्त्वचौ।
नारिकेलप्रसूनञ्च क्वाथ प्रदरदाहहा ॥
—क्वा० म० मा०।

उदुम्बरत्वग्रजनितेन चारु
फाण्टेन साक किल गोलिकेयम् ।
एकापि रक्तप्रदर वधुना-
मपाकरोतीत्यनुभूतमास्ते ॥
सदाफलस्योत्पल चूर्णकेन
सितायुत श्रीफलपानकेन ।
सञ्जीवनी भामिनी भक्षितैका
हणाति रक्त प्रदर ध्रुवेण ॥
हेमदुग्धस्य दुग्धेन मुग्धे सञ्जीवनी वटी ।
तत्पञ्चाङ्गरसेनापि श्वेतप्रदरहारिणी ॥
—सञ्जीवनी-साम्राज्यम् ।

योनि गाढीकरणे—

पलाशोदुवरफलैस्तिलतैलसमन्वितै ।
मधुना योनिमालिंपेद्गाढीकरणमुत्तमम् ॥
—शाङ्गधर महिता ।

योनि दौर्गन्ध्यहरणे—

पञ्चपल्लवयष्टयाह्वमालतीकुसुमैर्घृतम् ।
रविपक्वमन्यथा वा योनिगन्धविनाशनम् ॥

गर्भपात निवारणार्थ—

उदुम्बरक्वाथयुत सिताढ्य
सुगन्ध शालिप्रभव सित च ।
या पिष्टमश्नाति न गर्भपात-
पीडामसौ विन्दति जातु नारी ॥
—गदनिग्रह ।

गर्भ धारणार्थ—

बन्दारुमौदुम्बरमादरेण
बध्याङ्गना पुष्प विशुद्धि वारे ।
पूर्वं विरिक्ता लभते कुमार
छागस्य दुग्धेन सह प्रपीत्य ॥
—वैद्य मनोरमा ।

अपरापातनार्थ—

चर्म'''उदुम्बरस्य वा
पिष्टं तुषाम्बुना पीतमपरा पातयेत्क्षणात् ॥
—वैद्य मनोरमा ।

उदुम्बर का आमफल दीपन, रोचन तथा पक्वफल श्रम शोथहारी है—

औदुम्बर फलमतीव हिम सुपक्व
पित्तापह च मधुर श्रमशोफहारी ।
आम कषायमिति दीपनरोचनञ्च
मासस्य वृद्धिकरमस्रविकारहारि ॥ —राजनिघण्टु ।

इसकी छाल नारीदुग्ध के साथ देने से तीक्ष्णाग्नि का शमन होता है—

नारीस्तन्येन सयुक्ता पिवेदौदुम्बरी त्वचाम् ।
आभ्या वा पायस सिद्ध दद्यादत्यग्निशान्तये ॥
—चक्रदत्त ।

रक्तातिसार, प्रवाहिका और ग्रहणी मे छाल का क्वाथ लाभप्रद है तथा कच्चे फलो का शाक हितकर है। बच्चो के अतीसार तथा दन्तोद्भेद मे दूध उपयोगी है।

उदुम्बर'''आदि पल्लवा ।
कपाया स्तभना शीता
हिता पित्तातिसारिणाम् ॥ —चरक ।

यथा सृतिहर भृष्ट खारवसामलयो रज ।
उदुम्बरपयोबद्धा विजयावटिका तथा ॥
—सि० भै० मञ्जूषा ।

उदुम्बरशलाटून स्विन्नानि जलवास्पत ।
दध्ना विनीय भुञ्जीत ग्रहणी ग्लपितोनर ॥
—सि० भै० मणिमाला ।

सञ्जीवनीय गुडमिश्रविश्वा चूर्णेन युक्ता किलपचपर्णे ।
सवेष्टितश्रीफलपेशिकाया क्वाथेन मर्व ग्रहणी हिनस्ति ॥
—स० साम्राज्यम् ।

रक्तपित्त मे इसकी छाल और फल लाभप्रद कहे गये हैं—

पक्वौदुम्बरकाश्मर्यपथ्याखर्जूरगोस्तनी ।
मधुना घ्नन्ति सलीढा रक्तपित्तं पृथक्-पृथक् ॥
—यो० र० ।

उदुम्बरफल पिष्ट्वा पिवेतद्रसमेव वा ।
—सुश्रुत० उ० ४५/२३ ।

उदुम्बरफल पिष्ट्वा तद्रस गृहीत्वा मधुयुत पिवेत् ।
—डल्हण ।

दाहरोग मे इसका पक्वफल परमोपयोगी है। निम्नाङ्कित उदुम्बरादि औषधियो का सघृत लेप भी दाह को शान्त करने मे श्रेष्ठ है—

शिरीषोदुम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोधवत्सकै ।
प्रलेप सघृत शीघ्र व्रणवीसर्पदाहहा ॥
—वृ० माधव ।

कर्णपालि के "दह्यमान" रोग मे भी पञ्चवल्कल और मुलहठी का समधु लेप हितावह कहा गया है—

पञ्चवल्कै समधुकै पिष्टैस्तै च घृतान्वितै ।
जीवकाद्यै ससर्पिष्कैर्दह्यमान प्रलेपयेत् ॥
—सुश्रुत० सू० १६/१६ ।

पञ्चवल्कल का सघृत लेप व्रणशोथादि सभी प्रकार के शोथो का शमन करता है—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलै ।
सर्पिष्कै प्रलेप स्याच्छोथनिर्वापह पर ॥
आगन्तौ शोणितोत्थे च एष एव क्रियाक्रम ॥
—भै० र० ।

पञ्चवल्कलै समभागपिष्टै घृतमिश्रैर्लेप पैत्तिक शोथं हन्ति । —कवि० श्री नरेन्द्रनाथ ।

इसके क्वाथ से व्रणशोथादि का धोना भी हितावह है—

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवेतसज शृतम् ।
व्रणशोथोपदशाना नाशन क्षालनात्स्मृतम् ॥
—शा० सहिता ।

यह योग भावप्रकाश, वृन्दमाधव एव योगरत्नाकर मे भी है ।

व्रणशोधन ही नही इसके चूर्ण अवधूलन से रोपण भी होता है—

पञ्चवल्कल चूर्णैर्वा शुक्ति चूर्णसमायुतै ।
धातकीलोध्रचूर्णै वा तथा रोहन्ति ते व्रण ॥
—चरक० चि० २५ ।

महर्षि सुश्रुत भी व्रणरोपणार्थ कषायादिको का उल्लेख करते है—

कषायाणामनुष्णाना वृक्षाणा त्वक्षु साधित ।
शृत शीषकषायो वा रोपणार्थ प्रशस्यते ॥
—सु० सू० ३६/२३ ।

कषायाणामिति कषायरसानाम् । अनुष्णानामिति शीताना, तेन न्यग्रोधोदुम्बरादीनामिह ग्रहणम् । शृत क्वथित । शीषकषायो रात्रिस्थितकषाय उच्यते ।
—चक्रपाणि (भानुमती व्याख्यायाम्) ।

नेत्रगत दाहशूलादि के निवारणार्थ उदुम्बर फल लौह पात्र से नारीदुग्ध मे घिसकर घृत शमीपत्र का धूप देना चाहिए—

उदुम्बरफल लौहघृष्ट स्तन्येन धूपितम् ।
साज्यै शमीच्छदैर्दाहशूलरागा श्रुहर्षजित् ॥
—अ० हृ० उ० १६/३७ ।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे मे गरम और पहले दर्जे मे तर है । कुछ लोगो के मत से यह सर्द और तर है । इस पेड का फल पेट मे फुलाव पैदा करता है । यह सूखी खासी, सीने का दर्द, तिल्ली और गुर्दे के दर्द मे मुफीद है । आख की बीमारियो मे भी इसके फल खाने से अच्छा लाभ होता है । अगर वर्षभर मे १०-२० दफे इसके फल खा लिए जाय तो वर्षभर मे नेत्ररोग होने का डर नही रहता । इसकी तरकारी बनाकर रोटी के साथ खाने से बवासीर से जाने वाला खून बन्द हो जाता है । इस पेड के पचाङ्ग का काढा बनाकर उसमे मधुकर मिलाकर पीने से खासी और दमा मे लाभ होता है । खासी के लिए यह एक आजमूदा चीज है । इस वृक्ष का दूध लगाने से कठिन सूजन भी बिखर जाती है । इसकी छाल को पानी मे पीसकर पीने से जहर का असर दूर हो जाता है ।

एक यूनानी हकीम के मतानुसार उदुम्बर खून की खराबी, बेहोशी और गरमी को मिटाता है । यह भूख को बढाकर शरीर को पुष्ट बनाता है अत यह गर्भवती स्त्रियो के लिए बहुत ही लाभप्रद है । गर्भपात मे भी यह लाभप्रद है । गर्भपात ही क्या सभी प्रकार के रक्तस्रावो की यह उत्तम औषधि है । अधिक लाभ के लिए फल प्रयोग के साथ अन्तरत्वक् का भी प्रयोग करना चाहिए । छाल का फाण्ट अत्यधिक रक्तस्राव मे हितावह है ।

प्रमेह एव मधुमेह मे भी उदुम्बर फल बहुत लाभप्रद है । ये फल पौष्टिक होने से धातु की कमजोरी को भी मिटाते है । चेचक मे शरीर की जलन कम करने के लिए इन फलो का प्रयोग होता है । इसका दूध रक्तातिसार में लाभप्रद है । दूध मे उदुम्बर दुग्ध की ५-१० बूदे मिलाकर पीने से बालशोष एव तज्जन्य उपद्रवो की शान्ति होती है । कण्ठमाल, बदगाठ, शोथ तथा फोड़े-फुसियो

पर उदुम्बर दुग्ध के वाह्य प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। कमर के दर्द मे कमर पर तथा श्वासरोग मे छाती पर यह दुग्ध लगाने से इन रोगो मे लाभ होता है।

उदुम्बर मूलत्वक् अतीसार मे प्रयुक्त होती है। मूल-स्वरस शीतल, स्तम्भक और उत्तम पौष्टिक है। रक्तस्राव रोगो मे भी यह लाभ करता है। सुजाक मे इसे देने से मूत्र नलिका की सूजन कम होती है।

आधुनिक मतानुसार—यह ग्राही, पाचक, रक्त-स्रावहर है। गले के रोगो मे उदुम्बर दूध मे तिल का तैल मिलाकर लगाते है। तामिल के डाक्टर मधुप्रमेह मे इसके मूल का रस उपयोग मे लाते है और रक्तस्राव मे भी देते हैं इसके पत्तो के स्वरस की इन्द्रिय मे पिचकारी देने से सुजाक मे वहुत लाभ होता है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार इसकी छाल का शीत निर्यास और इसके पत्ते सकोचक है। मसूडे के रोगो मे इन्हे कुल्ले करने के काम मे लेते है। पेचिस, प्रदर और मुख से कफ के साथ खून निकलने की बीमारी मे इनको पिलाने से अच्छा लाभ होता है। इसका फल वहुमूत्र रोग की उत्तम औषधि मानी जाती है। इसका दूध कटि-शूल, आमवात आदि मे वाह्यप्रयोगार्थ उपयुक्त है।

कर्नल कीर्तिकर और वसु के मतानुसार शेर या बिल्ली के द्वारा मनुष्य या जानवरो के शरीर पर जो घाव हो जाते है उनके विष को दूर करने मे इसकी छाल लाभप्रद है। इसके पत्तो को पीसकर मधु के साथ देने से पित्तजन्य रोग नष्ट होते हैं। इसके पत्तो पर छोटी-छोटी ग्रन्थिया होती है उनको दूध मे पीसकर मधु के साथ मिलाकर देने से चेचक के व्रणो मे पूय (मवाद) होने का भय नही रहता है। इसका फल सकोचक, अग्निवर्धक, रक्तस्राव हर है। इसका दूध ववासीर और अतीसार मे उपयोगी है। दूध मे तिल तैल मिलाकर लगाने से नासूर मे लाभ होता है। ताजा दूध वहुमूत्र और मूत्रनलिका सम्वन्धी अन्य रोगो मे लाभप्रद है।

आर० एन० खोरी के मतानुसार यह कषाय, आध्मानहर, वायुनाशक एव पाचक है। यह रक्तप्रदर, रक्तपित्त तथा रक्तवमनादि मे हितकर है। इसके मूल का रस, चीनी या काला जीरा मिलाकर सुजाक मे व्यवहृत होता है। मूल क्वाथ मुखपाक मे, श्वेतप्रदर मे वस्तिप्रयोग तथा क्षतधोवनार्थ प्रयोग करते है। इसका दूध रसायन हे तथा वल लाभ के लिए उत्तम है। सधि-वात, वातजन्य सूजन, कर्णमूलादि मे इसके दूध को रुई के अन्दर रखकर चिपका देते है।

उदुम्बर से स्वास्थ्य रक्षा—कहते है कि उदुम्वर पकने के दिनो मे यदि १०-१२ वार फल खा लिया जाय तो वर्षभर किसी प्रकार का नेत्ररोग नही होता। साथ ही ऐसा करने से मधुमेह एव मूत्र सम्वन्धी विकार भी उत्पन्न होकर शरीर को कष्ट नही देते।

गर्भिणी को इसके कच्चे फलो की खीर बनाकर खिलाने से गर्भस्राव की आशंका नही रहती। उदुम्वर के फलो का या त्वचा के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर पीने से अथवा सुगन्धित चावलो को पीसकर फलो के क्वाथ मे चीनी के साथ मिलाकर पीना ही गर्भस्रावनिवारणार्थ लाभप्रद है। राजनिघण्टुकार ने इसकी छाल को गर्भवती के गर्भ की रक्षा के लिए एव स्तनो मे दुग्ध वृद्धि के लिए विशेष उपयोगी कहा है।

अनुसन्धान एवं विद्वानों के विशेष मन्तव्य

(१) सुधानिधि निदान चिकित्सा विज्ञानाक द्वितीय भाग मे अर्बुद नामक लेख के लेखक आचार्य प्रवर श्री विश्वनाथजी द्विवेदी ने ऐसी औषधियो की सूची दी है जिनमे कैंसर विरोधी तत्व पाये जाते हैं। इस सूची मे कुल ५८ औषधियो का उल्लेख किया गया है जिनमे क्रमाक चार पर उदुम्वर को भी लिखा है।

(२) स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र वनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय के अनुसन्धान विभाग ने विभिन्न रोगो पर परीक्षण कर जिन औषधियो को उपादेय पाया है, उनमे एक यह उदुम्वर भी है।

अनेक महिला रुग्णाओ मे निरन्तर चिकित्सा लेते रहने पर भी योनिगत स्राव वन्द नही होता और यह रोग निरन्तर वना रहता है। ऐसी रुग्णाओ के परीक्षण पर यह पाया गया कि उनके गर्भाशय के मुख पर अकुरोत्पादन हो जाता है। इस रोग को आयुर्वेद में कर्णिनी

योनि योग कहा जाता है। इस प्रकार की सभी रुग्णाओ का इतिहास एकत्रित कर यन्त्रो की सहायता से पूर्ण परीक्षण किया गया तथा अकुरो के उभारो का विशिष्ट केलिपर्स की सहायता से नापा गया तथा उनकी मोटाई को भी नापा गया। गर्भाशय ग्रीवा का भी अग्रपाश्चात्य एव तिर्यक् नाप भी लिया जाकर अकित किया गया।

उदुम्बर सार, धातकी पुष्प एव मधुयष्टि चूर्ण से निर्मित घृत की पिचु मासिकधर्म के पाचवे दिन से पन्द्रह दिन तक निरन्तर रखी गई। एक सप्ताह के प्रयोग के पश्चात् पुन अकुरो को नाप लिया तथा चिकित्सा जारी रखी गई, उक्त प्रयोग के परिणाम बहुत उत्साहवर्धक रहे।

—वैद्य श्री प्रहलादराय जी देवाश्री द्वारा
आयुर्वेद प्रकाश अगस्त ७६ से।

(३) रक्तगतशर्करा को कम करने वाली भारतीय ५६ वनस्पतियो का अध्ययन खरगोशो पर किया गया जिनमे इनके सम्पूर्ण सत्वो का मुख द्वारा उपयोग किया गया। इनमे से प्याज, हसराज, गूलर (छाल), गुडमार, करेला (कच्चे फल), केला (फूल) कुमुद (मूल), चीड (मूलत्वक्) एव जामुन (फल, वीज) मे आशादायक परिणाम पाये गये।

—एस० आर० जैन एवं
एस० एन० शर्मा प्लैंटामेडिका १५-४-६७ द्वारा
वा० अनु० दर्शिका १९६६-६८—
डा० श्री चुनेकर।

(४) औरङ्गजेबी फोडा या आलमगीरी (Oriental Sore) के लिए गूलर महौपधि है। मेरे पिताजी [डा० बुद्धिप्रकाशजी आर्य] कच्चे गूलरो को दही मे पिसवाकर व्रण पर गाढा लेप लगवाकर पट्टी बधवा देते हैं। ३-३ घण्टे वाद पट्टी बदलते रहते हैं, उससे व्रण का दाह तुरन्त शान्त हो जाता है और व्रण भी शीघ्र ही ठीक हो जाता है। यह अनेक रोगियो पर परीक्षित है।

—श्री वेदमित्रजी आर्य द्वारा
धन्वन्तरि मई ६० से।

(५) फुफ्फुस के खोखलेपन (Cavity) को भरने तथा रक्तष्ठीवन को वन्द करने के लिए गूलर के हलुवे में च्यवनप्राश से भी वढ़कर जो पावन गुण विद्यमान है वह आपको अन्यत्र नही मिलेगा। इसके सेवन से कई द्वितीयावस्था तक के रोगी आरोग्य लाभ कर चुके हैं।

—आयुर्वेदाचार्य डा० श्री सत्यनारायण
धन्वन्तरि जून ६९ एवं जन० ७७ से।

(६) सहिताओ मे वहुत से एकौपधो एव योगो का वर्णन है जिनसे प्रमेह रोग दूर होता है। ऐसी फल श्रुति है। उन्ही मे से कुछ औपधियो पर तथा कुछ नवीन वनस्पतियो पर भी प्रमेहघ्नता के दृष्टिकोण से विभिन्न स्थानो पर कार्य हुये हैं और हो रहे हैं। आवर्तकी, विम्वी, जम्वूवीज, उदुम्वर, गुडमार, कारवेल्लक, विजयसार तथा गुडूची पर कई वैज्ञानिको ने कई स्थानो पर कार्य किये हैं। इनका प्रमेहघ्न प्रभाव शास्त्रो मे वर्णित है।

—वैद्य श्री शिवचरण जी ध्यानी
सचित्र आयुर्वेद सितम्वर ७५ से

(७) आयुर्वेद शास्त्र मे जो औपधि द्रव्य मधुमेह में हितकर वताये गये है उनमे उदुम्वर भी प्रमुख है। उदुम्वर का विशेप प्रचलन वङ्गदेश मे है। पक्व उदुम्बर फल या वीज चूर्ण के अनुपान से तारकेश्वर रस का प्रयोग वङ्गदेश मे वहुत प्रचलित है।

—कविराज श्री एस० एन० वोस
सचित्र आयुर्वेद मधुमेहाक से

(८) कफज हृद्रोग मे हृत्पेशी को सुचारुरूप से भोजन ऊर्जा शक्ति नही मिल पाती प्राय हृत्वाहिनी शोथ इसके कारण है। इस अवस्था मे हृदय के लिए वल्य उत्तेजक एव हृदयगति नियामक द्रव्यो का प्रयोग करने का निर्देश है। उदुम्वर कटु विपाकी, कफ शामक मेदोहर एव हृद्य होने से उक्त हृदयरोग मे उपयोगी द्रव्य है।

—डा० श्री ओ० पी० उपाध्याय
आयुर्वेद विकास जन० ८४ से

(९) क्षीरी वृक्षो के कपाय को उत्तर वस्ति द्वारा मूत्राशय मे प्रविष्ट कर उसके साथ अश्मरी चूर्ण को तथा वस्ति से सचित रक्त को वाहर निकाल लें। (सुश्रुत० चि० ७/३४) इसी आधार पर मैंने उदुम्वर क्वाथ का प्रयोग उष्णवात मे विशेपकर मूत्राशय अश्मरी आदि से उत्पन्न सिस्टाइटिस मे उत्तरवस्ति के रूप में

विभिन्न ५३ रोगियो मे किया जिससे उन समस्त रोगियो मे बहुत ही अच्छा निष्कर्ष निकला। जिन रोगियो मे कई बार मूत्राशय मे अश्मरी का निर्माण हो चुका था, वे बार-बार शल्यक्रिया द्वारा अश्मरी बाहर निकलवाते थे, उनमे उत्तरवस्ति देने से अश्मरी का पुन निर्माण नही हुआ।

उदुम्बर वृक्ष की छाल २५० ग्राम ताजी लेकर स्वच्छ करके उसके छोटे-छोटे टुकडे करके आठ गुने जल मे डालकर उबालते है। जब जल चौथाई शेष रह जाता है तब उसे उतारकर साफ कपडे से छान लेते है। ठण्डा होने पर यह क्वाथ उत्तरवस्ति के लिए प्रयोग मे लाया जाता है।

उत्तरवस्ति देने के लिए पहले विसक्रमित किये गये कैथीटर को रोगी के मूत्रमार्ग से मूत्राशय मे डालते है। फिर उस कैथीटर से उक्त उदुम्बर क्वाथ को ५० मि० लि० की सिरिंज मे भरकर मूत्राशय मे डालते है एव उसी कैथीटर से बाहर निकाल लेते है। इस प्रकार की क्रिया कई बार करते है जिससे मूत्राशय उदुम्बर क्वाथ से प्रक्षालित हो जाता है।

उदुम्बर कषाय रस होने के कारण पित्तशामक तथा एण्ट्रेन्सेण्ट है जिससे यह मूत्राशय मे एण्टीसैप्टिक का कार्य करता है। मूत्राशय का शोधन करता है। यह देखा गया है कि जिन रोगियो मे एक से दो सप्ताह तक नियमित उदुम्बर की उत्तरवस्ति दी गई तो रोगियो का Bladder Tone बढ जाता है, जिससे मूत्र त्याग तेजी से होता है और मूत्राशय का प्रक्षालन अधिक अच्छा हो जाता है। इससे भीतर के व्रणो का रोपण होता है। इसके प्रयोग से किसी भी प्रकार के जीवाणु या विजातीय पदार्थ मूत्राशय मे नही रुक पाते।

—डा० श्री पी० आर० अवस्थी
सुधानिधि जून ८२ से

(१०) उत्तम शोणित ही आरोग्य का मूल है। रक्त के निर्माण मे रासायनिक रीति से ८० प्रतिशत क्षार और २० प्रतिशत अम्लतत्व होता है। चार और एक का अनुपात सुरक्षित रहे, आरोग्य, सौन्दर्य और यौवन को व्याघात न पहुँचेगा। निर्दोष रक्त विशेषकर क्षार मय और स्वाद मे नमकीन होता है। हरी तरकारिया और अगूर, अनार, उदुम्बर, अमरूद आदि ताजा फल क्षारतत्व बाहुल्य द्रव्य क्षारपोषक है। क्षार मय औषधियो के प्रयोग की अपेक्षा उक्त फल अधिक लाभप्रद है। क्षारमय औषधियो के प्रयोग से गुर्दे ही कमजोर और बरबाद नही प्रत्युत शरीर मे ऐसे भयानक अनिष्ट प्रकट हो जाते है जो बढी हुई अम्लता के कुपरिणामो से कही अधिक दुखदाई सिद्ध होते है।

क्षारतत्व पोषित शरीर मे कोई भी रोगाणु बैठने का कष्ट न करेंगे। यदि केवल फलाहार, शाकाहार पर ही अधिक दिन न रह सके तो व्यञ्जनो का भी स्वाद लीजिये किन्तु अन्न बीस प्रतिशत से अधिक न हो। बीस प्रतिशत हो टमाटर, प्याज, बथुआ, मेथी आदि का शाक। बीस प्रतिशत हो भाप मे उबाली हुई बिना मशालो वाली तरकारिया। बीस प्रतिशत ऋतु मे मिलने वाले आम, जामुन, उदुम्बर आदि फल और बीस प्रतिशत बकरी या गो का धारोष्ण दूध, दही (मीठा) अथवा तक्र (मठा)।

—डा० श्री रामशकर मिश्र
धन्वन्तरि मार्च ५५ से

(११) उदुम्बर औषधि ही नही उत्तम पथ्य भी है। उदुम्बर को चाकू से काटकर टुकडे कर धूप मे सुखा चूर्ण कर रख ले, इसका हलुआ बनाकर प्रयोग किया जा सकता है। पक्व उदुम्बर फलो को दूध मे पकाकर भी काम मे लाया जा सकता है। इसका शाक मधुमेही के लिए लाभप्रद है। —कविराज श्री राधावल्लभ पन्त
धन्वन्तरि अप्रैल ६६ से

(१२) उदुम्बर का रस पीने से पित्त विकृति, रक्त विकृति तथा मूत्र विकार दूर होते है। पके उदुम्बर का मुरब्बा सेवन करने से सभी प्रकार के उदररोग जैसे—अतीसार, खूनी बवासीर, भगन्दर, खून की उल्टी ठीक हो जाते है। राजयक्ष्मा रोग मे भी यह उपकारी है।

—श्री गगाप्रसाद गौड "नाहर"
धन्वन्तरि फलगुणाङ्क से

(१३) उदुम्बर के पके फलो को सुखाकर चूर्ण कर लो। १०-१२ ग्राम चूर्ण नित्य जल के साथ सेवन करने

से प्रमेह पिडिकाये एक सप्ताह के अन्दर निश्चय पूर्वक आराम होने लगती हैं। एक माह मे मधुप्रमेह एव उसके उपद्रव शान्त हो जाते है। —प० श्री हर्षुल मिश्र
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से

बाह्य प्रयोग—

(१) नेत्राभिष्यन्द—[क] कच्चे फल को नारी दुग्ध के साथ लौहपात्र मे घिसकर आखो पर लेप करने से अभिष्यन्दजन्य दाह शूलादि नष्ट होते हैं। इसमे घृत और शमीपत्र मिलाकर भी लेप या इनका धूप देना हितावह है।

[ख] उदुम्बर पत्र स्वरस आख मे डालना भी हितकर है।

[ग] उदुम्बर सार को अर्क गुलाब मे मिलाकर आखो मे डालने से भी अभिष्यन्द जनित वेदना का शमन होता है।

[घ] पत्र का कल्क वनाकर आखो पर बाधने से भी लाभ होता है।

(२) अनिद्रा—पत्र स्वरस मे रुई का फाया भिगोकर आखो पर वाधने से शीघ्र ही नीद आ जाती है।

(३) क्षत—क्षत के कारण वहते खून को रोकने के लिए पत्र स्वरस लगाना चाहिये।

(४) कष्टार्तव—पत्र क्वाथ की उत्तरवस्ति देने से कष्टार्त्तव मे लाभ होता है।

(५) अर्श—[क] अर्शाकुरो पर पत्र स्वरस लगाना हितावह है।

[ख] पत्र क्वाथ की वस्ति देना भी हितकर है।

[ग] अर्शाकुरो पर उदुम्बर दुग्ध लगाने से भी लाभ होता है।

(६) दाह—[क] पत्र स्वरस मे श्वेत चन्दन घिसकर लेप करने से दाह मे शान्ति होती है।

[ख] पञ्चवल्कल के क्वाथ से (शीतल हो जाने पर) स्नान किंवा अवगाहन हितावह है।

(७) योनिशैथिल्य—उदुम्बर फल और ढाक के वीजो को पीसकर इसमे तिल तैल व मधु मिलाकर लेप कने से योनिशैथिल्य दूर होता है।

(८) योनिक्षत—प्रसव होने के पश्चात् अपत्यमार्ग छिल जाय तो स्वच्छ शिला पर उदुम्बर के स्वच्छ पत्र पीसकर उसमे चौगुना जल मिलाकर कपडे से छानकर इसे गर्म कर शीतल हो जाने के पश्चात् उत्तरवस्ति दें।

(९) कुष्ठ—उदुम्बरत्वक् (छाल) के क्वाथ से स्नान करना कुष्ठ मे हितकारक है।

(१०) दद्रु—द्रोणपुष्पी के पत्र स्वरस मे उदुम्बर पत्र पीसकर आक्रान्त स्थान पर मले। सूखने पर पुन यह लगावे।

(११) पाददारी—द्रोणपुष्पी पत्र और उदुम्बर पत्र का कल्क बनाकर पाददारी (विपादिका) मे भरकर सेक करे तथा कपडे से वाध देवे। कल्क सूख जाने पर पुन भरकर वाध देवें। इससे शीघ्र ही लाभ होने लगता है।

(१२) पामा—उदुम्बर पत्र, भगापत्र और द्रोणपुष्पी पत्र का कल्क बनाकर लेप करने से पामा मे लाभ होता है।

(१३) श्वित्र—उदुम्बर पत्र, वासापत्र, वाकुची वीज और चित्रकमूल को गोमूत्र मे पीसकर लेप करने से श्वित्र मे लाभ होता है।

(१४) प्रमेह पिडिका—[क] फलो को पानी मे घिसकर पिडिकाओ पर लगाने से लाभ होता है।

[ख] उदुम्बर दुग्ध किंवा इस दुग्ध मे वाकुची चूर्ण मिलाकर लेप करना भी प्रमेह पिडिकाओ को मिटाता है।

(१५) मुखपाक—[क] फलक्वाथ का गण्डूश धारण करने से मुखपाक मे लाभ होता है।

[ख] त्वक् क्वाथ १२० मि० लि० मे ३ ग्राम कत्था और १० ग्राम फिटकिरी मिलाकर सुखोष्ण ही गण्डूष धारण करना भी लाभप्रद है।

[ग] उदुम्बर पत्र का कल्क-सा बनाकर मुख मे कुछ देर चवाने से भी मुखपाक मे लाभ होता है।

(१६) दन्तरोग—[क] त्वक् क्वाथ का गण्डूष करने से दन्तशूल का शमन होता है।

[ख] उदुम्बर पत्र स्वरस से लिप्त पट्टी मसूढो पर रखने से दन्तवेष्ट रोग दूर होता है।

(१७) **पूयमेह**—[क] पचवल्कल क्वाथ से शिश्न का प्रक्षालन करना पूयमेह मे लाभप्रद है।

[ख] उदुम्बरत्वक् ६० ग्राम के क्वाथ मे ३ ग्राम कत्था व १ ग्राम कपूर मिलाकर कुछ गरम रहते ही पिचकारी से मूत्रेन्द्रिय को धोते रहने से भीतर के व्रण का रोपण होकर पूय आना वन्द हो जाता है।

[ग] उदुम्बर पत्र स्वरस को छानकर मूत्रमार्ग मे पिचकारी देनी चाहिए।

[घ] ५० गुने जल मे उदुम्बरसार को घोलकर छानकर उसी की पिचकारी लगाना भी लाभप्रद है।

[ङ] उक्त उदुम्वरसार के घोल मे कपडे की वत्ती बनाकर भिगोकर मूत्रमार्ग मे रखना भी हितकर है।

(१८) **गुदपाक**—अधिक दाहयुक्त अतीसार के कारण हुये गुदपाक मे उदुम्वर फल, नवीन पत्र और छाल का क्वाथ कर उससे सिद्ध किये गये घृत अथवा तिल तैल का लेप करे। इस लेप से गुदपाकजन्य दाहशूलादि का शीघ्र ही शमन होकर रोगी को शान्ति मिलने लगती है।

(१९) **मसूरिका**—[क] पत्र चूर्ण का मसूरिका व्रणो पर-अवधूलन करे।

[ख] पत्तो को दूध मे पीसकर मधु मिलाकर लगाना भी लाभप्रद है।

(२०) **विसर्प**—[क] उदुम्वर पत्र कल्क प्रलेप से विसर्प मे शान्ति मिलती है।

[ख] उदुम्वरसार के घोल का लेप भी किया जा सकता है।

[ग] उदुम्वर, सिरस, पीपल, ल्हिसोडा और कुटज छाल समान भाग लेकर सूक्ष्म पीसकर घी मे मिलाकर लेप करने से विसर्प मे लाभ होता है।

(२१) **व्रणशोथ**—[क] उदुम्वर दुग्ध को वस्त्र पर लगाकर व्रणशोथ पर वाधना हितकारक है।

[ख] छाल को पीसकर भी लेप करना ठीक है।

(२२) **रक्तपित्त**—उर्ध्वग रक्तपित्त मे उदुम्वरत्वक् को पानी मे पीसकर तालु पर लेप करे।

(२३) **कठमाला**—[क] दूध (उदुम्वर जात) का लेप करने से कठमाला मे लाभ होता है।

[ख] उदुम्वर पत्र कल्क प्रलेप भी लाभप्रद है।

(२४) **व्रण**—[क] इसकी छाल के क्वाथ से व्रणो का धोना, शोधन एव रोपण हेतु लाभप्रद है।

[ख] पत्तो को पीसकर व्रण पर लगाना भी हितकर है।

[ग] छाल के सूक्ष्म चूर्ण का अवधूलन भी उपयोगी है।

[घ] इसके दूध मे प्लोत तरकर व्रण मे रखने से व्रण का रोपण शीघ्र होने लगता है। यह दुग्ध भगन्दर, नाडीव्रण आदि मे भी लाभप्रद है।

[ङ] इसके स्वरस मे प्लोत तरकर व्रण मे रखकर उदुम्वर किंवा एरण्ड का पत्र (हरा) रखकर कपडे से वाध देना चाहिए।

(२५) **भल्लातकजन्य शोथ**—भल्लातक के धुए से उत्पन्न शोथ पर उदुम्वर मूलत्वक् (जड की छाल) को पीसकर लेप करना चाहिए।

(२६) **वृश्चिकदंश**—पत्रकल्क दश स्थान पर रखे।

(२७) **विद्रधि**—सूर्योदय से पूर्व दूध चादी के पात्र मे भरकर विद्रधि पर लगा रुई रख पट्टी वाध देने से वह बैठ जाती है। एक-दो दिन इस प्रकार करे।

(२८) **गर्भशूल**—उदुम्वर पत्र स्वरस मे फ़ोया डुवोकर योनि मे रखने से गर्भशूल मिटता है और गर्भपात होने की आशका नही होती।

(२९) **अग्निरोहिणी**—पत्र कल्क का पुन-पुन. प्रलेप करे।

(३०) **मसूरिका**—मसूरिका व्रणो पर पत्र स्वरस का लेप करे।

(३१) **नासारोग**—पाक, कृमि, व्रण आदि मे पत्रस्वरस छानकर उसमे नासा धोवे किंवा पिचकारी लगावे तत्पश्चात् कपडे की वत्ती वनाकर स्वरस मे भिगोकर नासा मे चढावे। यदि दोनो नासाछिद्र आक्रान्त हो तो वत्ती क्रमश चढावे।

(३२) **कर्णरोग**—कर्णरोगो मे कर्ण को उदुम्वर पत्र किवा निम्व पत्र क्वाथ से भलीभाति धोकर स्वच्छ

रुई से पोंछकर कर्ण मे उदुम्बर स्वरस डाले तथा फाया स्वरस मे तरकर कान मे रख दे। यदि पीडा अधिक हो तो बाध दे। कुछ समय पश्चात् पुन इसी प्रकार उपचार करे।

(३३) शिरःशूल—गुलरोगन किंवा नारिकेल तेल मे पत्र मे पीसकर इसमे किंचित् कपूर मिलाकर शिर पर लेप करने से शिर शूल मिट जाता हे।

(३४) ग्रीष्मज अरुंषिका [घमोरियां]—पत्र कल्क का लेप करने से ग्रीष्मऋतु मे होने वाली अलाइया मिटती है।

(३५) प्रदर—उदुम्बर वृक्ष की छाल, वट की छाल, पीपल की छाल, सिरस की छाल प्रत्येक ५० ग्राम लेकर यवकुट कर एक लीटर जल मे क्वाथ करे। अर्धावशेष रहने पर उतारकर छान ले। शीतल हो जाने पर कच्ची फिटकरी का चूर्ण ५०० मि०ग्रा० मिलाकर उत्तर बस्ति द्वारा योनि प्रक्षालन करने से प्रदर मे लाभ होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग–

(१) बहुमूत्र—[क] कच्चे फल को धूप मे सुखाकर चूर्ण बनाकर मधु एव दुग्ध के साथ सेवन करने से बहुमूत्र मे लाभ होता है।

[ख] तारकेश्वर रस, तालकेश्वर रस, बहुमूत्रान्तक रस, वृहत् वगेश्वर रस मे से कोई उपयुक्त रस उदुम्बर फल स्वरस किंवा चूर्ण मधुयुत देने से बहुमूत्र मे शीघ्र लाभ होता है।

[ग] इसकी जड मे छेद करने से एक प्रकार का मद निकलता है उसे पीने से बहुमूत्र दूर होता है। यह मद किंवा रस इस प्रकार निकाला जाता है—उदुम्बर के तरुण वृक्ष की जड के नीचे गड्ढा खोदकर एक मोटी जड को काटकर उसका मुख एक घडे के अन्दर रख दे। जड से बूंद-बूंद रस टपक कर घडे मे एकत्र हो जायेगा। इसे शीशी मे भरकर सुरक्षित रखे। आवश्यकता पर उपयोग मे लावे।

[घ] उदुम्बर की मूलत्वक् को यवकुट कर क्वाथ करले। इस क्वाथ को पुन पकाकर घन क्वाथ करले। यह घन क्वाथ १ ग्राम लेकर ऊपर मे जल किंवा गोदुग्ध पीवे। स्वर्णवग किंवा वगभस्म के साथ उक्त घन मधुयुत सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

[ङ] ४० ग्राम उदुम्बर पत्र को ६० मि० लि० तक्र मे पीसकर कपडे से छानकर पीने से भी बहुमूत्र मे लाभ होता है।

(२) मधुमेह– [क] उदुम्बर पत्र कल्क की गोलिया बनाकर धूप मे सुखा लें। १-२ गोली दिन मे ३-४ बार सेवन करना मधुमेह मे हितकारी है।

[ख] पक्व उदुम्बर रस मे मधु मिलाकर सेवन करें।

[ग] पक्वफल चूर्ण, जामुन फलमज्जा दोनो समान भाग लेकर शीतल जल से सेवन करें।

[घ] त्वक् का घन क्वाथ जल से सेवन करें।

[ङ] उक्त मूल स्वरस भी मधुमेह को नष्ट करता है।

[च] पक्व फलो को खाना तथा कच्चे फलो का शाक बनाकर भी खाना मधुमेही के लिए लाभप्रद है।

[छ] पक्व फल चूर्ण को सैंधव या चित्रक के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

[ज] पक्व फल चूर्ण मे लवण मिलाकर आमलकी स्वरस से सेवन करें।

(३) शुक्लमेह—पूर्ण पक्व फलो को चीरकर उनकी टोपी उलटकर सुखा लें। फिर उनको थोड़ा कूट बीज पृथक् कर दे। केवल इस छिलके को ही महीन पीसकर समभाग मिश्री मिलाकर ५-६ ग्राम प्रात-साय गोदुग्ध के अनुपान से सेवन करे।

(४) पूयमेह—[क] कच्चे फलो का सूक्ष्म चूर्ण कर शर्करा मिला धारोष्ण दुग्ध मे मिश्री मिलाकर लस्सी बनाकर पीने से पूयमेह मे लाभ होता है।

[ख] मूलत्वक् का क्वाथ भी कुछ समय दिन मे २-३ बार पीने से लाभ होता है। यह फिरङ्ग मे भी लाभदायक है।

[ग] उक्त मूल स्वरस ४०-५० मि० लि० लेकर इसमे स्याह जीरा चूर्ण तथा शर्करा मिलाकर पीने से मूत्रनलिका शोथ कम होकर लाभ होता है।

[घ] मूलत्वक् का क्वाथ, जीरा और मिश्री के साथ सेवन करने से पूयमेह, फिरंग, उपदंश आदि रोग नष्ट होने में सहायता मिलती है।

(५) तृष्णा—[क] कच्चे फलो को जल के साथ पीसकर छानकर सेवन करने से सभी प्रकार की तृष्णा का शमन होता है।

[ख] पक्व फल स्वरस मे शर्करा मिलाकर सेवन करने से पित्तज तृष्णा का शमन होता है।

[ग] बीजो के चूर्ण को मिश्री के शर्बत से सेवन करने पर भी तृष्णा का शमन होता है।

(६) गर्भस्राव—[क] मूलत्वक् क्वाथ मिश्री मिलाकर सेवन करने से गर्भस्राव किंवा पात मे लाभ होता है।

[ख] उदुम्बर के कच्चे फल, प्रियंगु पुष्प, कमलकद १२-१२ ग्राम लेकर यवकुट कर १ किलो गोदुग्ध मे पकावें चतुर्थांश दुग्ध शेष रह जाने पर छानकर पिलावें।

[ग] उदुम्बर के कच्चे फल २५-३० ग्राम बकरी के कच्चे दूध मे पीसकर मिश्री मिलाकर पिलावें।

[घ] उदुम्बर त्वक्, कटेरी, काश्मरी, भागरा, दालचीनी का मिश्रित चूर्ण ३-४ ग्राम मिश्री १०-२० ग्राम मिलाकर सेवन करे।

(७) प्रदर—[क] उदुम्बर का कपड़छन चूर्ण कर लें, इसमे बराबर की मिश्री मिला लें, प्रात -साय १-२ ग्राम दूध या पानी के साथ सेवन करने से प्रदर मे लाभ होता है।

[ख] उदुम्बर त्वक् १५ ग्राम, पीपल की छाल २५ ग्राम, रसौत ७५० मि० ग्रा० तीनो चीजें लेकर ५०० मि० लि० जल मे क्वाथ विधि से पकावें, चौथाई रहने पर उतार छानकर प्रतिदिन सुबह-शाम पीने से प्रदर मे लाभ होता है।

[ग] उदुम्बर फल सूखे हुए, जामुन की गुठली, केला पके (सूखे), पीपल लाख, प्रवालभस्म प्रत्येक १००-१०० ग्राम घोट-पीसकर बारीक चूर्ण बना रख ले, २-२ ग्राम मात्रा मे शहद के साथ चटाने से प्रदर मे लाभ होता है।

[घ] उदुम्बर ताजी छाल २० ग्राम कूटकर २५० मि० लि० पानी मे पकाले, आधा पानी शेष रहने पर छानकर इसमे २० ग्राम मिश्री तथा २ ग्राम श्वेत जीरे का चूर्ण मिलाकर प्रात -साय सेवन करने से रक्तप्रदर मे लाभ होता है।

[ङ] उदुम्बर की छाल के महीन चूर्ण को लौह खरल मे २१ भावनाये इसके जड के रस की देवें और दस भावनाये उदुम्बर छाल के रस की देकर शुष्क कर शीशी मे भर लें, प्रात -साय १-२ ग्राम तक अधपके केले के फल के गूदे मे मिलाकर चटावे तो रक्तप्रदर मे विशेष लाभ होता है।

[च] पत्तो के साथ दूब की जड तथा काटेदार चौलाई की जड थोडा पानी मिलाकर पीसकर छानकर पिलाने से भी रक्तप्रदर मिटता है।

[छ] पक्वफल चूर्ण विल्व पानक से सेवन करना भी प्रदर मे लाभदायक है।

[ज] छाल का फाण्ट या शीतकषाय भी रक्तप्रदर हर कहा गया है।

[झ] मूलत्वक्, केला का मूल, लाक्षा, जामुन, नारियल का क्वाथ रक्तप्रदर एव प्रदरजन्य दाह को दूर करता है।

[ञ] उदुम्बर फल, त्वक् तथा वनतुलसी का सशृत क्वाथ भी प्रदर हर है।

(८) दाह—परिपक्व एक-दो फल मिश्री के साथ सेवन करने से दाह किंवा उष्णता का शमन होता है।

(९) धातुदौर्बल्य—कच्चे फलो का चूर्ण, शर्करा समभाग लेकर जल से सेवन करे।

(१०) सोमरोग—कच्चे फल का चूर्ण समधु सेवन करना सोमरोग मे हितकर है।

(११) अतीसार—[क] उदुम्बर पत्र १० ग्राम, २०० मि० लि० पानी मे पीसकर पीने से अतीसार मिटता है।

[ख] पक्वफल चूर्ण मधु के साथ देने से गर्भवती का भी अतीसार मिटता है।

[ग] उदुम्वर दुग्ध की एक छुआरे मे २-४ बूद डालकर खाने से अनीसार वन्द होता है।

[घ] उदुम्वर दुग्ध मे भङ्गा को पीसकर गोली वना कर खिलाने ले पक्वातिसार मिटता है।

[ङ] शुष्क कच्चे फलो का चूर्ण समभाग मिश्री मिलाकर जल के अनुपान से सेवन करने पर रक्तातिसार मिटता है।

[च] कच्चे फल का भर्त्ता वनाकर खाने से भी अतीसार नष्ट होता है।

(१२) प्रवाहिका—[क] कच्चे उदुम्वर के फलो को कूटकर उवाल ले फिर उसमे दही तथा कालानमक मिलाकर मूग की पतली खिचडी के साथ खिलाये।

[ख] उदुम्वर पत्र के साथ २-३ दाने मरिच तण्डुलोदक मे पीसकर इसमे कालानमक मिलाकर तक्र से सेवन करे।

(१३) ग्रहणी—[क] ६० ग्राम कच्चे फलों को वाष्प मे स्विन्न कर २५० ग्राम दही मिलाकर सेवन करने से पित्तज ग्रहणी नष्ट होती है।

[ख] पचपल्लव २० ग्राम, विल्वफल मज्जा २० ग्राम, शुण्ठी २ ग्राम के क्वाथ मे ४ ग्राम गुड मिलाकर शीतल होने पर पीवे, इसके निरन्तर प्रयोग से ग्रहणी मे लाभ होता है।

(१४) प्रमेह पिडिका—परिपक्व फलो का चूर्ण नित्य प्रात-साय जल से एक माह तक सेवन करने से प्रमेह एव प्रमेह पिडिकाओ का शमन होता है।

(१५) तीक्ष्णाग्नि—[क] उदुम्वर की अन्तर्छाल को नारी दुग्ध मे पीसकर पिलाने से वच्चो की तीक्ष्णाग्नि का शमन होता हे।

[ख] मूलस्वरस को निरन्तर सात दिन पीने से भी तीक्ष्णाग्नि (भस्मक रोग) का शमन होता है।

(१६) दन्तोद्भेद रोग—वालको को दन्तोद्भेद रोगो मे उदुम्वर दुग्ध का सेवन हितावह है।

(१७) रक्तपित्त—[क] पक्वोदुम्वर स्वरस मे मधु या गुड मिलाकर पीने से नासागत रक्तपित्त वन्द होता है।

[खँ] कमलगट्टा और उदुम्वर फल चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से मुख से आने वाला रक्त वन्द होता हे।

[ग] शुष्क कच्चे फलो का चूर्ण समभाग मिश्री मिलाकर ताजे जल से प्रात-साय २१ दिनों तक सेवन करने से रक्तपित्त मे लाभ होना है।

[घ] यदि शिर शूल के कारण नाक से रक्तस्राव हो तो पके फलो मे शर्करा भरकर घृत मे तलकर इलायची और कालीमिर्च चूर्ण ४-४ ग्राम के साथ प्रतिदिन प्रात-काल सेवन करें तथा मस्तक पर कटेरी फल रस का मर्दन करे।

[ङ] पत्र स्वरस के साथ पीपल वृक्ष की लाक्षा का चूर्ण और मिश्री समभाग मिलाकर ६-१२ ग्राम तक सेवन करने से उर्ध्वग रक्तपित्त का शमन होता है।

-[च] उदुम्वर पत्र, यवासा और मुनक्का तण्डुलोदक मे पीसकर देने से भी लाभ होता है।

(१८) रक्तार्श-[क] कच्चे फलों का शाक रक्तार्श मे लाभप्रद है।

[ख] उदुम्वर दुग्ध १०-२० वूद जल मे मिलाकर सेवन करे, साथ मे गोघृत भी पीवें।

[ग] कोमल पत्र २० ग्राम महीन पीसकर गाय का दूध या दही २५० ग्राम व थोडा सैंधानमक मिलाकर सेवन करने से रक्तार्श मे लाभ होता है।

[घ] उदुम्वर पत्र १ ग्राम, काकजघा १ ग्राम, मरिच ४ को ४० मि० लि० पानी मे पीसकर छानकर दिन मे एक वार सेवन करे।

(१९) ज्वर—[क] उदुम्वर मूलत्वक्, गिलोय, पटोल मूल का क्वाथ वनाकर इसमे मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तज्वर शमन होता है।

[ख] जड की छाल के हिम मे या जड के स्वरस मे सिता मिलाकर सेवन करने से भी पित्तज्वर की शान्ति होती है।

(२०) जीर्णज्वर—उदुम्वर पत्र स्वरस मधु से सेवन करे।

(२१) श्वसनक ज्वर—उदुम्वर पत्र और मधुयष्टि तथा अदरक का क्वाथ मधु मिलाकर पिलावे।

(२२) विषमज्वर—शुष्क पत्र चूर्ण को मधु से सेवन करने से विषम ज्वर मे लाभ होता है।

(२३) अंशुघात—उदुम्बर त्वक् २० ग्राम को कूटकर २०० मि० लि० पानी मे शाम को भिगो दे। प्रात छानकर २० ग्राम मिश्री मिलाकर पिलावे।

(२४) कास-श्वास—उदुम्बर के पञ्चाङ्ग का क्वाथ बनाकर सेवन करना कास-श्वास मे लाभप्रद है।

(२५) अश्मरी—[क] पत्र स्वरस में शरपुंखा चूर्ण मिलाकर सेवन करने से अश्मरी मे लाभ होता है।

[ख] मूल स्वरस मे मिश्री मिलाकर पीने से भी लाभ होता है।

(२६) मसूरिका—कच्चे फलो का चूर्ण शीतल जल से लेते रहने से मसूरिका, रोमान्तिका आदि मे लाभ होता है।

(२७) बालशोष—उदुम्बर दुग्ध की ५-१० बूंदें माता या गाय के दूध मे मिलाकर सेवन करना हिता-वह है।

(२८) बाजीकरणार्थ—[क] फल चूर्ण तथा विदारीकन्द के कल्क मे घृत मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से वीर्यशक्ति मे वृद्धि होती है।

[ख] सफेद मूसली मे उदुम्बर दुग्ध मिलाकर सेवन करने से भी लाभ होता है।

[ग] उदुम्बर दुग्ध को बताशे मे रख सेवन करना भी हितकर है।

(२९) अपरापातनार्थ—छाल को चावलो के धोवन मे पीसकर पिलाने से प्रसूता की आवरा शीघ्र ही गिर जाती है।

(३०) विष प्रभाव—[क] वत्सनाभ के विष पर छाल को थोडे पानी मे पीस तथा कपडे से छान निचोड-कर थोडा घृत मिलाकर पिलावे।

[ख] त्वक् स्वरस किंवा फल स्वरस मे घृत मिला-कर सेवन करने से संखिया के विष का प्रभाव कम होता है।

(३१) मन्दाग्नि—उदुम्बर फल, मरिच, काला-नमक और चित्रक तक्र से सेवन करने पर मन्दाग्नि नष्ट होती है।

(३२) विसूचिका—उदुम्बर पत्र चावल के धोवन मे पीसकर मिश्री मिलाकर पीवें।

(३३) श्लीपद—उदुम्बर पानक मे गोमूत्र मिला-कर सेवन करे।

(३४) वातरक्त—उदुम्बर पत्र ७० ग्राम, वन-तुलसी ४० ग्राम, दन्ती की जड १० ग्राम, एरण्डमूल १० ग्राम, हरीतकी १० ग्राम, अनन्तमूल १० ग्राम का चूर्ण बनाकर १-२ ग्राम चूर्ण दिन मे २-३ बार जल मे सेवन करने से वातरक्त मे लाभ होता है।

(३५) विबन्ध—उदुम्बर पत्र और एरण्डमूल को चावल के धोवन के साथ मिलाकर हरीतकी चूर्ण मिला-कर सेवन करने से विबन्ध दूर होता है।

विविध कल्पनाएं—

(१) बहुमूत्रान्तक रस—रससिन्दूर, लोहभस्म, वङ्गभस्म, शुद्ध अफीम, गूलरफल के बीज, वृक्ष की जड की छाल, और तुलसी समानभाग लेकर प्रथम रस-सिन्दूर को खरल मे घोटकर लौह और वङ्गभस्म, शुद्ध अफीम मिलाकर काष्ठौषधियो को कूट कपडछन कर महीन चूर्ण बनाकर, मिलाकर गूलर के फलो के रस मे सबको घोटकर २५०-२५० मि० ग्राम की गोलिया बना, छाया मे सुखाकर रख ले।

बहुमूत्र, मधुमेह (पेशाब मे चीनी आने) मे जामुन की गुठली और गुडमार का चूर्ण १-१ ग्राम, गूलर का रस और मधु के साथ १-१ गोली सुबह-शाम दे। प्रमेह मे गुर्च (गिलोय) के रस और मधु से दे। नपुसकता-नामर्दी और शीघ्रपतन दोष दूर करने के लिए मिश्री मिलाकर, खूब औटाये, दूध के साथ दे।

यदि इसके सेवन से प्यास अधिक लगे तो सारिवा, मुलहठी, मुनक्का, दाभ (कुश), चीड का बुरादा, लाल-चन्दन, हरें का वक्कल, महुआ के फूल सब समानभाग लेकर काढा बनाकर, ठण्डा करके पिलाना चाहिए। अथवा इन चीजो को रात मे पानी मे भिगो दे और प्रात काल छानकर पिलायें।

यह रसायन मधुमेह और बहुमूत्र तथा सोमरोग लिए बहुत उपयोगी है। प्रमेह और शीघ्रपतन, वी कमी आदि मे भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(२) हेमनाथ रस—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म १२-१२ ग्राम तथा लौह-भस्म, कपूर, प्रवालभस्म, और वङ्गभस्म ६-६ ग्राम लेकर सबको एकत्र मिलाकर खरल करे, कज्जली हो जाने पर उसे अफीम के पानी, केले के फूलो के रस और गूलर के रस की सात भावना देकर १२५-१२५ मिलीग्राम की गोलिया बना ले।

१-१ गोली सुवह-शाम गुडूची स्वरस, मधु और जामुन की गुठली का चूर्ण और शहद के साथ दे।

यह रसायन प्रमेहरोग के लिए वहुत उत्तम है। मूत्राशय वृक्क और वीर्यवाहिनी नाडियो की दुर्वलता को दूर कर उनकी क्रिया को ठीक करता है। पेशाव के साथ वीर्यस्राव को रोकता है। स्त्रियो का सोमरोग एवं श्वेत-प्रदर इस रसायन से वहुत शीघ्र ठीक हो जाता है। वहुमूत्र, प्रमेह, नपुसकता, शीघ्रपतन, वीर्य का पतलापन, कमर का दर्द पैरो की हडकन (फूटनी), स्वप्नदोष, मधुमेह, और दुर्वलता दूर करने के लिए इसका प्रयोग विशेपतया किया जाता है। यह योगवाही एव रसायन होने के कारण अनुपान भेद से वात, कफ एव त्रिदोष से उत्पन्न सभी विकारो मे उत्तम लाभदायक है। इसमे शुद्ध पारद के स्थान पर रससिन्दूर डालकर वनाने से वहुत उत्तम गुणकारी वनता है। —भै० र०

(३) उदुम्बरादि लेह—गूलर, पीपल, वरगद, अर्जुन पलाश (ढाक) रोहिडा और खैर की छाल का क्वाथ वनाकर छानकर उसे पुन मन्द आच पर गाढा (घन) करे। फिर उसमे निशोथ और त्रिकटु के चूर्ण (दोनो मिलाकर घन का चतुर्थांश) का प्रक्षेप देकर खूव मिलाकर उतार लेवे। यह कफज हृद्रोग नाशक हैं।

मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम तक।

अनुपान—उष्णोदक। —चरक० चि० २६ से

रोगो ꣳ(४) उदुम्बरादि लेह—उदुम्बर के पके फल, (१ꣳ फल, हरड, छोहारा और मुनक्का। इन्हे या गुड मिल चूर्ण कर शहद मे मिलाकर अवलेह वनावें। [ख] कमके सेवन से रक्तपित्त मिटता है।
सेवन करने से ꣳ —योगरत्नाकर से

(५) उदुम्वरादि हिम—उदुम्बर मूल और गिलोय १२-१२ ग्राम लेकर यवकुट कर ले। दोनो द्रव्यो की मात्रा मे चतुर्गुण किंवा षड्गुण उष्ण जल मे दोनों के यवकुट चूर्ण को डालकर रातभर रखा रहने दें। प्रात मसलकर छानकर मिश्री मिलाकर पीने से पित्त ज्वर का शमन होता है। —वृ० नि० रत्नाकर से

(६) उदुम्वरादि वटी—उदुम्बर के ताजा पत्ते १६० ग्राम और कालीमिर्च १० ग्राम दोनों को पीसकर झरवेरी के तुल्य गोली वनाकर छाया मे सुखाकर सुरक्षित रखें। उदुम्बर के पत्र स्वरस द्वारा भी यह वटी तैयार की जा सकती है।

यह अतीसार, अम्लपित्त, उदरशूल, परिणामशूल, यकृत्शूल आदि मे लाभप्रद है।

(७) उदुम्बरपानक [शर्वत]—साठी चावल या साधारण अरवा चावल ४८ ग्राम को १४४ ग्राम जल मे दो घण्टे तक भिगोकर उन्हे कपडे मे छानकर जल ले लेवे। पश्चात् ४८ ग्राम उदुम्वर पत्र पीसकर और २४ ग्राम मिश्री मिलाकर शर्वत वना लेवें। इसके पान से शरीर की उष्णता शान्त होती है। विवन्ध नष्ट होता हैं एव पिपासा भी मिटती है।

(८) उदुम्वरादि प्रदेह—उदुम्वर की छाल, मुलहठी, पद्मकेशर, नीलोत्पल, नागकेशर, प्रियंगु इनके अत्यन्त श्लक्ष्ण चूर्ण को घृत मे मिलाकर शरीर पर लगाकर विसर्प नाशक है।

लेप को आचार्यों ने दो प्रकार का माना है—
आर्द्रो घनस्तथोष्ण स्यात्प्रदेह. श्लेष्मवातहा।
शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेप परिकीर्तित.॥

(९) उदुम्वरादि तैल—(१) कच्चे सूखे उदुम्बर के टुकडे १ द्रोण (१२ किलो २८८ ग्राम) पञ्चवल्कल (वड, पीपल, पाकर, गूलर और वेंत की छाल) पटोल-पत्र, नीम के पत्ते, चमेली के पत्ते सव समानभाग लेकर (कुल १ द्रोण), को जल (१ द्रोण) मे एक रात्रि भिगोवे रखें। प्रात काल इन्हे छानकर इसमे प्रक्षेप के लिए लाख, ढाक की छाल और सेमल का गोद मिलायें और तिल तेल एक प्रस्थ का पाक सिद्ध करे।

योनि की दाह मे इसके फाये रखने से पीडा शान्त होती है। इस तैल के प्रयोग से पिच्छिला, विवृता, चिरकाल दुष्टा दारुण योनि भी सात दिन के प्रयोग से स्वस्थ हो जाती है और सन्तानोत्पत्ति की शक्ति प्राप्त होती है।

(२) तिलो को दुग्ध से ३ बार भावना देकर इन तिलो को पेलकर तैल निकाले। इस तैल को उदुम्बर की छाल के ४ गुने क्वाथ मे सिद्ध कर ले। इस तैल मे फाया भिगोकर योनि मे रखने से पूर्वोक्त योनिव्यापत् दूर होते है।

(३) तिल तैल १ प्रस्थ (७६८ ग्राम), बकरी का मूत्र तैल से दुगना, इतना ही बकरी का दुग्ध, प्रक्षेप के लिए धाय के फूल, आमला, तेजपत्र, स्रोताजन, मुलहठी, नीलोफर, जामुन की गुठली, आम की गुठली, कासीस, लोध्र, कायफल, तेदू की छाल, सुराठी मिट्टी, अनार की छाल, उदुम्बर के कच्चे फल प्रत्येक १-१ कर्ष (१२ ग्राम) लेकर तैल सिद्ध करे।

इस तैल का पिचु (फाहा) योनि मे रखते हैं और इस तैल की वस्ति का भी प्रयोग करते है। कटि, पीठ और त्रिक पर इसका अभ्यङ्ग किया जाता है। इस तैल से पिच्छिला, स्राव युक्त योनि, विप्लुता, उत्ताना, शोथ-युक्त छाले एव शूल से युक्त योनि स्वस्थ हो जाती है।

—चरकसहिता चि० ३० से

(१०) उदुम्बर सार—(१) गूलर वृक्ष के कच्चे फलों या छाल के स्वरस को मन्दाग्नि पर पकाकर गाढा कर ले यह घनसत्व उदुम्बरसार कहलाता है। सडे से सडे गले घाव पर उदुम्बरसार जल मे घोलकर कपडा भिगोकर पट्टी की तरह रखने से न सूखने वाले घाव भी सूखने लगते है। —गगाधरराव वैद्य शास्त्री द्वारा धन्वन्तरि अनुभूत प्रयोगाक से

(२) गूलर की कोमल पत्ती २ किलो कूट पीसकर ४ किलो जल मिलाकर कडाही मे आग पर चढा देवे बीच-बीच मे करछली से चलाते जावे जब कुछ गाढा होने को आवे तब किसी दूसरे पात्र मे छान लेवे खूब निचोडकर छूछा फेक दे। इस छने हुये जल को फिर उसी कडाही मे डालकर १० ग्राम रार तथा १० ग्राम मोम उसी मे डालकर आग पर चढा देवे। मन्दाग्नि से पकावे जब खूब गाढा हो जावे तब निकालकर शीशी मे भरकर रख ले। यह काले रङ्ग का मलहम घाव, चोट, मोच आदि के लिए बहुत लाभदायक है।

—प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी द्वारा
धन्वन्तरि प्रयोगाक से

(३) गूलर की ताजी पत्ती अच्छी साफ की हुयी १० किलो लेवे और उसे जल से धोकर ऊखल मूसल से कूटकर ४० किलो जल मे मिलाकर कलईदार बर्तन मे डालकर मन्दाग्नि पर पकावे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उसे छान लेवे फिर ५० ग्राम सुहागे का फूला मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे और गूलर के डण्डे से चलाते-चलाते जब डण्डे पर रस चिपकने लगे तब कडाही को उतार कर सार को कलईदार थाल मे डालकर उस पर मलमल का टुकडा बाधकर धूप मे सुखा ले लेह जैसा बनने पर अमृतवान मे भर ले।

यह सार उत्तम शोथ विम्लापन (कच्चे व्रणशोथ को बैठाने वाला) व्रणरोपण तथा रक्तस्रावरोधक है। व्रणशोथ की प्रारम्भावस्था मे इस क्षार को चौगुने जल मे मिलाकर कपडा भिगोकर बाधने और थोडे-थोडे समय-समय पर उस जल को डालकर पट्टी को तर रखने से वेदना दूर हो जाती है और शोथ का शमन हो जाता है। दुष्टव्रण और न भरने वाले व्रणो पर भी यह उत्तम कार्य करता है। पूय वाले व्रणो को धोने के लिए उबलते हुये जल मे क्षार मिलाकर उपयोग किया जाता है। यह स्तन शोथ मे भी लाभप्रद है।

मुखपाक मे इसके कुल्ले कराने से अच्छा लाभ होता है। स्त्रियो को प्रदर मे तथा योनि मार्ग के क्षत मे इसकी उत्तरवस्ति देनी चाहिए। नेत्राभिष्यन्द मे उदुम्बर क्षार को नेत्र के बाहर लगाने से तथा अर्क गुलाब मे व [illegible] हुये इसके द्रव्य की बूद नेत्र मे डालने से अभिष्य- [illegible] भी अच्छा होता है। रक्तार्श, रक्तप्रदर आदि मे [illegible] ग्राम उक्त ग्राम की मात्रा अठगुने जल मे मिलाकर [illegible] गर्भस्थापन बार पीने को देना चाहिये। —सिद्ध [illegible] दानुसार हवन

(४) उदुम्बर पत्र सार—उदुम्बर (गूलर) के १० किलोग्राम स्वच्छ पके तथा ताजा फल लेकर पानी से मलकर धो ले, फिर इन्हे ओखली मे लकडी के मूसल से कूटकर एक कलईदार पात्र मे ४० लिटर जल मे डालकर मन्द-मन्द आच पर पकावे। जब चतुर्थांश जल शेष रह जाए तो स्वच्छ वस्त्र से छान ले। फिर उसमे सुहागे का फूला पीसकर वस्त्रपूत किया हुआ ६ ग्राम मिलाकर धीमी-धीमी आच पर पकावे और गूलर के डण्डे या लकडी के कलछे मे चलाते रहे। जब घन ठण्डे और पात्र मे चिपकने लगे तो इसको नीचे उतार कर सार को किसी कलईदार थाल मे उडेल दे और उस पर मलमल का वस्त्र बाध दे और धूप मे रखकर सुखा ले। जब घन इतना गाढा हो जाए कि गोली बनाई जा सके और दबाने से हाथ मे न चिपके तो इसे किसी पात्र मे रख ले।

लाभ तथा प्रयोग विधि—यह उदुम्बर पत्र सार कच्चे फोडो के शोथ को शमन करता है, व्रण शोधन, व्रण रोपण करता है। रक्तस्राव रोधक है। व्रणशोथ की प्रारम्भिक अवस्था मे इस सार को चौगुने जल मे मिलाकर, कपडा भिगोकर बाधने और थोडे-थोडे समय पर उस जल को डालकर पट्टी को तर रखने से वेदना दूर हो जाती है और शोथ का शमन हो जाता है।

स्त्रियो के स्तनो पर बालक के सिर आदि के लगने से स्तन शोथ हो जाता है, इस पर भी इसका प्रयोग लाभप्रद होता है। इसका लेप करे।

चाकू आदि लगने से रक्तस्राव हो रहा हो, तो इसके तरल को डालने से रक्तस्राव तत्काल बन्द हो जाता है। उष्णोदक मे घोल बनाकर व्रण धोने से व्रण स्वच्छ होकर शीघ्र भर जाता है।

मुह आने मे इसके गरारे कराने से बहुत लाभ होता है।

श्वित्र स्राव (श्वेत प्रदर) और योनिशोथ एव व्रण र॰, मे इसके घोल को पिचकारी द्वारा प्रयोग करे, ऐसा दिन (दो) बार करे।

या गुड मियमेह मे भी इसके लोशन (घोल) की पिचकारी [खँ] कम करती है। इनके लिए ६४ गुना जल मे घोल सेवन करने मे।

नेत्राभिष्यन्द मे पानी के साथ इसका गाढा लेप करें। और इसका हल्का घोल बनाकर नेत्रों मे डालने से दुखती आंखों मे लाभ होता है।

रक्तार्श, अत्यार्तव, पूयमेह, मधुमेह, पीनस आदि मे इसे ३ से ६ ग्राम की मात्रा मे आठ गुने पानी मे घोलकर ३-४ बार दे।

यह पत्र सार बिगडे हुए व्रणों को भरने मे विशेष लाभप्रद है।

हिलते हुए दात भी सुदृढ हो जाते है दिन मे ३-४ बार मसूढो पर मले। —वैद्य एम एन यादव, मिथी (भिवानी) हरयाणा।

उदुम्बर के पेटेण्ट प्रयोग

(१) उदुम्बर घनसत्व—गर्ग वनौषधि भण्डार विजयगढ कतिपय आयुर्वेदिक घनसत्व तैयार करता है। ये घनसत्व चूर्ण, वटिका एव कवच [कैपसूल] के रूप मे उपलब्ध होते हैं। इन घनसत्वो मे प्रमुख उदुम्बर घनसत्व है। यह घनसत्व उदुम्बर के फलो से तैयार किया जाता है, जो मधुमेह, बहुमूत्र, रक्तपित्त, रक्तातिसार आदि रोगो मे लाभप्रद है। इसकी मात्रा केवल एक ग्राम की है।

(२) केपेरीन टिकी—आर्य औषधि फार्मास्युटिकल वर्क्स इन्दौर द्वारा निर्मित रक्तस्तम्भक, दाहनाशक, शोथहर सुमधुर कोटेड टिकी है। जिसमे चन्द्रकला रस और कामदुधा रस के पश्चात् तृतीय मुख्य घटक उदुम्बर घन है।

(३) वर्की त्रिफलान सूचीवेध—सिद्धि फार्मेसी ललितपुर का सूचीवेध है। इसमे उदुम्बर क्षार २५ मि० ग्रा०, वटक्षार २५ मि० ग्रा०, जगली अजीरक्षार २५ मि० ग्रा०, हजारदानी सत्व १० मि० ग्रा० है।

यह शिशुओ के सभी प्रकार के रोगो पर विशेषकर हरे-पीले दस्त, डब्बा रोग, मोतीझरा, काली खासी, जिगर की खराबी, जिगर का बढ जाना आदि पर उपयोगी है।

(४) मधुमेहान्तक कैपसूल—यह गर्ग वनौषधि भण्डार का पेटेण्ट योग है जो मधुमेह एव बहुमूत्र की उत्तम औषधि है। इसमे उदुम्बर, लशुन, गुडमार, बेलपत्र के घनसत्व त्रिवग एव शिलाजीत आदि है।

प्रातः-सायं १-१ कैपसूल उदुम्बर फल चूर्ण के क्वाथ से सेवन करने से उत्तम लाभ होता है।

(५) प्रदरान्तक कैपसूल—यह भी गर्ग वनौषधि भण्डार का योग है। इसमे अशोक, उदुम्बर, लोध्र, चौलाई के घनसत्व, खरैटी, सगजराहत भस्म, स्फटिका आदि हैं। १-१ कैपसूल अशोकारिष्ट से देने पर प्रदर मे लाभ होता है।

अनुभूत प्रयोग

(१) पायोरियाहर क्वाथ—उदुम्वर की छाल ३ ग्राम, बबूल की छाल ३ ग्राम, माजूफल १ नग, चमेली के पत्ते १० नग, बेरझारी की जड ६ ग्राम, आवला ३ नग, नीम के पत्ते ५ नग।

आधा किलो जल मे उबालकर गण्डूष [कुल्ले] करे। कुछ दिनो मे पायरिया अवश्य नष्ट हो जायेगा।

—श्रीमती चन्द्रशेखर आयुर्वेदाचार्य द्वारा धन्वन्तरि पायरिया रोगाङ्क से।

(२) कफज्वरहर क्वाथ—उदुम्बर, मुलैठी, पीपलामूल, चिरायता, नागरमोथा, महुआ के फूल और बहेडा सब समभाग लेकर यवकुट कर ले। ४० ग्राम का क्वाथ मधु मिलाकर पीवे। कफज्वर मे उत्तम लाभकारी है। —प्रो० श्री बसरीलाल जी साहनी द्वारा सरल सिद्ध योग सग्रह से।

(३) धन्वन्तरि लेप—शिलाद्रव [जल मे परिश्रुत किया] ६० ग्राम, मधु ६० ग्राम, उदुम्बर सत्व १२ ग्राम, मृतसजीवनी सुरा १२ ग्राम, स्फुटिका ३ ग्राम मिलाकर छानकर रख ले।

यह लेप कठ के भीतर रुई की फुरैरी से दिन मे ३-४ बार लगाने से शीघ्र ही स्वरभग, तुण्डीकेरी आदि मे लाभ होता है। गलरोहिणी मे प्रयोग कर लाभदायक पाया गया है। पुराने टासिल मे तथा नये कास मे यह गले मे भीतर लगाने से लाभप्रद होता है।

—प० श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी द्वारा वैद्य सहचर से।

(४) उदुम्बरादि योग—सूखे उदुम्बर फल, कच्ची सुखाई बबूल फली १-१ भाग, विधारा, शखाली बीज, बबूल की कोपल और बबूल का गोद आधा-आधा भाग, मिश्री सारे द्रव्यो से आधी। ४-५ ग्राम सुबह और रात को दूध से सेवन करने से स्वप्नमेह, धातु-दौर्बल्य, बहुमूत्र, ओजोमेह आदि दूर होते है। इन रोगो को दूर करने के लिए अच्छा लाभकारी योग है।

—वैद्य कविराज श्री केशवदेव शास्त्री द्वारा आयु० विकास अनु० चिकि० से।

(५) श्वेतप्रदरहर योग—रससिन्दूर १२५ मि० ग्रा०, कच्चे उदुम्बर फल का चूर्ण ५०० मि० ग्रा०, फिटकरी का फूला ५०० मि० ग्रा०, समुद्रशोष २५० मि० ग्रा०, राल २५० मि० ग्रा०, सफेद सुरमा ५०० मि० ग्रा०, कुक्कुटाण्ड त्वक् भस्म ५०० मि० ग्रा०, प्रवालपिष्टी ३७५ मि० ग्रा० सबको खरल कर चार मात्राये बनाले। १-१ मात्रा बनागे के साथ सेवन कराने से श्वेतप्रदर में लाभ होता है।

—श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा सुधानिधि जुलाई ७६ से।

(६) रक्तप्रदरहर प्रयोग—२ किलोग्राम उदुम्बर के पक्व फल लाकर कूट ले। फिर इनके कल्क को एक कासे की थाली मे रख ऊपर से २५० ग्राम चीनी बुरक दे। थाली को टेढी करके कुछ समय के लिए रख दे। इसमे से जो पानी नीचे इकट्ठा हो जाय उसको निकालकर शीशी मे रख लेना चाहिए। २० ग्राम सुबह तथा २० ग्राम रात्रि को रक्तप्रदर की रोगिणी को सेवन कराने से निश्चित लाभ देखने को मिलता है।

—कविराज श्री शान्तिप्रकाशचन्द्र।

(७) गर्भस्थापन—उदुम्बर की लकडी की एक मथनी तथा एक पात्र तैयार करावे। हल्दी, आवाहल्दी, चन्दन का चूरा, कूठ, जटामासी, शिलाजीत, केसर, मुस्ता, भद्रमोथा सब समभाग लेकर इनका चूर्ण बनाले। गाय के दूध मे उन औषधियो को मिलाकर उदुम्बर पात्र मे दही जमा दे। उदुम्बर की मथनी से मथकर मक्खन निकालकर तपाले। फिर इसमे केसर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, इलायची आदि सुगन्धित चीजे भी कुछ मिला दे। १ किलोग्राम गोदुग्ध मे ६० ग्राम उक्त घृत मिलाकर सिद्ध कर ले। जिस दिन गर्भस्थापन क्रिया करनी हो, उसके एक दिन पहले वेदानुसार हवन

कर उक्त औषधि खीर अथवा भात के साथ मिलाकर स्त्री-पुरुष सेवन करे। इससे सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुहृड, निरोग पुत्र उत्पन्न होगा।

—प० प्रभुनारायण जी त्रिपाठी "सुशील" द्वारा वैद्य मासिक पत्र अप्रैल १९३७ से।

(८) योनिकण्डूहर योग—उदुम्बर के ताजे पत्ते १०० ग्राम २ लिटर जल मे पकावे। जब १ लिटर जल शेष रहे तब छानकर टकण भस्म ३ ग्राम डाल सुखोष्ण जल से योनि प्रक्षालन के बाद शतधौत घृत १०० ग्राम, देशी कपूर १० ग्राम, यशद पुष्प ३ ग्राम मिलाकर उसमे से योनि मे लगाने से योनिकण्डू रोग दूर होता है।

—प० श्री वासुदेव शास्त्री द्वारा सुधा० महिलारोग चिकित्साङ्क से।

(९) गर्भपात हर औषध व्यवस्था—१२ ग्राम कच्चे उदुम्बर या उदुम्बर की छाल लेकर ४०० मि० लि० पानी मे पकावे। १०० मि० लि० पानी रहने पर छान ले। ३६ ग्राम शाली चावल को पानी मे पकावे। जब पकने को हो जाय तब यह छाना हुआ उदुम्बर का क्वाथ डाल दे। उसी मे ३६ ग्राम मिश्री या बताशे डाल दे। शीतल होने पर गर्भवती को जिसका रुधिर जारी है पिलावे। एक प्रवाल [मार्तण्ड] की सूचिका बाहु मे त्वचागत लगावे। नितम्ब मास मे दशमूल की सूचिका लगा दे। कटोरी मे नवनीत डालकर कटोरी वर्फ पर रख दे फिर शीतल होने पर इसको नाभि के नीचे प्रलेप कर दे। ऐसा बारम्बार कर दे। दस मिनट मे लाभ हो जायेगा। उदुम्बर के घनसत्व प्राप्त होते हे। उनका ५००-७०० मि० ग्रा० की मात्रा मे प्रयोग करें।

—वैद्य श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा स्वास्थ्य मई ८७ से।

(१०) लोह रसायन—शतपुटी लोहभस्म ६० ग्राम, विशुद्ध सस्कारित पारद ६० ग्राम, उदुम्बर दुग्ध १२० ग्राम। उदुम्बर के दूध मे लोह तथा पारद को भलीभाति खरल करके १२-१२ ग्राम की १० टिकिया बनाना एव सूर्यताप मे सुखाना। शराव सम्पुट विधि से इन टिकियो को सम्पुटित करके वन्य उपलो या गोबर के कण्डो द्वारा गजपुट की अग्नि मे परिपाकित इसी प्रकार ३ बार उदुम्बर के दूध मे टिकिया बना-बनाकर गजपुट की अग्नि देना। स्वाङ्गशीतल हो जाने पर सम्पुट खोलकर भस्म को निकालना और पीस-छान कर साफ शीशी मे रखना।

उक्त सिद्ध लोहभस्म १२ ग्राम, स्वर्णभस्म १२ ग्राम, मुक्ताभस्म १२ ग्राम, प्रवालभस्म २४ ग्राम। समस्त भस्मो को खरल मे डालकर गुलाब के अर्क मे भलीभाति खरल करके १२० मि० ग्रा० की गोलिया बनाना। १ गोली शहद या गोदुग्ध से प्रात -साय तथा रात्रि मे सोते समय देने से रक्ताल्पता, सर्वाङ्गीण दुर्बलता, वलीपलित, अकाल वृद्धता दूर होती है। कम से कम ४० दिन और अधिक से अधिक ८० दिन तक उसका सेवन करें।

—कविराज श्री गयाप्रसाद जी शास्त्री द्वारा धन्व० गु० सि० प्रयोगाक से।

(११) उदुम्बरसार पिच्छा वस्ति—रक्तातिसार, ग्रहणी, शूल, सपिच्छ अतीसार के लिए—उदुम्बर सार २७ ग्राम, जल १६ औंस क्वाथ विधि से उबालकर चतुर्थाश जल शेप रखे। इसमे बराबर पद्मकादि तैल मिलाकर सिरिंज से अथवा अनिमा केन से धीरे-धीरे वस्ति प्रविष्ट करावे। वस्ति के बाद तुरन्त मल प्रवृत्ति न हो इसके लिए आतुर को चरकोक्त "वस्ति आसन" देना चाहिए और सिर का भाग नीचे ओर कटी-गुद का भाग ऊपर इस अवस्था मे वाम पार्श्व पर सुला देना चाहिए।

इस वस्ति के उपयोग से जिसे प्रतिदिन ४० वार मल प्रवृत्ति होती थी, दूसरे दिन २०-२५ वार हुई, तीसरे दिन १०-१२ वार हुई। चौथे दिन ३-४ वार हुई और ५वे-६वे दिन तो पूर्ण नियन्त्रण होते देखा गया है। इस वस्ति को सात दिन तक सतत् दे सकते हैं। इससे अधिक न दें। क्योंकि यह सग्राही और स्तम्भन वस्ति है। यदि आगे देना हो तो स्नेह वस्ति एक दिनान्तर के साथ देकर इसे चालू रखे।

—वैद्य श्री कृ० श्री० कस्तुरे द्वारा धन्व० सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

उलटकम्बल [ABROMA AUGUST]



आयुर्वेदीय किंवा यूनानी ग्रन्थो मे इस औषधि का वर्णन उपलब्ध नही होता है। इसके गुणो की खोज सबसे पहले सन् १८०१ मे डा० राक्सबर्ग ने की और उन्होंने इसे कष्टार्तव की उत्कृष्ट औषधि बतलाया। इसके पश्चात् विद्वानो ने उपयोग मे लाने के पश्चात् इसके गुणो का बखान किया।

यह आधिक्येन बगाल मे होता है। इसके सुन्दर छोटे कमल के समान पुष्पकोष पक्वावस्था मे ऊपर की ओर उलट जाते है, सुतरा इसे बगजन "ओलट कम्बल" कहते है। यही हिन्दी मे उलट कम्बल (कमल) कहा जाने लगा।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह पिशाचकार्पास कुल (स्टर्कुलिएसी Sterculiaceae) की वनौषधि है। आचार्य प्रियव्रत जी ने आर्तव जनन द्रव्यों के अन्तर्गत सर्वप्रथम इसका वर्णन किया है।

यह गर्भाशय वल्य, गर्भाशयोत्तेजक होने से कृच्छ्रार्तव किंवा कष्टार्तव की प्रमुख औषधि है।

नाम—

संस्कृत—पीवरी, पिशाचकार्पास, योपिणी, ऋतुमती।

हिन्दी—उलटकम्बल, सनकपास।

बंगला—ओलट काम्बल।

मराठी, गुजराती—उल्लटकम्बल, ओलकतबोल।

आसामी—गुनखि आकराई।

अंग्रेजी—डेविल्स काटन (Devil's Cotton)—डेविल्स काटन का अर्थ भूतो की कपास होता है। सस्कृत के पिशाचकार्पास और डेविल्स काटन के अर्थ मे समानता है।

लैटिन—एब्रोमा आगस्टा (Abroma Augusta)।

विशेष—पीवरी नाम रस माधव ने उलटकम्बल को दिया है। किसी-किसी ने इसका भारद्वाजी नाम लिखा है, वह ठीक नही है। क्योकि भारद्वाजी शब्द रस माधव के अनुसार वनकार्पासी का वैदिक निघण्टु के अनुसार अतिवला, महावला का नाम है, परन्तु उलटकम्बल का नही है। अतएव इसको शास्त्र विरुद्ध समझना चाहिये। इसी प्रकार कर्णिकार शब्द अमलतास का वाचक होने से अशुद्ध है। द्रुमोत्पल नाम अपनी मनमानी कल्पनानुसार रक्खा है। —श्री भागीरथ जी स्वामी।

उत्पत्ति स्थान—यह बगाल, आसाम, खासिया पहाड तथा सिक्किम मे बहुतायत से होता है। चीन और जावा मे भी यह पाया जाता है।

रासायनिक संगठन—मूलत्वक् मे निर्यास, अस्फटिकीय सत्व तथा ११ प्रतिशत भस्म होती है। मूल मे स्थिर तैल, राल तथा अल्प प्रमाण मे क्षाराभ होते हैं। इसमे मैगनीशियम भी होता है। जल मे मिलाने पर अत्यधिक पिच्छिल द्रव्य होता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका रोमश गुल्म किंवा छोटा वृक्ष लगभग १० फुट ऊचा होता है। इसका मूल मोटा तथा सुदृढ होता है। इसमे बहुत से चारो ओर उपमूल फैले रहते हैं। मूल को काटने से गाढा गोंद-सा निकलता है। मूल की छाल दलदार, रेशेदार भूरे रंग की होती है। जिसके भीतर श्वेत गूदा होता है।

काण्ड कोमल होती है। इसकी छाल श्वेत रंग की होती है। इससे रेशम के समान सूत्र निकलते हैं।

पत्र—४-६ इच लम्बे, ४-५ इच चौडे एव दन्तुरधार होते है। ऊपर के पत्र कुछ छोटे तथा अखण्ड होते है। उपपत्र पत्रवृन्त के बराबर ½-१ इच लम्बा होता है। पत्र मे कुछ लाल रग की शिराये होती हैं तथा पृष्ठ भाग रोमश, खर (खुरदरा) होता है। ये पत्र भिण्डी के पत्र के आकार के होते हैं।

पुष्प—बैंगनी रग के अधोमुख, २ इच व्यास के गुच्छो मे होते है। पुष्प दड १-½ इच लम्बा, अक्षीय

होता है। पुष्प के वाह्यदल ४ तथा आभ्यन्तर दल ५ होते हैं।

पुष्पदल परिपक्व हो तथा पुष्पकोप से पृथक् होकर ज्यो ही भूमि पर गिरते है ऊर्ध्वमुख हो जाते है। इसी प्रकार प्रत्येक पुष्पकोप, पुष्पदलो के गिर जाने पर वारी-वारी से उलटकर ऊपर की ओर मुड जाते है सुतरा ये उलटकम्वल (कमल) कहे छाते है।

फल—पञ्चकोणीय तथा पञ्चकोष्ठीय, १½ इच लम्वा होता है। इसके भीतर मूली के समान कृष्णवर्ण अनेक वीज होते है। ये वीज दो पक्तियो मे होते है। कोप सूखने पर वीज झड जाते है।

अगस्त, सितम्वर मे पुष्प तथा अक्टूवर से जनवरी तक फल आते है।

रस—कटु, तिक्त।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—कफ वातशामक तथा पित्तवर्धक है।

प्रयोज्य अङ्ग—मूल।

मात्रा—मूलत्वक् चूर्ण—१-३ ग्राम।
ताजा मूल—४-८ ग्राम।
मूल स्वरस—५-१० मि० लि०।

प्रतिनिधि—अशोक और मुलहठी।

हानिकारक—नाडीमडल के लिए किंचित् हानिकारक।

दर्पघ्न—शतावरी।

गुण-धर्म—"पीवरी योपिणी सा स्याद् योनिव्यापद् विनाशिनी रजोदोपप्रशमनी।" —आयुर्वेद विज्ञान

यद्यपि स्वाभाविक मलमूत्रादि की प्रवृत्ति के समान स्त्रियो मे आर्तव प्रवृत्ति दाह पीडादि रहित होती है, किन्तु प्रवृत्ति जव सरलता से न हो, उस काल मे श्रोणि-प्रदेश मे पीडा हो, साथ ही शिरःशूल, वेचैनी, मानसिक कमजोरी, चिडचिडापन आदि लक्षण भी हो तो "उलट-कम्वल" को स्मरण करना चाहिए। इन विकारो का शमन करनेमे यह श्रेष्ठ औषधि है।

इसकी विशिष्ट क्रिया गर्भाशय पर होती है। यह गर्भाशय वल्य (Uterine Tonic) तथा आर्तवप्रवर्तक (Emmenagogue) है। इसके प्रयोग से आर्तव साफ आता है, नियमित होता है तथा आर्तवकाल की उक्त पीडाये शान्त होती हैं। एतावता यह कष्टार्तव किंवा कृच्छ्रार्तव, रजोरोध और अनियमित ऋतुस्राव मे अत्यधिक लाभ पहुचाता है। यह ऋतुकाल के तीन दिन पूर्व और दो दिन वाद तक दिया जाना चाहिये।

कृच्छ्रार्तव के कई प्रकार है—

(१) आकुञ्चन युक्त कृच्छ्रार्तव (Spasmodic)।
(२) रक्ताधिक्यजन्य कृच्छ्रार्तव (Congestive)।
(३) कलाविदारक कृच्छ्रार्तव (Membraneous)।
(४) स्नायविक कृच्छ्रार्तव (Neuralgic)।

इसका ताजा लुआवी रस रक्ताधिक्यजन्य कृच्छ्रार्तव मे तथा स्नायविक कृच्छ्रार्तव मे वहुत लाभप्रद है।

१. रक्ताधिक्यजन्य कृच्छ्रार्तव—ऋतुकाल मे गर्भाशयप्रदेश मे रक्त की मात्रा वढ जाती है सुतरा शूल उत्पन्न होता है। यह शूल ऋतुकाल के ३-४ दिन पूर्व ही होने लग जाता है। यह श्रोणिप्रदेश पर विशेपकर वाम डिम्वप्रदेश पर होता है। आर्तववह स्रोत मे शोथ होने से आर्तव का अवरोध होकर शूल वढ जाता है और आर्तवस्राव होने पर शूल का शमन हो जाता है। यह ३५-४० वर्ष की वहुप्रसवा स्त्रियो मे पाया जाता है।

इसमे उलटकम्वल का स्वरस दुग्धानुपान से देना चाहिए अथवा उलटकम्वल मूलत्वक् चूर्ण २ ग्राम, चोपचीनी चूर्ण २ ग्राम, गुलकद १५ ग्राम मिलाकर दूध के साथ सेवन करना चाहिये।

२. स्नायविक कृच्छ्रार्तव—यह शारीरिक विकार न होकर पूर्णरूपेण मानसिक विकार है। रतिक्रिया मे असन्तुष्टि अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करती है, योषापस्मार उसका ही परिणाम है। ऐसी विकृति मे उलटकम्वल कृच्छ्रार्तव को मिटाने मे सहायक औषधि के रूप मे प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

उलटकम्वल विश्ववल्लभघृत (भैं० र०) युक्त दुग्ध से सेवन करना हितकर है। त्वरित लाभ हेतु चतुर्भुज



उलटकम्बल [Abroma augusta Linn. F.]

विभिन्न नाम : मस्कृत–पिशाच कार्पास, पीवरी। हिन्दी–उलटकम्वल, सनकपास। वगला–ओलटकम्वल। अग्रेजी–डेविल्स कॉटन (Dabils Cotton)। लेटिन–एब्रोमा ऑगस्टा (Abtoma augusta Linn. F)।

प्राप्ति स्थान : बगाल, आसाम, सिक्कम विशेपतया।

उपयोगी अंग : मूल।

दोषशमन · कफवातशामक।

रोगोपयोग : गर्भाशयबल्य, गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन, वेदनास्थापन।

रस, सारस्वतारिष्ट, द्राक्षासव आदि के साथ इसे प्रयोग मे लाना चाहिये ।

अनुसन्धान—(१) इसके काण्ड के क्वाथ मे गर्भाशय के लिए बलदायक क्रिया पाई गई किन्तु कुत्ते के परीक्षण मे यह नही पाई गई ।

—एम० बी० मिश्रा, जे० पी० तिवारी एव एस० एस० मिश्रा इण्डि, जर० फीजियो, फार्माकोला १०, २, १९६६, ५९-६० ।

(२) प्रारम्भिक गर्भावस्था पर प्रभाव के अध्ययन के लिए इसके मूल के विभिन्न सत्वो का अध्ययन चूहो पर किया गया। इनका कोई विशेष गर्भ निरोधक प्रभाव नही देखा गया । —वा० अनु० दर्शिका (डा० कृ० च० चुनेकर)

यह पहले कहा जा चुका है कि कष्टार्तव किंवा कृच्छ्रार्तव नामक स्त्रीरोग विशेष के लिए इसकी उपयोगिता प्रकट करने का सर्वप्रथम श्रेय डा० राक्सवर्ग को ही है। इन्होंने ही इसके गुणो का विवेचन प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् सन् १८७२ मे इण्डियन मेडिकल गजट मे भुवनमोहन सरकार ने इसकी आर्तवजनन शक्ति का परिचय कराया। दी इकानामिक प्राडक्ट्स आफ इण्डिया के प्रसिद्ध लेखक सर जार्ज वाट ने भी अपने ग्रन्थ मे इसके आर्तवजनन गुण का बहुत से डाक्टरो की सम्मतियो के साथ उल्लेख किया ।

सन् १८७३ मे डाक्टर थार्नटन ने अमेरिकन मेडिकल साइन्स मे इसकी जड की छाल के ताजे स्वरस की कार्मुकता प्रकट करते हुए व्यक्त किया कि यह रक्तसचय तथा नाडी विकृतिजन्य कष्टार्तव मे विशेष उपयोगी है ।

के० पी० बोस के मतानुसार भी इसकी जड की छाल गर्भाशय को बल प्रदान करती है तथा ऋतुस्राव को नियमित बनाती है ।

भारतवर्ष के प्रसिद्ध "बगाल केमिकल वर्क्स" के विद्वानो ने भी इसका वर्णन किया है—

उलटकम्बल ने मासिकधर्म के समय की पीडा को नष्ट करने मे रामबाण होने की ख्याति प्राप्त की है। इस औषधि का रासायनिक और वैद्यकीय अभ्यास करने के पश्चात् हम विश्वासपूर्वक कह सकते है कि उनका व्यवहार कभी व्यर्थ नही जाता है। स्त्रियो का आरोग्य, उनका सौन्दर्य और उनका स्वभाव सब बाते उनके मासिकधर्म पर अवलम्बित रहती है। आखो के आसपास काले दाग पडना, प्रतिदिन सिरदर्द होना इत्यादि रोग कष्टार्तव के कारण होते हैं। उलटकम्बल के प्रयोग से ये लक्षण नष्ट होते है और स्त्रियो का वन्ध्यत्व दूर होकर वे गर्भधारण के योग्य बनती हैं ।

कलकत्ते के प्रसिद्ध कविराज द्वारिकानाथ विद्यारत्न इस औषधि के सम्बन्ध मे लिखते हैं कि उलटकम्बल के मूल की छाल का चूर्ण एक ड्राम की मात्रा मे इक्कीस कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर मासिकधर्म के समय सात दिनो तक सेवन करना चाहिए और भोजन मे केवल दूध, भात लेना चाहिए। सहवास सर्वथा इस काल मे त्याज्य है। इस प्रकार दो-चार महीनो तक प्रत्येक मासिक धर्म के समय सात दिनो तक यह योग देने से गर्भाशय के सब दोष मिट जाते है ।

आर० एन० खोरी के मतानुसार इसकी जड और इसका रस गर्भाशय को बल देने वाला तथा आर्तव प्रवर्तक है ।

कर्नल चोपडा, घोष और चटर्जी ने इसके मद्यसार और अलग-अलग अङ्गो का विश्लेषण करके यह परिणाम निकाला कि रक्त बहाव, श्वासक्रिया एव पाकस्थली और अन्त्र मार्ग पर इसका कोई भी प्रशसनीय असर नही होता । गर्भाशय पर भी, फिर चाहे वह गर्भ से युक्त हो, चाहे विहीन हो इसने कुछ भी असर नही दिखाया । इसका सन्तोषजनक फल न होने से रोगियो पर इसका परीक्षण नही किया। इस निर्णय पर आपत्ति करते हुये स्वामी जी ने लिखा है कि—

असख्य कविराज, वैद्य, डाक्टरो ने उलटकम्बल की परीक्षा कर इसके गुणो का वर्णन किया है। परन्तु कर्नल चोपडा जी को रासायनिक परीक्षा करने पर इसमे कोई रोगहरण वस्तु नही मिली ।

यहा मुझे चोपडा जी की थोडी सी भूल मालूम पड़ती है। क्योकि मनुष्य को कभी अपने मन मे इस बात

को नही समझना चाहिये कि जितना हम जानते है वही पूर्ण है । चोपडा जी को पृथक्करण करके परीक्षा नही करनी चाहिये थी । अनेक औषधिया अपनी प्राकृतिक अवस्था में जैसा अच्छा खास-खास रोगो पर गुण करती है, वैसा गुण भिन्न-भिन्न करने पर नही करती हे । इस औषधि को प्राकृत अवस्था मे वर्त्तने पर पूर्ण लाभ हो सकता है । जैसाकि डाक्टर के० सी० वोस ने कहा है कि "अलकोहल के साथ मिलाने से इस वनस्पति का असर नष्ट हो जाता है । इसलिये इसका ताजा रस या चूर्ण ही उपयोग मे लेना चाहिये ।"

डॉक्टर वोम ने इसमे से विना अलकोहल मिलाये एक्सट्रैक्ट ए ब्रोमा लिक्विड (इसका पतला सत्व) निकाला एव इसकी गोलिया भी वनाई, जो वरावर गुण करती हें ।" —मं० नि० व० शास्त्र से

डा० नाडकर्णी के मतानुसार इसका फाण्ट (Infusion) सुजाक मे लाभप्रद है । जड की छाल कष्टार्तव की प्रसिद्ध औषधि हे । जड की मोटी छाल का रस आवे ड्राम की मात्रा मे सव प्रकार के कष्टार्तव मे लाभप्रद हे । ऋतुकाल मे एक ही वार के प्रयोग से विकृति दूर होकर गर्भ स्थापना हो जाती है ऐसा कहा जाता है । यह योग प्राय मासिकधर्म के प्रथम दिन से लेकर निरन्तर सात दिनो तक दिया जाता है । ऋतुस्राव के पूर्व ही यदि पीडा हो तो ऋतुस्राव के दो दिन पूर्व ही इसका प्रयोग करना चाहिये ।

"जगलनी जडी वूटी" नामक ग्रन्थ के रचयिता कहते है कि हमने अनेक रुग्णाओ पर इस औषधि का प्रयोग किया है और हमे विश्वास हो गया है कि गर्भाशय के रोगो पर यह अचूक औषधि है ।

वूटीदर्पण के सम्पादक श्री रूपलाल जी वैश्य ने कहा है कि "ऋतुधर्म के अनियमित समय पर होने मे, जड की छाल और कालीमरिच के चूर्ण को २-६ ग्राम की मात्रा मे दोनो समय सेवन करने से लाभ होता है । अथवा ५०-६० ग्राम सूखी छाल को यवकुट कर ६२५ ग्राम पानी मे क्वाथ तैयार कर १०-१२ ग्राम की मात्रा मे दिन मे तीन बार देने से कुछ दिनो मे मासिकधर्म उचित समय पर होने लगता है । ऋतुधर्म होने से एक सप्ताह पूर्व इसका प्रयोग प्रारम्भ कर देना चाहिये । अथवा वैद्य अपने विचार से काम ले । जिस दशा मे रजस्वला का रुधिर जम जाता है उस समय इसका प्रयोग अति लाभदायक होता हे ।"

उलटकम्बल की विविध कल्पनायें—

१. **स्वरस**—उलटकम्वल की जड ताजी लेकर उसकी छाल लेकर स्वरस निकाले । प्रात -साय इसमे ताजा जल मिलाकर सेवन करे ।

२. **क्वाथ**—यदि छाल न मिले तो मूल को यवकुट कर क्वाथ विधि से क्वाथ वनाकर सेवन करे ।

३. **चूर्ण**—यदि ताजा जड न मिल सके तो जड की छाल का चूर्ण ४-६ ग्राम तक प्रात -साय ताजा जल के साथ सेवन करे ।

क्वाथ, चूर्ण आदि जिस रूप मे भी इसको प्रयोग मे लावे, प्रयोग के समय १०-१५ कालीमरिच का चूर्ण अवश्य मिलावे ।

अन्य कल्पो की अपेक्षा इसका स्वरस अधिक गुणकारी होता है, सुतरा यथा सम्भव इसका स्वरस ही प्रयोग मे लावे । इसकी जड को ३-४ दिनो तक ठडे पानी मे भिगोने से इसका स्निग्ध लुआवी भाग (Slimy mucilage) पृथक् हो जाता है और रेशेदार जड पृथक् हो जाती है ।

आधुनिक चिकित्सा मे इसके ये योग उपलब्ध होते है—

१ एक्स्ट्रैक्टम् ए ब्रोमी लिक्विडम् (Extractum Abromae Liquidum)—उलटकम्वल का प्रवाही घनसत्व ।

मात्रा—२-४ मि० लि० ।

२ सक्कस ए ब्रोमी (Succus A bromae)—उलटकम्वल का स्वरस मात्रा २-४ मि० लि० ।

कतिपय आयुर्वेदीय पेटेण्ट योग—

१. **इन्जेक्शन उलटकम्बल**—आयुर्वेदिक सूचिवेध बनाने वाली जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी "उलटकम्वल" नाम से ही इन्जेक्शन तैयार करती है ।

इसके १० मि० लि० वायल मे उलटकम्वल १६ मि० ग्राम तथा प्रवालपिन्टी १४ मि० ग्रा० होता है। १-२ मि० लि० प्रतिदिन लगाया जाता है। उपयुक्त अवधि तक प्रयोग मे लाया जाता है।

२. ल्युनारेक्स टिकी साधारण—गर्भाशय के चक्रीय कार्य को सामान्य करने तथा मासिकधर्म को व्यवस्थित करने हेतु "ल्युनारेक्स" चरक फार्मास्युटीकल्स का प्रमुख पेटेण्ट योग है। इसकी प्रति २५६ मि० ग्रा० की कोटेड टिकी मे आसाडिया, दालचीनी, इलायची, एलुवा, गाजरवीज, हीराकसीस, कलौंजी, जीरा, मेथी, उलटकम्वल, रायणवीज, सौठ, सूवा, वास आदि है। दो टिकिया ३-४ वार २ या ४ रोज तक दूध से देनी चाहिये। अनियमित मासिक मे मासिकस्राव होने की सम्भावित तिथि से एक सप्ताह पूर्व से देना चाहिये। इसी की तेज कोटेड टिकी मे साधारण टिकी के द्रव्यो के अतिरिक्त सरगवा वीज तथा टकणक्षार अधिक है।

२५६ मि० ग्रा० की साधारण टिकी मे उलटकम्वल ४० मि० ग्रा० है जबकि तेज मे ३० मि० ग्रा० हे।

इसी प्रकार स्त्री सहज कष्टो को दूर कर स्फूर्ति एव शक्ति प्रदान करने वाला चरक फार्मा० के प्रसिद्ध प्रयोग "फेमिप्लेक्स" (गोली) का भी उलटकम्वल प्रमुख घटक है। गर्भाशय वल्य होने से प्रति ३२० मि० ग्रा० की रूपेरी गोली मे उलटकम्वल को १६ मि० ग्रा० की मात्रा के साथ समाविष्ट किया गया हे। यह योनि से किसी भी प्रकार के स्रावो को रोकती हे। दो गोली दिन मे २-३ वार दूध या जल से दी जानी चाहिये। १०० गोलियो का पूरा कोर्स देने पर प्राय सम्पूर्ण लाभ मिल जाता है।

३ हेमपुष्पा—राजवैद्य शीतलप्रसाद एण्ड सन्स दिल्ली की "हेमपुष्पा" (प्रवाही) विविधि स्त्री रोग शामक अनुभूत महौषधि है। यह स्त्रियों को स्वास्थ्य एव सौन्दर्य प्रदान करने मे श्रेष्ठ है। इसमे अशोक, उलटकम्बल के अतिरिक्त लोध्र, दशमूल, शतावरी, अश्वगन्धा, मूसली, वला, विदारीकन्द, मजिष्ठा, अनन्तमूल, धायपुष्पी, वच, तगर, जीरा, ऊदसलीव, ब्राह्मी, शिवलिङ्गी, दारुहरिद्रा आदि द्रव्य है। रज शोधक, गर्भाशय वल्य एव वातशूलघ्न होने से इसे स्त्री रोगो मे उपयोगी समझा है।

हेमपुष्पा ७ मि० लि० दो गुने पानी मे मिलाकर भोजन के बाद हेमटैब की एक टिकिया जल से निगलने के पश्चात् ले। इसका प्रयोग दिन मे दो वार करे। रोग की वढी दशा मे दिन मे तीन वार भी सेवन की जा सकती है।

३. रजो साइन टेक्स्युल—आर्य औषधि फार्मास्युटिकल वर्क्स इन्दौर का रज प्रवर्तक पेटेण्ट योग है। इसके प्रत्येक टेव० मे एलुवा ३७०० मि० ग्रा०, बोल २५ मि० ग्रा० तथा उलटकम्वल, सताव, सोठ, शुद्ध सुहागा, शुद्ध नवसादर, आजम, काले तिल, गोखरू, गाजर के वीज, मेथी, अजखर, सूवा, सरगवा, आदि सभी द्रव्य प्रत्येक १२५ मि० ग्रा० है। इस टेव० मे उलटकम्वल के अतिरिक्त चित्रक, कपास पुष्प, इन्द्रायणमूल, वास, मूली के वीज, अजवाइन, निर्गुन्डी आदि द्रव्यो के क्वाथ की भावना भी दी जाती है। रुके हुये मासिकधर्म को विना कष्ट चालू करने मे यह उत्तम योग है। १-२ टेक्स्युल दिन मे ३-४ बार पानी से देने चाहिये। गर्भावस्था मे इसका प्रयोग निषिद्ध है।

इसी प्रकार यह फार्मेसी ही "आल्सा कोर्डियल" नामक सुमधुर सुगन्धित प्रवाही बनाती है जो प्रदर नाशक तथा शक्तिवर्धक रसायन है। इसके प्रति ५ मि० लि० मे निम्न द्रव्यो का सार है—

कमल १२५ मि० ग्रा०, धायपुष्पी १२५ मि० ग्रा०, अशोक ३०० मि० ग्रा०, लोध्र २५० मि० ग्रा०, शतावरी २५० मि० ग्रा०, अश्वगन्धा २५० मि० ग्रा०, पुत्रजीवक २०० मि० ग्रा०, तमालपत्र १२५ मि० ग्रा०, उलटकम्वल १२५ मि० ग्रा०, गोखरु १२५ मि० ग्रा०, नागकेशर १२५ मि० ग्रा०, मेहदी ६२५ मि० ग्रा०, चन्दन ६२५ मि० ग्रा०, देवदारु ६२५ मि० ग्रा०, कपूर काचरी ६२५ मि० ग्रा०, अरडुशा ६५५ मि० ग्रा०, यष्टिमधु १२५ मि० ग्रा०।

विशेषताए—प्रजननसस्थान एव समग्र देह के लिए पौष्टिक रसायन शामक एव विषघ्न है। गर्भाशय एव वीजाशय के रोगो एव निर्बलता को दूर करती है।

रोगाधिकार—श्वेतप्रदर एव अन्य विकृत योनि स्राव, मासिकधर्म की अनियमितता, कमर का दर्द, गर्भाशय की शिथिलता।

मात्रा—२-२ चम्मच दिन मे तीन बार।

इसी रोग मे प्रयुक्त आल्मा नामक टिकी का भी निर्माण किया जाता है परन्तु इसमे उलटकम्वल नही है।

प्रयोग

१. स्त्रीरोग—(१) उलटकम्वल की जड को जौकुट कर लगभग १ किलो ले ले और ४ किलो जल मे पकावें। १ किलो शेष रहने पर छानकर उसमे १०० ग्राम काली मरिच का चूर्ण तथा १। किलो गुड मिलाकर चीनी मिट्टी के पात्र मे मुख वन्दकर १ माह तक धान्यराशि मे दवा दे फिर छानकर बोतलों मे सुरक्षित रख ले। १०-२५ ग्राम तक समान भाग जल मिलाकर दोनो समय भोजनोपरान्त ऋतुधर्म होने से १ सप्ताह पूर्व इसका सेवन कराने से ऋतुधर्म की रुकावट दूर होती है।

(२) अनियमित ऋतुस्राव के साथ गर्भाशय व्यथा तथा कमर मे विशेष पीड़ा हो तो उलटकम्वल मूल का रस ४ ग्राम तक लेकर उसमे शक्कर मिलाकर सेवन करने से २ दिन मे ही लाभ हो जाता है।

(३) उलटकम्बल की जड की छाल ६ ग्राम तथा कालीमरिच ३ नग दोनो को शीतल जल मे पीस-छानकर ऋतु के ७ दिन पहले से सेवन कराने से मासिक सम्बन्धी सभी विकार दूर होकर ऋतुस्राव खुलकर होता है और गर्भाशय बलिष्ठ होता है।

(४) उलटकम्बल की जड की छाल १½ ग्राम, ताम्बूल डण्ठल ३-४ नग तथा कालीमरिच ३ नग [यह एक मात्रा है] इन्हे ताजे जल के साथ पीसकर और ५० ग्राम ताजा जल मिलाकर प्रात काल खाली पेट ऋतुधर्म के पूर्व ७ दिन लेने से गर्भ स्थापना होती है।

२. बहुमूत्र—इसके पत्तो का रस १०-२० ग्राम तक प्रात-साय सेवन करने से बहुमूत्र मे लाभ होता है। इससे इक्षुमेह एव मधुमेह मे भी लाभ होता है।

३. पूयमेह—इसके ताजे पत्ते और तने की छाल का शीतल जल मे तैयार किया गया फाट पूयमेह मे परमोपयोगी कहा गया है।

यद्यपि औषधि प्रयोग मे इसका मूल ही उपयोगी है किन्तु पत्र भी उक्त रोगो मे लाभप्रद पाये गये है। अत पत्तो का व्यवहार ताजी अवस्था मे ही करना अधिक उपयोगी है।

विशिष्ट एवं अनुभूत प्रयोग

१. रजोदोषहर वटी—मुश्क तरामसी, रेबन्दचीनी, तगर, तुख्महरमल, सातर, सौंफ, अनीसून, तुख्म कार्पस, अजखर, सोया तथा वास की जड यह ११ द्रव्य १००-१०० ग्राम। उलटकम्वल की जड ४०० ग्राम मिला जौकुट कर चौगुने जल मे पकावे। चौथाई जल शेष रहने पर कपडे से छानकर मन्दाग्नि से पकावे। जब करछली से लगने लगे तव नीचे उतारकर धूप मे सुखावे। गोली वनाने योग्य हो जाय तब उसमे कूठ का चूर्ण २० ग्राम, जावशीर २० ग्राम, जुन्दवेदस्तर १० ग्राम मिलाकर २५०-२५० मि० ग्रा० की गोलिया वना लेवे।

४-४ गोली जल के साथ देवे। रजोदर्शन के समय निम्न क्वाथ से देवे—

अजखर, मुश्क तरामसी, अनीसून, अवहल, ककडी का मगज, गोखरू, हसराज प्रत्येक ६-६ ग्राम जल मे पकाकर ५० ग्राम जल शेष रहने पर कपडे से छानकर १० ग्राम गुड मिला खिलावे।

यह वटी स्त्रियो के मासिकधर्म की विकृति, अल्प रज स्राव, कष्ट रज स्राव आदि मे उपयोगी है।

—सु० प्र० सग्रह

२. ऋतुशोधक वटी—एलुआ ४० मि० ग्रा०, बोल २५ मि० ग्रा०, सौठ १२ मि० ग्रा०, सुहागा १२ मि० ग्रा०, शुद्ध नौसादर १२ मि० ग्रा०, काले तिल १२ मि० ग्रा०, गोखरू १२ मि० ग्रा०, गाजर के बीज १२ मि० ग्रा०, मेथी के बीज १२ मि० ग्रा०, सोया के बीज १२ मि० ग्रा०, उलटकम्वल १२ मि० ग्रा०।

चित्रक क्वाथ, उलटकम्वल, कपास की जड, इन्द्रायन की जड, वासा के पत्ते, मूली के बीज, अजवायन, निर्गुण्डी के क्वाथ की ३-३ भावना देकर ३-३ ग्राम की गोलिया वना ले।

२-२ गोली दिन मे ३ बार पानी के साथ ।

रुके हुए मासिकधर्म कष्ट से होने वाला मासिकधर्म, नष्टार्तव, अनियमित आर्तव आदि मे उपयोगी है ।

—वैद्य सुन्दरलाल जैन द्वारा
धन्वन्तरि जनवरी ७७ से ।

३. स्त्रीसुधा—जियापोता के फल गर्भ (या बीज मज्जा) शिवलिङ्गी बीज, पारसपीपल के बीज, नागकेशर, असगन्ध, शरपुखा की जड, देवदारु, उलटकम्बल की जड, कमलगट्टा, खरेंटी के बीज, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, दारुहल्दी, वशलोचन तथा त्रिफला के तीनो द्रव्य ४०-४० ग्राम सबका चूर्ण कर उसमे वग, लौह, स्वर्णमाक्षिक भस्म ४०-४० ग्राम मिलाकर नवको कटेरी के क्वाथ, अशोक छाल के क्वाथ, इसी जियापोता के फलो के गर्भ के क्वाथ तथा शतावरी के रस या क्याथ की १-१ भावना देकर ७५०-७५० मि० ग्रा० की गोलिया वनाकर छाया मे शुष्क कर ले । ३-४ गोली तक प्रात-साय दूध के साथ कुछ समय तक सेवन करने ले सब प्रकार के ऋतु दोप दूर होकर स्त्रियो का वन्ध्यत्व मिट जाता है, जिनका गर्भ हमेशा गिर जाता हो, रजोदर्शन के समय कष्ट होता हो उनके सव विकार इस प्रयोग से दूर होते हे ।

—सु० प्र० सग्रह

४. कष्टार्तवहर वटिका—सोया का वीज ३०० ग्राम, गाजर वीज ३०० ग्राम, उलटकम्वल ३०० ग्राम, वास की जड ३०० ग्राम सवको जौकुटकर १२ ५ लीटर जल मे मिलाकर मिट्टी के पात्र मे क्वाथ तैयार करे । जव ३ लीटर जल शेप रहे तो अग्नि पर से उतारकर छान ले और फिर इसी दवा मे १२ ५ लीटर जल डालकर क्वाथ करे । तीन लीटर शेप रहने पर छानकर पहले क्वाथ मे मिला दे और कढाही मे डालकर घन तैयार करे ।

उपर्युक्त घन २ भाग, हीरावोल २ भाग, शुद्ध सुहागा १ भाग, मुमन्वर १ भाग, शुद्ध हींग १ भाग सभी को पीसकर मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करे । इसके पश्चात् ४७५ मि० ग्रा० की गोलिया वना ले और सुखाकर सुरक्षित रखे ।

१-१ गोली सुवह-शाम गरम जल मे मासिक आने से एक सप्ताह पूर्व से ही सेवन करावे ।

—श्री डा० नागेश्वरप्रसाद साहा द्वारा
धन्व० सफल सिद्ध प्रयोग १९७८ से ।

५. ऋतुविकारहर कवच—उलटकम्वल की छाल ले यवकुट कर आठ गुने पानी मे २४ घण्टे भिगो घनसत्व प्राप्त करे । इस घनसत्व मे प्रति १० ग्राम पर ११ कालीमिर्च का चूर्ण तथा १२५० मि० ग्रा० हिंगुल रसायन मिलाकर दश कैंपसूल भर ले ।

१-१ कैंपसूल प्रात-साय शीतल जल से दे । इसके सेवन से ऋतु विकार, गर्भाशय विकार दूर होकर ऋतुचक्र नियमित होता है और गर्भाशय वल प्राप्त करता है ।

—श्री मोहरसिह आर्य द्वारा
सुधानिधि सितम्बर ७५ से ।

६. रजोरोधहर कल्प—उलटकम्वल की ताजा जड ६ ग्राम, कालीमिर्च ११ नग के साथ पीसकर ऋतुधर्म होने से एक सप्ताह पूर्व आरम्भ कर ऋतुधर्म होने तक सेवन कराये । यदि किसी स्त्री का ऋतुधर्म कई मास से वन्द हो तो चन्द्रमा की चाल के अनुसार शुक्लपक्ष की पहली तिथि से आरम्भ करे । जव तक ऋतुस्राव न होने लगे देते रहे । —वैद्य श्री गुगनराम यादव द्वारा
धन्व० नारी रोगाक १९८० से ।

७. गर्भाशय पुष्टिकर क्वाथ—उलटकम्वल १० ग्राम, काले तिल १० ग्राम, पुराना गुड़ १० ग्राम लेकर इसे ३२० मि० लि० जल मे मिट्टी के पात्र मे रखकर औटावे । क्वाथ को मन्द अग्नि पर ही पकावे जब ४० मि० लि० शेप रहे तव छानकर पिलावे । इससे मासिक धर्म की अशुद्धि दूर होकर गर्भाशय पुष्ट होता है ।

यह क्वाथ मासिकधर्म की अनियमितता एव कृच्छ्रता मे उपयोगी है । गर्भवती एव उक्त व्याधि से आक्रान्त न होने की स्थिति मे इसे उपयोग मे नही लाना चाहिये ।

—आयुर्वेदाचार्य श्री चन्द्रशेखर जी जती

उशीर [Vetiveria zizanioides]

उशीर या खस एक असन्दिग्ध मूलिनी द्रव्य है। लामज्जक और उशीर का भेद बतलाते हुए चक्रपाणिदत्त लिखते है—'लामज्जकोशीर उशीरद्वय सगन्ध अगन्ध च गृह्यते।' (च० स० सूत्रस्थान अ० २५) उशीर अगन्ध होगा यह कल्पना नही की जा सकती पर लामज्जक उग्रगन्ध हो तो उसकी तुलना मे उशीर की सौधी या सौम्य गन्ध की कल्पना की जा सकती है—ऐसी एक उग्रगन्ध घास जिसकी जड भी उग्रगन्ध वाली है ठाकुर बलवन्तसिह के मत मे वह Cymbopogon jwarancusa Schult है। डल्हण भी लामज्जक को उशीर भेद मानता है (सु० स० सू० स्थान अ० ३८) वही उत्तरतन्त्र अ० ४७ मे लामज्जक पर्वतोद्भूत मूलम् (किसी पर्वती घास की जड) कहकर अन्ये उशीरमाहू (कुछ उसे उशीर कहते है) लिख उसकी पहचान को और उलझा देता है।

नलद शब्द मे टीकाकारो ने उशीर, लामज्जक, ह्रीबेर और जटामासी का ग्रहण किया है। पर पहले तीन शब्द योगो मे साथ-साथ देखे जाने से नलद उनका पर्याय नही हो सकता। इससे आजकल जटामासी ली जाती है। जटामासी के लैटिन नाम Nardostachys jatamansi Dc मे प्रथम नार्डस शब्द को कुछ विद्वान् नलद का ही अपभ्रंश मानते है।

खोरी की मैटीरिया मेडिका मे उशीर को बल्य (Tonic), उत्तेजक (स्टीम्यूलेट), आक्षेपहर (एटीस्पाज्मोडिक), स्वेदकर (डायफोरेटिक), मूत्रल (डायूरेटिक) तथा आर्तवकर (इमेनागौग) बतलाया है, अपस्मार (हिस्टीरिया), आक्षेप (कन्वल्जन्स), आर्तवदोष, आमवात और वातरक्त मे उपयोगी कहा है। हम मात्र उसीर के फाट के प्रयोग से १-१ कप ३-४ बार देकर ज्वरो के हाई टैम्परेचर को बिना पैरासीटामोल के कम करते है।]

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

[उशीर पर नीचे सम्पादक वैद्यराज पारीक ने कलमतोड मीमासा की है। बहुत खोज से और बहुत परिश्रम से महत्त्वपूर्ण विवरण सर्वतोभावेन प्रस्तुत कर सुधानिधि की विशेपाक परम्परा मे चार चाद लगा दिये हैं। पाठक उससे लाभ उठावे।

चरकसहिता मे तिक्त स्कन्ध के अन्तर्गत उशीर का उल्लेख है। तिक्त रस प्राय कफ पित्त शामक होता है—

तिक्त स्वयमरोचिष्णुररुचि क्रिमितृड्विषम्।
कुष्ठमूर्च्छाज्वरोत्क्लेशदाहपित्त कफान् जयेत्॥
क्लेदमेदोवसामज्जशकृन्मूत्रोप शोषण।
लघुर्मेध्यो हिमो रूक्ष स्तन्यकठ विशोधन॥
—अ० हृ० १०-११-१२

शरीर के वर्ण (कान्ति) को सुधारने वाले द्रव्य को वर्ण्य कहते हैं—"वर्णाय हित वर्ण्यम्।" भगवान् चरक ने सूत्रस्थान अध्याय चार मे "दशेमानि वर्ण्यानि" के अन्तर्गत उशीर को भी कहा है।

स्त्रियो के स्तन (दूध) को उत्पन्न करने वाले और बढाने वाले द्रव्य को स्तन जनन कहते हैं। इसे अग्रेजी मे गैलक्टगौगू (Galactogogue) कहते हैं। स्तन्य जनन दश द्रव्यो मे उशीर को प्राथमिकता दी गई है देखे— —चरक० सू० ४-१२

आमाशय मे क्षोभ होने पर छर्दि होती है अत. आमाशय को छर्दि का अधिकरण मानकर चिकित्सा की

जाती है। इसके उग्ररूप मे मस्तिष्क किंवा सुषुम्ना शीर्षक को केन्द्र मानकर चिकित्सा की जाती है। आमाशय कफ व पित्त का स्थान होने से छर्दि मे प्राय कफ-पित्त शामक द्रव्यो का प्रयोग किया जाता है। भगवान् चरक ने जो दश छर्दिनिग्रहण द्रव्य कहे हैं उनमे उशीर भी कफ पित्त शामक होने से छर्दिनिग्रहण कहा गया है।

उक्त दशों द्रव्य प्राय· कफपित्तशामक है—

१	जम्बु पल्लव	— कफपित्तहर —	जाम्बव कफपित्तजित	—भाव०
२	आम्र पल्लव	— कफपित्तहर —	पल्लव. कफपित्त विनाशन ।	—भाव०
३	मातुलुङ्ग (मधुर)	— वातपित्तहर —	मारुतपित्तजित् ।	—सुश्रुत
४	अम्लवदर	— कफपित्तहर —	कर्कन्धुकोलवदरयाम पित्तकफापहम् ।	—सुश्रुत
५	दाडिम (मधुर)	— त्रिदोपहर —	त्रिदोषघ्न तु मधुरम् ।	—सुश्रुत
६	यव	— कफपित्तहर —	श्लेष्मपित्तप्रणाशन ।	—भाव०
७	षष्टिक	— त्रिदोपहर —	त्रिदोषघ्न स्थिरात्मक ।	—चरक०
८	उशीर	— कफपित्तहर —	उशीर कफपित्तजित् ।	—मदन०
९	पीतचन्दन	— कफपित्तहर —	श्लेष्मपित्तास्रदाहनुत् ।	—भाव०
१०	लाजा	— त्रिदोपहर —	लाजाश्छर्दिघ्नानाम् ।	—वृ० वाग्भट

इसके अतिरिक्त बाह्याभ्यन्तर दाह (उष्णता) का शमन करने के कारण चरक० सू० ४/१७ मे यह दाह प्रशमन भी कहा गया है।

महर्षि सुश्रुत ने सूत्र स्थान के सशोधन सशमनीय नामक एकोनचत्वारिंशत अध्याय मे जो दोष सशमन द्रव्य कहे है, उनमे पित्त सशमन नामक विशेष वर्ग के अन्तर्गत उशीर को लिया है। इसके अतिरिक्त सारिवादिगण मे इसका वर्णन है। इस गण के गुणो मे कहा गया है—

सारिवादि पिपासाघ्नो रक्तपित्तहरो गण ।
पित्त ज्वर प्रशमनो विशेषाद्दाहनाशन ॥
—सु० सू० ३८/४०

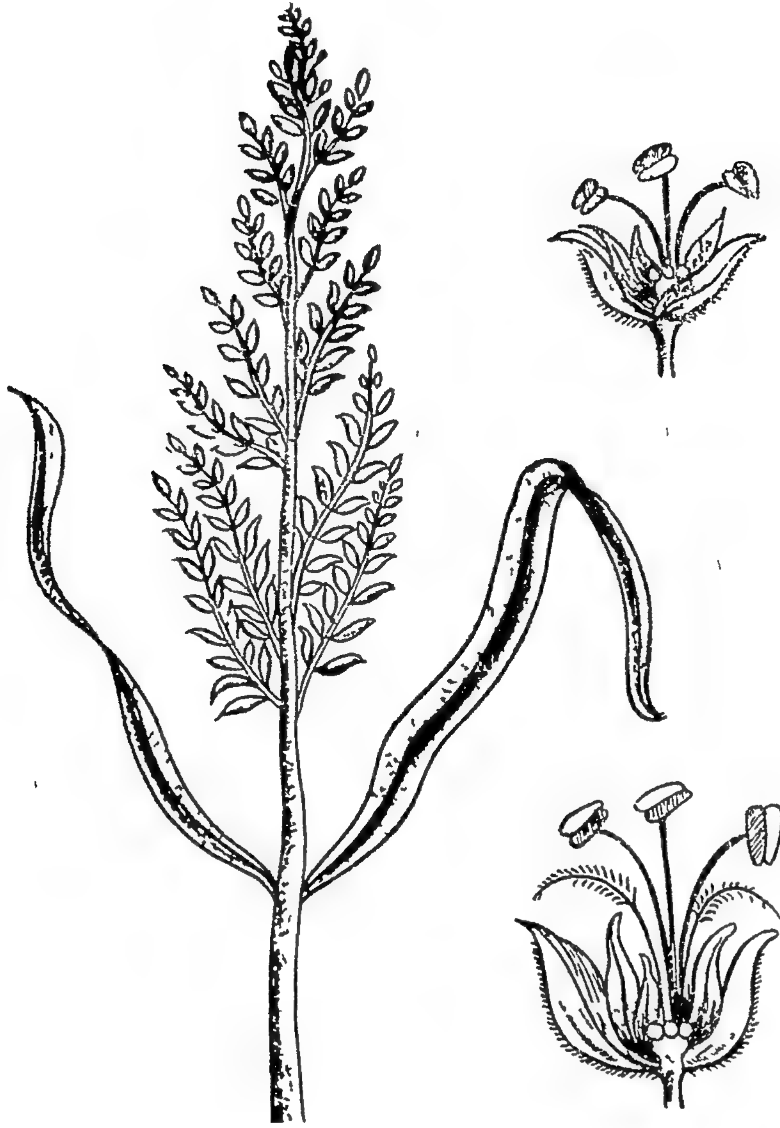
इसी गण के द्रव्य एव गुणो को महामति आचार्य वाग्भट ने एक श्लोक मे ही इस प्रकार व्यक्त किया है —

सारिवोशीरकाश्मर्यमधूकाशिशिरद्वयम् ।
यष्टी परूपक हन्ति दाहपित्ता सृतृड्ज्वरान् ॥
—अ० हृ० सू० १५/११

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह यवकुल (ग्रामिनी-Graminae) की औषधि है। इस वर्ग मे यव, इक्षु, वश, दर्भ आदि प्राय ९ औषधिया है। भावप्रकाश निघण्टु मे कर्पूरादि वर्ग मे इसका वर्णन किया गया है। आचार्य प्रियवृत जी शर्मा ने अपने प्रसिद्ध द्रव्य गुण-विज्ञान मे स्वेदापनयन द्रव्यो मे इसका सर्वप्रथम वर्णन किया है।

पित्त स्थानो मे स्वेद की गणना की गई है—"स्वेदो रसो लसीका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि" (चरक० सू० २०/८)। और प्रकुपित पित्त विकारो मे' 'अति-स्वेद" की गणना की गई है। वसवराज ने २४ पित्त जन्य व्याधियो का वर्णन किया है उनमे एक "स्वेदपित्त" नामक व्याधि का वर्णन किया है। पित्त प्रकृति वाले पुरुष के वर्णन मे महर्षि सुश्रुत ने सर्वप्रथम "स्वेदनो दुर्गन्ध" कहा है। त्वचा ही स्वेद का आश्रय है। स्वेद और मेद की ग्रन्थिया प्राकृतिक स्थिति मे जिससे प्रभावित होती है और अपना कार्य करती हैं उसे "भ्राजक-पित्त" कहते है यह त्वक्स्थ है—"यत्तु त्वचि पित्त भ्राजकोऽग्निरिति सज्ञा।" आचार्य रामरक्ष जी पाठक ने कहा है—"इस भ्राजक पित्त का सम्बन्ध हमारी राय मे वसाख्य तेज से है।" सुतरा कहा है—"स्वेदोवहाना स्रोतसा मेदो मूल लोपकूपाश्च (चरक० वि० ५)"।

इस कथन का अभिप्राय यह है कि पित्तशामक उशीर को स्वेदापनयन कहना उचित ही है। स्वेदापनयन द्रव्यो



उशीर-खस [Vetiveria zizanioidis]

विभिन्न नाम : संस्कृत-उशीर, नलद, सेव्य। हिन्दी-खस। गुजराती-वालो। मराठी-वाला। बंगाली-खसखस। अंग्रेजी-खसखस ग्रास। लैटिन-वेटिवेरिया जिजेनिआयडिस (लिन नाश)।

प्राप्ति स्थान : दक्षिण भारत, बंगाल, राजस्थान।

उपयोगी अङ्ग : मूल। **दोषशमन** : कफपित्त शामक।

रोगोपयोग : रक्तपित्त, दाह, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र आदि।

मुख्य योग : उशीरासव, उशीरादि चूर्ण, षडंगपानीय आदि।

मे इसका प्राथमिक वर्णन वस्तुत उपयुक्त है। भगवान् चरक ने भी कहा है—"उशीर स्वेदापनयन प्रलेपानाम्"

—चरक० सू० २५

नाम—

संस्कृत— उशीर (कान्तिवर्धक), नलद (गन्ध देने वाला) सेव्य, अमृलाल, समगन्धक, जलवास, वीरणमूल।

हिन्दी—खस।

मराठी—वाला।

गुजराती—वालो।

बंगला—खसखस, वेनाचास।

तामिल—वेहिवेर।

तेलगु—वेट्टिवेल्लु।

अंग्रेजी—खसखस ग्रास (Khasphas Grass)।

लैटिन—वेटिवेरिया, जिजेनिआयडिस (लिन) नाश Vetiveria zizanioides (Linn) Nash

सिन्धी—तिन।

पंजाबी—पन्नि।

अरबी—इसखिर।

फारसी—खस, विखिवाला।

राजस्थानी—खस।

उत्पत्ति स्थान—यह दक्षिण भारत, बंगाल, राजस्थान एव छोटे नागपुर मे विशेषत नदियो के उपकूल और जल प्राय स्थानो पर होता है।

रासायनिक संगठन—इसमे एक उडनशील तैल, रूल, रगद्रव्य, स्वतन्त्र अम्ल, चूने का एक लवण, लौह का आक्साइड और काष्ठ भाग होता है।

वानस्पतिक परिचय—उशीर वीरण (गाडर) नामक तृण की जड है। यह तृण कुश के समान बहुवर्षीय क्षुप है। इसकी जडे जमीन मे २ फीट से भी अधिक गहरी होती है। जड मे एक मनमोहक सुगन्ध आती है। इसे ही उशीर के नाम से जाना जाता है। इसका काण्ड भी सुगन्ध युक्त २-५ फुट ऊंचा होता है।

पत्र—१-२ फुट लम्बे, ३ इन्च तक चौडे, भीतर की ओर रोमश तथा ऊपर की ओर चिकने, प्राय सीधे होते हैं।

पुष्पदण्ड—४-१२ इन्च लम्बा, गोलाकार या पिरामिड के आकार का होता है। पुष्प हरित पीत रक्त होते हैं।

वर्षाकाल मे पुष्प और उसके बाद फल लगते हैं।

भेद—उशीर एक प्रकार का होते हुये भी इसके कई प्रभेद प्राप्त होते हैं। "क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान" के यशस्वी लेखक आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी ने उशीर और इसके प्रभेद लामज्जक मे निम्नांकित भेद प्रकट किया है—

उशीर	लामज्जक
१ उशीर मोटे मेल का होता है।	१ लामज्जक पतली नलका बहुश सूक्ष्म उपमूलो से आवृत होता है।
२ उशीर भली-भांति जल मे फूल जाने के पश्चात् अपनी गन्ध विखेरता है।	२ लामज्जक जल मे डालने के साथ ही अपनी सुगन्ध फैलाता है।
३ उशीर स्पर्श मे कठोर होता है।	३ लामज्जक स्पर्श मे मृदु होता है।
४ उशीर का पृथक् क्षुप होता है।	४ लामज्जक का क्षुप उशीर से पृथक् होता है।
५ निघण्टुकारो ने इसका वर्णन पृथक् किया है।	५ इसका उशीर से पृथक् वर्णन किया है।

प० श्री भागीरथ जी स्वामी ने उशीर लामज्जक के भेद मे कहा है कि लामज्जक साधारण देश मे होने वाला तथा उशीर जल मे या जल के किनारे या पहले जहा जल हो पीछे सूख गया हो, ऐसे स्थान मे होता है। लामज्जक खस से लम्बाई मे छोटा होता है अत इसे "लघु" कहा गया है किन्तु लामज्जक का मूल बड़ा होता है अत. इसे "दीर्घमूलक" भी कहा गया है।

अमरकोषकार ने लामज्जक और उशीर को एक ही मान लिया है, यह ठीक नही है क्योकि दोनो को पृथक् निर्देशित किया गया है—

लामज्जककोशीर'' ' 'प्रलेपानाम् ।

—चरक० सू० २५

प० श्री भागीरथ जी स्वामी ने उदीच्य (सुगन्ध वाला) और उशीर को एक ही मानकर वर्णन किया है। उन्होने जो अभयम् के नाम से वर्णन किया है इसमे सुगन्धवाला और खस दोनो के मिश्रित प्रयोग लिखे है। उन्होने सुगन्धवाला को खस की जाति वाला तृण कहा है। उत्तर दिशा मे होने से सुगन्धबाला को उदीच्य कहा गया है। उत्तर दिशा से भिन्न प्राय सभी देशो मे होने वाला तृण जाति का सुगन्ध मूल वाला खस है। केवल स्थान भेद से ही इनमे भेद है।

उशीर और उदीच्य मे प्राय समानता होते हुए भी पार्थक्य है। दोनो के पर्यायो मे प्राय समानता है। दोनो ही शीतल तिक्त रस के है। दोनो ही पितशामक मूत्रल आदि गुण धर्मो के लिये प्रसिद्ध है। फिर भी दोनो मे अन्तर है तब ही तो दोनो का शास्त्रो मे पृथक् वर्णन है। प्रसिद्ध षडङ्गपानीय मे दोनो द्रव्यो की योजना की गई है। "पाठामुशीर सोदीच्य पिवेद्वा ज्वरशान्तमे" (च० चि० ३) एव "पत्राम्बुलौहामयचन्दनानि शरीर-दौर्गन्ध्यहर प्रदेह" (च० सू० ४) आदि स्थानो पर भी दोनो द्रव्यो की योजना करने का अभिप्राय दोनो द्रव्यो की पृथक् कामुकता सिद्ध करता है।

उशीर	उदीच्य
१ रस मे तिक्त मधुर होता है।	१ रस मे तिक्तकषाय है।
२ विपाक कटु होता है।	२ विपाक मधुर होता है।
३ पित्तकफ शामक है।	३ त्रिदोपशामक है।
४ उशीर की शीतलता एव सुगन्ध वायुमण्डल को प्रभावित कर सुगन्धित कर देता हे।	४ उदीच्य की शीतलता, सुगन्ध की अनुभूति औषधि रूप मे सेवन करने वाले को ही होती है।
५ शीतलता उदीच्य की अपेक्षा अधिक होने से अधिक प्रभावशाली है।	५ उशीर की अपेक्षा शीतलता कम होती है।
६. किंचित् वातकर होते हुए भी अपने प्रभाव से अङ्ग-मर्द एव कम्प आदि को शान्त करता है।	६ वेदना को दूर कर विपम वातादि दोषो को साम्या-वस्था मे स्थापित करता है।

उशीर का साहित्यिक महत्व—उशीर शीतल द्रव्य होने से ग्रीष्मकाल के वर्णन मे किंवा सताप शमनार्थ साहित्य मे इसका पदे-पदे वर्णन हुआ है। शृङ्गार वर्णन मे कवियो ने इसका वर्णन किया है। रसिक कवि लोलिम्बराज अपनी प्रियतमा को उशीर और चन्द्रमा की किरणो के समान शान्ति प्रदान करने वाली कहकर सम्बोधित करते हैं—

उशीरशीतद्युतिशीतलेप क्षणे क्षणे तापमपाकरोति।
सौधानि धाराधरचुम्बिनानि
हारीणी गीतानि निशामुखानि ॥

—वै० च० चिन्तामणि।

कविवर रामचन्द्र अपने राधाविनोद नामक काव्य मे चेतोहारी अनुप्रासमय भापा मे उशीर को इस प्रकार व्यक्त करते है—

मलयज तनुते ऽ ननु ते ननौ
सहचरी लिनी नलिनोदलम् ।
सुनयना ऽ नलद नलद च सा
तदपि सीदति सीदति वन्धुता ।।

राजा दुष्यन्त शकुन्तला के उशीर से सुगन्धित मृणालनिर्मित वलय को देखकर कहता है—

स्तनन्यस्तोशीर प्रशिथिलमृणालैकवलयम्
प्रियाया सावाध तदपि कमनीय वपुरिदम् ।
समस्ताप काम मनसिजनिदाघ प्रसरयो
न तु ग्रीष्मस्यैव मुभगमपराद्धं युवतिषु ।।
—अभि० शा० ३/१० ।

महाकवि हर्ष विरचित "नैषधीय-चरितम्" संस्कृत काव्य साहित्य का देदीप्यमान माणिक्य है । इसके लिए उक्ति है—"नैषध विद्वदोषधम्" । इसका नायक नल है और उशीर का भी एक पर्याय नलद है अत कवि ने मार्मिक युक्तियो से श्लेषालङ्कार मे इसका वर्णन प्रस्तुत किया है ।

दमयन्ती जव विरह के कारण मूर्च्छित हो गई तव उसकी यह दशा देखकर सखियो ने क्रन्दन करना प्रारम्भ कर दिया । जव यह क्रन्दन दमयन्ती के पिता महाराज भीम के कानो मे पहुँचा तो वे हडवडाते हुये दमयन्ती के पास दौडते हुए आये । अन्त पुर की देखभाल मे निमुक्त मित्रवर मन्त्री तथा तत्रस्थ प्राणियो के शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा मे नियुक्त वैद्यराज से भीम ने दमयन्ती के मूर्च्छा का कारण पूछा तो दोनो ने एक ही वाक्य कहा जिसके अर्थ पृथक्-पृथक् थे । मन्त्री के उत्तर का अभिप्राय था—इसमे ताप को वही शान्त कर सकता हे जो इसे नल (मिला) दे, दूसरा कोई नही । इसी प्रकार वैद्य के वाक्य का अभिप्राय था विना नलद (उशीर) के इसके ताप को कोई नही मिटा सकता है । मूल श्लोक है—

कन्यान्त पुरवाधनाय यदधीकारान्न दोषानृप
द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुन्यमगदङ्कारश्च तावूचतु ।
देवाकर्णय सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिल
स्यादस्या नलद विना न दलने तापस्यकोऽपिक्षम ।।
—नैषधीयचरितम् ४/११६ ।

रस—तिक्त, मधुर ।

गुण—रूक्ष, लघु ।

वीर्य—शीत ।

विपाक—कटु ।

दोषकर्म—तिक्त, रुक्ष, लघु होने से कफ का तथा शीत होने से पित्त का शमन करता है ।

प्रयोज्य अङ्ग—मूल ।

मूल परीक्षा—यह पतली-पतली दीर्घ सूत्रवत् मूल होती है । यह वाहर से पतली त्वचा द्वारा आवृत होती है । यह त्वचा पीतवर्ण की कुछ शिथिलता से भीतरी सीसक पर चढी होती है । वर्ण मे श्याव, पाण्डु व वादामी दिखाई पडती है । ये सूत्र क्षुप के मूल से निकले होते हैं । प्रधान मूल मोटी गाठदार और कई काण्डावरणो से आवृत होती है । आवरण हटा देने पर यह श्वेत, कठिन, स्थूल दिखाई पडती है । मूल त्वचा के हटाने पर भीतर पतला-सा ईषत् पीतवर्ण का सूत्रवत् भाग रहता है इसमे एक प्रकार की सुगन्ध पाई जाती है । यह टेढा-मेढा अधोगामी होता है । इस पर यत्र-तत्र सूक्ष्म सूत्र भी लगे पाये जाते है ।

यान्त्रिक परीक्षा—व्यस्तच्छेद लेने पर सबसे ऊपर पीले वर्ण का आवरण दिखाई पडता है । यह वाहर से पीतवर्ण का रूक्ष, भीतर से मसृण, ईषत् श्वेत वर्ण का होता है । ऊपर का भाग तनुकला से आवृत होता है । त्वचा में सूक्ष्म दानेदार भाग दिखाई देता है । सम्भवत. यह त्वगीय शिरामुख प्रतीत होते है । इसके नीचे का भाग काष्ठीय सूत्र कृत होता है । इसके भीतर छिद्र होता है ।

मात्रा—चूर्ण ३-६ ग्राम ।

इसका प्रयोग अर्क, हिम, फाण्ट या शर्वत के रूप मे विशेष हितकर होता है । जिनका वर्णन आगे किया जायेगा ।

अर्क, हिम मात्रा—२५-५० मि० लि० ।

फाण्ट—५०-१०० मि० लि० ।

उष्णकाल मे घरो के गवाक्षो पर उशीर की टाटिया वनाकर लगाई जाती है और इन पर थोडी-थोडी देर मे पानी छिड़का जाता है । पानी छिड़कने से इसकी सुगन्ध

बढती है और वातावरण को शीतल एवं सुगन्धित कर देती है । इसका उन भी बनाया जाता है ।

गुण-धर्म—

वीरणस्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदं च तत् ।
अमृणालं च सेव्यं च समगन्धकमित्यपि ॥
उशीरं पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ।
मधुरं ज्वरहृद्वातिमदजित्कफपित्तनुत् ।
तृष्णास्रविषवीसर्पदाहकृच्छ्र व्रणापहम् ॥
—भा० नि० ।

उशीरं शीतलं रूक्षं स्वादु. तिक्तं हिमं लघु ।
पाचनं स्तम्भनं हन्ति शोषदाहमदज्वरान् ॥
—कै० नि० ।

उशीरं शीतलं तिक्तं दाहश्रमहरं परम् ।
पित्तज्वरार्तिशमनं जलसौगन्ध्यदायकम् ॥
—रा० नि० ।

स्यात्तिक्तं ग्राह्युशीरं लघु हिममधुरं छर्दितृष्णास्रकृच्छ्रे ॥
—सि० भ० मणि० ।

उशीरं शीतलं तिक्तं स्तम्भनमामपाचनम् ।
ज्वरे दाहे रक्तपित्ते मूत्रकृच्छ्रे व्रणे तथा ।
तृष्णाच्छर्दिविसर्पेषु स्वेदाधिक्ये प्रशस्यते ॥
—प्रिय निघण्टु ।

प्राणाचार्य श्री सदानन्द शर्मा ने जो पित्तनाशक गण कहा है उसमे उशीर का प्रथम निर्देश किया गया है तथा शाखा (रस रक्तादि धातु एवं त्वक्) गत पित्त प्रकोप को शान्त करने वाला एक उत्तम प्रयोग वर्णित किया है—

पर्पटोशीरधान्यादिपित्तघ्नक्वाथसयुतम् ।
चन्द्रलोह निहन्त्याशु पित्त शाखासमाश्रितम् ॥
—र० त० १६/६६ ।

सिद्धमन्त्र मे भी "वातकृत् कफपित्तघ्न" वर्ग के अन्तर्गत इसका उल्लेख है । इसके अतिरिक्त यह शरीर को सुगन्धित बनाने हेतु भी प्रयुक्त होता है—च० सू० ३/२९ । कामरत्नकार का एक प्रयोग है—

उशीरकृष्णागुरुचन्दनानि पत्राम्बुतुल्यानि समानि पिष्ट्वा ।
एतानि गात्रेषु विलासिनीना श्रीखण्डतुल्य प्रकरोति गन्धम् ॥

"ज्वरप्रत्यात्मिक लिङ्ग सतापो देहमानस." के अनुसार ज्वर मे पित्त की प्रधानता होती है अत यह ज्वर की प्रमुख औषधि है । डाबर द्वारा प्रकाशित आयुर्वेद विकास के ज्वर चिकित्साक (१९८५) मे आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी का एक उत्तम लेख है—'ज्वर के ऊपर अब तक किये गये आविष्कार" । इसमे आचार्य जी ने शास्त्रो मे वर्णित ज्वरघ्न द्रव्यो को सतापहरण गण, सतापहर वेदनानिग्रहगण, सतापहर रेचकगण और सतापहर कफश्वासहरणगण के रूप मे विस्तृत एव प्राञ्जल मनोहारी भाषा मे वर्णन किया है । जो जिज्ञासुओ को अवश्य ही देखना चाहिए । आचार्य जी ने इसमे पृथक्-पृथक् द्रव्यो का वर्णन किया है । प्रथम श्रेणी के सतापहर गण के अन्तर्गत उशीर, यवासा, इन्द्रयव, किराततिक्त, सिन्धुवार, त्रायमाण, सप्तपर्ण और कालमेघ को लिखा है । उन्होने लिखा है कि किंग जार्ज मेडिकल कालेज, आज का गाधी मेमोरियल मेडिकल कालेज मे इन औषधियो को परीक्षित किया और इस रूप मे पाया—१ इन्द्रयव, २ उशीर, ३ यवासा । इनको प्राणियो मे चूहो पर देखा । इन्द्रयव चूर्ण या क्वाथ चूहो के मुख मे डालते ही उनका तापमान गिर जाता था और वे मर जाते थे । उशीर द्वितीय स्थान पर था और यवासा तृतीय स्थान पर सतापहर पाया गया ।

भगवान् चरक ने पानीयसाधक षडङ्गप्रयोग मे उशीर की ज्वरहर उपयोगिता प्रकट की है । ज्वरघ्न, दीपन, दोषपाचन, तृष्णारुचिप्रशमन, मुखवैरस्यनाशन जो कषाय कहे गये है उनमे यह भी है—

पाठामुशीर सोदीच्य पिबेद्वा ज्वरशान्तये ।
—च० चि० ३/१६९ ।

वातज्वर मे—

उशीरकलशीमहौषधकिरातकाम्भोदर-
स्थिराबृहतिकाद्वयमृतलतात्रिकण्टै कृतम् ।
कषायकममु पिबेत् पवनजे ज्वरव्याकुल
पुमान्दशशतच्छदच्छदमदग्रसलोचने ॥
—वैद्य जीवन १/१७ ।

पित्तज्वर मे—

सतिलपलाषैर्जलनलदार्व्वै ।
शिशिरकषायो ज्वरमरमत्ति ॥
—सि० भै० मञ्जूषा ।

श्लेष्मपित्तज्वर मे—

विल्वोशीररसेनापि रमितासौ वटीक्षिता ।
श्लेष्मपित्त ज्वरहरी हरिणा हरिणेक्षणे ॥
—स० साम्राज्यम् ।

वातपित्तज्वर मे—

जलधररक्तमालोशीरदेवद्रुदोषा
कुलकमधुकनिंवक्वाथपान ज्वरस्य ।
जयति मत्सुमदग्रे वातपित्तोद्भवस्य
द्रुतमपि मददाहग्लानितृष्णायुतस्य ॥ —त्रिशती ।

यह शीतसग्राहक होने से अतीसार विशेषत पक्वातिसार मे लाभप्रद है । रक्तातिसार या ज्वरातिसार को दूर करने वाले उशीरादि क्वाथ का वर्णन उपलब्ध है—भै० र० ज्वरातिसाराधिकार, च० द० ज्वरातिसाराधिकार मे जिसका उल्लेख आगे किया जायेगा । आचार्य वाग्भट का भी एक प्रयोग है—

जम्ब्वाम्रपल्लवोशीरवटश्रृङ्गावरोहज ।
क्वाथ क्षौद्रयुत. पीत शीतो वा विनियच्छति ।
छर्दि ज्वरमतीसार मूर्च्छा तृष्णा च दुर्जयाम् ॥
—अ० हृ० चि० ६/१५ ।

दूषित वृद्ध रक्त तथा प्रकुपित पित्त का मेल ही रक्तपित्त की उत्पत्ति करता है । उशीर रक्त प्रसादन तथा पित्तशामक होने से रक्तपित्त की श्रेष्ठ औषधि है । रक्तपित्त की प्रसिद्ध औषधि उशीरासव अपना विशिष्ट महत्व रखती है—

उशीरासवो वासवो वृत्रमारी
यथास्ते तथा रक्तपित्तप्रदारी ।
न किं पाण्डुकुष्ठप्रमेहप्रहारी
मतो वैद्यवर्यैर्महाशक्तिधारी ॥
—सि० भै० मञ्जूषा ।

भगवान् चरक ने तर्पण, हिम, यवागू कल्पनाओ मे उशीर का उल्लेख कर इसे रक्तपित्तहर कहा है । दो प्रयोग महत्वपूर्ण हैं—

जलञ्च चन्दनोशीरपर्पटाम्बुज जलम् ।
रक्तपित्त द्रुत हन्यादूर्द्ध्वेगं चाप्यधोगतम् ॥
उशीर चन्दन वासा द्राक्षा मधुकपिप्पली ।
कषाय. क्षौद्र सयुक्तो रक्तपित्तविनाशन ॥
—क्वाथ मणिमाला ।

उशीर का प्रभाव उदकधातु के विनिमय को रोककर स्तम्भन रूप मे क्रिया अवसादन के रूप मे पित्त शमन करता है । सुतरा यह तृष्णा की अन्वर्थ औषधि है—

पैत्ते द्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुततोयम् ।
—चरक० चि० २२/४१ ।

द्राक्षामलयजोशीर पद्ममूलाम्भसा सह ।
क्षौद्रान्विता जीवनीयं तृष्णा पित्तभवा हरेत् ॥
—स० साम्राज्यम् ।

चन्दनोशीरपानीयपानात्तृष्णाक्षयो भवेत् ।
—सि० भै० मञ्जूषा ।

भगवान् चरक ने पित्त के नानात्मज विकारो मे क्रमाङ्क तीन पर दाह की गणना की है । यह दाह विविध रोगो मे अन्तर्दाह, असदाह, त्वग्दाह, अङ्गदाह, उरोदाह, नाभिदाह, सर्वाङ्गदाह, कुक्षिदाह, हृद्दाह, कठदाह रूप मे उत्पन्न होकर सतप्त करता है । उशीर उत्तम दाह प्रशमन होने से इसका बहुश बाह्याभ्यन्तर प्रयोग होता है—

उशीरकालीयकलोध्रपद्मक-
प्रियगुकाकट्फल शङ्खगैरिका ।
पृथक्-पृथक् चन्दनतुल्यभागिका -
सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुता ॥
रक्तं सपित्तं तमकं पिपासा-
दाह चपीता शमयन्ति सद्य ॥
—चरक० चि० ४/७३

पटीरपर्पटोशीर नीर नीरद नीरजै ।
मृणालमिसि धान्याकपद्मकोमलकै. कृत ॥
अर्धशिष्ट श्रृत शीत पीत क्षौद्रसमन्वित ।
क्वाथो व्यपोहयेद्दाह नृणाञ्च परमोल्वणम् ॥
—भै० र०

द्रोणीमम्बुजमेव्य चन्दन जल क्षोदाम्बुभि॰ संभृतां पूर्णां वापि पयोदशीतलजलै॰ सद्योऽवगाहेत ना ।

—सि॰ भै॰ मञ्जूषा

इसके अतिरिक्त पैत्तिक प्रमेहो मे जो भगवान् चरक ने कषाय कहे है उनमे उशीर का वर्णन हुआ है—

उशीरलोध्राञ्जन चन्दनाना मुशीरमुस्तामलकाभयानाम् ।

—च॰ चि॰ ६/३०

आचार्य वाग्भट एवं शार्ङ्गधर ने मुखपाक के पाच प्रकार वतलाये हैं किन्तु महर्षि सुश्रुत ने तीनो दोषो से उत्पन्न तीन प्रकार ही कहे हैं । साथ मे ही "रक्तेन पित्तोदित एक एव" कहकर एक प्रकार के होने का मत भी स्वीकार किया है । सुतरा इसमे पित्तशामक औषधियो का विशेष महत्व है—"सर्वपित्तहर॰ कार्य विधिर्मधुरशीतलम् ।"

स्वरचित "प्रयोग पुष्पाञ्जलि" का एक प्रयोग है—

खस पटोल निशा त्रुटि मालती-
मधुक आमय गालव गोस्तनी ।
क्वथित नीलसरोज दुरालभा-
मधु समेत हरे मुखपाक को ॥

साधकाख्य पित्त का स्थान हृदय कहा गया है । इसकी क्षीणता एव वृद्धि से नानाविधि रोगो का जन्म होता है । साधकपित्त की वृद्धि से स्रोतोरोध, वलभ्रंश, धमनी प्रतिचय, रक्तचाप, हृद्रव, हृदुष्णता, श्रमश्वास, अनिद्रा आदि विकार होते हैं । पित्तज हृद्रोग मे तो पित्त जन्य लक्षण होते ही हैं ।

पित्तात्तमोदूयनदाहमोहा. सत्रासताप ज्वरपीतभावा. ।

—च॰ चि॰ २६.

इसकी चिकित्सा मे कहा गया कि उशीरादि से निर्मित कषायदि प्रयुक्त करें ।

पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैं शृतम् ।
घृतं कषायाश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥

—सु॰ उ॰ ४३/१५

मधुरै शृत काकोल्यादिभि॰ पक्वम् । पित्तज्वरविनाशनान् कपायान् चन्दनोशीर श्रीपर्णीत्यादिनोक्तान् ।

—डल्हण

यद्यपि रसधातु द्वारा शरीर धातुओ का पोषण कहा गया है, तथापि रस द्वारा रक्त का पोषण होकर आगे रक्त द्वारा शरीर धातु पोषण वतलाया है—

तेषा (शरीरधातूना) क्षयवृद्धी शोणितनिमित्ते"

यह रक्त पित्त के प्रकोप से ही प्रकोप को प्राप्त होथा है—"पित्त प्रकोपणैरेव चाभीक्ष्णम् असृक् प्रकोपमापद्यते" (सु॰ सू॰ २१) यह प्रकुपित रक्त रक्तपित्त, विसर्प, मुखपाक, रक्तमेह, प्रदर, वातरक्त, वैवर्ण्य, मन्दाग्नि, तृष्णा, सन्ताप, अरुचि, शिर शूल, क्लम, विदग्धाजीर्ण, क्रोध प्राचुर्य, वुद्धिसमोह, लवणास्यता, दौर्वल्य, अतिस्वेद, शरीर दौर्गन्ध्य, स्वरक्षय, कण्डु, तन्द्रा, कुष्ठ, रक्तचाप आदि रोगो की उत्पत्ति मे कारण वनता है । इन रक्तविकृतिजन्य रोगो का चिकित्सा सूत्र है—

कुर्याच्छोणिरोगेषु रक्तपित्तहरी क्रियाम् ।

उशीर तिक्त होने से इस निमित्त श्रेष्ठ लाभ पहुँचाता है ।

अन्त मे स्रोतो के अनुसार इसकी सम्पूर्ण कार्मुकता का दिग्दर्शन कराना उपयुक्त समझता हूँ—

१. **उदकवह स्रोत**—यह तिक्त एव शीत होने से तृष्णानिग्रहण, तालुपाकहर, क्लोमशोषहर है ।

२. **अन्नवह स्रोत**—शीत होने से आन्तरिकदाहहर, नाभिपाकहर तथा दीपन पाचन होने से अग्निमाद्यहर तथा छर्दिनिग्रहण है । ज्वरशामक भी है ।

३. **पुरीषवह स्रोत**—शीत व ग्राही होने से रक्तार्श एव रक्तातिसार मे लाभप्रद है ।

४. **मूत्रवह स्रोत**—शीत होने से मूत्रजनन है अत मूत्रकृच्छ्रता मे लाभदायक है ।

५. **स्वेदवह स्रोत**—स्वेदापनयन (वाह्य प्रयोग मे), स्वेदजनन (ज्वरादि मे अन्त प्रयोग से) तथा स्वेददौर्गन्ध्यहर है । वाह्य प्रयोग से दाह प्रशमन, त्वग्दोषहर एवं वर्ण्य है ।

६. **रसवह स्रोत**—शीत होने से हृदय की अतितीव्रता एव दुर्वलता को यह नष्ट करता है । रक्त प्रसादन होने से धमनी प्रतीचय मे लाभप्रद है । विषहर भी है ।

७. रक्तवह स्रोत—सिरापूर्णता, विवर्णता वमन आदि को नष्ट करता है। रक्तरोधक होने से रक्तपित्त की श्रेष्ठ औषधि है।

८. मांसवह स्रोत—कफशामक होने से त्वक्-श्लक्ष्णता को दूर करता है।

९. मेदोवह स्रोत—कटुपौष्टिक होने से कार्श्य, शोष का शमन करता है।

१० अस्थिवह स्रोत—सामान्य, दौर्बल्य को दूर करता है।

११. प्राणवह स्रोत—हृदय की दुर्बलता को दूर करता है। दीपन-पाचन होने से महास्रोत के विकारो का शमन करता है। तिक्त होने से कफनिःसारक है सुतरा कास, हिक्का श्वास मे लाभ पहुँचाता है। कास श्वासादि मे चूर्णादि का सेवन तथा इसके धूम का पान हितावह है।

मद-मूर्च्छा आदि पित्त प्रधान तथा मस्तिष्क दौर्बल्य जन्य विकारो को दूर करने मे यह प्रशस्त है।

यूनानी मतानुसार—यूनानी चिकित्सा पद्धति के अनुसार उशीर की जड कडवी होती है। यह दिमाग को ठडक पहुँचाने वाला है अत गर्मियो मे इसका प्रयोग लाभदायक है। गर्मी के दिनो मे इसके शर्बत के प्रयोग से अधिक प्यास शान्त होती है तथा इसके प्रयोग से लू लगने का भय नही रहता। दिमाग की गरमी के कारण जो मनुष्य पागलपन के शिकार हो जाते है उनके लिए इसका प्रयोग अधिक लाभप्रद होता है। इसके अतिरिक्त खून की खरावी से होने वाले रोगो मे, मस्तक की पीडा मे और अनैच्छिक वीर्य स्राव मे भी यह लाभप्रद है।

यूनानी वैद्यक मे दोष (अखलात) चार कहे गये है जिनमे सर्वश्रेष्ठ खिल्त या खून इसके बाद बलगम (श्लेष्मा) फिर सफरा (पित्त) और सर्वान्त मे सौदा या कर्षी (वात) है। ये सभी रक्त मे मिश्री भूत है अत इन्हे प्रत्येक को खिल्त (मिश्र) कहते। ये रक्त के साथ सारे शरीर मे सचार करते है प्राकृत अवस्था मे प्राकृत कार्य और-विकृत अवस्था मे विकृत कार्य करते हे। उशीर मुअदिलात सफरा (पित्त मशमन और मुकाव्वेआत खून (रक्तप्रसादन) है।

आधुनिक मतानुसार—डा० वा० ग० देसाई के मतानुसार उशीर मूत्रल ज्वर की उत्तम औषधि है। दस औंस खौलते हुये पानी मे [illegible] ड्राम खस का फाण्ट बनाकर पिलाने से [illegible] इन्द्रियो मे लाभ होता है।

यह उत्तेजक, अग्निदीपक और ज्वर को शान्त करने वाला है। इसका शीत निर्यास पित्तजन्य रोगो मे लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह शीत निर्यास ज्वर शामक, पौष्टिक और ऋतुस्राव नियामक है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह दिल के दर्द को शान्त करता है इसके अतिरिक्त ज्वर निवारक, अग्निदीपक, मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक और नींद लाने वाला है।

वाह्य प्रयोग—

१. रक्तार्श—गुदा मे चन्दनादि तैल या चमेली तैल लगाकर खस, मुलहठी, पद्मकाठ, लालचन्दन, कुश की जड, कास की जड के उबाले हुये पानी को ठडा कर टब मे भरकर उसमे रोगी को बैठाने से रक्तार्श के रोगी का दाह, रक्तस्राव आदि मिटता है।

२. कण्डू—खस, चन्दन और पद्माख का लेप कण्डू, पामा और विचर्चिका को दूर करता है।

३. विसर्प—[क] खस, त्रिफला, पद्माख, लाजवन्ती, अनन्तमूल तथा कन्नेर की जड का लेप कफजन्य विसर्प को मिटाता है।

[ख] खस, मजीठ, पद्माख, प्लक्ष, चन्दन, मुलहठी तथा नीलकमल को दूध मे पीसकर लेप करने से पित्तज विसर्प मे लाभ होता है।

४. शोथ—खस, नेत्रवाला, मुलहठी, लालचन्दन, मरोडफली, नरसल की जड, पद्माख और कमल का लेप पित्तजन्य शोथ को दूर करता है।

५. विद्रधि—खस, मुलहठी और चन्दन को दूध मे पीसकर लेप करने से पित्तज विद्रधि बैठ जाती है।

६. दाह—[क] खस, कमल, चन्दन, नेत्रवाला के चूर्ण को वर्षा जल मे आलोडित कर द्रोणी (टब) मे भरकर अवगाहन करने से दाह का शमन होता है।

[ख] खस और श्वेत चन्दन को पीसकर शरीर पर लेप करने से दाह मिटता है।

[ग] खस, लालचन्दन और पद्माख का क्वाथ कर शीत होने पर स्नान करने से भी दाह मिटता है।

[घ] खस को पानी मे पीसकर लेप करने से अथवा पञ्चाङ्ग को औटाकर स्वेदन करने से ज्वरजन्य उष्मा का शमन होता है।

७. **मसूरिका**—खस को जल मे घिसकर पुन -पुन लेप करते रहने से मसूरिका मे लाभ होता है।

८. **स्वेदाधिक्य**—उशीर, लोध्र की छाल और कमलपत्र को शरीर पर मलने से गर्मी से उत्पन्न स्वेद का नाश होता है।

आभ्यन्तर प्रयोग—

(१) ज्वर—[१] उशीर का क्वाथ बनाकर पिलाने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है एवं ज्वरजनित तृष्णा दाहादि का शमन होता है।

[ख] उशीर, नेत्रवाला, गिलोय, अरण्ड की जड, सुगन्ध वाला, नागरमोथा, पद्मकाष्ठ, भारङ्गी, पीपल और चन्दन—इन दस औषधियो को ३-३ ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर प्रात -साय सेवन करने से वात-पित्त-ज्वर दूर होकर अग्नि प्रबल होती हैं।

[ग] उशीर, परवल, मोथा, नेत्रवाला, लालचन्दन, कुटकी, सोठ, पित्तपापडा तथा अडूसा—इनका क्वाथ बनाकर पीने से तृषायुक्त कफपित्त ज्वर नष्ट होता है।

[घ] उशीर, कालीमिर्च, मुलहठी, सैंधानमक, कायफल तथा पीपल—इन्हे गर्म पानी मे पीसकर मृदु नस्य देने से त्रिदोष नष्ट होते हैं।

[ङ] उशीर, कुटकी, खरेटी, धनिया, पित्तपापडा तथा नागरमोथा—इनका क्वाथ पीने से दिन मे एक बार आने वाला सतत्-ज्वर नष्ट हो जाता है।

[च] उशीर, लालचन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनिया तथा सोठ—इनके काढे मे मिश्री तथा शहद डालकर पीने से तृषा एव दाहयुक्त तृतीयक ज्वर (तिजारी) दूर हो जाता है

[छ] उशीर, कुटकी और नागरमोथा—इनका क्वाथ पिलाने से जाकर आया हुआ ज्वर दूर हो जाता है।

[ज] उशीर और बिल्व का चूर्ण किवा क्वाथ विदमाशनजन्य कफपित्त ज्वर का नाश होता है।

[झ] उशीर, रक्तचन्दन, नेत्रवाला, नागरमोथा का हिमकषाय पित्तज्वर का शमन करता है।

[ज] उशीर किंवा वृहत् पचमूल एव उशीर का क्वाथ सूतिकाज्वर का शीघ्र शमन करने मे श्रेष्ठ है।

[ट] उशीर, अमलतास, नागरमोथा, देवदारु, हल्दी, परवल पत्र, मुलैठी, नीम की छाल का क्वाथ वातपित्त ज्वरहर है।

(२) मसूरिका—उशीर, रास्ना, दशमूल, गिलोय यवासा, धनिया, नागरमोथा को पानी मे पीसकर पीना वातजन्य मसूरिका मे लाभकारी सिद्ध होता है।

(३) तृषा—[क] उशीर, आमलक, नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, धनिया तथा श्वेतचन्दन को समभाग लेकर २० गुने पानी मे औटावे जब आधा पानी शेष रह जाय तब थोडा-थोडा पीने से तृषा, दाह एव ज्वर की शान्ति होती है।

[ख] उशीर और चन्दन को कुछ समय जल मे भिगोकर मसलकर वस्त्र से छानकर मिश्री मिलाकर पीने से तृषा का क्षय होता है।

[ग] उशीर, नेत्रवाला, दोनो चन्दन, पद्मकाष्ठ का कल्क मुख मे धारण करने से तृषा का शमन होता है।

[घ] उशीर, श्वेतचन्दन और कमल की नाल को पानी मे पीसकर उसमे मधु मिलाकर सेवन करने से पित्तजन्य तृषा मिटती है।

[ट] उशीर, श्वेतचन्दन, द्राक्षा और खजूर के कल्क को मधु मे मिलाकर सेवन करने से तृषा दूर होती है।

(४) रक्तपित्त—[क] उशीर, पित्तपापडा, नागरमोथा, नेत्रवाला, सफेद चन्दन तथा कमलपुष्प का क्वाथ पीने से उभय भाग से जाने वाला रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है।

[ख] उशीर, चिरायता और नागरमोथा के जलसाध्य रस मे पेया बनाकर पिलाने से रक्तपित्त का शमन होता है।

[ग] उशीर, पीतचन्दन, पठानीलोध, पद्माख, प्रियगु, कायफल, शख, गेरू अलग-अलग चन्दन के बराबर लेकर मिश्री मिले तण्डुलोदक मे आलोदित कर पीने से शीघ्र ही रक्तपित्त मिट जाता है। यह तमकश्वास, तृष्णा, दाह आदि का भी शमन करता है।

[घ] मूगो की खील, जौ, पिप्पली, उशीर, नागरमोथा, चन्दन सहित बला के स्वरस के कषाय मे एक रात भिगोकर प्रयोग करने से उदीर्ण रक्तपित्त भी शान्त हो जाता है।

[ड] उशीर, कमल, नीलकमल और चन्दन का शीतकषाय रक्तपित्त का शमन करता है।

(५) दाह—[क] उशीर और गुलाबपुष्प समभाग लेकर पीसकर तण्डुलोदक के अनुपान से सेवन करने पर दाह मिटता है।

[ख] चन्दन, नेत्रवाला, नागरमोथा, कमल, सौंफ और पद्माख के अर्धावशिष्ट क्वाथ को मधु के साथ सेवन करने से उल्वण दाह दूर होता है।

(६) अतीसार—उशीर, सुगन्धवाला, अरलू, लालचन्दन, धनिया, गिलोय, नागरमोथा, जवासा, पित्तपापडा तथा अतीस के क्वाथ से अतीसार मिटता है।

(७) प्रदर—उशीर, शतावरी, चन्दन, सारिवा, सुगन्धवाला, चौराई, मुनक्का, मजीठ, मुलैठी, कमलपुष्प के क्वाथ मे मिश्री एव मधु मिलाकर सेवन करने से प्रदर मिटता है। इसके प्रयोग से विषमज्वर, दाह, रक्तपित्त, उन्माद आदि भी दूर होते हैं।

(८) बालरोग—[क] उशीर के चूर्ण को मधु के साथ देने से बालको का कास-श्वास मिटता है।

[ख] उशीर के साथ मिश्री मिलाकर देने से अतीसार नष्ट होता है।

[ग] उशीर चूर्ण, कमलगट्टा की गिरी का चूर्ण अर्क केवडे के साथ देने से बालको की अधिक तृष्णा मिट जाती है।

(९) हृदयशूल—उशीर और पिप्पलीमूल के चूर्ण को गोघृत के साथ सेवन करने से हृदयशूल मिटता है।

(१०) रक्तविकार—उशीर चूर्ण के साथ शुद्ध गन्धक के सेवन से रक्तविकार मिटते हैं।

(११) कम्पवात—उशीर और शुण्ठी के चूर्ण को उष्ण जल से सेवन करना कम्पवातहर है।

(१२) मूत्रकृच्छ्र—उशीर को मिश्री के साथ दें अथवा उशीर, ईख का मूल, कुशामूल, रक्तचन्दन का क्वाथ या फाट बनाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र मे लाभप्रद है।

(१३) विसूचिका—उशीर और धान्यक का फाट अथवा पोदीने के अर्क मे उशीर का इत्र विसूचिका को दूर करता है।

(१४) अंशुघात—उशीर, गिलोय और चन्दन को समभाग लेकर यथाविधि क्वाथ बनाकर सितायुक्त सेवन से अशुघातजन्य उपद्रवो का शमन होता है।

(१५) शुक्राल्पता—उशीर, तालमखाना और सफेद चन्दन को समभाग लेकर चूर्ण बना दुग्ध के साथ कुछ समय सेवन करने से शुक्राल्पता दूर होकर वीर्य की वृद्धि होती है।

उशीर के आयुर्वेदिक सूचीभरण—पित्तदोष, अम्लपित्त, दाह, ताप, कृच्छ्ररोग, ज्वर, वमन आदि रोगो मे उशीर सूचीभरण अतीव उपयोगी है। उशीर दाह, ताप का शमन करता है। गर्मी मे लू लगने पर यह गुणकारी सिद्ध होता है। ज्वर मे अधिक प्यास और दाह आदि उपद्रव होने पर इसके प्रयोग से शान्ति प्राप्त होती है। खट्टी डकार आदि पर "अदरख" के साथ मिलाकर इञ्जेक्शन करना चाहिए। यह मूत्रल नही है फिर भी मूत्रकृच्छ्र मे उपयोगी है। वमन की अवस्था मे भी इसका प्रयोग लाभदायक सिद्ध होता है। 'उशीर' के साथ-साथ मुक्ता, मुक्ताशुक्ति आदि शीतल वीर्य औषधि को मिलाकर प्रयोग करने से शिशुओ को यकृत् दोष ठीक होते हैं। यह सस्ता और हानिरहित इञ्जेक्शन है।

सिद्धि फार्मेसी ललितपुर के 'उशीर' मे प्रति मि० लि० २ मि० ग्रा० उशीरक्षार और १ मि० ग्रा० उशीर सुरा रहता है तथा "बुन्देलखण्ड" के 'उशीर' मे १ मि० ग्रा० उशीर सत्व १ मि० लि० के हिसाब से मिलाया जाता है। यह एक सी० सी० × ६ एम्पुल, दो सी० सी०

×६ एम्पुल, १ सी० सी० ×१२ एम्पुल तथा २ सी० सी० ×१२ एम्पुल के वक्स मे रहता है। जी० ए० मिश्रा इसे १० मि० लि० और ५ मि० लि० के वायल मे वनाता है। यह चर्मरोग मे भी प्रयुक्त होता है। एक से दो सी० सी० की मात्रा मे सप्ताह मे दो या तीन वार मासपेश्यान्तर्गत अध. त्वचान्तर्गत या शिरान्तर्गत देना चाहिए। —वैद्यरत्न डा० श्री जयनारायण गिरि इन्दु धन्व० आयुर्वेदिक सूचिकाभरणाक से।

इसके अतिरिक्त साण्डू फार्मेसी वम्वई जो अशोक मिश्रण (महिला रोगोपयोगी) तैयार करती है। उसका भी उशीर प्रमुख घटक द्रव्य है।

विविध कल्पनायें—

(१) उशीरादि क्वाथ—[क] खस, पित्तपापड़ा, नेत्रबाला, नागरमोथा, सोठ और लालचन्दन ये सब द्रव्य समभाग लेकर जौकुट कर रख लें। इसमे से १० ग्राम लेकर उसको १ किलो २४० ग्राम जल मे मिट्टी के वर्तन मे पकावे। जब आधा जल शेष रह जाय तब नीचे उतार, ठंडा करके कपडे से छान ले।

ज्वर रोगी को जब प्यास लगे तब यह जल थोड़ा-थोडा पीने को दे। इससे प्यास और ज्वर का वेग कम होता है। यह षडङ्गपानीय ज्वर मे उत्तम पाचन है। सब प्रकार के ज्वरो मे इसका प्रयोग कर सकते हैं। प्रात काल औटाये जल को सायकाल तक और सायकाल औटाये हुए जल को प्रात काल तक काम मे लेना चाहिए। उबाले हुए जल को अपने आप शीतल होने दे, पखादि से ठण्डा न करे। —शार्ङ्गधरसहिता।

[ख] खस, पृश्निपर्णी, सोठ, चिरायता, नागरमोथा, शालपर्णी, दोनो कण्टकारी, गुडूची और गोखरू के वनाये हुए क्वाथ को वातज्वर से पीड़ित लोगो को पीना चाहिए। —वैद्यजीवन।

[ग] खस, नेत्रवाला, नागरमोथा, धनिया, सोठ, मजीठ, धाय के फूल, पठानी लोध, बेल की गिरी इनका क्वाथ बनाकर पीने से अग्नि प्रदीप्त होती है और अन्न तथा दोषो का पाचन होता है। अरुचि, मल का पिच्छिल होना, आमदोष, विबन्ध, अत्यन्त वेदना के साथ रक्तातिसार, ज्वरातिसार तथा अतिसार दूर होता है। —चक्रदत्त।

[घ] खस, रक्तचन्दन, नागरमोथा, गिलोय, सोठ, धनिया इनका क्वाथ वनाकर उसमे मधु तथा शर्करा मिलाकर सेवन करने से तृष्णा एव दाहयुक्त तृतीयकज्वर नष्ट होता है।

[ङ] खस, लालचन्दन, मुलैठी, गाम्भारी और फालसा इनका क्वाथ कर मिश्री मिलाकर पीने से पित्तज्वर का शमन होता हे।

[च] खस, रक्तचन्दन, नागरमोथा, परवल का पचाङ्ग, यवासा, गुडूची, सहदेवी, पाठा, नीम की छाल और कटेरी का क्वाथ रात्रि मे पीने से नवज्वर दूर होता है। —क्वाथ मणिमाला।

[छ] खस, चन्दन, मुनक्का और काले गन्ने के रस से बनाया हुआ क्वाथ प्यास, दाह तथा पित्त को दूर करता है।

[ज] खस, चन्दन, वासा, मुनक्का, मुलेठी और पिप्पली के क्वाथ मे मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त दूर होता हे। —क्वाथ मणिमाला।

[झ] खस, सुगन्धबाला, नीलोफर के फूल, धनिया, सफेद चन्दन, मुलेठी, हरी गिलोय और निशोथ इन आठो औषधियो का क्वाथ बनाकर मिश्री या मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त मिटता हे।

(२) उशीरादि चूर्ण—[क] खस, सुगन्धवाला, तेजपात, कूठ, आवला, सफेद मूसली, छोटी इलायची, रेणुका, मुनक्का, केसर, नागकेसर, कमल की भसीड़ (जड), कपूर (देशी), श्वेतचन्दन, लालचन्दन, सोठ, मिर्च, पीपर, मुलेठी, धान का लावा, असगन्ध नागौरी, शतावरी, गोखरू, काकडासिगी, चमेली की पत्ती, शीतलचीनी और चोरपुष्पी सव समान मात्रा मे लेकर कूट-पीस-छानकर सवसे दुगनी पिसी हुई शर्करा मिलाकर रखे। प्रात ६ ग्राम की मात्रा से इसे १२ ग्राम राव (मत्स्यण्डिका) तथा १२ ग्राम मधु के साथ मिलाकर सेवन करे। यह चूर्ण क्षय, रक्तपित्त, पाददाह, प्रदर, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, रक्तस्राव, वातव्याधि एव विशेषत प्रमेह को नष्ट करने मे श्रेष्ठ है। —योगरत्नाकर।

[ख] खस, तगर, सोठ, शीतलचीनी, श्वेतचन्दन, लौग, पीपरामूल, पिप्पली, इलायची, नागकेसर, नागर-

मोथा, मुलेठी, कपूर, वंशलोचन, तेजपात, काला अगर सब द्रव्य समान लेकर कूट-पीस-छानकर सारे चूर्ण से आठ गुनी शर्करा पीसकर मिलावे। १-२ ग्राम चूर्ण के सेवन से रक्तवमन तथा ताप का शमन होता है।

—भै० र०।

३. उशीरासव—खस, नेत्रवाला, सफेद कमल, गम्भारी का मूल या वृक्ष की अन्तर्छाल, नील कमल, प्रियगु, पद्माख, लोध, मजीठ, धमासा, पाढ के मूल, चिरायता, वड की अन्तर्छाल, गूलर के वृक्ष की अन्तर्छाल, कचूर, पित्तपापडा, केशर, दारुहल्दी, पटोल, कचनार की छाल, जामुन की छाल और मोचरस प्रत्येक ४८-४८ ग्राम लेकर उसका कपडछन चूर्ण करे। पीछे २४ किलो ५७६ ग्राम जल मे वह चूर्ण, जल से धोकर कुटा हुआ मुनक्का ६० ग्राम, धाय के फूल का चूर्ण ७६८ ग्राम, शक्कर (चीनी) ४ किलो ८०० ग्राम और शहद २ किलो ४०० ग्राम मिलाकर, सागौन की लकडी के पीपे मे या पेचदार ढक्कनी चीनी मिट्टी की वरनी मे भरकर १ माह तक रख छोडे। १ माह के वाद उसको कपडे से छानकर, उसी पात्र को जल से धोकर, उसमे भरकर, उसका मुह ठीक से वन्द करके रख दे।

२४ ग्राम उतना ही जल मिलाकर दे।

रक्तपित्त, रक्तप्रदर, प्रमेह, और रक्तार्श मे इसका प्रयोग करे। सब प्रकार के पित्त और रक्त विकृत प्रधान रोगो मे इससे अच्छा लाभ होता है। —शा० सहिता

४. उशीर का शर्वत—उशीर २५० ग्राम, जल एक किलो पानी २॥ किलो, तथा निम्बुसत्व १ ग्राम ८७५ मि० ग्राम मिलाकर यथाविधि शर्वत तैयार कर ले। ठण्डा होने पर मोटे कपडे से छानकर आवश्यकतानुसार तथा खाने का तरल हरा रङ्ग ऐसन्स खस आवश्यकतानुसार मिलाकर शीशियो मे भरकर रखे।

यह शर्वत अत्यन्त जायकेदार तथा सुमधुर है। प्यास, अन्तर्दाह, पेशाव मे जलन, मूत्रकृच्छ्र, श्रम, ग्लानि तथा शारीरिक और मानसिक थकावट को मिटाने वाला तृप्तिकारक तथा आनन्ददायक है। रक्तपित्त पित्तज्वर पित्त विकार, आखो मे लाली तथा जलन रहना आदि को भी नष्ट करता है। कितने ही लोग गर्मी के मौसम मे अपने स्वय के तथा परिवार के लिए इसका नित्य व्यवहार करते है। —आयुर्वेदसार सग्रह

५. सेव्याष्टकनस्य—खस, धुली हुई मोटी कालीमरिच, शुद्ध हिंगुल, सोठ, पीपल, नकछिकनी, सौंफ और तेजपात के कपडछन चूर्ण का नस्य देने मे समस्त शिरोरोग एव नेत्ररोग नष्ट होते हैं। —सि० भै० मणि०

६. उशीरादि हिम—उशीर, सुगन्धवाला, लालचन्दन, नागरमोथा और पित्तपापडा ६-६ ग्राम लेकर २६४ ग्राम पानी मे भिगो दे तथा प्रात काल मलकर छान ले फिर इसमे १२ ग्राम मिश्री मिलाकर सेवन करें।

इसके प्रयोग मे ज्वर, दाह, तृष्णा, छर्दि आदि का शमन होता है।

७. उशीरादि फांट—२५० ग्राम खौलते हुये पानी मे उशीर एव धनिया ८-८ ग्राम का मोटा चूर्ण डालकर पकावें।

इस फाट के सेवन से विसूचिका जनित वमन का शमन होता है।

८. उशीरादि तैल—उशीर ३ किलो, ८०० ग्राम का २४ किलो, ५७६ ग्राम जल मे चतुर्थाविशिष्ट क्वाथ, मूल एव फल सहित गोखरू ४ किलो ८०० ग्राम का २४ किलो ५७६ ग्राम जल मे चतुर्थाविशिष्ट क्वाथ, तिल तैल १ किलो ५३६ ग्राम, तक्र १ किलो ५३६ ग्राम और उशीर, तगर, कूठ, मुलहठी, चन्दन, वहेडा, हरड, शतावरी, पद्माख, नीलोफर, अनन्तमूल, वला, अश्वगन्धा, दशमूल, विदारीकन्द, काकोली, गुडूची, अतिवला, गोखरू, सौफ, हिंगुपत्री, सोवा प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेकर कल्क कर यथाविधि तैल पाक करे।

यह तैल मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी को नष्ट करता है तथा यह वलवर्ण कर, वृष्य, वातपित्त शामक है।

—भैपज्य रत्नावली

अनुभूत प्रयोग—

(१) रक्तप्रदरारि चूर्ण—खस, तुख्ममलगा, ईसवगोल की भुसी तीनो १०-१० ग्राम, वतासे १५ ग्राम, सवका महीन चूर्ण कर रख ले। शाम को ६० ग्राम दवा

१०० ग्राम जल मे काच के बर्तन मे डालकर भिगो देवे। प्रात मय जल की चार खुराक करके सुबह से शाम तक सेवन करे तो रक्तप्रदर मे विशेष लाभ होता है।

—वैद्य सुखदेवप्रसाद गुप्ता द्वारा
धन्वन्तरि नारी रोगाक से।

(२) जीवन सुधा अर्क—असगन्ध, खरैंटी, शतावरी, गगेरन, मुलहठी, काकडासिगी, छोटी पीपर, मुनक्का, उन्नाव, खूबकला, खस प्रत्येक २००-२०० ग्राम, कासनी के पत्र, तुलसीपत्र, तालीसपत्र, तेजपात, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, आवले का वक्कुल, हरड का वक्कुल, बहेडे का बक्कुल, कुरफा के बीज, धनिया, सौंफ, नागकेशर, गावजवा, वनफ्सा, गुलाब के फूल १००-१०० ग्राम, दालचीनी, छोटी इलायची, ५०-५० ग्राम, वासापञ्चाग, गिलोय १-१ किलो, छिले हुए पेठे के टुकडे बीज समेत २॥ किलो, सफेद कद्दू [लौकी] के टुकडे बीज आदि सहित ५ किलो, शुद्ध जल १५ किलो, गाय या वकरी का ताजा दूध १५ किलो।

समस्त काष्ठौषधियो को यवकुट कर १५ किलो जल मे २४ घण्टे भिगोकर रखना चाहिए। दूसरे दिन जल सहित भीगी हुई औषधि, पेठे के टुकडे, लौकी के टुकडे और दूध सभी द्रव्यो को भवका यन्त्र मे भरकर २०० बोतल अर्क खीच लेवे। अर्क की नलिका के अगले हिस्से मे जहा से अर्क गिरता है, छोटी इलायची के बीजो का चूर्ण, सफेद चन्दन का चूर्ण तथा केशर की पोटली बाध देने से अत्यन्त सुगन्धित केसरिया रग का अर्क निकलता है यही जीवनसुधा अर्क है।

२५-५० ग्राम तक दिन मे तीन बार।

यह अर्क यक्ष्मा, क्षय, कास, रक्तपित्त, ज्वर आदि विकारो के लिए अत्यन्त प्रभावकारी योग है। क्षय रोग की अवस्था मे जब स्वर्ण पर्पटी कल्प कराया जाता है और जल आदि का सेवन बन्द कर दिया जाता है उस समय जीवनसुधा अर्क का प्रयोग कराया जा सकता है।

—सुधानिधि प्रयोग सग्रह भाग ३ से।

(३) रक्तरोधक योग—भोजपत्र, पीपल की लाख, खस, माजू, सफेद चन्दन, कमलगट्टे की गिरी, मुलहठी, अजुवार, गोद बवूल, मोचरस, लोध्र, धाय के फूल, खूनखरावा, शुद्ध रसौत, गोद पलास, ईसबगोल की भुसी, माई, लाजवन्ती के फूल, वडी माई, लिसोडा, उन्नाव, विहिदाना, कुन्दरु गोद, खैरसार, सगजराहत, अडूसे के फूल, कल्वुलहज्र, फिटकरी का फूला प्रत्येक १०-१० ग्राम।

सबको कूट-पीस कपडछान करके उसके समभाग मिश्री मिला ले।

१॥ से ३ ग्राम तक शर्वत अजुवार या तन्दुल जल के साथ सेवन करावे।

ऊर्ध्व तथा अधोमार्ग जनित रक्तस्राव को रोकने के लिए वहुत उत्तम प्रयोग है अनेक वार इसकी परीक्षा की जा चुकी है। —श्रीमान् मुन्नालाल पाटनी द्वारा
प्राणा० प्रयोग मणिमाला से।

(४) शिरःशूल हर तैल—खस, वालछड, छारछबीला, कचूरकचरी, चन्दन सफेद, वुरादा, दालचीनी, अगर, तगर, रतनजोत प्रत्येक समभाग।

सव लेकर अर्थात प्रत्येक १०-१० ग्राम का चूर्ण ले। ७ दिन के पश्चात् मन्दाग्नि से गर्म कर ले जोश आने पर उतार कर ठण्डा करले। यदि चाहे तो कोई सुगधित इत्र मिला ले।

शिर शूल की अवस्था मे सिर पर मालिश के लिए उत्तम तैल है। अन्य शिरोरोगो यथा भ्रम शिर मे चक्कर आदि मे लाभ करता है।

—प० मनोहरलाल वैद्यराज द्वारा
धन्वन्तरि अनुभवाक से।

(५) गर्भस्राव हर चूर्ण—खश, नागकेशर, कमलगट्टा, वशलोचन, तीखुर, पठानी लोध्र, चन्दन सफेद, छोटी इलायची १०-१० ग्राम, मिश्री २० ग्राम।

कूट-पीस-छानकर सुरक्षित रख ले।

२-४ ग्राम दूध के साथ दिन मे २ वार।

यह गर्भपात नाशक अति उत्तम चूर्ण है इसके प्रयोग से प्रारम्भ हुआ रक्तस्राव रुक जाता है। इसके नियमित सेवन से गर्भपात होने का भय नही रहता।

—प० चन्द्रदत्त त्रिपाठी वैद्य द्वारा
धन्वन्तरि जन ३३ से।

उस्तखुद्दूस

(Lavandula stoechas Linn N. O. Labiatae)



इसके नामो और गुणधर्मो के विषय मे निम्नलिखित श्लोक द्वय याद किए जा सकते हैं—

अल्फाजनोस्तखुद्दूस इस्टीकास विधीयते ।
तृष्णाहृल्लासयो कर्त्ता पित्तलं वातनाशनम् ॥
अर्दिताङ्गवधञ्चैव कम्पवातञ्च विस्मृतिम् ।
अपस्मारामवातञ्च नाडीशूल व्यपोहति ।
कफघ्न कफवातघ्न ह्यामदोषहर तथा ॥

इसका एक नाम अल्फाजन है जो पुर्तगाली अल्फाझेमा का रूपान्तर है। इले उस्तखुद्दूस, उस्तोखुद्दूस, उस्तूखुदेस तथा इस्टीकास (Stoechas) नाम से पुकारते हैं। यह मस्तिष्क की सफाई करने या शिरोविरेचन होने से इसका एक नाम जारूबेदिमाग हमारे अग्रज पूज्य वैद्य वंशीधर त्रिवेदी कहा करते थे। यह वहुत गरम होने से पित्तकारक, प्यास वढाने वाला और मिचली भी पैदा कर देता है। इसे भुलक्कडो की दवा भी कह सकते हैं क्योकि यह स्मृतिभ्र श को दूर करता है। अर्दित, एकाङ्गवध, पक्षवध, उभय पक्षवध, अपस्मार, कम्पवात, आमवात और नाडीशूल (Neuralgia) को नष्ट करने की शक्ति रखता है। यह कफनाशक, कफवातहर, आमदोषहर तथा उत्तेजक भी है।

—**रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी।**

यह तुलसी कुल (लैबिएटी Labiatae) की एक क्षुपजातीय यूनानी वनौषधि है।

नाम—

हिन्दी—धारू, उस्तूखूदूस, अल्फाजन।

अरबी—आनिसुल् अरवाह, मुम्सिकुल अ्रवाह, ह्राफिजुल् अरवाह।

फारसी—उस्तखुद्दूस।

मराठी—आलफाजान।

बंगला—तुनसुना।

गुजराती—लवेन्डरनु फूल।

अग्रेजी—अरवियन ऑर फ्रेञ्च लैवेण्डर (Arabian or French Lavender)।

लैटिन—लैवेण्डुला स्टीकस लिन (Lavandula Stoechas Linn)।

उत्पत्ति स्थान—इसका मूल उत्पत्ति स्थान अरव देश है। यह भूमध्य सागर के तट से लेकर एशिया मायनर तक के क्षेत्र मे होता है। पश्चिमी भारत के कुछ उद्यानो मे भी यह लगाया जाता है। वैसे हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से भूटान तक ४ हजार से ११ हजार फीट की ऊचाई तक पाया जाता है।

सुखाया हुआ क्षुप तथा इसके पुष्प फारस की खाडी से बम्वई मे आयातित होते है।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्पो से एक रक्ताभ पीतवर्ण का सुगन्धित तैल प्राप्त होता है।

वानस्पतिक परिचय—यह शरदृऋतु मे उत्पन्न वर्षायु क्षुप है जो जगल किंवा पहाड की तर भूमि मे उत्पन्न होता है। क्वचित् रवी की फसल मे उग आता है। क्षुप २-३ फीट ऊचा होता है जिसमे तीव्र कर्पूर सदृश गन्ध आती है। काण्ड खर होता है। ये क्षुप जगली तुलसी के समान होते है।

पत्र—वृन्तरहित, आयताकाप, रेखाकार होते हैं।

पुष्प—बैंगनी रङ्ग के, सघन मजरियो मे, रोमश एव कर्पूर गन्ध होते हैं। पुष्प के ऊपर पुष्पत्र जौ की बाली की तरह होते हैं। इन्हे सूघने से छीके आती हैं।

बीज—पुष्प के अन्दर ही बीज मालकागनी के बीजो किंवा राई सदृश छोटे, चपटे तथा श्याम पीत वर्ण के होते हैं। इन्हे मसलने पर इनसे भी कपूर की-सी गन्ध आती है।

भेद—यद्यपि यह एक प्रकार का ही है किन्तु स्थान भेद मे इसके स्वरूप मे तथा गुणो मे अन्तर है। विदेशी उस्तूखूदूस का अधिक महत्व है। देशी उस्तूखूदूस की भी दो प्रजानिया पाई जाती है। भारत मे होने वाले इस देशी उस्तखूदूस के फूल खुरदरे, कलौछ लिए हुए पीले और नीलिमायुक्त श्वेतवर्ण के रोमरहित होते है। कोई बीज रहित और अत्यन्त सूक्ष्म पीले व सफेद रग के बीजों से युक्त होते हैं। किसी-किसी की बाली के पुष्प फैले हुए होते हैं। ये प्रभाव मे किंचित् न्यून होते है।

यहा पर दिया हुआ चित्र भारत के दक्षिण-पश्चिम भाग मे उत्पन्न उस्तूखूदूस का है।

भारत मे इसका आयात यूरोप से होता है। प० श्री भागीरथ जी स्वामी ने उद्‌बोधित किया है कि यूरोप से आने वाले उस्तूखूदूस के समान इसके क्षुप होते है और सुगन्ध भी वैसी ही होती है। यूरोप वाले इससे तैल निकालकर या मद्य किंवा अर्क बनाकर भारत मे भेजते हैं और भारी मुद्रा अर्जित करते हैं किन्तु भारत निवासी इसका आदर नही करते यह भारी भूल है। हमको भी इसके तैलादि बनाने चाहिए।

अधुना इसके तैल आदि बनाकर उपयोग मे लिये जाते है।

ठा० श्री बलवन्तसिंह जी ने इसे Brunella Vulgaris, Linn को प्रभावी उस्तखुदूस मानकर वर्णन किया है। इसे वियतनामी हा खो थाओ कहते हैं।

रस—कटु तिक्त।

गुण—तीक्ष्ण, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

प्रभाव—मेध्य।

दोषकर्म—तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु, तिक्त एव उष्ण होने से यह कफ का तथा उष्णवीर्य होने से वात का शमन करता है। यह पित्तस्र सन है।

प्रयोज्यअङ्ग—पुष्प और पत्र।

मात्रा—चूर्ण ३-६ ग्राम।

प्रतिनिधि—अफतीमून या विल्लीलोटन।

अहित प्रभाव—यह पित्तप्रकृतिक पुरुषो के लिए अधिक प्रयोग मे नही लाना चाहिये। इसके अधिक प्रयोग से तृष्णा आदि पैत्तिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं मुतरा इसका अधिक प्रयोग लाभप्रद नही है। यह फुफ्फुसो को अधिक हानि पहुँचाता है।

दर्पनाशक—इसके अहित प्रभाव को शान्त करने वाला द्रव्य कतीरा गोद है। नीबू पानक आदि पित्त-शामक पेय भी अहित प्रभाव को शान्त करते है। सिकजवीन लाभप्रद है। इसके सेवन से वमन, तृष्णा आदि लक्षण हों तो सिकजवीन देनी चाहिये।

इसके सेवन से फुफ्फुसो मे किसी प्रकार का विकार हुआ हो तो कतीरा गोद व बबूल के गोद का प्रयोग करे। मञ्जूषाकार ने निम्बुक नीर निर्मित "सिकञ्जी" की विधि प्रदर्शित की है—

ससित निम्बुकनीर मिश्रेयार्क प्रकुञ्चके लुलितम्।
तदिति "सिकञ्जी" सज्ञ सर्वजीर्णप्रशान्तये ब्रूम ॥

आत्ययिक स्थिति मे यह प्रयोग लाभप्रद है—

एका सूतविभूति सनिम्बुकसत्वा सकृत्प्रयुक्ताऽपि।
वमिशतमप्युद्धतं प्रभवति नूनं किमत्र सशेषे ॥

गुणधर्म—आयुर्वेदीय मतानुसार इसके गुणधर्मों के विषय मे कह सकते हैं कि यह सतर्पक, बल्य, हृद्य, मस्तिष्कशोधक, यकृत् प्लीहा वृद्धि आदि उदररोग, विबन्ध, आमवात, अपस्मार, उन्माद, हृदयरोग, कास-श्वास, आन्त्रशैथिल्य आदि रोग निवारक है।

अब इन गुणो का विशद विवेचन करना आवश्यक है, जिससे इसकी कार्मुकता की स्पष्ट स्थिति सामने आ सके।

रस कटु तिक्त विपाक कटु अरु वीर्य उष्ण को धारे,
तीक्ष्ण रूक्ष गुण वाला जो कफ पवन प्रबल को जारे।
"उस्तखदूस" मेध्य दीपन अनुलोमन है उत्तेजक,
अर्दित पक्षाघात हरे हृद्रोग शोथ सहारे ॥
—गोपेश

यह उष्ण कटु, निद्रा लाने वाला, वमननाशक, भूत और पिशाचो के उपद्रवो को मेटने वाला, मल को निकालने वाला, कान्तिप्रद, दोषो को मृदुकर्त्ता, अवरुद्ध दोषो का उद्धारक, हृदय-मस्तिष्क-उदर एव शरीर के अन्य अवयवो को वलप्रद, मल की गाठो को तोडने वाला, हृदयस्थ प्राणवायु का शोधक और सन्तुष्ठकर्त्ता, वक्षस्थल और मस्तिष्क के रोगो का नाशक, वातज कफज मल को विरेचन द्वारा शोधक, आमवात एव विषनाशक है। —आ० महा० प० श्री भागीरथ जी स्वामी

शरीर के मर्माङ्गो को विशेपकर मस्तिष्क, हृदय, यकृत्, प्लीहा और आत्र को यह शक्तिप्रद है। इसके प्रयोग से वृहदत्र मे जल का शोषण रुक जाने से मल कुछ पतला होकर सरलता से साफ हो जाता है, इसीलिए यह जीर्ण विवन्ध एव आत्रशैथिल्य को दूर करता है ऐसा कहा जाता है। वृद्धावस्था की दुर्वलता मे यह विशेष उपयोगी है। शरीर की रूक्षता को दूर कर काति को वढाता है। इसी से यह प्राणवायुशोधक तथा वक्षस्थल को वलप्रद माना जाता है। नासारोग तथा कर्णशूल मे भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

—आ० सू० प० श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी

यह ज्वरनिवारक, रेचक, पौष्टिक, मूत्रनिस्सारक, परजीवी कीटाणुओ को नाश करने वाला है। प्रदाह, हृदयरोग, खासी, श्वास कष्ट, उन्माद, ववासीर, यकृत् प्लीहा व नाक कान की तकलीफ को दूर करता है। ये आख के पपुटे और कान की पपडी के सफेद दागो को दूर करता है। वृद्धावस्था की कमजोरी मे वलप्रद है।

—प० श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी

वेदनायुक्त शोथ विकारो मे इसका लेप किया जाता है। उन्माद, अपस्मार, पक्षाघात, गृध्रसी, उदरशूल, अर्श, जलोदर, यकृच्छोथ, प्रतिश्याय, कास, श्वास, हृद्दौर्वल्य एव मूत्रकृच्छ्र मे उनका आभ्यन्तर प्रयोग होता है।

आमाशयान्त्र, यकृत्प्लीहा, वृक्क पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। कफोत्सरि होने से कास, श्वास मे उपयोगी है। मेध्य होने से मानसिक दौर्बल्य एव तज्जन्य उन्माद, अपस्मार मे विशेप उपयोगी है।

—श्री वनवारीलाल जी मिश्र भिष०

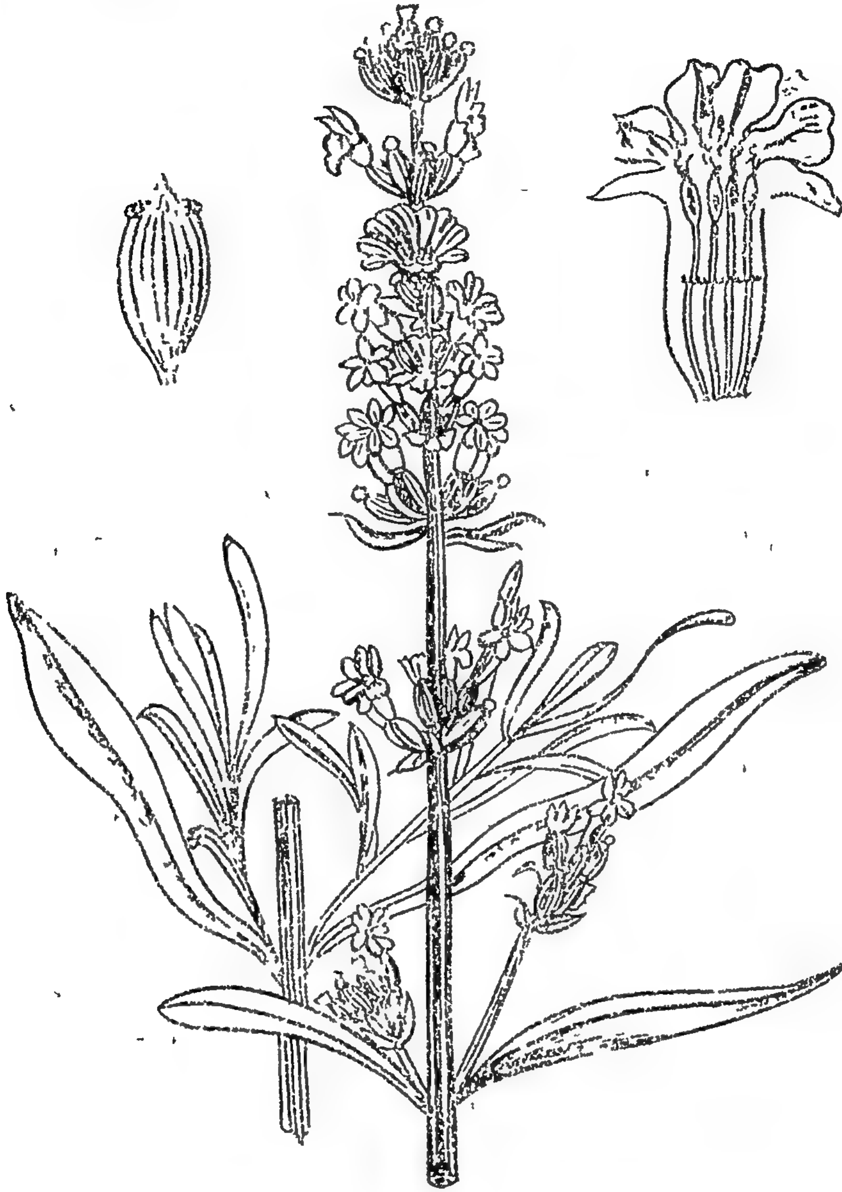
आजकल हृदय रोगियो की सख्या बडी तेजी से बढ रही है। पेट मे कलेजे से एक दर्द उठा और दिल की ओर गया कि काम खतम। अग्रेजी औषधियो की कृपा से यह रोग अधिक जोर पकडता जा रहा है। प्राय. अधिक इन्जेक्शन लेने वाले ही इस रोग से मरते हैं। इसके लिए यूनानी चिकित्सा मे एक सस्ता प्रयोग है—"उस्तखदूस"।

इसे खूब वारीक घोट पीसकर कपडछान करके रख लीजिये। आवश्यकता होने पर सेव या मुरव्वा, सोने के वर्क, दुधवच आदि के साथ इसका प्रयोग करे। धारोष्ण दूध भी इसका उत्तम अनुपान है।

—न्यायायुर्वेदाचार्य प० श्री चन्द्रशेखर जी जैन

स्वामी जी ने कहा है कि इसमे सुगन्ध होने के कारण इसको सुगन्धि, प्रसन्नता उत्पन्न करने के कारण सुप्रसन्नक, वातादिदोषो को नष्ट करने के कारण दोषोत्क्लेशी, विषो को नष्ट करने के कारण विषघ्न, छोटे-छोटे पत्ते होने के कारण सूक्ष्मपत्रक, शोथ हरने के कारण शोथहारी तथा निद्रा को लाने के कारण निद्रालु आदि इसके नाम है, जहा यह उत्पन्न होता है वहा पर प्राय सर्प रहते है। इसमे भाग के समान गध आती है।

वुद्धि की विशेष शक्ति मेधा कहलाती है—"धीर्धारणावती मेधा"। इसमे मन का सत्वगुण प्रवल होता है। इस मेधा के लिए हितकर द्रव्य मेध्य कहे जाते है। उस्तूखूदूस मेध्य द्रव्य है सुतरा आचार्य श्री प्रियव्रत जी ने जिन ५ औद्भिज औषध द्रव्यो का वर्णन किया है उनमे उस्तूखूदूस को भी लिया है। यह उष्ण तीक्ष्ण होने से तमोदोप के आवरण को नष्ट करता है जिससे मेधाशक्ति वढ़ती है और नाड़ियो को वल मिलता है।



उस्तखुद्दूस (Lavandula stoechas)

विभिन्न नाम : हिन्दी–उस्तखूद्दूस, अत्फाजन, धारू। अरवी–आनिसुत् अरनाह्, मुम्सिकुल् अरवाह। अग्रेजी–अरवियन आर फ्रेन्च लैवेण्डर, लेटिन–लैवेण्डुला स्टीकस।

प्राप्ति स्थान : भूमध्य सागर के क्षेत्र मे एव पश्चिमी भारत मे।

उपयोगी अंग : पुष्प एव पत्र।

दोषशमन कफवातशामक।

रोगोपयोग : उन्माद, अपस्मार, हृद्दौर्बल्य, आध्मान आदि।

मुख्य योग : शर्वत, अर्क, माजून आदि।

यद्यपि शारीरिक एव मानसिक सर्वव्यापारो का नियन्ता प्रणेता जीवनशक्ति रूप वायु ही है किन्तु वायु के द्वारा प्रेरणा प्राप्त पित्त ही मेधा का हेतु वनता है—

प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम् ।

हृदय मे रहने वाला साधक पित्त ही मेधाकृत् कहा गया है—

बुद्धिमेधाभिमानोत्साहैरभिप्रेतार्थसाधनम् ।

—अ० स० सू० २०

उस्तूखूदूस उष्ण होने से पित्तवर्धक है, पित्तवर्धक होने से मेध्य है और मेध्य होने से मानसिक दौर्वल्य एव तज्जनित उन्माद, अपस्मारादि विकारो को शान्त करने मे श्रेष्ठ है। इन रोगो मे मेध्य द्रव्यो की उपयोगिता प्रकट की गई है—

शुचि सत्यवाक् सत्त्ववान्सप्रयत्नो
निवृत्तामिषो वीतमद्यो जितात्मा ।
हित यो ऽश्नुते हृद्यमन्न च मेध्य
स ना युज्यते नैव मस्तिष्करोगै ॥

—सि० भै० मञ्जूषा

स्नेहस्वेदोपपन्न त सशोध्य वमनादिभि ।
कृतससर्जन मेध्यैरन्नापानैरुपाचरेत् ॥

—चरकसहिता

यह वेदनास्थापन एव आक्षेपहर है। इसके प्रयोग से नाडियो को वल मिलता है जिससे अर्दित, पक्षाघात एव नाडीशूल आदि व्याधियो मे लाभ होता है।

चरक सहिता मे कहा गया है कि "शिरसि इन्द्रियाणि इन्द्रियप्राणवहानि च स्रोमासि सूर्यमिव गमस्तय सश्रितानि" (च० सि० ९/४)। अर्थात् शिर मे इन्द्रिया और इन्द्रियप्राणवह स्रोत उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार सूर्य मे रश्मिया रहती हैं। यहा पर इन्द्रियो से मस्तिष्कगत ज्ञान और चेष्टा के केन्द्रो का (Sensory and Motor Centres), इन्द्रियवहस्रोतो से ज्ञानसज्ञा लाने वाली नाडियो का (Sensory Nerves) तथा प्राणवहस्रोतो से चेष्टावह नाडियो (Motor Nerves) का वोध होता है। वायु ही इन इन्द्रियो मे विकृतिया उत्पन्न करता है (चरक चि० १८/२९)। उस्तूखूदूस नाड़ी पौष्टिक (Nervine Tonic) होने से इन विकृतियो को दूर करता है।

हृदयरोगो मे हृद्य एव वातानुलोमक औषधियो का विशेष महत्व है। अधिक दिनो तक वातरोगो से पीडित रहने के कारण हृदयदौर्वल्य किंवा हृदयगतिमाद्य हो जाया करता है। ऐसी स्थिति मे हृदय को वल प्रदान करने वाली एव उत्तेजक औषधियो का प्रयोग लाभप्रद होता है। उस्तूखूदूस हृद्य एव वातानुलोमक होने से हृदयरोगो की उत्तम औषधि है। यह उष्ण होने से हृदय एव रक्तसवहन को उत्तेजित करता है। हृदयदौर्वल्य मे इसके प्रयोग से हृदय को शक्ति मिलती है। इससे प्राप्त उत्तेजना तीव्र एव अस्थिर नही होती है। हृदयवल्य द्रव्य शनै-शनै स्थिर उत्तेजना प्रदान करते है।

रक्तरससग्रहजन्य शोथ की चिकित्सा मे रक्तरस को दूर करने वाले मूत्रल विरेचक औषधियो के अतिरिक्त शोथोत्पादक हृदय या यकृत् या वृक्क विकृति रूप कारण को दूर करने हेतु उपयुक्त औषधियो की व्यवस्था की जाती है। हृदयविकृतिजन्य शोथ को दूर करने के लिए उस्तूखूदूस की योजना उत्तम सिद्ध होती है। यह कफवातशामक होने से कफवातजन्य शोथशमनार्थ प्रदेह (वाह्यप्रयोग) रूपेण भी व्यवहृत होता है।

प्रतिश्याय पाचनार्थ उष्ण एव कटु रस युक्त द्रव्यो की उपयोगिता प्रकट की गई है—देखिये सुश्रुतसहिता उत्तरतन्त्र अध्याय २४/१६ एव इस श्लोक की निवन्धसग्रहव्याख्या। प्रतिश्याय की उपेक्षा करने से वह दुष्टपीनस मे परिवर्तित हो जाता है। रसरत्नसमुच्चयकार ने "षट् पीनसाश्च मलसचयरक्तदुष्टै" कहकर इसके ६ भेद किये हैं इनमे उस्तूखूदूस शिरोविरेचन होने से विशेपतया वातज, कफज एव मलसचयजन्य पीनस मे भी प्रतिश्याय की भाति लाभप्रद है।

कफवातशामक उस्तखुदूस प्रतिश्याय के अतिरिक्त कास श्वास मे भी लाभप्रद है। प्राणवह स्रोतो मे स्थित अवरोध को दूर करने वाले द्रव्यो की योजना के साथ ऐसे द्रव्यो की योजना आवश्यक है जो अग्नि को दीप्त

करे। उस्तूखूद्दूस दीपन होने के कारण अधिक हितावह है।

तमकश्वास मे वात तथा कफ दोनो का प्राधान्य होते हुए भी अधिकाश रोगियो मे वात की अपेक्षया कफ की प्रधानता रहती है। कहा भी गया है—"तमकस्तु कफाधिक"। इस कफ के प्राधान्य मे दो स्थितिया होती है। एक तो अपने प्रकोपक कारणो के योग से कफ साक्षात् प्रकुपित होकर इस रोग को उत्पन्न कर रहा होता है। दूसरे अधोद्वार से उसकी जो नित्य प्रवृत्ति हुआ करती है, वह उर्ध्वगामी होकर श्वासपथ मे स्थानसश्रय कर स्थानीय कफ की मात्रा मे अधिक वृद्धि करता है। अतएव तमक श्वास की चिकित्सा मे इस कफ को स्वमार्गगामी बनाने के प्रयोजन से कहा गया है—"वातश्लेष्महरैर्युक्त तमके तु विरेचनम्"। उस्तखुदूस इस निमित्त अतीव उपयोगी द्रव्य है क्योकि वातश्लेष्महर होने के साथ अनुलोमन भी है। इसके प्रयोग से कफ स्वमार्गगामी होने के अतिरिक्त श्वासपथ द्वारा निकलने को उद्यत कफ भी अधोमार्ग से निकल जाते रहने से श्वासपथ की शुद्धि होने मे सहायता प्राप्त होती है। सुतरा, श्वास के वेग शान्त होते है। इसके साथ ही आरम्भिक दोष वात का भी शोधन इसके प्रयोग से होता है।

यह उष्ण एव तीक्ष्ण होने के कारण दीपन, अनुलोमन एव यकृदुत्तेजक है। दीपन होने से अग्निमाद्य मे, अनुलोमन होने से आध्मान, उदरशूल आदि मे तथा यकृदुत्तेजक होने से यकृच्छोथ, जलोदर आदि व्याधियो मे लाभप्रद है।

यूनानी मतानुसार—इसके फूल और बीज एक दर्जे मे गर्म और दूसरे मे रूक्ष है। कोई इन्हे दूसरे दर्जे के प्रारम्भ मे उष्ण व रूक्ष मानते है तथा कोई इसे पहले दर्जे मे शीतल मानते है।

यूनानी चिकित्सा पद्धति मे द्रव्यो की चार श्रेणिया कही गई है—

१. दर्जे उला—दर्जा अव्वल (प्रथम) जिसके सेवन से उत्पन्न गुण कर्म की प्रतीति न होती हो।

२. दर्जा सानिया—दर्जा दोयम (द्वितीय) जो प्रथम कक्षा से बलवत्तर कार्य करे और शारीरिक स्थिति मे कोई विपरिवर्त्तन न करे।

३. दर्जा सालिसा—दर्जा सोयम (तृतीय) जिसके सेवन से शारीरिक क्रिया मे स्पष्ट परिवर्त्तन दृष्टिगोचर हो, किन्तु अधिक नही।

४. दर्जा राबिया—दर्जा चहारम (चतुर्थ) जो अपने उग्र कर्म द्वारा शरीर की स्थिति मे अन्तर उत्पन्न कर हानिकर प्रभाव उत्पन्न करे।

उस्तखुद्दूस वातादि दोषो को पतला करने वाला, स्रोतोरोध को दूर कर उन्हे शुद्ध करने वाला है। अर्थात् यह शरीरगत आमदोष को दूर कर स्रोतो को खोलता है। यह कफ को पतलाकर मल मार्ग से बाहर निकाल देता है। फेफडो के विकारो मे जूफा से भी अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। यह विशेषतया कफप्रकृतिक एव दुर्बल व्यक्ति के लिए लाभप्रद है। हृदय, मस्तिष्क, आमाशय, यकृत् प्लीहा और आतो के लिए यह बल्य होने से इनमे उत्पन्न रोगो को नष्ट करता है।

दूषित वायु के उर्ध्वगमन से जो खुश्की आदि विकार उत्पन्न होते है उनमे यह लाभप्रद है। किन्तु ऐसी स्थिति मे इसके सेवन से कुछ वायु आमाशय मे रुक जाती है अत इसे नीबू के शर्बत के साथ देने से यह शिकायत नही होने पाती है।

विबन्ध के कारण उत्पन्न शिर शूल मे "अतरीफल मुलय्यिन" "अतरीफल उस्तूखुद्दूस" आदि जो योग प्रयुक्त किये जाते है इनमे उस्तूखुद्दूस मुख्य है।

दर्द सर बल्गमी (कफज शिर शूल) मे भी अतरीफल उस्तूखुद्दूस लाभप्रद है। इसमे उस्तखुद्दूस, गुलबनफ्सा, गावजवा का मिश्री युक्त क्वाथ उपयुक्त है। इससे अपेक्षित सशोधन हो जाने के पश्चात् दोष पाचनार्थ यह योग देवे—गुलबनफशा ७ ग्राम, कासनी की जड ७ ग्राम, सौंफ ७ ग्राम, खतमी के बीज ७ ग्राम, उस्तखुद्दूस ५ ग्राम, गावजवा ५ ग्राम, बादरजबूया ५ ग्राम और ६ बीज निकाले हुये मुनक्का रात मे उष्ण जल मे भिगोकर प्रात मल छानकर ४० ग्राम खमीरा बनफशा

।। ७० ग्राम गुलकन्द मिलाकर पिला दिया करे। इसके योग से आमाशय मे श्लैष्मिक द्रव्य संचित होकर उत्पन्न पाचन विकार मे लाभ होता है। पाचन सही होने से वायु का उर्ध्वगमन बन्द होता है जिससे शिर दर्द भी मिट जाता है।

अर्धावभेदक (आधासीसी या मिग्रेन) मे आक्षेप होकर प्रथम सिर के एक ओर की वाहिनिया संकुचित हो जाती है और उनमे विस्फार उत्पन्न होकर रक्त का संचय अधिक हो जाता है जिसके दबाव से दर्द होता है। इसे नष्ट करने के लिए उस्तखुद्दूस, धनिया और कालीमरिच के योग से निर्मित सफूफ अमावा (जिसका उल्लेख आगे किया जावेगा) सूर्योदय से पूर्व सेवन करना लाभदायक है। इसमे शर्बत उस्तखुद्दूस भी लाभदायक है। यह प्रयोग अनन्तवात (दर्दे अबरू) मे भी लाभ पहुँचाता है।

अतिनिद्रा (नीद की ज्यादती) मे सोमफ ७ ग्राम, सोफ की जड, उस्तखुद्दूस, करफस की जड प्रत्येक ५-५ ग्राम, बीज निकाली हुई दाख ६ पीला अजीर ३ सबको रात्रि को गर्म जल मे भिगोकर प्रात मल-छानकर इसमे २०-२५ ग्राम शहद मिलाकर सेवन करे।

मेनिन्जायटिस (वरम दिमाग) मे भी दोषपाचनार्थ इसे उपयोग मे लाया जा सकता है। इसे खमीरा गावजवा (चादी के वर्क युक्त) के साथ सेवन करना अधिक लाभप्रद होता है। इस रोग मे कफाधिक्य की स्थिति मे ही यह लाभप्रद होता है।

पागलपन को समाप्त करने के लिए दोष पाचन के रूप मे उस्तखुद्दूस, आलूबुखारा, आवरेशम आदि औषधिया प्रयुक्त की जाती है। कफ के विदग्ध होने के कारण उत्पन्न पागलपन की तो यह श्रेष्ठ औषधि है। इसी प्रकार मिर्गी (अपस्मार) मे भी श्लेष्मल पाचन योगो मे इसकी योजना की जाती है। बलवर्धनार्थ इस रोग मे "अतरीफल उस्तखुद्दूस" नामक योग प्रयुक्त किया जाता है उसका भी उस्तखुद्दूस प्रमुख घटक है।

प्रतिश्याय मे इसका प्रयोग हितावह है। तिरियाक नजला (प्रतिश्याय प्रतिविष) प्रतिश्याय का एक परीक्षित सिद्ध प्रयोग है। जिसका उल्लेख आगे किया जावेगा।

इसका प्रभाव पक्षाघात, आमवात, कम्प, आक्षेप आदि वातरोगो मे भी लाभकर है। यदि कफदोष की उत्पन्नता के कारण नेत्राभिष्यन्द हो तो भी दोष पाचन औषधि के रूप मे उस्तखुद्दूस उपयोगी है। किसी व्यक्ति को यदि पुन-पुन गुहाजनी (अजनहारी) निकले तो उस्तखुद्दूस ५ ग्राम, गुलबनफ्शा, मुण्डी, चिरायता, पित्तपापडा प्रत्येक ७ ग्राम उन सबको रात्रि मे पानी मे भिगोकर प्रात मल छानकर ४० ग्राम शर्बत उन्नाव मिलाकर देवे। साथ मे ही एक लौंग और एक छुहारे की गुठली को पानी मे घिसकर सुहाता गरम कर सावधानी से अजनहारी पर ही लगावे।

यह यकृत् रोगो की भी प्रभावशाली औषधि है। विशेषतया यकृच्छोथ (जिगर की सूजन) मे यह लाभप्रद है। यकृत् की विकृति से पित्तस्राव सम्यक् न होने से पाचन सुचारु नही हो पाता और रोगी को कोष्ठबद्धता हो जाती है। उस्तखुद्दूस यकृत् के शोथ का शमन करता है। साथ मे ही यह अनुलोमन होने से अधिक लाभप्रद है। संग्राही द्रव्यो के प्रयोग से यकृत् मे कठोरता अधिक हो जाती है जिससे रोग दुश्चिकित्स्य हो जाता है। रक्तज एव पित्तज शोथ मे भी विबन्ध की स्थिति मे इसे उपयुक्त औषधि किंवा अनुपान के साथ उपयोग मे लाया जा सकता है। उस्तखुद्दूस को हरी मकोय के स्वरस मे पीसकर लेप करना भी ठीक है।

यकृत् प्लीहा रोगो मे आधिक्येन व्यवहृत "शर्बत फौलाद न० १" नाम सिद्धयोग का भी उस्तखुद्दूस प्रमुख घटक द्रव्य है।

हृदय के रोगो मे अत्यन्त शीतल द्रव्यो का उपयोग उपयुक्त नही होता है। आवश्यकतानुसार शीतल द्रव्यो के साथ उष्ण द्रव्यो का मेल कर कुशल चिकित्सक औषधि व्यवस्था करते हैं। हृदय और मस्तिष्क को बल देने वाले प्रसिद्ध योग "खमीरे गावजवा" मे अन्य द्रव्यो के साथ उस्तखुद्दूस की योजना इसी ध्येय से की गई है। उस्तखुद्दूस मुकव्वीअ कल्ब (हृदय बल्य या हृद्य) होने से अधिक लाभप्रद है। मुलय्यन (अनुलोमन) एव मुलय्यिन वर्म (शोथहर) होने से हृदय रोगी को शीघ्र

लाभ पहुँचाता है। हृदय दौर्बल्य की स्थिति मे जवाहर-मोहरा ६० मि० ग्राम, खमीरा गावजवान अम्बरी २ ग्राम के साथ दे। हृदयावसाद की स्थिति उत्पन्न होने की आशंका होने पर खमीरा गावजवान अम्बरी ४-५ ग्राम ३०-३० मि० लि० अर्क बेदमुश्क एव अर्क केवडा पिलाते रहना चाहिये।

यदि श्लैष्मिक दोष के हृदयावरण मे संचित हो जाने के कारण दिल की धड़कन मे वृद्धि हो तो दोष पाचनार्थ उस्तखुद्दूस की इन औषधियो के साथ योजना करनी चाहिये।

उन्नाव ५ दाना, खीरा ककडी के बीज ५ ग्राम, पित्तपापडा ७ ग्राम गावजवान ५ ग्राम, बिल्लीलोटन ५ ग्राम, हंसराज ७ ग्राम, सूखी मकोय ५ ग्राम, बीज निकाली हुई दाख ६ दाना रात्रि मे १०० ग्राम अर्क गावजवान और १०० ग्राम अर्क शाहतरा मे भिगो देवे। सवेरे मल छानकर ४० ग्राम गुलकन्द डालकर पिलावे। आठ दिन तक यह औषधि निरन्तर पिलाकर नवे दिन गुलाब के फूल ७ ग्राम उस्तखुद्दूस ५ ग्राम, सनाय मक्की इसी योग मे डालकर भिगो देवें और सवेरे मल छानकर ६० ग्राम अमलतास गुद्दी, ५ दाना बादाम के मग्ज का शीरा और ४० ग्राम तुरंजबीन योजित कर पिलावे। —धन्व० यूनानी चिकित्साङ्क।

इसी विकृति मे प० श्री बालकराम जी शुक्ल ने कफज प्रकृति एव वायु प्रकृति वाले रोगी के लिए इस उस्तखुद्दूस के साथ निम्नाङ्कित औषधियो की योजना कर उत्तम व्यवस्था प्रदर्शित की है—

कफज प्रकृति मे—बादरजबूया व स्फाइज, अफ्तीमून प्रत्येक ६ ग्राम, अनीसून, मुलहठी, गावजवा प्रत्येक ६ ग्राम। सब द्रव्यो को रात्रि मे गरम पानी मे भिगोकर प्रात पकाकर छानकर शर्बत उस्तखुद्दूस और गुलकन्द प्रत्येक २५ ग्राम मिलाकर पिलावे। इस योग से ७ दिन दोष पाचन करके हब्बसिब्र का सेवन कराके दोष पाचन करे। शोधनोपरान्त प्रकृति सात्म्यतानुवर्त्तन के लिए दवाउलमिस्क जदवार अकरवी ५ ग्राम, जदवार खताई ६२५ मि० ग्रा० बारीक पीसकर अर्क गुलाब ५० मि० लि० और अर्क गावजवान १०० मि० लि० के साथ खिलावे।

वायु प्रकृति मे—उन्नाव ५ दाना, पित्तपापडा, बादरजबूया, खीरा और ककडी के बीज, गावजवान, मकोय, हसराज प्रत्येक ६ ग्राम, मुनक्का ११ दाना, अर्क गावजवान, अर्क शाहतरा प्रत्येक १०० मि० लि० मे रात्रि भर भिगोकर प्रात मल छानकर ५० ग्राम गुलकन्द मिलाकर खिलावे। इस प्रकार और दोष पाचन कर चुकने पर इसी योग मे गुलाब के फूल १८ ग्राम, सनायमक्की १२ ग्राम, उस्तखुद्दूस ६ ग्राम, अफतीमून १२ ग्राम और अमलतास का गूदा ४८ ग्राम योजित करके मिलाकर शोधन करे।

—धन्वन्तरि कायचिकित्साङ्क से।

आधुनिक मतानुसार—स्टेवर्ट के मतानुसार हिमालय की तलहटी के लोग इसको कफनिस्सारक और आक्षेप निवारक (ऐंटीस्पाज्मोदिक) मानते है। वे लोग इसके ताजे हरे पत्तो को पीसकर एरण्ड तैल मे मिलाकर कुछ उष्ण कर टिकिया सी बनाकर बवासीर पर बाधते है।

डा० डायमाक के मतानुसार इसके पुष्पो से एक प्रकार का तैल तैयार किया जाता है जो घावो को भरने के लिए एव रक्तस्राव को बन्द करने के लिए उपयोग मे लाया जाता हैं।

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह औषधि कफनिस्सारक और कृमिनाशक है। यह पेट के आफरे और शोथ को दूर करने के साथ प्रदरनाशक भी है।

डा० नाडकर्णी के मतानुसार उस्तखुद्दूस उत्तम उत्तेजक, सुगन्धियुक्त, सामान्य कोष्ठवात प्रशमन (General Carminative), स्वेदल, कफनिस्सारक, आक्षेपहर और आर्तवजनन (Emmenagogue) है। इसके पुष्पो से एक प्रकार का महत्वपूर्ण तैल परिस्रुत किया जाता है जिसका उपयोग छाती के रोग, उदरशूल एव पैत्तिक विकारो मे किया जाता है। वातजन्य शिर शूल मे बाह्यप्रयोगार्थ इसका लेप किया जाना चाहिए। आमवात एव वातजन्य वेदनाओ मे इसके पुष्पो का स्वेदन लाभप्रद है।

डा० देसाई के मतानुसार यह मधुर, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष तथा वातनाशक, उत्तेजक तथा [illegible]ग्राहक है।

इसका वातनाशक तथा उत्तेजक कर्म वहुत ही उत्तम हे। यह कफजन्य रोगो मे विशेपतया श्वासरोग मे उत्तम गुणकारी है। इस एक ही औपधिद्रव्य मे कफशामक तीन धर्म—सकोचक, विकास प्रतिवन्धक, उत्तेजक और कफघ्न विद्यमान है। आध्मान, उदरशूल, भूतोन्माद आदि रोगो मे इसका प्रयोग लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसके तैल मे थोडा जल भलीभामि मिलाकर मलहम वना लिया जाता है। इसके प्रयोग से वहता रक्त वन्द हो जाता है तथा घाव शीघ्र ही भरने लगते है।

बाह्यप्रयोग—

(१) **शोथरोग**—शरीर के किसी अवयव पर किसी कारण से शोथ आ गया हो तो अन्य आभ्यन्तरीय प्रयोग के साथ उस्तूखूद्दूस को गोमूत्र किंवा मकोय स्वरस मे पीसकर लेप करने से लाभ होता है। यकृत् शोथ पर भी यह लेप लाभप्रद है। यकृत् प्रदेश पर उस्तूखूदूस को शोभाञ्जनस्वरस मे पीसकर भी लेप करने से लाभ होता है।

(२) **रक्तस्राव**—शरीर पर किसी प्रकार की चोट लग जाने के कारण रक्तस्राव हो तो उसे वन्द करने के लिए उस्तुखूदूस का तैल या तैल मे जल मिलाकर अथवा उस्तखदूस पत्र स्वरस मे रुई भिगोकर वाध देना चाहिये।

(३) **अंगशैथिल्य**—किसी रोग या अधिक परिश्रम के कारण अङ्ग शैथिल्य हो तो इसके पुष्पो के वाष्प स्वेदन से शिथिलता दूर हो जाती है।

(४) **अपस्मार**—उस्तूखूदूस को मधु एव जल के साथ घोटकर इसका नस्य देने से कफवातजन्य अपस्मार मे लाभ होता है।

(५) **व्रण**—उस्तूखूदूस के तैल मे थोडा जल मिलाकर व्रण पर लगा वन्धन करते रहने से व्रण का शीघ्र ही रोपण होने लगता है।

(६) **सन्धिशूल**—वातजन्य सन्धिशूल को दूर करने के लिए इसके तैल का अभ्यङ्ग करना चाहिये अथवा अस्तूखूदूस पुष्प का पीडित स्थान पर लेप कर सेक करने से लाभ होता है। यह क्रम कुछ दिनो तक जारी रखना चाहिये।

(७) **स्मृतिभ्रंश**—स्मृतिभ्रंश के रोगी के शिर पर उस्तखूदूस का प्रलेप करना चाहिये।

(८) **प्रतिश्याय**—प्रतिश्याय के रोगी को पुन. उस्तूखूदूस का तैल सूघना चाहिये।

(९) **पार्श्वशूल**—उस्तूखूदूस को जल मे पीसकर कुछ उष्ण कर पार्श्व पर लेप करने के पश्चात् सुखोष्ण लवण से सेक करने से पार्श्वशूल मिटता है।

(१०) **मूर्च्छा**—उस्तूखूदूस के आभ्यन्तरीय प्रयोग के अतिरिक्त मूर्च्छा रोगी के शिर पर उस्तखूदूस का प्रलेप करना हितावह कहा गया है।

(११) **नासाकृमि**—नाक मे उस्तूखूदूस के जल या तैल की १-२ वूद भलीभाति डालने से नासागतकृमि वाहर आ जाते है।

(१२) **सर्पविष**—उस्तूखूदूस एक विपघ्न द्रव्य है। इसके अन्त प्रयोग के अतिरिक्त सर्पदंश से पीडित स्थान पर इसके मूल को घोटकर लगाना चाहिये, जिससे विप प्रभाव कम होता है। इसके अतिरिक्त इसके पत्र-स्वरस का नस्य रोगी को वार-वार देना चाहिये। इसके नस्य से रोगी को नीद नही आने पाती है। रोगी को सोने न देना उसके विप प्रभाव को कम करने मे सहायक होता है।

(१३) **शिरःशूल**—उस्तूखूदूस पत्र को जल मे पीसकर इसका लेप शिर पर कर देने से शिर शूल मे लाभ होता है।

(१४) **कर्णशूल**—उस्तूखूदूस और अफसन्तीन का गुलरोगन मे तैल सिद्ध कर ले। इस तैल की २-३ वूद कान मे डालने से कर्णशूल शीघ्र ही मिट जाता है।

(१५) **अर्श**—उस्तूखूदूस पत्र को एरण्ड के तैल मे पीसकर वातार्श पर लेप करने से अर्श मे उत्पन्न वेदना एव शोथ का शमन होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

(१) **ज्वर**—उस्तूखूदूस का क्वाथ वातकफज ज्वर मे लाभप्रद है। ज्वर के पश्चात् दौर्वल्य को दूर करने के लिए उस्तूखूदूस के साथ मडूरभस्म देना हितकर है।

(२) प्रतिश्याय—[क] उस्तूखूदूस, हसराज, गावजवा ५-५ ग्राम, मुलेठी ४ ग्राम को पका-छानकर शर्बत बनफशा २५ ग्राम मिलाकर प्रात -साय पीने से कफाधिक्य के कारण उत्पन्न प्रतिश्याय का शमन होता है।

[ख] उस्तूखूदूस, मुलेठी और बनफशा ५-५ ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर छानकर पीने से कफ पतला होकर निकल जाता है जिससे प्रतिश्याय का शमन शीघ्र होता है।

(३) श्वास—[क] उस्तूखूदूस, सौफ, जूफा और मुलेठी का क्वाथ बनाकर पीने से शुष्क श्वास मे लाभ होता है।

[ख] उस्तूखूदूस ५ ग्राम, हसराज ५ ग्राम, पीला अंजीर ३ दाना पानी मे पकाकर छानकर उसमे शुद्ध मधु मिलाकर प्रात -सायं पीने से श्वास (तमक) मे लाभ होता है।

[ग] उस्तूखूदूस, उन्नाव और गेहूँ की भूसी ५-५ ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर मधु मिलाकर सेवन करने से भी लाभ होता है।

(४) शिरःशूल—[क] उस्तूखूदूस, गावजवान और गुलबनफशा ५-५ ग्राम लेकर क्वाथ बनाकर इसमे मिश्री मिला पीने से कफजन्य शिर शूल मिट जाता है।

[ख] उस्तूखूदूस और बादरजबूया ५-५ ग्राम लेकर रात्रिमे उष्ण जल मे भिगो दें। प्रात मल छानकर ३०-४० ग्राम गुलकद मिलाकर पीने से भी कफजन्य शिर शूल का शमन होता है।

[ग] उस्तूखूदूस, धनिया और कालीमिर्च के चूर्ण को सूर्योदय से पूर्व सेवन करने से अर्धावभेदक मे लाभ होता है। उस्तूखूदूस ६० ग्राम, धनिया ४० ग्राम, कालीमिर्च ६० दाने सबका चूर्ण बनाकर ८-१० ग्राम सेवन करें।

(५) अपस्मार—उस्तूखूदूस और अकरकरा के सूक्ष्म चूर्ण को सिकजबीन के साथ सेवन करने से अपस्मार मे लाभ होता है।

(६) उन्माद—उस्तूखूदूस ५ ग्राम लेकर ५०० ग्राम जल मे डाल दे। इसी जल मे ५ ग्राम आकाशबेल की पोटली मे बाधकर (दोलायत्र की विधि अनुसार) लटका दें। इसे पकाने से जब आधा जल शेष रह जाय तब पोटली को निचोडकर फेक दे तथा क्वाथ को छानकर उसमे ५० ग्राम सिकजबीन सादा मिलाकर सेवन करावे। इससे उन्मादादि मस्तिष्क के रोगो मे लाभ होता है। यदि दुष्ट प्रतिश्याय के कारण मस्तिष्क विकृति है तो उक्त योग मे आकाशबेल के स्थान पर जूफा और सिकजबीन के स्थान पर तुरजबीन लेकर उपयोग मे लावें।

(७) कोष्ठबद्धता—[क] उस्तूखूदूस चूर्ण को सेंधानमक और सिकजबीन के साथ सेवन करने से कोष्ठबद्धता का शमन होता है।

[ख] उस्तूखूदूस और अमलतास के गूदा के क्वाथ मे गुलकद मिलाकर सेवन करने से भी कोष्ठबद्धता मिटती है।

(८) उदररोग—कबर (काकादनी) १ ग्राम और उस्तूखूदूस २ ग्राम को पीसकर मधु के साथ चाटने से यकृदाल्युदर प्लीहोदर आदि उदररोगो मे लाभ होता है।

(९) वातरोग—उस्तूखूदूस १ किलो अगूर के उसारा मे मिलाकर कुछ दिनो तक सुरक्षित रखे। जब यह मिलकर एकजीव हो जाय तो १०-१२ ग्राम नित्य सेवन करने से वातरोगो मे लाभ होता है।

(१०) हृदयरोग—उस्तूखूदूस और एलुआ को निरन्तर ३५ दिनो तक सेवन करने से हृदय की अधिक धडकनो मे लाभ होता है।

(११) विषरोग—उस्तूखूदूस ३ ग्राम, गोरखगाञ्जा ६ ग्राम, कालीमिर्च ११ घोटकर पुन -पुन. पिलाने से सर्पविष का प्रभाव कम होता है। स्थावर विष मे सुरा के साथ इसका सेवन करे।

(१२) कर्णनाद—उस्तूखूदूस ५ ग्राम, गावजवान ५ ग्राम, गुलबनफशा ७ ग्राम, हसराज ७ ग्राम, सौफ की जड ७ ग्राम, बीज निकाले हुए दाख ९ इन सबको रात्रि मे गरम जल मे भिगो दे। प्रात मल-छानकर इसमे खमीरा बनफशा मिलाकर ८-१० दिनो तक सेवन करने से दोषसचय से उत्पन्न कर्णनाद मे शोधन होकर रोग मिट जाता है।

(१३) मस्तिष्क दौर्बल्य—उस्तखुद्दूस, ब्राह्मी और त्रिफला के चूर्ण को अर्क गावजवान और शर्बत सेव के साथ देने से मस्तिष्क का दौर्बल्य दूर होकर स्मरण शक्ति बढती हे।

(१४) मस्तिष्क शोथ—उस्तूखूद्दूस, सौंफ, साफ की जड, बिल्लीलोटन, गावजवान पत्र, मुनक्का (बीजरहित), आबरेशम (स्वच्छ एव कतरन किया हुआ) ५-५ ग्राम लेकर क्वाथ बना गुलकद मिलाकर देवे। यह कफकृत रोग मे लाभप्रद है।

(१५) दन्तशूल—यदि कफाधिक्य के कारण सर्दी होकर शूल हुआ हो तो बाह्यप्रयोग के साथ उस्तूखूदूस गावजवान, हसराज ५-५ ग्राम, मुलेठी ४ ग्राम को पानी मे पका-छानकर २५ ग्राम बनफशा शर्बत मिलाकर सबेरे शाम पिलावे।

(१६) कम्पवात—उस्तूखूदूस पीसा हुआ १ ग्राम, अय।रिजफैकरा १ ग्राम को मधु डालकर मीठे किये हुए जल के अनुपान से सेवन करें। इससे कम्पवात मे लाभ होता है।

(१७) पक्षाघात—उस्तूखूदूस, अफ्तीमून, बिस्फायज, अकरकरा बराबर लेकर ४-५ ग्राम की मात्रा मुनक्का के कल्क मे मिलाकर लेने से लाभ प्रतीत होता है।

(१८) अर्श—कबर (काकादनी) की जड १ भाग और उस्तूखूदूस २ भाग दोनो का सूक्ष्म चूर्ण कर ले। २-४ ग्राम चूर्ण गुलकन्द के साथ देने से अर्श मे लाभ होता हे।

विविध कल्प—

१. उस्तखुद्दूस क्वाथ—उस्तखुद्दूस, आकाशवेल प्रत्येक ५-५ ग्राम लेकर ५०० मि० लि० जल मे क्वाथ करे। क्वाथ करते समय आकाशवेल को दोलायन्त्र विधि से पोटली मे बाधकर पात्र मे लटकावे। जब जल अर्ध शेष रह जाय तो जल को छानकर उसमे ही आकाशवेल को निचोडकर रस निकाल लेवे। उस रस मे सिकञ्जबीन सादा ६० मि० लि० मिलाकर पीवे। इससे दिमाग के रोग, मालीखोलिया (उन्माद) आदि दूर होते है। यदि नजला अधिक हो तो आकाशबेल के स्थान पर जूफा डालें और सिकञ्जबीन की जगह तुरञ्जबीन डालें। —धन्व० मार्च ५२ से।

२. अतरीफल उस्तखुद्दूस—(क) पीलीहरड का वक्कल, कालीहरड, बहेडा, सूखा आमला, उस्तखुद्दूस समभाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे, सभी द्रव्यों को मीठे बादाम की गिरी के तैल से स्निग्ध कर पुन अर्क सौंफ मे तिगुने शहद की चाशनी करे। जब चाशनी तैयार हो जाय, बारीक की हुई औषधियो का प्रक्षेप धीरे-धीरे देते जाय। मात्रा ७ ग्राम।

यह मस्तिष्क दौर्बल्य जनित सिर दर्द मे लाभदायक है। —धन्व० यूनानी चिकित्सांक से।

(ख) उस्तखुद्दूस २४० ग्राम, पीलीहरड का वक्कला, आमला, बहेडा की छाल, सफेद निशोथ ६०-६० ग्राम, धनिया ३६ ग्राम, काबुलीहरड २४ ग्राम और उदसलीब १८ ग्राम सबको कूट छानकर ३६ ग्राम बादाम तैल मे भलीभाति मसलकर दो गुना या तीन गुना शहद मिलाकर सुरक्षित रखे।

मात्रा ७ ग्राम से १२ ग्राम तक अर्क गाजवा के साथ सेवन करने से वात कफजन्य विकार दूर होते हैं। यह समस्त मस्तिष्क के विकारो पर लाभप्रद है। मेदा (आमाशय) को शुद्ध करता है।

—धन्व० मार्च ५२ से।

(ग) पीलीहरड का वक्कल, काबुलीहरड का वक्कल, कालीहरड बहेडा का छिलका, गुठली निकाला हुआ सूखा आमला, बराफाइज, रमीमरतङ्गी, अफ्तीमून (विलायती आकाश वेल) किसमिश, बीज निकाला हुआ मुनक्का (मवेज मुनक्का) ३४ ग्राम ५०० मि० ग्रा०, श्वेत त्रिवृत् निशोथ) और उस्तखुद्दूस प्रत्येक ७६ ग्राम। इन सब द्रव्यो को कूट छानकर हरडो के चूर्ण को मीठे बादाम के तैल से स्नेहाक्त (चर्ब) कर ले। पीछे द्रव्यो के पमाण से तिगुना शुद्ध मधु मिलाकर अतरीफल बना ले।

३ ग्राम ५०० मि० ग्रा० यह अतरीफल अर्क गादजवान १४४ ग्राम के साथ रात मे सोते समय या तडके सवेरे खिलाए।

आमाशय और मस्तिष्क को मलने से शुद्ध करता है। वातज और कफज व्याधियो मे अतीव गुणकारी है। इसके निरन्तर सेवन से बाल काले बने रहते हैं।

—यूनानी सिद्धयोग सग्रह से।

३. शर्बत उस्तखुद्दूस—(क) उस्तखुद्दूस, बिल्ली लोटन, तगर (असारून), इरसा, अफ्तीमून, हब्बुलआस, जादा, मेथी, हाशा (पहाडी पुदीना) दरूनज अकरबी प्रत्येक ९ ग्राम। अफ्तीमून के सिवा शेष समस्त द्रव्यो को १॥ किलो जल मे पकाये। जब आधा किलो जल शेष रह जाय तब उतारकर अफ्तीमून को पोटली मे बाधकर उसमे डाल दे और थोडी देर पश्चात् खूब मले। शीतल होने पर भी पोटली को भलीभाति मलकर छोड दें। फिर थोडी देर बाद काढे को छानकर मधुकृत गुलकन्द (गुलकन्द असली) आधा किलो मिलाकर पुन दो उबाल दे। फिर उतारकर गुलकन्द को उसमे खूब मले। इसके पश्चात् भलीभाति छानकर ३६ ग्राम ५०० मि० ग्रा० गुलाब अर्क समाविष्ट करके मृदु अग्नि पर शर्बत की चाशनी कर ले।

मात्रा ३० ग्राम। यह हकीम मुअतमिदुल मुलूक उलवीखा का परीक्षित योग है। कफज सुप्तता (खद्र बलगमी) के लिए यह परम अनुभूत है।

—यूनानी सिद्धयोग सग्रह से।

(ख) उस्तखुद्दूस आधा किलो, लेकर उसे ५ किलो ग्राम जल मे भिगोवे। साथ ही अर्क गुलाब २ किलो मिलाकर २४ घण्टो के लिए रखे। फिर धीमी आच पर क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर, उसमे ५०० ग्राम मिश्री, एक किलो मधु मिलाकर शर्बत बनावे। यदि उस्तखुद्दूस हरा मिल जाय तो उसका कल्क कर स्वरस निकालकर उस जल के समानभाग मिश्री मिलाकर शर्बत बनावे।

६० ग्राम देने से सर्दी के रोग दूर होते है। यह आमाशय को नरम कर खुलकर दस्त लाता है। दिमाग और दिल की सर्दी को दूर कर यह बल प्रदान करता है। —करबादीन जुफाई।

(ग) उस्तखुद्दूस, सनाय, विसफाइज प्रत्येक ३५ ग्राम, गुलाब के पुष्प, हरा बनफ्सा, निशोथ, हसराज प्रत्येक २१ ग्राम। सबको ३ किलो जल मे ८ पहर तक भिगोवे। प्रात क्वाथ कर जब एक किलो शेष रह जाय तब मिश्री एक किलो मिलाकर शरबत की चाशनी बनावे। मात्रा ५०-६० मि० लि०, उष्णोदक के साथ देने से विबन्ध दूर होता है। इसके प्रयोग से कफजन्य अपस्मार, मस्तिष्क ज्वर आदि मे भी लाभ होता है।

—धन्व० यूनानी चिकित्साङ्क से।

४. उस्तखुद्दूसादि वटी—(क) उस्तखुद्दूस, गारीकून, विषफाइज, आकाशबेल (अफ्तीमून) प्रत्येक ३ ग्राम, इन्द्रायण का गूदा १॥ ग्राम, हरड की छाल, काबुली हरड की छाल प्रत्येक ५-५ ग्राम। निशोथ ७ ग्राम, एलुआ ६ ग्राम, लोग, पोदीना ३॥ ग्राम, सबको कूट छानकर रोगन बादाम मे मिलाकर चणक प्रमाण गोली बनावे। २-३ गोली मन्दोष्ण जल से सेवन करने से उन्माद तथा अपस्मार दूर होते है।

—धन्व० वनौ० विशेषाक से।

(ख) उस्तखुद्दूस, अयारिजफैंकस ३ ५, ६ ५ ग्राम, गारीकून २ ग्राम, साभरलवण २ ग्राम, इन्द्रायण के फल का गूदा ५०० मि० ग्रा० लेकर गोलिया बना ले। यथा आवश्यक १-२ गोली सेवन करने से भ्रम (सिर का चक्कर) मिट जाता है। —करबादीन जुगाई से।

(ग) उस्तखुद्दूस, उस्क, सकबीनज, सकमूनिया, कालादाना, आकाशबेल, सैन्धवलवण, वच, कतीरा, पोदीना, गावजवान प्रत्येक ५-५ ग्राम, मुसब्बर १५ ग्राम, लाजवरद धोया हुआ २ ग्राम, कुटकी स्याह २ ग्राम, लौग १ ग्राम कूट छानकर सबको मिलाकर गोलिया बना ले। १ ग्राम मन्दोष्ण जल के साथ देने से वात व्याधि दूर होती है। विशेषकर दिमाग की बीमारिया शीघ्र दूर होती है। —सदिग्ध वनौ० शास्त्र से।

(घ) उस्तखुद्दूस १० ग्राम, आकाशबेल, विषफाइल ५-५ ग्राम हिजरइरमनी (यवक्षार), कालीहरड प्रत्येक १ ग्राम, सैन्धवलवण, इन्द्रायण का गूदा प्रत्येक ४ ग्राम, बहेडा, आवला कुटकीस्याह प्रत्येक ३ ग्राम, निसोथ सफेद २० ग्राम कूट छानकर मधु की सिकञ्जबीन मे गूदकर

गोली वना वे । २ गोली जल के साथ देने मे उन्माद दूर होता है । दस्त भी खुलकर आता है ।

—स० वनौ० शास्त्र से ।

५. उस्तखुद्दूस माजून—उस्तखुद्दूस, आकाशबेल, अकरकरा, बिसफाइज सब समानभाग लेकर कूट छानकर बीज रहित मुनक्का लेकर उसमे गूदकर माजून बनावे ।

मात्र—१०-१५ ग्राम । इससे कफरोग एवं कफज अपस्मार दूर होता है । —स० वनौ० शास्त्र से ।

६. उस्तखुद्दूस मुरब्बा—उस्तखुद्दूस के ताजे पुष्प लेकर मिश्री या मधु मिलाकर मुरब्बा वना लेवे । मात्रा २४ ग्राम लेने से दिमाग के रोग शान्त होते है ।

—स० वनौ० शास्त्र से ।

७. उस्तखुद्दूस अर्क—(क) उस्तखुद्दूस एक किलो लेकर चार किलो जल मे भिगोवें । ८ प्रहर के बाद यन्त्र लगाकर अर्क खीचे । मात्रा ४८ से ७२ ग्राम तक देने से दिमाग को वल मिलता है । यह अपस्मार एव कम्पवायु मे लाभप्रद है । यह वृद्धो के लिए अतीव हितकारी है ।

—स० वनौ० शास्त्र से ।

(ख) उस्तखुद्दूस १४४ ग्राम, सूखा धनिया १५६ ग्राम, पीली हरड की वकली, कावुली हरड, आमला, वहेडा और काली हरड प्रत्येक १०८-१०८ ग्राम । गुलाव के फूल ६० गाम सवको जौकुटकर ४ गुने जल मे भिगोकर अर्क खीच लेवे । मात्रा १२ ग्राम तक, इतरीफल उस्तखद्दूस (७ ग्राम) के साथ सेवन करे ।

—स० वनौ० शास्त्र से ।

८. उस्तखुद्दूस अरिष्ट—उस्तखुद्दूस १ किलो, विस्फायज, विल्लीलोटन, गावजवा, कावुलीहरड, पीलीहरड़, वहेडा, आमला, धनिया सफेद, निशोथ, मुनक्का और सनाय प्रत्येक १२० ग्राम जौकुट कर १६ किलो जल मे भिगोकर, प्रात पकावे । आधा जल शेष रहने पर उतारकर मल छानकर तथा उसमे ३ किलो खाड घोलकर, मुचिक्कण मृत्तिका पात्र मे भर उसमे धाय के फूल ५०० ग्राम, गुलाव के फूल ६० ग्राम, मुलहठी, उन्नाव, लिसोडा, गुलवनफ्सा और खतमी के वीज ३०-३० ग्राम महीन चूर्ण कर मिला देवें । मुख वन्द कर १५ या २० दिन रखने के वाद छानकर वोतलो मे भर रखे । मात्रा—१२ से २४ ग्राम तक, अर्धभाग जल के साथ सेवन करने से वायु, पीडा, कम्पवात, दिल की धडकन, अपस्मार, अङ्गशैथिल्य, विस्मृति, यकृत्, जलोदर, मदात्यय, उन्माद आदि रोगो मे लाभ होता है ।

—प० वलदेव शर्मा वैद्यराज द्वारा

९. उस्तूखूद्दूस सिकंजबीन—उस्तूखूद्दूस, सौंफ देशी, स्हापतेर के बीज प्रत्येक १७५ ग्राम, अफतीमून, विस्फायज, सनाय मक्की, कावली हरड प्रत्येक ३६ ग्राम । जो दवा कूटने की है कूटें और १५० ग्राम सिरके मे भिगो दे, ४२० ग्राम फद मे कवाम देवे ।

गुण—उन्माद और वातरोगो मे लाभप्रद है ।

— करावादीन कुथाई

१०. उस्तूखूद्दूसादि लेप—उस्तूखूद्दूस, कमादरयूस, गुलवनफसा ९-९ ग्राम, उदसलीव ८१० मि० ग्रा०, जुदवेदस्तर ४ ५ ग्राम, धोवा उड़द की दाल एक मुट्ठी कूटकर गुलरोगन और औरत के दूध मे गूदकर तालु पर लेप करे ।

यह सन्निपात के रोगी के लिए लाभप्रद है ।

—करावादीन जुथाई

११. उस्तूखूद्दूसादि रोगन—उस्तूखूद्दूस, अफसन्तीन प्रत्येक १२ ग्राम लेकर जल मे आठ प्रहर भिगो देवे । फिर मृदु अग्नि पर क्वाथ करे । जव बहुत भाग जल का जल जावे तव मसल-छानकर साफ करें । फिर उसमे रोगनगुल १२५ ग्राम मिलाकर अग्नि पर चढावें । जव पानी जल जावे तैल शेष रहे तव उतारकर शीशी मे भर लेवे । शीतल होने पर कान मे २-३ वूद डालें तो कर्णशूल दूर हो जाता है । —वनौ० शास्त्र

१२. उस्तूखूद्दूसादि नस्य—[क] उस्तूखूद्दूस २४ ग्राम, उदसलीव १२ ग्राम, कुदश १२ ग्राम, अरीठे की छाल ६ ग्राम, कालीमिर्च ३ ग्राम, कपूर २ ग्राम, नौसादर ५०० मि० ग्रा०, सब चीजो को कुट-पीसकर छानकर रख लें । इस औषधि को सूघने से मस्तक के सब विकारो का नाश होता है । —वनौषधि चन्द्रोदय

[ख] उस्तूखूदूस १२ ग्राम, कीतिब्वत १२ ग्राम, छोटी इलायची १२ ग्राम, कायफल १२ ग्राम, नकछिकनी ३ ग्राम, काश्मीरी पत्ता ६ ग्राम सवका महीन चूर्ण कर नस्य बना लेवें। इसके प्रयोग से शिर शूल आदि शिर के रोग दूर होते हैं। —वनौषधि शास्त्र

अनुभूत प्रयोग—

(१) मस्तिष्क विरेचक—त्रिफला चूर्ण ३ ग्राम, उस्तूखूदूस चूर्ण १ ग्राम, १ मात्रा। शुद्ध गोघृत तथा शक्कर मे मिलाकर खाना। यह औषधि विधिवत् लेने से शिरोविरेचन होकर शिर शूल ठीक होता हे।

उपरोक्त चारो ही औषधिया ३ से ७ दिन तक लेनी चाहिये इससे अधिक लेने की आवश्यकता नही होती। अनुपान रूप मे गोदुग्ध ही लिया जाना उचित है।

—वैद्य श्री अम्बालाल जोशी द्वारा
सुधानिधि सित० ८२ से।

(२) शिरःशूल संहार—उस्तूखूदूस ८ ग्राम, धनिया ६ ग्राम, कालीमिर्च ७-८ दाने। तीनो को सिल-बटे पर पीसकर जल व मिश्री मिला प्रात काल पीवे। किन्तु पीने से पहले कुछ पेडा, मावे की वस्तु खावे अथवा दूध पीवे। इससे सूर्यावर्त, अर्धावभेदक आदि शिर शूल एक सप्ताह मे ही नष्ट हो जाते हैं।

—श्री प्रकाशचन्द्र जैन, हापुड

(३) पामा प्रहार—तिल तैल ८६० ग्राम, शुद्ध गन्धक १२० ग्राम, उस्तूखूदूस ६ ग्राम।

तिल तैल को खूब गरम कर इसमे शुद्ध गन्धक चूर्ण मिला ले। फिर गन्धक द्रुति हो जाने पर इसमे उस्तूखूदूस चूर्ण का प्रक्षेप करे। एक-दो उफान आ जाने पर नीचे उतारकर स्वागशीत हो जाने पर चौडे मुख वाली बोतल मे रखे। २ से १० वूद देने से पामा, कच्छू एव तत्सम रक्त दुष्टि मे लाभ होता है। वाह्य लेपनार्थ भी इसका अच्छा उपयोग होता है —चिकित्सा प्रदीप

(४) तिरियाक असावा [प्रतिविष अनन्तवात]—उस्तूखूदूस ६ ग्राम, शुष्क धनिया ४ ग्राम, कालीमिर्च ६ दाना सवको १०० मि० ली० जल मे पीस कर सूर्योदय से पूर्व पिलावे। इसमे मीठा न मिलावे परन्तु औषध सेवन के पश्चात् बताशा या थोडी मिश्री अवश्य खिला दे। क्योकि कभी-कभी इसे पीने के पश्चात् वमन हो जाता है। यह अर्धावभेदक और अनन्तवात [ट्राइजेमिनल-न्यूरैल्जिया] दोनो रोगो के लिए परम गुणकारी एव सिद्ध भेषज है। —यूनानी सिद्ध योग सग्रह

(५) सौदा के समता पर लाने के लिए नुस्खा—
उस्तूखूदूस, गाजवा, गुलगाजवा, शाहतरा, वादरजवोया, विस्फायज, मुलहठी, हसराज ४-४ ग्राम, सूखे आमले, अफतीमून विलायती ३-३ ग्राम, लिसोडे १७ दाने, उन्नाव विलायती ५ दाने। सवको आधा लीटर पानी मे पकावे। अफनीमून [आकाशवेल] को पोटली मे वाधकर लटकावे। जल आधा शेष रह जाने पर मल छानकर २५ ग्राम मिश्री मिलाकर पीवे।

इसके कुछ दिन सेवन करने से सौदा की वृद्धि और उसके रोगो मे लाभ होता है। १५ दिनो तक निरन्तर सेवन करने से सौदा पककर निकलने योग्य हो जाता है। —तुलसी अनुभवसार

(६) अर्धावभेद नाशक—अर्धावभेदक [मिग्रेन] शिर का यह वहुत बुरा रोग है। जिसको यह शिर की पीडा पकडती है उसको अन्धा और बहरा तक कर देती है, नही तो जाला, माडा, फूली छोड जाना तो इसका साधारण काम है। पाठको के सामने अपना योग जिसे हम तेरह रोगियो पर अनुभव कर चुके है, प्रस्तुत करते हैं। रोगियो को देकर उनका कल्याण करे। योग यह है—उस्तूखूदूस ६ ग्राम, धनियां ३ ग्राम, कालीमिर्च ४ दाने, प्रवालपिष्टी २४० मि० ग्रा०, गिलोयसत्व २४० मि० ग्रा०, अभ्रकभस्म शतपुटी १२० मि० ग्रा०।

इन सवको लेकर पहले उस्तूखूदूस और धनिया, कालीमिर्च को जल मे ठडाई की भाति पीस ले। फिर भस्म आदि को फाककर ऊपर से पी ले। ऐसा तीनों समय करे। आशा हे पहले ही दिन से लाभ मालूम देने लगेगा। यह योग रसतन्त्रसार का है और मेरा अनुभूत हे।

नोट—अगर उष्णकाल हे तो ठडे पानी से दे और सर्दी का समय है तो गर्म पानी से दे।

—श्री वावू रामनाथ जयसवाल द्वारा
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से।

(७) **प्रतिश्याय नाशक**--त्रिफलाचूर्ण १८० ग्राम, छोटी हरड का चूर्ण ६० ग्राम, धनिया ६० ग्राम, उस्तूखूद्दूस ६० ग्राम। इन सबको कूट-पीस-छान ६०० ग्राम मिश्री की चाशनी कर उस चाशनी मे उक्त चूर्ण मिलाकर [अग्नि से कढाई उतार] मधु ५०० ग्राम, रोगन बादाम मीठा १२० ग्राम मिला ले और चीनी के बर्तन मे रखकर प्रात-साय १॥ ग्राम निकालकर खावे, ऊपर से ६० ग्राम पानी गर्म करके पीवे।

यह हर प्रकार का कास, श्वास, नजला, शिरदर्द, नेत्रविकार, कर्णविकार, मसूढो के रोग, पुराने से पुराना कब्ज, आतो की खुश्की आदि नष्ट करने की उत्तम महौषधि है। --प० श्री चन्द्रशेखर शर्मा द्वारा धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से।

(८) **नजलानाशक नस्य**--उस्तुखुद्दूस और कमीनी पाठा दोनो २-२ भाग तथा बालछड [जटामासी] और गुलबनफसा १ १ भाग लेना। सबको मिलाकर बारीक कपडछान चूर्ण करना।

उपयोग—इस नस्य को आवश्यकता पर सूघने से कपाल मे सग्रह हुए कफ दूर होते है। श्वासनला साफ होती है। जिससे नजले का पानी आखो मे उतरकर नुकसान पहुँचाता हो, वह बन्द हो जाता है। शिरदर्द शमन होकर मगज हल्का और शान्त हो जाता है। जुखाम वालो के लिए अति लाभदायक है एव सन्निपात और उदावर्त रोग मे शिरोविरेचन की जहा आवश्यकता हो, वहा पर यह नस्य लाभ पहुँचाता है। —रसतन्त्रसार

(९) **प्रतिश्यायहर शर्बत**—तुलसीपत्र, मरवा [सब्जा] के पत्ते, गावजबा, अफतीमून विलायती, उस्तूखूद्दूस और बसफायद इन ६ औषधियो को समभाग ६०-६० ग्राम लेकर १ किलो गुलाबजल और ५०० ग्राम अगूरी सिरका मे रात्रि को भिगो देना। सुबह उबालकर ३ हिस्सा जल को जला देना। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छान लेना। पश्चात् १ किलो ५०० ग्राम शक्कर मिलाकर शर्बत बना लेना। २ बोतल शर्बत बनेगा।

मात्रा—२४ से ४८ ग्राम तक जल मिलाकर पिलाना।

उपयोग—जुखाम, कठदाह, निद्रानाश, नाक मे से खून गिरना, हृदय की निर्बलता, मगज की कमजोरी, सूक्ष्म ज्वर, मलावरोध इन सबको दूर करता है।

—रसतन्त्रसार

सुप्रसिद्ध वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह के अनुसार यूनानी शब्द स्टीकाडीस से उस्तूखुद्दूस बनता है। जिसका अर्थ ओजोरक्षक होता है जिसका अर्थ हाफिज-उल्-अरवाह होता है। ओजोरक्षक होने से यह हृद्य अथवा हृदय की रक्षा करने वाला यह सहज ही हो जाता है।

एरण्ड [Ricinus communis Linn]



जब मैं क्यूबा गया तो वहा की सरकार ने मुझे क्यूबा के महान् वनस्पतिवेत्ता जुआन थामस रौइग ई मेषा की लिखी ५ किलो वजन की विशालकाय पुस्तक—प्लान्ताज मेडिसिनैलिस एरोमेटिकास ओ वेनेनोसास डी क्यूबा भेंट की। उस ग्रन्थ मे क्यूबा मे उगने वाले चिकित्सा मे प्रयुक्त द्रव्यो, सुरभित द्रव्यो और विषाक्त द्रव्यो का वर्णन है।

इसके ४४०वे पृष्ठ पर एरण्ड का नाम हिग्वेरेटा (Higvereta) दिया गया है। पुस्तक स्पैनिश भाषा मे है जो क्यूबा की राष्ट्रभाषा है। इसमे इसके पर्याय, निवासस्थान, वानस्पतिक विवरण, उपयोगी अग देकर उपयोग (Aplicaciones) दिये गये है। इसमे इसके तैल को विरेचक (laxante) आमवात नाशक (el reumatismo), कटिशूल नाशक (el lumbago) आदि गुण ड्रूरी (Drury) की पुस्तक से उद्धृत किए हे।

क्यूबा की मेरी यात्रा बिडला के सिमको इण्टरनेशनल के सौजन्य से सम्पन्न हुई थी। उन्ही ने मुझे बाद मे वियतनाम भेजा था जहा की सरकार ने भी न्हङ्ग काई थुऔक वा वी थुऔक वियननाम नामक ११८२ पृष्ठ का ग्रन्थ भेंट किया था। इसके ४६४वे पृष्ठ पर थाऊ डाऊ नाम से वर्णन दिया गया है वियतनामी भाषा मे। भाषा का ज्ञान न होने मे उसका खुलासा करना इस समय सम्भव नही है। वियतनामी वैद्य अनेक वानस्पतिक द्रव्यो का उपयोग अपनी चिकित्सा मे करते है जिनमे एरण्ड का महत्वपूर्ण स्थान है।

एरण्ड का पौधा आयुर्वेद मे जाना पहचाना नाम हे। इसकी मूल, इसके बीज और बीजो से निकाला हुआ तैल सहस्रो वर्षो से इस देश के चिकित्सको द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। माउण्ट मेडोना सेण्टर कैलीफोर्निया (अमेरिका) मे १९८२ मे जब मैं पहली बार गया तो वहा घृतकुमारी, गेदा, डिजिटैलिस और एरण्ड के पौधे ही देखने को मिले। बाद मे शतावरी मिली जिसके तनो को शाक के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

वैद्यराज पारीक ने बडी योग्यता से एरण्ड का समग्र औषध स्वरूप अपनी शब्दावली मे प्रकट किया है जो इस विषय पर सम्पूर्ण सत्य को उजागर करता है। नीचे चरकसहिता मे एरण्ड के विविध प्रयोगो की एक झलक नीचे दे रहा हूँ—

सूत्र अ० २, ४, १३, १४, २५, २६ और २७वे अध्यायो मे इसका उल्लेख है। पहले मारुतघ्न पाञ्चकर्मिक सग्रह द्रव्यो मे आस्थापन और अनुवासन कर्म के लिए जिन द्रव्यो का प्रयोग सूत्रस्थान के द्वितीय अध्याय मे दिया गया है उनमे बला, श्वदंष्ट्रा बृहती तथा पुनर्नवा के साथ एरण्ड का उल्लेख है। आगे भी इन्ही द्रव्यो के साथ प्राय एरण्ड का प्रयोग चरक ने किया है। आस्थापन (निरूह) उदावर्त और विबन्ध मे तथा अनुवासन आवरण रहित वायु की शान्ति हेतु बतलाया गया हे।

पञ्चाशन्महाकषायो मे स्वेदोपग दशेमानियो मे तथा आगे अङ्गमर्दप्रशमनयो मे एरण्ड का उल्लेख चरक ने किया है। सुश्रुत ने अधोभाग हर द्रव्यो मे पहले तथा बाद मे वातसशमन वर्ग म सूत्र ३९ में एरण्ड का उल्लेख हुआ है।

आगे स्नेहाध्याय मे स्नेहो की स्थावर योनि मे तिल प्रियालादि क साथ एरण्ड का उल्लेख है। स्वेदाध्याय मे नाडीस्वेद के लिए एरण्ड के पत्तो के क्वाथ की भाप का सकेत है।

चरक ने 'एरण्डमूल वृष्यवातहराणाम्' लिखकर एरण्ड मूल की वृष्यता तथा वातनाशकता की सर्वश्रेष्ठता उजागर कर दी है।

चरक ने २७वें अध्याय में एरण्ड तैल के ये गुण दिये हैं—

एरण्डतैलं मधुरं गुरुश्लेष्माभिवर्धनम् ।
वातासृग्गुल्महृद्रोगजीर्णज्वरहरं परम् ॥

इससे सिद्ध होता है कि हृदय के रोग में पीडितों को इसका तैल लाभप्रद है।

ब्राह्मरसायन में चरक चि० स्था० अ० १, पाद १ में पुनर्नवादि पंचमूल में एरण्ड का उल्लेख किया गया है क्वाथ के लिए।

अगर ज्वर के साथ परिकर्तिका (पेट में काटने जैसी पीडा) हो तो चरक एरण्ड मूल के साथ उबाले हुए दूध को पीने से ज्वर और परिकर्तिका दोनों से मुक्ति बतलाता है।

शीतज्वर में उष्णता देने वाले पदार्थों के द्वारा सिद्ध तैल बनाने में उरुबूक (एरण्ड) का भी उल्लेख है।

गुल्म चिकित्सा में चरक ने इसके ३ प्रयोग दिये हैं—

(१) एरण्ड तैल को वारुणीमण्ड के साथ मिलाकर पिलाने से न केवल वातगुल्म ही दूर होता है अपितु उदावर्त तथा योनिशूल भी नष्ट होता है।

(२) कफजगुल्म को स्वेदन करने के पूर्व उस पर तिल, एरण्ड बीज की मज्जा, अलसी और सरसों के बीजों का लेप करना चाहिये।

(३) घी और एरण्ड तैल के मिश्रण को निशोथ, त्रिफला, दन्ती, दन्तीमूल और गोदुग्ध के साथ सिद्ध कर शहद मिलाकर पिलाने से कफवातज विबन्ध, कुष्ठ, प्लीहोदर और योनिशूल में बहुत लाभ होता है।

कुष्ठ चिकित्सा में तिक्तेक्ष्वाकादि तैल में एरण्ड मूल भी डाली जाती है। यह तैल मालिश करने से कण्डू और कुष्ठ में लाभ देता है।

उदर चिकित्सा में चाहे कफ वात या पित्त या दोनों आवृत हो या वात कफ या पित्त या दोनों से आवृत हो आवरक दोषहर औषधों में सिद्ध एरण्ड तैल ऐसे रोगी के लिए उपयोगी माना जाता है जो बलवान् हो।

चरक शुष्कार्श को अडूसे और एरण्ड तथा बेल के पत्तों के क्वाथ से परिषेक का परामर्श देता है।

वात ग्रहणी चिकित्सा में आमदोष के परिपक्व हो जाने पर स्नेहन, स्वेदन और निरूहण के बाद एरण्ड तैल सक्षार देकर विरेचन कराने का इङ्गित चरक का है।

श्वास चिकित्सा में वमनकर्म के पश्चात् लीनदोष को निकालने के लिए चरक धूमवर्ति का प्रयोग बतलाता है। इस वर्ति का अन्य द्रव्यों के अलावा एक घटक एरण्ड मूल भी है।

कास चिकित्सा में चरक ने कई अवलेह दिये हैं इनमें एक में एरण्ड के पत्तों का क्षार त्रिकटु, तिल तैल और गुड मिलाकर चटाना या तुलसी और एरण्ड पत्र के क्षार का इसी प्रकार प्रयोग करना लाभप्रद बतलाया है।

प्रवाहिका के ऐसे रोगियों में जब हवा शुद्धि न होती हो, कब्ज हो, मलत्याग के समय बहुत वेदना होती हो, रक्त के साथ चिपचिपा मल निकलता हो और रोगी प्यास से तडप रहा हो उस समय एरण्ड की जड से सिद्ध दूध पिलाने का चरकीय निर्देश है।

चरकसंहिता के २६वें अध्याय में चिकित्सा स्थान में एरण्ड के नीचे लिखे ६ प्रयोग दिये हैं—

(१) हृद्गत या अन्त्रस्थानीय उदावर्त में दूध या मांसरस, त्रिफला रस, यूष, गोमूत्र या मदिरा [दोषानुसार जो भी आवश्यक हो] के साथ एरण्ड तैल का प्रयोग करना चाहिए।

(२) वातिक मूत्रकृच्छ्र मे पुनर्नवा शतावरी आदि द्रव्यो के साथ एरण्ड मूल का क्वाथ से शूल को दूर करने के लिए प्रयोग करना चाहिए।

(३) शताह्वा, त्वक्, वलामूल, स्योनाक, एरण्डमूल और विल्वमूल तथा आरग्वध से वनाई धूमवर्ति नये प्रतिश्याय मे लाभ करती है। एण्टी एलर्जिक जैसा कार्य करती है।

(४) कफज शिरोरोग मे एरण्ड, नलद आदि द्रव्यो की धूमवर्ति के प्रयोग का उल्लेख है।

(५) अगर नेत्र मे वातिक नेत्राभिष्यन्द हो जाय तो उसे दूर करने के लिए चरक ने एक आश्च्योतन लिखा है। यह एरण्ड, तर्कारी [अग्निमथ भेद], वृहती, मधुशिग्रु द्रव्यो का थोडा गरम क्वाथ है।

(६) वातिक नेत्ररोग मे एक वर्ति का प्रयोग भी चरक ने दिया है इसके निर्माण मे वृहती, एरण्डमूल की छाल, सहजना के फूल और सेधानमक को वकरी के दूध मे पीसकर वनाना पडता है। वैद्यो को जब सहजने पर फूल आवे तब इसे वनाकर रख लेना चाहिए तथा वकरी के दूध मे घिसकर नेत्रो मे आजना चाहिये।

वातव्याधियो के निवारण मे एरण्ड का प्रयोग चरक ने ४ निम्नलिखित अवस्थाओ मे वतलाया है—

(१) जव आवरण रहित वायु मात्र स्नेहपान से ठीक न हो तो ऐसी अवस्था मे मल को निकालने के लिए दूध मे मिलाकर दोपहर कल्याणकारी एरण्ड तैल पीना चाहिए।

(२) इस प्रयोग मे रोगी के शरीर मे किसी अङ्ग मे जव वायु का दर्द हो तो दूध, उडद की पीठी, तिल और भात की उत्कारिका या वेसवार का प्रयोग करे अथवा एरण्ड के वीज, गेहूँ का आटा, जौ का आटा, झरबेरी का चूर्ण और शालपर्णी, पृश्निपर्णी आदि के चूर्ण मे थोडी चिकनाई डाल लेप वना ले और उसे मोटा-मोटा लेप करके अण्डी का पत्ता ऊपर मे वाध दे। रात मे यह प्रयोग कर सुवह हटा दे। इसी प्रकार दिन मे लेप करके रात मे हटा दे।

(३) चरकसहिता मे भगवान् कृष्णात्रेय द्वारा वतलाया हुआ एक अमृतादि तैल है जो वातव्याधिनाशक श्रेष्ठ तैल कहा जाता है जो उन्माद, अपस्मार, क्षीण वीर्य, क्षीण वल और क्षीण अग्नि वाले तथा मतिविभ्रमित व्यक्तियो को भी लाभप्रद कहा गया है। इसके अनेक घटको मे एरण्डमूल भी एक घटक है।

(४) वायु जव यकृत् से आवृत हो जाय तो रोगी को एरण्ड तैल पिलाकर उदावर्त की चिकित्सा के समान स्नेहन कराना चाहिये।

वातरक्त की चिकित्सा मे चरक ने एरण्ड के नीचे लिखे प्रयोग किये है—

(१) चरक के जीवनीय घृत मे जिसे वन्ध्याओ को भी पुत्र देने वाला वतलाया है उसमे जो क्वाथ डाला जाता है उसमे दशमूल, विसखपरा और पुनर्नवा आदि के साथ एरण्डमूल का भी उल्लेख है।

(२) वातिक वेदना को दूर करने हेतु श्यामा, एरण्डमूल, शालपर्णी आदि द्रव्यो के साथ औटा हुआ दूध पिलाने का चरकीय निर्देश है।

(३) चरकचिकित्सास्थान के उन्नीसवे अध्याय मे भी एक अमृतादि तैल का वर्णन आया है यह उन रोगियो मे लाभप्रद है जिन्हे वातरक्त हो, शरीर का भार वहुत अधिक वढ गया हो, वीर्य क्षीण हो गया हो, कम्प-वात या आक्षेप आते हो या अस्थिभग्न या पक्षवध हो या एकाङ्गवध हो गया हो, अपस्मार, उन्माद, खञ्ज, पगुता हो या स्त्री को कोई योनिरोग हो या वच्चा न होता हो। इस तैल के क्वाथ मे अन्य द्रव्यो के साथ १०० पल एरण्डमूल डालने का भी निर्देश है।

(४) दोषो की वहुलता होने पर दूध मे डालकर एरण्ड तैल पीने का चरकीय विधान है उसमे दस्त होकर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है। वाद मे रोगी को दूध, भात खिलाना चाहिये—

क्षीरेणैरण्डतैलं वा प्रयोगेण पिबेन्नर ।
बहुदोषो विरेकार्थं जीर्णे क्षीरौदनाशन ॥८३॥

(५) वातरक्त मे जोडो के दर्द को दूर करने के लिए चरक ने एक लेप लिखा है उसमे अलसी के बीज, एरण्डबीज और सोया को दूध मे पीसकर लेप करना चाहिये।

(६) चरक ने एक मलहम भी बताया है जिसे हम आज भूल गये है तथा मेडीक्रीम आदि मलहमो के व्यामोह मे पड गये हैं। यह अर्दित के दर्द को दूर करता है, सन्धिगतवात, जोडो की मोच, अस्थियो के भग्न, खञ्ज [लगडापन] और कुब्ज [कुबडापन] मे प्रशस्त कहा गया है। उसमे २ प्रस्थ समूलाग्रच्छदैरण्ड क्वाथ [अण्डी की जड, अण्डी के कोमल पत्तो के काढे का उल्लेख है।

चरक चिकित्सा स्थान ३० मे क्लैब्य [नपुसकता] की जो चिकित्सा दी है उसमे एक एरण्डमूल-पलाशादि द्रव्यो से बनी निरुह वस्ति का विधान है। इसका पूरा वर्णन यापना वस्तियो के अन्तर्गत सिद्धि स्थान के १२वे अध्याय मे दिया गया है। यह वस्ति नपुसको के अलावा ललित, सुकुमार, स्त्रीविहारक्षीण, वृद्ध, अर्श से पीड़ित और सन्तान के इच्छुक लोगो के लिए विशेष प्रशस्त कही गई है।

कल्पस्थान के ११वे अध्याय मे सप्तलाशङ्खिनी कल्प के वर्णन मे शङ्खिनी को एरण्ड बीजो के कल्क मे डाल तैल निकालकर पीने के लिए इङ्गित किया गया है।

चरक ने सिद्धिस्थान मे एरण्डमूल-पलाशादि यापना वस्ति के अलावा १० निम्नाङ्कित स्थलो पर एरण्ड का उल्लेख किया है पर इन वस्तियो के प्रयोग के पहले चरक के इस वाक्य की ओर विशेष ध्यान देना जरूरी है—

समीक्ष्यदोषौषधदेशकालसात्म्यादिसत्त्वानि वयो बलानि ।
वस्ति प्रयुक्तो नियत गुणाय स्यात् सर्वकर्माणि च सिद्धिमन्ति ॥

—अ० ३ का ६वां श्लोक

प्रयोग इस प्रकार है—

(१) सर्वानिल व्याधिहर निरूह—स्थिरादिवर्ग वाली मे एरण्ड है।

(२) अध्याय ३ मे एक एरण्ड वस्ति दी गई है जो दीपन, लेखनीय तो हैं ही जघा, ऊरु, पाद, त्रिक और पीठ के दर्द को दूर करती है, कफ की आवृति हटाती, वायु का निग्रह, विण्मूत्रवात तीनो का निग्रह, सशूल आध्मान, अर्श, ग्रहणीदोष इन सबका शमन करती है।

(३) कफनाशक ४ वस्तियो मे से एक रास्नामृता एरण्ड दार्वी आदि से बनी निरूह वस्ति कृमिकुष्ठ-मेहब्रध्न उदररोग अजीर्ण को नष्ट करके—

निहत्य वात ज्वलन प्रदीप्य विजित्यरोगाश्च बले करोति ॥६४॥

(४) इसी अध्याय की एक पुनर्नवा एरण्डादि द्रव्यो से बनी निरूह वस्ति वात के समस्त ससर्गो को नष्ट करती है।

(५) स्नेह व्यापत् सिद्धि नामक चौथे अध्याय मे दशमूल, बला, रास्ना, अश्वगन्धा, पुनर्नवा, गुडूची एरण्डादि द्रव्यो से सिद्ध तैल की अनुवासन वस्ति का उल्लेख है जिसे सर्ववातविकार नाशक कहा गया है।

(६) इसी अध्याय मे सैंधव, मदन कुष्ठादि द्रव्यो से सिद्ध एरण्ड तैल की अनुवासन वस्ति को कफरोग, नाशक के अलावा, ब्रध्न, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा रोग, प्रमेह, वातरक्त, आनाह, अश्मरी नाशक भी माना गया है।

(७) इसी अध्याय मे विडग, एरण्ड, रजनी, पटोलादि के क्वाथो और कल्क द्रव्यो से सिद्ध तैल पान करने से, मालिश करने से या अनुवासन वस्ति के रूप मे प्रयोग करने से क्लीवता, विषमाग्निता, मल, त्रिदोष-

जन्य विकार शीघ्र नष्ट करता है। ओज, वल, वीर्य को वढाता है। लडखडाकर चलने वालो को स्थिरता प्रदान करता है। स्त्री हो या पुरुष उसको सन्तानोत्पत्ति के योग्य स्नेहवस्ति के रूप मे प्रयोग करने से बना देता है।

(८) वस्तिव्यापसिद्धि नामक ७वे अध्याय मे लिखा है कि स्नेहन और स्वेदन विना किए यदि किसी को अधिक मात्रा मे गुरु-तीक्ष्ण निरूह वस्ति दे दी जावे तो दोपो की श्रुति वहुत अधिक होकर स्तव्ध और उदावृत्त कोष्ठ मे वायु का प्रकोप मारक तक हो मकता है। उसे दूर करने के लिए तथा उस समय होने वाले भयकर गात्रवेष्टन, तोद, भेद, स्फुरण, जृम्भण से रक्षा करने के लिए पेट पर नमक मिला तैल चुपडकर अण्डी के पत्तो के गरम-गरम क्वाथ से सेचन करना चाहिए।

(९) किसी का ब्लैडर फूलकर पेशाव रुक गया हो तो उसे नमक मिलाकर गोखरू, पाषाणभेद, एरण्ड के स्वरस, तैल, सुरा और आसव युक्त निरूहवस्ति देनी चाहिए। विधान सिद्धिस्थान के आठवे अध्याय मे देखें।

(१०) फलमात्रासिद्धि नामक ११वे अध्याय मे वेगधारण से उत्पन्न उद्धृत विवन्ध और सर्वाङ्गीण वेदना को दूर करने के लिए एक फलवर्ति का प्रयोग चरक ने सुझाया है इसमे पुनर्नवा, एरण्डमूल, निकुम्भ, चित्रकादि द्रव्यो का प्रयोग होता है। इसे तैल और घी से जिन्हे पचलवणो से मूर्च्छित कर लिया गया हो उससे चुपड कर प्रयोग करते है।

इस प्रकार चरक ने एरण्ड मूल, एरण्ड वीज, एरण्ड पक्ष, एरण्ड पत्राग्र, एरण्ड तैल और एरण्ड के पत्तों के क्षार का पूरा-पूरा उपयोग चिकित्सार्थ किया है। शेप पारीकजी के वक्तव्य मे पर्याप्त स्पष्ट किया जा चुकाहै।

—**रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी।**

"निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते" इस उक्ति मे एरण्ड की पादपो मे भले ही नगण्यता प्रकट हो किन्तु गुणो मे इसकी महत्ता सर्वोपरि है। सस्कृत नामो मे इसे "वातारि" भी कहा जाता है। प्रमुख वातहर औपधियो मे इसका अपना विशिष्ट स्थान है। रसतरङ्गिणीकार ने जो वातामयहरगण कहा है उसमे एरण्ड को प्राथमिकता दी गई है—

एरण्डमूल रास्नाथ दशमूल प्रसारणी।
मुद्गपर्णी मापपर्णी शतमूली पुनर्नवा॥
अश्वगन्धामृता मासी वला नागवला तथा।
गणो वातहरोऽयन्तु वातामयहर परम्॥

—र० त० २०/४५-४६

वातसशमन के नाम से महर्षि सुश्रुत ने एक वृहत् गण का वर्णन किया है, इस गण की एरण्ड एक प्रमुख औषधि है। भगवान् चरक ने "एरण्डमूल वृष्य वातहराणाम्" कहकर इसकी वातशामकता प्रकट की है। वातनाडी सस्थान पर इसकी विशेप क्रिया होने के कारण ही आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने वेदनास्थापन द्रव्यो के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है।

सूत्रस्थान एकोनचत्वारिंशतम अध्याय मे अधोभाग हर द्रव्यो मे महर्पि सुश्रुत ने एरण्ड को कहा है। भगवान् चरक ने भी दशेमानि भेदनीयानि मे एरण्ड की गणना की है अधोभागहर द्रव्यो के चार भेद किये गये है—१. अनुलोमन, २. स्र सन, ३ भेदन, ४ विरेचन। इसमे भेदन द्रव्य शरीर मे जाकर वद्ध मल, अवद्ध मल या पिंडित मल के वन्ध को तोडकर पतला कर वाहर निकलते हे।

दशेमान्यङ्गमर्दप्रशमनानि द्रव्यो मे मी भगवान् चरक ने एरण्ड को लिया है। शरीर दवाने जैसी पीडा अङ्गमर्द के नाम से जानी जाती है। महर्पि सुश्रुत ने "विदारिगन्धादिगण" नामक गण का वर्णन किया है इसमें भी एरण्ड है, इसे अङ्गमर्द मे लाभप्रद कहा है—

विदारिगन्धादिरय गण पित्तानिलापह।
शोषगुल्माङ्ग मर्दोर्ध्व श्वासकास विनाशन॥

सुधानिधि के सयुक्त सम्पादक वैद्य श्री मदनमोहन चरौरे जी ने निदान चिकित्सा विज्ञानाक प्रथम भाग के एतद्विपयक लेख मे कहा है कि "मेरा अपना मत है कि जहा-जहा जिन-जिन रोगो में अङ्गमर्द प्रशमन चरकोक्त

या सुश्रुतोक्त विदारिगन्धादि गण के द्रव्यो मे युक्त कल्पो का उपयोग किया है वहा रोग लक्षणो मे अङ्गमर्द अवश्य निहित है और बिना उसका नाम दिये भी उसकी उपस्थिति मान लेनी चाहिये। ऐसा भी मैं मानता हूँ कि शास्त्रकारो ने अङ्गमर्द को लक्षण रूप मे बहुत गम्भीरता मे नही लिया है। वायु के सामान्य या नानात्मज रोगो मे मे अधिकाश मे अङ्गमर्द पाया जाता है।"

स्वेदोपग द्रव्यो मे भी एरण्ड की गणना की गई है। जो द्रव्य स्वेदन क्रिया मे सहायक रूपेण प्रयुक्त किये जाने पर स्वेद लाने मे सहायक बनते है स्वेदोपग कहे जाते हैं—"स्वेदनक्रियाया सहायत्वेनोपगच्छतीति स्वेदोपगम्।"

यह वातहर उपनाह (अ० हृ० सू० १७) तथा परिषेक (अ० हृ० सू० १७) हेतु प्रशस्त कहा गया है। इस विषय का अधिक विवेचन इन पक्तियो के लेखक द्वारा सम्पादित "धन्वन्तरि वातव्याधि चिकित्सा विशेषाक" मे किया गया है।

भगवान् चरक ने "मधुरस्कन्ध" मे इस द्रव्य का वर्णन किया है। 'अभिधानरत्नमाला" मे तिक्त द्रव्य स्कन्ध के अन्तर्गत एरण्ड का उल्लेख है। प्राकृतिक वर्गीकरण से यह एरण्ड कुल (युफार्बिएसी—(Euphorbiaceae) की औषधि है। भावप्रकाश निघण्टु मे गुडुच्यादि वर्ग के अन्तर्गत इसका वर्णन किया गया है।

नाम—

संस्कृत—१. एरण्ड (आसमन्तात् ईरयति अङ्गानि) अङ्गो मे उत्पन्न वातजन्य स्तब्धता को दूर कर उन्हे गतिशील बनाने वाला)।

२ गन्धर्वहस्त—गन्धर्वो के हाथो के समान जिसके पत्र हो।

३ पञ्चागुल—पाच अगुलियो से युक्त पत्र वाला।

४ वर्धमान—शीघ्र बढने वाला।

५ कण्टहर—कण्टो को हरने वाला।

६ उत्तानपत्रक—फैले हुये पत्तो वाला।

७ व्याघ्रपुष्प—व्याघ्रपुच्छ के समान पुष्पमंजरी वाला।

८. उरुबूक—प्रकुपित वात को शान्त करने वाला।

९. व्याडम्बक—मल का शोधन करने वाला।

हिन्दी—अंडी, रेंडी, अरण्ड।

मराठी—एरंडी।

गुजराती—एरण्डो दिवेलिगो।

बंगला—भेरेंडा, भादारेंडी।

तामिल—अमनक्कु, कोट्टैमुथ।

तेलगू—आमुदमुचेट्टु।

मलयालम—अवनक्कु।

अरबी—खिर्वअ।

फारसी—बेद अंजीर।

राजस्थानी—अण्डिगो।

कर्णाटकी—हरलु, एरन्डु, आउडल।

अंग्रेजी—कैस्टर प्लांट (Cartor Plant)—संस्कृत के कष्टहर शब्द एवं कैस्टर में समानता है।

लैटिन—रिसिनस कॉम्युनिस लिन (Ricinus Communis Linn)।

उत्पत्ति स्थान—यह सारे भारत मे होता है। सात हजार फीट की ऊचाई तक यह उत्पन्न होता है। इसकी खेती की जाती है। इसे प्राय खेतों के किनारे पर लगा दिया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमे स्थिर तैल ३७-६१ प्रतिशत, मासमार १२-१६ प्रतिशत, सूत्र २३-२८ प्रतिशत होते है। इनके अतिरिक्त एमाइलेज, इनवर्टेज आदि अनेक किण्वतत्त्व होते हैं। बीजो मे एक अलव्युमिन जातीय रायसिन (Ricin) नामक विषाक्त तत्व होता है। इसके अतिरिक्त राइसिनिन (Ricininc) नामक एक मन्द विषाक्त द्रव्य भी पाया जाता है। यह जल विलेय होता है तथा बीजावरण, पत्र तथा काण्ड मे अवस्थित होता है। यह किञ्चित् तिक्त तथा कण्ठ के लिए क्षोभक होता है। तैल ऐब्सोलुट अलकोहल तथा ग्लेशियल ऐसेटिक अम्ल मे विलय होता है। इसमे मुख्यत राइसिन ओलिक अम्ल होता है।

—द्र० गु० विज्ञान से।

वानस्पतिक परिचय—यह वर्षायु या बहुवर्षायु गुल्म या वृक्षक प्राय. १०-१५ फीट या इससे भी अधिक ऊचा होता है। काण्ड स्निग्ध एव हरित।



एरण्ड [Ricinus communits]

विभिन्न नाम : संस्कृत–एरण्ड, गन्धर्वहस्त । हिन्दी–अडी, अरण्ड । मराठी–एरडी । गुजराती–एरण्डो । अंग्रेजी–केस्टर आयला प्लाट । लैटिन–रिमिनल काम्युनिस ।

प्राप्ति स्थान : समस्त भारत ।

उपयोगी अङ्ग : मूल, मूलत्वक्, पत्र, बीज, तैल । **दोषशमन :** कफवात शामक ।

रोगोपयोग : आमवात, शोथ, गुल्म, प्लीहोदर आदि ।

मुख्य योग : एरण्ड पाक, एरण्ड तैल ।

पत्र—हरित या रक्ताभ, ३०-६० से० मी० व्यास के, खण्डित तथा अगुलिवत् ५-११ खण्डो से युक्त होते है। ये पत्र खण्ड दन्तुर होते हे। पत्र वृन्त ४-१२ इञ्च लम्बा ग्रन्थि युक्त होता है। पुष्पदण्ड ३०-६० से० मी० लम्बा होता है।

पुष्प—एक लिंगी होते है। पुष्पदड मे ऊपर की ओर स्त्री पुष्प तथा नीचे की ओर पुपुष्प होते हैं। पुपुष्प आध इञ्च व्यास के होते हे। पुपुष्प मे पुकेशर अनेक होते हैं। स्त्री पुष्प कुछ वडे होते है। स्त्री केशर फैले हुये, वहुत वडे तथा रगीन होते है। गर्भाशय त्रिकोष्ठीय होता है जिसके प्रत्येक कोष्ठ मे एक-एक वीजीभव होता है।

फल—कटकवत् प्रवर्धनयुक्त होता है वीजावरण कठिन होता है। वीज आयताकार, श्लक्ष्ण, अनेक वर्ण तथा चित्रित होते है। वीज के भीतर मीग सफेद निकलती है। इस मीग मे तैल होता है। वीज के शिखर पर एक श्वेत रङ्ग का उत्सेध रहता है। इसको भ्रूणकोष या इन्द्रियोसेक कहते है। इसके सन्धिस्थल पर भी भीतर की तरफ एक छिद्र रहता है। इसे नाभि चिन्ह कहते है।

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ मे इसके वीज वो दिये जाते हैं जो वढकर वर्षा के अन्त तक पूर्ण यौवन पर आ जाते है। कार्तिक और मार्गशीर्ष मे ये फल देते है और पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी दो किस्म होती है। एक तो खरीफ के साथ दूसरी रवी के साथ वोई जाती हे। खरीफ वाले प्राय वडे वीजो वाले तथा रवी वाले छोटे वीजो के और ज्येष्ठ मे पकते है।

भेद—औषधि कल्पलता मे चार प्रकार के एरण्ड कहे हैं—

"चतुर्विध तु विज्ञेय रक्तपीतादिनेदित।"

डा० मूलरने ने इसके १७ जातियो का उल्लेख किया है। स्वामी कृष्णानन्द जी ने इसकी ३ जाति कही हैं। इनमे दो मे फल हरे और एक मे लाल होते है। निघण्टु शिरोमणिकार ने श्वेत एव रक्त एरण्ड के अतिरिक्त स्थूल एरण्ड (वडा एरण्ड) का भी वर्णन किया है—

स्थूलैरडो महेरडो महापञ्चागुली "नृपे।"
स्थूलैरडो गुणाढ्य स्याद्रमवीर्य विपक्तिपु॥

सामान्यतया श्वेत और रक्त भेद से इनकी दो जातिया होती है। रक्त जाति के एरण्ड का काण्ड और पत्र रक्ताभ होते हैं। आयु के अनुसार भी यह दो प्रकार का होता है वहुवर्षायु और वर्षायु। वहुवर्षायु के फल और वीज वडे होते है। उनसे तैल भी अधिक निकलता है।

श्वेत एरण्ड मे रक्त एरण्ड की अपेक्षा वातनाशक शक्ति अधिक है। श्वेत एरण्ड ही वृष्य वातहर है।

रस—मधुर। अनुरस—कटु, कषाय।

गुण—स्निग्ध, तीक्ष्ण, सूक्ष्म।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—मधुर।

प्रभाव—स्नेहन, भेदन।

दोष कर्म—उष्ण वीर्य होने से यह कफवात शामक है। सामवात के लिए एरण्ड तैल प्रसिद्ध है।

प्रयोज्य अङ्ग—मूल, मूलत्वक्, पत्र, वीज, तैल।

मात्रा—मूलकल्क १०-२० ग्राम।
मूलत्वक् चूर्ण १-३ ग्राम।
पत्र चूर्ण ३-४ ग्राम।
वीज २-६ दाने।
तैल ४-१६ मि० लि०।

वीर्य कालावधि—वीज २ वर्ष।
तैल ५ वर्ष।

गुण प्रकाशक संज्ञा—वातारि।

अहितकर—आमाशय के लिये।

निवारण—कतीरा और मस्तङ्गी।

प्रतिनिधि—जमालगोटा।

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क। तैल वीजो से ज्यादा गरम है।

द्रव्य परीक्षा—यह सर्व सुलभ वृक्ष है किन्तु इसके मूल और तैल मे वडी मिलावट होती है। अत. मूल एव तैल की अच्छी तरह परीक्षा कर उपयोग मे लाना चाहिये।

इसके मूल मे व्याघ्र एरण्डमूल, नागदन्ती मूल, अर्कमूल और कार्पासमूल मिला दिये जाते है। एरण्डमूल १-१॥ फीट लम्बी १-२॥ इञ्च व्यास मे पायी जाती है। सूखने पर इस पर झुर्रिया लम्बाई की दिशा मे पाई जाती है। मूल सामान्य रूप से ऊपर मोटी, नीचे पतली लोमम होती है। सूखने पर ऊपर मटमैली सफेद, भीतर काष्ठ श्वेत होता है।

एरण्ड तैल मे अलसी का तैल मिला दिया जाता है। अलसी का तैल गाढा होता है सुतरा इसमे सस्ते गाढे तैल मिला दिये जाते हैं। अत इसकी परीक्षा आवश्यक है।

एरण्ड तैल का आपेक्षिक गुरुत्व २० शताश पर ०.९५३ से ०.९६४ मिलता है। इसका एसिड वेल्यु अधिकतम ४ और आइडिन वेल्यू अधिकतम ८२-९० होता है।

गुणधर्म—

एरण्डयुग्म मधुरमुष्ण गुरु विनाशयेत्।
शूलशोथकटीवस्तिशिर पीडोदर ज्वरान्॥
ब्रध्नश्वासकफानाहकासकुष्ठाममारुतान्।
एरण्डपत्रं वातघ्न कफक्रिमिविनाशनम्॥
मूत्रकृच्छ्रहर चापि पित्तरक्तप्रकोपणम्।
वातार्यग्रदल गुल्मवस्तिशूलहर परम्॥
कफवातक्रमीन् हन्ति वृद्धि सप्तविधामपि।
एरण्डफलमत्युष्ण गुल्म शूलानिलापहम्॥
यकृत्प्लीहोदरार्शोघ्न कटुक दीपन परम्।
तद्वन्मज्जा च विड्भेदी वातश्लेष्मोदरापहा॥

—भा० प्र० निघण्टु

एरण्डो हन्ति वृष्यो गुरुमधुरतर शोधन श्वासवर्ध्मान्,
गुल्मानाहोदरार्श कसनकफमरुत् पित्तमेहामवातान्।
हन्यात् पक्त्याख्य शूलक्रिमिपवनरुजान् रक्तपित्तप्रकोपी,
पुष्प तस्यापि वर्ध्मानिलकफगुदजान् गुल्मशूलोर्ध्ववातान्॥

—शोढल

एरण्डोऽपि रसे तिक्त स्वादूष्णोऽनिलनाशन।
उदावर्तप्लीहगुल्मवस्ति शूलान्त्रवृद्धिनुत्॥
गुर्वातप्रशमनो विकाराच्छोनिताञ्जयतेत्।
फल स्वादुरु बुक्षार लघूष्ण भेदि वातजित्॥

एरण्ड युगल वृष्य स्वादुपित्तसमीरजित्।

—धन्वन्तरि निघण्टु

श्वेतैरण्ड सकटुकरसस्तिक्त उष्ण. कफार्तिध्वस धत्ते ज्वरहरमरुत्कासहारी रसार्ह।
रक्तैरण्ड श्वयथुपवन श्रान्तिरक्तार्तिपाण्डुभ्रान्ति श्वास ज्वरकफहरोऽरोचकघ्नो लघुश्च॥

—राज निघण्टु

एरण्डो मधुरगुरु सरो निहन्या-
दानाहश्वयथु कफज्वरामवातान्।

—सि० भे० मणि०

एरण्डमूल वातघ्न बीज भेदनरेचनम्।
तत्पत्र शोथहारि स्याच्छुङ्ग शूलहर परम्॥

—प्रिय निघण्टु

एरण्डयुग्म मधुरमुष्ण गुरु विनाशयेत्।
शूल शोथ कटीवस्तिशिर पीडोदर ज्वरान्॥
ब्रध्न श्वासकफानाहकासकुष्ठाममारुतान्॥

—महौ० नि०

एरण्ड तैल—एरण्डतैल मधुरमुष्ण तीक्ष्ण दीपन कटु कषायानुरस सूक्ष्म स्रोतोविशोधन त्वच्य वृष्य मधुरविपाक वय स्थापन योनिशुक्रविशोधनमारोग्यमेधाकान्तिस्मृतिबलकर वातकफहरमधोभागदोषहर च।

—सुश्रुत० सू० ४५/११४

एरण्डतैल मधुर गुरु श्लेष्माभिवर्धनम्।
वातासृग्गुल्महृद्रोग जीर्णज्वरहर परम्॥

—चरक० सू० २७/[illegible]

सतिक्तोषणमैरड तैल स्वादु सर गुरु।
वर्ध्मगुल्मानिलकफानुदर विषमज्वरम्॥
रुक्शोफौ च कटीगुह्यकोष्ठपृष्ठाश्रयौ जयेत्।
तीक्ष्णोष्ण पिच्छिल विस्र रक्तैरण्डोद्भव त्वति॥

—अ० हृ० सू० ५/५७

एरण्डतैलक्रिमिदोषनाशन वातामयघ्न सकलाङ्गशूलहृत्।
कुष्ठापह स्वादु रसायनोत्तम पित्तप्रकोप कुरुतेऽति दीपनम्॥

—राज० नि०

तैलमेरण्डज बल्य गुरूष्ण मधुर सरम्।
कफमेदोऽनिलहर लेखनं कटु दीपनम्॥

हृद्वस्तिपार्श्व जानूरुत्रिकपृष्ठास्थिशूलिनाम् ।
आमदोषेषु वातासृक्प्लीहोदावर्तशोफिनाम् ॥
हित वातामयस्याग्र्य ग्रन्थिवन्धविकारिणाम् ।
तिक्तोष्ण पित्तल विस्र रक्तैरण्डोद्भव भृशम् ॥
—धन्वन्तरि नि०

ऐरण्डमुष्ण सरमामवातकोष्ठार्तिगुल्म ज्वरशोथासादि ।
—सि० भैं० मणि० २/२५१

एरण्डतैलमहिम मधुर सतिक्त
स्वादे कषायकटुतासहित सतीक्ष्णम् ॥
दोष हरत्यधरभागपथा मलञ्च,
त्वच्य भवत्यनलकृत्पवनाम हृच्च ॥
—प्रिय निघण्टु ३/७२

पूर्व मे वाह्यप्रयोगार्थ विविधरोगो मे एरण्ड के उपयोग का वर्णन किया जा रहा है—

"यवमधुकैरण्डतिलवर्षाभूभिर्वा प्रदेह कार्य" (सुश्रुत चि० ५/७) कहकर वातरक्त मे वात की प्रवलता मे प्रलेपार्थ एरण्ड का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त भैषज्यरत्नावलीकार ने भी "सच्छागदुग्धो रुवुवीजकल्क" का लेप कहा है तथा—

एरण्डवीजममृता शताह्वा जीरक वलाम् ।
छागेन पयसा पिष्ट्वा लेपयेदसकृद्भिषक् ॥
—भैं० र० वात० १६

कर्णशूल-चिकित्सा प्रकरण मे महर्षि सुश्रुत ने उ० त० अ० २१ मे नाडीस्वेत को उपयोगी कहा है और एरण्ड नाडीस्वेदोपयोगी द्रव्य है। वङ्गसेन ने एक उत्तम प्रयोग लिखा है—

एरण्डपत्रपुटपाकविपाचिताम्वु
तुल्यार्द्रकस्य सलिल मधुकेन मिश्रम् ।
पक्त्वा च तैल लवणेनयुत सुखोष्णम्
कर्णेरुच हरति तत्क्षणमेव दत्तम् ॥

हनुग्रह, कण्ठग्रहादि वातरोगाधिकार वर्णित विशिष्ट रोग है। इनके विनाशार्थ एरण्डपायस का वन्धन हितकर है—

एरण्डवीजनसिद्ध कवोष्ण सान्द्रपायस ।
समन्तायुक्तिनो वद्धो हनुकण्ठग्रहापह ॥
—सि० भैं० मणि०

क्षुद्ररोगाधिकारोक्त मषक के विनाश मे एरण्ड उपयोगी सिद्ध होता है। भैषज्यरत्नावली कार ने इस पर एरण्ड के क्षार को लाभप्रद कहा है—

रुवुनालस्य चूर्णेन घर्षो मषकनाशन ।

रुवुरेरण्डस्तस्य नाल दग्ध्वा तन्निर्मितक्षारेण मषकमवघर्षयेत् । —रत्नोज्वला

गदनिग्रहकार ने पत्रवृन्त पर चूना लेकर मषक पर घर्षण को उपयोगी कहा है—

वातारिपत्रवृन्तप्रान्तेनादाय चूर्णक वहुश ।
निघृष्टस्तेन मष निस्रुतरुधिर क्षय याति ॥

वडे-वडे कानो वाला मनुष्य अधिक शोभायमान होता है। प्राचीनकाल मे मानवसौन्दर्यवृद्धि हेतु कर्णपालियो के वर्धन उपायो का प्रचलन था। महर्षि सुश्रुत इस निमित्त एक तैल प्रयोग प्रस्तुत करते है—

शतावर्याश्वगन्धाभ्या पयस्यैरण्डजीवनै ।
तैल विपक्व सक्षीरमभ्यङ्गात् पालिवर्धनम् ॥
—सुश्रुत० सू० १६/२२

इसी प्रकार का एक योग कुचिमार तन्त्र मे भी वर्णित है—

एरण्ड वाजिगन्धा च वचा शावरमूलकम् ।
घृत क्षीर वसा तैल कर्णादीनि विवर्धयेत् ॥

अभिष्यन्द-अधिमन्थादि प्रमुख नेत्र रोगो मे आश्चोतननिमित्त एरण्ड उपयोगी है। वाताभिष्यन्दप्रतिषेध नामक अध्याय मे कहा गया है—

एरण्ड पल्लवे मूले त्वचि वा,ज पय शृतम् ।
कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्ण सेचने हितम् ॥
—सुश्रुत उ० ६/११

यह प्रयोग आचार्य विदेह ने भी कहा है—

कण्टकारीशिफैरण्डमूलत्वक्पत्रसाधितम् ।
क्षीरमाज हित सेके रुक्षु स्यन्दाधिमन्थयो ॥

वातकोपोत्थ अभिष्यन्द मे एरण्डादि द्रव्यो से निर्मित उपयोगी वर्ति का भी वर्णन मिलता है—

वृहत्येरण्डमूलत्वक् शिग्रोर्मूल ससैन्धवम् ।
अजाक्षीरेण पिष्ट स्याद् वर्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥
—भैं० र०

गदनिग्रहकार भी कहते है---

एरण्डमूल सफलप्ररोह विजर्जरक्षीरयुत गवा च ।
स्याद्वातरक्तापहमुग्रमेतदाश्चोतनसद्भिपजो वदन्ति ॥

योनिशूल विनाश हेतु भी कहा गया है—

योनिशूलहर नारी योन्या प्रक्षिप्य धारयेत् ।
पिचुमेरण्डबीज तु परिगृह्य विधानत ॥
एरण्डतैलेन परिप्लुता स्यात् कार्पासपिण्डी यदि योनिमध्ये
शूल तदानी शमयेतदीय सयावको मुण्डितिकाकृतो वा ॥
—गदनिग्रह

शार्ङ्गधरसहिता मे कथित शिरोवेदनाहर कुष्ठादि, देवदार्व्यादि, हरेण्वादि लेपो मे भी एरण्ड अपनी कार्मुकता प्रकट करता है ।

विविध वातरोगो मे स्नेहन स्वेदन हेतु एरण्ड उपयोग मे लाया जाता है जिसका वर्णन इसी लेख के अन्य प्रकरण मे किया गया है । इस विषय की पूर्ण जानकारी हेतु शास्त्रवर्णित प्रसङ्ग देखने चाहिये । इन पक्तियो के लेखक ने स्वसम्पादित धन्वन्तरि पत्रिका के वातव्याधि चिकित्सा विशेपाङ्क मे विस्तृत वर्णन करने का प्रयास किया है ।

सामान्यत कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, आमवात, सन्धिशूल, सन्धिशोथ, नाडीदौर्बल्य, चर्मरोग, स्तनशोथ, कण्ठशोथ आदि शोथ वेदनायुक्त रोगो मे एरण्ड पत्र गरम कर बाधे जाते है किंवा एरण्ड तैल का अभ्यङ्ग किया जाता है ।

प्राय. सभी प्रकार के स्रोतसो की व्याधियो मे एरण्ड का आभ्यन्तर प्रयोग भी होता हैं । वातव्याधि की यह उत्कृष्ट औपधि है । वातरोगो मे धनुर्वात एक घातक रोग है, इसमे एरण्डादि द्रव्य कृत क्वाथ रसौपधियो के अनुपान के रूप मे प्रशस्त है—

एरण्डबिल्व बृहतीद्वय च सौवर्चल व्योपसुरामठ च ।
समातुलुङ्गीलवणोत्तमं च क्वाथोधनुर्वातहर प्रशस्त ॥
—यो० र०

गृध्रसी की चिकित्सा हेतु भावमिश्र कहते हैं—

निष्कुस्येरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीर विपाचयेत् ।
तत् पानन्तु कटीशूले गृध्रस्या परमौषधम् ॥

इसी रोग की चिकित्सा मे गोविन्ददास उष्णगोमूत्र के साथ एरण्ड तैल के प्रयोग को उपयोगी बतलाते हैं—

तैलमेरण्डज वापि गोमूत्रेण पिबेन्नर ।
मासमेक प्रयोगोऽय गृध्रस्यूरुग्रहापह ॥

चक्रपाणिदत्त इसी योग मे कृष्णा चूर्ण का प्रक्षेप कर पान करने का परामर्श देते हैं—

गोमूत्रैरण्डतैलाभ्या कृष्णापीता सुचूर्णिता ।
दीर्घकालोत्थिता हन्ति गृध्रसी कफवातजाम् ॥

योगरत्नाकरकार दशमूलक्वाथ किंवा शुण्ठीक्वाथ के साथ एरण्डतैल पान को कटिशूलहर कहते है तो वैद्य मनोरमाकार निर्गुण्डीस्वरस के साथ पान कटिशूलशामक कहते है—

दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा ।
कटिशूलेषु सर्वेषु तैलमेरण्डसभवम् ॥
—यो० र०

एरण्डतैल निर्गुण्डीस्वरस च पृथक् समम् ।
पीत्वा कटीप्रदेशस्थ वातजित्वा सुखी भवेत् ॥
—वैद्य मनोरमा

साधारण भाषा मे जिसे मोच आ जाना कहा जाता है उसे ही आयुर्वेदज्ञ वातकण्टक कहते है। "श्रमाद्वा जायते" कहकर आचार्य वाग्भट ने अत्यधिक श्रम को भी इस रोग का हेतु कहा है । इसकी चिकित्सा मे एरण्डतैल प्रयोग को महत्व दिया गया हे। चिकित्सा सूत्र है—

रक्तावसेचन कार्यमभीक्ष्ण वातकण्टके ।
पिबेदेरण्डतैल वा दहेत्सूचीभिरेव च ॥

आम को पचाने के लिए दिये जाने वाले द्रव्य प्राय. रूक्ष होते है जिनके उपयोग से वातवृद्धि होती है और वातहर द्रव्य प्राय मधुर स्निग्ध होते है जिनसे आम वृद्धि का भय रहता है । ऐसी स्थिति मे आम के पाचनार्थ किंवा पातनार्थ एव वातविनाशार्थ शोधनशमनोपयुक्त एरण्डस्नेह प्रशस्त औपधि है । तब ही तो आचार्य भावमिश्र ने आलङ्कारिक भापा मे व्यक्त किया है—

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिण ।
एक एव निहन्त्यायमेरण्डस्नेहकेसरी ॥

इसी भाव को अज्ञातनामा योगरत्नाकरकार ने इस प्रकार व्यक्त किला है—

कटितटनिकुञ्जेषु सचरन्वातकुञ्जर ।
एरण्डतैलसिंहस्य गन्धमाघ्राय गच्छति ।।

लोलम्वराज ने आमवात मे दशमूलक्वाथ, शुण्ठी-क्वाथ के साथ एरण्डतैल पीना ही आमवात की उत्तम चिकित्सा कही है। अथवा रास्नादिक्वाथ मे एरण्डतैल पीना उपयोगी कहा है—

रुवूकतैलेन समन्वितोऽय हर्त्ता भवेदामसमीरणस्य ।

हरीतकी चूर्ण और एरण्डतैल वातहरक्वाथ के साथ पीना इस रोग मे अधिक लाभप्रद कहा गया है—

एरण्डतैलयुक्ता हरीतकी भक्षयेन्नरो विधिवत् ।
आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसीवृद्धर्दितोनित्यम् ।।
—भै० र०

वातरक्त की भी यह प्रशस्त औषधि है—

क्षीरेणैरण्डतैल वा प्रयोगेण पिवेन्नर ।
वहुदोषो विरेकार्थ जीर्णे क्षीरौदनाशन ।।
—चरक चि० २९/८३

गुडूची गुण वर्णन प्रसग मे कहा गया है—"वातास्रमुग्र रुवुतैलमिश्रम्"। सुनरा भैषज्य रत्नावलीकार ने गन्धर्वहस्तादि क्वाथ मे अमृता की मयोजना की है।

वैद्यवर श्री वसवराज ने सिरावात, भोगवात, धूमवात, अवयवाङ्गवात आदि विविध वातरोगो का वर्णन किया है इनमे एरण्ड को प्रशस्त औषधि कहा है।

इस प्रकार पक्षाघात, नाडीशूल, अर्दित, कम्पवात अङ्गमर्द आदि वातरोगो मे एरण्डमूल क्वाथ किंवा एरण्ड तैल अकेला या अन्य उपयोगी द्रव्यो के साथ मे लाभदायक सिद्ध होता हे।

उदररोग आठ प्रकार के कहे गये हैं—"पृथग्दोषै समस्तैश्च प्लीहवद्धक्षतोदकै." । इनमे एरण्ड उपयोगी है। भगवान् चरक ने इसमे एरण्डस्नेह विरेचन तथा वातघ्नद्रव्यो से श्रृत एरण्डतैल के अनुवासन को महत्व दिया है। दोपावरण मे वलवान् रोगी को औषधियुक्त एरण्डतैल के प्रयोग का निर्देश दिया गया है—

कफे वातेन पित्तेन ताभ्या वाप्यावृतेऽनिले ।
वलिन स्वौपधयुत तैलमेरण्डज हितम् ।।
—चरक० चि० १३/१७२

—कफे वातेनावृते, कफे पित्तेनावृते, ताभ्या कफपित्ताभ्यां वा वाते आवृते इत्यर्थ । स्वौपधयुतमिति आवरकदोषहरौषधयुतमित्यर्थ । —चक्रपाणि

उदराणि मल धृत्वा वहुशो रेचन हितम् ।
लशुनादिकमेरण्डतैल तत्र प्रशस्यते ।।
—वसवराजीयम्

अष्टविध जो शूलरोग कहे गये हैं उनमे वायु का प्राधान्य होता है और एरण्ड उष्ण किंवा वातहर होने से उनमे लाभ पहुँचाता है—

हिंगुपुष्करमूलाभ्या हिंगुसौवर्चलेन वा ।
विश्वैरण्डयवक्वाथ सद्य शूलनिवारण ।।
—चक्रदत्त

इसी रोग मे महर्षि सुश्रुत ने एरण्डद्वादसक्वाथ का वर्णन किया है। यह विशेषतया कफजन्य शूल का हरण करता है—

"यद्यप्यय योग सर्वशूलहरस्तथाप्यत्यन्तकफशूलहरत्वादत्रोक्त"। —डल्हण

एरण्ड दीपन एव भेदन होने से इस व्याधि का शीघ्र हरण करता है। मणिमालाकार का एक उत्तम योग हे—

एरण्डमेथिकागुडनिर्यूहो हरति जठर शूलानि ।
—सि० भै० मणि० ४/५०७

इसकी भस्म किंवा क्षार उदरशूलहर श्रेष्ठ है—

एरण्डवन्हिशम्बूकवर्पाभूगोक्षुर समम् ।
अन्तर्दग्ध्वा पिवेदद्भिरुष्णाभि शूलशान्तये ।।
—यो० र०

कोष्ठ मे ग्रन्थि के रूप मे उत्पन्न रोग गुल्म कहा जाता है। इसकी चिकित्सा मे एक स्थान पर लिखा गया है—

पिवेदेरण्डज तैलं वारुणीमण्डमिश्रितम् ।
तदेव तैल पयसा वातगल्मी पिवेन्नर ।।
श्लेष्मण्यनुवले पूर्व हित पित्तानुगे परम् ।
—चरक० चि० ५/९३

अर्श रोग मे भी एरण्ड तैल उपयोगी है। इसके पत्र क्वाथ के परिषेक का विधान है—

वृषार्केरण्डविल्वाना पत्रोरस्त्रार्थैश्चसेचयेत् ।
—चरक० चि० १४/४४

एरण्डतैल त्रिफलारसेन च त्रिशोधनम् ।
विट्पित्तश्लेष्मवातानुलोमनाद् गुदजापहम् ॥
—गदनिग्रह

आमातिमार मे आमपातनार्थ एरण्डतैल देना लाभप्रद है। इसके पश्चात् ही अन्य औषधिया फलप्रद हो सकती हैं।

एकमेरण्डज तैल पलमर्धपल पिबेत् ।
उष्ण पयस्तदनु वा मुख तद्धचामपातनम् ॥
—सि० भै० मञ्जूषा

—एरण्डतैल पीत्वा तदनूष्ण पय दुग्ध पानीय वा पेयम् । नेद त्वरितमेव पातव्य किन्तु घन्टानन्तर तथा कार्यमित्युपदेश । —कुञ्चिका

प० श्री हरि शास्त्री ने एरण्डमूल एव आर्द्रकस्वरस के साथ किंवा एरण्डमूल शुण्ठीक्वाथ के साथ सजीवनी वटी के प्रयोग को आमातिमार मे अतीव लाभप्रद कहा है—

एरण्डशुण्ठ्यो स्वरसेन साक
सजीवनीय जलजाक्षि दत्ता ।
आमातिसार हरते च शूल
वन्हिर्यथा शीतमहो स्वभावात् ॥
—सजीवनी साम्राज्यम्

भगवान् चरक ने भी शूल, प्रवाहिका, विबन्ध मे इसको परमोपयोगी कहा है—

शृतमेरण्डमूलेन बालविल्वेन वा पय ।
—चरक० चि० १९/५०

इसी प्रकार उदावर्त चिकित्सा मे भी—
पयसा मासरसैर्वा त्रिफलारसयूपमूत्रमदिरादिभि ।
दोषानुबन्धयोगात् प्रशस्तमेरण्डज तैलम ॥
—चरक० चि० २६/२९

अथैन बहुश स्विन्न युञ्जात् स्नेहविरेचनै ।
—सुश्रुत० उ० ५५/४२

स्नेहविरेचनैरेण्डतैलादिभि । —डल्हण

कासीसभस्म के साथ एरण्ड के उपयोग का विमर्प रोग मे वर्णन किया गया है—

एरण्डनिम्ववीजाढ्य कासीस सरसाञ्जनम् ।
निषेवित हरत्याशु विसर्पमचिरोत्थितम् ॥
—र० त० २१/७५६

एरण्डमूल को पीसकर मधु के साथ सेवन करना कामला रोग मे हितकर है—

एरण्डमूलिका पीत्वा मधुना हन्तिकामलाम् ।
—गदनिग्रह

मेदोवृद्धिविनाशाय—

क्षार वातारिपत्रस्य हिङ्गुयुक्त पिबेन्नर ।
मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥
—ग० नि०

श्लीपदे—

गन्धर्वतैलभृष्टा हरीतकी गोजलेन य पिबति ।
श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥
—भै० र०

मासमेरण्डज तैल गोमूत्रेण समन्वितम् ॥
—अ० हृ०

वातव्यथौ—

त्रैवृतमेरण्डतैल वा मासमर्धमास वा पाययेत् ।
—सुश्रुत० चि० २३/११

अजीर्ण, आध्मान, कोष्ठबद्धता, अतिमद्य सेवन, अत्यधिक शोक क्रोधादि मानसिक कारण, मेदोवृद्धि आदि कई कारणो मे हृत्प्रदेश पर तीव्र वेदना होती है जिसे हृच्छूल कहते हैं। एरण्ड वातहर, वेदनास्थापन, आमशोधन, दीपन, भेदन एव हृद्य होने से इसमे लाभप्रद है। विबन्ध की स्थिति मे एरण्ड तैल की वस्ति देना हितकर है। चिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस आदि रसौषधियो एरण्डसप्तक क्वाथ से देना हितकर है। इस क्वाथ के घटक है—

एरण्डविल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्ग-
पाषाणभित्त्रिकटुमूलकृत कषाय ।
सक्षारहिंगुलवणो रुबुतैलमिश्र
श्रोण्यसमेढ्रहृदयस्तनरुक्षु पेय ॥
—भै० र०

केवल एरण्डमूल का क्वाथ यवक्षार सयुत लाभप्रद हो सकता है। एक सुखप्रद औषधि का सुखप्रद श्लोक है—

पवनाग्निजटा द्विपलाष्टगुणे
सलिले पचिता यवजेन युतम् ।
क्वथन हृदयोद्भवपार्श्वतटी
कटिशूलविदारणसिंहनखम् ॥

महर्षि सुश्रुत इसी प्रकार पार्श्वशूल चिकित्सा प्रकरण मे निर्देश देते है—

एरण्डतैलमथवा मद्यमस्तुपयोरसैः ।
भोजयेच्चापि पयसा जाङ्गलेन रसेन वा ॥
—उ० ४२/१२२

—एरण्डतैल वा मद्यादिभिर्यथासात्म्य यथादोष च प्रातरेव पिबेत्, जीर्णे च क्षीरेण जाङ्गलरसेन वा भोजयेत् ।
—डल्हण

यह कफघ्न होने से कास एवं श्वास कष्ट मे भी लाभ पहुँचाता है। भगवान् चरक ने कास-श्वास के निवारणार्थ एरण्ड क्षार की महत्ता प्रदर्शित की है—

एरण्डपत्रक्षारं वा व्योषतैलगुडान्वितम् ।
लिह्यादेतेन विधिना सुरसैरण्डपत्रजम् ॥
—चरक० चि० १८/१७१

यह तीक्ष्ण होने से मूत्रविशोधन है सुतरां मूत्रकृच्छ्र एवं बस्तिशूलादि मूत्रवहस्रोत गत विकारों को भी हरता है। भैषज्यरत्नावलीकार ने मूत्रकृच्छ्रहर एरण्डमूलादि कषाय कहा है। इसके अतिरिक्त वृ० गोक्षुराद्यवलेह, त्रिकण्टादि घृत, सुकुमारकुमारघृत आदि शास्त्रीय प्रयोगों का एरण्ड मुख्य घटक है। सुकुमारकुमारघृत एरण्ड तैल से बनता है। इस घृत मे एरण्ड तैल की कार्मुकता महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। "द्रव्यगुणहस्तामलक" नामक द्रव्यगुणविषयक महत्वपूर्ण कृति मे श्री बनवारीलाल मिश्र ने इसका उत्तमरीत्या विवेचन प्रस्तुत किया है। दशमूलक्वाथ किंवा शुण्ठीक्वाथ के साथ एरण्डतैल का सेवन बस्तिशूलहर है। अश्मरी भंजनार्थ भी एरण्ड लाभदायक है—

एरण्डमूलपाषाणभेदगोकण्टकैस्तथा ।
एलाटरूषवैदेही मधुवल्लीभिरुत्थितम् ॥
पाययेत् क्वाथमत्युग्रमश्मर्यादिकमुद्धरेत् ।
—क्वाथमणिमाला

शुक्रमेह का मुख्य उपद्रव [illegible] (भै० र०) है। शुक्रोत्सर्ग, मूत्रोत्सर्ग आदि मे [illegible] की निवृत्ति होती है। नूतन शुक्रमेह एवं [illegible] विकारों मे स्नेह विरेचन एवं वस्तियो का विशेष महत्त्व है। [illegible] विषयक वर्णन इसी ग्रन्थ मे हुआ है। [illegible] एरण्ड तैल एवं विधि विरेचनियों को दूर करने मे सहायक सिद्ध होता है।

योनिव्यापत, स्तन्यदोष, सूतिका रोगादि स्त्री विकारों मे एरण्ड आरोग्य प्रदान करने मे सक्षम होता है। बाह्य प्रयोग पूर्व मे कहे गये है एक योनिशूलहर प्रयोग है—

निम्बक्वाथं सुखस्निग्ध निम्बैरण्डज वीजकम् ।
योनिशूलहर क्षिप्त [illegible] योनिसत्यजनम् ॥
—द० ग०

सूतिका स्त्री के दाहादि दूर करने के लिए एक प्रयोग है—

पञ्चाङ्गुलबलाविश्वरसोनासरपुत्रिका ।
कषाय ऐषां सक्षार सूतिकादाहादिनाशन ॥
—क्वाथ मणि०

वृद्धि रोग की एरण्ड सर्वोत्तम औषधि है प्रमाण हेतु शास्त्रोक्त कथन है—

कोशाम्रतिल्वकैरण्ड पानतैलानि वा नरम् ।
सक्षीर वा पिबेन्मास तैलमेरण्डसंभवम् ॥
—सुश्रुत० नि० १९/

लशुनादिकमेरण्डतैल वृद्धिनाशनम् ।
—वनवराजीय

तैलमेरण्डज पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम् ।
आध्मानशूलोपचितामान्त्रवृद्धि जयेन्नरः ॥
—भै० र०

इस रोग मे एरण्ड तैल से निर्मित वातारि रस (भै० र०) का एरण्डमूलक्वाथ के अनुपान से सेवन करना हितावह कहा है। सामान्य दौर्बल्य मे भी यह मधुर स्निग्ध किंवा बल्य, वयस्थापन होने मे लाभप्रद है। एरण्ड तैल विनिर्मित सुकुमारकुमार घृत बल्य एवं रसायन कहा गया है। पूर्व मे एरण्ड तैल के गुणो

वल्य बतलाया गया है। श्री उग्रादित्याचार्य ने एरण्ड, अमृता, भल्लातकादि द्रव्यों से निर्मित एकपाक "एरण्डादिकल्प" के नाम से वर्णन किया है जिसे सर्वोत्तम वल्य रसायन कहकर प्रशस्तिगान गाया है—

एरण्डामृतहस्तिकर्णिविलराद्वीरांघ्रिपै पाचित-
भक्ष्यात् प्रोक्तविधानतः प्रतिदिन सभक्ष्यमक्ष्वक्षयम् ।
वीर्यं प्राज्यबल विलासविलसत् सद्योवन प्राप्य तत्-
पश्चादायुरवाप्यति विगतमव्द्वाना निरुद्धामय ॥

—कल्याणकारक

"कुष्ठापह चापि रसायन च" गुणवर्णनानुसार यह स्वेदोपग और कुष्ठघ्न होने से कुष्ठादि रक्तविकारों में इसका उपयोग किया जाता है। एक प्रयोग है—

अमृतैरण्डवासाञ्च सोमराजी हरीतकी ।
क्वाथ एषा हरेत्कुष्ठ वातरक्तञ्च दारुणम् ॥

—भै० र०

विषम प्रकरण में जो पञ्चानन तैल कहा गया है उसका एरण्ड मुख्य किंवा प्रथम घटक द्रव्य है। एरण्ड के पत्राकुर को जल में पीसकर छानकर सर्पदष्ट रोगी को पिलाने से वमन विरेचन होकर विष निकल जाता है। इसके कल्क को दश स्थान पर बाधना भी हितकर है। यह योग वत्सनाभ एव अहिफेन के विष में भी लाभप्रद सिद्ध होता है। स्वामी परमानन्द जी ने गुणों की पिटारी में कहा है—"एरण्ड की जड को पानी में पीसकर २५० ग्राम पानी मिलाकर पिला देने से नशा उतर जावेगा।" महर्षि सुश्रुत ने कल्प स्थान दुन्दुभिस्वनीय नामक कल्प कहा है उसमें क्षीरागद के निर्माण में बहुत से विषहर द्रव्यों को लिया गया है। उस अगद में वर्धमान (एरण्ड) का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त सर्पदष्टविषचिकित्सित नामक पञ्चम अध्याय में ऋषभ नामक अगद का भी वर्णन किया है। इसके घटक द्रव्यों में क्रमुक के स्थान पर रुबुक भी पाठभेद से है। इसकी व्याख्या में डल्हणाचार्य ने कहा है "क्रमुक पूगफल, रुबुकमित्यन्ये पठन्ति स चैरण्ड।" इन उल्लेखों से इसका विषहरत्व सिद्ध होता है।

स्वेदजनन एवं आमपाचन होने से यह ज्वरघ्न भी है। सिद्धभेषजमणिमाला के रचयिता वैद्य कुलगुरु श्री कृष्णराम जी भट्ट ने अपने पितामह श्री लल्लुराम जी भट्ट का अनुभूत योग मणिमाला के ज्वर चिकित्सा अधिकार में सर्वप्रथम कह कर अपने पितामह के प्रति अपार श्रद्धा प्रकट की है—

एरण्डरास्नामिपितीक्ष्णपत्रकै.
सकृष्णजीरत्रुटिनागकेसरै. ।
कषायक. पाचनदीपन पर
पितामहैर्मेऽयमुदाहृतो नव. ॥

यह कषाय वातिक ज्वर में अधिक लाभप्रद है क्योंकि ज्वर चिकित्सा विषयक त्रिशती नामक ग्रन्थ में भी ऐसे ही एक क्वाथ का वर्णन हुआ है—

रास्नैरण्डशिफाविश्वादेवदार्व्व मृताभयाः ।
जयायाशु प्रगल्भते प्रभजनभुवा रुजाम् ॥

ज्वर में उत्पन्न दाह की शान्ति हेतु—

ततो दाहे तु सञ्जाते पत्रैरण्डसभवैः ।
शीतलै धारितैरगे दाह तस्यापनोदयेत् ॥

—भावप्रकाश

एरण्डमूल के साथ उबाला गया दूध पीने से परिकर्तिकायुक्त ज्वर से व्यक्ति मुक्त होता है—

एरण्डमूलोत्क्वथित ज्वरात् सपरिकर्तिकात् ।
पयो विमुच्यते पीत्वा ....॥

—चरक० चि० ३/२३

कर्णमूलिक ज्वरे—

सहैरण्डत्वचा पिष्ट सविष विषखर्परम् ।
कर्णमूलादिगे शोथे प्रदिह्यादिह बुद्धिमान् ॥

—सि० भै० मञ्जूषा

गर्भवती ज्वरे—

एरण्डमूलममृता मञ्जिष्ठा रक्त चन्दनम् ।
दाहपद्मयुत क्वाथो गर्भिण्या ज्वरनाशन ॥

—भै० र०

साम्राज्यकार ने रक्तचन्दन के स्थान पर श्वेत चन्दन लेना उपयुक्त समझा है।

आशावती चेदसि सञ्ज्वरार्ति
व्यपोहितु सौख्यमुपार्जितु च ।

एरण्ड जिह्नीट्टरिचन्द्रनाना
न्राथेन सञ्जीवनिकापिवत्तम् ॥
—सजीवनी साम्राज्यम्

सतति निरोध हेतु भी एरण्ड उपयोगी कहा गया है। आर्तवकाल के पश्चात् १-१ एरण्ड वीज ६ दिनो तक सेवन करने से गर्भाधान नही होता है। इसी प्रकार योनि मे एरण्ड पत्र की डठल आठ अगुल प्रमाण मे डालने से चार माह का गर्भ भी गिर जाता है।

काण्डमेरण्ड पत्रस्य योनावष्टागुन्न क्षिपेत् ।
चतुर्मासोद्भवो गर्भ स्रवत्येव हि तत्क्षणात् ॥
—र० र० समुच्चय

एरण्ड पत्र वात कफ कृमि मूत्रकृच्छ्र नाशक है तथा पित्त और रुधिर को कुपित करने वाला है। इसके कोमल पत्राग गुल्म, वस्तिशूल, कफ, वात कृमि को हरते हैं। एरण्डफल अत्यन्त उष्ण, दीपन, गुल्म, शूल, उदररोग एव अर्शरोगहर है।

एरण्ड एक उत्तम शोधन द्रव्य—सर्वविधि चिकित्सा के सामान्यत किवा ममासत दो भेद किये गये है—सतर्पण एव अपतर्पण। चरक चतुरानन श्री चक्रपाणिदत्त कहते है—"अपतर्पणसतर्पणाभ्या च सर्व चिकित्सित गृहीत, न ह्यापतर्पणसतर्पणाभ्या विनाऽन्य-द्विधानान्तरमस्ति चिकित्साय येन सर्व एवोपक्रमा सतर्पणापतर्पणभेदा एव।" अपतर्पण चिकित्सा के पुन शोधन एव शमन दो भेद होते है। वर्ण्य द्रव्य एरण्ड एक उत्तम शोधन द्रव्य भी है। इसी विषय पर यहा चर्चा की जा रही है। आयुर्वेदीय चिकित्सा मे शोधन (पचकर्म) का प्रमुख महत्व है। सम्प्रति इसकी उपेक्षा ही पूर्ण लाभ की सम्भावना स्वल्प हो गई है। एरण्ड को भगवान् चरक ने "वृष्य वातहराणाम्" कहकर इसकी कार्मुकता प्रदर्शित की है। वातरोगियो की चिकित्सा का सूत्र आचार्यो ने वर्णित किया है—

अभ्यङ्ग स्वेदन वस्ति नस्य स्नेहविरेचनम् ।
स्निग्धाम्ललवण स्वादु वृष्य वातामयापहम् ॥

एरण्ड के द्वारा ये सब क्रियाये प्राय सम्पादित हो सकती है सुतरा इसकी महत्ता सर्वोपरि है। शोधन के सर्वविधि उपायो मे एरण्ड प्राय उपयोगी सिद्ध हो सकता है। शोधन पञ्चकर्म किवा प्रधान कर्म से जाना जाता है। इसके पाच भेद किये गये है—वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूह एव शिरोविरेचन (नस्य) प्रधानकर्म मे पूर्व को कर्म किये जाते है पूर्वकर्म के नाम से विख्यात है। स्नेहन स्वेदन पूर्वकर्म है। एरण्ड स्नेहन स्वेदन मे भी उपयोगी है।

आयुर्वेद मे स्नेह पाक हेतु उत्तम विधि प्रदर्शित की है। इस विधि मे घृत तैलादि स्नेहो की भलीभाति शुद्धि एव सिद्धि हो जाती है। स्नेह सिद्धि मे पहले शुद्धि आवश्यक है, अत सर्वप्रथम मूर्च्छन किया जाता है। मूर्च्छन मे आमदोष दूर होता है। इसके पश्चात् द्वितीय पाक मे विशेष रोगहर द्रव्य निर्मित क्वाथ डाला जाता है। क्वाथ के लीन हो जाने पर तृतीय पाक मे कल्क द्रव्य डाले जाते है। चतुर्थ पाक मे गन्ध द्रव्य डाले जाते है। इस क्रम मे विधि पूर्वक मन्दाग्नि पर स्नेहो को सिद्ध किया जाता है। जब वे निर्मल, निर्जल, क्वाथ द्रव रहित हो जाते है तब वे पूर्णतया सिद्ध समझे जाते हैं। भैषज्यरत्नावलीकार ने तिल तैल, कटुतैल के साथ एरण्ड तैल की मूर्च्छन विधि का भी वर्णन किया है। एरण्डतैल मूर्च्छन विधि इस प्रकार व्यक्त की है—एरण्ड तैल को भी उक्त रीति से अग्नि पर विपाचित कर उतार-कर ठण्डा हो जाने पर मूर्च्छन कार्य करे। मजीठ, नागरमोथा, धनिया, त्रिफला, अग्निमन्थ, रास्ना, वन खजूर, वटजटा, हल्दी, दारुहल्दी, नलिका, सौठ, केतकी, दही और काजी प्रत्येक ४-४ ग्राम, तैल १ लीटर चतुर्गुण किवा आवश्यकतानुसार जल लेकर मन्दाग्नि पर उक्त विधि से मूर्च्छन करे। यह मूर्च्छित एरण्ड तैल यथास्थान उपयोग मे लाया जा सकता है। सिद्ध तैल स्नेहन हेतु उपयोगी है।

स्नेहन से शोधन, शमन और बृहण तीनो ही कार्य पूर्ण होते है। वातरोगो मे तो स्नेहन केवल पूर्वकर्म ही नही अपि तु कभी-कभी प्रधान कर्म भी होता है। आभ्यन्तर प्रयोग के अतिरिक्त औषधि सिद्ध एरण्ड तैल बाह्य स्नेहन हेतु आधिरयेन उपयुक्त होता है। स्नेह को उपयोग मे लाने के विविध प्रकार है—

युक्त्यावचारयेत्स्नेह भक्ष्याद्यन्नेन वस्तिभिः ।
नस्याभ्यञ्जनगण्डूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणैः ॥

—अ० हृ० सू० १६

रोगानुसार उक्त प्रकारों के माध्यम से स्नेहन किया जाता है। स्नेहन से शरीर मे स्निग्धता, मृदुता, आर्द्रता आदि का प्रादुर्भाव होता है—"स्नेहन स्नेहविष्यन्दन-मार्दव क्लेदकारकम्" (चरक सू० २२)। तैलपान निम्नांकित रोगों मे प्रशस्त है—

कृमिकोष्ठानिलविद्धा प्रवृद्धकफमेदस ।
पिबेयुस्तैलमात्म्या ये तैल दीप्ताग्नयस्तु ते ॥

—शार्ङ्ग० उ० १/१३

स्नेहन हेतु एरण्ड की कतिपय रोगो मे उपयोगिता प्रकट की गई है—

१—एरण्डतैलत्रिफलागोमूत्र चित्रक त्रिपस् ।
सर्पिषा सहित पीत वातार्तित्वमपोहति ॥

—अनुपानदर्पण ५/१५२

२—शतमेरण्डमूलस्य पल शुण्ठ्या यवाढकम् ।
जलद्रोणे विपक्तव्य यावत्पादावशेषितम् ॥
तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च ।
प्रस्थमेरण्डतैलस्य तन्मूलाच्च चतु पलम् ॥
त्रिपल शृङ्गवेरञ्च गर्भ दत्वा विपाचयेत् ।
तत्पिबेत्प्रयत शुद्धो नर क्षीरान्नभुक् सदा ।
आन्त्रवृद्धि जयत्याशु तैल गन्धर्वहस्तकम् ॥

—भै० र० शो०

ऊपर दो आभ्यन्तरीय स्नेहन प्रयोग उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये गये है। अब दो वाह्यस्नेहन हेतु प्रयोग प्रदर्शित है—

(१) एरण्डपत्रस्वरस २५० मि० ली०, काले तिलो का तैल २५० मि० ली०-दोनो को मिलाकर मन्दी आग मे पकाओ। जब तैल मात्र रह जाय उतार लो। इसके मलने से वातजनित पीडा मे अवश्य आराम होता है।

—चि० चन्द्रोदय

(२) तिल तैल ६० मि० ली०, एरण्ड तैल १२० मि० ली०-दोनो को लेकर कढाही मे रखकर अग्नि पर चढाकर मन्दाग्नि से पकावे और इसमे कलिहारी का ३०० मि० ली० रस डालकर दशमूल के चौगुने क्वाथ के साथ पकाकर तैल मात्र अवशिष्ट रहने पर छान ले, तैल तैयार हो गया। स्वच्छता के साथ बोतल मे भरकर डाट लगा देना चाहिये।

इस तैल के मर्दन से सन्धियो का शोथ व दर्द दूर हो जाता है। यह हर तरह के दर्द को दूर करने मे अपना सानी नही रखता। —वैद्यसहचर

स्नेहन के बाद दूसरा पूर्वकर्म स्वेदन कहलाता है। भगवान् चरक ने वातज, कफज एव वातकफज रोगो मे स्वेदन का विधान बताया है। वात, शीत और कफ सौम्य है—स्वेदन इन्हे नष्ट करता है। पित्त उष्ण होने से पित्त-जन्य रोगो मे स्वेदन इष्ट नही है। किन्तु महर्षि सुश्रुत ने कहा है कि यदि प्रवृद्ध वात व कफ के साथ अल्प मात्रा मे पित्त का ससर्ग हो तो द्रव स्वेद कराया जा सकता है। स्वेदन की कार्मुकता मे "स्तम्भगौरवशीतघ्न स्वेदन स्वेदकारकम्" कहा गया है। स्नेहन के पश्चात् स्वेदन किया जाता है। अन्दर से (स्नेहपान द्वारा) और बाहर से (अभ्यङ्गादि द्वारा) शरीर स्निग्ध हो जाने पर निर्वात स्थान पर रात का भोजन परिपूर्णतया जीर्ण हो जाने पर (आमाजीर्ण वाले को स्वेदन अहितकर है) स्वेदन करे। स्नेहन से क्लेदित और स्वेदन से स्विन्न हुये दोष शाखा से पुन कोष्ठ मे आते है। वहा वे वमन विरेचनादि द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिये जाते है।

महर्षि सुश्रुत ने स्वेद के चार प्रकार कहे हैं—ताप-स्वेद, उष्मास्वेद, उपनाहस्वेद और द्रवस्वेद। आचार्य वाग्भट ने उपनाह स्वेदनार्थ एरण्ड की उपयोगिता प्रदर्शित की है—

उपनाहो वचाकिण्वशताह्वादेवदारुभि ।
धान्यै समस्तैर्गन्धैश्च रास्नैरड जटामिषै ॥

—अ० हृ० सू० १७

योगरत्नाकर, शार्ङ्गधरसहिता मे जो साल्वणस्वेद कहा है उसमे तथा भैषज्यरत्नावली मे उक्त शङ्करस्वेद (आमवात) मे एरण्ड को लिया है। द्रवस्वेद मे "शिग्रु-वीरणकैरण्ड..." कहकर पुन एरण्ड की उपयोगिता प्रकट की है।

भगवान् चरक ने तेरह प्रकार के स्वेदो का वर्णन किया है। इनमे प्रस्तरस्वेद, नाडीस्वेद, परिषेकस्वेद, अवगाह स्वेद आदि मे एरण्ड उपयोगी द्रव्य सिद्ध होता है। गुल्माधिकार मे कहा गया है—

तिलरण्डातसीबीजसर्षपै परिलिप्य च।
श्लेष्मगुल्मय पात्रं सुखोष्णं स्वेदयेद् भिषक्॥
—भै० र०

योगरत्नाकरकार ने वातव्याधि चिकित्साधिकार मे वातहा पोटली (पोटल वातभञ्जि) का वर्णन है जिसका एरण्ड एक मुख्य घटक है।

(१) कविराज श्री वी० एस० प्रेमी ने भी आमवात रोग हरणार्थ इसी प्रकार पोटली का वर्णन किया है—

एरण्डमूलत्वक्, कनेर छाल, कुलथी, सहजने की छाल, अर्कमूलछाल—इन सबको समभाग कूट पीसकर एक पोटली मे बाध ले और फिर शोरा, सैंधानमक, लाल फिटकरी समभाग लेकर आठ गुने गोमूत्र मे पाचन कर चतुर्थाश शेष कर ले। गरम-गरम मे ही पोटली को डुबो-डुबोकर आमवात आक्रान्त स्थान पर सेक करे। यह सेक वायु रहित स्थान पर करे। इससे स्वेदन होगा। पीडा की शान्ति होगी और शोथ का क्षय होगा।
—धन्व० जन० ७८ से।

(२) आमवात चिकित्सा प्रकरण मे प० श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी स्वेदन हेतु योग लिखते है जिसके प्रयोग से सकुचित सन्धि फैल जाती है तथा शोथ व शूल शान्त हो जाते है। योग—उडद २४० ग्राम, रास्ना १२० ग्राम, एरण्डमूल छाल १२० ग्राम, प्रसारिणी १२० ग्राम। पहले उडद को पानी मे भिगोकर पीस लेना चाहिये, इसके उपरान्त रास्नादि चारो वस्तुओ को कुचल-कुचल कर सबो को एक साथ मिलाकर एक पोटली के द्वारा शोथ युक्त प्रदेश पर सेक करना चाहिये। —वैद्यसहचर

(३) न्यायायुर्वेदाचार्य वैद्य प० श्री चन्द्रशेखर जैन शास्त्री ने बहुत से उपयोगी स्वेदन प्रयोग प्रस्तुत किये है उनमे से एक प्रयोग यहा पर उद्धृत है—एरण्डपत्र, निर्गुण्डीपत्र, अर्कपत्र और गोभाञ्जनपत्र प्रत्येक २४० ग्राम। लेकर ३ किलो पानी मे पकावे। आधा जल शेष रह जाने पर आग देना बन्द कर दे। उधर रोगी को एक बिना बिछौने की चारपाई पर लिटाकर ऊपर से कम्बल ओढा दे। कम्बल ऐसा हो जो चारपाई के नीचे जमीन से छूता हुआ लटकता रहे। अब चारपाई के नीचे उक्त दवा का पका पानी किसी चौडे बरतन मे डालकर रख दे। दवा के इस गरमागरम पानी से भाफ उठेगी उसका रोगी के पीडित भाग मे लगना अत्यावश्यक है। भाप के लगने से रोगी को खूब पसीना आयेगा। पसीना सूख जाने पर नारायण तैल की मालिश करे। इसका प्रयोग दश दिन तक लगातार करे।
—धन्व० पक्षाघात चिकित्साङ्क

इसी प्रकार अन्य उपयुक्त स्वेदन प्रयोगो मे एरण्ड की उपयोगिता पदे-पदे प्रदर्शित की गई है। चरकसहिता के स्वेदाध्याय मे एरण्डपत्र पर रोगी को लिटाने के लिए कहा गया है। चर्मविकार, रक्तविकार, शोथ, जलोदर, ज्वर, विषप्रकोप, आमजन्य विकारो मे स्वेदन से लाभ होता है, इन रोगो मे एरण्ड का प्रयोग किया जाता है।

पचकर्म का प्रथम कर्म वमन नाम से विख्यात है। एरण्ड अधोभागहर द्रव्य होने से वमन कार्य मे इसका उपयोग नही किया जाता है रोगी को वमन कराने के लिए उपदिष्ट द्रव्यो के उपयोग के पश्चात् कुर्सी पर बैठा कर कण्ठ स्थान को सुहराने हेतु एरण्डनाल (पत्रडण्ठल) को काम मे लाया जाता है। इससे शीघ्र वमन हो जाता है। कहा गया है—

वमन पाययित्वा च जानुमात्रासने स्थितम्।
कण्ठमेरण्डनालेन स्पृशन्त वामयेद् भिषक्॥
—शार्ङ्ग० २/३/२३

'यद्यपि शरीर के दोष-मल विरेचन कराने के कारण वमन आदि को भी विरेचन कहा गया है (शरीरमल-विरेचनाद् विरेचनसज्ञा लभते) किन्तु गुदमार्ग से पुरीष को बाहर निकालने की क्रिया को ही विरेचन के नाम से जाना जाता है। "कायिकदोषहरण गुदेन सद् विरेचनाख्यम्"—इन्दु। विरेचन शब्द इस क्रिया के लिए ही व्यवहृत होता है अत यह शब्द योगरूढि है। जैसा कि चक्रपाणिदत्त ने कहा है—"न चैव सति वमनविरेचन-

वत् निम्हेऽपि विरेचनत्वात्तन्नि मद्भावनीया, यत पङ्कजगन्दवदिय विरेचनमज्ञ मनविरेचनयोगपि योग-म्हया वर्तते।"

भुक्तान्न का सारभाग रस कहलाता है और सार-हीन भाग—मल। उस सारहीन भाग मे ही मूत्र और पुरीष का निर्माण होता है। पक्वाशयस्थ अपानवायु इस पुरीष को बाहर निकालती है। किन्तु अनेको कारणो से जब पुरीष बाहर नही निकल पाता तो कई रोगो का प्रादुर्भाव होता है। उस मल को बाहर निकालने के लिए विरेचन द्रव्यो को प्रयोग मे लाया जाता है। अनेकविध विरेचनो मे स्नेह विरेचन का विशेष महत्व है। आन्त्र मे जाकर स्निग्धता उत्पन्न करने वाली पिच्छिल औषधियो मे स्नेहो का प्रमुख स्थान है। उन स्नेहविरेचन के अन्तर्गत एरण्डस्नेह एक निरापद स्नेह विरेचन द्रव्य होने से सर्वोत्तम है। यह आन्त्र के शोषण पर प्रभाव डालकर स्थानीय चिक्कणता उत्पन्न करके मल मात्रा वृद्धि व निष्कासन के लिए उत्तेजित करता है। इस प्रकार अन्त्रीय श्लेष्मिक कला को उत्तेजित कर तथा अन्त्र की चेष्टावहा नाडियो की गति को बढाने के कारण यह एरण्ड स्नेह क्षोभक (Irritant) विरेचक कहा जाता है। स्नेहो-पयौगिक नामक चिकित्सा मे भगवान् धन्वन्तरि कहते है—

"अत ऊर्ध्वं यथाप्रयोजन यथाप्रधान च स्थावरस्नेहा-नुपदेक्ष्याम —तत्र तिल्वैकरण्ड स्नेहा विरेचयन्ति।"

—सुश्रुत० चि० ३१/५

यह स्मरण रहे कि अधिक स्नेहपान से स्नेहन किये गये व्यक्ति को रक्षित करने के पश्चात् ही स्नेह विरेचन पावें—

य स्निग्धोऽनिपिवेद्विरेचनवृत , स्थानच्युता सचला
दोषा स्नेहवशात् पुनर्नियमिता स्वस्थाभवन्ति स्थिरा।
तस्मात्स्निग्धतर विरूक्षनितरा सुस्नेहत शोधये-
दुद्धूतस्वनिवधनाच्छिथिलना सर्वेऽपि सौख्यावहा॥

—कल्याणकारक

बहुत से रोगो मे स्नेहविरेचन का महत्व है एतदर्थ एरण्डस्नेह उपयुक्त द्रव्य समझा गया है। आमवात के क्रियाक्रम मे निर्दिष्ट है—

लघन स्वेदन तिक्त दीपनानि कटूनि च।
विरेचन स्नेहपान वस्तयश्चाममारुते॥

—"स्नेहपानमिति लघनादिभिरामक्षये जाते तदनन्तर रूक्षस्य वायो प्रशमनार्थ स्नेहपान किंवा स्नेहशब्देनात्र विरेचकतया एरण्डतैल बोधव्यम्।"

—शिवदाससेन

अन्यत्र भी—

मूत्राघातान् यथादोष मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत्।
बस्तिमुत्तरबस्तिञ्च दद्यात्स्निग्धविरेचनम्॥

—भै० र०

वातोदर बलवत स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्।
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात्स्निग्ध विरेचनम्॥

—भै० र०

अत्र शिवदास—ननु "विवर्जयेत्स्नेहपानमजीर्णी चोदरी ज्वरी" इति वचनात् स्नेहपान निषिद्ध, तथा "नोदरी चातिसारी च" इत्यादिना च स्वेदोऽपि निषिद्ध, तत्कथमत्र स्नेहस्वेदोपदेश, उच्यते— स्वतन्त्रयोर्निषेधो बोध्य, न तु शोधनाङ्गभूतयो, अन्यथा दोषहरणस्य दुष्करत्वात् स्निग्ध विरेचनमिति पूर्वोक्तमेरण्डतैलादिकम्।

—नरेन्द्रनाथ शास्त्री

वातजे तैलमैरण्ड विड्ग्रहे पयसा पिबेत्।

—भै० र०

वातजशोथे यदि विड्विबन्ध स्यात्तदा कर्षमितमधिक वैरण्ड तैल पयसा पिबेत्। —न० ना० शास्त्री

सक्षीर वा पिबेत्तैल माससेरण्डसम्भवम्।

—भै० र०

वाताण्डवृद्धि चिकित्सामाहमास तावत् पलद्वयमिते गोदुग्धे कर्षमितमैरण्ड तैल प्रक्षिप्य पिबेत्। चक्रे तु मूल-पाठलग्न—"पाने वस्तौ रुबोस्तैल पेय वा दशकाम्भसा" इति, अस्यायमर्थ, दशमूल क्वाथै नैरण्डतैल पिबेत्।

—न० ना० शास्त्री

विरेचनार्थ एरण्ड स्नेह के प्रयोग से पहले मनीषियो ने जो निर्देश दिये है, उनका अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

१ एरण्डस्नेह विरेचनार्थ प्रात खाली पेट देना चाहिये। औषधि रूप मे आमवातादि रोगो मे सायकाल भी दिया जा सकता है।

२ अधिक मात्रा मे दिये जाने पर क्वचित् इससे उदर मे ऐंठन उत्पन्न हो जाती है। अत उन ऐंठनो से बचने के लिए आर्द्रकस्वरस किंवा शुण्ठी क्वाथ के साथ इसे प्रयोग मे लाना चाहिये। उक्त विकृति दशमूल क्वाथ के साथ देने से भी उत्पन्न नही होती। इन सहपानो से आमनि सरण और अग्निदीपन मे सहायता मिलती है। वातरोगो मे इनमे अधिक लाभ होता है। शुण्ठी के सयोग से आमपक्वाशय मे द्रुतगति हो नही पाती जिससे केवल द्रव पुरीष की प्रवृत्ति न होकर उसके सघात तथा वायु का प्रवर्तन होता है। इन दोनो की मात्रा ३० मि० लि० होनी चाहिये।

३ एरण्डस्नेह द्वारा विरेचन के उपरान्त पुन कोष्ठवद्धता हो जाती है, जिसका कारण अन्त्रपेशियो की वलहीनता और अन्त्र की रिक्तता है। अत कुछ दिन इसका निरन्तर प्रयोग करना चाहिये।

४ वालको के विवन्ध मे एरण्डतैल को आर्द्रकस्वरस तथा मधुयुत कर सेवन कराना चाहिये। वालको मे दुर्वलता का कारण यदि वात प्रकोप हो तो वह भी इसके सेवन से मिट जाता है।

५ यदि किसी व्यक्ति को एरण्डतैल पीने मे असुविधा हो, उवकाई आती हो तो पहले तक्र को मुख मे भरकर थोडी देर गण्डूष करे और तत्काल एरण्डस्नेह पी जावे।

६ इसकी उत्तम मात्रा २०-२५ मि० लि०, मध्यम मात्रा १५-२५ मि० लि० तथा कनिष्ठ मात्रा ५-१० मि० लि० है।

विरेचन हेतु पूर्वोक्त सिद्ध एरण्डतैल उपयोग मे लावें। रोगी रोग का सम्यक्‌रीत्या अवलोकन कर उपयुक्त विरेचन योग की योजना करनी चाहिये। सामान्यत कहा गया है—

लिह्यादेरण्ड तैलेन कुण्ठात्रिकटुकान्वितम्।
सुखोदक चानुपिवेदेष योगो विरेचयेत्॥
एरण्डतैल त्रिफला क्वाथेन द्विगुणेन तु।
युक्त पीत तथा क्षीररसाभ्या तु विरेचयेत्॥
वालवृद्धक्षत क्षीणसुकुमारेषु योजितम्।

—सुश्रुत० सू० ४४

अन्य उपयोगी रेचन प्रयोग—(१) दशमूल के सभी दश द्रव्य १०-१० ग्राम लें और इसकी पाच मात्रा वना लें। एक मात्रा को जौकुट कर क्वाथ वनाकर छान लें, वाद उसमे २७ ग्राम एरण्डतैल, १२५ मि० ग्रा० भुनी हीग तथा ४ ग्राम कालानमक डालकर आध्मान से दुखी रोगी को गर्म-गर्म ही पिला दे, तो आध्मान दूर होकर उदर की शुद्धि होती है। जीर्ण उदरवायु के रोगियो को जिन्हे साथ मे मलावरोध भी रहता हो, बहुत उपयोगी योग है। —रसायनसार द्वि० भा० से

(२) एरण्डतैल ३० ग्राम और चूने का जल १२५ मि० मि० ले। दोनो को खरल मे मर्दन कर श्वेत मिश्रण तैयार कर ले। फिर इलायची मिश्रण का अर्क (Tinct Cardamom Co) ३० वूद मिला लेवे। पश्चात् तीन भाग करके दिन मे ३ समय पिला देवे।

इसकी क्रिया मृदु भाव से एव सत्वर प्रकाशित होती है सुतरा वालक वृद्ध सगर्भा प्रसूता आदि सवको निर्भयतापूर्वक दिया जाता है।

इससे विवन्ध, उदरशूल, प्रवाहिका, अर्श आदि रोगो मे लाभ होता है। —रसतन्त्रसार द्वि० ख० मे

(३) मुनक्का, अमलतास का गूदा, हरीतकी १२-१२ ग्राम, कुटकी ६ ग्राम को २०० मि० लि० जल मे उवालकर चतुर्थांश शेष रहने पर ३० मि० लि० एरण्डतैल मिलाकर ५०० मि० ग्रा० इच्छाभेदी रस घोलकर ठडा-ठडा पिलावे। यह अतितीव्र विरेचन है, जो क्रूर कोष्ठियो के लिए है। —आयु० पचकर्म विज्ञान मे

विरेचन के वाद समर्जन क्रम तर्पण शमनौषध प्रयोगादि का विधान है। विरेचन के ७ दिन वाद वस्ति देने का विधान है। वस्ति की कार्मुकता विस्तृत है। इससे वात नियत्रण एव सुष्ठु अग्निकार्य ही मात्र नही होता अपि तु वृहणादि कर्म भी होते हैं। मुख्यत द्रव्य भेद से वस्ति के महर्षि सुश्रुत ने दो ही भेद किये हैं—निरूह

एव स्नेहिक। शरीर मे औपधि को रोहण कराने वाली अथवा शरीरान्तर्गत दोषो को निर्हरण करने वाली होने से इस बस्ति को निरूह कहा गया है। इसे ही आस्थापन (आयुष्य को स्थिर रखने के कारण) भी कहते हैं। स्नेहिक वस्ति का प्रसिद्ध नाम अनुवासन है। यह यदि शरीर के अन्दर रह भी जाय तो विकार नही करती अथवा यह प्रतिदिन ली जा सकने के कारण अनुवासन बस्ति कहलाती है। शास्त्रो मे इनके प्रकार एव क्रम प्रदर्शित किये है। यह सारा वर्णन वही अवलोकन करना चाहिये यहां पर केवल एरण्ड द्वारा निर्मित वस्तियो का इङ्गित किया जाना अभीष्ठ है। निरूह वस्ति वर्णन मे जो उत्क्लेशन बस्ति, माधुतैलिक बस्ति, एव युक्तरथ बस्ति आदि उल्लिखित है उनमे एरण्ड उपयोग मे लाया जाता है।

१. उत्क्लेशन बस्ति—एरण्ड बीज, महुआ, पिप्पली, सेंधानमक, वच, हाऊबेर और मैनफल का कल्क बना लें और इस कल्क का घोल बनाकर जो वस्ति दी जाती है, उसे उत्क्लेशन वस्ति कहा जाता है। यह दोपो को उभारने वाली है इसके पश्चात् ही दोपहर बस्ति देने का विधान है।

२. माधुतैलिक बस्ति—मधु १९२ ग्राम, तिल तैल १९२ ग्राम एकत्र कर एरण्ड का सिद्ध क्वाथ ३८४ ग्राम मे मिलाकर उसमे सौफ २४ ग्राम, सेंधानमक १२ ग्राम का कल्क मिलाकर वस्ति दी जाती है। यह सार्वकालिक बस्ति है। इससे दीपन, पाचन एव बृंहण होता है।

३. युक्तरथ—माधुतैलिक वस्ति के तीन भेद किये गये है—यापन, सिद्ध और युक्तरथ। इनमे युक्तरथ वस्ति मे एरण्ड डाला जाता है।

एरण्डमूल क्वाथ, मधु, तैल और सेंधानमक का घोल बनाकर उसमे वचा, पिप्पली और मैनफल का श्लक्ष्ण चूर्ण प्रक्षेप कर वस्ति दी जाती है।

आस्थापन वस्ति के वाद अनुवासन वस्ति दी जाती है। विरेचन कर्म के सात दिन के पश्चात् जब रोगी मे बल आ जाय तब उसे स्नेहाभ्यक्त कर उष्ण जल से शनै-शनै स्वेदन कर उचित आहार देना चाहिये। आवश्यक आहार का चतुर्थांश ही देना चाहिये। भोजन कराये बिना अनुवासन वस्ति कदापि न दे। स्नेह के सूक्ष्म होने के कारण रिक्तकोष्ठ मे स्नेह शीघ्र ऊपर पहुँच जाता है। अनुवासन की मात्रा प्राय निरूह वस्ति की चौथाई प्रमाण मे होती हैं। एक बार अनुवासन कराने के बाद तीसरे या पाचवे दिन पुन अनुवासन करना चाहिये। वातवृद्धि की अवस्था मे प्रतिदिन भी किया जा सकता है। स्नेहन वस्ति तथा आस्थापन वस्ति मे से किसी एक का लगातार सेवन करना उचित नही है। अनुवासन वस्ति के लिए जो शास्त्रोक्त दशमूलादि एव गुडूच्यादि तैल वर्णित है उनका एरण्ड मुख्य घटक है। अपथ्य भोजन जन्य उदावर्त मे वैद्य श्री रणजितराय देसाई ने एक एरण्ड तैल की उपयुक्त अनुवासन वस्ति का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ एरण्ड स्नेह निर्मित यह एक अनुवासन वस्ति प्रस्तुत है—

वस्ति पात्र मे पर्याप्त कदुष्ण जल डालकर २५-३० ग्राम सर्जक्षार (सोडाबाईकार्ब) उसमे आलोडित कर शनै-शनै इसकी वस्ति दे। रुग्ण धारण कर सके तब तक उसे धारण करने की सूचना दे। इससे पुरीष का भेदन एव प्रवृत्ति होने पर, रुग्ण को दोषानुसार उपयुक्त भोजन कराकर यह अनुवासन वस्ति दे—एरण्ड तैल ३० ग्राम, गोमूत्र २४ ग्राम, श्रीवास तैल (टर्पेन्टाइन) १५ बूद तथा सौवर्चल ३ वल्ल ले मिश्रित कर इस योग की धारणीय वस्ति दे।

—सचित्र आयुर्वेद अप्रैल ७२ से

औपधि या औपधि सिद्ध स्नेहो का नासामार्ग से दिया जाना नस्य कहलाता है। नस्य औषधि शिर मे पहुँचकर दोषो को क्लेदित कर उन्हे बाहर निकालती है। दोषो के शोधन के अर्थ मे प्रयुक्त विरेचन शब्द के कारण इसे शिरोविरेचन भी कहा गया है। नस्य द्वारा वातव्याधि, ऊर्ध्व जत्रु रोग, कफदोष आदि का शमन होता है। भगवान् चरक ने नस्य को शोधन एव स्नेहन दो रूपो मे व्यक्त किया है। एरण्ड तैल दोनो ही कार्य सम्पादित करता है। आचार्य वाग्भट ने नस्य हेतु तैल

को प्रशस्त कहा है। एरण्ड की नस्य हेतु उपयोगिता है। इस विषय का यह वर्णन पर्याप्त होगा—

मितेरण्ड जटामिहीफलदारुवचानतैं ।
घोषया विल्वमूलैश्च तैल पक्व पयोन्वितम् ।
नस्य सर्वोऽर्ध्व जत्रूत्थ वातश्लेष्मामयार्तिजित् ॥

—अ० हृदय उ० १३/५४

एरण्ड तैल का नस्य—प्रतिश्याय तथा तज्जन्य उक्त तथा अन्य अनुक्त रोगो के नस्यो द्वारा उपचार के प्रकरण मे प्रथम स्मृति एरण्ड तैल की हो आती है यह रिफाइण्ड न लेकर पनसारी या अत्तारो के यहा से अशुद्ध ही लाना चाहिए। पानार्थ भी इसी एरण्ड तैल का व्यवहार करना चाहिए। एक चमची मे थोडा यह तैल लें और इसे अग्नि पर कदुष्ण कर लें। इसकी उष्णता नस्य लेने योग्य हो जाए तब तक बैठे रहे। अनन्तर जिस प्रकार सूघनी सूघी जाती हैं उसी प्रकार चुटकी मे एरण्ड तैल ले उसे एक बैठक मे दो-तीन बार सूघे। इसे इतना ही सूघें कि वह नासाविवरो के ऊर्ध्व भाग तक व्याप्त हो जाए। गले मे न उतरने दे। गले मे पहुँचने से उसमे खराश और क्वचित कास भी हो जाता है। इस प्रकार अहारोत्र मे दो-तीन बार एरण्ड तैल का नस्य लें। इससे दोष पक्व और विलीन होकर बाहर निकल जाता है। परिणामतया उसके मायनसो मे जाने से सम्भावित सायनुसाइटिस गले मे उतरने से सम्भाव्य गलपाक, कास एव कण्ठोद्ध्वस एव सर्वाङ्ग मे प्रसृत होकर सर्वाङ्ग दौर्वल्य, अङ्गसाद, ज्वर, अग्निमान्द्य आदि होने नहीं पाते। कभी-कभी बहुधा शीत पवन के स्पर्श से शिर की त्वचा के नीचे स्थित अति सूक्ष्म मासपेशियो मे आमवात सदृश वेदना होती है, जो कभी-कभी अति उग्र और त्रासदायक होती है। एरण्ड तैल के नस्य से वह भी नष्ट होती है तथा शिर मे लाघव आता है।

—वैद्य श्री रणजितराय देसाई द्वारा
सचित्र आयुर्वेद अगस्त ७५ से

पञ्चकर्म सम्बन्धी अधिक ज्ञान शास्त्रो से करना चाहिये। यहा पर केवल इस क्षेत्र मे एरण्ड की उपयोगिता प्रकट की गई है।

आधुनिक मतानुसार—डाक्टर देसाई के मतानुसार एरण्ड तैल सौम्य, स्रंसन, स्तन्यजनन, दाहशामक और वातहर है। जो द्रव्य मल की गांठो को आगे सरकाते हैं स्रंसन कहे जाते हैं। एरण्ड तैल इनमे श्रेष्ठ है। इसके प्रयोग मे अन्त्र की श्लैष्मिककला मे मृदुता आती है। इसकी क्रिया अन्त्र के प्रारम्भिक भाग पर ही होती है। इसकी क्रिया यकृत् पर बिलकुल नहीं होती। इसे अदरख के रस या सोठ के क्वाथ के साथ देने से आम के निकलने की क्रिया तथा अग्नि प्रदीप्त होने की क्रिया होती है। यह सभी अवस्थाओ मे दिया जा सकता है। पूर्ण निरापद है। एक बार लेने के बाद अवश्य विबन्ध हो जाता है अत जीर्ण कामलावरोध को समाप्त करने के लिये कुछ दिन निरन्तर उपयोग मे लाना चाहिये।

डाक्टर घोषी के अनुसार एरण्डतैल आध्मान, ज्वर, मलावरोध, आमवात, प्रजनन तथा मूत्र संस्थानगत रोगो मे लाभप्रद है। अतीसार की प्रारम्भिक अवस्था मे जब मल या अन्य कारणो से अन्त्रस्राव अधिक होता है और अन्त्र मे रक्तसचय हो जाता है, ऐसी स्थिति मे एरण्डतैल का उपयोग लाभप्रद है। रोग की इस अवस्था मे स्रंसन द्रव्यो के प्रयोग से दुर्बलता बढती है किन्तु एरण्डतैल के प्रयोग से बल बना रहता है, दुर्बलता नही आती है। उदरगुहा एव विटप (पेडू) भर यदि शल्य क्रिया की जाती है तो शल्य क्रिया से पूर्व विवेचनार्थ एरण्डतैल का सेवन कराया जाता है। आन्त्रिक ज्वर, सगर्भावस्था, प्रसवावस्था एव प्रसवोपरान्त मलावरोध हो तो उसे दूर करने के लिए अन्य उपचारो के साथ एरण्डतैल का उपयोग लाभप्रद होता है। इसके प्रयोग से मलावरोध दूर हो जाता है और मलावरोध मिटने पर रोगी की स्थिति मे सुधार होना स्वाभाविक है। अन्त्रशूल या वृक्कशूल होने पर एरण्डतैल को अदरख के स्वरस और मधु के साथ सेवन करने से शीघ्र ही शूल शान्त हो जाता है। गोल कृमियो के कारण यदि अन्त्र मे प्रदाह हो या उदर्याकला मे प्रदाह हो तो अहिफेन फल के छिलको को जल मे भिगोकर उन्हे कुछ उष्ण कर एरण्डतैल मिलाकर देना चाहिये। इससे प्रवाहिका मे भी लाभ होता है। इस प्रयोग से उदरशुद्धि होकर दाहादि वेदना नष्ट हो

जाती है। कामला मे यह अपथ्य है। यह तैल उग्र नही है। वैसे भी विरेचन हेतु इसे दशमूल क्वाथ, अदरख स्वरस या सोठ के क्वाथ के साथ ही उपयोग मे लाना चाहिये। ग्रहणी मे आग्नेय रस (Pancreatic Juice) के मिल जाने के पश्चात् यह अन्त्र की ग्रन्थियो एव पेशियो को उत्तेजित करता है। एरण्डतैल यकृत् को कभी उत्तेजित नही करता है। यह तैल ४-५ घण्टो मे निर्वेदन प्रवाही विरेचन कराता है। फिर अन्त्र पर शामक प्रभाव पहुँचाता है। ग्लेसरिन मिलानें से इसकी विरेचन क्रिया बढती है। पाकोन्मुख विद्रधि पर एरण्ड बीजो का उपनाह (पुल्टिस) बाधने से वह शीघ्र ही पक जाती है। इस पुल्टिस के प्रयोग से आमवातजन्य एव वातरक्त जन्य शोथ एव शूल का भी शीघ्र ही शमन हो जाता है।

प्रसूता के स्तनो पर यदि प्रदाह हो और दुग्ध नि सरण मे रुकावट हो तो एरण्ड के पत्तो की पुल्टिस बनाकर बाधना हितकर है। इससे प्रदाह, वेदना आदि का शमन होकर दुग्ध की रुकावट दूर हो जाती है। स्त्रियो के ऋतुस्राव के समय रज कृच्छ्रता हो तो नाभि के नीचे के भाग पर एरण्ड के पत्तो को कुछ गरम कर बाधने से उक्त कष्ट मिट जाता है। उदरगुहा के यकृत् प्लीहादि आशयो की चिरकारी वृद्धि होने पर चिरकारी रोगो मे एरण्डमूल की छाल का सेवन रक्त प्रसादन रूप से कराया जा सकता है।

पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान के लेखक डा० श्री राम सुशीलसिह ने आत्र पर कार्य करने वाली औषधियो के प्रकरण मे मृदु विरेचक या सारक औषधियो (Laxatives) मे एरण्डतैल (कैस्टर ओयल) का वर्णन किया है, इन्होने इसके बाह्य प्रयोग का भी वर्णन किया है। बाह्य प्रयोग से एरण्डतैल त्वचा एव श्लैष्मिककला पर वेदनाहर एव सशामक (Soothing and Sedative) प्रभाव करता है। अल्कोहल मिलाया हुआ कैस्टर आयल सिर के बालो पर बल्य (Hair Tonic) प्रभाव करता है। अतएव यह विभिन्न केश तैलो (Hair oils) एव पामेड्स (Pomades) मे आधार द्रव्य (Basis) के रूप मे प्रयुक्त होता है।

यह सभी के लिए उपयोगी निरापद विरेचन है। उग्ररूप प्रवाहिका (Acute Dysentery) मे दिये जाने से पेट साफ होकर शीघ्र लाभ हो जाता है। इस रोग की जीर्णावस्था (Chronic) मे भी अल्प मात्रा मे (१५-३० बूद) एरण्डतैल टिक्चर ओपियम के साथ देने से बहुत लाभ होता है। यह वातरोगो मे अत्यन्त लाभप्रद है। मलाशय शुद्धि के लिए एरण्डतैल का प्रयोग वस्ति किंवा एनिमा के रूप मे किया जाता है। कई रईस लोग इसकी हल्की अरुचिकारक गध के कारण इसे लेने को तैयार नही होते है। इसके लिए उन्हे गर्म दूध, चाय, काफी मे मिलाकर देना उपयुक्त है। इसका इमल्सन के रूप मे या जिलेटिन कैप्स्यूल्स मे भरकर भी दे सकते हैं।

बाजार मे उपलब्ध एरण्डतैल गाढा एव चिपचिपा (Viscid) प्राय रङ्गहीन अथवा हल्के पीले रङ्ग के द्रव रूप मे होता है। यह १ भाग, ३-५ भाग अल्कोहल (९०%) मे विलेय होता है। यह निम्न आफिशल योगो मे पडता है।

१ कोलोडियम् फ्लेक्साइल Collodium Flexile (B P and I P.)।

२ आइन्टमेन्ट आफ जिंक आक्साइड एण्ड कस्टर आयल (B P) कस्टर आयल घटित निम्नाकित नुस्खे मुदवस्ति हेतु है—

[१] ओलियम रिसिनाई २ ड्राम (१२० बूद), म्युसिलेज एकेसिई आवश्यकतानुसार, ओलियम लाइमोनिस २ बूद, एक्वा मेन्था० पिप १ औस।

[२] ओलियम रिसिनाई १ फ्लुइड औस, ओलियम आलिवी ४ फ्लुइड औस, ओलियम टरबेथिनी ६० बूद।

एरण्ड का विष प्रभाव—सामान्यतया विष द्रव्यो के तीन भेद किये जा सकते है—

१ दाहक (Corrosivs)।

२ क्षोभक (Irritants)।

३ वातनाडी प्रभावक (Neurotics)।

इनमे क्षोभक विष के पुन दो भेद है—

वानस्पतिक तथा जाङ्गम। कतिपय वानस्पतिक द्रव्यो के अतियोग से विष प्रभाव उत्पन्न होता है। इनमे एरण्ड भी विष प्रभाव उत्पन्न करता है। रक्त

एरण्ड अधिक तीक्ष्ण होने से अधिक किंवा शीघ्र विष प्रभाव प्रकट करता है। विष प्रभाव उत्पन्न करने मे इसमे उपस्थित "राइसिन" नामक विषैला अवयव है। रक्त एरण्ड के २० बीजो की गिरी मादकता उत्पन्न कर देती है। ४० दाने खा लेने से वमन होकर मृत्यु हो जाती है। इस मात्रा से कुत्ता विषाक्रान्त हो जाता है। १० ग्राम बीजो के छिलको का चूर्ण खा जाने से भी मनुष्य मर जाता है।

घातक काल—२ से ६ दिन।

लक्षण—गले मे वेदना, उदर मे शूल, अतीसार अथवा विबन्ध, वमन, शीतल स्वेदयुक्त चर्म, हृदयावसाद और मृत्यु।

मृत्युत्तर रूप—सारी पाचन प्रणाली की कला मे शोथ के लक्षण पाये जाते है।

चिकित्सा—

१ वामक प्रयोगो से किंवा नलिका द्वारा आमाशय शोधन करे।

२ शरीर के ताप को बनाये रखने के लिए उपचार करे इस हेतु, कस्तूरी, पारद के योग उपयोग मे लावे। रोगी को बाहर से भी उष्णता पहुँचावे।

३ वेदनाहर द्रव्यो को उपयोग मे लावे।

४ वशलोचन को सिकजबीन मे पीसकर जल मे मिलाकर पिलावे।

५ दाडिम स्वरस पुन-पुन पिलावे।

६ रूमीमस्तङ्गी तथा कतीरा गोद इसके विष प्रभाव को न्यून करने मे श्रेष्ठ है अत इनका प्रयोग हितावह है।

पथ्य रूप मे एरण्ड का प्रयोग—सुखावह प्रक्रिया ही चिकित्सा कही जाती है। यह त्रिविध है—औषधि, अन्न और विहार। इनमे अन्न और विहार पथ्य की श्रेणी मे आते है। पथ्य का औषधि की अपेक्षा अधिक महत्व है—

विनापि भेषजै व्याधि पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजाना शतैरपि॥

—चरकसहिता

रुग्ण को दिये जाने वाले आहार का विशेष महत्व है, सुतरा महर्षि कश्यप ने आहार को ही भैषज्य रूप मे प्रदर्शित किया है—

न चाहारसम किञ्चिद् भैषज्यमुपलभ्यते।
शक्यतेऽप्यन्नमात्रेण नर कर्तुं निरामय॥

औषधद्वेषी को औषधि मिश्रित पथ्य दिया जाता है किंवा अरुचि की स्थिति मे रुचि उत्पन्न करने के लिए विशिष्ट औषधि द्वारा देय खाद्य तैयार किया जाता है—

लौल्याद्दोषक्षयाद्व्याधेर्वैषम्याद्वापि या रुचि.।
तासु पथ्योपचार स्याद्योगेनाग्रे विकल्पयेत्॥

—चरक० चि० ३०/३३२

यहा पर कतिपय रोगो मे एरण्डयोगेन निर्मित पथ्यो का विवरण प्रस्तुत है—

(१) चावलो के माण्ड मे एरण्डपत्रक्षार, लवण एव हीग मिलाकर पीने से मेदोवृद्धि रुकती है।

(२) एरण्ड के बीज १० ग्राम, सोठ ५ ग्राम लेकर पीसकर, कुछ चावल मिलाकर, दूध मे डालकर खीर बनाकर सेवन करने से कटिशूल एव गृध्रसी मे लाभ होता है।

(३) एरण्ड तैल से चने की पकौडी तैयार कर ले। २-३ पकौडी सुबह-शाम खाकर उपर एरण्डमूल से सिद्ध आसव पीवे अथवा बलारिष्ट पीवें। इसमे आमवात मे लाभ होता है।

(४) एरण्ड तैल २० ग्राम, गेहूँ का आटा १२५ ग्राम दोनो को एकत्र कर उसमे यथावश्यक दूध या गरम जल मिलाकर एक घन्टे तक रखे फिर खूब गूधकर पतली चपातिया बना लेवें। इसे कोयलो की आच पर सेक लेवे। अच्छी तरह पक जाने पर घृत और शक्कर के साथ प्रथम खाकर फिर अन्य समुचित आहार करे। इसे यथावश्यक दिन मे १-२ वार सेवन करे। इससे शौच शुद्धि होकर अम्लपित्त, परिणाम शूल, जीर्ण सन्धिवात, अण्डवृद्धि, कण्डु-पामा आदि दूर होते है।

(५) एरण्डमूल, कुश, काश तथा गोखरू की जड के कल्क से पकाया गया दुग्ध गर्भिणी को पिलाने से उसके उदरशूल मे शान्ति मिलती है तथा कुछ समय तक देने से पुन शूल होने की सभावना नही रहती।

(६) वातारि अपूप—कुमारी स्वरस [ग्वारपाठा का गूदा] लेकर उसमे गेहूँ का आटा मिलाकर पूए बनाने योग्य घोल बना ले। अब एक कढाही मे एरण्ड तैल लेकर मन्दाग्नि पर गर्म करे तथा प्रतप्त तैल के उक्त घोल से पुए बनाकर तल ले। विधिवत् पक जाने पर कढाही से उतारकर सुखोष्ण ही वातरोग पीडितो को खिलावे। अग्नि बलानुसार यथाशक्ति खिलाकर ऊपर से कवोष्ण दूध पिलावे। यह वात व्याधियो मे प्रयोज्य एक उत्तम गुणकारी पथ्य कल्पना है।

—वैद्य श्री हरिशकर शाण्डिल्य द्वारा सुधा० पथ्य व्यवस्था अङ्क से।

(७) शुद्ध एरण्ड मीगी नग एक, दूध २५० ग्राम समान भाग जल मिलाकर औटावे। दूध मात्र शेष रहने पर १२ ग्राम मिश्री मिलाकर सेवन करें। इसी प्रकार एरण्ड गिरी क्रमश १-१ सात दिनो तक बढावे तथा क्रमश इसी प्रकार घटावे। इस कल्प से रक्त विकृतिजन्य रोगो मे लाभ होता है।

(८) शुद्ध एरण्ड मीगी को गाय के चौगुने दूध मे पीसकर औटावे। जब खोवा की भाति हो जावे तो उसमे बराबर खाड मिलाकर अवलेह बना ले। १५-२० ग्राम प्रतिदिन १-२ बार खाते रहने से आध्मानादि का शमन होता है।

(९) ज्वर के रोगी को यदि प्रवाहिका भी हो तो एरण्डमूल का कल्क २० ग्राम लेकर उसे २५० मि० लि० अजादुग्ध मे दुगना जल डालकर पकावे। दूध मात्र शेष रह जाने पर छानकर पिलावे। यह पथ्य दिन मे २-३ बार सेवन करावे।

(१०) शोथरोग मे भी एरण्डमूल से सिद्ध दुग्ध लाभदायक है।

एरण्ड तैल के अन्य उपयोग—

(१) सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुओ, केशतैलो एव मशीनो मे प्रयुक्त होने वाले तैलो मे एरण्ड तैल डाला जाता है।

(२) शस्त्रो को जग से बचाने के लिए उन पर एरण्ड तैल लगा दिया जाता है।

(३) यह साबुन बनाने के काम मे भी आता है। उदाहरणार्थ एक विधि यहा दी जाती है—कास्टिक सोडा १ किलो ५०० ग्राम, एरण्ड तैल ७ किलो, पानी ४ किलो ५०० ग्राम, लवेण्डर आयल ६ ग्राम। कास्टिक मिक्श्चर बनाकर एरण्ड तेल मे डालते और चलाते जावे। गाढा होने पर लवेडर आयल छोडकर खूब चलाकर जमा दे। जब जमकर ठडा हो जावे तब छडिये काटकर साचे मे डाल बट्टिया काट ले।

रस भस्म निर्माण मे एरण्ड की उपयोगिता—

यद्यपि वनौषधियो द्वारा धातुओ का मारण मध्यमकोटि का कहा गया है किन्तु प्राय. इसी सिद्धान्त के अनुसार अधिकतर भस्मे बनाई जाती है। स्वर्णमाक्षिक एव रौप्यमाक्षिक की भस्म बनाने मे एरण्ड उपयोगी है। स्वर्णमाक्षिक का विधानानुसार शोधन करने के पश्चात् मारण किया जाता है। मारण की अनेक विधिया शास्त्र मे वर्णित है। एक विधि है—

माक्षिकस्य चतुर्थाश गन्ध दत्वा विमर्दयेत्।
उरुबूकस्य तैलेन तत कुर्याच्च चक्रिकाम ॥
शरावशम्पुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन तु।
सिन्दूराभ भवेद्भस्म माक्षिकस्य न सशयः ॥

—रसेन्द्रसारसग्रह

रसतरङ्गिणीकार ने स्वर्णमाक्षिक के सत्वपातन की विधि प्रदर्शित की है—स्वर्णमाक्षिक को गोमूत्र, एरण्डतैल, कदलीकन्दस्वरस, गोघृत एव मधु की पृथक्-पृथक् सात भावना देकर एक दृढमूषा मे रखे। इस मूषा को कोष्ठी मे रखकर तीव्र अग्नि से देर तक तपाये तो ताम्र के समान वर्ण और स्पर्श मे सुन्दर माक्षिक सत्व निकल आता है।

रौप्यमाक्षिक की भस्म भी स्वर्णमाक्षिक की भाति ही बनती है, कहा गया है—

स्वर्णमाक्षिकवत्कार्य रौप्यमाक्षिकमारणम्।

—र० तर० २१

रसशास्त्र मे अभ्रक का मारक गण कहा है जिससे अभ्रकभस्म तैयार की जाती है। इन औषधियो के समुदाय मे एरण्ड का मूल एव पत्ते भी है। जिन रोगो को

नष्ट करने मे एरण्ड श्रेष्ठ है उन रोगो मे एरण्ड के सयोग से निर्मित अभ्रकभस्म का उपयोग हितावह है। क्योकि कहा गया है—

पूर्वाचार्ये कीर्तितोऽयमभ्रकस्य मारकोगण ।
यथा रोग यथालाभ भेषजै पुटयेद् घनम् ॥

—र० त० १०

प्राणाचार्य श्री सदानन्द शर्मा ने अभ्रकमारण के ९ प्रकार कहे है उनमे सप्तम प्रकार एरण्ड के सयोग से अभ्रकभस्म बनाने का कहा है। विधि है—धान्याभ्रक मे उसका आठवा भाग गुड डालकर इसको एरण्डपत्र स्वरस से भलीभाति ६ घण्टो तक मर्दन कर इसकी मोटी-मोटी टिकिया बना लें। अब इन टिकियाओ को वड के पत्तो से अच्छी तरह लपेट दे और सम्पुट मे बन्दकर गजपुट मे फूक दे। इस विधि से दश ही पुटो मे अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म हो जाती है।

इसके अतिरिक्त रसमारणार्थ भी एरण्ड तैल उपयोग मे लाया जाता है। श्री गोपालकृष्ण ने रसेन्द्रसार-सग्रह के* प्रथम अध्याय मे रस की कृष्णभस्म बनाने का वर्णन किया है। इस विधि मे एरण्ड तैल भी काम मे लाया जाता है।

एरण्ड पर अनुसन्धान—काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के अनुसन्धाता श्री रामहर्षसिह ने (१९६६) आमवात रोग पर पिण्ड स्वेदन के प्रभाव का अध्ययन कर लाभकारी सिद्ध किया। औषधि द्रव्यो मे चरक सू० २५ मे वर्णित औषधियो मे एरण्डमूल, रास्ना, पिप्पलीमूल, बला आदि तथा चरक चि० २८ मे वर्णित एरण्डतैल इस रोग की किसी न किसी अवस्था मे अवश्य लाभ करते है।

इसके बीज मज्जा कल्क का प्रयोग ५० गृध्रसी के रोगियो मे किया गया जिनके परिणाम उत्साहवर्धक रहे।

—अ० वि० ला० अग्निहोत्री, जी० एल० शर्मा एव वी० ए० शास्त्री ह्यूमेटिस्म, २,१,१९६६, २८-३३।

इसके मूलत्वक् के विभिन्न सत्वो का प्राणियो मे गुणकर्मीय अध्ययन प्रस्तुत है। अन्य सत्वो की अपेक्षा इसके जलीय सत्व मे रक्त दवाव अधिक काल तक कम करने का गुण है। खरगोश के आन्त्र तथा रक्त दवाव पर इसकी क्रिया एसिटिल कोलीन सदृश है। पेट्रोलियम ईथर एव एसिटोन से निकाले सत्व मे निद्रावर्धन गुण है किन्तु और मानसिक क्रियाओ पर उनका कोई प्रभाव नही है। सम्भव है इसमे एसिटिलकोलीन तथा उसके विरोधी, दोनो प्रकार के द्रव्य हो।

—वि० सिह, एस० प्रभु एव वी० एन० शर्मा, जर० रिस, इण्डि० मेडि०, ३,१,१९६८, ६२-६६।

—वानस्पतिक अनु० दर्शिका (डा० श्रीकृष्णचन्द्र चुनेकर।

केन्द्रीय आयुर्वेद एव सिद्ध अनुसन्धान परिषद् भारत सरकार की कतिपय शोध इकाइया जिन पर परिवार-नियोजन सम्बन्धी शोध कर रही है वे द्रव्य हैं—एरण्ड-बीज, जपाकुसुम, पलाशबीज, अजमोद, पिप्पली, विडङ्ग, निम्ब आदि। इन औषधि द्रव्यो के परिणाम आशाजनक है।

—डा० श्री मायाराम उनियाल वनस्पति विशेषज्ञ।

आयुर्वेद विकास नामक डावर पत्रिका के परिवार-नियोजन अक मे क्षेत्रीय अनुसन्धान सस्थान जयपुर के अधिकारियो का एक लेख प्रकाशित हुआ है "नियोजित परिवार के लिए आदिवासी गर्भनिरोधक औषधिया।" प्रस्तुत लेख मे आदिवासियो द्वारा प्रयुक्त ग्यारह गर्भ-निरोधक पौधो का वर्णन किया है। इसमे क्रमाक सात पर एरण्डबीज का प्रयोग उल्लेख किया गया है। प्रयोग विधि प्रदर्शित की है कि ४-५ बीज मासिकधर्म के बाद पानी के साथ लेने से एक वर्ष तक गर्भस्थापन नही होता है।"

राजस्थान आयुर्वेदीय अनुसन्धान मे सतत् लीन श्री लोकनाथ शर्मा ने एरण्ड को गृध्रसी रोग पर प्रभारी पाया। एतद् विषयक शोधपत्र इन्होने सेमिनार ओन आयुर्वेदिक रिसर्च ग्रुप आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर नवम्बर ७९ मे प्रस्तुत किया। उक्त शोधपत्र मेरे आग्रह पर इन्होने धन्वन्तरि के वातव्याधि चिकित्सा विशेषाक (१९८४) मे भी प्रेषित किया, जिसे पाठको ने अत्यन्त सराहा (त्रि० सम्पादक होने से पाठको के पत्र मेरे पास आये)। इसमे इन्होने लिखा है कि "अनुसन्धान केन्द्र उदयपुर मे पूर्व प्रयोगीय परिणामो के **आधार पर**

शास्त्रोक्त एरण्डपाक को स्थानान्तरित करके वातारिपाक कल्पना विशेष का प्रयोग इस रोग पर किया गया। उक्त योग को आशुलाभकारिता व स्थायी रोगोन्मूलन के सम्बन्ध मे जानकारी करने का प्रयास किया गया।"

१ किलो एरण्डबीज की अन्तर्जिह्वा निकाले हुये मगज को पीसकर ४ किलो गोदुग्ध मे पाचित कर खोवा बनाया गया, पश्चात् ५०० ग्राम घी मे पाक किया गया। तदनन्तर २॥ किलो चीनी की चासनी निर्माण कर खोवे मे मिलाई गई एव सुरञ्जान, शुठी, अश्वगन्धा, यवानी, इन्द्रायण का कपडछन चूर्ण मिलाकर जमा दिया गया। इस प्रकार पाक निर्माण विधि से इस योग का निर्माण सम्पादित किया गया।

इस चिकित्सा क्रम से गृध्रसी रोग के २०० आतुरो पर प्रयोग करते हुये चिकित्सोपरान्त वातारिपाक के प्रभाव से २५ प्र० श० रोगी अलाभित, ८० प्र० श० पूर्ण लाभित एव शेष रुग्ण आशिक लाभित पाये गये। यह औषधि योग वातश्लेष्मिक तथा वातिक रोगो पर तुरन्त प्रभावकारी सिद्ध हुआ।

भगवान् चरक ने विमानस्थान मे कई रोगानीक का वर्णन किया है। उसमे रोगो के उत्थान करने वाले प्रदेश की दृष्टि से दो रोग समूह कहे है—आमाशयोत्थ तथा पक्वाशयोत्थ। वातव्याधियो मे प्राय सभी पक्वाशयोत्थ है। आमवात, उरुस्तम्भ, गृध्रसी आदि आमाशयोत्थ व्याधिया हैं। विमान स्थान अध्याय ६/१६ मे वातरोगो की चिकित्सा मे "दीपनीय पाचनीय वातहर विरेचनीयोपहितास्तथा शतपाका सहस्रपाका सर्वशश्च प्रयोगार्था, बस्तय, वस्तिनियम सुखशीलता चेति" कहा गया है।

निरामावस्था मे किवा कृश रोगियो हेतु बृहण आवश्यक है—

लघन पाचन सामे रूक्षोष्ण लघु भोजनम्।
बृहणीयो विधि सर्व क्षामस्य मधुरस्तथा॥
—चरक० सि० ६/६३

तैल निस्कासन विधि—इसका तैल मुख्यत दो विधियो से प्राप्त किया जाता है। (१) शीतविधि, (२) उष्णविधि। विना ताप दिये बीजो को दबाकर तैल प्राप्त करने की विधि शीतविधि है। इस विधि से प्राप्त तैल वर्ण रहित किवा पीताभ गन्धरहित एव किञ्चित् कटु रस होता है। बीजो को जल मे उबालकर या दबाकर तैल निकालते समय ताप देकर तैल निकालने की विधि उष्ण विधि है। ताप के ससर्ग से शीघ्र द्रवीभूत हो जाने से तैल अधिक मात्रा मे उपलब्ध होता है। उष्ण विधि से तैल प्राप्त करने का उत्तम प्रकार यह है—भली-भाति साफ करने के पश्चात् बीजो को कडाई मे थोडा भून ले। फिर ओखली या ढेंकी आदि मे कूटकर भीतर की गिरी किवा मिंगी को निकालकर जल मे पकावे। पकाने से मिंगी मे से तैल निकलकर जल के ऊपर तैरने लग जाता है। जल पर तैरते हुये इस तैल को ऊपर ही ऊपर लेकर एकत्र कर लेवे। पुन इस झाग युक्त प्राप्त तैल को पकाकर शुद्ध कर ले। उक्त विधियो से प्राप्त तैल अत्यन्त उष्ण और रूक्ष होता है जो कि आमाशय और आतो मे दाह उत्पन्न करता है किन्तु आजकल मशीनो द्वारा एरण्ड बीजो का जो कोल्डड्रान (Colddrawn) तैल निकाला जाता है वह उत्तम होता है। कहा है—"आग और पानी से निकाला तैल दवा रूप मे काम नही आता केवल जलाने मे काम आता है। दवा मे मशीन मे दबाया हुआ या कोल्हू मे पिरोया हुआ और फिर जिसको वाष्प (Steam) द्वारा पुन शुद्ध कर लिया हो ऐसा एरण्डस्नेह (Castor Oil) है, और यही विरेचनार्थ काम मे आता है।"

—वैद्याचार्य श्री उदयलाल महात्मा द्वारा

यहा पर कुछ विशिष्ट सस्कारित एरण्डतैल उद्धृत किये जा रहे है जो यथा आवश्यक रोगानुसार उपयोगी सिद्ध होते है—

१. अत्युत्तम संस्कारित एरण्डतैल—दशमूल क्वाथ १ किलो और अमलतास का गूदा २५० ग्राम लेकर ८ किलो पानी मे औटावे। जब चतुर्थांश अर्थात् २ किलो शेष रह जाय, छान ले और इसमे १ किलो एरण्डतैल और १ किलो गोमूत्र डालकर पकावें। जब तैल मात्र शेष रह जाय तब छानकर रख ले। यह आम सचय जन्य वातरोगो मे वातहर क्वाथ के साथ पिलावें।

—श्री देवीशरण जी गर्ग द्वारा

२. वातहर सस्कारित एरण्ड तैल—महारास्नादि क्वाथ मे एरड तैल (Castoe oil) को तैल पाक विधि से सिद्ध कर ले तो यह तैयार हो जाता है।

यह उष्ण, स्निग्ध एव रेचक है। इससे एरड तैल का रेचक गुण कुछ हीन हो जाता है इस कारण से "वातहर तैल" का प्रयोग अधिक दिनो तक करने पर भी दस्त या मरोड का भय नही रहता।

एक छोटे चम्मच से एक बडे चम्मच तक की मात्रा मे प्रात और रात्रि को इसे इच्छानुसार दूध मे मिलाकर दे या वैसे ही सेवन कराये। यह वाताशय को साफ रखता है, ऊष्मा तथा स्निग्धता द्वारा वायु के प्रकोप को शमन करता है तथा यही वातरोगो की मुख्य चिकित्सा है। —प० शिव शर्मा जी द्वारा धन्व० वातरोगांक से।

३. आमवातहर संस्कारित एरण्ड तैल—एरड तैल मे समान कुमारी स्वरस मिलाकर कढाई मे गर्म करे। जब तैल मात्र रह जाय तब उतारकर ठडा कर ले। यह हल्का विरेचन है।

३० मि० लि० तैल दूध के साथ दे। १०-१५ मि० लि० प्रतिदिन देते रहने से आमवात मिटता है। इस तैल मे रोटी या बरे भी तलकर खाये जा सकते है। खिचडी मे भी डालकर खाया जा सकता है।

—श्री शेख फैयाज खा द्वारा धन्व० सफल सि० प्र० से

४. सुवासित संस्कारित एरण्ड तैल—शुद्ध एरड तैल, गुलाब अर्क और पोदीना का रस १-१ किलो, नीबू रस और गूलर पत्र का कल्क २५०-२५० ग्राम, सौफ, सोठ, चन्दन चूरा प्रत्येक का कल्क ६०-६० ग्राम, सौफ अर्क १२० ग्राम और कपूर १२ ग्राम सबको एकत्र मिला (कल्को को प्रथम रसो और अर्को मे मिलावे, फिर सबको तैल मे मिलावे) जल दो किलो मे तैल सिद्ध कर लेवे, फिर छानकर रख ले।

बालको के लिए १ ग्राम और बडो को ६ ग्राम से २४ ग्राम तक दुग्ध के साथ सेवन करावे। यह उदररोगो के लिए रामबाण है। —श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा धन्व० मई ४७ से।

उक्त तैल की लेखक ने बहुत प्रशसा की है। प्रवाहिका मे यह तैल कवोष्ण दूध मे मिलाकर देना चाहिये। गर्भवती को पाचवें मास से प्रसव तक पिलाते रहने (प्रति सप्ताह) से किसी प्रकार के विकार उत्पन्न नही होते हैं। प्रसव के पश्चात् भी यह लाभप्रद है। कृमियो के निष्कासार्थ जन्तुघ्न औषधि के पूर्व और पश्चात् इसे पिलाने मे उत्तम प्रभाव होता है। इस तैल को नेत्रो पर लगाने से नेत्रो की लालिमा, दाह, दृष्टिमाद्यता आदि दोष दूर होते है। व्रण, क्षत, अग्निदग्ध व्रण पर भी लगाने मे यह लाभप्रद है। वातव्याधि मे यह गोमूत्र के साथ सेवन किया जाना चाहिये तथा इसकी मालिश भी करनी चाहिये। इसके बाह्यप्रयोग से हाथ-पैरो का दाह मिटता है तथा बालो पर लगाने से बालो की वृद्धि होती है।

५. बालको के लिए सिद्ध एरण्ड तैल—सोया २४ ग्राम, कालानमक ६ ग्राम दोनो को जल मे पीसकर टिकिया बना ले, २४० ग्राम एरड तैल को कढाही मे डाल उसमे उक्त टिकिया डालकर पकने दे। टिकिया बादामी रग की होने पर कढाही को आग से उतार टिकिया को अलग हटा तैल को छानकर शीशी मे रख ले। इस एरड तैल की ३-४ बूद, २-३ बूद शहद मे मिलाकर तीसरे, चौथे तथा आठवे दिन एक वक्त बच्चो को देने से बालक तन्दुरुस्त रहता है। इससे उसके शरीर मे वायु तथा कब्ज की तकलीफ नही होती।

—जा० व० वै० प्र० गुजराती

६. गन्धर्वहस्त तैल—एरड मूल ४ किलो ८०० ग्राम लेकर २४ लिटर ५७६ मि० लि० जल मे चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ करे, सुठी ४ किलो ८०० ग्राम लेकर २४ लिटर ५७६ मि० लि० जल मे चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ करें तथा यव ३ किलो ७२ ग्राम का २४ लिटर ५७६ मि० लि० जल मे उसी प्रकार चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ करे। १ किलो ५३६ ग्राम एरड तैल, उक्त सभी क्वाथ, ६ लिटर १४४ मि० लि० दुग्ध एव एरण्ड मूल १९२ ग्राम तथा आर्द्रक १४४ ग्राम का कल्क मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करे। १०-१२ ग्राम की मात्रा मे

इस तैल का पान करने से अन्त्रवृद्धि नष्ट होती हे। इसके सेवन के समय दुग्ध, भात का ही सेवन करे।

—भै० र०

(यहा पर सब आभ्यन्तरीय प्रयोग हेतु सिद्ध तैल निर्दिष्ट हैं। बाह्यप्रयोगार्थ उपयोगी तैलो का वर्णन शोधन प्रसग मे एव विविध कल्पना प्रसग मे किया गया है।)

एरण्ड स्नेह का रेचन वैशिष्टच—

(१) रेचनकर्म के साथ यह आन्त्रमार्ग का स्नेहन भी करता है।

(२) ग्रहणी मे पहुँचने पर पित्त की उपस्थिति मे अग्न्याशयिक रस की क्रिया से इसका प्रधान घटक 'रिसीनोलिएट आफ गिलरोल' विघटित या विच्छिन्न होकर ग्लिसरोल एव रिसिनोलीक एसिड नामक दो उपादानो मे परिणत हो जाता है। इस प्रकार इसका रेचनतत्व रिसिनोलीक एसिड स्वतन्त्र हो जाता है। यह आत्र पर क्षोभक प्रभाव करने से शीघ्रतापूर्वक [२-६ घटो मे] अपना रेचनकर्म सपादित करता है।

(३) इसके रेचन से आतो मे मरोड या ऐठन (Gripes) नही होती है।

(४) यह सर्वांशत अन्तिम वेग के साथ उत्सर्गिक हो जाता है जबकि अन्य रेचन द्रव्यो का न्यूनाधिक अश आतो मे रह जाता है।

(५) यदि कदाचित् इसका किंचित् अश रह भी जाये तो आतो से शोपित होकर अन्य स्थिर तैलो की भाति जारित (Oxidised) हो जाता है।

(६) यह अधिक मात्रा मे सेवन किये जाने पर भी कोई विकृति उत्पन्न नही करता।

(७) इसके प्रयोग से कोई आनुपगिक कुप्रभाव (After effects) प्रगट नही होते।

(८) यह बालक, वृद्ध, दुर्बल, कोमलप्रकृतिक एव गर्भवती प्रसूता स्त्रियो को निर्भयता से दिया जा सकता है।

(९) उसे यदि माता सेवन करती है तो प्रचूपणोपरान्त उसका कुछ अश स्तनो द्वारा भी उत्सर्जित होता है सुतरा यदि आवश्यकता समझी जाय तो माता को प्रयोग कराने से ही स्तनपान करने वाले शिशु को भी विरेचन हो जाता है।

(१०) 'ज्वरान्ते विरेचनम्' के अनुसार ज्वर की मुक्ति के पश्चात् इसका उपयोग लाभप्रद है। यह दीपन, बल्य एव वातहर होने से जीर्णज्वर, विपमज्वर, मन्थर ज्वर की अन्तिम अवस्था मे विरेचन के रूप मे लाभदायक सिद्ध होता है।

(११) यह केवल विरेचन ही नही अनेक गुणयुक्त होने से अनेक रोगो मे उपयोगी है। वातव्याधि की यह श्रेष्ठ औषधि हे सुतरा यह शोधन एव शमन दोनो ही प्रयोजन हेतु उपयोग मे लाया जाता है। इन्ही बहुत-सी विशेपताओ के कारण इसकी महत्ता प्रकट की जाती है।

एरण्ड के बाह्य प्रयोग—

(१) **कामला रोग**—एरण्ड पत्रस्वरस तथा पीपल का चूर्ण मिश्रित कर नस्य किंवा अजन करना कामला रोग मे लाभप्रद हे।

(२) **विद्रधि**—वातज विद्रधि मे एरण्ड मूल को पीसकर घृत किंवा तैल मे मिलाकर उष्ण कर गाढा लेप करे।

(३) **व्रण**—व्रण, क्षत एव नाडीव्रण पर इसके कोमल पत्तो को पीसकर लगाना चाहिये।

(४) **नेत्ररोग**—[क] एरण्डपत्र, एरण्डमूल की छाल को बकरी के दूध मे क्वाथ कर, कुछ गरम-गरम क्वाथ मे नेत्रो पर सिंचन करने मे वाताभिष्यन्द मे लाभ होता है। इसको निचोडकर कुछ बूद आंखो मे भी डाली जा सकती है।

[ख] एरण्ड पत्रस्वरस मे सैंधव मिलाकर लगाने से अभिष्यन्द दूर होता है।

[ग] एरण्डपत्र और यव चूर्ण (जौ का आटा) का यथाविधि उपनाह (पुल्टिस) बनाकर नेत्रो पर बाधने से शोथ मिटकर रोग शान्त होता है।

(५) **शिर.शूल**—[क] एरण्डमूल को जल मे पीसकर सिर पर लेप करने से शिर शूल समाप्त होता है।

[ख] एरण्डमूल को भृङ्गराज स्वरस मे पीसकर छानकर नस्य देने से छीके आकर शूल दूर होता है।

[ग] एरण्ड के कोमल पत्र सिर पर बाधने से पसीना आकर शूल समाप्त होता है।

(६) बालरोग—[क] एरण्डपत्र के डठल के छोटे-छोटे टुकडे कर एक धागे मे माला की भाति बाधकर गले मे पहराने से दात निकलते समय की पीडा दूर होकर दात शीघ्र निकलने लगते हैं।

[ख] छोटे बच्चो के तालु के विशेष फडकने पर एरण्डपत्र पर घृत चुपडकर तालु स्थान पर बाधने से लाभ होता है।

(७) आध्मान—[क] एरण्डफलमज्जा, अमलतास फलमज्जा समभाग लेकर नाभि के चारो ओर लेप करने से आध्मान दूर होता है।

[ख] एरण्डफलमज्जा, बदरीफल का कल्क बनाकर पेट पर लेप करने से आध्मान मिटता है।

[ग] एरण्डफलमज्जा को अजामूत्र मे पीसकर कवोष्ण लेप करने से भी आध्मान नष्ट होता है।

[घ] एरण्डफलमज्जा को साबुन मे मिलाकर वर्तिका बनाकर गुदा मे प्रवेश कराने से भी तुरन्त मलनिःसरण होकर आध्मान समाप्त हो जाता है।

(८) कृमिरोग—एरण्ड पत्रस्वरस मे रुई का फाहा तरकर गुदा मे रखने से हर प्रकार के कृमि, चुरने नष्ट हो जाते हैं। इस रस की गुदा मे पिचकारी भी देना लाभप्रद है। कोमल पत्तो का कल्क बाधना भी हितकर है।

(९) अनिद्रा—एरड की गिरी को गाय या बकरी के दूध मे पीसकर गरम कर शिर पर लेप करने से गहरी नीद आती है।

(१०) सूतिकाज्वर—प्रसव के पश्चात् गर्भाशय शोथ हो जाने से स्त्री को तीव्र ज्वर हो जाता है। ऐसी स्थिति मे एरण्ड पत्रस्वरस [वस्त्रपूत] मे स्वच्छ रुई का फाहा भिगोकर योनि मे रखने से शीघ्र ही गर्भाशय शोथ दूर होकर ज्वर उतर जाता है।

(११) विपादिका—एरण्ड के बीज की गिरी को पीसकर विपादिका [बिवाई] मे लगाने से वह मिटती है।

(१२) शिश्न की निर्बलता—इसके बीजों को मीठे तैल मे औटाकर मालिश करने से शिश्न [मूत्रेन्द्रिय] की निर्बलता दूर होती है।

(१३) स्तन शैथिल्य—एरण्ड के पत्तो को सिरके मे पीसकर लेप करने से स्तनो का ढीलापन दूर होकर वे कठोर होते है।

(१४) बाल पक्षाघात—एरण्डबीज, एलुआ, दोनो हरिद्रा, अगर, तगर, अमलतास, अश्वगन्धा और अलसी ५०-५० ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर पानी या गोमूत्र मे पकावे। उसमे ५० ग्राम एरण्ड स्नेह डालकर गाढा होने पर उतारकर आक्रान्त स्थान पर सुहाता-सुहाता लेप करे और मले।

(१५) अर्श—[क] एरण्ड, आक, अडूसा और बिल्व के पत्तो का क्वाथ कर उसमे अवगाहन किंवा परिषेक से अर्श मे लाभ होता है।

[ख] मस्सो पर एरण्डपत्र का डठल लेकर उससे किंचित् चूना रगडने से भी मस्सो का रक्त निकलकर मस्सा कटकर गिर जाता है।

(१६) दाह—ज्वर मे अत्यधिक दाह होने पर एरण्डपत्र बिछाकर सुलाना चाहिये।

(१७) कर्णशूल—कान की पीडा दूर करने के लिए पुटपाक विधि से निकाला गया एरण्ड पत्रस्वरस, अदरख स्वरस, मुलहठी कल्क, तैल, सैंधवलवण भली-भाति मिलाकर गरमकर छानकर गुनगुना ही कान मे डाले।

(१८) प्लीहावृद्धि—एरण्डपत्र की पुल्टिस बनाकर प्लीहा के स्थान पर बाधने से लाभ होता है।

(१९) वृश्चिक दंश—पत्रस्वरस की कुछ बूदे शरीर के जिस भाग मे दश हुआ हो उसके विरुद्ध भाग के कान मे टपकावे। इस प्रकार २-४ बार करने से दश वेदना शान्त हो जाती है।

(२०) अग्निदग्ध—एरण्ड पत्रस्वरस को सरसो के तैल मे मिलाकर जले स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

(२१) हिक्का—एरण्ड के शुष्क पत्र को चिलम मे रखकर धूम्रपान करने से हिक्का बन्द हो जाती है।

(२२) शोथ—एरण्डफलमज्जा, सोंठ, आमाहल्दी को महीन पीसकर शोथ स्थान पर सुखोष्ण लेप करे।

(२३) हनुग्रह—एरण्ड बीज २५ ग्राम को घोटकर १०० ग्राम दूध मे मिला दे तथा अग्नि पर पकावे, जब गाढा हो जाय तो हनुग्रह पीडित स्थान पर सुखोष्ण बाध देने से शीघ्र लाभ होता है।

(२४) मोच—एरड बीज गिरी १० ग्राम, तिल १० ग्राम भेड के दूध मे पीसकर खीर-सी बना ले। इसे मोच वाले स्थान पर बाध दे। इससे शीघ्र ही लाभ होता है।

(२५) सर्पदश—एरडपत्र [कोपल] कल्क का लेप दश स्थान पर करे।

(२६) कण्डू—एरडफलमज्जा को दही मे पीसकर कुछ दिन रख दे। जब वह सड जाय शरीर पर मले। इससे कडू का शमन होता है।

(२७) पिडिका—एरड की छाल और पुनर्नवा की जड को पानी मे पीसकर लगाने से पिडिका मिट जाती है।

(२८) वातरक्त—एरडफलमज्जा को दूध मे पीसकर गरमकर वातरक्तजन्य शोथ स्थान पर बाधने से लाभ होता है।

(२९) प्रसव कष्ट—[क] एरडमूल को गोदुग्ध मे सात बार धोकर प्रसूता की कमर मे बाधने से पीडा कम हो जाती है।

[ख] एरडपत्रो का क्वाथ बनाकर टब मे इसे भर दे। इसी मे थोडा पुनर्नवा मूलस्वरस किंवा क्वाथ भी मिला दे। आसन्न प्रसवा स्त्री उसमे बैठकर पेशाब करे। मूत्रप्रवृत्ति के साथ ही प्रसव हो जायेगा।

(३०) आन्त्रपुच्छ शोथ—एरडफलमज्जा, सौठ, बचा और तिल का चूर्ण बनाकर कटोरी मे पानी के साथ गरम कर सुखोष्ण लेप करे। इससे शूल व शोथ का शमन होता है।

(३१) कास-श्वास—कास-श्वास के रोगी को जब कफ न निकलने से अत्यधिक बेचैनी हो उस समय एरडमूलस्वरस और धत्तूरपत्र स्वरस मे थोडी-सी अफीम मिलाकर गले पर लेप कर दे तथा उस पर थोडा सेक कर दे। इससे शीघ्र शान्ति मिल जायेगी।

(३२) रक्तपित्त—इसकी मीगी के छिलके की भस्म को नाक मे फूकने से नाक से बहता हुआ रक्त बन्द हो जाता है।

एरण्ड के आभ्यन्तरीय सामान्य प्रयोग—

१. आमवात—एरण्डमूल त्वक् का क्वाथ आमवात की पीडा हरने के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

२. ज्वरातिसार—सशूल ज्वरातिसार मे किंवा शूल परिकर्तिका युक्त ज्वर मे एरण्डमूलत्वक् डालकर पकाया हुआ दूध पीना चाहिये।

३. उदररोग—उदररोगो मे स्नेहन के पश्चात् निशोथकल्क मिलाकर एरण्डमूलत्वक् क्वाथ पीना हितकारी है।

४. स्थौल्य—एरण्डमूल को कूटकर जल एव मधु मिलाकर रात्रि भर रखकर पीने से स्थौल्य (मेदोरोग) शनै-शनै कम होता है।

५. उदरशूल—[क] एरण्डमूल की छाल और सौंठ के क्वाथ मे हिंगु और कालानमक मिलाकर पीने से उक्त शूल का शमन होता है।

[ख] एरण्ड की लकडी की भस्म जल के साथ सेवन करने से भी उदरशूल मिटता है।

६. कामला—[क] एरण्डमूल को पीसकर मधु मिलाकर पीने से कामला रोग नष्ट होता है।

[ख] एरण्डपत्र स्वरस मे दुगनी मिश्री मिलाकर प्रात-साय सात दिन तक पिलावे।

७. मक्कलशूल—एरण्डमूलत्वक् एव दशमूल द्रव्य समान मात्रा मे लेकर क्वाथ बनाकर पिलाने से मक्कलशूल का शमन होता है।

८. अण्डवृद्धि—एरण्डमूलत्वक् चूर्ण को दूध मे पीसकर छानकर उसमे एरण्डतैल मिलाकर पीने से अण्डवृद्धि जन्य पीडा एव शोथ का सहार होता है।

९. कृमिरोग—कृमियों को नष्ट करने के लिए एरण्डपत्र स्वरस पान हितकर है। वैसे वनस्पतियो का स्वरस ताजा ही लेकर उपयोग मे लाना चाहिये किन्तु

विवशतावश समय पर उपलब्ध न होने पर उस रस को ताजा रखने के लिए रस को आग पर चढाकर आधा भाग जलाकर फिल्टर पेपर से छानकर बोतल मे भरकर ऊपर से थोडी रेक्टीफाईड स्प्रीट डालकर रख देवे। इसे समय पर उपयोग मे लावे।

१०. स्तन्यन्यूनता—स्त्रियो मे दूध वृद्धि हेतु भी पत्र स्वरस पान किया जाना चाहिये।

११. अफीम विष—एरण्ड की कोमल हरी कोपल को पानी मे ठण्डाई की भाति पीसकर ३-४ बार पिलाने से अफीम का विष उतरता है। इससे वत्सनाभ आदि के विष भी उतरते हैं।

१२. रात्र्यन्ध—एरण्ड के कोमल पत्तो को घी मे भूनकर सेवन करने से रतौंधी मे लाभ होता है।

१३. मौक्तिक ज्वर—एरण्डमूल की छाल, रास्ना, सौफ, पोदीना, इलायची, कालाजीरा तथा नागकेशर इन द्रव्यो को समान मात्रा मे लेकर यवकुट कर क्वाथ बनाकर पिलाने से मौक्तिक ज्वर, बाल ज्वर मे लाभ होता है। यह क्वाथ दीपन-पाचन भी है।

१४. वातव्याधि—वायु जनित विविध पीडाये नष्ट करने के लिए एरण्ड की जड, रास्ना, सोंठ, देवदारु, गिलोय, हरड का क्वाथ बनाकर पीना चाहिये।

१५. हिक्का—[क] एरण्डमूल, बला, अरणी, कूठ और सुंठी का क्वाथ हिक्का मे लाभप्रद है।

[ख] एरण्ड के शुष्क पत्र चिलम मे रखकर धूम्रपान करें। उस धूम्र को निगलने का प्रयास करे। हिक्का २-३ बार पीने से बन्द हो जाती है।

१६. गर्भवती का ज्वर—एरण्डमूल, गिलोय, सोंठ, लालचन्दन, देवदारु और पद्माख का क्वाथ बनाकर पिलाने से गर्भिणी का ज्वर नष्ट होता है।

१७. सूतिकारोग—एरण्डमूल, बला, सोंठ, रसोन और सोनपुष्पी के क्वाथ मे यवक्षार मिलाकर पीने से सूतिका के वातादिरोग दूर होते हैं।

१८. गर्भनिरोध हेतु—ऋतु स्नान के पश्चात् उसे या सातवे दिन स्त्री को लालएरण्ड के बीज का ऊपरी छिलका और अन्दर की जीभ निकालकर खिलाने से एक वर्ष तक गर्भ धारण नही होता है। यह निरन्तर सात दिन तक खिलावे।

१९. प्लीहोदर—एरण्ड के पत्र एव मूल सहित भस्म बनाकर भस्म को गोमूत्र के साथ पीने से प्लीहोदर दूर होता है।

२०. कास—एरण्ड पत्रक्षार (अन्तर्धूम), त्रिकटु, तिलतैल, पुराना गुड मिलाकर चाटने से कासरोग दूर होता है।

२१. प्रसव कष्ट—एरण्डमूल को सिल पर चन्दन की तरह घिसकर उसमे थोडा घृत मिलाकर और गरम कर पिलाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

२२. शोथ—एरण्डपत्र छाया मे सुखाकर चूर्ण बना ले। यह चूर्ण सेवन करने से शोथरोग दूर होता है।

२३. पार्श्वशूल—एरण्डमूलत्वक् तथा गोखरू समभाग का क्वाथ पार्श्वशूल मे लाभप्रद है।

२४. अजीर्ण—एरण्डमूलत्वक्, मेथी और गुड का क्वाथ पीने से अजीर्ण दूर होकर अजीर्ण जन्य शूल शान्त होता है।

२५. सर्पदंश—एरण्डपत्र स्वरस ३०-६० मि० लि० पिला देने से वमन विरेचन होकर विष प्रभाव कम हो जायेगा। ऐसा २-४ बार करना चाहिये।

२६. विबन्ध—एरण्डफल मज्जा से द्विगुणित हरीतकी चूर्ण मिलाकर पीसकर ५०० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। २-३ गोलिया कवोष्ण दूध से देने से विबन्ध मिटता है।

२७. हृच्छूल—एरण्डमूल का कषाय बनाकर यवक्षार मिलाकर सेवन करने से हृच्छूल नष्ट होता है।

२८. धत्तूर विष—रक्तएरण्ड को जल मे पीसकर छानकर ३-४ बार पिलावे।

२९. गृध्रसी—[क] एरण्डबीज ८-१० लेकर छिलके उतारकर थोटा कुचलकर १२५ मि० लि० दूध मे मिलाकर मन्द आच पर पकावे। पकाते समय उसमे २५ ग्राम खाड मिलावे। नित्य प्रात सेवन करने से कोष्ठ साफ होकर ७-८ दिन मे गृध्रसी मे लाभ होता है।

[ख] एरण्डपत्र (नवीन, हरे), तम्बाकू के हरे पत्ते, धतूरे के कोमल हरे पत्ते, अर्क की कोपल और सेंधानमक समानभाग लेकर इन्हे भलीभाति पीसकर चने प्रमाण गोलिया बनावे। १-१ गोली प्रात-साय सुखोष्ण जल से दे। यह सूनानी प्रयोग आमवात मे भी लाभप्रद है।

[ग] एरण्डमूल के क्वाथ मे मधु मिलाकर सेवन करना भी इस रोग मे लाभप्रद है।

३०. मूत्रकृच्छ्र—एरण्डमूल, गोखरू और तालमखाने को दूध मे पीसकर पीने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी आदि रोग मिटते है।

३१. पक्षाघात—एरण्डमूल, खरैंटी की जड, कोच की जड और उडद को समभाग लेकर क्वाथ बनाकर छानकर उसमे सेंधानमक मिलाकर पीने से पक्षाघात मे लाभ होता है।

३२. श्वित्र—श्वेत पुष्प वाले एरण्ड के मूल को रविवार के दिन लाकर उसे दूध मे घिसकर नित्य १२ ग्राम पीते रहने से श्वेतकुष्ठ दूर हो जाता है।

३३. छर्दि—एरण्डफल (जिह्वा रहित) २ नग, शर्करा २० ग्राम को दो घण्टे तक खरल मे भलीभाति घोटकर ६०-६० मि० ग्रा० आध-आध घण्टे के अन्तर से दे। इससे हर प्रकार की छर्दि २-३ मात्रा मे ही दूर हो जाती है।

३४. स्नायुक—एरण्डमूल स्वरस मे दुगना गोघृत मिलाकर ७ दिन सेवन करें।

एरण्ड स्नेह के बाह्य प्रयोग—

(१) शय्याव्रण—अधिक दिनो तक जब रोगी शय्या पर लेटा रहता है तो उसके शरीर पर व्रण हो जाते है, जिन्हे शय्याव्रण कहते हैं। शरीर पर एरण्डस्नेह लगाने से शय्याव्रण नही होते तथा शरीर पर हुये व्रण मिट जाते है।

(२) अण्डवृद्धि—[क] छोटी इन्द्रायण मूल को पीसकर एरण्डस्नेह मे मिलाकर दो-तीन बार लेप करें। लेप करने से पहले लवणयुक्त सुखोष्ण जल से अड धोवे।

[ख] एरण्डस्नेह लगाकर उष्ण किये एरण्डपत्र बाधने से अडवृद्धिजन्य पीड़ा शान्त होती है।

(३) योनिशूल—योनि मे एरंडस्नेह का फाहा भिगोकर रखने से योनिशूल शान्त होता है।

(४) अपतानक—अपतानक रोग मे एरडस्नेह से परिषेक करना चाहिये।

(५) क्रोष्टुकशीर्षक—शिलाजीत और एरडस्नेह का मिश्रण बनाकर लेप करने से जानु (घुटने) का जीर्ण शोध एव पीडा ~~होती है~~। ठीक होती है

(६) शिश्न की वक्रता—मूत्रेन्द्रिय के टेढ़ेपन को दूर करने के लिए एरडस्नेह मे भाग को पीसकर लेप करना चाहिये।

(७) व्रण—एरडस्नेह की पट्टी बाधने से व्रण भर जाते है। इससे दर्द भी कम हो जाता हे तथा सक्रमण होने का भय नही रहता।

(८) स्तनरोग—स्त्रियो के स्तनो पर एरडस्नेह की मालिश करने से स्तनशोथ, स्तनो पर पडी गाठे मिटती है।

(९) लोमाभाव—दाढी, मूछ, भोह, पलक आदि पर यदि बालो का अभाव हो तो एरडस्नेह की निरन्तर मालिश करनी चाहिये। छोटे बच्चो के सिर पर भी यदि बालो का अभाव हो तो मालिश करने से काले, चमकीले, घने बाल आ जाते हे।

(१०) सद्योव्रण—शरीर के कटे हुए अङ्ग से गिरता हुआ रक्त एरडस्नेह मे रुई का फाहा भिगोकर रखने से बन्द हो जाता हे।

(११) डब्बारोग—पके हुये ताम्बूल पर एरडस्नेह चुपडकर तथा आच पर गरम कर सुहाता-सुहाता पेट पर बाध देवे। इसी प्रकार बार-बार बाधने से बालको के डब्बारोग मे शीघ्र लाभ होता है।

(१२) मोच—आक्रान्त स्थान पर एरडस्नेह को गर्म कर मालिश कर रुई लगाकर बन्धन कर दे, लाभ होगा।

(१३) कर्णशल्य—कान मे जन्तु प्रविष्ट हो जाने पर एरडस्नेह से कर्णपूरण करना चाहिये। इससे जन्तु मरकर बाहर निकल जाता है।

(१४) अनिद्रा—यदि ज्वर पीड़ित रोगी को नींद नहीं आता हो तो एरण्डस्नेह और अलसीस्नेह को कांसे की थाली में घिसकर अंजन करने से नींद आने लगती है।

(१५) पलित—एरडस्नेह को गरम कर बालों की जड़ों में १५ मिनट तक प्रतिदिन मलें। रात में सोते समय यह तैल मलकर प्रातः बालों को धो लें। इससे पलित (सफेद बाल होना) रोग में लाभ होता है।

(१६) इन्द्रलुप्त—एक किलोग्राम एरण्डस्नेह में एक औंस काफी का चूर्ण एवं एक औंस ही चन्दन का बुरादा मिलाकर २० मिनट तक गरम करें। इसके पश्चात् छानकर बोतल में भर लें। प्रतिदिन रात को सोते समय सिर में मालिश करें और प्रातः धो डालें। इससे बालों का गिरना बन्द होता है और बालों की सफेदी भी कम हो जाती है।

(१७) तूनी—उष्ण एरडस्नेह में सहजन की छाल तथा एरडमूल की छाल के कल्क की पोटली डुबाकर सेक करने से तूनी नामक वातरोग का शमन होता है।

(१८) दन्तवेष्ट—शुभ्रा चूर्ण और सैन्धव चूर्ण बराबर लेकर इन दोनों के बराबर मधु मिलाकर सबके बराबर एरडस्नेह मिलाकर मसूड़ों पर कुछ दिन मलते रहने से पायोरिया रोग में लाभ होता है। इसमें थोड़ी माधुरी (ग्लेसरिन) तथा कर्पूरधारा मिलाने से अधिक लाभ होता है।

(१९) अर्श—एरडस्नेह में किञ्चित् सा ऐलेयक चूर्ण मिलाकर अर्शांकुरों पर लेप करने से अंकुर म्लान हो जाते हैं। किन्हीं को इससे दाह अधिक होता हो वे प्रयोग न करें।

(२०) शिरःशूल—एरडस्नेह सिर पर मलने से शिर शूल का शमन होता है।

(२१) नेत्ररोग—आंख दुखने पर या कुछ अन्दर गिर जाने पर एरडतैल डालने से लाभ होता है।

(२२) प्रवाहिका—अदरख को पीसकर उसमें एरडस्नेह मिलाकर कुछ उष्ण कर नाभि के चारों ओर लेप करें। इससे सचित कफ, आम गलकर निकल जाता है।

(२३) बालापस्मार—एक छोटे से वस्त्र की आठ तह कर उसको एरण्डस्नेह में भिगोकर बालक के सिर पर (ब्रह्मरन्ध्र स्थान पर) रख दें। [illegible] स्नेह (तैल) में [illegible] ऐसा [illegible] रोग का वेग नहीं आवेगा।

(२४) पिण्डिकोद्वेष्टन—कुछ समय तक एरण्डस्नेह का अभ्यङ्ग कर उष्ण जल से धोने से पिण्डिकोद्वेष्टन मिटता है। अभ्यङ्ग से पूर्व स्नेह को उष्ण कर लें और सुखोष्ण स्नेह का ही अभ्यङ्ग करें।

एरण्डस्नेह के आभ्यन्तरीय सामान्य प्रयोग—

(१) मूत्रकृच्छ्र—उष्णोदक जल में एरण्डस्नेह मिलाकर पिलाने से पेशाब खुलकर आने लगता है।

(२) अण्डवृद्धि—[क] गुग्गुल के क्वाथ में एरण्डस्नेह एवं गोमूत्र मिलाकर पीने से अण्डवृद्धिजन्य पीड़ा शान्त होती है।

[ख] एरण्डस्नेह को ऊंटनी के दुग्ध में मिलाकर पीने से भी लाभ होता है।

(३) प्रसवकष्ट—प्रसवकाल के कष्ट को कम करने के लिए पूर्व में ही गर्भिणी को पञ्चममास के पश्चात् १५-१५ दिनों के अन्तर से एरण्डस्नेह पिलाते रहना चाहिये। प्रसव के समय पर भी एरण्डस्नेह मिलाकर पिलाने से प्रसव शीघ्र होता है।

(४) उदावर्त—उदावर्त रोग में दूध या त्रिफला क्वाथ अथवा गोमूत्र में एरण्डस्नेह मिलाकर पीने से लाभ होता है।

(५) पित्तज गुल्म—एरण्डस्नेह को मधुयष्टि के क्वाथ के साथ पकाकर पीने से पित्तजगुल्म एवं पित्तज-शूल का शमन होता है।

(६) उरुस्तम्भ—गोमूत्र में एरण्डस्नेह मिलाकर सेवन करने से उरुस्तम्भ में लाभ होता है। इसमें पिप्पली चूर्ण भी डाला जा सकता है।

(७) कटिशूल—दशमूल अथवा सौंठ के क्वाथ में एरण्डस्नेह मिलाकर पीने से कटिशूल नष्ट होता है।

(८) श्लीपद—गोमूत्र के साथ एरण्डस्नेह पीने से अथवा एरण्डस्नेह में भृष्ट हरीतकी चूर्ण को गोमूत्र के

साथ सेवन करने से श्लीपद विशेषत. वातजन्य श्लीपद का शमन होता है।

(९) उदरशूल—शुण्ठी क्वाथ मे एरण्डस्नेह मिलाकर सेवन करने से उदरशूल मिटता है।

(१०) आमवात—एरडस्नेह मे भ्रजित हरीतकी चूर्ण को शुण्ठी क्वाथ से सेवन करे। आवश्यकता होने पर क्वाथ मे ही एरडस्नेह डाल ले, इससे आमवात मे शीघ्र लाभ होता है।

(११) बाल पक्षाघात—बच्चो के पोलियो आदि मे विरेचन हेतु एरंडस्नेह मे आधा बादाम तैल मिश्रित कर दूध या उष्ण जल के साथ देवे।

(१२) कास—प्रति तृतीय दिन १०-२० मि०लि० एरडस्नेह पीते रहने से एक-दो माह मे जीर्ण कास का शमन होता है।

(१३) भस्मक रोग—एरडस्नेह मे घृत मिलाकर सेवन करने से तीक्ष्णाग्नि का शमन होता है।

(१४) प्रबाहिका—ईसबगोल की भुसी १० ग्राम, एरडस्नेह २० मि० लि० कवोष्ण दुग्ध ५०० मि० लि० मिलाकर पीने से सचित आम निकल जाता है और प्रवाहिका शान्त हो जाती है।

(१५) बालापस्मार—कोष्ठशुद्धि हेतु एरण्डस्नेह दुग्ध मे मिलाकर पिलाना चाहिये।

(१६) पित्तजन्य विकार—एरडस्नेह को गोदुग्ध और शक्कर के साथ सेवन करने से पित्त विकारो की शान्ति होती हे।

(१७) कांच भक्षण—एरडस्नेह ३० मि० लि० दुग्ध मे मिलाकर पिलाने से मलद्वार से सारा काच निकल जाता हे।

(१८) पार्श्वशूल—एरडस्नेह मे अदरख का रस मिलाकर सेवन करने से पार्श्वशूल का शमन होता है।

(१९) अर्दित—दशमूल क्वाथ मे एरडस्नेह मिलाकर पीने से अर्दित मे लाभ होता हे।

(२०) अजीर्ण—[क] अजीर्ण से बालको को दूध पचता नही है। वे जो भी आहार लेते हे या तो वमन कर देते है या उससे उन्हे अतीसार होने लगता है। ऐसी स्थिति मे उन्हे किंचित् एरडस्नेह सेवन कराने से अपचनजन्य विकार का शमन हो जाता है और बालको की यह व्याधि दूर हो जाती है।

[ख] अजीर्ण के कारण उदर मे वेदना होने लगती हैं। ऐसी स्थिति मे एरडस्नेह मे नीबू स्वरस मिलाकर पीने से उदर वेदना भी मिट जाती है और अजीर्ण प्रभाव भी समाप्त होता है। एरण्डस्नेह मे नीबूस्वरस मिलाने से एरण्डस्नेह का दु स्वाद भी कम हो जाता है और यह आसानी मे लिया जा सकता है।

[ग] इसी अजीर्ण किंवा अजीर्णजन्य विकारो को नष्ट करने के लिए एरण्डस्नेह मे आर्द्रक स्वरस मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है।

(२१) वृक्कशूल—वृक्कशूल के रोगी को एरण्डस्नेह मे आर्द्रकस्वरस एव मधु मिलाकर सेवन करावे। इससे शीघ्र ही शूल शान्त हो जाता है।

(२२) श्वास—एरण्डस्नेह मे दुगुना मधु मिलाकर धीरे-धीरे प्रात -साय सेवन करने से वातजन्य श्वास रोग समाप्त होता है।

(२३) आध्मान—एरण्डस्नेह ५६ ग्राम, गोदुग्ध एरण्डस्नेह मे दुगुना लेकर ६-६ माशे कालानमक तथा सैंधानमक मिलाकर पीने से आध्मान दूर होता है।

(२४) गुल्म—धारोष्ण दुग्ध मे एरण्डस्नेह मिलाकर २१ दिनो तक सेवन करने से गुल्म रोग मिटता है।

विविध कल्पनायें

(१) एरण्डादि क्वाथ—[क] एरण्डमूल, बिजौरा नीबू का मूल, गोखरू, छोटी भटकटैया, बडी भटकटैया, पाषाणभेद और बिल्वमूल—इन ७ द्रव्यो के क्वाथ मे एरण्ड तेल, हीग, यवक्षार और सैंधानमक प्रत्येक १-१ ग्राम मिलाकर पान करने से स्तन, स्कन्ध, कमर शिश्नेन्द्रिय और हृदय सम्बन्धी समस्त वेदना नष्ट होती है।

—शार्ङ्गधरसंहिता

[ख] एरण्डमूल, बेल की गुद्दी, भटकटैया, वनभटा, बिजौरा नीबू की जड, पाषाणभेद, सोठ, पीपर और मरिच का क्वाथ, जवाखार, भुनी हीग, सैंधानमक, एरड

का तैल मिलाकर लेने से कटि, ऊरु, मेढ्र, हृदय और स्तनशूल शान्त होता है। —क्वाथ मणिमाला

[ग] अण्डी की मूल छाल, कच्चे बेल की गिरी, बडी कटेली पञ्चाङ्ग, छोटी कटेली पञ्चाङ्ग इन चारो को कूटकर २४ ग्राम ले, पानी १६२ ग्राम मे पकावे, ४८ ग्राम शेष रहने पर छान ले, ७२० मि० ग्रा० कालानमक मिलाकर गर्म-गर्म पिलावे। यह एक मात्रा है। ऐसी ३-४ मात्रा एक दिन मे सेवन करावे। इनमे शेफाली, हारसिंगार, सभालू, निर्गुण्डी या सिन्धुवार मे से कोई भी १-२ द्रव्य मूल छाल, पत्र, बीज, १ भाग उक्त द्रव्यो मे मिलाकर काढा बनाकर सेवन करावे। इसी काढे मे दशमूल घनसत्व ४६ की मात्राये सेवन करावे।

विश्वाची, गृध्रसी, बाहुशूल, वस्तिशूल, उदरशूल, शिरोशूल आदि वातजशूलो को १-२ दिन मे शमन कर देता है। यदि उदर मे मलसञ्चय हो तो पहले रेचन देना चाहिये। अन्य वातज रोगो मे यह एरण्डमूलादि क्वाथ अनुपान रूप मे प्रयोग किया जा सकता है।

—धन्व० शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क

[घ] एरण्डमूल, वासामूल, गोखरु, गुडूची, बला और इक्षुर (तालमखाना) मूल इनका क्वाथ पीने से वातरक्त का शमन होता है। सभी द्रव्य समान लेवे। इससे उपद्रवयुक्त जीर्ण वातरक्त भी दूर होता है।

—भैषज्य रत्नावली

[ङ] एरण्डमूल, मुलहठी, पाषाणभेद, वासा, गोखरू, अमलतास और पिप्पली समान भाग लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ तैयार करे। इस क्वाथ मे छोटी इलायची, शिलाजीत तथा सुवर्चला मिलाकर पीवे। इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। —भैषज्य रत्नावली

[च] एरण्डमूल, अमृता, मजीठ, देवदारु और पद्माख सभी समान लेकर यवकुट कर ले। इसमे १२ ग्राम लेकर सोलह गुना जल मे पकाकर क्वाथ करे। चतुर्थांश क्वाथ शेष रह जाने पर पिला देवे। इसके पान से गर्भिणी के ज्वर का नाश होता है। —भै० र०

[छ] एरण्ड का मूल, वरियरा, सोठ, लहसुन, चोरपुष्पी इनका क्वाथ जवाखार मिलाकर पीने से सूतिका स्त्री का दाहादि रोग शीघ्र दूर होता है।

—क्वाथ मणिमाला

[ज] एरण्डमूल, सोठ, लहसुन, चित्रक और गदहपुरना का क्वाथ एरण्ड के तैल के साथ लेने से श्वास, प्लीहा, वातशूल, उदरवृद्धि, अष्ठीलिका, रक्तविद्रधि और गुल्मरोग शान्त होता है। —क्वाथ मणिमाला

[झ] एरण्डमूल, पाषाणभेद, गोखरू, छोटी इलायची, फालसा, पीपर और गुरुच का क्वाथ पीने से भयकर अश्मरी रोग दूर होता है। —क्वाथ मणिमाला

[ञ] एरण्डमूल, बिल्व की छाल, छोटी-बडी कटेरी, कालानमक, सैंधानमक, सोठ, कालीमिर्च, पिप्पली, बिजौरा नीबू की जड और हीग का क्वाथ बनाकर सेवन करने से धनुर्वात रोग मे लाभ होता है।

—योगरत्नाकर

[ट] एरण्डमूल, करजक, बिल्व की छाल, चित्रक, शुठी, हरीतकी, पुनर्नवा, यवासा, कालीमूसली इन सबके द्वारा सिद्ध किया हुआ सैंधव गुड मिश्रित क्वाथ वातरोगो को दूर करने के लिये, अग्निबल बढाने के लिये रुचि जगाने के लिये तथा मलशुद्धि के लिये उपयोगी होता है। —केरलीय पञ्चकर्म चिकित्सा विज्ञान

[ठ] एरण्डमूल, पाषाणभेद, गोखरु, वरुण की छाल, दोनो कटेरी, तालमखाना की जड का यथाविधि क्वाथ बनाकर पीने से मूत्र विबन्ध, शुक्राश्मरी आदि मिटते हैं तथा यह क्वाथ शर्कराहर भी कहा गया है।

—धन्वन्तरि भैषज्य कल्पनाङ्क

[ड] एरण्डमूल, रास्ना, सौंफ, पोदीना, इलायची, काला जीरा तथा नागकेशर इन द्रव्यो को समान भाग लेकर यवकुट कर ले। फिर इसका यथाविधि क्वाथ बनावे। यह क्वाथ परम दीपन, पाचन तथा ज्वरघ्न है। वातज्वर तथा मौक्तिक ज्वर मे विशेष लाभप्रद हैं।

—सि० भे० मणिमाला

[ढ] एरण्डमूल, बेल का गूदा, छोटी-बडी कटेरी, बिजौरा नीबू की छाल, पाषाणभेद, गोखरु की जड के क्वाथ मे यवक्षार, भुनी हीग, सैंधानमक और एरण्ड तैल उचित मात्रा मे मिलाकर सेवन करने से, कटि, कन्धा, लिङ्ग, हृदय तथा स्तन के शूल दूर होते है।

—चक्रदत्त

(मूल पाठ मे त्रिकट एव त्रिकटु दोनो ही शब्द हैं। त्रिकट से गोखरू एव त्रिकटु से सोठ, मिर्च, पीपल अभिप्रेत है। कई टीकाकारो ने त्रिकटु स्वीकार किया है तो कई ने त्रिकट। क्वाथ मणिमालाकार ने त्रिकटु लिया है अत: उसे क्रम "ख" पर लिखा गया है। चक्रदत्त के टीकाकार ने गोखरू लिया है अत इसका पृथक् उल्लेख कर दिया गया है।)

[ण] एरण्ड के बीज, इसकी जड की छाल, छोटी-बडी कटेरी, गोखरू, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, सहदेई, सिंहपुच्छी (पृश्निपर्णी भेद) और ईख की जड इन सब का क्वाथ बनाकर यवक्षार के साथ सेवन करने मे एकदोषज, द्विदोषज तथा सन्निपात शूल दूर होता है। —सुश्रुतसंहिता

[त] एरण्डबीज, मैंथी और गुड प्रत्येक द्रव्य ५-५ ग्राम का क्वाथ बनाकर छान पिलाने से उदरशूल तत्काल शान्त होता है। —सि० भे० मणिमाला

(२) एरण्डादि वटी—एरण्ड के बीजो की गिरी, सोंठ और मिश्री समान भाग लेकर यथाविधि गोलिया बना लें। १-२ गोली प्रात सेवन करने से आमवात नष्ट होता है। —योगरत्नाकर

(३) वातारि गुग्गुल—एरण्ड तैल, गन्धक, हरड, बहेड़ा, आमला तथा विशुद्ध गूगुल प्रत्येक समान मात्रा मे मिश्रित करके कूट ले और १॥ ग्राम प्रमाण की बनाई गई गोलियो को गर्म जल से १ मास तक सेवन कराने से आमवात एव गृध्रसी, कटिशूल, खञ्जता, पगुता, शोथयुक्त, वातरक्त, दाहयुक्त, क्रोष्टुशीर्ष नष्ट हो जाते हैं। —भै० र०

(४) एरण्डादि वटक—[क] एरड के कोमल पत्र और मूल को किसी मटकी मे भरकर मुखमुद्रा कर अच्छी तरह कपडमिट्टी कर गजपुट मे फूक देवे। स्वागशीतल होने पर अन्दर की भस्म को पीसकर छान ले। उक्त भस्म मे सोठ, कालीमरिच और पीपल का महीन चूर्ण प्रत्येक, भस्म का चौथाई भाग तथा पुराना गुड दुगुना और थोडा तिल तैल मिलाकर १-१ ग्राम की गोलियां बनाकर सेवन करने से जीर्णकास, श्वास का शमन होता है।

[ख] एरड के बीजो की मिगी २५० ग्राम लेकर उन्हे तक्र मे भिगो दे। तीन दिन तक उन्हे तक्र मे भीगने दें और प्रतिदिन पुराना तक्र पृथक् कर नवीन तक्र भर देना चाहिये। फिर चौथे दिन उसको पानी मे अच्छी तरह धोकर २५० ग्राम घृत मे तल लें। बिलकुल धीमी आग से तले। पूरी तरह से सावधानी रहे कि एक भी बीज जलने न पावे और सारे के सारे बीज अच्छी तरह से तल जाये। फिर इसमे कालीमरिच, छोटी पीपल, कुलिञ्जन १८-१८ ग्राम, सोठ ३० ग्राम, असली अकरकरा ६ ग्राम। यवक्षार, नोनियाखार, सेंधानमक, सौचर-नमक, लौग, कलमीशोरा, नागकेशर, पीपलामूल और रेणुका ७॥-७॥ ग्राम। इन सबका बारीक चूर्ण करके मैदा की चलनी मे छानकर मिला लो और खरल मे डालकर खूब घुटाई करो और फिर छोटे आवले के बराबर गोलिया बना लें।

प्रात-साय दोनो समय १-१ वटक दूध से दें। २७ दिन मे पक्षाघात का आक्रमण समाप्त हो जायेगा। पथ्य मे गेहूँ की रोटी, दाल, दूध, चावल, परवल का साग एव मेथी का साग दे।

—धन्व० पक्षाघात चिकित्साक से

(५) आमवातारि रस—शुद्ध पारद १२ ग्राम, शुद्ध गन्धक २४ ग्राम, त्रिफला ३६ ग्राम, चित्रकमूल की छाल ४८ ग्राम, शुद्ध गुग्गुल ६० ग्राम लें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना ले। फिर अन्य औषधियो के चूर्ण तथा गुग्गुल को मिलाकर बारीक पीसकर एरडतैल के साथ खरल कर २४०-२४० मि० ग्राम की गोलियां बनाकर रख ले। १-२ गोली प्रात-साय गरम जल या दशमूल क्वाथ अथवा महारास्नादि क्वाथ मे एरडतैल मिलाकर इनके साथ दे। ग्रन्थकार ने एरडतैल के साथ देकर उष्ण पीने के लिए कहा है। इस रसायन के सेवन से अति प्रबलतम वातदोष नष्ट हो जाता है। आमवात रोग मे जिस समय हाथ पैरो मे या सारे शरीर मे सूजन हो गई हो, सुई चुभने जैसी पीडा होती हो, उस समय इस दवा के सेवन से अच्छा लाभ होता है। जब तक यह दवा सेवन करे, तब तक वायु बढ़ाने वाले पदार्थों का सेवन करना छोड दें और गरम जल का ही व्यवहार

करे। इस दवा के सेवन से आमवात रोग मे बहुत उत्तम लाभ होता है। अन्य वातरोगो मे भी यह लाभदायक है। ग्रन्थकार ने विशेषतया दूध और मुद्गभक्षण का निषेध किया है। —भै० र०

(ग्रन्थकार ने आमवाताधिकार मे तथा वृद्धि रोगाधिकार मे उक्त योग का वर्णन किया है। योगनिर्माण विधि दोनो स्थानो पर समान है किन्तु उक्त आमवात मे कथित अनुपान विधि के अतिरिक्त वृद्धरोग मे सौंठ एव एरडमूल के क्वाथ का अनुपान लिखा है। तथा तिल तैल युक्त आर्द्रकस्वरस को लिखा है। टीकाकारो ने तिल तैल युक्त आर्द्रक स्वरस के साथ योग सेवन के कुछ समय पश्चात् शुण्ठी एरडमूल क्वाथ पीने लिए कहा है)।

(६) एरण्डपाक—[क] अण्डी के बीजो की गिरी १ किलो लेकर सिल पर पीसकर लुगदी बना लें (पीसते समय थोडा-थोडा दूध डालते जाय जिससे लुगदी ठीक महीन हो जाय) फिर इस लुगदी को आठ किलो गोदुग्ध मे मिलाकर, मन्दाग्नि पर औटावे। जब मावा हो जाय तब लगभग ५०० ग्राम घृत मे उसे भून लें और उसमे नीचे उतारकर सोठ, कालीमिरच, पीपल, लौंग, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, असगंध, रास्ना, पीपलामूल, रेणुका बीज, शतावर, साठी (विसखपरा) काली निसोत, खस, जावित्री, जायफल लोहभस्म और अभ्रकभस्म २४-२४ ग्राम का महीन चूर्ण कर मिलावे पश्चात् चार किलो मिश्री की चाशनी कर उसमे उक्त मिश्रण मिलाकर पाक जमा देवे।

मात्रा और गुण—इसे २४ ग्राम तक की मात्रा मे प्रात काल सेवन करने से सर्वप्रकार के वातरोग, पित्त-रोग, उदररोग, प्रमेह नाडीव्रण, कुष्ठ, क्षय, पाडु, श्वास, ग्रहणी, हष्टीरोग, गलग्रह आदि नष्ट होते हैं।

—वृ० निघटु रत्नाकर से

[ख] अडी बीज की मज्जा या गिरी १२० ग्राम लेकर कलई की हुई थाली कटोरे से पीस लें (थाली मे कटोरे मे पीसने की अपेक्षा सिल पर पत्थर से ही सरलता है) बाद मे ढाई किलो दूध लेकर गर्म करें। जब दूध कुछ गर्म हो जाय तब उक्त पिट्ठी को उसमे डालकर अच्छी तरह घोटावें। जब रबड़ी जैसा हो जाय तब उसमे शक्कर २५० ग्राम मिलावें और कलछी से चलाते रहे जब अच्छा गाढा हो जाय तब उसमे पुन २५० ग्राम मिलाकर कलछी चलाते रहे ज्यो-ज्यो पाक गाढा होता जायगा त्यो-त्यो भीतर का घृत अलग होता जायेगा इस प्रकार जब घी बिल्कुल अलग हो जाय तब (कराची हलुआ जैसा हो जाने पर) पाक तैयार हुआ जानें पश्चात् उसे नीचे उतारकर घी के साथ ही एक थाली मे फैलाकर ठडा करें और ऊपर से छोटी इलायची का चूर्ण ६ ग्राम बुरक देवें। ठडा होने के बाद २४-२४ ग्राम के चकत्ते बनाकर रखें।

मात्रा एव गुण—नित्य प्रात १ खण्ड सेवन करें। मध्यान्ह मे भोजन करने से पूर्व अन्य कुछ भी न खावें। इसका विशेष ध्यान रखें। इसके सेवन से पित्त प्रकोप जन्य फोडे फुसी, खसरा, कण्डू आदि नष्ट होते हैं। पौष्टिक बढता, शुक्रतारल्य, प्रदर, गर्भाशय एव आखो की उष्णता, दृष्टिमाद्य आदि रोग भी इसके प्रयोग से दूर होते हैं। — वृ० पाक सग्रह से

[ग] एरड के पके बीजो की मिगी (गिरी) १ किलो लेकर उसे ८ किलो दूध मे मन्दाग्नि पर पकावें, और खोया हो जाने पर उसे ५०० ग्राम घी मे भून लें, और फिर ४ किलो खाड की चाशनी मे मिला लें, और उसमे त्रिकुटा, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, इलायची, पीपलामूल, चीता, चव्य, सोया, सौंफ, कचूर, बेल, अजवायन, दोनो जीरे, दारुहल्दी, असगध, खरैटी, पाठा, हाऊबेर, वायविडङ्ग, पोहखरमूल, गोखरु, कूठ, त्रिफला, देवदारु, काला बिधारा, बबूल का गोद, एलवालुक और शतावर प्रत्येक का चूर्ण १२-१२ ग्राम मिलाकर रखे। इस पाक को यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से वातव्याधि, शूल, सूजन, वृद्धिरोग, उदररोग, अफरा, वस्तिशूल, गुल्म, आमवात, कटिशूल, उरुग्रह और हनुस्तम्भ का नाश होता है।

[घ] ४ किलो गौदुग्ध को औटाते है जब दूध आधा रह जाता है तब उसमे छिले हुए रेंडी बीज की लुगदी ५०० ग्राम मिलाकर, खूब घुटाई की जाती है जब खोवा

जैसा बन जाता है तब उसे घृत २५० ग्राम मे भून लेते है। फिर मिश्री या शक्कर की दो किलो की चाशनी बनाकर, उसमे उक्त भूने हुए खोवे को मिलाकर, कढाही उतार ली जाती है, और सौफ, पीपल, लौग, इलायची, दालचीनी, सोठ, हर्र, जाविश्री, तेजपात, नागकेशर, असगन्ध, रास्ना और पित्तपापडा प्रत्येक का महीन चूर्ण १२-१२ ग्राम, लोहभस्म ६ ग्राम, अदरख का रस १२ ग्राम, बादाम की गिरी कतरी हुई ५०० ग्राम, मुनक्का (बीज निकाले हुए) ५०० ग्राम और किशमिश ५०० ग्राम मिलाकर ६०-६० ग्राम के मोदक बना लेते हे यह हर प्रकार की दोषज व्याधियो पर वैसे ही प्रमेह, पाडु, क्षय, श्वासादि पर परम लाभकारी, बल, वीर्यवर्धक है।

—धन्व० मई ४६ से।

[ड] २५० ग्राम एरड के बीजो को १२ घण्टे दूध मे भिगोकर, फिर नये दूध मे पीसकर पिट्ठी बना ले। इसे १२५ ग्राम घी मे भून ले खूब अच्छी तरह सेक ले। घी निकलने लगेगा। अब इसमे काली मरिच, छोटी पीपल, कुलिञ्जन १८-१८ ग्राम, सोठ ३० ग्राम, अकरकरा ६ ग्राम, लौंग, नागकेशर, पीपलामूल और वेणुका ७॥-७॥ ग्राम का बारीक चूर्ण कर मिला ले और फिर कढाई मे सेके। फिर दो किलो मिश्री की चाशनी बनाकर और उसमे ३ ग्राम घुटी केशर डालकर पाक विधि से पाक बनाकर एक थाली मे घी चुपडकर इन्हे जमा दे और २५-२५ ग्राम की बरफिया काट ले। १-१ बरफी सुबह शाम दे और ऊपर से दूध पिलावे। पक्षाघात एव अन्यान्य वात विकारो मे परमोत्तम है। ४१ दिन तक इसको उपयोग मे लावे।

—धन्व० पक्षाघात चिकि० से।

(७) **एरण्डादि चूर्ण**—एरड के शुष्कपत्र, वसलोचन, सफेद कत्था, कवावचीनी, सगजराहत, बडी इलायची; कलमीशोरा बराबर मात्रा मे कूट पीसकर छान ले।

इसे मुख मे लगाने से मुखपाक का शमन होता है।

—करवादीन जुगाई से।

(८) **एरण्ड पुटपाक**—सोठ को एरड के स्वरस मे पीसकर गोला बना ले। इसे एरडपत्र मे लपेटकर पुटपाक के अन्दर पकाकर निचोड कर स्वरस निकाल लें। इस स्वरस को पीने से प्रवाहिका शीघ्र ठीक हो जाती है। इससे जठराग्नि दीप्त होती है एव उदरशूल मिट जाता है। यह स्वरस आमवात मे भी लाभप्रद है।

—सचित्र आयुर्वेद जुलाई ६० से।

(९) **रसोनैरण्ड योग**—लहसुन स्वरस २७ ग्राम, एरडतैल ९ ग्राम, सैधानमक ३ ग्राम और शुद्ध हीग १ ग्राम सब एकत्र मिला ले। इन्हे गर्म कर सेवन करने से आध्मान दूर होता है। यह उत्तम वातानुलोमन है।

—योगरत्नाकर से।

(१०) **एरण्डादि तैल**—[क] एरडबीज, कडुवी तुम्बी के बीज, नीम के बीज, चकवडबीज, अकोलबीज और बाकुची समभाग लेकर पातालयन्त्र से तैल निकाले।

यह तैल विसर्प पर लगाना परम हितकर है।

—र० र० स० से।

[ख] एरड के पत्ते, धतूरे के पत्ते, आक के पत्ते, सहदेई के पत्ते, सहजने के पत्ते, असगन्ध के पत्ते, सम्हालू के पत्ते।

इनका सबका अलग-अलग १२५-१२५ मि० ग्राम स्वरस निकालकर एक कढाही या भगोने मे भरो। इसी मे मीठा तैल (तिल तैल) ८४० ग्राम डाल दो। अब सबको आग पर धीमी आग से पकाओ। जब तेल मात्र शेष रह जाय तब कढाही को नीचे उतारकर ठडा करो। फिर इसमे कडवा कूठ और बेतमा सोठ का २४-२४ ग्राम कपडछन चूर्ण मिलाकर घोट ले।

पक्षाघातादि मे इस तैल की मालिश बहुत अच्छी रहती है। —धन्व० पक्षाघात चिकित्साक से।

[ग] अर्कपत्र, धतूरपत्र, अरणीपत्र, एरण्डपत्र, असगन्धपत्र, सेहुडपत्र, भृङ्गराजपत्र और काले धतूरे के पत्ते। इन सबका अर्करस २५०-२५० ग्राम। कुल अर्क २ किलो लेकर ५०० ग्राम तिल तेल मे मिला दो। फिर कढाही मे डालकर धीमी आग पर पकाओ जब तेल मात्र शेष रह जाय तब उसमे अजवायन ३० ग्राम, अफीम १५ ग्राम, देशी मोम १५ ग्राम डालकर आग से नीचे उतार-ले और शीशियो मे भर ले।

इस तेल की मालिश रात मे करनी चाहिए। दिन मे मालिश करके ऊपर से एरण्डपत्र बाध दो। पक्षाघात मिटता जायेगा। —धन्व० पक्षाघात चिकित्साङ्क

[घ] असगन्ध स्वरस, अर्कपत्र स्वरस, धतूरपत्र स्वरस, एरण्डपत्र स्वरस प्रत्येक ४८०-४८० ग्राम। थूहर का दूध १२५ ग्राम। सहजने की छाल का काढा १ किलो, तमाखू की लकडी का काढा ५०० ग्राम। सौठ १२० ग्राम, छोटी पीपल, भाग ६०-६० ग्राम। हीरा हीग, शोधित भिलावा, शोधित कुचला, कालीमिर्च और अफीम १२-१२ ग्राम। दालचीनी, अजवायन, मेथी २४-२४ ग्राम, तिल तेल, सरसो का तेल १-१ किलो। एरण्ड तेल, महुये का तेल ५००-५०० ग्राम। एक वडी कढाही लेकर उसमे सारे तेलो को डालकर मिला लो। शेष कूटने-पीसने योग्य चीजो को कूट-पीसकर सिल पर डालो और पानी डाल-डाल पीसो। चटनी-सी वन जाने पर इस तेल मे उन्हे मिला दो। वाद मे सारे स्वरस एव काढ़े भी इसी मे डाल दो। अव धीमी आग पर रखकर सवको पकाओ तेल सिद्ध हो जाने पर कढाई को उतार लो और ठडा कर लो। वाद मे तेल को कपडे मे छानकर वोतलो मे भर लो।

इस तेल की मालिश करने से पक्षाघात, कमरदर्द, कुब्जता (कुवडापन) आति अनेक वातविकार दूर हो जाते है। यह गरम तासीर का तैल है। अत शीतवात वालो पर ही अच्छा रहता है।

—धन्व० पक्षाघात चिकित्साक

(११) एरण्डादि प्रलेप—एरण्ड, रास्ना, एलुआ, गुग्गुल, मिर्च सभी १२-१२ ग्राम, पुनर्नवा ६० ग्राम। सभी वस्तुये नई व स्वच्छ लेकर पीसे और गर्मकर अण्ड पर प्रलेप करे। इससे अण्डवृद्धि जन्य सूजन मिट जाती है। यह प्रलेप ३ दिनो तक लगातार दिन मे दो वार करने से वृद्धिरोग मे शीघ्र लाभ होता है। —वैद्य सहचर

(१२) एरण्डादि धूम्र—एरण्डमूल, जटामासी, क्षौम, सन के वीज, गुग्गुल, अगरु, लालचन्दन इनको पीसकर यथाविधि धूम्रवर्ति वना ले। इससे धूम्रपान करने से कफजन्य शिर शूल का शमन होता है।

—शालाक्यतत्र

(१३) एरण्ड तैल के मरहम—[क] कोकम अमचूर का तैल और अरण्डी का तैल १२०-१२० ग्राम कढाही मे डालकर चूल्हे पर चढाना। गरम हो जाने पर छानकर १२ ग्राम सफेदा और १२ ग्राम सिन्दूर मिलाकर मलहम वना लेना।

विपादिका (हाथ-पैर फटना), होंठ फटना इत्यादि इस मलहम के लगाने मे दूर होते है। —रसतन्त्रसार

[ख] कपर्दिका भस्म, मुरदासग, स्वर्णगैरिक, गिलोय सत्व, चन्दन और वसलोचन समभाग लेकर एरण्ड तैल मिलाकर अच्छी तरह खरल करो। ये मरहम मुलायम व्रुश या रुई से जले हुए स्थान पर लगाना चाहिए। यहा तक कि चमडी पर गाढा-सा लेप हो जाय। जैसे-जैसे लेप लगाया जाता है आराम पडता जाता है। जलन वन्द हो जाती है, फफोले नही पडते, चमडी विल्कुल पूर्ववत् हो जाती है। —प्राणाचार्य

[ग] एरण्ड तैल २५० ग्राम मे एरण्ड की कपोलो का रस २५० ग्राम मिलाकर पकायें। पकते-पकते तैल मात्र शेष रहे तव उसमे वुझा हुआ चूना २४ ग्राम मिलाकर खरलकर रखें। ये मरहम प्रत्येक प्रकार के व्रणो तथा अग्निदग्ध से उत्पन्न हुए व्रणो पर अतिशय लाभप्रद है। —धन्व० जून ६२

[घ] चूना ६० ग्राम, अरण्डी का तैल ३६ ग्राम और रुई ७२० मि० ग्रा० मिलाकर मलहम वना लेना।

व्रण शोधन करके घाव भर देता है, सडे हुए घाव भी इस मलहम से भर जाते हैं। —रसतन्त्रसार

(१४) सिद्धाजन—श्वेत एरण्डमूल को पुष्यनक्षत्र मे रविवार के दिन प्रात लाकर, श्वेत एरण्डबीज का तैल और कपूर के साथ खूब खरल कर अञ्जन दोनो नेत्रो मे लगाने से दिव्य दृष्टि होती है।

—औषधि कल्पलता

औषध निर्माताओ द्वारा आविष्कृत एरण्ड के कतिपय पेटेण्ट प्रयोग—आज समय की माग के अनुसार इञ्जेक्शन का प्रसार आधिक्येन हो रहा है। सत्वर लाभ हेतु किंवा कटुतिक्त औषधि भक्षण से वचने हेतु इञ्जेक्शन की कामना करते हुये प्राय. रोगी औषधालय मे प्रविष्ट होते है। किन्तु "यस्य देशस्य यो जन्तु. तस्य

सूच्यौषध हितम्" के अनुसार आयुर्वेदीय इन्जेक्शन ही हमारे लिए हितकर हो सकते हैं। "पुराणमित्येव हि साधु सर्वम्" के अनुयायी "सूच्यग्रेह दातव्य पय पेरी जलेन च" (र० र० स०) आदि उक्तियो का आधार ले सकते है।

पाचनसंस्थान पर नियामक प्रभाव डालने वाले "एरंड" के इन्जेक्शन जी० ए० मिश्रा, सिद्ध फार्मेस्युटिकल्स, बुन्देलखण्ड आदि आयुर्वेदिक इन्जेक्शन निर्माता निर्माण करते है। जी० ए० मिश्रा फार्मेसी एरण्ड (Erand) इन्जेक्शन मे १६ मि० ग्राम० एरंड तथा १४ मि० ग्रा० मकोय मिलाती है। इसका १० मि० लि० का वाइल आता है। यह आमवात, वातशूल, शोथ, रक्तपित्त, वृक्कशूल, विवन्ध, उदर विकार आदि मे उपयोगी है। इसके अतिरिक्त यह फार्मेसी "वातकण्टक" नामक वातव्याधिहर उपयोगी इन्जेक्शन का भी निर्माण करती है। इसमे भी एरंड डाला जाता है। सिद्ध फार्मेसी "एरंड तुलसी" नामक इन्जेक्शन का निर्माण करती है। इसके एक एम्पुल मे १ मि० ग्रा० एरंड तुलसी सत्व तथा १ मि० ग्रा० एरंड तुलसी क्षार है। यह वातव्याधि प्रतिश्याय, ज्वर, शोथ, शिर:शूल एवं यकृत् विकारो मे लाभप्रद है। धन्वन्तरि आयुर्वेदिक सूचीभरणांक के यशस्वी सम्पादक वैद्यरत्न डा० श्री जयनारायण गिरि "इन्दु" ने एरंड इन्जेक्शन की प्रशस्ति मे लिखा है कि "कामला रोग पर इसके १५ सूचीवेध करने चाहिए। कामला रोग पर सप्ताह मे दो बार और वातादि दोषो पर प्रतिदिन या एक दिन छोड़कर मासान्तर्गत लगायें। वातरोग मे इसके साथ "रास्ना" की सुई मिलाकर प्रयोग की जाये तो सोने मे सुगन्ध सिद्ध होती है। शिरान्तर्गत देना चाहे तो फलशर्करा और परिस्रुत जल मे इसे मिलाकर देने से दो घण्टे के पश्चात् ही लाभ दिखाई देने लगता है।

इन्जेक्शनो के अतिरिक्त बाह्य प्रयोगार्थ तैल, लेप आदि भी एरंड के मिश्रण से तैयार किये जाते है। त्रिमूर्ति फार्मेसी जो "वातनाशक तेल" का निर्माण करती है एरंडपत्र रस" भी घटक है। जी० ए० मिश्रा जो "वृद्धि दमन लेप" बनाती है इसका भी एरंड घटक द्रव्य है। यह लेप अण्डवृद्धि एवं अन्य सावेदनिक शोथो पर विशेष लाभकारी है।

अनुभूत प्रयोग—

१. अण्डवृद्धि पर मरहम—अजवायन १५ ग्राम, सोंठ १५ ग्राम, मोम ३० ग्राम, एरंड का तैल १२० ग्राम। अजवायन और सोंठ पीसकर कपडछन कर रख ले। एरंड का तैल गर्म करे उसमे मोम डालकर लगावे। इसके बाद पिसी दवा डालकर खूब घोटे।

जरा सा मलहम लेकर अण्डकोष मे मल दे। इसके बाद पान गरम करके बांध दे।

—डा० श्री मदनमोहलाल द्वारा
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक से।

२. आमवात पर अनुभूत प्रयोग—आम रस को पचाना और आमदोष को बाहर निकालना ही चिकित्सा क्रम है।

मैने जिस विधि से अनेक रोगियो पर सफलता पाई है। विद्वान् चिकित्सक इस सरल योग को प्रयोग कर सफलता की परीक्षा करे—कपर्दभस्म १ ग्राम २ मात्रा प्रात:-सायं मधु के साथ।

एरंड की ताजी जड २४ ग्राम की दो मात्रा कर लेवे जड को सिलबट्टे पर चटनी जैसा बारीक पिसवा लेवे। २५० ग्राम जल मे डालकर काढा बनावे। ६० ग्राम जल शेष रहने पर छान लेवे। उसमे ५०० मि० ग्रा० सौंठ चूर्ण और ६ ग्राम एरंडी का तैल प्रात:काल मे डालकर कपर्दभस्म लेने पर पिला देवे। रात को काढे मे एरंड तैल १२ ग्राम डाले। इस प्रकार महीना भर देना चाहिये।

बस्ति—एरंडमूल (ताजी) १२० ग्राम को सिलबट्टे पर पिसवा लेवे और १ किलो ५०० ग्राम जल मे डालकर उबलवाये। ७५० ग्राम रहने पर छान लेवे। इसमे ३० ग्राम मधु, ३० ग्राम सेंधानमक (बारीक करके) मिला देवे। एनीमा यन्त्र से गुनगुने काढ़े की बस्ति सबेरे

६ बजे देवे। एक दिन छोडकर वस्ति देवे। ११ वस्ति देवे। —वैद्य श्री नागेशदत्त शास्त्री द्वारा धन्वन्तरि सफलसिद्ध प्रयोगाक से।

३. कफावरोध पर—गले मे कफ अटक गया हो, कोई गर्भिणी स्त्री है, रस दे नही सकते अथवा कोई ऐसा रोगी है जो दवा भी नही पीता हो, और न इन्जेक्शन योग्य शरीर रहा हो तो उस समय यह औषधि रत्न जादू का काम करती है। यह प्रयोग मेरे पूज्य ससुर जी ने दिया है, शत-प्रतिशत सफलता मिली है।

पुराने एरण्डमूल का स्वरस १२ ग्राम, धतूरे के पत्तो का स्वरस १२ ग्राम, हीग १ ग्राम, अफीम ५०० मि० ग्रा०। दोनो स्वरसो का मिश्रण कर अफीम घोलकर गले पर लेप कर कडे की आच मे सेको। उसी समय कफ नीचे उतर जावेगा।

—वैद्य प० श्री रामचरणलाल पाठक द्वारा धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगाक से।

४. कामलाहर प्रयोग—एरण्ड के दो पत्र लेकर पानी से साफ धोकर खरल मे डालकर अच्छी तरह पीसकर चार चम्मच (चाय की चम्मच) पानी डालकर कूटकर स्वरस निकाले।

वच्चो को २ से ५ वर्ष तक आधा से एक कप चाय चम्मच स्वरस, ६ से १५ वर्ष तक १ से २ चाय चम्मच, १६ से अधिक आयु वालो को २ से ४ चाय चम्मच।

ऊपर लिखित एरण्ड पत्र स्वरस चोथाई कप से आधा कप गाय के ताजा दूध मे मिलाकर रविवार और गुरुवार के दिन सुवह सात बजे के अन्दर ही निहार पेट (विना कुछ खाये) ही सिर्फ एक बार ही रोगी को पिलाये। सिर्फ दो वार ही स्वरस दूध मे देना उचित है। रविवार और गुरुवार दो दिन।

जिस दिन दवा पी रहे हे, उस दिन ही सुवह-शाम सिर्फ चावल (भात) और दूध (गाय का दूध), गेहूँ की रोटी (वगैर घी, तैल लगाये) देना चाहिए। दूसरे दिन से चावल (भात), दाल, तरकारी, नमक, मिर्च, लहसुन, हल्दी से पका के दे सकते है।

इस कामलाहर प्रयोग से कामला (किसी भी तरह का हो) पाण्डु, कुम्भ कामला शीघ्र ही शर्तिया आराम हो जायेगा। यह हमारा वहुत वार परीक्षित किया हुआ योग है। —डा० श्री एस० जनार्दन द्वारा धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

५. वृक्कशूल शामक—एरण्ड के वीज छीलकर उनको इस प्रकार भूने कि वे लाल हो जाये। एक वीज सुवह-शाम दूध के साथ सेवन करने से पन्द्रह दिनो मे गुर्दे का दर्द सदा के लिए समाप्त होता है।

—आ० वा० श्री चादप्रकाश मेहरा द्वारा —धन्व० सित० ७७ से।

६. अर्शनाशक प्रयोग—शौचालय मे किसी शीशी मे अण्डी (एरण्ड) का तैल रख ले। १० ग्राम तैल मे १२५-२५० मि० ग्रा० कुचला घिसकर मिला दे। जव मल त्याग करे, उसके वाद जल से अच्छी तरह अगुली डालकर गुदा साफ कर ले। वाद मे अगुली साफ कर उसे उपरोक्त एरण्ड तैल मे डालकर गुदा मे डाले और अच्छी तरह तैल को लगा दे। इसके कुछ दिनो के प्रयोग से ही अर्श के मस्से लीन होने लगते है। तैल यदि उष्ण हो तो अधिक लाभकर रहता है। अर्श के रोगी इसका निरन्तर प्रयोग करते रहे तो पुन मस्से नही होते।

—वैद्यराज श्री जगदम्वाप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा स्वास्थ्य मार्च १९७१ से।

७. आयुर्वेदीय टूथपेस्ट—एरण्ड का तैल ४०० ग्राम मे अच्छा कपूर १०० ग्राम महीन पीसकर मिला दे। तत्पश्चात् इसमे २०० ग्राम शहद मिला दे। यह एक अच्छा पायरिया नाशक आयुर्वेदीय टूथपेस्ट है। वड या नीम की दातुन के साथ केवल अगुली से इस पेस्ट का दैनिक प्रयोग करने से वहुत लाभ होता है।

—श्री वलदेव एच० पनारा द्वारा धन्वन्तरि पायरिया रोगाक से।

८. नेत्ररोगो मे उपयोगी वाह्य प्रयोग—शुद्ध एरण्ड तैल ६० ग्राम, उत्तम मोम २४ ग्राम, महीन शुद्ध रसौत ३ ग्राम, शुद्ध मैनसिल १ ग्राम ५०० मि० ग्रा०

प्रथम चीनी के वर्तन मे मोम पिघलाकर एरण्ड तैल डालकर नीचे उतार ले फिर चूर्ण द्रव्यो का महीन चूर्ण बनाकर घोट लें। शीशी या ट्यूबो मे भर ले।

सलाई से आखो मे लगावे। दुखती आंखो को नर्म बनाकर रक्तता को मिटाता है। नेत्रशूल और प्रदाह बन्द होते हैं। —वैद्य श्री बद्रीनारायण शर्मा द्वारा धन्वन्तरि अप्रैल १९५९ से।

९. श्वासहारी—एरण्ड तैल, गोघृत, आर्द्रक रस ५०-५० मि० ली०, पीपर छोटी २० ग्राम, गुड पुराना १०० ग्राम।

गुड की चाशनी एक तार की बना तीनो द्रव्य मिला दे और थोडा गर्म रहने पर पीपर चूर्ण मिला दे।

मात्रा ३-३ ग्राम सुवह-शाम चाटकर ऊपर से घृत मिला दुग्ध पिये। यदि दूध से कफ की अधिकता प्रतीत हो तो दूध मे कालीमिर्च मिलाकर पिये।

—वैद्यराज प० श्री विश्वेश्वरदयाल द्वारा अनुभूत योगमाला जनवरी ७४ से।

१०. सुखप्रद रेचक योग—एरण्ड तैल २४० ग्राम, सौंफ २४० ग्राम, वडी हरड २४० ग्राम, सनाय ४८० ग्राम।

एरण्ड तैल (कास्ट्र आयल) को तपाकर वडी हरड को थोडा तल ले और फौरन निकाल ले। फिर उसी मे थोडी सौंफ भी तलकर पौनी से निकाल ले। फिर सनामक्की (सनाय पत्ती) साफ विना डडी की लेकर तीनो चीजे मिलाकर इमामदस्ता मे कूटकर ६० या ८० नम्वर की छलनी से छान ले, छानने पर शेष वचे एरण्ड तैल को वीच मे ही मिला दे। चूर्ण तैयार हो गया।

जहां पर इच्छाभेदी आदि रस रेचन मे काम नही करते वहा यह औषध उत्तम काम करती है।

२ ग्राम से ६ ग्राम तक। कोष्ठ, प्रकृति एव आयु के अनुसार दे।

गर्म दूध या गर्म पानी मे दे। कभी थोडी ऐंठन भी हो जाती है। दूध के साथ देने से अन्य कोई दुर्गुण नही होता। —वैद्य कविराज प० देवराज शास्त्री द्वारा धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगाक से।

११. शिरःशूलहर प्रलेप—एरण्ड की जड का छिलका, कूठ कडवा, सौठ वैतरा तीनो समभाग। तक्र मे (अभाव मे पानी मे) या सिर्के मे पीसकर कुछ गुनगुना कर लेप करे तो वातज शिरदर्द निश्चय व अन्य शिर-शूल भी २-३ वार के प्रयोग से ठीक होगे। कम से कम २०० वीमारो पर परीक्षित है।

—श्री अजनीकुमार द्वारा धन्वन्तरि परीक्षित प्रयोगाक से।

१२. आमाशय व्रण हेतु—समुचित आभ्यन्तरीय प्रयोग से अतिरिक्त निम्नाङ्कित वाह्य प्रलेप करे—

दशाङ्ग लेप १२ ग्राम, छिलके रहित एरण्ड वीज १२ ग्राम—दूध मे पीसकर गरम करके गाढा-गाढा लेप आमाशय पर आधा घण्टा रोज किया जाय।

—वैद्य श्री सीताराम जी अजमेरा द्वारा धन्व० स० सि० प्रयोगाक से।

३. तिल्ली का सफल प्रयोग—छिलका एरण्ड ६ ग्राम, गेरू सुर्ख १ ग्राम, १२० मि० ली० पानी मे खूव रगडे और छानकर रोगी को पिलावे, यह एक मात्रा है। इसी तरह प्रात-साय दिया करे। सात दिन मे तिल्ली अपने स्थान पर आ जायेगी।

अर्श [बवासीर] का सफल प्रयोग—९६ ग्राम एरण्ड तैल को आग पर गर्म करे, फिर १२ ग्राम मुश्क कपूर गर्म-गर्म तैल मे डाल दे और हलकी आच पर रखे, कपूर जल जावेगा। रात को बवासीर के मस्सो पर लगावे, तुरन्त आराम होगा।

—वैद्य श्री शेरसिंह जयसवाल द्वारा धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

१४. योनिशूलहर प्रयोग—अरड वीज (छिले अर्थात् छिलका रहित) ५ नग, नीम की गुठलिया ५ नग, नीम की कोपलिया (कोमल पत्ते) १२ ग्राम। दोनो वीजो को पहले खूव पीसे, नीम की कोपलियो को वारीक पीसकर दोनो को मिलाकर थोडा गर्म पानी डालकर खूव पीसकर वय के अनुसार अगूठे जैसी मोटी ६ अगुल की वर्ति कपडे से वनाकर स्प्रिट मे भिगोकर ऊपर औषधि लेप दो, वत्ती को योनि भाग मे प्रयोग करे।

योनि विकृति मे इस वर्ति के साथ क्षीर कल्याण घृत सेवन कराना विशेप लाभकारी है।

—डा० श्री के० पी० वर्धन द्वारा
धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगाक से।

१५. पोथकीहर अञ्जन—एरण्ड फलो की गिरी निकाल उसका तैल निकाले। तैल निकालने की विधि इसी लेख मे लिखी है। उस नितरे हुए साफ तैल मे से १ किलो लेकर मदाग्नि पर उबाले। उबलने पर नीलाथोथा ४८ ग्राम का बारीक चूर्ण डालकर आधे घण्टे तक मदाग्नि देते रहे। फिर कढाही स्वाङ्गशीतल होने पर तैल छान लेवे।

इस तैल के अञ्जन से चिरकारी जीर्ण रोहे दूर होते हैं। पलक के नीचे के दाने, शिरदर्द, सफेदी और नेत्र से जल गिरते रहना आदि लक्षण शमन होते है यह अति सौम्य औपधि है। किसी को भी हानि नही पहुँचाती।

—र० द्वितीय खण्ड

१६. दद्रुहर मलहम—तैल एरण्ड ५०० ग्राम, मोम देशी ५० ग्राम, कत्था, ढाक का गोद, नौनिया गधक, नौसादर, माजूफल, कालीमिर्च, मुर्दासङ्ग, सुहागा ये आठो वस्तुये १०-१० ग्राम लेकर कूट-पीसकर छान लें। तैल गरम करके उसमे मोम डालकर पिघलावे, बाद मे इन दवाओ का चूर्ण मिलाकर मलहम बना ले। यह दाद के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

दाद को अच्छी तरह खुजलाकर उस पर यह मलहम लगानी चाहिए, कुछ दिनो के प्रयोग से दाद निश्चित् ठीक हो जाता है। —बाबू श्री छोटेलाल जैन द्वारा
धन्व० अनुभूत प्रयोगाक से।

१७. अनिद्राहर अञ्जन—उत्तम एरण्डस्नेह को कासे की कटोरी मे डालकर कासे के टुकडे से खूब रगडे, जब रगडते-रगडते वह काला पड जाय तब सलाई मे भरकर रोगी की आखो मे लगाये। इससे निद्रानाश दूर होगा। —स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती

१८. सर्पदशज विकारहर—सर्पदश जनित रक्त विकार मे २४ ग्राम एरण्ड छाल का क्वाथ बनाकर छानकर २४ ग्राम गाय का घी और १ ग्राम कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर १५ दिन तक पिलावें। क्वाथ मन्दोष्ण ही हो। —श्री उदयलाल महात्मा द्वारा
सचित्र आयुर्वेद जुलाई ६० से।

१९. प्रदरहर प्रयोग—एरण्ड की लकडी को जलाकर राख करे। फिर उसके समान आवलो का चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवे। इस चूर्ण में से ६-६ ग्राम चूर्ण शीतल जल के साथ प्रात:-साय देते रहने से रक्तप्रदर ओर श्वेतप्रदर दोनो दूर होते हैं।

—रसतन्त्रसार द्वितीय खण्ड

२०. कास में उपयोगी योग—एरण्ड के पत्ते १ किलो, आक के पत्ते ५०० ग्राम, धूम १८० ग्राम, पहले दोनो पत्तो का पुटपाक विधि से स्वरस निकालकर मधु मिलाकर १ सप्ताह तक शीशी मे भर धूप मे रखे। बाद मे निकालकर छानकर शीशी मे भर देवे।

इस अर्क की १०-१५ बूद तक १२ ग्राम मामूली उष्ण जल के साथ लेवे। बच्चे को ४-५ बूद देवें। यह दिन मे ३-४ बार देवे। यह अर्क हर प्रकार की खासी के लिए उत्तम है परन्तु पित्तज कास मे न देवे।

—वैद्य श्री केदारमल जी शर्मा द्वारा
धन्व० मार्च ५५ से।

२१. वातागदा—एरण्ड मूलत्वक् चूर्ण २४ ग्राम, मल्लसिन्दूर ६ ग्राम- वकायन की अन्तर्छाल का घनसत्व १२ ग्राम, त्रिफला घनसत्व २४ ग्राम, सत्व कुचला २४ ग्राम, प्रवाल पचामृत २४ ग्राम, शुद्ध गुग्गुल २४ ग्राम। सब औषधियो को पत्थर की खरल मे दशमूल क्वाथ की भावना देकर इतना घोटे कि समस्त द्रव्य मक्खन की तरह हो जाय और खरल मे चिपके नही। फिर ४८०-४८० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले और छाया मे सुखाकर शीशी मे भर ले। १-१ गोली सुबह-शाम भोजन के पूर्व मुह मे रखकर गरम दूध २५० ग्राम पी लिया करे। इस औषधि से खजपगु, पक्षाघात, अङ्गशूल, गठिया आदि ठीक होते है।

—प्राणाचार्य श्री हर्षुल जी मिश्र द्वारा
धन्व० वातव्याधि चिकित्सा से।

२२. आध्मानहर क्वाथ—एरण्डमूल की छाल ६ ग्राम, अमलतास का गूदा ३ ग्राम, हीग ३४० मि०

ग्रा०, पचकोल ५ ग्राम, कालानमक १ ग्राम, सज्जी १ ग्राम, कचलाना नमक १ ग्राम लेकर २०० ग्राम जल मे औटावे, जब ५० ग्राम शेष रह जाय तब छानकर रोगी को पिला दें। इसके सेवन से रुका दस्त साफ हो जाता है, अपानवायु निकलने लगती है तथा आध्मान दूर हो जाता है। —वैद्य श्री वांकेलाल जी गुप्त द्वारा मणिमालाक से।

२३. शीघ्रपतन नाशक स्तम्भन प्रयोग—एरण्ड बीज की मज्जा, पतवाड, बावची के बीज १२-१२ ग्राम, अकरकरा ६ ग्राम, केशर ३ ग्राम, कस्तूरी, वर्क सोना, वर्क चादी २-२ ग्राम। सबको खरल करके चने से कुछ बडी गोलिया बना ले। मैथुन से ३ घटे पूर्व १-२ गोली दूध मे खाने से वीर्यस्तम्भन है।

—श्री अमरनाथ शर्मा द्वारा धन्वन्तरि जून ६२ से।

२४. बालकों के लिए नेत्ररक्षक कज्जल—एरड तैल का कज्जल पारकर एरण्ड तैल मे ही कुछ गीला करके डिबिया मे सुरक्षित रखे। नित्य प्रात बालको की आखो मे अजन की तरह आजें। इसके उपयोग मे बालको के कोई नेत्र विकार नही होने पाते। प्रत्येक गृहस्थ बना कर इसे रखें। बडा सरल परन्तु अतीव लाभप्रद सिद्ध काजल है। —प० श्री नन्दकिशोर शर्मा द्वारा सचित्र आयुर्वेद दिस० ७१ से।

२५. उपदंशहर प्रयोग—३ ग्राम कपूर को चीनी या काच के खरल मे डालकर खरल करे। अब अत्यन्त सूक्ष्म हो जाय फिर एरण्ड तैल थोडा-थोडा डालकर खूब खरल करते रहे। यहा तक कि १२० ग्राम एरण्ड तैल थोडा-थोडा करके मिला देना है। जब तैल का रग दूधिया हो जाय तब उसको काच की शीशी या चीनी के पात्र मे रख ले।

मात्रा—१-१ चम्मच प्रात -साय नित्य।

ये दवा ऐसे उपदश मे लाभकारी है जिसके दाग लिंग पर हो और उनसे रक्त बहता हो। कुछ दिन सेवन से नितात आरोग्यता हो जाती है। नया उपदश तो प्राय एक सप्ताह मे ही नष्ट हो जाता है। रोग पुराना है तो दवा ज्यादा बना ले। यदि ४० दिन सेवन कर लिया जाये तो दागो का चिह्न तक शेष न रहेगा। गर्म तैल की वस्तुये, खटाई तथा मैथुनादि से परहेज आवश्यक है। —श्री अमरनाथ शर्मा द्वारा धन्व० जून १९६३ से।

२६. भभूति रोगहर—एरण्ड की गुली, मेंहदी ९-९ ग्राम, नीलाथोथा ३ ग्राम और आक का दूध ३६ ग्राम को कासे की थाली मे रख कासे की कटोरी से पीस दूध सूख जाने पर गाय का घी मिला शरीर पर लगा कुछ देर बाद गरम पानी से स्नान कर लेना चाहिए। इस प्रकार १४ दिन करने से भभूती रोग मिटता है।

—महात्मा श्री अचलनारायण जी

२७. पेचिशहर एलोपैथिक योग—कैस्टर आयल २ ड्राम, पल्व गम अकेशिया २० ग्रेन, टिंचर ओपियम ५ मि०, आइल मैन्थपिप १ बूद, सीरप औरशाई १ ड्राम, एक्वासिनेमन या एनिसी १ औस—ऐसी एक मात्रा दिन मे ३ बार दे। —डा० श्री रामनाथ वर्मा द्वारा एलोपैथिक निघण्टु से।

एलाद्वय [Elettaria cardamomum]

●

सूक्ष्मएला—Elettaria cardamomum Maton।
N.O —Zingiberaceae (हरिद्रादिवर्ग)।
बृहद्एला—Amomum subulatum Roxb।
N.O —Zingiberaceae (हरिद्रादिवर्ग)।

बहुधा आयुर्वेदज्ञो से प्रश्न किया जाता है कि आयुर्वेद मे एण्टी अलर्जिक कौन-कौन द्रव्य है ?

भगवान् धन्वन्तरि ने एलादिवर्ग नामक जो द्रव्य सूची दी है वह वातकफ नाशक होने तथा कण्डू, पिडका और कोठनाशक होने से वह अलर्जी के सम्पूर्ण लक्षणो को दूर करती है और रक्त को शुद्ध करके वर्ण-प्रसादन करती है। एला मे यहा बृहदेला अभिप्रेत है। सूक्ष्मैला का प्रयोग मूत्रदोष दूर करने के लिए, दूषीविष को दूर करने के लिए। इसे व्रणरोपणार्थ भी प्रयोग किया जाता है। सु० स० के ३८वें अ० सू० स्थान मे द्राविडी (सूक्ष्मैला) का प्रयोग योनिदोष हरण, स्तन्य शोधन, पाचन और कफ के निषूदन के लिए किया गया है।

चरकसहिता के चिकित्सा स्थान के अध्याय ८ मे राजयक्ष्मा को दूर करने के लिए सितोपलादि लेह के घटको मे बहुला का उपयोग किया गया है। बहुला बडी इलायची का पर्याय भावमिश्र ने दिया है। अत सितोपलादि चूर्ण के निर्माण मे बडी इलायची चरकसम्मत है। पर श्वासकासकफातुर के लिए इस चूर्ण का उपयोग निघण्टुकारो की दृष्टि से जिस एला की ओर इङ्गित किया जाता है वह सूक्ष्मैला ही आती है। कैयदेव निघण्टु मे लिखा है—

सूक्ष्मैला मूत्रकृच्छ्राश्मश्वासकासकफापहा।

इसलिए मात्र कफ के अनुबन्ध मे सूक्ष्मैला तथा कफवात दोनो का अनुबन्ध होने पर स्थूलैला का व्यवहार करना चाहिए। स्थविरा गुणाढ्या के राजनिघण्टु के सकेत के अनुसार हम तो हिमालय मे उत्पन्न बडी इलायची का ही प्रयोग करते है। हाथरस मे किराने के विक्रेता इस बात को जानकर हमे बडी इलायची ही पेश करते हैं। छोटी नही। प्रमेह और प्रदर दोनो मे ही यह अपेक्षाकृत अधिक उपादेय है।

हमारे घर के सामने त्रिवेदीनगर मे बडी इलायची का पौधा कई वर्षों से स्वत उग आया है। इससे स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे यह सरलता से उगाई जा सकती है। दक्षिण भारत और लका मे छोटी इलायची जिसे द्राविडी भी कहते है, सरलता से उगती है। अत वहा इसका अधिक प्रयोग होता है।

राजनिघण्टुकार ने एलाद्वय शीतलतिक्तमुक्त लिखकर दोनो के गुण समान ही लिखा दिये हैं। लेख मे पारीक जी ने श्रेष्ठतम सामग्री का गहन, विस्तृत और रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। —र० प्र० त्रि०।

आहार कर लेने के पश्चात् मुख को सुगन्धित करने हेतु जिस द्रव्य का उपयोग किया जाता है वह "एला" नाम से जानी जाती है। भोजन कितना ही स्वादिष्ट क्यो न हो, उसके उपरान्त एला के प्रयोग के विना भोजन मे सन्तुष्टि अधूरी ही रह जाती है। पान (ताम्बूल) की तो शान ही एला है। एला के बिना पान का स्वाद ही फीका है, सुतरां दिनचर्या प्रसङ्ग में भोजन के पश्चात् मुख को सुरभित बनाने के लिए एला को प्राथमिकता देते हुये वैद्य कुलगुरु श्री श्रीकृष्णराम जी भट्ट अपने अनुपम ग्रन्थ मे लिखते हैं—

एलालवङ्ग खदिर पूग चूर्णपरिष्कृतम्।
नागवल्लीदल खादेन्मुख सौरभ्य हेतवे।

—सि० भे० म० ३/२३



एलाद्वय [Elettaria cardamomum]

विभिन्न नाम : संस्कृत–एला । हिन्दी–छोटी इलायची । गुजराती–एलची । मराठी–वेलची । बंगला–छोट एलाच । अंग्रेजी–लेसर कार्डेमम । लैटिन–एलिटेरिया कार्डेमम् ।

प्राप्ति स्थान : मैसूर, कुर्ग, कोचीन, लंका, बर्मा ।

दोषशमन : त्रिदोषहर ।

उपयोगी अङ्ग : बीज ।

रोगोपयोग : कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, दाह, हृदयरोग ।

मुख्य योग : एलादि वटी, एलादि चूर्ण, एलाद्यरिष्ट ।

जहा देवपूजादि धार्मिक अनुष्ठानों मे "एला चूर्णादि-सयुक्त ताम्बूल प्रतिगृह्यताम्" कहकर एला की उपयोगिता प्रकट की गई है वहा नर-नारी के सम्बन्धो मे प्रगाढता लाने मे भी इसकी उतनी ही उपयोगिता है। मन्दिरो, देवालयो से लेकर कोठो तक की शोभा एला ने बढाई है।

सामान्यत एला दो प्रकार की होती है—सूक्ष्मैला (छोटी इलायची) और बृहदेला (बडी इलायची)। पाश्चात्य वैद्यक मे केवल सूक्ष्मैला ही औषधि प्रयोगार्थ उपयोग मे लाई जाती है किन्तु आयुर्वेद एव यूनानी मे दोनो प्रकार की एला उपयोग मे लाई जाती है। बडी की अपेक्षा छोटी एला का उपयोग अधिक होता है अत प्रथम इसका ही वर्णन अपेक्षित है।

उन्मुक्त प्रकृति का क्षुप होने के कारण एला हजारो वर्ष पूर्व जगलो मे ही उत्पन्न होती थी किन्तु ज्यो-ज्यो मनुष्य इसकी उपयोगिता को समझने लगा इसकी माग बढती गई। फलस्वरूप कृषक वर्ग इसकी खेती करने लगे। लगभग अठारवी ईस्वी के आस-पास इसके क्षुपो की खेती की जाने लगी।

चरकसहिता मे कटुकस्कन्ध के अन्तर्गत एला का उल्लेख है। इसी प्रकार "अभिधानरत्नमाला" नामक षड्रस निघन्टुग्रन्थ मे भी कटुद्रव्यस्कन्ध नामक पञ्चम-स्कन्ध मे सर्वप्रथम चातुर्जात कहकर एला का वर्णन किया गया है। आगे भी चतुर्थ श्लोक मे "एला तु सूक्ष्मा सूक्ष्माधा" कहकर स्पष्ट किया गया है।

भगवान् चरक ने षड्विरेचनशताश्रितीय अध्याय मे "दशेमानि श्वासहराणि" "दशेमान्यङ्गमर्दप्रशमनानि" के अन्तर्गत तथा अपामार्गतण्डुलीय अध्याय मे "शीर्ष-विरेचन द्रव्यो" के अन्तर्गत एला का उल्लेख किया है।

यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान मे मुअदिलात बलगम वर्ग मे कफप्रशामक द्रव्य कहे है उनमे एला को कहा है आचार्य वाग्भट ने "त्रुट्यो पृथ्वीका शोधयत्युत्तमागम्" कहकर दोनो प्रकार की एला की शिरोविरेचनार्थ उपयोगिता स्पष्ट की है।

भगवान् धन्वन्तरि ने सुश्रुतसहिता मे एलादिगण का वर्णन किया है जिसके गुणो मे कहा गया है—

एलादिको वातकफौ निहन्याद्विषमेव च।
वर्णप्रसादन कण्डूपिडका कोठनाशन ॥

—सुश्रु० सू० ३८/२५

आचार्य वाग्भट ने शोधनादिगणसग्रह नामक अध्याय मे उसी गण का वर्णन किया है इसमे "एलायुग्म" कहकर दोनो एला की एतद् विषयक उपयोगिता प्रकट की है।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह आर्द्रक कुल (जिजिबरेसी Zingiberaceae) की वनौषधि है। सर्व प्रसिद्ध भावप्रकाशनिघण्टु मे कर्पूरादिवर्ग मे एलाद्वय का वर्णन मिलता है।

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा कृत द्रव्यगुण विज्ञान मे दाहप्रशमन जिन सप्त द्रव्यो का वर्णन किया है उनमे एला भी एक है। सर्वपित्त विकारहर दशसार चूर्ण से कौन वैद्य अनभिज्ञ है। इस चूर्ण की एला भी एक घटक है—

यष्टी धात्रीफल द्राक्षा एलाचन्दन वालकम्।
मधूकपुष्प खर्जूर दाडिम पेषयेत्समम् ॥
सर्वतुल्या सिता योज्या पलार्ध भक्षयेत्सदा।
दशसारमिद ख्यात सर्वपित्तविकारनुत् ॥
मेहतृष्णारतीश्चैव दाह मूर्च्छा ज्वर जयेत्।

—रसरत्नसमुच्चय २/८

सर्वविधि पित्तविकारो मे इसे अनुपानभेद मे उपयोग मे लाया जा सकता है।

नाम—

सस्कृत—एला, सूक्ष्मैला, त्रुटि, द्राविडी, कोरङ्गी, त्रिपुटा।

हिन्दी—छोटी इलायची, गुजराती इलायची।

बगला—छोट एलाच, गुजराती रानी एलाच।

मराठी—वेलची, वेलदोडे।

गुजराती—एलची, एलची कागदी।

राजस्थानी—इलायची छोटी।

पंजाबी—इलायची छोटी।

तामिल—येलाक्क ।

तेलगु—येलावकपानु ।

मलयालम—येलम् ।

कन्नड़—येलाक्कि ।

अरबी—काकुल ।

फारसी—हीलबक, इलायची खुर्द ।

अंग्रेजी—लेसर कार्डेमम (Lesser Cardamom) ।

लैटिन—एलिटेरिया कार्डेमोमम् मेटन (Elettaria cardamomum maton) ।

उत्पत्ति स्थान—मैसूर, कुर्ग, ट्रावनकोर-कोचीन, लका, बर्मा, केरल, मगलोर, मालाबार आदि स्थानो पर यह बहुतायत मे उगाई जाती है। पश्चिम दक्षिण भारत के आर्द्र पर्वतीय क्षेत्रो मे २५०० से ५००० फीट की ऊचाई तक यह स्वयजात रूप मे पाई जाती है। दक्षिण पश्चिम मे एव गुजरात मे यह समुद्र के समीप छायादार स्थानो पर इसकी खेती की जाती है। उक्त समुद्रीय तट इसकी खेती के लिए उपयुक्त है, क्योकि इसके लिए समुद्री हवा की बहुत आवश्यकता होती है। केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यो मे इसकी खेती की जाती है। केरल मे ४८०००, कर्नाटक मे २५००० और तमिलनाडु मे ५००० हेक्टेयर भूमि मे इसकी खेती की जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि एला का सर्वाधिक उत्पादन सप्रति केरल मे होता है।

यह कर्नाटक, ट्रावनकोर आदि द्रवडि क्षेत्रो मे बहुलता से होने के कारण ही इसका एक पर्याय "द्राविडी" भी है। कुर्ग से यह एला गुजरात प्रान्त मे होकर अन्य स्थानो पर पहुँचाई जाती थी सुतरा इसे "गुजराती इलायची" भी कहा जाता है।

यद्यपि भारत के अतिरिक्त अन्य देशो मे भी एला का उत्पादन होता है किन्तु समस्त उत्पादन का ७५ प्रतिशत उत्पादन भारत मे ही होता है। हमारे देश से इसका सर्वाधिक निर्यात अरब देशो को होता है। इसका ८० प्रतिशत निर्यात कुवैत, सउदीअरब, इराक, ईरान, बहरीन और दुबई को होता है। इसके अतिरिक्त रूस, जापान, पूर्वी जर्मनी आदि देशो को भी हमारे देश से एला निर्यात की जाती है। योरोप मे भी यह हमारे देश से ही पहुँची है।

आजकल "ग्वाटेमाला" नामक देश एला का प्रमुख उत्पादक हो गया है। यहा पर इसके उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। जिसके कारण विश्व व्यापर मे सन् १९७८ से ७९ मे भारतीय एला का शेयर ७० प्रतिशत से घटकर ५२ प्रतिशत रह गया है और ग्वाटेमाला का शेयर २९ प्रतिशत से बढकर ४२ प्रतिशत हो गया है।

रासायनिक सगठन—इसके बीजो मे स्थिर तैल १० प्रतिशत, उडनशील तैल ५ प्रतिशत, पोटेशियम ३ प्रतिशत, श्वेतसार ३ प्रतिशत, नाइट्रोजन मिश्रित म्युसिलेज २ प्रतिशत, पीतरजक द्रव्य, काष्ठीय तन्तु ७७ प्रतिशत रहते है। भस्म १० प्रतिशत जिसमे मैंगनीज रहता है।

वानस्पतिक परिचय—यह पत्रमय बहुवर्षायु सर्वदा हरित क्षुप होता है। क्षुप अदरख के क्षुप के सदृश होते है। इसके भूमिशायी शाखायुक्त मूलस्तम्भ से ५ से १८ फीट ऊचे पत्रमय अनेक काण्ड निकलते है। इन काण्डो पर १-३ फीट लम्बे, एकान्तर, अण्डाकार या भालाकार, कोषमय पत्र निकलते हैं। पुष्पमजरी २-४ फीट लम्बी काण्ड के मूल भाग से निकलती है जिसमे १½ इन्च लम्बे, श्वेत, हलके हरे रङ्ग के द्विलिंगी पुष्प लगते है। इनसे सुगन्ध आती है। फल त्रिकोष्ठीय मूलकाकार से अण्डाकार तक हलके हरे या पीले रङ्ग के होते है जिसके अन्दर १५-२० छोटे कृष्ण धूधर, गोल किंवा कोणीय सिकुडन युक्त बीज होते है।

वनस्पति विज्ञान मे एला की खेती बहुत उपयोगी मानी जाती है। इसकी खेती पहाडी मैदानो मे ढलवा जमीन पर अधिक की जाती है। इसकी खेती के लिए एक विशेष प्रकार की जलवायु की आवश्यकता होती है। समुद्र तल से ६०० से लेकर १५०० फीट ऊची भूमि इसकी खेती के हेतु उपयुक्त है।

जनवरी के महीने से इसके फूल लगने प्रारम्भ हो जाते है। ७-८ महीनो तक पुष्पो के गुच्छो से क्षुप शोभा-

यमान होते रहते है। जुलाई मे उनमे डाडी आ जाती है और अक्टूबर नवम्बर तक फल पकने आरम्भ हो जाते हैं। फलो को एकत्र कर सुखाया जाता है। सुखाने की प्रक्रिया मे इसकी हरीतिमा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है। हरी एला मे सुगन्ध अधिक आती है अत हरी एला को उत्कृष्ट माना जाता है। इसे सुखाने की प्रक्रिया "ओवन" मे की जाती है फलस्वरूप प्राकृतिक हरा रङ्ग सुरक्षित रहता है।

इसके एक क्षुप से लगभग १८०० से लेकर २००० तक फल लगते है जो सूखने पर २५० ग्राम तक रह जाते है। प्रति एकड लगभग ६० किलोग्राम एला उत्पन्न होती है। फलो का मोसम समाप्त हो जाने पर क्षुप धूप और उष्णता से सूखकर गिर जाता है। पुन जब वर्षा होती है तो पृथ्वी से नवीन कोपल फूट पडते हैं।

कहते है कि एला का क्षुप सुकुमार प्रकृति का होता है, सुतरा इसकी देख-रेख भी सुकुमार कोमल हाथो से ही की जाती है। ऐसी मान्यता है कि इसकी खेती की देख-रेख यदि स्त्रिया करेगी तो फल अधिक लगेगे। कोमलाङ्गी स्त्रियो के अधिक सम्पर्क मे रहने से अधिक लाभ होता है। इसीलिए इसकी खेती के कार्य मे "स्त्री मजदूर" को ही रखा जाता है। बीज बोने से लेकर फल तोडने तक की सारी प्रक्रिया का निर्वाह ये मजदूर स्त्रिया ही सम्पादित करती हैं।

अन्यत्र उपवनो मे जो एला क्षुप उगाये जाते हैं उनमे सुगन्धित पुष्प ही लगते हैं, फल नही लगते है।

जाति—स्वयजात (वन्य) एव खेती द्वारा प्राप्त इस प्रकार एला के दो भेद हैं। वन्य जाति जिसके फल वडे होते है, लका मे उत्पन्न होती है। यह एला वेलनाकार लम्बी, देखने मे झुर्रीदार व गहरे भूरे रङ्ग की होती है। बगाल के जगलो मे भी एक नलकी एला पाई जाती है। इसके भी फल वडे होते है। इसके गुण धर्म वृहदेला (वडी इलायची) के समान होते हैं।

भारत मे उगाई जाने वाली एला ही उपयोगी एला है। इसके फल छोटे होते है। इस भारतीय जाति के मुख्यत. तीन भेद हैं—

१ मालाबारी एला—मालाबारी एला का क्षुप अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसके फल गोल, खुरदरे होते है। पृष्ठ भाग मे सूक्ष्म श्वेत रोम होते है। भारतीय जातियो मे यह सबसे छोटे फल वाली जाति है।

२ मैंगलोरी एला—यह मालाबारी के समान गोल किन्तु उससे वडी और खुरदरी होती है।

३ मैसूरी एला—पीले वर्ण की ढीले छिलके वाली लगभग २ सेण्टीमीटर लम्बी गोलाका यह होती है। वृन्त के पास यह स्थूल और अग्रभाग की तरफ कुछ पतली और उभारदार होती है। यह तीन अर्ध वृत्ताकार पुटों से युक्त होती है। तीन भागो मे तीन जगह उठी हुई दिखाई देती है। इसके त्वक् पर लम्बाई मे उभरी हुई रेखाये दिखाई देती है। छिलका बाहर से खुरदरा और भीतर से चिकना होता है। अन्दर बीज ५ से ६२ तक की सख्या मे प्राप्त होते हैं।

मिलावट एव प्रतिनिधि द्रव्यो का परीक्षण—

१ भारतीय शुद्ध एला फलो मे लका की वन्य एला का मिश्रण कर दिया जाता है। किंवा वन्य एला को असली एला कहकर वेच दिया जाता है, और असली एला का मूल्य वसूल कर लिया जाता है, अतः यह ध्यान रखना चाहिये कि वन्य एला भारतीय एला की अपेक्षा वडे आकार की होती है। वन्य एला के बीजो मे अनुलम्ब दिशा मे केवल चार झुर्रिया होती है जबकि भारतीय एला के बीजो मे व्यत्यस्त (आडी दिशा मे) ६ से ८ झुर्रिया होती है।

२ एक अन्य "अमोमम के बुलेगा स्प्रेग वॅकिल्ल" नामक क्षुप से जो एला प्राप्त होती है वह भी एला के नाम से वेच दी जाती है। इसके बीजो मे कपूर की भाति स्वाद एव सुगन्ध होती है। इसके बीजो पर १४ खण्डित झुर्रिया होती हैं। अत इसके भेद का ज्ञान अवश्य होना चाहिये।

३ उत्तम एला मे अपक्व, कृमिभक्षित, खण्डित एला भी मिला दिया करते हैं। अत क्रय करते समय ऐसी अनुपयोगी एला का ध्यान रखकर पृथक् कर लेना चाहिये।

४ यन्त्रो द्वारा एला का तैल निकालकर या अर्क खीचकर फिर इसे खडिया मिट्टी मे रगडकर और सुखाकर किंवा किसी तेजाब से फोकर श्वेत एला (सफेद इलायची) के नाम से ऊचे दामो मे भी वेचा जाता है। वस्तुत. यह एला सारहीन नकली एला है। इसका हल्का किंवा श्वेत वर्ण देखकर तथा सुगन्धि के अभाव से निर्णय किया जा सकता है।

साहित्यिक महत्व—सुगन्धित द्रव्यो मे एला का विशेष महत्व है। आयुर्वेद मे एला, दालचीनी और तेजपात इन तीनो द्रव्यो को त्रिगन्ध कहा जाता है। भैषज्यरत्नावलीकार ने महाचन्दनादि तैल, महासुगन्धि तैल, विष्णु तैल आदि प्रयोगरत्नो मे प्रयुक्त गन्ध द्रव्यो के अन्तर्गत एला को प्रथम महत्व दिया है। शिशुपालवध नामक माघकवि कृत महाकाव्य के तीसरे सर्ग मे "एलालतास्फालनलब्धगन्ध" कहकर इसकी सुगन्धित लता का वर्णन किया है। इसी प्रकार कविकुलगुरु कालिदास के रघुवश महाकाव्य मे भी वर्णन आता है कि जब महाराज रघु दिग्विजय हेतु घोडे पर सवार होकर चले तो एला गन्धयुक्त धूलि उडकर हाथियो के गण्डस्थल पर लगी जिससे वे मस्त हो गये।

स सञ्जुरश्वक्षुण्णा नामेलानामुत्पत्तिष्णव ।
तुल्यगन्धिपु मत्तेभकटेपुफलरेणव ॥
—रघुवश ४/४७

इसी प्रकार मलयाचल की शोभा एलाचन्दनादि की गन्ध से बढने का भी वर्णन है।

ताम्बूलवल्ली परिणद्धपूग्रा-
स्वेलालतालिंगित चन्दनासु ।
तमाल पत्रास्तरणासुरन्तु-
प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ॥
—रघुवश ६/६४

रस—कटु, मधुर।
गुण—लघु, रूक्ष।
वीर्य—शीत।
विपाक—मधुर।

दोषकर्म—यह त्रिदोषहर है। गुण और रस मे कफ का, विपाक से वात का तथा वीर्य से पित्त शमन होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—बीज, तेल।
मात्रा—५-१ ग्राम, तेल ४-५ बूद।
गुणप्रकाशक संज्ञा—हिमा "बाला बलवती हिमा।"
—नि० शि०

गुणधर्म—

सूक्ष्मैला मूत्रकृच्छ्रघ्नी श्वासकासक्षये हिता।
सूक्ष्मैला शीतला स्वादु हृद्या रोचन दीपनी॥
—राजनिघण्टु

सूक्ष्मैला मूत्रकृच्छ्रार्श श्वासकासक्षये हिता।
—शोढल

रसे तु कटुका शीता लघ्वी वातहरी मता।
एला सूक्ष्मा कफ श्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रहृत्॥
—भा० प्र० नि०

एला सूक्ष्माकफ श्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रजित।
—म० वि० नि०

एलाकासश्वासहृल्लासवातेपित्तास्रार्शोमूत्रकृच्छ्रेषु शस्ता।
शीता लघ्वी वक्त्रसौगन्ध्यकर्त्री हृद्या वृष्या पाटवच व्यनक्ति॥
—सि० भे० मणिमाला

एला तु कटुका शीता सुगन्धि मुख शोधनी।
कफपित्तविकारेषु क्षये कृच्छ्रे च शस्यते॥
—प्रियनिघण्टु

मुखरोगो मे यह मुख शोधनार्थ एवं दुर्गन्धनाशनार्थ प्रयुक्त होती है। मुखरोगो मे प्रयुक्त बृहत् खदिरवटिका एव सहकारवटी आदि शास्त्रीय प्रयोगो मे एला का मिश्रण किया जाता है। मणिमाला मे वर्णित मुखपाकहर चूर्ण की एला प्रमुख घटक है। इसी प्रसङ्ग मे एलादि चूर्ण का वर्णन है—

मुखदन्तवेष्टपाक प्रमेहपित्तास्रदाहादीन्।
एला गौरीपापाणरज सवशज जयति॥
—सि० भे० मणि० ४-६४४

एला एक सुगन्धित द्रव्य होने से मुख की दुर्गन्ध को दूर करने मे यह श्रेष्ठ है।

घनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमध्वेनात्रालुकाकवल ।
वदनेऽपि पूतिगन्ध हरति गुरालशुन गन्धञ्च ॥
—भै० र० मुख० ९८

भैषज्यरत्नावली, चक्रदत्त आदि ग्रन्थो मे उक्त द्रव्यो के चूर्ण का कवल धारण करना लिखा गया है। राजमार्तण्ड मे इन्ही द्रव्यो की वटी कल्पना का निर्देश है।

अनेक कारणो से वलात् उत्क्लेश को प्राप्त हुआ दोष मुख को पूरित करता हुआ अङ्ग को पीडित करके उसकी दिशा को भङ्ग कर जब मुख द्वारा बाहर आता है तो "छर्दिरोग" कहा जाता है। छर्दि के पूर्वरूपो मे हृल्लास (Nausea) प्रमुख है। एला छर्दिनिग्रहण होने से पूर्वरूप एव रूप के लक्षणो को शान्त करने मे श्रेष्ठ है। यद्यपि यह कफपित्तज छर्दि मे अधिक लाभप्रद है फिर भी वातशामक होने से वातजन्य मे भी उपयोगी है। अधिक समय तक छर्दि होने से वायु का विशेष प्रकोप होता है। ऐसी स्थिति मे बृहण वातहर द्रव्यो की योजना उपयुक्त है।

वमिप्रसङ्गात् पवनोऽप्यवश्य-
धातु क्षयाद्वृद्धिमुपैति तस्मात्।
चिरप्रवृत्तास्वनिला पहानि-
कार्याण्युपस्तम्भनवृहणानि ॥

एला बल्य एव मधुरविपाकयुक्त होने से लाभप्रद है। त्रिदोषज छर्दि के विनाशार्थ "एलादि चूर्ण" वैद्य समाज मे प्रसिद्ध है। वैद्यवर श्री कालिदास ने भी कहा है।

एलालवङ्गवल्कलतमालदलज रजोमधुविमिश्रम्।
लीढ वमि निहन्याद्बिल्ववरात्योप चूर्ण वा ॥
—वैद्य मनोरमा ४/१०

त्रिजात (एला, त्वक्, पत्र) चूर्ण मधु के साथ किंवा अकेला एला चूर्ण छर्दि रोगहर है।

धात्रीरसे चन्दन वा वृष्ट मुद्गदलाम्बुना।
कोलामलकमज्जान लिह्याद्वा त्रिसुगन्धिकम् ॥
—सुश्रुत० उ० ४९/३३

एलाक्षोदश्वेतसो वा प्रमोद-
सोडावारिच्छर्दिरोगापहारि ।
—सि० भै० मञ्जूषा

"पित्त प्रधान कुपित नराणा तानुप्रपन्न जनयोन्निपासाम" के अनुसार पित्तशामक द्रव्य तृषा मे उपयोगी होते हैं। भैषज्यरत्नावलीकार ने तृष्णारोगाधिकार मे जो पथ्य द्रव कहे हैं, उनमे एला का भी उल्लेख है। यह रोचक होने से अरुचि रोग मे भी लाभप्रद है। भगवान् चरक ने दोषानुसार जो द्रव्य कहे है उनमे पित्तारोचकहर द्रव्यो के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है—चरक० चि० २६/२१४। यह दीपन पाचन होने से अग्निमांद्यहर भी है। प्रसिद्ध शान्तिवर्धक चूर्ण का यह प्रमुख घटक द्रव्य है। मञ्जूषाकार का एक अजीर्णहर प्रयोग है—

त्रुटिचपलोपणजरण सागरलवण विचूर्ण्यजीर्णे चेत्।
क्षिणुतेऽजीर्णं क्षणत नोणित मरण समावृणुते ॥

अनुलोमन होने से उदरशूल, अध्मान, अर्श आदि रोगो मे भी लाभप्रद है। पुरीषजोदावर्त चिकित्सा मे कहा गया है—

"एला माध्यथ मद्येन पिबेत्"
—सुश्रुत० उ० ५५/२२

मणिमालाकार ने तरुणीकुसुमाकर चूर्ण, त्रिपुरादि चूर्ण, सुखविरेचन चूर्ण, द्राक्षापिण्डी, प्रयोगो मे एला को समाविष्ट किया है जो उदावर्तहर प्रसिद्ध प्रयोग कहे जाते है।

यह हृद्य होने से हृदय दौर्बल्य मे भी लाभप्रद है। एक श्लोक है—

सूक्ष्मैलामागधीमूल प्रलीढ सर्पिषा सह।
नाशयत्याशु हृद्रोग गुल्मानपि विशेषत ॥
—वङ्गसेन

अजीर्णजन्य हृदयस्पन्दनाधिक्य मे यह अत्यन्त लाभप्रद है। रजतभस्म के साथ इसका सेवन शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

एला चूर्णयुत तार सतत परिशीलितम्।
अजीर्णरोग जनित हृदयस्पन्दन हरेत् ॥
—र० त० १६/५६

कफनि सारक होने से श्वास कास रोग मे भी लाभप्रद है। सितोपलादि चूर्ण का यह प्रमुख घटक द्रव्य है।

प्रसगानुसार इस चूर्ण मे कौन-सी एलो ली जाय इस पर थोडा विचार कर लें—

सितोपलादि चूर्ण की एला महत्वपूर्ण घटक द्रव्य है। इस चूर्ण मे सूक्ष्मैला या वृहदेला डाली जाय इस विषय मे मतभेद है। मतभेद का कारण यह है कि जहा भगवान् चरक ने "वहुला" कहकर वृहदेला (वडी इलायची) के प्रयोग का उल्लेख किया वहा पर अष्टाङ्गहृदयकार आचार्य वाग्भट ने 'एला" कहकर सूक्ष्मैला (छोटी इलायची) की उपयोगिता प्रकट की।

वर्तमान मे सुधानिधि के सहायक सम्पादक वैद्य भूषण प० श्री मदनमोहनलाल जी चरौरे ने धन्वन्तरि के मार्च ५५ के अक मे सितोपलादि चूर्ण मे सूक्ष्मैला ग्रहण करने का परामर्श दिया था। जिस पर कविराज श्री दुर्गानन्द जी शास्त्री ने चरकोक्त "वहुला" के स्थान पर सूक्ष्मैला ग्रहण किये जाने पर सन्देह प्रकट किया था। इस सन्देह का निवारण धन्वन्तरि दिसम्बर ५५ के अक मे पडित प्रवर विद्वद्वरेण्य श्री चरौरे जी ने सप्रमाण युक्तियुक्त विश्लेषण कर विस्तृत विवरण दिया था जो पाठको के लिए अतीव ज्ञानप्रद है। विद्वान् वैद्यराज ने अष्टाङ्गहृदय के पश्चात् के ग्रन्थो की लम्बी सूची दी है जिसमे सूक्ष्मैला ग्रहण किये जाने का उल्लेख है। सभी सग्रह ग्रन्थो मे एला लिखकर सूक्ष्मैला की सम्मति उल्लिखित है। किन्तु भैषज्यरत्नावलीकार ने चरकोक्त पाठ को ही लिया है जिसमे "वहला" (वृहदेला) का उल्लेख है। इस ग्रन्थ की टीका मे कविराज श्रीमान् नरेन्द्रनाथ मित्र ने लिखा है—

"एव सर्वत्र बहुला एला···एलाया द्वौ भागौ·· "

—रत्नोज्ज्वला

अपने आलेख मे चरौरे जी ने साराशत लिखा है कि "मूल चरक पाठ के अनुसार सितोपलादि चूर्ण मे वडी इलायची ली जाती थी पर इधर शास्त्रकारो ने छोटी इलायची के गुणो का अधिक मन्थन किया तो उसे रुचिकारक, अधिक सुगन्धित, श्लेष्मघ्न आदि गुणो को पाकर बडी के स्थान पर इसी का उपयोग करने लगे। आजकल व्यवहार मे और परम्परानुसार छोटी इलायची ही चल रही है।"

इसी प्रकार "वृहदेला" ग्रहण किये जाने के पक्ष मे भी एक विद्वान् की सम्मति यहा देना समीचीन होगा। धन्वन्तरि पत्र के ही नवम्बर १९७२ के अक मे "सितोपलादि चूर्ण" नाम से वैद्य श्री वागीशदत्त आयुर्वेदाचार्य का एक लेख प्रकाशित हुआ है। इन्होने अपनी सम्मति इन शब्दो मे प्रकट की है जो पाठको के ज्ञानवर्धनार्थ यहा पर उद्धृत की जाती है—

"छोटी इलायची के गुणो मे शीत गुण है, बडी मे रूक्ष और उष्ण गुण है उस पर कोई आपत्ति कर सकता है, किन्तु जहा श्वास कास मे कफाधिक्य हो तो वहा यह आपत्ति क्षीण हो जाती है। रूक्ष और उष्ण होने पर "तृष्णापहा" शब्द पर ध्यान देने से द्रव्य मे वीर्य-विपाक-प्रभाव होने से यह आपत्ति भी क्षीण हो जाती है। रूक्ष उष्ण वस्तुये प्यास लगाती है। यह इसके विपरीत प्यास को हरती है। बडी इलायची वातकृत् है और छोटी वातहरी है। यक्ष्मा रोग मे विशेषेण श्लेष्मा वृद्धि पर होता है। यो तो तीनो ही दोष वढे हुये और दूषित होते है। अशाश कल्पना मे श्लेष्म वृद्धि ही होती है अत श्लेष्मा जहा वृद्धि पर हो वहा वृद्धि कम करके द्वितीय को वढाने अथवा सम करने के लिए औषध प्रयोग होना है। यह एक सिद्धान्त है, अत यक्ष्मा के योगो मे इसकी उपयोगिता स्तुत्य है। और भी बडी इलायची के विष, बस्ति, आस्य, शिरोरुक्, वमि पर ध्यान देने से और यक्ष्मा के लक्षणो को देखने से बडी इलायची की उपयोगिता अत्यन्त बढ गई है। इन विचारो से सिद्ध है कि सितोपलादि चूर्ण मे मूल्यवती छोटी इलायची न लेकर बहुगुणवती वडी इलायची लेना ही ठीक है।"

"एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा" के अनुसार सूक्ष्मैला की उपयोगिता अधिक है। सितोपलादि चूर्ण का पाठ राजयक्ष्माधिकार मे वर्णित है और "क्षये कृच्छ्रे च शस्यते" के अनुसार सूक्ष्मैला राजयक्ष्मा मे लाभप्रद है, अत सितोपलादि चूर्ण मे सूक्ष्मैला का प्रयोग ही सर्वसम्मत है। एक द्रव्य जो अपने गुण प्रकट करता है अन्य द्रव्यो से समन्वित होने पर सर्वांशत वे ही गुण प्रकट करे—यह आवश्यक नही है। आचार्यो की द्रव्य समन्वय विधि अद्भुत है। शास्त्रोक्त प्रयोग अपने आप मे पूर्ण होते हैं।

दोष औषध एवं बलाबल को ध्यान मे रखते हुये ही कुशल विज्ञ चिकित्सक इनमे हेर-फेर करने का अधिकारी होता है—

तस्मादार्षप्रयोगेषु प्रक्षेपापचय प्रति ।
न प्रमाद्येदविज्ञाय दोषौषधबलाबलम् ॥

उक्त रोगो मे रोगी के प्रवल दोषो के निर्णय के पश्चात् ही यह निश्चय करना होगा कि प्रयुक्त सितोपलादि मे सूक्ष्मैला उपयोगी है किंवा बृहदेला ।

एला की काम मे उपयोगिता प्रदर्शित करने हेतु भगवान्आत्रेय ने चि० अ० ८ मे "त्वगेलादिलेह" का वर्णन किया है । मणिमालाकार ने कफ निग्रहणार्थ बहुरोगोपयोगी कषाय का अनुप्रासयुक्त वर्णन किया है—

त्रुटिमरिचकषाय स्फीतखण्डा सहाय,
कसनपरिभवाय स्याद्रुचेर्वैभवाय ।
गलगदशमनाय श्लेष्मणो निग्रहाय,
ज्वलन समुदाय च्छर्दिविच्छेदनाय ॥

यह मूत्रजनन होने से मूत्रकृच्छ्र रोग मे लाभप्रद है ।

धात्रीफल रसेनैव सूक्ष्मैला वा पिबेन्नर ।
—सुश्रुत० उ० ५८/४१

एलासितोपलोपेत· शीलितो यवशूकज ।
मूत्रकृच्छ्र निहन्त्याशु दाहशोथाविसयुतम् ॥
—र० त० १३/१४

दाडिमाम्ला युता मुख्यामेलाजीरकनागरै ।
पीत्वा सुरा सलवणा मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ।
—सुश्रुत० उ० ५८/३२

मूत्रजनन होने के साथ यह अश्मरीहर भी है।

विविधमूत्ररुजामखिलाश्मरीमधिकशर्करया सह सर्वदा ।
शमयतीह निषेवितमवुतत्त्रुटिशिलाजतुपिप्पलिकागुडै ॥
—कल्याणकारक क्षुद्र० ७३

एलाहिंगुयुत क्षीर सर्पिर्मिश्र पिबेन्नर ।
मूत्रदोषविशुद्धर्थ शुक्राश्मरोहर परम् ॥
—वसवराजीयम् प्र० ९

दाहप्रशमन होने से दाहरोग मे भी यह उपयोगी है निर्दिष्ट दशसार चूर्ण का एला घटकद्रव्य है । मदात्यय मे चरकोक्त अष्टागलवण मे एला है और भी—

मथितं गोदधि ससितं
कर्पूरै लामुवामित रसितम् ।
स्त्रीचम्वनमाचरितं
■पयति पानात्यय त्वरितम् ॥
—मि० भै० मञ्जू०

भगवान् चरक ने कुष्ठ रोग मे आलेपनोपयुक्त द्रव्यो के अन्तर्गत एला का उल्लेख किया है ।

एला कुष्ठ दार्वी शतपुष्पा चित्रको विडङ्गञ्च ।
कुष्ठालेपनमिष्ट रसाञ्जन चाभया चैव ॥
—चरक० चि० ७/८३

गर्भवती के जब गर्भ का आठवा महीना होना है तब सर्व धातुओ का तेज माता का तेज पुत्र मे विचरण करता है और पुत्र का तेज (ओज) माता मे विचरण करता है । यह तेज पुत्र मे जाने पर माता बेचैन होती है तथा माता मे जाने पर गर्भ बेचैन होता है । इस महीने मे व्याकुलता निवारणार्थ एवं गर्भ की पुष्टि हेतु निम्नाकित प्रयोग उपयोग मे लाना चाहिये ।

एला, श्वेतचन्दन, जायपत्री समानभाग लें खाड मिलाकर इसे दूध या दाडिमपानक के साथ सेवन करते रहना चाहिये । इससे गर्भवती को कोई विकार होने की सम्भावना नही रहती तथा गर्भ पुष्टि को प्राप्त होना है।

यूनानी मतानुसार—यह दूसरे दर्जे मे किसी-किसी के मत से तीसरे दर्जे मे गरम और रूक्ष है । कोई पहले दर्जे के अन्त मे गरम और दूसरे मे रूक्ष मानते हैं।

यह तबियत को खुश करने वाली है । वायु को विलीन कर छाती कठ और आमाशय के द्रवो को सुखाती है । यह पाचक है अत आमाशय के दोषो को नष्ट कर भूख लगाती है। इसके सेवन से साफ डकार आती है । मुख मे धारण करने से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है । इससे मितली, उबकाई दूर होकर पेट का अफारा मिटता है। यह हृदय और दिमाग को भी बल पहुँचाती है ।

इसे पीसकर जोर से सूघने पर छीके आती है जिससे अपस्मार, मूर्च्छा एव वातजन्य सिर की पीडा मिटती है । मस्तगी और अनार रस के साथ देने से कै मितली

दूर होती है। तबाखीर और गुलाब के शर्बत के साथ देने से पित्तजन्य कै का नाश होता है। इसे छिलके सहित गुलाब के अर्क मे पकाकर उपयोग मे लाने से हैजा मे लाभ होता है। छिलको को चबाकर मसूडो पर मलने से ये मजबूत होते हैं। इनका तैल भी बहुत उपयोगी है।

दर्पनाशक—यह स्मरण रहे कि यह उष्ण प्रकृति वालो के लिये अधिक सेवन से हानिकर है। इसके अधिक सेवन से यदि छाती और फेफडो मे हानि हो तो कतीरा या तबासीर तथा आतो मे हानि हो तो खुर्फा का सेवन करे।

प्रतिनिधि—समभाग लौग और वडी एला तथा अर्धभाग कबाबचीनी और हब्बबलसा।

आधुनिक मतानुसार—डा० नाडकर्णी के अनुसार यह दीपन, उत्तेजक, सुगन्धित, कोष्ठ वात प्रशमन तथा मूत्रल है। बीजो मे स्थित प्रभावशाली तेल के कारण यह उक्त लाभ पहुँचाती है। छिलको सहित इसके बीजो के क्वाथ मे थोडा गुड मिलाकर देने से पित्तजन्य शिरोभ्रम मिटता है।

डा० खोरी के अनुसार यह लौग और कालीमिर्च के समान उष्ण या उत्तेजक, आध्मानहर, आक्षेप निवारक। यह अजीर्ण को मिटाकर आमाशय को बल पहुँचाती है। इसके टिंचर का पाचनसस्थान की विकृतियो मे उपयोग होता है।

डा० देसाई के अनुसार पचन नलिका के शैथिल्य प्रधान विकारो मे या दाहयुक्त विकारो मे इसका विशेष उपयोग किया जाता है। मितली और उवकाई मे इसका फाट लाभप्रद है। आतो मे रसोत्पत्ति कम होने किंवा पित्तस्राव कम होने पर यह अत्यन्त लाभ पहुँचाती है। उदरशूल, आध्मान की स्थिति मे इसका अर्क लाभदायक है। इसके चूर्ण को नवनीत के साथ देने से आमातिसार दूर होता है। इसके प्रयोग से यकृत् की क्रिया सुधरती है तथा उसके शोथ का शमन होता है। कुछ दिन इसके क्वाथ से गण्डूष करने से दन्त तथा मसूढो के रोग मिटते है। पूयमेह तथा वाजीकरणार्थ इसका उपयोग लाभप्रद है। वृक्को के पीडादायक रोगो मे इसे खरबूजे के बीजो के साथ देने से मूत्र का परिमाण बढता है। मज्जातन्तु-शूल मे इसे कुनैन के साथ देना चाहिए। मस्तिष्क और मज्जातन्तु की थकावट मे यह लाभप्रद है।

डा० रामसुशीलसिंह ने पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान मे निम्नाङ्कित इसके प्रयोगो का उल्लेख किया है—

(१) टिक्चुरा कार्डेमोमाइ कम्पोजिटा, टिक्चर कार्ड० को०, कम्पाउण्ड टिक्चर आव कार्डेमम्। मात्रा—३०-६० मिनिम् [२ से ४ मि० लि०]।

(२) छोटी इलायची के बीज इण्डियन फार्माकोपिया [I P.] के निम्न योगो मे पडते है—

[१] पल्विस् क्रेटी एरोमेटिकस (Pulvis cretae Aromaticus।

[२] पल्विस् क्रेटी एरोमिटिकस, कम, ओपिओ।

[३] टिक्चुरा रिहाइ कम्पोजिटा।

[४] टिक्चुरा पिक्रोर्‌हाइजी कम्पोजिटा।

[५] एक्सट्रेक्टम् कालोसिन्थिडिस् कम्पोजिटम्।

इनमे प्रथम तीन योग ब्रिटिश फार्मा कोपिआ (१९५३) मे भी ऑफिशल है।

(३) टिक्चुरा कार्डेमोमाइ एरोमेटिका। मात्रा—२ से १० मिनिम् [० १२ से ० ६ मि० लि०]।

एला का तैल—इसके बीजो से एक प्रकार का तैल निकाला जाता है। २०० ग्राम एला मे से १० ग्राम तैल प्राप्त किया जाता है। यह तैल भूरापन लिए हुए हलके पीले रग का होता है। यह स्वाद तथा सुगन्ध मे एला बीज समान ही होता है। तैल निकालने की प्रक्रिया पूरी हो जाने पर इसके तैल को नीले रग की शीशियो मे भरकर ठडे स्थान पर सुरक्षित रख दिया जाता है। नीला रग ठडक पहुँचाने के कारण ऐसी शीशियो मे तैल अधिक समय तक विकृत नही होता है।

तैल के प्रयोग—

(१) नक्तान्ध्य [रतौंधी]—एला तैल आखो मे आजने से नक्तान्ध्य मे शीघ्र लाभ होता है।

(२) शिरःशूल—तैल को शिर पर मलने से शिर:-शूल का शीघ्र शमन होता है।

(३) कर्णशूल—इस तैल को कान मे डालने से कर्णशूल मिटता है।

(४) विसूचिका—४-५ बूद तैल दाडिम पानक [अनार शर्वत] के साथ देने से पित्तप्रकोपजन्य वमन एव विसूचिका मे लाभ होता है।

(५) वृश्चिक दंश—वेदना स्थान पर एला तैल लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

(६) दन्तवेष्ट [पायोरिया]—एला तैल एव लवङ्ग तैल मिलाकर लगाने से दन्तवेष्ट मे लाभ होता है।

(७) श्वास—एला तैल को शक्कर के साथ देने से श्वास का शमन होता है।

बीज के बाह्यप्रयोग—

(१) उपदंश—[क] एलाबीज, खदिर (कत्था), दक्षिणी सुपारी, माजूफल सममाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को घृत मे मिलाकर शिश्नाग्र पर लगाने से आराम मिलता है।

[ख] एला, खरबूजे की लता की भस्म घृत मे मिलाकर लगाने से शीघ्र आराम होता है।

[ग] एला, मृगशृङ्गभस्म को समान ले एकत्रित कर सूक्ष्म बना ले। इसे भी घृत मे मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

(२) रक्तपित्त—एला, अनारदाना, वचा, पीपलपत्र, शङ्खपुष्पी इन सबको गुलाब के अर्क मे मिलाकर नस्य लें इससे मुखागत रक्तपित्त का शमन होता है।

(३) दन्त रोग–[क] एलाबीज, अकरकरा, रूमीमस्तङ्गी, श्वेतशुभ्राभस्म, वंशलोचन सभी बराबर लेकर मजन बना ले। इस मजन से दात स्वच्छ होकर रोगाक्रान्त होने से बचते है।

[ख] एला, सुहागा फुलाया हुआ और माजूफल का मजन भी लाभदायक है।

[ग] एला, कालीमिर्च, शुभ्राभस्म, सैन्धव और नागरमोथा से निर्मित मजन भी दन्तरोगो का नाश कर दातो को स्वच्छ रखता है।

[घ] एला क्वाथ से गण्डूष करने से दन्तशूल मिटता है।

(४) शिर शूल—एलाबीजो का सूक्ष्म चूर्ण नाक मे फूकने से छीके आकर शिर शूल मिटता है।

(५) शरीर की दुर्गन्ध—एला, हरिद्रा, केसर, सर्षप, मुस्तक १०-१० ग्राम, श्वेतचन्दन ४ ग्राम और चिरौंजी १० ग्राम बारीक पीसकर चूर्ण बनाकर सरसो के तैल मे उबटन करने से शरीर की दुर्गन्ध दूर होकर शरीर सुरक्षित हो उठता है।

(६) योनि की दुर्गन्ध—[क] एला एव निम्बपत्र क्वाथ से योनि धोने से योनि की दुर्गन्ध मिटती है।

[ख] एला व निम्बमूलत्वक् क्वाथ से धोना भी इसी प्रकार हितकारी है।

[ग] एला, निम्बपत्र, अर्जुनत्वक् तथा नागकेसर का क्वाथ बनाकर योनि धोवे। इससे भी इसकी दुर्गन्ध नष्ट होती है।

[घ] एला, धातकीपुष्प, मजिष्ठा, लाजवन्ती, मोचरस, राल का सूक्ष्म चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को योनि मे रखने से इसकी दुर्गन्ध, आर्द्रता एव शिथिलता दूर होती है।

(७) नेत्ररोग—एलाबीज चूर्ण को अजामूत्र मे तीन दिन तक घोटकर शीशी मे सुरक्षित रखे। नित्य शलाका से आखो मे लगाने से तिमिर, पैल्य आदि नेत्ररोगो का शमन होता है।

(८) हिक्का—एला क्वाथ का गण्डूष धारण करने से हिक्का का शमन होता है।

(९) वृश्चिक दंश—एला को मुख मे चबाकर रोगी के कानो मे जोर से फूक मारने से वृश्चिकदशजन्य वेदना मिटती है।

(१०) मुखरोग—[क] एलाबीज चूर्ण २ भाग, शुभ्राभस्म १ भाग दोनो को मिलाकर खरल कर रख ले। मुखपाक रोगी १-२ चुटकी इस चूर्ण की मुख मे रखकर लार टपकावे तदनु मुख स्वच्छ जल से धो डाले।

[ख] एला, कत्था और भृष्ट तुत्थ का सूक्ष्म चूर्ण मुख मे रख लार टपकावे।

आभ्यन्तरीय प्रयोग--

(१) रक्तपित्त--[क] एला, निम्बत्वक्, वंशलोचन और कपूर समभाग लेकर इन सबसे द्विगुण सिता मिलाकर ३-४ ग्राम की मात्रा में तण्डुलोदक से सेवन करे। इससे रक्तपित्त का शमन होता है।

[ख] एला, संगजराहत, वंशलोचन, गुडूचीसत्व, बबूल का गोंद, कतीरा समभाग मिलाकर १-२ ग्राम अजादुग्ध से सेवन करने से रक्तपित्त दूर होता है।

[ग] एला, कमलकेशर, लौंग समान भाग इन सबसे दुगनी मिश्री लेकर चूर्ण बना ले इस चूर्ण को तण्डुलोदक से सेवन करे।

[घ] एला, खजूर, मुनक्का, सुगन्धवाला, वाकुची समान भाग लेकर दुगनी मिश्री मिला ले। इसे जल से सेवन करने पर भी रक्तपित्त मे लाभ होता है।

[ड] एला के अर्क पान से भी रक्तपित्त का शमन होता है। ७-८ बार मे कुल १२-१३ मि० लि० अर्क पिलावे।

(२) मुख की दुर्गन्ध--[क] एला खाने से मुख की दुर्गन्ध दूर हो जाती है। प्याज, लहसुन खाने के बाद मुख को दुर्गन्ध रहित करने के लिए इसका अवश्य सेवन करे।

[ख] ताम्बूल मे एलाबीज रखकर चबाने से भी मुख की दुर्गन्ध दूर होती है।

[ग] खस और एला चूर्ण के सेवन करने से भी मुख की दुर्गन्ध मिटकर मुख सुरभित हो जाता है।

[घ] एला, कूठ, एलुआ, धनिया, मुलहठी, मोथा समभाग लेकर चूर्ण बना ले। इसे मुख मे रखकर पान की तरह चबाने से दुर्गन्धित वस्तुओ से उत्पन्न मुख की दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

(३) प्रमेह--[क] एला, पिप्पली दोनो २५० मि० ग्रा०, शिलाजीत २ ग्राम सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। इससे क्षय एवं मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभ होता है।

[ख] एला, गोक्षुर, भूम्यामलकी, सिता, मधु के प्रयोग से प्रमेह एवं मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है। अधिक लाभ के लिए इसके साथ अभ्रकभस्म का प्रयोग किया जा सकता है।

[ग] एलाबीज चूर्ण को शतावरीस्वरस से सेवन करने से भी प्रमेह मे लाभ होता है।

(४) हृदय रोग--[क] एला, पिप्पलीमूल, घृत सेवन से कफजन्य हृदयरोग दूर होता है। इससे गुल्म मे भी लाभ होता है।

[ख] एला, वंशलोचन, गावजवा के पुष्प समभाग लेकर पीस ले। ३ ग्राम औषधि को सेव के मुरब्बे के साथ सेवन करने से दिल की घबराहट दूर होती है।

[ग] एला, पिप्पलीमूल, अतीस का समभाग चूर्ण बनाकर मधु से सेवन करने पर कफज हृदयरोग नष्ट होता है।

[घ] एला और वंशलोचन को समभाग लेकर उन्नाव शर्बत के साथ सेवन करने से हृदय का अधिक धड़कना कम होता है।

[ड] एला, कमलाक्ष (कमलगट्टा) की गिरी को शर्बत आबरेशम या गोदुग्ध के अनुपान से सेवन करने से भी हृदय की अत्यधिक बढ़ी हुई धड़कन कम होती है।

[च] एला, पिप्पलीमूल और पटोल को समभाग चूर्ण कर घृत के साथ सेवन करने से उपद्रव सहित कफजन्य हृदयरोग शान्त होता है।

(५) उष्णवात--[क] एला, पिप्पली, सोंठ, सैंधव, सिता और मधु सबको पीसकर सेवन करने से उष्णवात मिटता है।

[ख] भृष्ट एलाबीज मस्तङ्गी के साथ मिलाकर गोदुग्ध से सेवन करने पर उष्णवात का शमन होता है।

(६) श्वास--[क] एलाबीज १ ग्राम, मालकागनी के बीज १ ग्राम दोनो को पन्द्रह दिनो तक प्रातः साबुत ही जल के साथ निगले। इससे श्वास का शमन होता है।

[ख] एला, तेजपात, सोंठ, उशीर, पिप्पली, भारंगी, तुलसी, अगर, चन्दन और सिता समभाग लेकर चूर्ण बना ले। २-३ ग्राम दवा ताजे जल मे सेवन करने से तमक श्वास, ऊर्ध्व श्वास मे लाभ दृष्टिगोचर होता है।

(७) बुद्धिमांद्य--एलाबीज १ ग्राम, वंशलोचन ५०० मि० ग्रा० पीसकर नवनीत में मिलाकर सेवन करने से बुद्धि की मन्दता दूर होती है। इसे एक-दो मास तक निरन्तर सेवन करें।

(८) पूयमेह--एला, वंशलोचन, कलमीशोरा, शीतल मिर्च, बिरोजा सत्व समभाग लेकर उन सबके बराबर मिश्री मिलाकर एक गिलास पानी के साथ सेवन करने से पूयमेह में शान्ति मिलती है।

(९) मूत्राघात-मूत्रकृच्छ्र—[क] एला बीज, शिलाजीत, पाषाणभेद, यवक्षार समभाग लेकर १-२ ग्राम सेवन करने से मूत्र खुलकर आने लगता है।

[ख] एला, शिलाजीत, गोक्षुर, गंधानागक और ककड़ी के बीज को मिलाकर ३-४ ग्राम शीतल जल के अनुपान से सेवन करें।

[ग] एला, हिंगु, गुड़, घृत मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

[घ] एला, शीतलमिर्च और कलमीशोरा के निर्मित चूर्ण से भी मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

[ङ] एला, यवक्षार, जीरा, रेवतचीनी, कलमीशोरा सब समान लेकर उन सबके समान मिश्री मिलाकर सेवन करें। अनुपान शीतल जल ही रखें।

[च] एला, पाषाणभेद, शिलाजीत, पिप्पली समभाग चूर्ण बनाकर ३ ग्राम की मात्रा तण्डुलोदक से सेवन करने पर कफजन्य किंवा शुक्रनिरोधज मूत्रावरोध दूर होता है।

[छ] एला चूर्ण को आमलकी स्वरस के अनुपान से सेवन करने से भी मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

[ज] दही के पानी में एलाबीज को घोटकर पीने से मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

[झ] खरबूजे और ककड़ी के बीजों के साथ एला को घोटकर पीने से भी मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

[ञ] एला चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन करने से कफजन्य मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

[ट] एला चूर्ण को केले के रस से भी सेवन किया जा सकता है।

[ठ] एला, गोखरू, [illegible] और [illegible] मूत्र साफ आता है।

[ड] [illegible] (...) सेवन करें।

[ढ] एला [illegible] ग्राम, [illegible] ग्राम दोनों का वस्त्रपूत चूर्ण तैयार कर [illegible]। फिर [illegible] मिलाकर [illegible]। प्रातः-सायं १-१ [illegible] मि० [illegible] के अनुपान से सेवन करने से भी मूत्राघात दूर होकर मूत्र साफ आने लगता है।

[ण] एला [illegible] ग्राम, [illegible], [illegible], [illegible] और पाषाणभेद १-१ ग्राम [illegible] का क्वाथ सिद्ध करें। फिर उसमें [illegible] और [illegible] का चूर्ण मिलाकर सेवन करें।

[त] छिलका सहित एला [illegible] नग, [illegible] और २१ नग [illegible] को कूट-पीसकर २५० मि० लि० दुग्ध में समभाग जल मिलाकर इसे मन्द अग्नि पर पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर शीतल होने के पश्चात् पान करें। इससे मूत्र खुलकर आता है व [illegible] मिटता है।

(१०) प्रदर--[क] एला, [illegible] ([illegible]), वंशलोचन समभाग लेकर उन सब के बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करने से रक्त प्रदर मिटता है।

[ख] एला, तालाब की मिट्टी की पपड़ी और मिश्री सभी समान भाग लेकर जल से सेवन करने पर श्वेत, रक्त प्रदर मिटता है।

[ग] एला, नागकेशर, मस्तगी, वंशलोचन समभाग लेकर सब के बराबर मिश्री लेकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रदर मिटते हैं।

[घ] एलाबीज २० ग्राम, श्वेत चन्दन, रास, शालपर्णी (सरिवन) की मूलत्वक्, नारिवा और लोध्र १५-१५ ग्राम तथा कुटकी और काला नमक १०-१० ग्राम इन सब का वस्त्रपूत चूर्ण बनाकर उस में द्राक्षारस की भावना देकर रखें। १–३ ग्राम दही के साथ सेवन करने से वातज प्रदर तथा मधु के साथ सेवन करने से पित्तज प्रदर नष्ट होता है।

(११) ज्वर—एला, काली मिर्च, यवानी, आमलकी, हरीतकी का क्वाथ कफज्वर को नष्ट करता है।

(१२) श्वसनक ज्वर—[क] एला वंशलोचन, मधुयष्टि, मुनक्का, अमृतासत्व को समभाग लेकर ३-४ ग्राम औषधि को मधु के साथ सेवन करने से कफ निकल जाने से श्वसनक ज्वर मे लाभ होता है।

[ख] एला, पिप्पलीमूल चूर्ण घृत मे मिलाकर चाटने से भी श्वसनक ज्वर मे लाभ होता है।

(१३) प्रतिश्याय—एला, कालीमिर्च, दालचीनी, शुण्ठी, धनिया समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीने से प्रतिश्याय मे लाभ होता है।

(१४) शिरःशूल—[क] एला ४ नग, छुआरा १ नग, बादामगिरी ७ नग, मिश्री ५० ग्राम, नवनीत ५० ग्राम सेवन करने से शिर शूल का शमन होता है

[ख] एला साबुत पिप्पली का वस्त्रपूत चूर्ण बना ले, ५०० मि० ग्रा० चूर्ण मधु के साथ चाटने मे मज्जागत वातप्रकोप जन्य शिर शूल मिटता है।

(१५) दाह—[क] एला, लवग, मुस्तक, चन्दन, नागकेशर, लाजा (खील), जीरा, आमलकी चूर्ण गुड के पानी साथ सेवन करने से शरीर का दाह दूर होता है।

[ख] एला, मस्तगी, श्वेत चन्दन, सौंफ, धनिया, वंशलोचन को गुलकन्द के साथ सेवन करने से दाह मिटता है।

(१६) बालरोग—[क] एलाबीज और शतपुष्पा १-१ ग्राम को पानी मे पीसकर छान ले और उस मे ५ ग्राम मिश्री डालकर पिलावे। इससे बालको को दात निकलते समय होने वाला अतीसार मिटता है।

[ख] एला, कत्था, वंशलोचन, मिश्री का चूर्ण मधु मे मिलाकर चटाने से बालको का मुखपाक मिटता है।

[ग] एला, सुगन्धवाला और नागरमोथा के चूर्ण को मधु के साथ सेवन कराने से बालको का वमन, अतीसार आदि मिटते है।

(१७) स्वरभेद [क] एला, मधुयष्टि, कुलिंजन पान मे रखकर खाने से स्वरभेद मिटता है।

[ख] एला, लवग, जावित्री, कपूर, पिपरमेन्ट (पुदीना सत्व), मुलहठी सत्व समान भाग ले एकत्र कर ले। १-२ ग्राम जल से सेवन करे।

[ग] एला, शतपुष्पा, पिप्पली का समभाग चूर्ण कर सेवन करने से क्षयजनित स्वरभेद का शमन होता है।

(१८) कास—[क] एला, दालचीनी और पुष्करमूल का समभाग चूर्ण मधु के साथ सेवन करने से कास रोग दूर होता है।

[ख] एला, कालीमिर्च, बबूल का गोद, मिश्री सभी समान लेकर २-३ ग्राम गरम जल से सेवन करे।

[ग] एला १० नग, अजवाइन १० ग्राम, अर्कपत्र १ नग मर्दन कर तवे के ऊपर कटोरी के नीचे रखकर जला ले। १२५ मि० ग्रा० भस्म को पान मे रखकर सेवन करने से सभी प्रकार के कास का शमन होता है।

[घ] एलाबीज चूर्ण १ ग्राम लेकर मधु मे मिलाकर सेवन करे। इससे कफ निकल जाता है जिससे कासरोगी को लाभ होता है। शुष्क कास मे घृत शक्कर के साथ एलाबीज चूर्ण चटावे।

[ङ] एलाबीज सूक्ष्म चूर्ण, सोठ चूर्ण समभाग लेकर चूर्ण कर ले। १ ग्राम चूर्ण मधु के साथ चाटने मे कफजन्य कास का शमन होता है।

[च] एलाभस्म घृत सिता के साथ सेवन करने से भी वातजन्य शुष्क कास मिटता है।

(१९) हिक्का—[क] एला मुख मे रखकर चबाते रहने से हिक्का मिटती है।

[ख] एलाबीज को तुलसी स्वरस मे पीसकर पीने से भी हिक्का का शमन होता है।

[ग] एला, चन्दन, पिप्पली, नागरमोथा और लवग चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

(२०) उदरशूल—[क] एला, अजमोद, चित्रक, आमलकी, सोठ, सोवर्चल समभाग लेकर चूर्ण बना ले। ४ ग्राम चूर्ण उष्ण जल से सेवन करने पर उदरशूल का नाश होता है।

[ख] अजवाउन ३ ग्राम, कालीमिर्च, सोठ, १२-१२ ग्राम, एला २४ ग्राम का चूर्ण बनाकर ३-४ ग्राम जल मे सेवन करे।

(२१) तृष्णा—[क] भृष्ट एलाबीज को मधु मिलाकर सेवन करने मे तृष्णा मिटती है।

[ख] एला, पोदीना, वशलोचन, जहमोहरा को जल मे पीसकर गोलिया बना लें। एक-एक गोली मुख मे रखने से तृष्णा का शमन होता है।

[ग] एला का क्वाथ बनाकर पिलाने से भी लाभ होता है।

(२२) छर्दि—[क] एला, पिप्पली, पोदीना सम-भाग का चूर्ण सेवन करने से छर्दि का शमन होता है।

[ख] एला, वशलोचन, गिलोयसत्व, गुलाब पुष्प, चन्दन सभी का समभाग चूर्ण कर दाडिम स्वरस मे सेवन करे।

[ग] एला, पिप्पली, पोदीना, कमलगट्टा की गिरी समभाग चूर्ण सेवन करे।

[घ] एला, अनारदाना, वशलोचन का चूर्ण नीबू के शर्बत मे मिलाकर थोडा-थोडा सेवन करे। इसे चाटने से पित्तज छर्दि का शमन होता है।

[ङ] अनार के शर्बत मे एला चूर्ण डालकर पीने से छर्दि बन्द होती है।

[च] एला के छिलकों की भस्म जल के साथ सेवन करे। कफज छर्दि मे यह भस्म मधु के संग दे।

[छ] एला, लवग, दालचीनी और तेजपत्ति को समान भाग लेकर चूर्ण बना ले। १-१ ग्राम एक-एक घण्टे के अन्तर से मधु के साथ ५-६ बार चटावे।

(२३) विसूचिका—[क] एला, लौंग ४-४ ग्राम, अफीम १ ग्राम, जायफल १०, ग्राम सबको पीसकर १ ग्राम मात्रा गर्म जल से सेवन करने से विसूचिका मे लाभ होता है।

[ख] विसूचिका मे पित्त लक्षणो की प्रधानता मे एला चूर्ण अनार के शर्बत के साथ सेवन करे।

[ग] एला के १०-२० ग्राम छिलको को ५०० मि० लि० जल में औटाकर आधा रखकर पिलाने से भी विसूचिका मिटती है। इसने विसूचिकाजन्य तृषा, मूत्रावरोध आदि उपद्रव मिटते हैं।

(२४) अग्निमांद्य—एला [छिलकों सहित], नोग-चंल, पिप्पली, नवसादर समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। १-१ ग्राम जल से सेवन करें। अग्निमाद्य मे लाभ होता है।

(२५) अश्मरी—एला, शिलाजीत, पिप्पली, गुड पानी के साथ सेवन करने से अश्मरी, शर्करा नष्ट होती है।

(२६) आमातिसार—लवण के साथ एला चूर्ण सेवन से विबन्ध मिटकर आमातिसार का शमन होता है।

(२७) अजीर्ण—केले से उत्पन्न अजीर्ण एलाबीज चबाने से मिट जाता है।

(२८) स्वप्नमेह—[क] एला, अहिफेन, कर्पूर, जायफल और लवङ्ग सबको समान मात्रा मे लेकर २५० मि० ग्रा० की मात्रा मे सेवन करने से स्वप्नमेह मे लाभ होता है।

[ख] एला चूर्ण और ईसबगोल की भूसी समान भाग लेकर आमलकी स्वरस मे घोटकर बेर समान गोलियां बना ले। १-१ गोली प्रात-साय गौदुग्ध मे सेवन करें।

(२९) अपस्मार—एला, ब्राह्मी, वचा शङ्खपुष्पी, कूठ का क्वाथ बनाकर सेवन करने से अपस्मार मे लाभ देखा गया है।

(३०) नपुंसकता—[क] एला, बादाम, जायफल, जावित्री का समभाग चूर्ण कर बराबर मिश्री मिलाकर गाय के नवनीत के सग सेवन करने से वीर्य पुष्ट होता है।

[ख] एला चूर्ण को शतावरी के मुरब्बे के साथ सेवन करने से नपुसकता दूर होती है।

(३१) नेत्ररोग—[क] एला, शतपुष्पा, शर्करा दुग्धानुपान से सेवन करने पर उष्णता समाप्त होकर नेत्ररोगो मे लाभ होता है।

[ख] एला ६ ग्राम, खसखस ३ ग्राम और बादाम की मीगी ७ नग इन्हे ६० मि० लि० जल मे खूब महीन पीसकर उसमे १३२ ग्राम सिता तथा ६० ग्राम नवनीत

मिलाकर ऊपर चांदी के वर्क चढाकर चीनी के पात्र मे सुरक्षित रखे। प्रात-साय नित्य १ चम्मच औषध चाटकर ऊपर से गर्म दुग्ध का सेवन करने से नेत्रो की ज्योति बढती है, दिमाग की कमजोरी दूर होती है।

[ग] एला बीज और मिश्री समभाग एकत्र सूक्ष्म चूर्ण कर ४ ग्राम मे शुद्ध एरण्डस्नेह ५-७ ग्राम मिलाकर नित्य प्रात. सेवन करने से नेत्रगत उष्णता दूर होकर नेत्र ज्योति बढती है। इससे बुद्धि भी बढती है।

[घ] एलाबीज ५० ग्राम और वशलोचन ५० ग्राम दोनो को बादाम और पिस्ता ५०-५० ग्राम के साथ महीन पीसकर दो किलो दूध मे पकावे। हलुवा-सा हो जाने पर २० ग्राम चादी के वर्क मिलाकर शुद्ध स्वच्छ चीनी के पात्र मे रखे। नित्य २० २५ ग्राम दुग्धानुपान के सेवन करने से नेत्रो की ज्योति बढती है।

(३२) यकृत् शोथ—५००-६०० मि० ग्रा० चूर्ण किंवा इसका क्वाथ बनाकर सेवन करने से यकृत् शोथ मिटता है।

(३३) कामला—एला चूर्ण २ भाग, जीरा, भूम्यामलकी और मिश्री १-१ भाग के चूर्ण को गोदुग्ध की भावना देकर ३-६ ग्राम तक नित्य प्रात गोदुग्ध के साथ सेवन करने से कामला मे लाभ होता है।

(३४) जयपाल विष—जयपाल विष लक्षण निवारणार्थ एला बीजों को दही के साथ पीसकर तीन दिन तक दिन मे तीन बार गिलावे।

(३५) शीतपित्त—एला ५० ग्राम, यवक्षार ६० ग्राम तथा स्वर्णगैरिक ४० ग्राम एकत्र मिलाकर खूब खरलकर शीशी मे सुरक्षित रखे। ५-६ ग्राम प्रात-साय ताजे जल से सेवन करने पर शीतपित्त का शीघ्र शमन होता है।

(३६) उदावर्त—[क] एला छिलको सहित १० नग ले। इनमे पाच को दीपक की लौ पर भून ले फिर सब (भुने हुये और बिना भुने हुये) को पीसकर मधु के साथ प्रात-साय सात-आठ दिनो तक सेवन करने से उदावर्त का शमन होता है। इससे तृषा, छर्दि आदि का भी निवारण होता है।

[ख] एला चूर्ण को मद्य के साथ सेवन करने से भी उदावर्तजन्य बाधा का निवारण होता है।

[ग] एला, सफेद जीरा, काला जीरा, सोठ, कालीमिर्च, अजमोद और निशोथ के चूर्ण से भी उदावर्त का शमन होता है।

(३७) आध्मान—वस्त्रपूत एला चूर्ण ५०० मि० ग्रा०, भुनी हुई हीग १५० मि० ग्रा० निम्बुकस्वरस से सेवन करे। इससे आध्मान मिटता है।

(३८) कटिशूल—एला ६ ग्राम, यवक्षार ३ ग्राम, सैंधव ३ ग्राम, हीग ५०० मि० ग्रा० यवकुट कर २५० मि० ली० जल मे पकावे। चतुर्थाश शेष रहने पर छान कर उसमे शुद्ध एरण्ड स्नेह ६-१२ मि० ली० तक मिलाकर सेवन करने से कटिशूल मिटता है। इससे पार्श्व, हृदय, उदर, कर्ण, नेत्र आदि के शूल भी मिटते है।

(३९) भ्रम—साबुत एला का चूर्ण बनाकर गुड मिलाकर सेवन करने से भ्रम [वर्टिगो] का निवारण होता है।

(४०) रक्तातिसार—एला, पिप्पली, कालीमिर्च, श्वेत जीरा, नवसादर, सैंधव लवण सबको समान भाग लेकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को शीत जल से सेवन करने से रक्तातिसार का शमन होता है।

विविध कल्पनायें—

[१] एलादि क्वाथ—(१) छोटी इलायची, मुलहठी, गोक्षुर [गोखरू], निर्गुण्डी बीज [सम्हालू के बीज], एरण्डमूल [रेडी की जड], वासापत्र [अडूसा के पत्ते], पिप्पली [छोटी पीपल] और पाषाण भेद [पत्थर चूर] इन आठ द्रव्यो के क्वाथ ४८ ग्राम मे शिलाजीत १ ग्राम मिलाकर पान करने से मूत्र शर्करा, अश्मरी [पथरी] और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होते है।

—शार्ङ्गधर सहिता

(२) छोटी इलायची, पिप्पली, मुलहठी, सोठ, मोथा, वासा, निम्ब, गिलोय, आर्द्रक एव दशमूल का क्वाथ बनाकर उसमे लाक्षा, मिश्री, मुलहठी चूर्ण तथा जीरक चूर्ण का प्रक्षेप कर पान करने से राजयक्ष्मा मे लाभ होता है।

—क्वाथ मणिमाला

(३) छोटी इलायची तथा कालीमिर्च प्रत्येक का १-१ ग्राम चूर्ण लेकर ६० ग्राम उबलते हुये जल मे डालकर तुरन्त नीचे उतार ले साथ मे १० ग्राम मिश्री भी डाल दें, पीने योग्य गर्म रहने पर रोगी को पिला दें, यह योग शुष्क कास, कण्ठरोग, छर्दि एव कफज रोगो का शमन करता है तथा अग्निवर्द्धक है।

—सिद्ध भेषज मणिमाला

(४) छोटी इलायची, विडङ्ग, मुलहठी, पाषाणभेद, एरण्डमूल, त्रायमाला और गोखरू का क्वाथ मिश्री मिलाकर लेने से दाह, मल विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र, शर्करा और अरुचि दूर होती है। —क्वाथ मणिमाला

[२] एलादि चूर्ण—(१) छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, तालीसपत्र, वशलोचन, मुनक्का बीज रहित, अनारदाना, धनिया, कालाजीरा, सफेदजीरा प्रत्येक २४-२४ ग्राम, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोठ, कालीमिर्च, अजवाइन, तिन्तडीक, अम्लवेत, अजमोद, असगन्ध, कौच के बीज छिलका रहित प्रत्येक १२-१२ ग्राम, मिश्री १९२ ग्राम लेकर सब द्रव्यो को एकत्र मिला कूटकर कपडछान चूर्ण करके सुरक्षित रख ले।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ ग्राम की मात्रा मे मिश्री और शहद के साथ मिलाकर सुबह-शाम सेवन करावें।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण वातज कफज छर्दि एव पित्तजन्य विकार, प्यास ज्यादा लगना, कण्ठ सूखना आदि को नष्ट करता है।

आमाशय मे विशेष उत्तेजना होने से वमन होता है। यह वमन कभी-कभी इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि पानी तक को भी आमाशय मे नही ठहरने देता। ऐसी हालत मे बहुत खतरनाक अवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति मे एलादि चूर्ण का उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। खासकर पित्तदोष मे उत्पन्न छर्दि [वमन] के लिये यह विशेष उपयोगी है।

(२) छोटी इलायची, लवङ्ग, नागकेशर, बेर की गुठली की गिरी, धान का लावा, प्रियगु [अभावे कमलगट्टा की मिगी], नागरमोथा, सफेद चन्दन, पीपर इन सबका चूर्ण मिश्री तथा मधु के साथ सेवन करने से त्रिदोषज वमन शान्त होता है। मात्रा—१ से २ ग्राम है।

—चक्रदत्त

(३) इलायची छोटी, लवङ्ग, विटङ्ग, सोठ, मिर्च, पीपल, मोथा, हर्र, आवला और तेजपात १-१ भाग, निशोथ इन सबमे तिगुना, मिश्री सबके बराबर। सबको कूट-छानकर चूर्ण कर लें। इसके सेवन से आमवात एव विदग्धाजीर्ण अम्लपित्त मे आशातीत लाभ होता है।

मात्रा—२-२ ग्राम।

अनुपान—जल, दिन मे तीन बार लेवें।

—बृ० निघण्टु रत्नाकर

(४) इलायची दाने, स्वर्णगैरिक, दुग्धपाषाण तथा वशलोचन इन चारो को समभाग लेकर चूर्ण बनावें। यह चूर्ण मुख मे लगाने से मुखपाक तथा दन्तवेष्ट का शमन करेगा तथा इसके अन्त प्रयोग से प्रमेह, रक्तपित्त तथा दाह का शमन होगा। —सि० भे० मणिमाला

(५) इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, छोटी पीपल, इनके चूर्ण को चावल के धोवन के साथ पीने या गुड मिलाकर चाटने से मृत्यु के सन्निकट पहुँचा हुआ भी मूत्रकृच्छ्र का रोगी आरोग्य लाभ करता है।

मात्रा—१ ग्राम। —चक्रदत्त

(६) इलायची, वशलोचन, तेजपात, हर्र छोटी, हर्र बडी, मोथा, वला, समुद्रफल, अकरकरा ये सब समान लेकर इनके बराबर मिश्री मिलाकर कपडछान चूर्ण बना लेवे यह चूर्ण अम्लपित्त मे हितकर है। —योगरत्नाकर

(७) इलायची दाने, काला जीरा, सफेद जीरा, धनिया, सौफ, कुलिञ्जन प्रत्येक द्रव्य ५-५ ग्राम, अनारदाना, हर्र छाल, सैंधव तथा सनाय प्रत्येक द्रव्य ६०-६० ग्राम, डासरिया १० ग्राम इन सबका कपडछान चूर्ण बना लेवे। यह चूर्ण विबन्ध, अग्निमाद्य तथा अरुचि का नाश करेगा।

—सि० भे० मणिमाला

(८) छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौग प्रत्येक १ भाग, पिण्डखजूर २ भाग, द्राक्षा, मुलहठी, खाड, पीपल प्रत्येक चार भाग, इसे मधु के साथ मिश्रित कर उर क्षत रोगी तथा क्षय रोगी को खिलाना चाहिए।

—चिकित्सा विशेषाङ्क

(९) छोटी इलायची के बीजो के साथ समभाग जटामासी, लौंग, सोठ, पीपल, नागरमोथा, लालचन्दन, धनियां, खजूर, तमालपत्र, मुलहठी खस और अनारदाना लेकर चूर्ण बना रक्खे यह उचित मात्रा मे सेवन करने से हिक्का, कामला, पाण्डु, मूत्र की दाह और प्रमेह को नष्ट करता है यह वृंहण भी है। —चिकित्सा विशेपाक

(१०) एला, लवङ्ग, नागरमोथा, चन्दन, नागकेशर, लाजा [खील], पिप्पली, आवला इनके चूर्ण को गुड के पानी के साथ मिलाकर पीने से पित्त का शमन होता है। —कल्याण कारक

[३] एलादि वटी—(१) छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी प्रत्येक ६-६ ग्राम, पीपल २४ ग्राम, मिश्री, मुलहठी, पिण्डखजूर, मुनक्का ४८-४८ ग्राम। प्रथम मुनक्का ओर पिण्डखजूर को खूब महीन पीमकर उसमे अन्य दवाओ का कपडछान चूर्ण मिलाकर सबको शहद मे मिला, छोटे वेर के बराबर गोलिया बनाकर रख लें।

वक्तव्य—पिण्डखजूर और मुनक्का के बीज निकाल कर ले, मिश्री के स्थान पर दानेदार चीनी भी पीमकर मिलाना उत्तम है, अथवा दानेदार चीनी और शहद की चाशनी बनाकर उसमे पिसी हुई सब चीजो को मिलाकर मर्दन कर गोली बनाने मे गोली खाने मे सुविधा होती है एव टिकाऊ भी अधिक बनती हे।

मात्रा और अनुपान—१ से ४ गोली दिन भर चूसे या दूध के साथ ले।

गुण और उपयोग—इस गोली से सूखी खासी, क्षय की खासी, रक्तपित्त, मुह से खून गिरना, बुखार, वमन, मूर्च्छा, प्यास, जी घबराना, स्वरभेद और पित्त के विकारो मे बहुत लाभ होता है।

यह पित्तशामक और कफदोप दूर करने वाली हे। सूखी खासी मे कफ बैठकर छाती मे चिपका हुआ रहता है, जिससे श्वास लेने अथवा खामी आने पर विशेप तकलीफ होती है। खासी मे कफ नही निकलने से छाती और सिर मे दर्द होने लगता है। कभी-कभी तो रक्त भी आना शुरु हो जाता है। एसी अवस्था मे इस गोली से बहुत फायदा होता है। यह पित्त को शमन कर कफ को पिघला कर बाहर निकाल देता तथा इसके सेवन से एक तरह की तरी बनी रहती है, जिसकी वजह से खासी नही आती हे। इस गोली को चूसने से ही विशेष लाभ होता है। —चरकसहिता

(२) इलायची, इटसिट (पुनर्नवा), चन्दन, फिटकरी, तेजपत्र, हरड, सहजने के बीज इनको पानी मे पीस गोली बना मुख मे रखने से मुख की दुर्गन्धि दूर होती है। —मेघविनोद।

[४] एलादि रसायन—छोटी इलायची, अजमोद हरड का दल, वहेडादल, आवलाफल, फिटकिरी, सोठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, चित्रकमूल की छाल, नीम, खैर, साल और विजयसार इनके सार (बीच की ठोस लकडी-राच) का बुरादा, भिलावा, वायविडङ्ग, वच और नागरमोथा प्रत्येक १९२-१९२ ग्राम ले, जौकुट दरदरा करके अठगुने जल मे पकावे। जब चौथाई जल शेप रहे तब ठडा करके कपडे से छान ले। तत्पश्चात् उसमे १ किलो ५३६ ग्राम गाय का घी डालकर पकावे। जब घृत सिद्ध तैयार हो जाय, तब कपडे से छान उसमे २८८ ग्राम वशलोचन और १ किलो ४४० ग्राम मिश्री का कपडछान चूर्ण, जितना घृत हो उससे दुगुना शहद और छोटी इलायची ४८ ग्राम, दालचीनी ४८ ग्राम, तेजपात ४८ ग्राम इनका कपडछान चूर्ण मिलाकर और सब को मथानी से खूब मथकर काच की शीशी मे भर ले। कई वैद्य घृत सिद्ध होने पर उसको कपड़े से छानकर कल्क नही निकालते, परन्तु कल्क (सिट्ठी) समेत घृत मे वशलोचन का चुर्ण आदि मिलाकर और मथकर रख लेते ह।

मात्रा और अनुपान—१२-२४ ग्राम सवेरे-शाम भोजन से ३ घटा पहले गो के या वकरी के दूध के अनुपान से दे।

उपयोग—राजयक्ष्मा, उरःक्षत, खामी, कार्श्य, बालको का फक्करोग-सूखा इन रोगो मे इसका उपयोग करे, इसके सेवन से वल, मास और स्मरण-शक्ति बढ़ती हे। यह उत्तम रसायन है। —सिद्धयोग सग्रह।

[५] **एलाद्यरिष्ट**—छोटी इलायची २ किलो ४०० ग्राम, वासकमूल छाल ३० ग्राम, मजीठ, कुडा की छाल, खदिर काष्ठ, दन्तीमूल, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, खस, मुलहठी,, शिरीष की छाल, अर्जुन की छाल, चिरायता, नीम की अन्तर छाल, चित्रकमूल-छाल कूठ, सौंफ प्रत्येक ४८०-४८० ग्राम लेकर सबको एकत्र मिला जोकुट चूर्ण कर ले। फिर इस चूर्ण को २०५ किलो जल मे डालकर पकावे। जब अष्टमाश जल शेष रहे तो उतार कर छान ले। पश्चात् इस क्वाथ मे धाय के फूल ७६८ ग्राम, मधु १५ किलो ६ ग्राम, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, जटामासी, मुरामासी, नागरमोथा, छरीला, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा—प्रत्येक ४८-४८ ग्राम लेकर जोकुट कर चूर्ण कर ले। इन सब को एक मिट्टी के पात्र मे भर कर दृढ सन्धि बन्धन कर एक मास तक सन्धान करे। एक माह पश्चात् निकाल ले और छानकर सुरक्षित कर ले।

मात्रा और अनुपान—१५ ग्राम से ३० ग्राम तक भोजन के बाद दिन मे दो बार समान भाग जल मिलाकर ले।

गुण और उपयोग—इस अरिष्ट का सेवन करने से विसर्प, मसूरिका (चेचक), रोमान्तिका, शीतपित्त, विस्फोट (फोडे) विषम ज्वर, नाडीव्रण (नासूर) दुष्ट व्रण, दारुण कास, श्वास, भगन्दर, उपदश और प्रमेह पिडिका रोग आदि समूल नष्ट होते है। यह अच्छा एण्टी अलर्जिक है।

यह अरिष्ट शीतवीर्य, मूत्रल, दीपन, पाचन, रक्त-प्रसादन, विषघ्न और वल्य है। इसके प्रयोग से मूत्रोत्पत्ति कुछ अधिक होती है तथा रक्त मे सचित विष मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है और यकृत् से पित्त-स्राव की वृद्धि होकर अन्त स्थित आमविष और कीटाणुओ को नष्ट करता है।

विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, प्रमेह पिडिका आदि अनेक व्याधियो की उत्पत्ति रक्त मे कीटाणु या विष वृद्धि होने पर होती है। साथ ही इन रोगो की वृद्धि भी विष प्रकोप से ही होती है। यह अरिष्ट इन रोगो की उत्पत्ति और वृद्धि करने वाले मूल विष को ही बाहर निकाल देता है और नवीन उत्पत्ति को बन्द करता है। परिणामत समूल रोग नष्ट हो जाते है।

एलाद्यरिष्ट के उपयोग मे ज्वर जनित और धातु-शोषजनित दाह का शमन होता है। मसूरिका रोग मे इसके उपयोग से नेत्रो का सरक्षण होता है और बेचैनी नष्ट होती है। मसूरिका की सब अवस्थाओ मे आबाल-वृद्ध के लिए समान रूप से हितकारी है। इस अरिष्ट का मुख्य औषधो के साथ अनुपान रूप से भी प्रयोग किया जाता है। जिनको उपदश या सुजाक होते है, उन मे से कितने ही व्यक्तियो के रक्त मे लीन विष कुछ अश मे रह जाता है, फिर उस विष के कारण उनकी सन्तानो के शरीर मे भी कुछ न कुछ विष के उपद्रव होते रहते हैं। इस प्रकार के उपदश पीडित माता-पिता की सन्तानो और अत्यन्त निर्बल बच्चो को शीतला हो जाने पर विशेष सावधानी न रखी जाय तो रोग भयकर रूप धारण कर लेता है। अत उन रोगियो को शीतला, रोमान्तिका या विसर्प आदि रोग प्रारम्भ होते ही एलाद्यरिष्ट का नियमित सेवन करना चाहिये। इससे सभी प्रमुख उपद्रव नष्ट होकर रोगविष सरलता से नष्ट हो जाता है। —आयुर्वेद सारसग्रह।

[६] **अर्क**—(क) छोटी इलायची ९६ ग्राम तथा जावित्री, बडी इलायची, धाय के फूल, लौग, दालचीनी नागकेशर और क्षीर काकोली (अभाव मे असगन्ध की जड) प्रत्येक का चूर्ण ७२-७२ ग्राम, मृतसजीवनी सुरा १९२ ग्राम और जल ९६ ग्राम। सब को एकत्र कर बोतलो मे भर दृढ काग लगाकर १५ दिन तक सुरक्षित रक्खे। पश्चात् छानकर शीशियो मे भर रखे।

मात्रा—१ से ३ ग्राम तक अथवा ३० से ६० बूदो तक दुग्ध या जल मे मिला सेवन से घोर उदरशूल, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अरुचि, अम्लपित्त व ग्रहणी आदि विकार शीघ्र नष्ट होते है। —व० चन्द्रोदय।

(ख) इलायची के बीज, धनिया और लालचन्दन ६-६ ग्राम, दालचीनी १४ ग्राम तथा बीज निकाली हुई काली मुनक्का ६० ग्राम इन सबको कूट-पीसकर ३०० ग्राम मद्य के साथ एक बोतल मे भरकर दृढ काग लगाकर दो दिन [४८ घण्टे] सुरक्षित रक्खे। पश्चात् उसे फिल्टर करे या महीन वस्त्र से छानना शुरू करे, जब सब मद्य छन जाय और ऊपर थोथा रहे, उस पर और ३०० ग्राम मद्य धीरे-धीरे छोडते हुए छान ले। थोथे को अच्छी तरह निचोडकर अलग कर दे। इस प्रकार कुल ६०० ग्राम आसव तैयार होगा।

मात्रा—आधे ड्राम से १ ड्राम तक सेवन करावे। यह छोटे बालको के लिए विशेष उपयोगी है। ऐंठन, उदरशूल और अफरा मे यह शीघ्र लाभ करता है।

—धन्वन्तरि वनौषधि विशेषाङ्क

(ग) छोटी इलायची २५० ग्राम ८ किलो पानी मे कई दिन भिगोकर प्रात ४ किलो अर्क निकाले।

मात्रा—६० ग्राम।

गुण—यह अर्क हृदय को बल देता है, वमन, अतीसार तथा विसूचिका मे लाभप्रद है, वायु को खारिज करता है। —धन्वन्तरि चिकित्सा विशेषाङ्क

[७] एलादि मोदक—इलायची, चित्रक, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लाल धान, पीपल, मुनक्का, छुहारा, तिल, जौ, विदारीकद, गोखरू, निशोथ और सतावर समभाग कूण कर तथा सबसे दोगुनी मिश्री की चाशनी कर यथाविधि मोदक तैयार करे।

मात्रा—१० ग्राम धारोष्ण गोदुग्ध या मूग के यूष के साथ सेवन करने से अपस्मार तथा मद्यपान जनित समस्त विकार एव अन्य दु साध्य बीमारिया शीघ्र नष्ट हाती है। —धन्वन्तरि वनौषधि विशेषाङ्क

[८] एलादि पाक—(क) छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, तालीसपत्र, वशलोचन, मुनक्का, अनारदाना, धनिया और दोनो जीरा प्रत्यक २४-२४ ग्राम तथा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोठ, मिर्च, अजवायन, कोकम के फल [जिन्हे अमसोल कहते हैं], अमलबेत, अजमोद, असगध और कौच के बीज प्रत्येक १२-१२ ग्राम सबका महीन चूर्ण कर २५० ग्राम गर्म किये हुए गोघृत मे अच्छी तरह मिला दे पश्चात् १ किलो मिश्री की चाशनी मे सबको मिला पाक जमा दें।

मात्रा और गुण—६ ग्राम से २४ ग्राम तक की मात्रा मे सेवन करने मे श्वास, अर्श, उदररोग, प्लीहा और ज्वर का नाश होता है। यह पाक रुचिवर्धक, बल-वीर्य वर्धक, वातनाशक, हृद्य, नेत्रो के लिए गुणकारी तथा कठ और जिह्वा शोधक है।

—वैद्य ला० मिहिरचन्द जी

(ख) एलाद्राक्षादि पाक—इलायची के बीज, तमाल पत्र [तेजपात] और दालचीनी का चूर्ण ४८-४८ ग्राम, छोटी पीपल का चूर्ण १९२ ग्राम, मुलहठी, खजूर और मुनक्का [बीज निकाले हुये] प्रत्येक का चूर्ण ३८४ ग्राम लेकर प्रथम खजूर और मुनक्को को सिल पर खूब महीन कर लें। पश्चात् सब चूर्ण एकत्र कर १ किलो शक्कर और ५०० ग्राम शहद की चाशनी मे उक्त चूर्ण को मिला पाक जमा दे अथवा १२-१२ ग्राम के मोदक बना ले। इस पाक की कल्पना 'बृन्द माधव' से ली गई है।

मात्रा और गुण—१२ ग्राम नित्य सेवन करने से कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, हृल्लास या वमन, मूर्च्छा, मदात्यय, भ्रम, रक्तनिष्ठीवन, तृष्णा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोष, प्लीहा, उरुस्तम्भ स्वरभेद, उर क्षत, रक्तपित्त, व्रणजन्य क्षय नष्ट होते है। यह तृप्ति-कारक, शुक्रवर्धक और कामोद्दीपक है। —श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी द्वारा बृ० पाक सग्रह से।

[९] एलादि लेह—(क) इलायची २ भाग तथा नागकेशर, तेजपात, पद्माक, किशमिश, नागरमोथा, मुलहठी और खजूर १-१ भाग सबको कूट-पीसकर सबके बराबर खाड मिलाकर और अन्दाज से शहद मिलाकर अवलेह बनावे। इसे यथोचित मात्रा मे सेवन करने से रक्तपित्त, दाह, ज्वर, श्वास, मोह, तृष्णा, मूर्च्छा और रक्तवमन का नाश होता है।

—धन्वन्तरि वनौषधि विशेषाङ्क

(ख) इलायची, पटोलपत्र, मोथा, चन्दन, धनिया, आमला, वशलोचन, दालचीनी, तेजपात, गजपीपल और

हरड समभाग लेकर चूर्ण करे तथा उसमे मिश्री, घृत और शहद मिला अवलेह बनावे। इसमे मिश्री सबके समभाग डालनी चाहिए।

इसके सेवन से पित्त, अम्लपित्त, अरुचि, ज्वर, दाह और शोष दूर होते है। —धन्वन्तरि वनौषधि विशेषाङ्क

[१०] एलादि घृत—छोटी इलायची बीज १२ ग्राम, तूतिया ६ ग्राम, राल ६० ग्राम, शुद्ध हिंगुल १८ ग्राम, शुद्ध कपूर रस २४ ग्राम, शुद्ध मैनसिल ५० ग्राम, शुद्ध पारा २४ ग्राम, केसर ६ ग्राम, शुद्ध पिण्डहरताल ६० ग्राम सबका कपडछान चूर्ण कर चतुर्गुण शतधौत गोघृत मे छोडकर व्रणो पर लगाने से फिरगजव्रण नष्ट होते है। —चिकित्सादर्श

[११] एलादि तैल–(क) छोटी इलायची, मुरा, सरल [एक देवदारु की किस्म], भूरछरीला, देवदारु, सम्भालू के बीज, चोरक, कचूर, जटामासी, चम्पा, नागकेशर, घुनेरबोल, ब्रह्मगी, तेजपात, व्रम, गन्धविरोजा, तार्पीन तैल, सुगन्धबाला, दालचीनी, कूठ, तगर, नागरमोथा, काकडासिंगी, श्वेतचन्दन, जायफल, मजीठ, केशर, स्पृक्का [शाक विशेष], तुरुष्क [शिलारस], लघु [काला अगर] इनका कल्क लेकर कल्क मे चौगुना घी इसका चौगुना खिरेटी का काढा और इतना ही दूध और इतना ही दही मिलाकर तैल सिद्ध करना चाहिए। यह तैल वातरोगो मे हितकर, बल देने वाला, कान्ति बढाने वाला तथा शरीर सौष्ठव एव आयु को बढाने वाला है। —चक्रदत्त

(ख) इलायची, कपूरकचरी, जटामासी, नागरमोथा, काला अगर, नख, आवला, भूरिछडीला ये आठो द्रव्य १०-१० ग्राम, गुलाब के पत्ते, पानडी, खस ये तीनो २०-२० ग्राम, सफेद चन्दन का बुरादा, सीसम की लकडी का बुरादा दोनो ६०-६० ग्राम इन सबको एक घडे मे रख तिल तैल १ किलो डाले तथा आठ दिन तक मुखबन्द करके रखे, अनन्तर मुख पर सछिद्र शराव की कपडमिट्टी कर पाताल यन्त्र विधि से तैल निकाले यह "धूपेल" नाम से उत्तम केश्य तैल गुजरात मे प्रसिद्ध है, इस धूपेल के सिद्ध होने के अनन्तर उसमे १६ ग्राम कपूर मिलावे तथा पाताल यन्त्र से कच्चा ही तैल बाहर न आने लगे एतदर्थ आरम्भ मे ही पाताल यन्त्र के छिद्र को अन्दर की तरफ से यथेष्ठ गुड लगाकर मुद्रित करे। —सि० भे० मणिमाला

[१२] एलादि मञ्जन—छोटी इलायची, कबाब चीनी [शीतल मिर्च], कत्था और सगजराहत [सगराज] प्रत्येक समभाग ले, कूट-कपडछान चूर्ण करके रख ले।

उपयोग—यह मञ्जन सुबह-शाम या आवश्यकतानुसार दिन मे कई बार मुह के छालो पर लगाकर जल या जात्यादि कषाय से कुल्ला करावे। इससे मुखपाक मे अच्छा लाभ होता है। —सिद्ध योग सग्रह

[१३] सफूफ कुलाअ—छोटी इलायची, गुलाब के पुष्प, श्वेत कत्था, कलमी शोरा प्रत्येक २ २ ग्राम, शुद्ध कचूर १ ग्राम और नीला थोथा ६३० मि० ग्रा०। प्रथम नीलाथोथा को तवे पर रखकर भून ले। फिर शेष समस्त द्रव्यो को अलग-अलग बारीक करके उसमे मिला ले और महीन चूर्ण बनाकर रख ले।

मात्रा और सेवन विधि—१-१ ग्राम दवा लेकर दिन मे दो-तीन बार मुह मे मल लिया करे। परन्तु इस बात का ध्यान रखे कि दवा कण्ठ के भीतर न जाय।

गुण तथा उपयोग—यह मुखपाक मे अतिशीघ्र लाभ करता है हर प्रकार के मुखपाक मे हितकारी और सिद्ध भेषज है। —यूनानी सिद्ध योग सग्रह

[१४] एलादि लेप—इलायची, कूठ, दारुहल्दी, सौंफ, चित्रक, वायविडङ्ग, रसौत तथा हरड इनका कुष्ठ पर आलेपन करना हितकर है। —चरक चि० अ० ७

इलायची, जावित्री, श्वेत कनेर की जड, सेमल की छाल और अफीम ६-६ ग्राम लेकर सबको महीन पीस १२ ग्राम तैल मिला गर्म कर लेप के समय शिश्न को शीतल जल से बचाना तथा मैथुन मे परहेज करना चाहिये। —भा० भैं० रत्नाकर

एला, कूठ, दारुहल्दी, सोयाबीन, चित्रक, विडङ्ग, रसौत और हरड का मिलित चूर्ण को पानी मे पीसकर लेप करने से कुष्ठ नष्ट होता है। —चरकसहिता

[१५] **एलादि वशीकरण धूप**—एला, चन्दन, राल, खस, वच, मेषशृङ्गी समान मात्रा मे लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को "ओ३म् नमो भगवते उड्डामरेश्वराय मोहय मोहय मिली मिली ठ ठ स्वाहा" इस मत्र से प्रभावित करे। बाद मे कोई शुद्ध स्वच्छ वस्त्र इसकी धूप मे सुगन्धित करे [वस्त्र को उक्त धूप की धूनी देकर बसा ले]। यह धूपित वस्त्र धारण कर किसी के पास जायेगे देखते ही वह अनुकूल हो जायेगा। —तन्त्रशक्ति

[१६] **एलादि प्रायोगिक धूम**—एला, लवङ्ग, नागकेशर, तमाल पत्र इन प्रायोगिक औषधियो से वत्ती तैयार कर इससे धूम सेवन करावे। —कल्याण कारक

एला के पेटेण्ट प्रयोग—एला त्रिदोषहर एव सुगन्धित द्रव्य होने से प्राय वहुत से योगो मे इसका समिश्रण किया जाता है। जिन पेटेण्ट योगो मे न्यूनाधिक रूपेण प्रयुक्त होती है उनकी सूची बहुत लम्बी है फिर भी यहा कतिपय प्रसिद्ध पयोगो का वर्णन किया जाता है—

(१) नेत्रज्योतिवर्धक एलादि सुरमा—यह गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ [अलीगढ] द्वारा निर्मित प्रयोगरत्न है। इसमे एला, शीतलचीनी, वहेडा की मीग, काले सिरस के बीज, पारद, नाग, कपूर काला सुरमा आदि है।

यह मोतियाविन्दु की प्रारम्भिक अवस्था मे वहुत लाभ करता है। पुराने से पुराने रोहे भी इसके व्यवहार से ठीक हो जाते है। नेत्रो की ज्योति बढाने मे यह श्रेष्ठ है। त्रिफला जल से नेत्रो को धोने के पश्चात् सुवह तथा रात्रि को सोते समय काच की सलाई से यह लगाना चाहिये। जनहित हापुड के मोनोजिन सुरमे मे भी एला है।

(२) वोमिटेव शर्बत—यह चरक फार्मास्युटीकल्स का प्रमुख पेटेण्ट प्रयोग है। यद्यपि वोमिटेब [टिकी] मे एला है किन्तु इसमे सर्वाधिक मात्रा शटी [कपूर काचरी] की है। वच्चो के लिए उपयोगी शर्वत मे सर्वाधिक मात्रा एला की है। इस योग के अन्य घटक हैं—चन्दन, तालचीनी, कपूर काचरी, पीपली, वशलोचन है। यह वमन की अव्यर्थ औषधि है। यह मादक द्रव्यो के सेवन से उदरकृमि के कारण होने वाले वमन मे तथा गर्भवती के वमन मे भी लाभप्रद है।

(३) त्रिकफ शर्बत—त्रिमूर्ति फार्मेसी बीकानेर का खासी को नष्ट करने हेतु यह मधुर शर्वत है। इसमे बडी एला के अतिरिक्त वासा पचाग, कालीमिर्च, नागकेशर, सोठ, पीपल, मुलहठी, छोटी कटेरी आदि है।

(४) कफसिल गोली—यह काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स अमृतसर का पेटेण्ट योग है। यह गले की खराश व कास मे लाभप्रद है। इस गोली मे इलायची, दालचीनी के अतिरिक्त मुलहठी अडूसा, बहेडा आदि है।

इसके अतिरिक्त रसायन वटी (शीतल दिल्ली), अमृत रसायन (त्रिमूर्ति), बोनिसान (हिमालया), लक्ष्मीविलास अवलेह (दीनदयाल० ग्वालियर), विगराल (चरक) गोली एव अवलेह मे भी एला डाली जाती है।

अनुभूत प्रयोग—

(१) शीतपित्तहर—छोटी इलायची के वीज, दालचीनी, पीपल प्रत्येक १०-१० ग्राम, मिश्री ३० ग्राम। तीनो औषधियो को कूट-पीसकर वस्त्रपूत कर ले इसके पश्चात् मिश्री पीसकर मिला शीशी मे भरकर रखें।

रोगी को १०-१० ग्राम औषधि नवनीत मे मिलाकर दिन मे बार दे। कोष्ठबद्धता होने पर स्निग्ध विरेचन देकर शुद्ध करे।

—कवि० श्री विष्णुप्रकाश जी आत्रेय द्वारा
धन्व० गुप्त सि० प्र० भा० २ से।

(२) हकलाहट एवं तुतलाने मे—एला, लौंग, वच, अकरकरा, कुलजन १-१ भाग, साधारण कस्तूरी ¼ भाग सवको सूक्ष्म पीसकर सुवह-शाम ब्राह्मी अर्क के साथ दे। भोजन के वाद सारस्वतारिष्ट का भी प्रयोग करे। —डा० श्री विद्यानन्द गुंवल द्वारा
धन्व० दिस० १९७८ से।

(३) गर्भरोधक चूर्ण—छोटी इलायची के बीज ३ ग्राम, बढिया वशलोचन ६ ग्राम, सगजराहत ९ ग्राम सव कुट-छानकर चूर्ण करे और बरावर की देशी खाड

मिलाकर ३ खुराक बनावे। हर तीन घण्टे के बाद एक-एक मात्रा गोदुग्ध की लस्सी से प्रयोग करे।

यह गर्भपात निवारक सुन्दर सस्ता और सिद्ध योग है। —आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी द्वारा धन्व० प्रसूति विज्ञानाङ्क से।

(४) मुखपाकहर—छोटी इलायची के बीज, बडी इलायची के बीज, सफेद कत्था, वशलोचन, शीतलचीनी, मिश्री प्रत्येक १०-१० ग्राम, मुलहठी २० ग्राम। सबको कूट-छानकर बबूल के गोद के पानी से मर्दन कर जरबेरी प्रमाण गोली बनाकर छाया मे खुश्क कर ले। १-२ गोली मुख मे डालकर चूसते रहने से आतो की खुश्की से होने वाले छाले तथा खुश्की दूर होती है।

—वैद्य प० श्री रामस्वरूप गौड द्वारा धन्व० गु० सि० प्र० भा० ४ से।

(५) मुखपाकहर शीतकषाय—छोटी इलायची, त्रिफला, पाठा, कत्था, चमेली के पत्ते सबको यवकुट कर आधा लीटर जल मे भिगोकर रखे। प्रात मथकर छान लें। थोडा मधु मिलाकर कुल्ले करने से मुखपाक दूर होता है। द्रव्यो को मिट्टी के पात्र मे ही भिगोवे।

—वैद्य श्री प्रो० बसरीलाल जी साहनी

(६) श्वेत प्रदर हर चूर्ण—इलायची १०० ग्राम, असली नागकेशर १०० ग्राम, असली वशलोचन १०० ग्राम तथा मिश्री ३०० ग्राम लेवे।

निर्माण विधि—उपरोक्त चारो द्रव्यो को इमामदस्ते मे अलग-अलग कूटकर कपडछान कर एकत्र कर ले।

मात्रा एव सेवन विधि—१०-१० ग्राम प्रात-साय दूध की मलाई मे मिलाकर चाटे ऊपर से उष्ण किया हुआ दुग्धपान करे। यदि आपको दूध की मलाई मिलने मे कठिनाई हो तो चूर्ण को केवल दूध के साथ ले सकते है।

उपयोग—महिलाओ का श्वेतपदर चाहे वर्षो पुराना ही क्यो न हो, इस चूर्ण के मात्र एक माह तक सेवन करने मे नष्ट हो जाता है। मै इसे दस वर्षो से योग कर रहा हूँ। अभी तक सैकडो महिलाये इससे लाभ उठा चुकी हैं। आप भी इस योग को निर्माण कर प्रयोग करे एव यश के भागीदार बने। मेरे अनुभव के अनुसार इससे सस्ता एव शीघ्र लाभदायक योग अन्यत्र मिलना कठिन है। —वैद्य छगनलाल समदर्शी द्वारा सुधानिधि प्रयोग सग्रह अङ्क, द्वितीय भाग मे।

(७) प्रमेहनाशक चुर्ण—छोटी इलायची के दाने, तज कलमी, पत्रज, कमलगट्टा की गिरी, पीपल छोटी शुद्ध, वशलोचन, गिलोयसत्व, मुलहठी, किशमिश, छुहारा बीज रहित, केशर असली प्रत्येक १०-१० ग्राम, चादी के वर्क १० नग।

विधि—इलायची दाने से छुहारे तक का कपडछन चूर्ण करें तथा बाकी दवा पीस खरल करके शीशी मे भर ले।

मात्रा—४ ग्राम दवा शहद के साथ सुबह-शाम सेवन करावें।

उपयोग—प्रमेह, पेशाब की जलन, धातुस्राव, हाथ-पैरो की जलन, दुर्बलता आदि विकारो मे लाभप्रद योग है। —प० कामेश्वरदीन शर्मा वैद्य द्वारा धन्वन्तरि अनुभवाङ्क से।

[प्रस्तुत योग मे वैद्य जी ने इसका उपयोग विशेष रूप से पित्तज, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, प्यास, चित्त-भ्रम, स्वरभेद आदि पर बताया है। हमने इसके घटको पर ध्यान देकर इसका प्रयोग जब प्रमेह के रोगियो पर किया, तो विशेष लाभकारी पाया। पाठको से अनुरोध है कि इस प्रयोग को अपने औषधालय मे बनाकर रखें और चमत्कार देखे।] —श्री गोपालशरण गर्ग सम्पादक सुधानिधि

(८) प्रमेहनाशक चन्द्रकला वटी—इलायची, कर्पूर, शिलाजीत, आवला, जायफल, गोखरू, वङ्गभस्म, लोहभस्म सभी १०-१० ग्राम।

विधि—यह प्रत्येक समभाग लेकर गिलोय तथा सेमल के क्वाथ की भावना देकर २५०-२५० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले।

मात्रा—१-२ गोली सुबह-शाम गोखरू क्वाथ मे शहद डालकर दे।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेहो के लिए रामबाण औषधि है। वीर्य की ऊष्मा शान्त करने वाली उत्तम दूसरी औषधि हमे देखने को नही मिली।

—वैद्यराज वेदव्यासदत्त जी आयुर्वेदाचार्य द्वारा धन्वन्तरि अनुभूत योगाङ्क से।

(९) मुखपाकहर चूर्ण—छोटी इलायची के दाने, शीतलचीनी, कत्था सफेद, हर्र छोटी, सोना गेरू, शुद्ध सुहागा, कपूर प्रत्येक १५-१५ ग्राम। यह सब दवाये कपडछन करके शीशी मे रख लेनी चाहिए। मुह मे छाले चाहे कैसे भी हो सफेद अथवा लाल ग्लैसरीन मे मिलाकर लगाने से अच्छे हो जाते हैं।

—डा० श्रीरामजीदास शर्मा द्वारा धन्वन्तरि १९६२ से।

(१०) बिसूचीजयी प्रयोग—छोटी इलायची १ नग, बादाम गिरी १ नग, प्याज का रस ६ ग्राम पीसकर एक बार पिलाने से हैजे की वमन खत्म होगी। इसके अतिरिक्त रोगी को केवल अनार का रस देना चाहिए।

—श्री प्रेमरत्न वैद्य द्वारा धन्वन्तरि जुलाई ३३ से।

(११) पामाप्रहार प्रलेप—छोटी इलायची, अजवाइन, कणगुगली और आक के पीले पत्तो को तवे पर जला गाय के घी मे मिलायें। फिर अरण्ड के पत्तो का रस निकाल शामिल मिला लेप कर ठडे पानी से स्नान करें। इस तरह ६-७ दिन करने से पामा मिटती है।

—महात्मा श्री अचलनारायण जी महाराज।

(१२) एक चमत्कारी योग—बिच्छू के काटे का अमोघ चमत्कारी और तत्काल फल देने वाला प्रयोग लिखकर भेज रहा हूँ।

अभी ११ दिन पहले मैं अपने चिकित्सालय मे राजामण्डी मे बैठा हुआ था कि राज जो एक मकान की मरम्मत कर रहा था, भागा-भागा रोता हुआ मेरे पास आया और उसके साथी ने मुझ से कहा कि यह काला बडा बिच्छू है। इस को हमने मार दिया है। इसने इस राज के वाम बाहु मे डक मारा है। यदि इसका तत्काल इलाज नही हुआ तो यह मर जायेगा। इमरजैन्सी तक पहुँचने से पहले ही मर जायेगा। मैंने फौरन ही पाच सफेद छोटी इलायची मगवाकर एक २३ वर्ष के लडके से कहा कि इनको मुख मे रखकर खूब चबाओ। मुख बन्द कर के चबाओ। मुख की वायु बाहर न निकले ऐसे चबाओ। दो मिनट बाद उसके वाम कान मे फूक मारने को कहा। दो मिनट मे इलायची खूब चबाई जा चुकी थी और उसकी सुगन्ध से मुख भरा हुआ था। कान मे फूक मारते ही आध मिनट के अन्दर उसका चिल्लाना, रोना तडफना सब बन्द हो गया। एक मिनट बाद फिर फूक मारने को कहा। वह राज बिलकुल ठीक होकर अपना कार्य करने लगा।

इस प्रयोग को हमारे घर के प्रत्येक व्यक्ति जानते है। यह शतशोनुभूत प्रयोग है।

फूक मारने वाला भगवान् का नाम लेता हुआ अगर फूक मारे तो और भी अच्छा है। शरीर के जिस भाग मे बिच्छू ने काटा हो उसी पार्श्व के कान मे फूक मारनी चाहिए। यदि बीच मे काटा हो तो दोनो कानो मे फूकना उचित होता है।

—श्री ब्रह्मानन्द दीक्षित द्वारा धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

(१३) बालरोग नाशक—छोटी इलायची के दाने, वशलोचन, फिटकरी का फूला, कमलगट्टा की मिंगी, माजूफल, तबाशीर रूमीमस्तगी, मोथा, कचूर, अतीस कडवी—प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण कर ले।

मात्रा—२५० मिलिग्राम से १ ग्राम तक।

अनुपान—विभिन्न रोगो मे अनुपान भेद से दी जाती है और बालरोगो के लिए तो अत्युत्तम है। तालुकटक रोग मे मधु के साथ दे, पतले दस्तो मे अर्क सौंफ से दे, छर्दि रोग मे अर्क गुलाब के साथ दें। दन्तोद्गम के समय बालको को अनेक रोग सताते हैं,

उस समय भी अवस्थानुसार अनुपान निश्चित कर इसको देना उपयोगी सिद्ध हुआ है।

—श्री धर्मवीर चौधरी आयुर्वेदाचार्य द्वारा
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक १९४७ से।

(१४) पीयूषप्राश—इलायची छोटी २० नग, वंशलोचन ६ ग्राम, सत् मुलहठी ६ ग्राम, दालचीनी ४ नग, मगरतिगाल ६ ग्राम, गोंद कीकर ४ ग्राम, कतीरा ४ ग्राम, शहद ६० ग्राम। काष्ठादि औषधियों को महीन वस्त्रपूत कर शहद में मिला काच के पात्र में सुरक्षित रखे।

मात्रा—३ ग्राम से ६ ग्राम तक शुष्क कास में हर ३-३ घन्टा के अन्तर से चटावे।

—वैद्य श्री प० रामलाल जी शर्मा शास्त्री द्वारा
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक १९४७ से।

(१५) औपसर्गिक मेहहर—छोटी इलायची, शीतलचीनी, विरोजे का सत्व, हजरत जहूर, फिटकरी का लावा, कलमी शोरा, सफेद चन्दन, श्वेत चीनी, सोना गेरू, खीरा के बीज प्रत्येक समान भाग। इन सबके बराबर मिश्री का चूर्ण बना सबको मिला सेवन करावे।

मात्रा—३ या ४ ग्राम की मात्रा में दिन में ३ बार दें।

अनुपान—दूध की लस्सी या चावल के माड में शक्कर मिलाकर।

गुण—यह सुजाक की सभी अवस्थाओं में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। —श्री नवमीलाल देव जी द्वारा
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक १९४७।

(१६) रक्तरोधक चूर्ण—छोटी इलायची, नागकेशर पहाड़ी, बेलपत्र, अजवाइन, चन्दनचूरा श्वेत, धनिया, वंशलोचन, धाय के फूल, कुड़ा की छाल, खस समान भाग लेकर सबको कूटकर छान लो और ३-३ माशे चूर्ण शर्बत उन्नाब १२ ग्राम में मिलाकर प्रातः मध्याह्न और सायंकाल चटाओ। किसी भी कारण से रक्त जाता हो वह ७ मात्रा में बन्द या कम अवश्य हो जाता है। यह अव्यर्थ योग है।

—प० श्री रामचन्द्र जी वैद्य शास्त्री द्वारा
धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क १९४७ से।

(१७) उकबत (Eczema) **और अपरस की दवा**—छोटी इलायची का दाना, कतीरा, सफेदा, कबावचीनी, कबीला, रसकपूर, मुर्दासिंग सब समान भाग। सभी दवाओं का बारीक चूर्ण बना लें, बाद में भेड़ का घी इतना दें कि मलहम की तरह हो जावे। उपरोक्त रोगों में यह दवा आज तक फेल नहीं हुई पूर्णतः लाभकारी है। —श्री ठाकुर सत्यदेवसिंह वैद्य द्वारा
धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगांक से।

(१८) उपदंश प्रहार—एला २ भाग, दारुहल्दी, शंखनाभि, रसौत और लाख १-१ भाग इन सबका सूक्ष्म चूर्ण करे। तथा गाय के गोबर का रस, तिल तैल, मधु, घी और दूध समान भाग लेकर सबको एकत्र मिला खूब खरल करें। खरल करते-करते ऊपर जो फेन या स्नेह आवे उसे पृथक् कर शीशी में रखे। इसका लेप करने से उपदंश के व्रण और दाह का शमन होता है।

—श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा
धन्व० दिस० १९५५ से।

(१९) क्षयोपयोगी एलादि चूर्ण—एला, छोटी पीपल, सूखा पोदीना, जहरमोहरा पिष्टी। प्रत्येक सम-भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर रख ले। यह क्षय में रक्तागम पर उपयोगी है।

—श्री रघुवीरशरण जी शर्मा वैद्य द्वारा
धन्व० क्षय रोगाङ्क से।

(२०) नपुंसकताहर एलादि लेप—एला, जावित्री, सफेद कनेर की जड़, सेमल की छाल और अफीम ६-६ ग्राम लेकर महीन पीसकर १२ ग्राम तिल तैल में मिला, गर्मकर शिश्न पर लेप करें। ऊपर से पान लपेटकर कच्चे सूत से बांध दें। नित्य २१ दिन तक इस लेप से नपुंसकता अवश्य नष्ट होती है। शिश्न पर शीतल जल न लगने दें और मैथुन से दूर रहे।

—श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी

(२१) एलादि मृदुरेचन रस—एला बीज १२ ग्राम, शुद्ध गन्धक २४ ग्राम, शुद्ध मुर्दासङ्ग २४ ग्राम, सौंफ ३६ ग्राम लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण कर ले।

बालको को ६० मि० ग्रा० दिन मे तीन बार दूध, गोमूत्र या द्राक्षारिष्ट से देवे। मृत्तिका भक्षण करने वाली बडी स्त्रियो को ५०० मि० ग्रा० दिन मे ३ बार देवे।

इस रस के सेवन करने से मृत्तिका भक्षणजन्य पाडु-रोग, कृमिरोग आदि दूर होते है। यह रस मिट्टी को टट्टी से निकालकर रोगी को ठीक कर देता है। इससे जुलाब लगते हैं। टट्टिया आती है। मिट्टी निकल जाने पर इसका प्रयोग वन्द कर देना चाहिए।

—श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा
धन्व० शिशु रोगाङ्क से।

(२२) उष्णवातहर—छोटी इलायची, वशलोचन, अमृतासत्व, तालमखाना, वङ्गभस्म, शिलाजीत सभी समान भाग लेकर सबके बराबर मिश्री मिलाकर ४-५ ग्राम प्रात-साय चन्दनादि अर्क या तण्डुलोदक के साथ सेवन करने से निज एव आगन्तुक उष्णवात मे लाभ होता है। —वैद्य श्री रघनाथप्रसाद जी पारीक

(२३) एलादि पाचन—

एलाद्वय त्वक् पिप्पली
धान्यक मिर्च लवग।
मिशि दाडिम पत्रज सखे
त्रिफला और विडग॥
पचलवण सब सम मिला
निम्बुक नीर मिलाय।
अग्नि बढे सेवन किये
शीघ्र हि अरुचि नशाय॥

—छोटी इलायची, वडी इलायची, दालचीनी, पिप्पली, धनिया, कालीमिर्च, लौग, सौफ, अनारदाना, तेजपात, हरड- बहेडा, आवला, बायविडङ्ग, सैंधानमक, समुद्रनमक, विडनमक, सोचलनमक, रोमकनमक सब समान मात्रा मे लेकर कपडछन चूर्ण बनाकर नीबू के रस की भावना देकर रख ले। २-४ ग्राम सेवन करने से अरुचि दूर होती है तथा अग्निमाद्य, अजीर्ण आदि का शमन होता है। —गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

(२४) सफूफ हुवाली—छोटी इलायची, वडी इलायची, कबाबचीनी सब बराबर लेकर सबके बराबर शक्कर मिलाकर तैयार करे। इसे ५-७ ग्राम गरम पानी के साथ खावे।

वास्ते औरतो के हामला (गर्भस्राव) के माफिक है। खराब भूक, बुरी-बुरी चीजो के और मिट्टी खाने मे हित-कारी है। —प० दत्तराम चतुर्वेदी

बृहदेला [Amomum subulatum]

यह भी आर्द्रककुल (जिंजिबरेसी–Zingiberaceae) की औषधि है। भावप्रकाश निघन्टु के कर्पूरादिवर्ग मे ही इस औषधि का वर्णन हुआ है। द्रव्यगुण-विज्ञान (प्रियव्रत शर्मा) मे शीतप्रशमन द्रव्यो के अन्तर्गत बृहदेला का वर्णन हुआ है।

नाम—

संस्कृत—बृहदेला, स्थूलैला, भद्रैला, बहुला।

हिन्दी—बडी इलायची, लाल इलायची।

बंगला—बड एलाच, नेपाली एलाच।

गुजराती—एलचा मोटी।

मराठी—थोरबेला, वेलदोडे।

राजस्थानी—इलायची बडी।

तामिल—एलम्।

तेलगु—तेगुएलाकुल।

कन्नड़—परडूलक्की।

अरबी—काकुले कुबार।

फारसी—हीलकला, इलायची सुर्ख।

अंग्रेजी—ग्रेटर कार्डमम् (Greater Cardamom), नेपाल कार्डमम् (Nepal Cardamom)।

लैटिन—एमोमम् सबुलेटम (Amomum Subulatum Roxb)।

उत्पत्ति स्थान—इसका क्षुप पूर्वी हिमालय के जगलो मे विशेषत नैपाल, बगाल, सिक्किम, आसाम आदि स्थानो मे स्वयजात तथा लगाया जाता है। दक्षिण मे मालाबार के जगलो मे भी यह होता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजो मे एक सुगन्धित तैल होता है। इस तैल मे सिनिओल की मात्रा प्रचुर होती है।

वानस्पतिक परिचय—इसका क्षुप आम्रहरिद्रा के क्षुप के समान २-३ फीट ऊचा होता है। पत्र १-२ फीट लम्बे, ३-४ इञ्च चौड़े तथा दोनो पृष्ठो पर चिकने होते हैं। पत्तो का रग मटमैला हरा होता है। पुष्प-मजरी अत्यन्त सघन २-३ इञ्च लम्बी होती है। कोण-पुष्पक लाल भूरे होते हैं। पुष्प पीताभ श्वेत छोटे नलिकाकार होते हैं, जिन पर बैंगनी रग के बिन्दु होते है। पुष्प और फल तने के तल भाग मे लगते है। फल रक्ताभ भूरा प्राय १ इञ्च लम्बा गोलाकार सघन कठिन रोमो से आवृत होता है। फल पर तीन रेखायें होती हैं। आसन्न फल के सूक्ष्म अग्रभाग पर गुलाबी रग के तन्तुओ का एक गुच्छा सा होता है। यह पकने पर स्वयमेव झड़ जाता है। फल का छिलका मोटा एव मटमैले लाल रग का होता है। पक जाने पर किसी फल का यह छिलका स्वयमेव फट जाता है। फल के प्रत्येक कोष्ठ मे सान्द्र मधुर मज्जा से सयुक्त अनेक बीज होते है। कुछ समय पश्चात् इस मज्जा के सूख जाने पर बीज पृथक् हो जाते है। ये बीज सूक्ष्मैला के बीजो के समान भूरे या काले रग के होते है, किन्तु आकार मे बडे तथा गन्ध मे न्यून होते है। सूक्ष्मैला के बीजो की गन्ध कुचलने पर किंचित् सी मालूम होती है। इन बीजो से भी तैल निकाला जाता है जो पीले रग का तथा गुणो मे उत्तेजक होता है। औषधियो को सुस्वादु बनाने हेतु यह उपयोग मे लाया जाता है।

जाति—इसकी एक प्रजाति A aromaticum (मोरग इलायची) के नाम से प्रचलित है। यह पूर्वी बंगाल और आसाम मे उत्पन्न होने से "बंगाल कार्डेमोमम्" के नाम से पुकारी जाती है। बंगाल के बाजारो मे क्वचित् यह ही असली बडी इलायची के नाम से बिकती है। इसके बीजो की आकृति और स्वाद बृहदेला के बीजो के समान ही होता है किन्तु यह गुणो मे सग्राही होती है और इसका प्रयोग दतमजन हेतु विशेषेण होता है।



बृहद्देला (Amomum subulatum)

विभिन्न नाम : स०–बृहदेला, हिन्दी–बड़ी इलायची, मराठी–वेलदोडे, गुजराती–एलचा, बंगला–बड़ एलाच, अंग्रेजी–ग्रेटर कार्डेमम्, लेटिन–एमोमम् सबुलेटम ।

प्राप्ति स्थान : नैपाल, बंगाल, सिक्किम, आसाम ।

उपयोगी अंग : बीज ।

दोषशमन कफवातशामक ।

रोगोपयोग : कास, श्वास, उन्माद आदि ।

मुख्य योग : बृहदेलारिष्ट ।

एक विदेशी प्रजाति A xanthioides मालाबार या टेवॉय कार्डमम (Malabar or Tavoy Cardamom) है जो वर्मा, वियतनाम तथा मलेशिया से आती है।

रस—कटु तिक्त।

गुण—लघु, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

कर्म—कफवातशामक तथा पित्तवर्धक है।

वैद्याचार्य केशव विरचित "सिद्ध मन्त्र" मे पित्तज कफवातघ्न वर्ग के अन्तर्गत एला को लिखा है। वोपदेव ने इसकी व्याख्या मे "एला स्थूलैला" कहकर स्पष्ट किया है।

प्रयोज्यअङ्ग—वीज।

मात्रा—१-३ ग्राम।

गुण-धर्म—

स्थूलैला कटुका पाके रसे चानिलकृल्लघु।
रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्रकण्डू श्वासतृषापहा॥
हृल्लासविषवस्त्यास्यशिरोरुग्वमिकासनुत्॥

—भावप्रकाश निघण्टु

स्थूलैला रोचनी तीक्ष्णा लघूष्णा कफवातजित्।
सुगन्धि पाचनी शीता चाग्निदीप्तिकरा मता॥

—मदनपाल निघण्टु

वृहदेला बहुत्वेन नेपालादिषु जायते।
एलया सदृशी किन्तु वीर्योष्णा चाल्पगन्धयुक्॥

—प्रिय निघण्टु

यह दुर्गन्धहर एवं शूलहर होने से मुखरोग, दन्तरोगों में लाभप्रद है। त्वग्दोषहर होने से कण्डू आदि चर्मरोगों को दूर करती है। वेदनास्थापन होने से वेदना प्रधान वातव्याधि मे लाभप्रद है। यह रोचन, दीपन, पाचन एवं अनुलोमन होने से अरुचि, वमन, तृषा, अग्निमांद्य, शूल, आध्मान, यकृद्विकार एवं अर्श आदि पाचनसंस्थानगत विकृतियों मे लाभप्रद है। कफनिःसारक होने से कास-श्वास मे भी उपयोगी है। आचार्य वाग्भट ने अष्टाङ्गहृदय में गण्डूषादि विधि विषयक अध्याय में जो आरोचक गण्डूषादि वर्णन किया है उस वैरस्यारोचकघ्नं न अरोचकनाशन गण्डूषण "हृद्यमम्लमला धान्यानि" कवलग्रह कहा है इन दोनों प्रसंगों में वैद्यराज श्री गणेशदत्त शास्त्री ने एला से बड़ी इलायची को ही ग्रहण किया है।

हृद्योत्तेजक होने से यह हृद्रोग में भी लाभप्रद है। विषघ्न, ज्वरघ्न तथा शीतप्रशमन होने से शीतज्वरप्रशमनार्थ उपयोगी है।

कफज शिरोवेदना मे आचार्य शार्ङ्गधर ने जो हरेण्वादि लेप कहा है। वहां एला से व्याख्याकार आचार्य पं० राधाकृष्ण पाराशर ने बड़ी एला ही ग्रहण किया है। मणिमाला का भी एतद् विषयक एक प्रयोग है—

त्रिपुटे भद्रत्रिपुटा कर्पूरमिति प्रकल्पितो लेप।
दुस्तरशिरोऽर्तितापप्रशमे क्षिप्र समुचितलेप॥

—सि० भे० म० ४/१०७२

बहुत से स्थानों पर वृहदेला के लिए "पृथ्वीका" नाम आया है जिसका अर्थ कालाजाजी कर दिया जाता है। चक्रदत्त के रक्तपित्त चिकित्सा अधिकार मे वर्णित है—

लोहगन्धिनिनिश्वासे चोद्गारे रक्तगन्धिनि।
पृथ्वीका शाणमात्रान्तु खादेद् द्विगुणशर्कराम्॥

व्याख्याकार शिवदास ने "पृथ्वीका—कृष्ण जीरक" कहा है। पं भागीरथ जी स्वामी वनौषध शास्त्र में लिखते हैं कि कई स्थानों पर पृथ्वीका अर्थ व्याख्याकारों ने कृष्ण जीरक किया है। यह ठीक नहीं है। पृथ्वीका बड़ी इलायची के नामों मे कहा है। चरकसंहिता सूत्र अ०-२ श्लोक ४ मे पृथ्वीका को योगीन्द्रनाथसेन स्थूलैला या हिंगुपत्री (डीकामाली) बतलाते है।

चरकसंहिता चिकित्सास्थान अध्याय २६ मे नेत्ररोगचिकित्सावर्णन मे कहा गया है—

पृथ्वीकादार्विमञ्जिष्ठालाक्षाद्विमधुकोत्पलै।
क्वाथ सशर्कर शीत. पूरण रक्तपित्तनुत्॥

— च० चि० २६/२३८

धन्वन्तरि चरकचिकित्साङ्क के ख्यातनामा यशस्वी व्याख्याकार आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी ने पृथ्वीका अनुवाद बडी इलायची ही किया है।

आयुर्वेद मे धूमपान का अच्छा वर्णन हुआ है। आचार्य वाग्भट इसकी उपयोगिता प्रकट करते है—

जत्रूर्ध्व कफवातोत्थविकाराणामजन्मने।
उच्छेदाय च जाताना पिवेद्धूम सदात्मवान् ॥

धूमपान के छ भेद किये गये है जिसमे प्रथम शमन है जो दो प्रकार का है मध्यशमन तथा प्रायोगिकशमन। प्रायोगिक शमन हेतु एलादिगण का महत्व है—"एलादिक...शमने" (शार्ङ्ग०)। शमन द्रव्यो मे आचार्य वाग्भट ने भी "पृथ्वीका" नाम दिया है। सुतरा यहा पृथ्वीका से वृहदेला ग्रहण करना उपयुक्त होगा। इसी प्रकार आचार्य प्रियव्रत जी ने वृहदेला का शीतप्रशमन द्रव्यो के अन्तर्गत वर्णन किया है तो चरकोक्त शीतज्वर प्रशमार्थ अगुर्वाद्य तैल मे भी वर्णित पृथ्वीका से वडी एला ग्रहण किया जाना उपयुक्त होगा।

विषशामक होने से महर्षि सुश्रुत ने कल्पस्थान अ० ५ मे सजीवनी नामक अगद कहा है जो अञ्जन, नस्य, पान प्रयोगार्थ निर्दिष्ट है—

लाक्षा हरेणुनलद प्रियङ्गु
शिग्रुद्वयं यष्टिकपृथ्वीकाश्च।
—सु० क० ५/७३

"पृथ्वीका एला" —डल्हण

यूनानी मतानुसार—इसके बीज तीक्ष्ण होते है। ये अग्निवर्धक हृदय तथा यकृत् को वल देने वाले, निद्राकारक और आतो को सिकोडने वाले है। पाचन-प्रणाली के अव्यवस्थित होने पर इसके बीज लाभ पहुँचाते है। अग्निमन्दता मे इसे सौंफ के साथ दिया जाता है। आमाशय की जलन को मिटाने के लिए इसे मिश्री के साथ सेवन करना हितकर है। उदरशूल और आध्मान को दूर करने के लिये काले नमक के साथ देना चाहिये। खरबूजे के बीज तथा सिकजवीन के साथ इसके प्रयोग से गुर्दे की पथरी मे लाभ होता है। इसके काढे से कुल्ले करने से मसूडे और दातो मे रोग मिटते है। छिलके का लेप सिरदर्द को मिटाता है। इसके बीजो से निकाला गया तैल अग्निमाद्यहर तथा सुगन्धित होता है। यह हृदय को प्रसन्न करने वाला है, उत्तेजक है।

आधुनिक मतानुसार—इसके बीज स्नायुशूल मे उपयोगी पाये गये है। स्नायुशूल मे ३० ग्रेन की मात्रा मे कुनैन के साथ देने से लाभ होता है। पाचन-सस्थान के कुछ रोगो मे जो आत्ररस की न्यूनता से उत्पन्न होते है—यह उत्तम औषधि मानी जाती है। पित्तनिःसरण क्रिया मे यह वृद्धि करती है। इसका तैल अग्निवर्धक होने से हैजा आदि मे प्रयुक्त होने से आमाशय के दाह को शान्त करता है। —डा० नाडकर्णी।

अ० सर्जन गुलामनवी का मत है कि गुर्दे और मूत्रकृच्छ्र के रोगियो मे इसके वीज मूत्रनिस्सारक औषधि के रूप मे दिये जाते है।

पेलवरम (मद्रास) के सर्जन मेजर सी० आर० जी पारकर के कथनानुसार यकृत् सम्बन्धी तकलीफो मे विशेषत यकृत्-विद्रधि मे यह औषधि वडी लाभदायक है।

वृहदेला के सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

[१] **जीर्ण प्रतिश्याय**—इसके छिलके ६ ग्राम को पोस्त के डोडो के पानी मे पीसकर मस्तक पर लेप करने से जीर्ण प्रतिश्याय मे लाभ होता है।

[२] **रजःकृच्छ्रता**—वृहदेला बीज, समुद्रलवण और जायफल को समान मात्रा मे लेकर गोमूत्र मे पीसकर वत्ती वना लें। इस वत्ती को योनि मे रखने से रज खुलकर आने लगता है।

[३] **शिरःशूल**—छिलके सहित इसे पीसकर मस्तक पर लेप करने से शिर शूल मिटता है।

[४] **कण्डू**—वृहदेला, सफेद जीरा को निम्ब-पत्र-स्वरस मे पीसकर लेप करने से कण्डू का शमन होता है।

[५] **नेत्ररोग**—वृहदेला, दारुहल्दी, मजीठ, लाख, मुलहठी के क्वाथ में शर्करा मिलाकर नेत्रपूरण करने से रक्तजन्य एवं पित्तजन्य नेत्ररोग शान्त होते हैं।

[६] **मुखरोग**—(क) इसके क्वाथ से गण्डूष करने से मसूड़े और दांतों के रोग दूर होते हैं।

(ख) वृहदेला, रूमीमस्तगी और आमलकी का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर नित्य मंजन करने से दांतों में आने वाला रक्त बन्द होता है तथा दांत मजबूत होते हैं।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१. **ज्वर**—बिल्वमूलत्वक् और पुनर्नवामूल के समान वृहदेला बीज लेकर यवकुट कर दुग्धपाक विधि से दूध पकाकर सेवन करने से सभी ज्वर विशेषतः जीर्ण ज्वर शमन होता है।

२. **अतिसार**—(क) इसके बीज के चूर्ण को नवनीत में मिलाकर चाटने से आमातीसार मिटता है।

(ख) विल्वफलमज्जा चूर्ण के साथ इसे सेवन करने से भी अतिसार में लाभ होता है।

३. **अग्निमांद्य**—(क) इसके चूर्ण के समान शुण्ठि चूर्ण कवोष्ण जलानुपान से अग्निमांद्य को मिटाता है।

(ख) इसका चूर्ण तथा शतपुष्पा का समभाग चूर्ण सेवन करने से भी अग्नि बढ़ती है।

(ग) इसके चूर्ण के बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करने से भी भूख बढ़ती है तथा दाह आदि में शान्ति मिलती है। गर्भवती के लिये यह प्रयोग विशेष उपयोगी है। गर्भिणी को दिन में २-३ बार ३ ग्राम तक इसे सेवन करना चाहिये। इस से भूख लगने के साथ चित्त भी प्रसन्न रहता है।

४. **उदरशूल**—इसके चूर्ण को लवण के साथ सेवन करने से अपचनजन्य शूल शान्त होता है।

४. **यकृत् वेदना**—(क) बीज चूर्ण को सिकंजबीन के साथ सेवन करने से यकृत् में हुई वेदना दूर होती है।

(ख) बीजचूर्ण को राजिका (राई) चूर्ण के साथ देना भी लाभप्रद है।

६. **आध्मान**—सौवर्चल लवण के बराबर इस का चूर्ण प्रयोग में लाने से आध्मान दूर होता है।

७. **अश्मरी**—इसके बीजों को खीरे अथवा ककड़ी के बीजों के साथ सेवन करने से मूत्राश्मरी में लाभ मिलता है। इसका अनुपान सिकंजबीन है।

८. **मूत्रकृच्छ्**—(क) बीजों के चूर्ण के साथ मिश्री मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ् मिटता है।

(ग) छिलको सहित ८-१० फलों को यवकुट कर दुग्धपाक विधि से दूध में पकाकर मिश्री मिलाकर सेवन करना भी इस रोग में हितकर है।

(ग) वृहदेला, सफेद जीरा, कलमी शोरा समभाग लें। उन सब के बराबर मिश्री मिलाकर ३ ग्राम दिन में ३-४ बार जल से सेवन करे। मूत्रकृच्छ् मिटता है।

९. **स्वरभेद**—वृहदेला, पिप्पली, अकरकरा को तुलसी स्वरस में पीसकर थोड़ा-थोड़ा चाटने से स्वर-भंग दूर होता है। इससे रसानुभूति होने लगती है तथा जिह्वा का शोथ भी मिटता है।

१०. **छर्दि**—वृहदेला, लवंग, नागकेसर, शर्करा समान लेकर सेवन करने से छर्दि मिटती है।

११. **वालरोग**—(क) वृहदेला का क्वाथ किंवा अर्क उपयुक्त मात्रा में पिलाने से बालकों का वमन मिटता है।

(ख) जिन बच्चों के मुख से निरन्तर लार गिरती रहती है, उन्हे वृहदेला और मस्तगी का चूर्ण मधु में चटावें। मात्रा—२००-३०० मि० ग्रा०।

१२. **कास**—३ ग्राम बीज चूर्ण को ६ ग्राम तुलसी स्वरस में पीसकर उस में ६ ग्राम मिश्री मिलाकर चाटने से कफ निकलकर कास में लाभ होता है।

१३. **पूयमेह**—वृहदेला बीज और कलमी शोरा समभाग लेकर चूर्ण बनावे। ५-५ ग्राम प्रातः-सायं पानी से खिलावे। एक सप्ताह पर्यन्त यह प्रयोग जारी रखने से पूयमेह दूर होता है।

१४. **नपुंसकता**—(क) वृहदेला और सफेद मूसली को समभाग लेकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण के बराबर मिश्री मिलाकर ४-५ ग्राम की मात्रा में दुग्ध

के साथ कुछ समय तक सेवन करने मे नपुंसकता दूर होती है।

(ख) बृहदेला १२ ग्राम, जायफल १२ ग्राम, जावित्री १५ ग्राम, अफीम ५०० मि० ग्रा० का चूर्ण बनाकर एक ग्राम की मात्रा प्रात मधु के साथ सेवन करने से नपुंसकता मिटती है। यह प्रयोग शीतकाल मे ही उपयुक्त है। इसे २८ दिनो तक निरन्तर सेवन करे।

१५. प्रदर—(क) बृहदेला और माजूफल को समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण के बराबर मिश्री मिलावें। २-२ रत्ती ताजे जल से प्रात-साय सेवन करने से श्वेत प्रदर मे लाभ होता है।

(ख) बृहदेला चूर्ण के समान मिश्री मिलाकर सेवन करने से भी श्वेतप्रदर मिटता है।

विविध कल्पनायें—

१. अर्क बृहदेला—बृहदेला १ किलो १२५ ग्राम को यवकुट कर २५० किलो जल मे रात्रि के समय भिगो दें। प्रात २५ किलो तक अर्क खीच ले। यह अर्क हृद्य एव उल्लासकारक है। इसके प्रयोग मे छर्दि, अतिसार तथा विसूचिका रोगो मे लाभ होता है।

—धन्वन्तरि वनौषधि विशेषाक।

२. बृहदेलारिष्ट—बृहदेला २ किलो २५० ग्राम, वासा की छाल १ किलो, मजीठ इन्द्रयव (अथवा कुटज की छाल), दन्तीमूल, गिलोय, सिरस की छाल, खदिर छाल, चिरायता, नीम की छाल, चित्रक, कूठ और सौफ प्रत्येक ४८० ग्राम लेकर यवकुट कर १०४ किलो पानी मे पकावे। अष्टमाश शेष रहने पर छानकर स्वच्छ मटके मे भरे। इसे शीतल हो जाने पर मधु १५ किलो, धातकी पुष्प ७८० ग्राम और दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची, सोठ, मिर्च (काली), पीपल, दोनो चन्दन, जटामासी, कपूरकचरी, नागरमोथा, छाड-छरीला और दोनो सारिवा प्रत्येक ४८ ग्राम। सूक्ष्म चूर्ण कर मिला देवे। यथाविधि सधान कर एक मास तक रखा रहने दे। फिर छानकर बोतलो मे भर रख दें। आवश्यकता पर उपयोग मे लावे।

मात्रा—१५-३० मि० लि० तक पानी के साथ सेवन करे।

इसके प्रयोग से विसर्प, मसूरिका रोमान्तिका (खसरा) शीतपित्त, विस्फोटक, विषमज्वर, दुष्टव्रण, नाडीव्रण, कास, श्वास, भगन्दर, उपदश और प्रमेह-पिडिका आदि रोगो का शीघ्र ही शमन होता है।

—धन्व० वनौ० विशेषाक।

३. दन्तजीवन मंजन—बृहदेला, अनार की कलिया, लौग, मजीठ, इमली के छिलके, धाय के फूल, रूमीमस्तगी, खेजडे की टहनियो मे लगी गाठे, सहजने की फलियो के अलावा लगने वाला फल, हीरा कसीस, रगवर्त, (खूनखराबा) कुन्दरू, माजूफल के कोयले, कपूर-कचरी ये १४ द्रव्य ६-६ ग्राम, जवा हरण (छोटी हरड), भुना हुआ तुत्थ, शीतल मिरच ये तीनो ४-४ ग्राम, वज्र-दन्ती, २४ ग्राम, भुनी हुई लाल फिटकरी, छिलके उतारे हुए इमली के बीज, घीया पत्थर तथा सुपारी के कोयले ये चारो १२-१२ ग्राम। इन सब को कूटकर कपडछन चूर्ण बनावे। इसका निरन्तर मजन करने से हिलते हुए दात मजबूत बनते हे, पूय एव रक्त का आना बन्द होता है। —सिद्ध भेषज मणिमाला।

अनुभूत प्रयोग—

१. रसायन वटी—बडी इलायची, धनिया और मैथी २०-२० ग्राम, तेजपात १० ग्राम और जावित्री ५ ग्राम।

निर्माण-विधि—इन सभी औषधियो को सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण करले, फिर पत्थर की खरल मे नीबू रस की भावना देकर २५० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले।

अनुपान—जल मे १-१ गोली ३ बार दे। बच्चो को ½ गोली।

गुण—यह रसायन मतली, वमन और अरुचि को दूर करती है। —श्री वैद्य ओमप्रकाश पाण्डेय द्वारा धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

२. सर्वसरहारी प्रयोग—बृहदेला, सूक्ष्मैला दोनो १-१ ग्राम, गिलोय सत्व ३ ग्राम, तबाखीर ३ ग्राम, मिश्री २४ ग्राम सभी का वस्त्रपूत चूर्ण कर मुख के छालो पर बुरकते रहे या मधु मिलाकर चटावे।

—कवि० श्री जगदीशचन्द्र भारद्वाज द्वारा धन्वन्तरि शिशु रोगाक, १९६२।

३. **पूयमेहहर प्रयोग**—वृहदेला, सेलखडी, कवाव चीनी, वशलोचन, सफेद कत्था, गिलोय सत्व । इन सब को महीन पीसकर सात दिन तक खाने मे पुराना सुजाक जाता रहता है और पेशाब खुलकर आता है ।

—वृहद् वूटी प्रचार ।

४. **उदरशूलहर प्रयोग**—वृहदेला, सोठ, दालचीनी २४-२४ ग्राम, पोदीना सत्व, अजवाइन सत्व, शुद्ध कपूर, असली केशर, हीग और अफीम १२-१२ ग्राम लेकर सबका चूर्ण कर एक पौंड मद्यसार या रेक्टीफाइड स्प्रिट मे मिला वोतलो मे भरकर दृढ ढक्कन लगा दे । इसे १५ दिन तक धूप मे रखे । इसके पश्चात् फिल्टर द्वारा छानकर शीशियो मे भर रखे । ५–१५ वूद उष्ण जल मे मिलाकर देने से तीव्र उदरशूल तत्काल शान्त हो जाता है । इसे पीते ही ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आग पर शीतल जल डाला हो ।

—आ० मू० श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ।

५. **वमन नाशक**—वृहदेला (भुनी) के बीज, नारियल जटा की काली भस्म, गेरू फुका हुआ प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेकर पीसकर वारीक कर ले, आवश्यकता पडने पर १२५ मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० तक शहद के साथ चटाने से हर प्रकार की वमन शान्त होती है, तृषा भी दूर होती है । —प० श्री रामस्वरूप जी गौड द्वारा धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाक, १९४७ से ।

६. **श्वेत प्रदर पर उपयोगी सरल प्रयोग**—छोटी इलायची, माजूफल समान भाग लेकर इन दोनो के बराबर मिश्री मिलाकर चूर्ण वना ले ।

व्यवहार-विधि—२-२ ग्राम प्रात -साय ताजे जल के साथ ले । श्वेत प्रदर की सुपरीक्षित औषधि है ।

—स्व० श्री प० मणिराम जी आचार्य द्वारा गु० सि० प्रयोगाक चतुर्थ भाग मे ।

७. **हिक्काहरण प्रयोग**—वड़ी इलायची ५ नग लेकर और छिलका सहित कुचल कर २५० ग्राम पानी मे खूब उबाले । जब आधा पानी रह जाय, तब उतार लें । ठण्डा होने पर इस पानी को निथार कर गुनगुना रहने पर घूट-घूट रोगी को पिला दें । हिचकिया कितनी भयकर क्यो न हो, रुक जायेगी । जव सारे नुस्खे फेल हो जाये, उस समय यह नुस्खा कारगर सिद्ध होगा । यह प्रभु की महिमा का मुह वोलता चमत्कार है ।

—स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती ।

८. **वाल मुखपाकहर**—वडी इलायची के वीज, फिटकरी भुनी, कत्था श्वेत, साफ श्वेत कागज की राख सव समान भाग लेकर भलीभाति मिलाकर वच्चो के मुखपाक पर वुरके । इसे वडे भी उपयोग मे ला सकते हैं । —प० श्री सुन्दरलाल जी शर्मा द्वारा धन्व० वाल रोगाक से ।

९. **हिक्का एवं अत्युद्गार नाशक**—वडी-इलायची (डोडा) की भस्म २४ ग्राम, मयूरपंख का चदेवा २४ ग्राम, शख भस्म २४ ग्राम, हरड-वहेड़ा, आवला, पीपल, लौह भस्म, प्रवाल भस्म प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेकर सवको यथाविधि पीस ले ।

मात्रा—५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक, शहद से प्रात -साय या आवश्यकतानुसार ।

गुण—यह योग हिक्का (हिचकी) और अत्युद्गार (डकार) दोनो के वेग को शमन कर देता है, हिचकी को दूर करने के लिए यह अचूक योग है। ऊर्ध्वगत वायु को शमन कर देता है, पाचो प्रकार के हिक्का को नष्ट करता है । —वैद्य श्री सुन्दरलाल जैन द्वारा धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से ।

१०. **उष्णवात (सुजाक) हर योग**—वडी इलायची, चन्दन का तैल, माजूफल, शीतलचीनी, वशलोचन प्रत्येक १२-१२ ग्राम । सवको महीन पीसकर ८ पुडिया वना ले । रात को ६० ग्राम मिश्री का शर्वत वनाकर रख दें और प्रात काल एक पुडिया उसी वासी शर्वत से खिलावे ।

गुण—सुजाक, कुर्रा को अधिक गुणकारी है । एक-दो दिन मे खून, पीव वन्द हो जाता है ।

—श्री रामेश्वरदयाल शर्मा वैद्य द्वारा धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से ।

कट्फल

[Myrica nagi Thunb, Myrica Esculenta]



कट्फल के पर्य्यायो मे सोमवल्क और कुम्भिका ये दो पर्य्याय भावमिश्र ने अपने ग्रन्थ के निघण्टु भाग मे दिये है पर लोक मे प्रसिद्ध सोमवल्क को श्वेतखदिर तथा कुम्भिका या कुम्भी को एक अलग प्रकार के वृक्ष के रूप मे जिसकी छाल को वस्त्र के रूप मे कुम्भपटिआ नामक साधुओ द्वारा पहना जाता है। स्थलकुम्भी यही है—कुम्भी स्थलकुम्भी यस्यास्त्वग्वक्रा भवति तथा कुम्भीक श्लक्ष्णत्वक्को रोमश कुम्भीनामावृक्षो यस्य त्वग् वस्त्राकारा भवति—डल्हण। डल्हण ने ही एक जलकुम्भी भी बताई हे उसे वह वीरपर्णी कहता है जिसे ठाकुर बलवन्तसिंह पिस्टिया स्ट्रैटिओइटिम लिन कहते है।

सोमवल्क को डल्हण ने कट्फल ही अपनी टीका मे दिया है।

राजनिघण्टुकार इसे उग्रदाहहरो रूच्यो मुखरोगशमप्रद लिखते है। वही इसे कटु और उष्ण वीर्य भी बतलाते हे तब फिर यह उग्रदाह को कैसे शान्त करता है? भावमिश्र ने इसे कटु तो माना है पर साथ ही इसे तुवर (कषैला) और तिक्त भी कहा है। धन्वन्तरि निघण्टु मे इसको हृल्लासहर कहा गया है। भावमिश्र और कैयदेव दोनो ही इसके वीर्य के बारे मे मौन है। राजनिघण्टुकार नरहरि द्वारा उग्रदाह शान्त करने वाला कहने से यह अम्लपित्त को दूर करने वाला होना चाहिए क्योकि हृल्लास और दाह उसके प्रमुख लक्षण है। हकीम दलजीतसिंह इसे आमाशयशूल पर भी उपयोगी पाते हैं, यह लक्षण भी अम्लपित्त मे मिलता ही है। चरकसहिता के सूत्रस्थान के चतुर्थ अध्याय मे वेदनास्थापन दशेमानियो मे इसकी गणना है ही। स्थानिक रूप मे भी कट्फल वेदनाशामक है इसीलिए इसके साथ अन्य द्रव्यो से सिद्ध तैल का पिचु योनि मे रखने से योनिशूल नष्ट हो जाता है (च० स० चि० स्था० अ० ३०) पुष्यानुग चूर्ण का एक घटक कट्फल होने से यह प्रदरहर है। आमाशय मे भी कफ के स्राव को कम करके आराम देता है। —रघुप्रसादत्रिवेदी।

उत्तरी भारत मे घरेलू औषधि के रूप मे व्यवहृत होने वाले कट्फल की त्वक् (छाल) ही प्राय उपयोग मे लायी जाती है, भले ही यह कट्फल के नाम से प्रसिद्ध हे।

भगवान् चरक ने वेदनाशामक द्रव्यो को वेदनास्थापन नाम दिया है—"वेदनाया सभूताया ता निहत्य शरीर प्रकृतौ स्थापयति इति वेदनास्थापनम्"—चक्र०। यद्यपि वेदना वात दोष के विना सम्भव नही हे, फिर भी दोषानुसार विविध वेदनाये होती है। कट्फल वातकफशामक होने से तोद, भेद, शूल आदि वातजन्य वेदनाओ के शमन के साथ कण्डू, गौरव, शैत्य, स्तम्भ आदि श्लैष्मिक वेदनाओ का भी शमन करता है। चरकसहिता के सूत्रस्थान अध्याय चतुर्थ मे दशेमानि वेदनास्थापनानि के अन्तर्गत लिखा गया है।

महर्षि सुश्रुत ने शारीरस्थान के द्वितीय अध्याय मे वातादि से दुष्ट शुक्र का वर्णन किया है। क्षय, जीर्णज्वर, उपदश आदि रोगो मे भी शारीर विष वृद्धि से शुक्र अशुद्ध हो जाता है। जो द्रव्य इस अशुद्ध शुक्र का शोधन करते है वे शुक्रशोधन कहे जाते है। कट्फल भी दशेमानि शुक्रशोधनानि मे हे। श्री प्रियव्रत जी ने शुक्रशोधन द्रव्यो मे ही इसका वर्णन किया है।

'दशेमानि सन्धानीयानि' द्रव्यो के अन्तर्गत भी कट्फल को कहा है। शरीर मे टूटे हुए किंवा पृथक् हुये अस्थि-त्वचा, रक्तवाहिनी आदि को जोडने वाले द्रव्य को सन्धानीय कहा जाता हे—सन्धानाय भग्नसयोजनाय हित सन्धानीयम्। सन्धानक शरीरेऽन्त सहतिकर भावानाम्। —इन्दु।

महर्षि सुश्रुत ने रोध्रादिगण मे कट्फल कहा है— यह रोध्रादिगण मेद, कफ, योनिदोष, विष हर है इसके अतिरिक्त यह वर्ण्य एव स्तम्भी (अतिसारादे स्तम्भन) है। आचार्य वाग्भट ने इस गण के द्रव्यो को श्लोकबद्ध किया है—

रोध्रशावरकरोध्रपलाशा
झिगिणीसरलकट्फलयुक्ता ।
कुत्सितावकदलीगतशोका
सैलवालुपरिपेलवमोचा ॥

इसके अतिरिक्त सुरसादिगण तथा लाक्षादिगण मे भी कट्फल कहा गया है। सुरसादिगण—

सुरसयुगफणिज्ज कालमाला विडग
खरबुसवृषकर्णीकट्फल कासमर्द ।
क्षवकसरसिभार्गी कामुका काकमाची
कुलहलविषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशी ॥
सुरसादिगण श्लेष्ममेद क्रुमिनिपूदन ।
प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधन ॥
—अ० हृ० सू० १५

लाक्षादिगण—लाक्षारेवतकुटजाश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बसप्तच्छदमालत्यस्त्रायमाणा चेति ।

कषायास्तिक्त मधुर कफपित्तार्तिनाशन ।
कुष्ठक्रुमिहरश्चैव दुष्टव्रणविशोधन ॥
—सु० अ० ३०

कुल—प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह कट्फल कुल मिरिकेसी-Myricaceae) की औषधि है। इस कुल (वर्ग) मे मात्र इसी औषधि को लिया गया है। भावप्रकाशनिघण्टु मे हरीतक्यादि वर्ग मे इसका पाठ है।

नाम—

संस्कृत—सोमवरक (सोमवल्कस्तु कट्फल —हृ० दी० निघण्टु), कैटर्य्य, कुम्भिका, श्रीपर्णी, कुमुदिका, भद्रा, भद्रवती, महावल्कल ।

हिन्दी—कायफल, कायफर, काफल ।

गुजराती—कायफल ।

मराठी—कायफल ।

बंगला—कायछाल, कट्फल ।

तामिल—मरुदम् ।

तेलगु—कैदरयमु ।

कन्नड़—िरिगिशिगानी ।

मलयालम—मारुत ।

राजस्थानी—कायफल ।

पजाबी—कायफल ।

अरबी—अजूरी, उदुलबर्क, कन्दूल ।

फारसी—दारशीश आन ।

अंग्रेजी—बाक्स मिर्टल (Box Myrtle) ।

लैटिन—मिरिका एस्युलेण्टा (Myrica Esculenta) ।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय के साधारण उष्ण प्रदेशो मे पश्चिमोत्तर उत्तरप्रदेश के कुमाऊ, गढवाल, उत्तर पजाब, आसाम मे खासिया, सिलहट पर्वत मे विशेषत ३-६ हजार फीट की ऊचाई तक होता है। चीन और जापान मे इसकी बहुत उपज होती है।

रासायनिक सगठन—इसके त्वक् (छाल) मे पीत रञ्जक पदार्थ मिरिसेटिन जो मिरिसाइट्रिन नामक ग्लाइकोसाइड के रूप मे रहता है। एक और ग्लाइकोसाइड अत्यल्प मात्रा मे होता है। इसके अतिरिक्त टैनिन ३२ प्रतिशत होता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका वृक्ष छोटा किंवा मध्यमाकार, सर्वदाहरित, सुगन्धि, छायायुक्त होता है। इसकी ऊचाई १०-५० फीट होती है। छाल धूसर या भूरे रङ्ग की भारी, खुरदरी ½ इञ्च मोटी होनी है। इसमे लम्बाई मे गहरी झुर्रिया होती है। टहनिया रोमश होती है। पत्र—३-६ इञ्च लम्बे, १½-२ इञ्च चौडे भालाकार, आयताकार अभिलट्वाकार होते है। ये पान के सदृश होते है। नये पत्र आरावत् दन्तुर होते है। इसके अधस्तल मे रालीय ग्रन्थिया होती है। स्त्री और पुरुष पुष्प भिन्न-भिन्न वृक्षो पर अक्षीय मञ्जरियो मे लगते है, ये छोटे, लाल और सुगन्धित होते हैं। फल—½-¾ इञ्च लम्बे खिरनी के समान अण्डाकार, पृष्ठ पर दानेदार, पकने पर रक्ताभ या पीताभ बादामी रङ्ग के और मधुराम्ल होते हैं। बीज—झुर्रीदार होते है। फलो



कट्फल [Myrica esculenta]

विभिन्न नाम : सस्कृत–कट्फल । हिन्दी–कायफल । गुजराती–कायफल । मराठी–कायफल । बगला–कायछाल । अग्रेजी–वाक्स मिर्ट्ल । लैटिन–मिरिका एस्युलेण्टा ।

प्राप्ति स्थान : पजाव, गढवाल, कुमाऊ आदि ।

दोषशमन : कफवातशामक ।

उपयोगी अङ्ग : त्वक् ।

रोगोपयोग : कास, श्वास, प्रतिश्याय, शिर शूल आदि ।

मुख्य योग : कट्फलादि क्वाथ ।

श्वेत मोम के समान पदार्थ का आवरण चढा हुआ रहता है, जिस पर भूरे और काले धब्बे होते हे ।

पुष्पकाल—सितम्बर, अक्टूबर ।

फलकाल—मई, जून ।

इसके फल खाने एव पानकादि बनाकर उपयोग मे लाने के काम आते है। ये फालसे की भाति स्वादिष्ट होते ह । पहाडी लोग इन्हे बडे चाव से खाते है। छाल औषधि रूप मे काम आती हे अत छाल का विशेष विवरण प्रस्तुत है—

कट्फलत्वक् आकृति विज्ञान—यह बाहर की तरफ उन्नतोदर तथा भीतर की ओर नतोदर होता है। बाह्यस्तर विषम आकृति का तथा फटा हुआ होता है। नीचे का स्तर घन रक्ताभ मोटा होता है। सब से नीचे का स्तर कृष्णाभ तथा सूत्रमूल रचना है।

व्यत्यस्त छेद लेने पर इसमे तीन स्तर दिखाई देते है—

१ बाह्यस्तर ।
२ मध्यस्तर ।
३ अन्त स्तर ।

त्वक् खण्ड का भार १२० ग्रेन, आयाम डेढ इञ्च, उत्सेध ४ इञ्च का है ।

—क्रियात्मक औषधि परिचय विज्ञान ।

बहुत से लोग कुम्भी (Careya Arborea Roxb) को ही कायफल मान लेते हैं। कुम्भी कटभी की एक जाति विशेष है। आचार्य कृष्णप्रसाद जी कुम्भी और कटभी को एक ही मानते है। कट्फल सदृश इसकी छाल होने से ही इन दोनो को एक मान लिया जाता है, किन्तु यह कट्फल से पृथक् औषधि है।

कुछ लोग जगली जायफल, रामपत्री (Myristica Malabarica) को ही कट्फल मान लेते है। किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि जगली जायफल के ऊपर जावित्री के समान जो छिलका होता है वह रामपत्री के नाम से जाना जाता ह । ऐसा कट्फल का फल नही होता है। कोकण की ओर इस जगली जायफल को ही भ्रम से कट्फल मान लेते हैं। श्री भागीरथ जी स्वामी का भी उस जगली को ही कट्फल मान लेने की ओर मत है किन्तु यह उपयुक्त नही है ।

रस—कषाय, तिक्त, कटु ।

गुण—लघु, तीक्ष्ण ।

वीर्य—उष्ण ।

विपाक—कटु ।

दोषकर्म—उष्ण होने से कफवात शामक है ।

सिद्धमन्त्रप्रकाश मे "कफानिलघ्न देवाह्वं हिंस्रा-कट्फलमुष्कका" कहकर उसे कफवातघ्न वर्ग मे भी कहा है ।

प्रयोज्य अङ्ग—त्वक् ।

मात्रा—चूर्ण—३-५ ग्राम ।

हानिप्रद—यकृत् प्लीहा के लिए (अधिक प्रयोग से वमन होता हे) ।

हानिनिवारक—मस्तगी, कतीरा एव बबूल का गोद ।

अभाव—असारून, जराविन्द ।

उत्तेजक—स्वेद ग्रन्थियो को ।

गुण-धर्म—

कट्फलस्तुवरस्तिक्त कटुर्वातिकफ ज्वरान् ।
हन्ति श्वास प्रमेहार्श कासकण्ड्वामयारुची ॥

—भा० प्र० नि० ।

कट्फल कटुरुष्णश्च कफ श्वास ज्वरापह ।
प्रतिश्यायहरो रुच्यो मुखरोग शमप्रद ॥

—रा० नि० ।

कट्फल च कषाय च कफवातविकारजित् ।
हृल्लासमुखरोगघ्न कास श्वास ज्वरापहम् ॥

—धन्व० नि० ।

कट्फलन्तुवरन्तिक्तकटु वातकफ ज्वरान् ।
हन्ति श्वासप्रमेहार्श कासकण्ठामयारुची ॥

—म० वि० नि० ।

कट्फल तुवरक कटु तिक्त
हन्ति मेहकसन श्वसनादीन् ॥

—सि० भे० मणिमाल ।

कट्फलस् तुवरस्तिक्त कटुर्वातकफज्वरान् ।
हन्ति श्वास प्रमेहार्श कासकण्ठामयारुची ॥
तीक्ष्ण क्षुतकरश्चोष्णो ग्रहणीगुल्म पीडनुत् ॥
—महौषध निघण्टु ।

कट्फलस्तुवरास्तिक्त कटुर्वातकफप्रणुत् '
हन्ति कास प्रमेहार्श श्वासकण्ठामय ज्वरान् ॥
—प्रियनिघण्टु ।

ऊर्ध्व जत्रुगत रोगो मे नस्य का विशिष्ट महत्व है। यद्यपि पूर्वोक्त गणो मे आचार्यो ने कट्फल का वर्णन नही किया है किन्तु नस्योपयोगी होने से प्रयोग अवश्य निर्दिष्ट किये है। सामान्यत नस्य के दो भेद कहे गये हैं रेचन (कर्षण) और स्नेहन (बृहण)। पुनश्च रेचन नस्य के अवपीड एव प्रधमन भेद से दो अवान्तर भेद है। शिरोरोग प्रतिवेध नामक अध्याय मे महर्षि सुश्रुत ने कफजन्य शिरोरोग चिकित्सा मे "घ्रेय कट्फल चूर्णं च" कहा है। व्याख्याकार डल्हण ने "कट्फल चूर्ण घ्रेय घ्रातव्य, प्रधमनविशेषोऽयम्" कहकर इसे स्पष्ट किया है। इसी उपयोगितास्वरूप परवर्ती आचार्य भी वर्णन करते हैं—

शिरसि गौरवमस्ति समन्ततो
यदि च पीनस रोगदुरन्तता ।
द्रुतमिवानय कट्फलवल्कल
सपदि देहि रज खलु नस्यत ॥
—प्रियनिघण्टु ।

प्रतिश्यायादि मे स्रोतोरोध निवाणार्थ छीक लाने के लिए उपयोगी है।

छिक्किकाकट्फलारब्ध नस्य छिक्का प्रवर्तनम् ।
सि० भे० मणि० ४/१००८ ।

१ भाग नकछिकनी और ४ भाग कट्फल चूर्ण को मिलाकर थोडा-थोडा सुघाने से शीघ्र ही छीके आकर लाभ होता है। नस्यार्थ इसका उपयोग शिर शूल, प्रतिश्यायादि मे ही नही मूर्च्छा, अपस्मारादि मे भी होता है, सुतरा कहा गया है—

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमा प्रधमनानि च ।
आत्मगुप्तावघर्षश्च हितास्तस्याव बोधने ॥

कट्फल कृमिघ्न एव स्तम्भन होने से व्रण मे शोधनार्थ किवा रोपणार्थ भी हितावह है। इसके त्वक् का क्वाथ बनाकर व्रण को धोने मे व्रण का शोधन होता है। विद्रधि के रोपण हेतु जो प्रियग्वादि तैल (च०द०) निर्दिष्ट है उसका कट्फल भी घटकद्रव्य है। शोधन-रोपण ही नही रोपण के पश्चात् त्वचा को सवर्ण बनाने मे भी यह लाभप्रद है। भगवान् चरक ने इस हेतु कई द्रव्यो के अवचूर्णन (Insufflation) का वर्णन किया है—

ककुभोदुम्बराश्वत्थलोध्र जाम्बवकट्फलै ।
त्वचमाश्वेव गृण्हन्ति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणा ॥
—च० चि० २५/११३ ।

"ककुभेत्यादिप्रकरणेन त्वग्जनन तथा सवर्णकरण तथा रोमजननमिति उपक्रममाह । त्वचमाश्वेव गृह्णन्ति इति सत्वचो भवन्ति । —चक्र० ।

शीताङ्ग सन्निपात मे वात और कफ की प्रधानता के कारण शीतगात्रता होती है—"शीतकृत् सोमसश्रयात्" । इसके लक्षणो मे आचार्य भावमिश्र ने कहा है—

हिमशिशिर शरीर सन्निपातज्वरीय
श्वसनकमनहिक्कामोहकम्पप्रलापै ।
क्लमबहुकफवातादाहवम्यङ्गपीडा-
स्वरविकृतिमिरार्त शीतगात्र स उक्त ॥

कट्फल उष्ण किवा वातकफशामक होने से इसमे लाभप्रद है। इसकी छाल के चूर्ण का किवा सशुण्ठी चूर्ण का उद्वर्षण करने से गात्र का शैत्य दूर होता है। इसी प्रकार यह कर्णक किवा कर्णिकसन्निपात की भी उत्तम औषधि है। कर्णक सन्निपात भी वातकफोत्तर ही होता है—

सन्धिकस्तान्द्रिको जिह्व कर्णिकश्च प्रलापक ।
चित्तविभ्रमक शीना कफवातोत्तरा स्मृता ॥
—वसवराजीयम्

इस सन्निपात के भी रूप निर्दिष्ट है—

श्वयथुरतिबहुव्यथस्त्रिदोष-
ज्वरविरतौ भवति श्रुतैरधो य. ।

प्रलपनमदमोहकम्पकण्ठग्रहबधिरत्वकर
स कर्णकाख्य ॥
—त्रिशती

इसमे वैद्यवर श्री शार्ङ्गधर ने दो लेपो का उल्लेख किया है जिनमे कट्फल की गुणवत्ता प्रकट होती है—

कट्फलकुलत्थकुण्डनसुपर्णीशुण्ठीभिर्रतिहा लेप ।
अथलवणमोमवल्कगैरिकशटिनागरैरुदित ॥
—त्रिशती

कफवातहर होने से इन ज्वरो मे इसका आभ्यन्तरीय प्रयोग भी होता है—

कट्फलाम्बुदभार्गीभिर्धान्यरोहिष पर्पटै ।
वचा हरीतकी श्रृङ्गीदेवदारुमहौषधै ॥
क्वाथ कासज्वर हन्ति श्वास श्लेष्मगलग्रहान् ॥
—बसवराजीयम्

चरकसहिता के चि० अ० १८ मे जो कासमर्दादिघृत निर्दिष्ट है इसमे कट्फल का प्रयोग किया गया है। यह घृत ज्वर, शोष, प्लीहोदर एव सर्व कासहर है।

वेदनास्थापन, नाडीबल्य होने से इसका पक्षाघातादितादि वातव्याधियो मे भी बाह्याभ्यन्तर उपयोग लाभप्रद है। तैल मे मिलाकर किंवा तैलपाक सिद्ध कर अभ्यङ्ग करना हितावह है इससे वातरोगो का शमन होता है। शोथ, शूलादि शीघ्र ही विनष्ट होते है।

शोथहर एव कोथप्रशमन होने के कारण मुखपाक मे इसके क्वाथ का गण्डूष धारण तथा दन्तशूल मे मञ्जन करना हितावह है। गलगण्ड मे इसके चूर्ण के घर्षण का निर्देश है—

कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डामय हन्ति ।
—भै० र०

"योन्या वलासदुष्टाया सर्व रूक्षोष्णमौषधनम्" के अनुसार यह कफजन्य योनिरोगो मे लाभप्रद है। गर्भाशय सकोचक होने से इसके चूर्ण की पोटली योनि मे रखते हैं। कष्टार्तव मे कृष्णतिल एव गुड के साथ आभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। चर्मरोगो मे भी इसकी छाल से लेप, अवचूर्णन करना चाहिये। भगवान् चरक ने चि० अ० ७ मे कुष्ठार्कतुत्थकट्फलादि द्रव्यो से सिद्ध तैल को कुष्ठघ्न कहा है। इन द्रव्यो का आलेपन, उद्वर्त्तन, प्रघर्षन, अवचूर्णन भी हितकर है—

एतैस्तैन सिद्ध कुष्ठघ्न योग एष चालेप ।
उद्वर्तन प्रघर्षणमवचूर्णनमेष एवेष्ट ॥

यह दीपन होने से अग्निमाद्य मे, ग्राही होने से अतिसार मे और शूलप्रशमन होने से उदरशूल, अर्श आदि अन्नवहस्रोतोदुष्टि मे लाभप्रद है। कहा गया है—

कट्फल मधुयुक्त वो मुच्यते जठरामयात् ।
—चरक० चि० १९/११३

इस प्रकार कफातिसार मे मधु मे मिलाकर चाटना हितकर है। हृद्य होने से हृदयरोगो मे भी यह लाभप्रद है। विशेषतया कफजन्य हृदयरोगो मे यह हितावह है। कफज हृदयरोग की चिकित्सा मे भगवान् चरक ने स्वेदन, वमनादि के पश्चात् कट्फल, अदरख, दारुहल्दी, हरड एव अतीस को गोमूत्र मे उबालकर पीने का परामर्श दिया है—

मूत्रेशृता कट्फल श्रृङ्गवेर-
पीतद्रुपथ्यातिविषा प्रदेया ।
—च० चि० २६/८७

आयुर्वेद विकास जन० ८४ के अङ्क मे डा० ओ० पी उपाध्याय एव डा० जे के ओझा का "हृदयरोगो पर आयुर्वेदिक द्रव्यो का प्रयोग" नामक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमे कफज हृदयरोगो मे उपयोगी द्रव्यो के अन्तर्गत कट्फल का वर्णन किया गया है। यह सन्धानीय होने से रक्तपित्त मे भी हितकर है। कट्फल चूर्ण के बराबर चन्दन ससिता तण्डुलोदक मे आलोडित कर पीवे। इससे तमकश्वास, तृष्णा एव दाह से युक्त रक्तपित्त का शमन होता है—

प्रियगुकाकट्फलशखगैरिका
पृथक्-पृथक् चन्दनतुल्यभागिका ।
सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुता
रक्त सपित्त शमयन्ति सद्य ॥
—चरक० चि० ४/७३

शोथ मे भी यह उपयोगी है। शोथ हृदय रोग का उपद्रव भी है—

सर्वाङ्गशोथो यकृतो वृद्धि श्वामोऽल्पके श्रमे ।
ज्लोदरत्व कृशता क्लमो दैन्य विवर्णता ॥
नि.श्वासोच्छ्वासदौर्बल्य हृद्रोगोपप्रवा इमे ॥
—देहधात्वग्निविज्ञानम् ।

यह कफनि सारक एव श्वासहर होने से प्रतिश्याय, कास तथा श्वास रोगो मे लाभदायक सिद्ध होता है । इस हेतु विविध शास्त्रीय वचन है—

कट्फल कत्तृण भार्गी मुस्त धान्यवचाभया ।
शुण्ठी पर्पटक श्रृङ्गी सुराह्वञ्च जले शृतम् ॥
मधुहिंगुयुत पेय कासे वात कफात्मके ।
कण्ठरोगे मुखे शूने श्वासहिक्काज्वरेपु च ॥
च० चि० १८/११२-११३ ।

प्राणवहस्रोत. शोधक इस क्वाथ का सिद्धयोग, चक्रदत्त, भैपज्यरत्नावली, योगरत्नाकर, शार्ङ्गधरसहिता आदि सग्रहग्रन्थो मे भी वर्णन है । आचार्य शार्ङ्गधर ने चूर्णकल्पना प्रकरण मे कास श्वासादिहर तीन कट्फलादि चूर्ण कहे हैं जिनका वर्णन आगे किया जायेगा । इसी कट्फलादि चूर्ण के साथ सजीवनी वटी का प्रयोग हितावह कहा गया है—

कट्फलादिक चूर्णेन सम दन्तोष्णवारिणा ।
कफकासशमायाल भवतीत्यनुभूयताम् ॥
—सजीवनी साम्राज्यम् ।

कट्फल, कर्कटश्रृङ्गी आदि कादि औषधिया वस्तुत कफशामक होने से कासादि रोगो के शमन मे श्रेष्ठ है । इनका अकेले किंवा सब को मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर मधु के साथ सेवन करना लाभदायक है । कविराज जयदेव जी प्रशस्तिगान करते है—

कट्फल कर्कटाख्या च कणा काश्मीरक तथा ।
कदर्थयति कासाना कुल कादि चतुष्टयी ॥
—सि० भै० मञ्जूपा ।

यह मूत्रसग्रहणीय होने से प्रमेहहर है । भगवान् चरक ने कफमेहघ्न योगो का क्रमश वर्णन कर कहा है "पादै कषाया कफमेहिना ते दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ता" । इनमे प्रथम उदकमेहहर योग के द्रव्यो मे हरड, कट्फल, नागरमोथा और लोध्र कहे हैं—च० चि० ६/२६ । इसके अतिरिक्त भैषज्यरत्नावलीकार ने जो सामान्यत कफमेहार्थ विडङ्गादि क्वाथ कहा है उसका भी कट्फल घटकद्रव्य है ।

पूर्व मे कहा जा चुका है कि यह शुक्र शोधन है सुतरा शुक्रगत दोषो का निवारण कर क्लैव्य का सहार करता है । कहा गया है—

शुक्रदोषेपु निर्दिष्ट भेपज यन्मयानघ ।
क्लैव्योपशान्तये कुर्यात् क्षीणक्षतहित च यत् ॥
—च० चि० ३०/१९२ ।

शुक्रशोधनार्थ सग्रहकार ने भी कहा है—

कुष्ठैल वालक कट्फलकाडेक्षुसमुद्रफेनको शीरै ।
वसुकैक्षुरकै शुक्र शुध्येरसकदम्वनिर्यासै ॥
—अ० सग्रह ।

यूनानी मतानुसार—यह दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है । इसके पुष्पो से तैल निकाला जाता है जो दुह्नुल् कदूल् कहलाता है । यह तैल दूसरे दर्जे मे गर्म और खुश्क है । इस तैल की मालिश करने से लकवे मे लाभ होता है । कामेन्द्रिय पर इसे मलने से नपुसकता मिटती है । इसके लेप से सूजन भी मिटती है । इसको नाक मे टपकाने से सरदर्द और नजले मे फायदा होता है । यह दिमाग के सुद्दो को खोलता है ।

आधुनिक मतानुसार—कर्नल चोपडा के मतानुसार कट्फल, सोठ और दालचीनी से बनाया गया क्वाथ जीर्ण वायु-नलिका प्रदाह (क्रानिक ब्रोकाइटिस) श्वास, कास और प्रतिश्याय मे अत्यन्त उपयोगी है । आमातिसार और रक्तातिसार मे भी यह सकोचक वस्तु के रूप मे दिया जाता है । यह सकोचक, उत्तेजक, कृमिनाशक और पेट के आध्मान को दूर करने वाला है ।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के कथनानुसार यह उत्तरी भारत की प्रसिद्ध घरेलू औषधि है । कफ और वात के द्वारा उत्पन्न रोगो मे यह लाभदायक है । सर्दी से उत्पन्न सिरदर्द और छाती मे जमे हुए कफ को निकालने मे यह श्रेष्ठ है । कफ और दमा के रोगी इसके क्वाथ से आराम पाते है । हृदय रोग, अरुचि, अग्निमाद्य, अजीर्ण एव अजीर्णजन्य अतिसार को यह दूर करता है । अर्श मे इसका वाह्याभ्यन्तर प्रयोग

हितकर है। इसके तेल के लेप से अर्शाकुरो की वेदना दूर होती है। कायफल चूर्ण की वत्ती वनाकर योनि मे रखने से गर्भाशय की सकोच-विकास क्रिया बढती है, सुतरा मासिक धर्म ठीक होने लगता है। केशर, तिल, गुड के साथ इसके उपयोग से कष्टार्तव मे लाभ होता है। इस व्याधि की यह ओषधि उत्तम सिद्ध हुई है। इस औषधि के सेवन के कुछ समय पश्चात् ही भोजन देना अनिवार्य है, अन्यथा रुग्णा का जी घवराने लग जाता है। सर्दी से उत्पन्न सिरदर्द और चक्कर आने पर इसका चूर्ण देना चाहिये। छाल का क्वाथ व्रणशुद्धि और चूर्ण व्रणरोपण हेतु उत्तम है। हैजा या शीताङ्ग सन्निपात मे जव रोगी के हाथ-पाव ठण्डे पड जाते है सूठ के चूर्ण के साथ इसको मलने से शीघ्र ही उष्णता आने लग जाती है। चोट लग जाने से उत्पन्न सूजन को नष्ट करने के लिए इसके चूर्ण को पीसकर गर्म कर लेप करना चाहिये। इसके पुष्पो से निर्मित तैल किंवा छाल से सिद्ध तैल सधिवात मे लाभप्रद है। इस तैल से व्रणवन्धन भी रोपणार्थ उत्तम है।

वाह्य प्रयोग—

(१) शिरःशूल—[क] कट्फल त्वक् चूर्ण का या नकछिकनी को मिलाकर नस्य प्रयोग शिर शूलहर है। नकछिकनी से कट्फल चतुर्गुण होनी चाहिये।

[ख] इसके तैल का नस्य भी हितावह है।

[ग] कट्फल, मरिच, एरण्डमूल और कूठ को जल मे पीसकर गर्म कर शिर पर लेप करने से भी शिर शूल का शमन होता है। कट्फल निर्मित नस्य अधिक उपयोग मे नही लाने चाहिये। यदि अधिक सुघाने से छीकें आकर नाक से रक्तस्राव होने लगे तो घृत किंवा तिल-तैल का नस्य देना चाहिये।

(२) कष्टार्तव—इसके चूर्ण की वर्ति वनाकर या चूर्ण को पोटली मे रखकर योनि मे धारण करने से आर्तव खुलकर आने लगता है।

(३) कण्ठमाला—त्वक् चूर्ण को गोमूत्र मे पीसकर लेप करने से कण्ठमाला में लाभ होता है।

(४) आमवात—[क] इसके तैल का अभ्यङ्ग करें।

[ख] कट्फल त्वक् को जल मे मिलाकर पीसकर कवोष्ण लेप करें।

(५) विसूचिका—विसूचिका जन्य शीताङ्ग और हाथ-पैरो की ऐठन को मिटाने के लिए इसके सूक्ष्म चूर्ण को मलें किंवा लेप करें।

(६) नपुंसकता—[क] त्वक् चूर्ण को भैस के दूध मे पीसकर रात को शिश्न पर लेप करें और प्रात धो डालें। कुछ दिन ऐसा करने से लाभ होता है।

[ख] इससे निर्मित तैल का मलना भी हितकर है।

(७) अभिष्यन्द—इसके तैल की बूंद आख में डालने से अभिष्यन्द मे लाभ होता है।

(८) अर्श—[क] त्वक् चूर्ण को घृत में मिलाकर अर्शाकुरो पर लेप करे।

[ख] कट्फल, हीग और कपूर का सघृत लेप करना भी लाभप्रद है।

(९) दन्तशूल—[क] इसके चूर्ण का मञ्जन हितकर है।

[ख] चूर्ण को सिरके मे मिलाकर मलना अधिक हितकर है।

(१०) अस्थिभग्न—अस्थिभग्न पर मेदासक (मैदा लकडी) के साथ लेप करें।

(११) स्वेदाधिक्य—कट्फल किंवा शुण्ठी चूर्ण को मिलाकर मलने से स्वेदाधिक्य मे न्यूनता आती है।

(१२) कर्णशूल—त्वक् को तैल मे पकाकर कान मे डाले।

(१३) विपादिका—चूर्ण को पीसकर लेप करना हितकर है।

(१४) व्रण—[क] व्रणशोधनार्थ क्वाथ से प्रक्षालन करें।

[ख] व्रणरोपणार्थ सूक्ष्म चूर्ण का अवधूलन करें।

[ग] इसके फलो को उवालने से जो मोम सदृश पदार्थ निकले, उसके उपयोग से भी व्रणपूरण शीघ्र होता है।

[घ] इसको तैल मे पकाकर फिर उस तैल से व्रण-बन्धन करना भी पूरणार्थ हितकर है।

(१५) कुष्ठ—कट्फल त्वक् चूर्ण, अनार छाल, हरिद्रा फूल प्रियंगु, त्रिफला और धाय के फूल के चूर्ण को समभाग लेकर उसमे आमलकी स्वरस मिलाकर भलीभाति खरल करे। इसका लेप कुष्ठ के व्रणो पर करे। इस से इन व्रणो का शीघ्र ही रोपण होने लगता है।

(१६) कर्णमूल शोथ—[क] सन्निपातिक ज्वर के पश्चात् उत्पन्न कर्णमूल शोथ का दुष्ट रक्त निकाल कर कट्फल, काला जीरा, सोठ और कुलथी के समभाग चूर्ण को पानी मे पीसकर लेप करे।

[ख] कट्फल, सैन्धव, गैरिक, कचूर और सोठ को जल मे पीसकर लेप करें।

(१७) नाक की दुर्गन्ध—कट्फल, त्रिफला, त्रिकटु, नकछिकनी और पिप्पलीमूल को पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर नस्य लेने से प्रतिश्याय जन्य नाक की दुर्गन्ध का शमन होता है।

(१८) शीताङ्ग सन्निपात—[क] कट्फल, मेथी, पुष्करमूल, अकरकरा, रसोन और राई १०-१० ग्राम लेकर और कपडछन आटा लेकर गोमूत्र से रोटी बनावें। इस रोटी को बिना सेके सिर पर बाध दें। इससे शीताङ्ग सन्निपात, मूर्च्छा, उन्माद और अपस्मार दूर होते हैं।

[ख] कट्फल, सैंधानमक, सोठ, चिरायता और काला जीरा के चूर्ण को शरीर पर मलने से भी शीताङ्ग मे उष्णता आने लगती है।

[ग] कट्फल एवं शुण्ठी के सूक्ष्म चूर्ण को हाथ-पैरो पर मलने से भी उष्णता का सचार होता है।

(१९) अपस्मार—कट्फल, नकछिकनी, कटेरी के सूखे फलो के चूर्ण मे तम्बाकू चूर्ण (खैनी) मिलाकर पोटली बनाकर सुघाने से अपस्मार का वेग दूर हो जाता है। इससे मूर्च्छित व्यक्ति शीघ्र ही होश मे आ जाता है, किन्तु यह तीव्र नस्य होने से सावधानी से उपयोग मे लावे। इसके प्रयोग से भ्रम, प्रतिश्याय, पीनस, शिर शूल आदि रोगो का भी शमन होता है।

(२०) गलगण्ड—गलगण्ड पर इसके चूर्ण का घर्षण करे।

(२१) मोच—चोट-मोच पर इस के चूर्ण को जल मे पीसकर उष्ण कर प्रलेप करने से खून बिखर जाता है तथा शोथ-शूल का शमन होता है।

(२२) मुखपाक—त्वक् क्वाथ का गण्डूष धारण करने से मुखपाक मे लाभ होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

(१) कफ ज्वर—कट्फल, पुष्करमूल, काकडासिंगी और पिप्पली के क्वाथ मे मधु मिलाकर सेवन करने से कफ ज्वर मे लाभ होता है।

(२) वातकफ ज्वर—कट्फल वचा देवदारु, अमृता और चिरायता का क्वाथ वातकफ ज्वर शामक है।

(३) श्वसनक ज्वर—कट्फल, भारगी और वशलोचन के चूर्ण को आर्द्रक स्वरस तथा मधु के साथ सेवन करने से श्वसनक ज्वर मे लाभ होता है।

(४) अतिसार—[क] कट्फल और विल्वफल का समभाग चूर्ण शीत जल से सेवन करने पर सभी प्रकार के अतिसारो का शमन होता है।

[ख] कट्फल, मुलहठी, लोध्र और अनारफल के छिलके का चूर्ण बनाकर तण्डुलोदक से सेवन वातकफ-जन्य अतिसार का हनन करता है।

[ग] कट्फल, अतीस, नागरमोथा, कुडा की छाल और सोठ का समभाग क्वाथ समधु सेवन करना पित्तातिसार मे हितावह है।

(५) रजःकृच्छ्रता—[क] कट्फल और समुद्रफल का समभाग चूर्ण ५-६ ग्राम उष्ण जल से सप्ताह पर्यन्त सेवन करने से रज कृच्छ्रता का निवारण होता है।

[ख] कट्फल चूर्ण २ ग्राम, केसर १ ग्राम, कृष्ण तिल १२ ग्राम और इन सब के बराबर गुड मिलाकर सेवन करने से भी आर्तव खुलकर आने लगता है। किन्तु

इसके सेवन से कुछ समय पश्चात् ही भोजन देना चाहिये अन्यथा जी मिचलाने लगता है।

(६) उदरशूल—त्वक् क्वाथ मे मिश्री मिलाकर सेवन करने से वात कफ जन्य उदरशूल का शमन होता है।

(७) हिक्का—कट्फल, पुष्करमूल, सोठ, कालीमिरच, पीपलामूल और कलौजी का चूर्ण मधु मिलाकर सेवन करना हिक्का मे लाभप्रद है।

(८) उदकमेह—कट्फल, नागरमोथा, लोध्र और हरीतकी का समधु क्वाथ उदकमेह मे लाभप्रद है।

(९) हृदयरोग—गोमूत्र मे कट्फल, अदरख, दारुहल्दी, हरड और अतीस को पकाकर सेवन करने से कफजन्य हृदयरोग दूर होता है।

(१०) प्रतिश्याय—[क] कट्फल, दालचीनी और सोठ के क्वाथ के सेवन करने से प्रतिश्याय मे लाभ होता है। यह क्वाथ मुखपाक, स्वरभग, तमक श्वास, गलशोथ, आमातिसार, वहुमूत्र, गण्डमाला और गृध्रसी मे भी लाभप्रद कहा गया है।

[ख] कट्फल, पुष्करमूल, कर्कटशृङ्गी, पिप्पली और लवग का चूर्ण भी मधु के साथ सेवन करना प्रतिश्याय मे हितावह है।

(११) पार्श्वशूल—कट्फल, कर्कटशृङ्गी, देवदारु, भारगी और हरीतकी का क्वाथ पिलाने से पार्श्वशूल का शमन होता है।

(१२) कास, श्वास—[क] कट्फल चूर्ण को पान (ताम्बूल) मे रखकर सेवन करे।

[ख] कट्फल त्वक् चूर्ण और विभीतकी चूर्ण को मधु के साथ सेवन करे।

[ग] कट्फल, कर्कटशृङ्गी और पुष्करमूल के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करे।

(१३) शिर.शूल—कट्फल त्वक् और आर्द्रक का क्वाथ वनाकर सेवन करने से कफजन्य शिर शूल का शमन होता है।

(१४) अर्श—अर्श मे भी इसकी छाल का चूर्ण हितकर कहा गया है।

(१५) रक्तपित्त—कट्फल और चन्दन का चूर्ण मिश्रीयुक्त तण्डुलोदक मे मिलाकर सेवन करे। इससे श्वास, दाहयुक्त रक्तपित्त का शमन होता है।

(१६) गर्भस्थापनार्थ—कट्फल चूर्ण मे समान भाग खाड मिलाकर ६ ग्राम औषधि गोदुग्ध से मासिकधर्म प्रारम्भ होने से आठ दिन तक खिलावें। इससे गर्भाशय के दोष दूर होकर गर्भ ठहर जाता है।

(१७) वातव्याधि—कट्फल, पीपलामूल, सोठ, अजमोद, रास्ना, कालीमिर्च, पीपल का क्वाथ कर दोनो समय देने से सर्व वातरोग दूर हो जाते है।

पेटेण्ट औषधियां—शर्म वनौषधि भण्डार तथा ज्वाला आयुर्वेद भवन "वातनोल" तथा "वातोना" नामक जो मलहम वनाते है, ये कायफल, कुचला, असगन्ध, धतूरा, मोमतेल आदि मे वनाये जाते है। उक्त मलहम दर्द के स्थान पर लगाई जाने के पश्चात् सिकाई करने मे दर्द मिट जाता है। शोथयुक्त शूल पर वड के पत्तो पर थोडा मलहम चुपडकर और पत्तो को थोडा गरम कर वाध देना चाहिये।

विविध कल्पनायें

[१] कट्फलादि क्वाथ—(क) कायफल, गन्धतृण, भारङ्गी, मोथा, धनिया, वच, हरड, सोठ, पित्तपापडा, काकडासिगी जल मे उवालकर क्वाथ वना शहद हीग मिलाकर वातकफात्मक कास मे तथा गले के रोग मे, मुख शोथ मे, श्वास-हिक्का-ज्वर मे पीना चाहिए।

—चरकसहिता चि० १८

(ख) कायफल, अतीस, कमलपुष्प, कुरैया और सोठ के क्वाथ मे मधु मिलाकर पीने से पित्तातिसार दूर होता है।

—क्वाथ मणिमाला

(ग) कायफल, नागरमोथा, वच, पाठा, पुष्करमूल, जीरा, पित्तपापडा, देवदारु, छोटी हरड, काकडासिगी, पीपल, चिरायता, सोठ, भारङ्गी, इन्द्रजी, कुटकी, कचूर, रोहिष घास और धनिया ये सव समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करना।

मात्रा—२४ से ४८ ग्राम का क्वाथ करके १२० मि० ग्रा० हीग ६ ग्राम शहद और ६ ग्राम अदरख का रस डालकर पिलाना चाहिए।

उपयोग—इस क्वाथ से सन्निपात और गले के सब रोगो का शमन होता है। यह क्वाथ कफप्रकोप, स्वरभेद, हिक्का, कर्णमूल का शोथ, गले की सूजन, हनुग्रह, कफवात ज्वर, सन्निपात, खासी और गले के सब विकारो को नष्ट करता है। —वृन्द

(घ) कायफल, इन्द्रजौ, पाठा, कुटकी और नागरमोथा इन पाच द्रव्यो के क्वाथ को "पाचन क्वाथ" कहा जाता है। यह क्वाथ तीव्र पित्तज्वर मे दसवे दिन दिया जाता है।

मात्रा—४८ ग्राम। —शार्ङ्गधर सहिता

[२] कट्फलादि चूर्ण—(क) कायफल, नागरमोथा, कुटकी, कचुर, काकडासिंगी और पुष्करमूल—इन ६ द्रव्यो का चूर्ण बनाकर मधु अथवा अद्रक के रस मे मिलाकर चाटने से ज्वर नष्ट होता है तथा कुष्ठ का विशोधन करता है। इसके सेवन से कास, श्वास, अरुचि वायु, वमन और शूल तथा क्षय [धातुओ का ह्रास] आदि रोग नष्ट होते हैं। —शार्ङ्गधर सहिता

(ख) कायफल, पुष्करमूल, काकडासिंगी, नागरमोथा, शुण्ठी, मरिच, पीपल और कचूर—इन आठ द्रव्यो का पृथक् पृथक् अथवा मिलाकर चूर्ण बना ले। यह चूर्ण अद्रक रस एव मधु के साथ चाटने से कफ तथा वातव्याधिया नष्ट होती हैं। शूल, अरुचि, श्वास, कास और क्षय रोग भी नष्ट होते हे। —शार्ङ्गधर सहिता

(ग) कायफल, पुष्कर मूल, पिप्पली तथा काकडासिंगी का चूर्ण बनाकर मधु के साथ चाटने से श्वासकास एव ज्वर नष्ट होता है। कफ को नष्ट करने के लिए यह चूर्ण अतीव उत्तम है। —शार्ङ्गधर सहिता

(घ) कायफल, अण्ड की जड, काकडासिंगी, अजवायन, कलौंजी, सोठ, मिर्च और पीपल इन आठ पदार्थों को समान भाग लेकर चूर्ण करके बकरी के दूध के साथ पीने से घोर खासी युक्त भी श्वास अवश्य नष्ट हो जाता है। —धन्व० चि० विशेषाङ्क द्वितीय खण्ड

(ड) कट्फल, पुष्करमूल, त्रिकटु, यवासा और सोआ लेकर इसके चूर्ण को आर्द्रकस्वरस के अनुमान से सेवन करने मे पीनस स्वरभेद, तमक, हलीमक सन्निपात तथा अन्य कफ वायु से उत्पन्न श्वास रोग मे लाभप्रद होता है। —शालाक्यतन्त्र

[३] अवलेह—(क) कायफल, पोहकरमूल काकडासिगी, छोटी पीपल इन सबको महीन कूटकर कपडे से छानकर मधु मिला ले। यह अवलेह-खासी, दमा, ज्वर ओर कफ का नाशक है। अवलेह ४८० मि० ग्राम से १ ग्राम की मात्रा मे बालको को खासी व ज्वर मे लाभप्रद है। २ से ४ ग्राम युवा की मात्रा है। —चक्रदत्त

(ख) कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, सोठ, मिर्च, छोटी पीपल, जवासा, काला जीरा समान भाग लेकर कपडछन चूर्ण बनाकर मधु से चाटना चाहिए। इससे भयकर सन्निपात ज्वर हिचकी, दमा, खासी तथा अन्य गले के रोग दूर होते है। —चक्रदत्त

[४] कट्फलादि तैल—कायफल, बकायन, सोठ जायफल, अकरकरा लोध्र, आमाहल्दी, समुद्रखार, दारूहल्दी, फूला बादाम की मिंगी, कजा के बीज, कुलिंजन, सिरमोर, काले धतूरे का रस, आक का दूध सहेजना की छाल, गोमा का अर्क, हरीमकोय का अर्क, इमली की छाल, भागरे का रस ये सब १२-१२ ग्राम, मालकांगनी २४ ग्राम, सरसो का तेल १८० ग्राम अरण्डी का तेल ६० ग्राम इन सबको मिलाकर औटावे, जब तेलमात्र रह जाय तो छानकर रख ले। इस तेल की मालिस करने से दर्द का नामोनिशान तक नही रहता है। —स्वास्थ्य बोधामृत

[५] कट्फलारिष्ट—इसकी नवीन छाल ५ किलो जल मे पकावे। १३ किलो जल शेष रहने पर छानकर उसमे मिश्री १२ किलो, शहद ६ किलो ५०० ग्राम, धायफूल ७८० ग्राम, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची और लौंग का चूर्ण ४८-४८ ग्राम मिला ठीक-ठीक सन्धान कर २१ दिन तक सुरक्षित रखे। फिर छानकर शीशियो मे भर ले।

मात्रा—१२ से ३० ग्राम जल के साथ जिस स्त्री को गर्भधारण न होता हो उसे मासिकधर्म के उपरान्त तीन दिन दोनो समय सेवन कराने के बाद मैथुन से गर्भ स्थापना होती है। पथ्य मे केवल दूध-भात देवे।

कफदोष, पाचनदोप या वातदोष के कारण होने वाला सिरदर्द, पाचनदोष से होने वाला धातुपात, मूत्र मे सफेदी का आना, अतिसार, आध्मान आदि विकार इसके सेवन से शीघ्र दूर होते है। तिजारी आदि विपम ज्वरो मे भी यह लाभकारी है।

—धन्वन्तरि वनौषधि विशेषाक।

[६] कट्फलादि नस्य—(क) कायफल ६० ग्राम, नकछिकनी २४ ग्राम, छोटी पीपल, तुलसीपत्र, वायविडङ्ग, छोटी इलायची के वीज, कपूर ये सब १२-१२ ग्राम और देवदाली (विन्दाल डोडा) ६ ग्राम लेकर सबको कूट कपडछान करके शीशी मे भर लें।

मात्रा—१२० से २४० मि० ग्रा० तक आवश्यकता पर सुघाना।

उपयोग—शिरदर्द, जुकाम, तन्द्रा, श्वासावरोध दोष दूर होते है। —रसतन्त्रसार।

(ख) कायफल, एला, बालछड, सोठ सब का चूर्ण बनाकर नस्य देने से अर्धावभेदकादि शिरःशूल नष्ट होता है। —शालाक्यतन्त्र।

[७] कट्फलादि अञ्जन—कायफल, सैन्धव-लवण, समुद्रफेन, पिप्पली, गोमूत्र, मधु, घृत सब समान भाग लेकर महीन चूर्ण कर सबको मिलाकर शीशी मे सुरक्षित रखे। नेत्रो मे इसका अञ्जन करने से समस्त नेत्ररोग मिटते है। —सुश्रुत सहिता उ० त० १७।

अनुभूत प्रयोग—

१. जीर्ण शिरःशूलहर पाक—नया नारियल लाकर उसे इस प्रकार फोडे कि गिरी ज्यो की त्यो रहे, अथवा बाजार से निकला हुआ "खोपरा" ही वडे से बडा ले आवे। फिर उसमे चाकू से छेद कर १२५ ग्राम कायफल की छाल के चूर्ण को भर दे और नारियल की गिरी से ही छेद वन्द कर दें। फिर चार किलो दूध की कड़ाही मे उस नारिमल को डालकर दूध को औटावें और उसका मावा वना लें। अन्त मे नारियल को खरल मे या सिल पर सूक्ष्म चूर्ण कर ले। फिर मावे को १२५ ग्राम घी मे भून लें और नारियल तथा काय-फल के चूर्ण को २५० ग्राम घी मे अलग भून ले। फिर दो किलो मिश्री या चीनी की पाक योग्य चाशनी वना-कर गुलाबजल मे घोटी हुई ३ ग्राम केशर मिला दें। फिर भुनी हुई चीजे तथा १२५ ग्राम वादाम के कतरे या कल्क मिलाकर चौड़ी थाली मे जमा दें। जमने पर ४२ कतरी काट लें। १-१ कतरी सवेरे-शाम खाकर ऊपर से थोडा दूध पी ले। प्रयोग काल मे कायफल का चूर्ण सूघना भी चाहिये।

—आचार्य श्री नित्यानन्द जी शास्त्री द्वारा धन्वन्तरि सिद्ध चिकित्साक से।

२. कट्फलादि लेप—कायफल का चूर्ण १२ ग्राम गोमूत्र ३० ग्राम लेकर कायफल के चूर्ण और गोमूत्र को एक कटोरी मे रखकर आग पर पकावे, जब पक कर कुछ गाढा हो जावे तब उतार लें।

एक पतले कपडे पर गरम-गरम इस औषधि को फैलाकर जहा तक दर्द हो सुबह-शाम बाधें।

इसके व्यवहार से बालतोड़ आदि के कारण उठी हुई फुन्सी के चारो ओर का दर्द और लाली दूर हो जाती है। यदि फुन्सी मे मवाद नही आया होगा तो, वैठ जायेगी और मवाद आ गया होगा तो फूटकर बह जायेगी। —प० श्री शकरदत्त जी गौड द्वारा धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से।

३. गलरोग नाशक—कायफल, कालीमिर्च, कुल-जन, अकरकरा, सोठ १ ग्राम २४० मिलीग्राम लेकर कपडछान चूर्ण स्प्रिट मेथिलेटेड १३ औंस मे मिलाकर शीशी मे भरकर रख दे और रोजाना उसको हिलाते रहे। ७ दिन बाद छान ले। इसको फुरैरी से गले मे लगाइये। इसके लगाने से गले का दर्द, पानी या थूक निगलते समय गले का दर्द, कौआ तथा टासिलो की सूजन आदि शीघ्र ठीक होती है।

—वैद्य श्री दरवारीलाल द्वारा धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

४. शीतपित्त नाशक तैल—कायफल ६२ ग्राम, शुद्ध तिल तैल ३६० ग्राम। कायफल के चूर्ण को जल मे घिसकर चटनी बनावें, फिर तैल कढाही मे डालकर गर्म करें और औषधि का कल्क चटनी डालकर तैलविधि से तैल सिद्ध करें अर्थात् मन्दी-मन्दी आच से तैल सिद्ध करके ठडा होने पर छान लेवें।

आवश्यकतानुसार शीतपित्त के रोगी के शरीर पर लगाने से तत्क्षण लाभ होगा।

—वैद्य श्री प्रहलादराय शर्मा द्वारा
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक भाग ४ से।

५. कण्ठामृत—कट्फल (कायफल) ४८० ग्राम। यह छाल उत्तम और नवीन हो।

छाल को धूल रहित स्वच्छ करके स्वच्छ किये खरल या लोहपात्र मे मोटा-मोटा कूट लें। तदनु स्वच्छ कलईदार पात्र मे डालकर ऊपर से इसमे ८ किलो पानी डालकर रात्रि भर पडा रहने दें। दूसरे दिन इसका क्वाथ करें। जब १ किलो क्वाथ शेष रहे तब उतार कर छान लें। तदनु इस वस्त्रपूत क्वाथ को एक कलईदार पतीली मे डालकर मन्द अग्नि द्वारा शनै-शनै पकाए। जबे चतुर्थांश शेष रहे तव इसे नीचे उतार लें और शीतल होने पर इसमे मधु या ग्लेसरीन १२० ग्राम डालकर मिलाये। जब दोनो एकीभूत हो जायें तव शीशी मे डाल दें और ऊपर से मद्यसार (रेक्टीफाइड स्प्रिट) २४ ग्राम मे सत पोदीना २ ग्राम घोल ले। जब दोनों घुल जाय तब शीशी मे डालकर मिला दे।

यथाविधि गले के भीतर दिन मे ३-४ बार लगाने से कण्ठशालूक, उपजिह्विका, कण्ठशोथ, रक्तिमा, पीडा आदि समस्त गलरोग शान्त होते हैं।

उक्त रोगो मे पीडित आबाल वृद्ध सब को खाने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। १४-२० बूद तक मन्दोष्ण जल मे मिलाकर दिन भर मे ३-४ बार दिया जाता है। इससे इच्छित लाभ होता है।

यह भयकर कास वेग को शान्त करता है। श्वासवेगोद्भव कष्ट को दूर करता है। इसके प्रयोग से पाचकाग्नि प्रदीप्त होती हैं। यक्ष्मा के रोगियो को जब कास द्वारा झागदार तरल श्लेष्मस्राव होता हो तब इसके प्रयोग से आश्चर्यकर लाभ होता है।

—कविराज श्री हरदयाल जी द्वारा
धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से।

६. योनिसंकोचक कट्फलादि धूप—कट्फल, केशर, गेरू, जूही का फूल, कूठ, सफेद चन्दन का बुरादा प्रत्येक १०-१० ग्राम। सभी वस्तुओ को कूट-कपडछन कर रख लें। कण्डे की धीमी आग पर थोडी सी औषधि डालकर धूनी देने से स्त्री की ढीली योनि कस जाती है और उसकी दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है।

—प्रयोग रत्नावली।

७. शिरःशूलादि नस्य—कट्फल ५० ग्राम, छोटी पीपल १० ग्राम, तुलसीपत्र १० ग्राम, बायविडंग १० ग्राम, इलायची के बीज १० ग्राम कपूर १० ग्राम लेकर खरल मे डालकर पीस कपडछन कर ले। १२५-२५० मि० ग्रा० नासिका मे सूघने से छीके आकर मस्तिष्क हलका हो जाता है। जिससे शिर शूल भी ठीक हो जाता है।

—वैद्य श्री मुन्नालाल गुप्त द्वारा
धन्व० अनुभूत योगाङ्क से।

८. श्रेष्ठ नस्य—कट्फल १ कि० ग्रा०, आरने कडे की राख १ किलो, परमेगनेट आफ पोटास ६० ग्राम। इन सबको बारीक पीसकर रखले। यह बहुत श्रेष्ठ नस्य है। तन्द्रा, उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, शिर शूल आदि पर उपयोग करे, बहुत लाभकारी सिद्ध हुई है।

—वैद्य श्री पूर्णानन्द जी व्यास द्वारा
धन्व० गु० सि० प्रयोगाङ्क से।

९. गृध्रसीरोग मे कट्फल का प्रयोग—आधा किलो कायफल को कूटकर तार की छलनी मे छान लें। बाद १ किलो कडवा तेल कढाई मे डालकर चूल्हे पर मन्द-मन्द आच से पकावे और १२-१२ ग्राम कायफल के चूर्ण को डालते जाय। इस प्रकार ३-४ घन्टे मे सब चूर्ण को जला दे। बाद मे इस तेल को कपडे से छान लें। जब कपडा स्पर्श करने लायक ठडा हो जाय तब दोनों हाथो से दबाकर तेल को निचोड ले। बाद मे कपडे के किट्टे को चिकनी हाडी मे भरकर रख छोडे और तेल को भी चिकनी हाडी मे भर दे। जब तेल का मल हाडी

के तल भाग मे बैठ जाय, तब नियरे हुए तेल को बोतल मे भरकर रख छोडे और हाडी की गाद को उसी किट्ट मे मिला दें। जिस अग मे जहा भी पीड़ा हो उस अग पर दो घन्टे तक नौकर से यह तेल मलवायें। परन्तु सुलगे हुए कोयले पास रक्खे रहे। उन पर अपने हाथो को गर्म कर करके नौकर मालिश करे। दो घन्टे बाद उस हाडी के किट्टे को कढाई मे गर्म करके कपडे की पोटली बना ले। उस पोटली से धीरे-धीरे अग को सेके। जब किट्ट सहने योग्य गरम रहे, तब उसी कपडे पर उसे बिछाकर उस अङ्ग के ऊपर बाध दे। इस प्रकार रोज तेल से मालिश करना और किट्टे से सेकना चाहिये। उस किट्टे को फेंकने की कोई आवश्यकता नही है। उसी से रोज सेका करे। इस कायफल के तेल मे थोडी अफीम जला ली जाय तो और भी अच्छा है साथ मे ही यह घृत भी उपयोग मे लावें। आधा किलो कायफल मे ४ किलो पानी डालकर क्वाथ कर लें। जब जलते-जलते २ कि० रह जाय तब क्वाथ को छानकर २ किलो घी मे मिलाकर मन्द-मन्द आंच से घी को पकावें, जब क्वाथ जल जाय तब घी को छान कर रख छोडे। इस घी का स्वाद वैसा ही बना रहता है। ऊपर की दवा के साथ इस घी को रोगी खाया करे। यदि अधिक खाने की इच्छा नही हो तो २४ से ३६ ग्राम तक अवश्य ही खाया करें। यह भी बहुत उत्तम चीज है। इसके साथ योगराज गूगल भी खाया करें। ३-४ दिन मे ही चमत्कार दीख पडता है। —रसायनाचार्य श्री श्यामसुन्दराचार्य

१०. कफनाशक क्वाथ—कायफल की छाल, भारगीमूल, कटेली की जड, आक के मूल की छाल, काकडासिंगी, मुलहठी, हरड बहेडा, अडूसा के पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और पुष्करमूल, इन १३ औषधियो को २४-२४ ग्राम मिला जोकुट कर ३ किलो १२० ग्राम जल मे मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल रहने पर उतारकर छान लेवे। फिर शीतल होने पर २४० ग्राम शहद मिलाकर बोतल मे भर लेवें।

मात्रा—३०-३० गाम दिन मे ३-४ बार ३-३ घटे बाद देते रहे।

उपयोग—इस क्वाथ के सेवन से कफ जल्दी पक जाता है, और कण्ठ मे से आवाज साफ निकलने लगती है। कफ, कास, तमक श्वास, पसली का शूल, कफ ज्वर, न्युमोनिया, एन्फ्लुएञ्जा, जुकाम और फुफ्फुसशोथ आदि रोगो मे जहा कफ का जमाव अधिक होता है, वहा इस क्वाथ के सेवन से सत्वर लाभ पहुचता है।

—रसतन्त्रसार द्वितीय खण्ड।

११. कट्फल पर विशेष अनुभव—(१) कायफल एक किलोग्राम, पानी १६ लीटर, मधु ५०० ग्राम, फिटकरी फूला २५ ग्राम, तवे की काजल १२ ग्राम ले। चूर्ण द्रव्यो का सूक्ष्म-श्लक्ष्ण वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। कायफल को पानी मे डालकर क्वाथ बनावे, चार लीटर जल शेष रहने पर छान ले और फिर इतना औटावें कि एक लीटर जल बाकी रहे तो इस को मलकर छान लें। तत्पश्चात् इस मे शेष द्रव्य मिलाकर एकजीव कर ले।

प्रयोग विधि—रुई की फुरैरी से यह औषधि गले के भीतर प्रतिदिन लगावे।

लाभ—यह गले के रोगो मे लाभप्रद है। इसके लगाने से गले की सूजन आदि बीमारी दूर होती है।

२—कायफल की छाल को सूक्ष्म पीस कर वस्त्रपूत कर ले। सुरक्षित रखना। जब प्रतिश्याय-पीनस (नजला व जुकाम) मे कफ मस्तिष्क मे सचय होने से सिर भारी हो जाता है और तीव्र वेदना होने लगती है, तब इस चूर्ण की चुटकी भरकर दोनो नकुओं मे सुंघाने से थोडी देर मे ही छीके आना प्रारम्भ हो जाती हैं। सब कफज विकार निकलने से सिर हल्का हो जाता है। इस के अतिरिक्त मूर्च्छित रोगी की नाक मे इस चूर्ण को जोर से फूकने से थोड़ी देर मे ही छीको के आने से रोगी होश मे आ जाता है। शीघ्र प्रभावी नस्य है।

कुछ और भी—इस चूर्ण की ३-४ ग्राम की मात्रा मे खाड के शर्बत के साथ प्रसूत ज्वर मे देने से चमत्कारी लाभ दीखता है। प्रथम मात्रा से ही तीव्र ज्वर शमन हो जाता है। सन्निपात के उपद्रव दूर हो जाते हैं। २-३ मात्राये ही पर्याप्त हैं।

—वैद्य मोहरसिंह आर्य, मिसरी, भिवानी।

कटुका

Picrorhiza kurroa Royle ex Benth.

N. o.--SCROPHULARIACEAE



सेण्ट्रल काउन्सिल फौर रिसर्च इन आयुर्वेद एण्ड सिद्ध, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित चिकित्सा-प्रजाति-वानस्पतिक अनुसन्धान पत्रिका के वौल्यूम IV न० ३-४ सितम्बर, दिसम्बर १९८३ के अङ्क मे गढवाल क्षेत्रीय हिमालय के उच्च शृङ्गो पर उगने वाली वनौषधियो की खोज सम्बन्धी लेख मे यूनीवर्सिटी आफ गढवाल श्रीनगर पिन २४६१७४ के वाटनी विभाग के गौड, सेमवाल और तिवारी के लेख मे मन्दाकिनी नदी के उद्‌गम क्षेत्र तुगनाथ जिसकी ऊचाई ३५०० मीटर है वहा कुटकी को उगता हुआ बतलाया गया है। अभी जनपद आयुर्वेद सम्मेलन की स्वर्ण-जयन्ती समारोह के अवसर पर केन्द्रीय सिद्धायुर्वेदानुसन्धान परिषद् की ओर से जो चित्रप्रदर्शनी लगाई गयी थी उसमे भी कुटकी के गुल्म को दिखलाया गया था। हिमालय क्षेत्र मे कही भी ९ हजार से १५००० हजार फीट के ऊचे इलाको मे नीलाभ पुष्पो से युक्त यह पाई जाती है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसे अशोकरोहिणी, उल्लक, कटुरोहिणी, कटुकारोहिणी, कट्वी, तिक्तकरोहिणी, तिक्ता आदि नामो से पुकारा जाता है। इस विशेपाक के लेखक और सम्पादक श्री पारीक ने अष्टाग हृदय सूत्रस्थान अध्याय १५ का एक वाक्य उद्‌धृत किया है, जिसमे द्वितिक्ता लिखकर उसके दो भेद होना स्वीकार किया गया है। ठाकुर बलवन्तसिह और कृष्णचन्द्र चुनेकर ने ग्लासरी (चौखम्बा सस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी प्रकाशन) मे उससे तिक्ता तथा काकतिक्ता इन दो का ग्रहण किया है। तिक्ता तो कटुका है ही काकतिक्ता को उन्होने शार्ङ्गेष्टा या शार्ङ्गष्टा का पर्याय मानकर उसकी पहचान फाइसेलिस मिनिमा लिन (काकनज) या कार्डियोस्पर्मम हैलीकैकावम लिन (कर्णस्फोटा) जो सैपिण्डेसी का पादप है, से की है।

तिक्ता शब्द का उपयोग चरकसहिता मे चिकित्सास्थान अध्याय ३ तथा सिद्धिस्थान अ० ३ मे हुआ है जब कि कटुका और कटुकरोहिणी आदि का अनेक बार हुआ हे।

तिक्तरसप्रधान (बिटर) इस द्रव्य को कटुका, कटुरोहिणी कैसे पड गया क्योकि कटुरस तो चरपरा (पजेंट) होता है तथा कुटकी तो सम्पूर्णतया तिक्त ही हे। कडुआ शब्द लोकभाषा मे बिटर का पर्याय बनकर रह गया है जब कि उसे तीता (तिक्त) कहना चाहिए था।

व्रणरोपण तैल के निर्माण मे (सु० स० चि० अ० २) विडग, कटुका पथ्या (हरड) और करजिका तथा गुडूची का उल्लेख मजीठ, हल्दी, भार्गी, त्रिफला और तुत्थ के साथ हुआ है। ऐसा लगता हे कि सुश्रुत को इसकी ऐण्टीबायोटिक ऐक्टिविटी का पता चल गया था। आयुर्वेद के शोधकर्त्ताओ को विडग हरीतकी, करजिका और गुडूची तथा तिक्ता मे कितनी जीवाणुनाशकता है इस पर शोध करनी चाहिए।

प्राचीन शोधको का कमाल देखिये—वे कुटकी को ढूढने के लिए १५००० फीट तक हिमालय पर चढ़ गये और मुक्ता की खोज मे अपनी जान की परवाह बिना किये सागर की अटल गहराइयो में उतर गये। आश्चर्य यह कि इन दोनो मे उन्होने हृद्य (हृदय को बलवान् बनाने वाला) गुण भी ढूढ निकाला।

मेरा अपना विश्वास है कि कुटकी का आमदोषनिवारण गुण पैंक्रियाज (अग्न्याशय) की क्रिया को उत्तेजित कर डायबिटीज मेलाइटस (मधुमेह) मे भी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। गवेषको को इस दिशा मे भी कार्य करने की महती आवश्यकता है।

—र० प्र० त्रिवेदी।

चरकसंहिता के तिक्त स्कन्ध मे वर्णित कटुका (कटुकी) को भेदनीय के अन्तर्गत कहा गया है। भेदक द्रव्य महास्रोतस की सभी प्रक्रियायो को प्रभावित करते हैं। ये द्रव्य निम्नाङ्कित क्रियायें सम्पादित करते हैं—

१ पाचन-क्रिया पर विघात।
२ शोषण-क्रिया पर विघात।
३ आत की निर्गमन क्रिया पर प्रभाव।
४ आत की कलाओ से रस नि स्यन्दन कराना।
५ वेगपूर्वक मल को निकालना, आदि।

इन क्रियाओ के द्वारा बद्ध किंवा अबद्ध मल पतला होकर बाहर निकल जाता है—

"भेदन पिण्डितमलाना द्रवीकृत्य
बहि सारणं, तस्मै हितम्"
—योगीन्द्रनाथ।

भगवान् चरक ने भेदनीय दश द्रव्यों को प्राथमिकता दी है। आचार्य शार्ङ्गधर ने इनमे पित्तविरेचनोत्तम होने से कटुका को श्रेष्ठतम कहा है—

मलादिकमबद्ध च बद्ध वा पिण्डित मलै.।
भित्वाध पातयति तद् भेदन कटुकी यथा॥
—शा० सं० प्र० ४।

बद्ध विबद्ध शुष्क ग्रन्थित च। तत्र शुष्क पुरीषविषय, ग्रथित दोषादिविषयम्। तथा अबद्ध, द्रवरूपमपि द्विविध—एक पुरीषविषयम्, अन्यन्मलादिकमिति। मलोऽत्रदोष। आदिग्रहणात् रूक्षदूषितादीनामपि ग्रहणम्। भित्त्वेति तत् पुरीषं भित्त्वा विदार्याध पातयति 'द्रव्य' इति शेष। —आढमल्ल।

एतावता कटुका यकृत् की एव उसके द्वारा पित्त की भी शुद्धि कर इन्द्रियाधिष्ठान मे होने वाली सर्वजनप्रत्यक्ष उत्तेजना को शान्त करने वाली होने से अन्य भेदन द्रव्यो की अपेक्षा अधिक समादृत है।

जो द्रव्य शरीर मे मेद एवं कफ को सुखाकर शरीर को कृश करते हैं, लेखनीय कहे जाते हैं—"लेखनं कर्शन, तस्मै हितं लेखनीयम्"—योगेन्द्र। दशेमानि लेखनीयानि मे कटुका भी एक है। इसके अतिरिक्त कटुका स्तन्यशोधन भी है। देखे चरकसहिता सूत्रस्थान अध्याय चार।

महर्षि सुश्रुत ने पिप्पल्यादि, पटोलादि एवं मुस्तादि गणो मे कटुका को समाविष्ट किया है। वातकफमेद पीनसगुल्म ज्वरशूल दुर्नामशामक पिप्पल्यादि गण को वत्सकादिगण नाम देकर आचार्य वाग्भट ने वर्णन किया है। पटोलादि तथा मुस्तादिगण नाम देकर आचार्य वाग्भट ने वर्णन किया है। पटोलादि तथा मुस्तादिगण इन्ही नामो से वर्णित हैं—

पटोलकटुरोहिणी चन्दन
मधुस्रवगुडूचिपाठान्वितम्।
निहन्ति कफपित्तकुष्ठ ज्वरान्
विष वमिरोचक कामलाम्।
—अ० हृ० सू० १५/१५।

मुस्तावचाग्निद्विनिशाद्वितिक्ता
भल्लातपाठात्रिफलाविषाख्या।
कुष्ठं त्रुटी हैमवती च योनि—
स्तन्यामयघ्नामलपाचनाश्च॥
—अ० हृ० सू० १५/२८।

तिक्ताकुल (स्क्राफुलेरिएसी–Scrophulariaceae) की मात्र दो औषधियो मे यह प्रथम है। भावप्रकाशनिघण्टु के हरीतक्यादि वर्ग मे इसका वर्णन मिलता है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्य-गुण विज्ञान मे रेचन द्रव्यो को चतुर्विध व्यक्त किया है—मृदुविरेचन, सुखविरेचन, तीक्ष्णविरेचन तथा पित्तविरेचन। पित्तविरेचन द्रव्यो मे कटुका, अम्लपर्णी तथा कुमारी का वर्णन किया है। इनमे कटुका को प्राथमिकता दी है।

नाम—

संस्कृत—कटुका, तिक्ता, कटुरोहिणी (आर्षग्रन्थो मे यह नाम बाहुल्येन व्यवहृत हुआ है), रोहिणी,



कटुका [Picrorhiza kurroa]

विभिन्न नाम : संस्कृत–कटुका, तिक्ता । हिन्दी–कुटकी । मराठी–कटुकी । गुजराती–कडू । बंगला–कट्की । अंग्रेजी–पिक्रोराइजा । लैटिन–पिक्रोराइजा कूरो ।

प्राप्ति स्थान : कश्मीर, सिक्किम, हिमालय प्रदेश ।

उपयोगी अङ्ग : मूल (भौतिक काण्ड) ।

दोषशमन : कफपित्तहर ।

रोगोपयोग : ज्वर, कामला, कृमि आदि ।

मुख्य योग : आरोग्यवर्धिनी वटी, कटुकादि लौह, कटुकादि घृत ।

काण्डरुहा (अमृता की तरह काण्ड से उत्पन्न होने वाली), मत्स्यशकला (भौमिक काण्ड की त्वक् मछली की त्वचा के समान होने से), चक्रागी (अगूठी जैसा चक्र होने से), कृष्णमेदा (तोडने पर भीतर कृष्णाभ दिखलाई देने से), शतपर्वा (ग्रन्थि बहुल होने से)—

तिक्ता कट्वी मत्स्यविन्ना कटुका शकुलादनी ।
शतपर्वा कृष्णमेदा त्वरिष्टा कटुरोहिणी ॥
—अभिधान रत्नमाला ४ ।

हिन्दी—कुटकी, कटुकी, कटुका ।
मराठी—कटुकी, बालकडू, केदार कडू ।
गुजराती—कडू ।
बंगला—कट्की ।
पंजाबी—कौड, करूँ ।
तेलगु—कुडुग-रोहिणी ।
तामिल— „
कन्नड़—केदार कुटकी, कटुक रोहिणी ।
राजस्थानी—कुटक ।
फारसी---खरबके हिन्दी, सर्वकेसियाह ।
अरबी—खरबके हिन्दी, सर्वक अस्वद ।
अग्रेजी—पिक्रोराइजा ।
लैटिन—पिक्रोराइजा, कूरोआ रॉयल ऐक्स वेन्थ ।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय प्रदेश मे कश्मीर से सिक्कम तक ७–१५ हजार फीट की ऊचाई पर उत्पन्न होती है—

कटुका जायते हेमाधित्यकासु विशेपत ।
—प्रियनिघण्टु ।

यह जम्मू, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड गढवाल, कुमायू मे विशेपत उपलब्ध होती है। यूरोप मे पायरेलिस, जूटा व ओसजिस मे मिलती है। यह एशियामाइनर मे भी पाई जाती है।

रासायनिक सगठन—इसके मूल मे अत्यन्त तिक्त (Bitter) पिक्रोराइजिन (Picrorhizin) नामक मणिभीय स्वरूप का ग्लाइकोसाइड २६ ६% होता है। जलापघटन (Hydrolysis) से वियोजित (decomposed) होने पर यह पिक्रोरहाइजेटिन (Picrorhizetin) एव डेक्स्ट्रोज (Desctrose) मे विच्छिन्न होता है। उक्त ग्लाइकोसाइड जल, अल्कोहल् (९०%) एसिटोन एव एथिल ऐसिटेड मे तो सुविलेय होता है, किन्तु क्लोरोफार्म तथा बेजीन ईथर मे नही घुलता। इसके अतिरिक्त कुटकीन (Kutkin), डी-मैनिटाल, वैनिलिक अम्ल, कुटकिओल, कुटकी-स्टिरोल तथा एक सुगन्धित तत्व पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका छोटा बहुवर्षायु, प्राय रोमश क्षुप होता है। मूलस्तम्भ (भौमिक काण्ड) दृढ, ६–१० इच लम्बा, छोटी अगुलि जितना स्थूल, विशीर्ण पत्राधारो से आवृत, सर्पणशील होता है। पत्र—२–४ इच लम्बे प्राय मूलीय, स्रुवाकार, गोलाग्र, आरावत् दन्तुर, पत्राधार सकीर्ण होकर एक सपक्ष कोपीय पत्रवृन्त से लगा रहता है। पुष्पध्वज–ऊपर की ओर उठा हुआ, दृढ, पत्तियो से लम्बा, नग्न या कतिपय कोणपुष्पको से युक्त होता है। पुष्पमजरी—२–४ इञ्च लम्बी सघन होती हैं जिसमे सफेद या नीले बैंजनी अनेक पुष्प लगे रहते हैं। कोणपुष्पक–वाह्यकोश के बराबर, आयताकार या भालाकार होते है। फल—½ इच लम्बा अण्डाकार यव सदृश होता है। जून, जौलाई मे पुष्प तथा अगस्त सितम्बर मे फल लगते है।

बाजार मे कुटकी के १–२ इञ्च (२५-३० मि०-मी०) दीर्घ, खुरदरे, वर्तुल, नलिकाकार मुडे हुये टुकडे मिलते है, इसकी बहिस्त्वक् अत्यन्त पतली इधर-उधर बिखरी हुई खाकस्तरी भूरे रग की होती है। इस पर छोटी-छोटी चक्राकार गाठे तथा इस पर मूल व पत्रो के अवशेप चिन्ह मिलते है। पूर्णतया सूख जाने पर ये वृत्ताकार चिन्ह झुर्रीदार हो जाते है। यह अत्यन्त भगुर (Brittle) तथा हल्की होती है। किन्तु क्वचित् वातावरण की आर्द्रता पाकर यह कुछ दृढ सी हो जाती है। इसे तोडने पर टूटे हुए तल कृष्ण वर्ण के दिखाई देते है। इसमे एक विशेप प्रकार की गन्ध होती है। इसका स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है—

"तिक्तोत्तमा स्याद् कटुका" —बृ० दी० निघण्टु ।

इसका व्यत्यस्त—छेदन करने पर निम्न भाग दिखाई देते है—

१ बाह्य त्वक्—खाकस्तरी भूरे रग का १ मि०-मी० स्थूल होता है।

२ अन्तस्त्वक्—गहरे भूरे रग का २–४ मि०मी० होता है।

३ काष्ठ भाग (Woody heart)—यह श्वेताभ होता है, जिसमे कृष्ण वर्ण की पाच रेखाये दिखाई देती है।

४ आभ्यन्तर भाग (सार भाग)—यह मज्जा का मध्य भाग है, जो गहरे भूरे कृष्णाभ रग का दिखाई देता है।

इसी प्रकार अनुलम्ब छेदन करने पर भी उक्त अश दिखाई पडते है, किन्तु इनका रुख भिन्न होता है।

सग्रह—इसके पौधे जब दो से पाच वर्ष तक की आयु के होते है, तो इनकी जडो को खोदकर सग्रह किया जाता है।

इसे सग्रह करने का समय मई से अक्टूबर तक होता है। बाद मे भी इसका सग्रह किया जा सकता है, किन्तु भूमि के कठिन हो जाने से खोदने मे असुविधा हो जाती है।

भेद—यूनानी ग्रन्थो मे वर्णित विवरणो के आधार पर पडित प्रवर भागीरथ जी स्वामी ने तथा आयुर्वेद सूरि कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने कुटकी के दो भेदो का (काली एव सफेद) वर्णन किया है। इसका अग्रेजी नाम हेलिबोर (सफेद या देसी कुटकी) तथा ब्लेक हेलिबोर (काली कुटकी) कहा है। हेलिबोर को फारसी मे खर्बक कहा गया है यह एक प्रसिद्ध विषैली औषधि, है जिसका ज्ञान यूरोप मे अति प्राचीन काल से था। हेलिबोर नाइ-जर नामक वनौषधि मध्य एव दक्षिण यूरोप का आदि-वासी पौधा है। इसके भौमिक काड एव मूल को हेलि-बोर कहा जाता है। विषैले स्वभाव के कारण ही इसका हेलिबोर नाम रखा गया है— हेलीन (Helein)–मृत्यु कारक, बोर (Bore)– आहार। वत्सनाभ कुल की अन्य अनेक वनौषधि के समान इसके पुष्प भी लुभावने होते है। ये पुष्प क्रिस्मस के दिनो मे पुष्पित होते हे सुतरा इसे ही क्रिस्मस रोज भी कहते है। श्री भागीरथ जी ने "नकली कुटकी" के नाम से जो वर्णन किया है उसका अग्रेजी नाम क्रिसमस रोज दिया है ऐसे विवरण भ्रम उत्पन्न कर देते है।

यूरोप मे ही वेराट्रम एल्बम (Veratrum Album) नामक एक पलाण्डुकुल की भी औषधि पाई जाती है इसे सीमित ज्ञान वाले ह्वाइट (श्वेत) हेलिबोर कह देते है। किन्तु इन दोनो मे बहुत अन्तर है। हेलिबोर हृदयोत्तेजक एव हृद्बल्य है जबकि वेराट्रम हृदयावसादक। इसी परम्परा के आधार पर खर्बक स्याह तथा खर्बक सफेद के नाम से भारतीय यूनानी निघन्टुकारो ने वर्णन कर दिया है। इन्होने ही भारतीय खर्बक के नाम से भी एक तीसरे भेद का वर्णन किया है जिसे कुटकी कह कर भी पुकारा गया है। और इसके भी खर्बक की भाति स्याह एव सफेद के नाम से भेद किये है। इसी आधार से अन्य लेखको ने कटुकी के काली एव सफेद के नाम से भेद कर वर्णन प्रस्तुत किया है। एतावता यह सिद्ध होता है कि खर्बक एव कुटकी दो पृथक् द्रव्य है, इनमे खर्बक विषैला है जबकि कुटकी विषैली नही होती। इसके अतिरिक्त कुटकी के श्वेत एव कृष्ण भेद करना भी उपयुक्त नही है। यह सम्पूर्ण तथ्य अधिकारी विज्ञ आयुर्वेदाचार्य डा० श्री राममुशीलसिह के एक लेख (सचित्र आयुर्वेद अगस्त, १९६६) के आधार पर प्रस्तुत किया गया। विद्वान् लेखक के ये शब्द दिशा बोध कराने हेतु पर्याप्त सिद्ध होगे—"कटुका का उल्लेख एव प्रयोग प्रचुरता से आयुर्वेदीय साहित्य एव चिकित्सा मे किया जाता रहा है। इसमे न तो विषाक्त प्रभाव के पाये जाने की रिपोर्ट किसी ने की है और न इसकी किसी अन्य जाति या भेद का प्रमाण मिलता है, जिससे कुटकी स्याह एव कुटकी सफेद की प्राप्ति होती है॥ कुटकी केवल एक है, जिसके स्वरूप विनिश्चय मे कोई भ्रम नही है। इसके लिए यूनानी निघण्टुकारो द्वारा दिया गया स्याह एव सफेद विशेषण असगत एव अतथ्य-पूर्ण हे।

परीक्षण—असली द्रव्य को पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि उसमे मिलाये जाने वाले अन्य द्रव्यो

का भी आकृति परिचय हो। ऊपर जिस खर्वक को कटुका से भिन्न द्रव्य होने का वर्णन किया गया है, इस खर्वक के टुकडे २५–७५ मि० मी० लम्बे तथा ६ मि० मी० से कम स्थूल होते है। इनका बाहरी भाग स्निग्ध हल्के भूरे भस्म वर्ण युक्त है। टूटे हुये उपमूलो से चिन्हांकित होता है। ये टुकडे बहुत हल्के होते हैं, अगुलियो के नखो के दबाने पर दब जाते है। तोडने पर भीतर से भूरे दिखाई देते है। अत इनकी भलीभाति पहचान कर लेनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त त्रायमाण (Gentiana Kurroa) भी बाहरी रचना प्राय समान होने के कारण कटुका मे मिला दी जाती है। इनके व्यत्यस्त छेदन से दोनो मे अन्तर स्पष्ट हो जाता है। त्रायमाणा मे रसनलिकाओ (Vesseles) के कोष्ठावरणो की वृद्धि से उत्पन्न मोटाई चक्राकृति (Annular) मोटी रेखाकार होती है, किन्तु कुटकी मे यह मोटाई बिन्दुयुक्त होती है। कटुका मूल के मध्य मे स्थित मज्जा कोष्ठ बिन्दुमय आवरण युक्त होते हैं किन्तु त्रायमाण मे ये आवरण नही होते है। त्रायमाण और कटुका दोनो प्रतिनिधि रूप मे मिलाये भी जाते है किन्तु दोनो के गुणो मे भिन्नता है। डा० श्री गगासहाय ने त्रायमाणा को कटुका के प्रभेदो मे वर्णित किया है। भविष्य मे त्रायमाणा के वर्णन मे इन तथ्यो पर विचार किया जायेगा।

इसी प्रसग मे यह वर्णन कर देना उपयुक्त समझता हूँ कि स्थान भेद से भी द्रव्यो के गुणो मे न्यूनाधिक्य हो जाता है। बहुत सी बार समुचित लाभ से वचित रहने मे यह भी कारण बन जाता है। आयुर्वेदाचार्य डा० श्री सत्यनारायण जी के ये उद्गार ध्यान देने योग्य हैं— "कटुका हिमालय पर्वत पर दश हजार से अधिक फुट की ऊचाई पर मिलती है जहा पर किसी अधिकृत वनस्पति शास्त्र विशेषज्ञ (Botanist) की देख-रेख मे उत्पादन कर्म नही होता और न वहा से पसारियो के यहा विशुद्ध रूप मे वितरण की ही व्यवस्था है। परिणाम यह होता है कि इसके बदले ८ हजार फुट की ऊचाई पर उत्पन्न होने वाली (Gentian) जाति के पौधे की जड (जो स्वाद गुण-धर्म में कटुका के तुल्य है केवल हृदयोत्तेजक गुण को छोड) हमारे पसारियो की बोरियो मे भरकर आती है। जिसमे कटुका के गुण के विपरीत हृदयावसादक गुण धारण करने वाली जड को ही खरीद कर हमे रोगियो को देने को बाध्य होना पडता है। यह दार्जिलिंग की विद्यार्थी कालीन वानस्पतिक अनुसन्धान यात्रा का मेरा निजी अनुभव है।

—धन्वन्तरि जून १९६९।

यही बात "वनौषधि-दर्शिका" नामक पुस्तिका के विद्वान् लेखक श्री ठा० बलवन्तसिंह एम० एस-सी० ने भी कही है—

चकरोता तथा देवबन मे प्राय ३-४ पत्तियो से युक्त एक वनस्पति होती है जिसके मूल रस तथा आकार मे कटुका मूल के सदृश होते हैं परन्तु वास्तविक कुटकी (Picrorhiza Kurroa) जो इसी वर्ग की वनस्पति है हिमालय मे अधिक ऊचाई पर पाई जाती है।

रस—तिक्त (अतीव)।

गुण—रूक्ष, लघु, खर।

वीर्य—शीत।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—कफपित्तहर।

प्रयोज्य अङ्ग—मूल (भौमिक काण्ड)—

अन्तर्भूमिक काण्ड तु तस्या रोगेषु युज्यते।

—प्रियनिघण्टु।

मात्रा—क्वाथ–४०–६० मि० लि०।

चूर्ण–० ५–१ ग्राम (कटु पौष्टिक हेतु)।

३–६ ग्राम रेचनार्थ।

कटुपौष्टिक किंवा तिक्तौषधियों के गुण-कर्म— तिक्तौषधिया रसनेन्द्रिय पर उत्तेजक प्रभाव करके प्रत्याक्षिप्त क्रिया द्वारा लाला एव आमाशयिक स्राव मे वृद्धि करती हैं। आमाशय पर इनका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही होता। वास्तव मे तिक्त स्वाद का स्वादांकुरो पर उत्तेजक प्रभाव होता है, जिस से अप्रत्यक्षतया आमाशयस्थ रसस्रावी ग्रन्थिया भी प्रभावित होती हैं। परिणामत क्षुधावृद्धि तथा पाचन-क्रिया मे सहायता

होती है। आमाशयिक किण्वो की उत्पत्ति पर कोई प्रभाव नही होता, यद्यपि आमाशयिक रस की वृद्धि होने से अग्न्याशयिक रस की उत्पत्ति मे उत्तेजना अवश्य मिलती है। अतएव तिक्तौषधियो का प्रयोग अग्निदीपन तथा क्षुधावर्धन प्रभाव के लिए किया जाता है। इनके साथ सुरभित औषधियो (Aromatics) तथा अलकोहल के यौगिको का सयोग कर देने से इनकी क्रियाशीलता तीव्रतर हो जाती है। किन्तु अधिक मात्रा अथवा अधिक काल पर्यन्त इन के सेवन से उलटा परिणाम होने की आशका रहती है, जिससे आमाशयिक रस मे न्यूनता तथा पाचन सम्बन्धी विकृतिया हो सकती है।

—पाश्चात्य द्रव्य-गुण विज्ञान।

दर्पनाशक—कतीरा, गोघृत।

शोधन—कटुकीमुष्णदुग्धेन प्रक्षाल्या ग्राहयेदपि।

दूध से धोने मात्र से इसकी शुद्धि हो जाती है।

गुण-धर्म—

कटुका कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघु।
भेदनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा॥
प्रमेह श्वासकासास्र दाहकुष्ठ क्रमिप्रणुत्॥

—भा० प्र० नि०।

कटुकी कटुका पाके तिक्ता रूक्षा सरा लघु।
हिमा हन्ति क्रमि श्वासदाहपित्तकफज्वरान्॥

—म० विनोद निघण्टु।

कटुका पित्तजित्तिक्ता कटु शीतास्रदाहजित्।
बलासारोचकान् हन्ति विषमज्वर नाशिनी॥

—ध० नि०।

कटुकातिकटुस्तिक्ता शीतपिसास्रदोपजित्।
बलासारोचक श्वास ज्वरह्रे चनी च सा॥

—राज० नि०।

कटुका तु सरा रूक्षा कफपित्त ज्वरापहा।

—राजवल्लभ।

'गणे' तु कामलाघ्नीति विषमज्वरहृत् 'धने'।
क्षयहृत् 'कैयदेवे' च सप्रोक्ता त्रिषजा वरै॥

—नि० शिरोमणि।

कटुका तु रसे तिक्ता वीर्योष्णा मेदनी सरा।
कफपित्तहरी वह्नि वर्धनी पित्तरेचनी॥
ज्वरे रक्तविकारेषु कुष्ठे क्रिमिगदे तथा।
यकृद्रोगे कामलाया विबन्धे तु प्रशस्यते॥

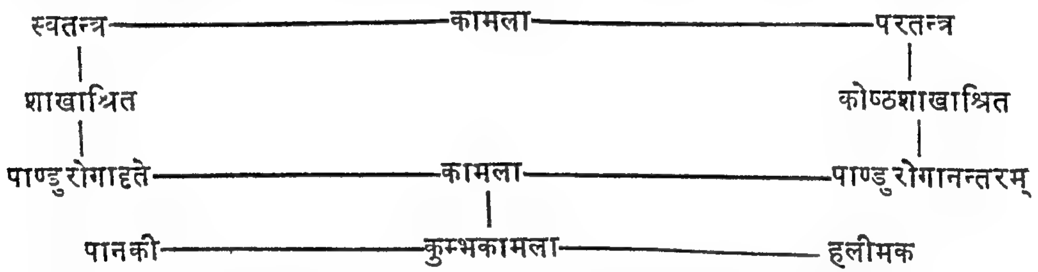
चरक ने शकुलादनी शब्द से कटुका के गुण—कफपित्तहर तिक्त शीत कटु विपच्यते लिखकर प्रकट किए है।

—सूत्र० अ० २७ शाकवर्ग।

"सर्वोऽपि पाण्डुरोग पित्तज." के आधार पर पित्त-प्रधान कुपित दोष रक्त आदि धातुओ को दूषित कर पाण्डुरोग को जन्म देते है। पाण्डु को सतर्पणोत्थ व्याधि कहा गया है। सतर्पणोत्थ व्याधि अपतर्पण से ही जीती जाती हैं, सुतरा पाण्डु मे अपतर्पणोचित कटुका (लघु, रूक्ष, खर आदि गुणो से युक्त होने पर) लाभप्रद है। यह स्मरण रहे कि लोक मे प्रचलित "एनिमिया" को पाण्डु कहा जाता है, यह उचित नही है। यह तथाकथित पाण्डु वस्तुत धातुक्षय है। और इसमे वातशामक चिकित्सा अभिप्रेत है। इस मे सतर्पण आवश्यक है। चिकित्सक चूडामणि माननीय प० श्री नन्दकिशोर जी शर्मा (भू० पू० नि० आ० चि० राजस्थान) ने कहा है कि "आयुर्वेद-शास्त्र के सिद्धान्तानुसार जिस वैद्य मे लघन बृहण कराने की योग्यता अथवा अनुभव हो जाता है वही चिकित्सा मे अत्यधिक सफलता प्राप्त करता है।

कामला को आयुर्वेद मे पाण्डुरोग की अवस्था, विशेष अवस्था उसका एक भेद माना है। वस्तुत कामला पाण्डु से पृथक् स्वतन्त्र रोग है इसका सम्बन्ध मुख्यत यकृत् मे विद्यमान पित्ताशय से है। हा रक्ताणु-नाशक जन्य कामला (Haemolytic jaundice) मे रक्ताणुनाशक के कारण पाण्डु भी साथ मे हो जाता है। कामला की उत्पत्ति आयुर्वेदमतानुसार शाखाओ मे (रक्त आदि धातुओ और त्वचा मे) पित्त की अतिमात्र वृद्धि से होती है। शाखाओ मे पित्त का यह आधिक्य पित्त के विमार्ग गमन अथवा वृद्धि से होता है। पित्त का विमार्ग मुख्यतया क्लेदक कफ के प्रवृद्ध होने पर उसके द्वारा पित्त के मार्ग मे अवरोध से होता है। मार्ग के अवरुद्ध होने पर पित्त को कोष्ठ मे लाने वाला समान

वात प्रकुपित होकर पित्त को त्रिमार्गगामी कर शाखाओ मे नि क्षिप्त करता है, सुतरा इसे शाखाश्रित कामला कहा जाता है। शाखाओ मे पित्त के आधिक्य से नेत्र त्वचा आदि मे हारिद्रवर्णता उत्पन्न होती है। पित्त का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से इसे रुद्धपथकामला भी कहा जाता है। कोष्ठ मे पित्त का प्रमाण अल्प होने से इसे ही अल्पपित्ता कामला कहा गया है। पित्त की अतिमात्रवृद्धि मुख्यतया पाण्डु के रोगियो तथा पित्तल व्यक्तियो मे पित्तवर्धक आहार-विहार के अतियोग से होती है। अतिमात्रवृद्ध पित्त अपने प्रमुख स्थान पच्यमानाशय को आप्लावित कर कोष्ठ से शाखाओ मे जाता है तथा नख, नेत्र, त्वचा आदि को हारिद्रवर्ण करता है। इसमे पित्त के अतिमात्र वृद्ध होने से कोष्ठ मे दाह, पुरीप की हारिद्रवर्णता आदि पित्तवृद्धि के लक्षण होते है। इसे कोष्ठशाखाश्रित किंवा बहुपित्ताकामला कहा जाता है। साराशत पित्त के विमार्गगमन से उत्पन्न कामला को शाखाश्रित तथा पित्त की वृद्धि से उत्पन्न कामला को कोष्ठ शाखाश्रित कामला कहते हैं।



ऊपर कहा गया है कि शाखाश्रित कामला मे मूलदोप कफ है एतावता कहा गया है—"श्लेष्मणा रुद्ध मार्ग तत् पित्तकफहरैर्जयेत्।" ऐसी स्थिति मे ऐसे द्रव्य की योजना करनी आवश्यक होती है जो पित्त तथा कफ दोनो दोपो के लिए उपयुक्त हो। इस हेतु कटुका श्रेष्ठ औषधि सिद्ध होती है। कफशामक रसो मे तिक्त रस श्रेष्ठ है अत' तिक्त रस प्रधान कटुका उपयुक्त है। कोष्ठ शाखाश्रय कामला मे भी तीव्र विरेचन ठीक नही है। कुटकी सदृश सामान्य भेदनीय द्रव्य उपयोगी है। कविराज जयदेव जी ने तब ही तो कटुका को कामला की श्रेष्ठ औपधि कहा है—

केवला कटुका कल्ये कीलालै कवलीकृता।
कामलाया कदम्बस्य कोटि कण्टानि कालयेत्॥

—सि० भै० मञ्जूपा

कल्ये—प्रातःकाले, कीलालै-जलै., कवलीकृता—निगीर्णा सति कामलाया. कदम्बस्य—समूहस्य कोटिकण्टानि—अनेकदु खानि कालयेत्—नाशयेत्। —कुचिका

आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी के अग्रज वैद्य वंशीधर त्रिवेदी पुरदिलनगर जिला अलीगढ अपने समय के सुप्रसिद्ध चिकित्सक थे। उन्होंने कामला मे शार्ङ्गधरोक्त फलत्रिकादि क्वाथ धफलत्रिकामृतातिक्तानिम्बकिरातवासकै। जयेन्मधुयुत क्वाथ कामला पाण्डुता तथा। का खूब प्रयोग कर नाम कमाया। उसी परम्परा को अपना कर आचार्य त्रिवेदी जी त्रिफला गुडूची, कुटकी, नीम की छाल, चिरायता और अडूसे का फलत्रिकासव बनाते है। और आसव प्रक्रिया मे उबाल कर बचे द्रव्यो को सुखाकर चूर्ण कर अष्टमाश मण्डूरभस्म और समभाग मिश्री मिलाकर यकृत् रोगो मे सफलतापूर्वक देते है।

शाखाश्रित कामला मे कटुका १ ग्राम + शुद्ध नवसादर ५०० मि० ग्रा० दिन मे तीन बार जल से दे। मार्ग का अवरोध दूर हो जाने पर पित्त के कोष्ठ मे आ जाने के पश्चात् रोगी के बलाबल का विचार कर कटुका १० ग्राम, आरग्वधफल मज्जा १० ग्राम, बडी हरड का दल १० ग्राम इनका क्वाथ कर प्रात देवें। उक्त विरेचन के पश्चात् पित्त का उत्तम शोधन हो जाने के पश्चात् अग्निदीपन एव रक्त आदि धातुओ के बृंहणार्थ कटुका प्रधान "आरोग्यवर्धिनी वटी" जैसे योग कुछ समय देने चाहिये साथ मे ही च्यवनप्राश आदि रसायन भी लाभदायक है। इसी प्रकार अष्टादशाङ्गलौह, निशादिलौह एव पुनर्नवा मण्डूर (ये सभी कटुका

के योग हैं) आदि भी लाभप्रद हो सकते हैं। शास्त्रों में पाण्डु-कामलाहर बहुत से कटुकायोग वर्णित है। चरकोक्त घृत चिकित्सा विशेष महत्व की है। इसमें अन्य घृतों के साथ "कटुकादि घृत" का भी वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त कहा है—

त्रिफला द्वे हरिद्रे च कटुरोण्ययोराज।
चूर्णितं क्षौद्रसर्पिभ्यां स लेह कामलापह ॥
—चरक० चि० १६/९९

योगरत्नाकरकार ने इस योग को अपने शब्दो मे इस प्रकार कहा है—

लौहचूर्ण निशायुग्म त्रिफला कटुरोहिणीम्।
प्रलिह्य मधुसर्पिभ्यां कामलार्तं सुखी भवेत् ॥

आचार्य वाग्भट ने तिक्तरस प्रधान द्रव्यों की इस योग में महत्ता प्रदर्शित करते हुये लिखा है—

वासा गुडूचीत्रिफलाकटूवी भूनिम्बनिम्बज।
क्वाथः क्षौद्रयुत हन्ति पाण्डुपित्तास्रकामला ॥
—अ० हृ० चि० १६/१३

मणिमालाकार ने चिकित्सा मे कटुका को प्राथमिकता देते हुये कोष्ठ नेत्र नासा विरेचनोपयुक्त योगत्रयी को अपने वैद्यक काव्य मे प्रस्तुत किया है—

सितया कटुकीकर्षो द्रोणपुष्पीरसोऽञ्जनम्।
देवदालीरसोनस्य पाण्डुरोग व्यपोहति ॥
—सि० भे० मणि० ४/२८२

यह यकृदुत्तेजक, पित्तसारक होने के अतिरिक्त रेचन (भेदन) होने से विबन्ध, आनाह एव उदररोगो मे भी लाभप्रद सिद्ध होती है। उदररोग चिकित्सित मे उदरशोधन हेतु मणिमालाकार ने एक उपयोगी क्वाथ कहा है—

कटुका निम्बगवाक्षीव्याघ्री द्वीपान्तरीयवटशुङ्गा भा।
रत्नज्योति पथ्या क्वथिता पीता गुडेन सरा स्यु ॥
—सि० भे० मणि० ४/६२०

"सरा इति कथनमात्र, तेनोपदशरक्तविकारादिहरा इति बोध्यम्।" —स्वामिश्रीलक्ष्मीराम।

आ० शार्ङ्गधर ने सब ऋतुओ मे उपयुक्त एक विरेचन योग कहा है इसमे भी कटुका को सम्मिलित किया है। —उ० ख०

"सपिण्डितदोषो गुडकेन मीयत इति गुल्म" वाप्यचन्द्र की इस निरुक्ति मे पुरीषबन्ध, आन्त्रकूजनादि लक्षण गुल्म मे होना स्वाभाविक है। सुतरा इसमे विरेचन योगो का महत्व है। कटुका कफपित्तहर होने से कफजन्य एव पित्तजन्य गुल्म मे भगवान् चरक ने प्रशस्त कही है। स्निग्धोष्ण पदार्थों के द्वारा उत्पन्न हुये पैत्तिक गुल्म मे विरेचन कर्म हितकर है। परन्तु रूक्षोष्ण द्रव्यो के द्वारा उत्पन्न हुये पैत्तिक गुल्म मे घृत श्रेष्ठ शामक होता है। निम्नाङ्कित चिकित्सा सूत्र कहकर कटुकादि द्रव्यो से सिद्ध घृत को उपयोगी कहा है—

भिषगात्ययिकं बुद्ध्वा पित्तगुल्ममुपाचरेत्।
वैरेचनिकसिद्धेन सर्पिषा तिक्तकेन वा ॥
—च० चि० ५/१११

कफजन्य गुल्म मे वमन लघन के पश्चात् उष्ण द्रव्यो को यद्यपि उपयोगी कहा है किन्तु "योज्यश्चाहारससर्गो भेषजं कटुतिक्तकैः" के अनुसार तिक्त द्रव्यो को लाभप्रद कहा है। तिक्त रस स्वय शीतवीर्य है, फिर यह कफजगुल्म मे कैसे लाभप्रद है? इस शका का समाधान चरक व्याख्याकार कविराज गगाधर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'तिक्तो रसो यद्यपि शीतवीर्य्यस्तथापि न शीतविपरीतः तथापि गुरु स्निग्धविपरीतत्वेन भूयसा लघुरूक्षत्वेन शीतवीर्यकायविजयान उपयुज्यते।"

अल्पमात्रा मे कटुका अरुचि एव अग्निमान्द्यादि का भी शमन करती है। गुल्माधिकारोक्त रोहिण्यादिघृतप्रशस्ति मे कहा गया है—

पिबेत्समूर्च्छितं तेन गुल्मं शाम्यति पैत्तिक।
ज्वरस्तृष्णा च शूल च भ्रमो मूर्च्छारुचिस्तथा ॥
—चरक० चि० ५/११४

रसिक कवि लोलिम्बराज को इसी बात का आश्चर्य हो रहा है कि तिक्ता स्वय तिक्त होते हुये मुख की तिक्तता को नष्ट करती है।

मम हृदय विस्मयमातनोति तिक्ताकषायो मुखतिक्तनाशनः।
निपीडितोरोजसरोजकोपा योपा प्रमोद प्रचुर प्रयाति ॥
—वैद्य जीवन १/२७

तिक्तास्यता ज्वर के अतिरिक्त पैत्तिक अरोचक में

भी होती है—

पित्तेन तिक्तास्यविदाहकृत् स्यात् ।
—विदेह ।

कटूनम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्यात् ।
—माधवकर ।

"कटुशब्दोऽत्र तिक्तवाची"
—विजयरक्षित ।

यह दीपन होने से अन्य उपयुक्त द्रव्यो के साथ ग्रहणी मे भी लाभप्रद हो सकती है। भगवान् चरक ने पित्तकफजन्य ग्रहणी मे उपयोगी जो अभयादि क्वाथ किंवा चूर्ण कहा है, उसमे कटुका भी है। पित्त को शान्त करने के कारण ही पित्तजग्रहणी मे "तस्याग्नि दीपयेच्चूर्णैः सर्पिर्भिश्चापि तिक्तकैः" के अनुसार तिक्तरस प्रधान भूनिम्बादि चूर्ण (चरक), किराततिक्तादि चूर्ण (चरक) एव चन्दनादि घृत (चरक) मे कटुका की योजना की गई है। इसी प्रकार कफजन्य ग्रहणी के चिकित्साक्रम मे भी कहा गया है—

ग्रहण्या श्लेष्मदुष्टाया वमितस्य यथा विधि ।
कट्वम्ललवणक्षारैस्तिक्तैश्चाग्निं विवर्धयेत् ॥
—चरक० चि० १५/१४१ ।

सुतरा कटुकायुक्त भूनिम्बादि एव हरिद्रादि क्षार को अग्निवर्धन हेतु उपयोगी कहा है। साम्राज्यकार ने ग्रहणी मे उक्त तिक्तादि क्वाथ के साथ सजीवनी वटी को घोटकर देना बहुत लाभदायक कहा है—

तिक्तारसाञ्जनघनातिविषेन्द्रबीजैः
क्वाथे विघोट्य वटिका पटपूत दृष्टे ।
सञ्जीवनी पिबति यो ग्रहणीव तस्य-
भौमस्थितेर्व्रजति वै ग्रहणीविनाशनम् ॥
—सजीवन साम्राज्यम् ।

"आमनाशक दीपक पाचक तिक्तरस प्रधान द्रव्यो के क्वाथ से सजीवनी देने पर मन्दाग्निस्वरूप ग्रहणीदोष दूर होकर लाभकारी है।"
—श्री मदनगोपाल भिषगाचार्य ।

कटुका की क्रिया हृदय पर तिलपुष्पी (डिजिटेलिस) के समान होती है। इससे हृदय की गति शान्त होती है, उसकी शक्ति बढती है और रक्तभार बढता है। हृदयरोगो मे यष्टिमधु के साथ ससिता प्रयोग हितावह कहा गया है।

पित्तज हृद्रोग चिकित्सा मे कहा गया है—

यष्ट्याह्विकातिक्तकरोहिणीभ्यां ।
कल्कं पिबेच्चापि सिताजलेन ॥
—चरक० चि० २६/८०

प्रातः स्मरणीय स्वर्गवासी आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य शिरोमणि श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी का एक प्रयोगरत्न है—

त्रायन्ती त्रिफला निम्बकटुका मधुकं समम् ।
त्रिवृत् पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशा पृथक् पृथक् ॥
मसूरान्निस्तुपादष्टौ तत्क्वाथः सद्वतो जयेत् ।
विद्रधि गुल्मवीसर्पदाहमोहमद ज्वरान् ।
तृण्मूर्च्छाछर्दिहृद्रोग पित्तासृक्कण्ठकामला ॥
—सचित्र आयुर्वेद कैंसर अंक से ।

यह रक्तशोधक किंवा कुष्ठघ्न होने से कुष्ठादि रोगो मे भी लाभ पहुँचाती है। सुतरा तिक्तपटपलकघृत आदि कुष्ठोपयोगी योगो मे कटुका की योजना की गई है। कैयदेव निघण्टुकार ने इसे "कुष्ठजित्" कहा है। मलमूत्र द्वारा द्रवापकर्ष होने से यह शोथहर भी है। शोथरोगाधिकार मे कथित कटुकाद्य लौह प्रसिद्ध है। शोथ रोग मे अन्तःप्रयोगार्थ पटोलमूलादिक्वाथ तथा बाह्य प्रयोगार्थ रास्नादि उन्मर्दन आदि योग कटुकासयुत हैं।

कटुका कफघ्न एव कफनिःसारक होने से कास-श्वास व कंठ रोगो मे लाभप्रद है। आयुर्वेदविकास के अनुपान अंक मे कविराज श्री मनसाराम जी शास्त्री का लेख प्रकाशित हुआ है। इसमे इन्होने कुटकी को कुक्कुर कास मे लाभप्रद कहा है। इसका अनुपान उसी बालक का मूत्र किंवा उष्ण जल कहा गया है। एक क्वाथ निर्दिष्ट है।

कटुकातिविषापाठा दार्वीमुस्तकलिङ्गका ।
गोमूत्रक्वथिता पेया कण्ठरोगविनाशना ॥
—चरक० चि० २६/१९९ ।

हिक्कायाम्–"गैरिक कटुरोहिणी"

—सुश्रुत० उ० ५०/२७

"गैरिक स्वर्णगैरिक, कटुरोहिणी तिक्ताक्षौद्रेणेति ।" —डल्हणाचार्य

वातरोग—

मृतमूत युत लौह कटुकीद्रवभावितम् ।
मासद्वयप्रयोगेण सर्वाङ्गैकाङ्गवातहृत् ॥

—रसतरङ्गिणी २०/१११

क्रमिरोगे—

मण्डूरकटुकीकृमि वैरिपथ्या ।
पाण्डुदरार्श क्रिमिरुक्षुपथ्या ॥

—सि० भैं० मञ्जूषा

प्रमेह मे वृद्धि करने वाले दोष-दूष्यो को शुष्क करने के कारण तिक्त रस लाभप्रद कहा गया है। यथा, यह तिक्त रस क्लेद, मेद, वसा, मज्जा, पुरीष, मूत्र एव पित्त को शुष्क करने वाला है अर्थात् इन शारीर द्रव्यो के अगभूत द्रवत्व को तिक्तरस न्यून करता है। प्रमेह मे प्रधान आरम्भक दोष कफ है, आरम्भक दोष वायु हो तो भी उसके प्रकोप का कारण कफ का आवरण ही होता है सुतरा कटुका अपने लघु, रूक्ष आदि गुणो से कफ की समावस्था मे लाती है और पित्तहर होने से दाह, तृषा आदि का भी शमन करती है। कफपित्तमेहहर प्रसिद्ध लोध्रासव (चरक) मे कटुका की समायोजना की गई है। 'महर्षि सुश्रुत' ने भी सर्पिमेह के प्रसग मे कटुका को स्मरण किया है। इस सर्पिमेह को ही भगवान् चरक ने वसामेह कहा है। सुश्रुत सहिता के प्रमेहाधिकार का एक प्रकरण है—

"सर्पिर्मेहिन कुष्ठकुटजपाठाहिंगुकटुरोहिणीकल्क गुडूचीचित्रककषायेण पाययेत्" । —सु० चि० १२/९ ।

"मधुमधुरमिति वचन सर्पिमेहादिकषायेष्वपि द्रष्टव्यम् ।" —डल्हणाचार्य ।

यह स्तन्यशोधन होने से स्तन्यविकारो मे भी प्रयुक्त होती है—

पाययेदथवा स्तन्यशुद्ध्यर्थं कटुरोहिणीम् ।

यह रक्तशोधक एव शोथहर एव कृमिघ्न (एण्टीसैप्टिक) होने से व्रण मे भी लाभप्रद है। व्रणोपयोगी तिक्तादि घृत वर्णित है—

तिक्तासिक्थनिशायष्टी नक्ताह्वफलपल्लवै ।
पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्व्रण्य घृत स्मृतम् ॥

—च० चि० ४४/८५ ।

प्रसिद्ध जात्यादि घृत मे भी इसीलिये कटुका को डाला गया है—

जाती निम्ब पटोलपत्र कटुका
दार्वी निशा सारिवा ।
. . .
. . . . . .
गम्भीरा रारुज व्रणा सगतय
शुध्यन्ति रोहन्ति च ॥

सामान्य दौर्बल्य मे कटुपौष्टिक के रूप मे इसको उपयोग मे लाया जाता है जिसका वर्णन अन्यत्र इसी लेख मे किया गया है। अधिक दिनो तक सेवन करने से यह मेदो रोग मे लाभ पहुँचाती है। रसरत्नसमुच्चय का आरोग्यवर्धिनी वटी नामक योग (जिसका कटुका मुख्य घटक है) मेदोरोग के लिए अतीव लाभप्रद है। लेखन होने से मेदोरोगहर है।

यह दाहघ्न एव ज्वरघ्न होने से दाहयुक्त ज्वरो मे बहुत लाभ पहुँचाती है, विशेषत विषम ज्वर प्रतिबन्धक है। देहेन्द्रियमनस्तापी" होने से "ज्वरस्त्वेक एक सन्ताप लक्षण" कहा गया है। कटुका की गणना रेचन सन्तापहर द्रव्यो के अन्तर्गत की गई है। ज्वर का अधिष्ठान तो समयनस्क शरीर है किन्तु व्यक्ति–त्वचा है। स्रोतस–रसवह एव स्वेदवह की विकृति से होता है, उद्भव स्थान आमाशय है। दोष प्रधान्यतया पित्त ही है सुतरा पित्तशामक उपचार लाभप्रद होता है। ज्वरगत दाह निवारणार्थ कहा गया है—

पाचयेत् कटुका पिष्ट्वा कर्पूरेऽभिनवे शुचौ ।
निष्पीडितो घृतयुतस्तद्रसो ज्वरदाहजित् ॥

—अ० हृ० चि० १/५९।

तरुण ज्वर मे आमदोष पाचनार्थ तिक्तरस को परमौपयोगी कहा है —

लङ्घन स्वेदन कालो यवाग्वस्तिक्तको रस ।
पाचनान्यविपक्वाना दोषाणा तरुणे ज्वरे ॥

—चरक० चि० ३/१३७ ।

लङ्घन स्वेदन कालो यवागूस्तिक्तको रस ।
मलाना पाचनानि स्युर्यथावस्थ क्रमेण वा ॥

—अ० हृ० चि० १/२१ ।

पित्तविशेष होने पर तिक्त रस अधिक उपयोगी है— "तिक्त पित्ते विशेषेण प्रयोज्य"। तिक्तरस युक्त कटुका पित्त कफ शामक होने से पित्तज किवा कफज ज्वरो मे विशेषतया लाभप्रद सिद्ध होती है। पित्त ज्वरहर चिकित्सा मे पौन पुन्येन कहा गया है—

सक्षौद्र पैत्तिके मुस्तकटुकेन्द्रयवै कृतम् ।

—सु० उ० ३९/११३ ।

सशर्करा कल्कपेष्या पिबेत्कटुकरोहिणीम् ।
न हि तुल्य तथा किंचित् पित्तज्वरनिबर्हणम् ॥

—शोढल ।

कलिङ्ग कट्फल मुस्त पाठा तिक्तकरोहिणी ।
पक्व सशर्कर पीत पाचन पैत्तिके ज्वरे ॥

—चक्रदत्त ।

मञ्जूषाकार ने पञ्चविधकषायकल्पना का एक श्लोक मे वर्णन करते हुये कटुका के फाण्ट को पित्त-ज्वरापह कहा है—

गुडूचीस्वरसो,निम्बकल्को, धान्यकजो हिम ।
तिक्ताफाण्ट पर्पटस्य क्वाथ, पित्तज्वरापह ॥

—सि० भै० मञ्जूषा २/१३ ।

कफशामक होने से कफज्वर मे भी लाभप्रद कही गई है—

कटुत्रिक नागपुष्प हरिद्रा कटुरोहिणी ।
कौटज च फल हन्यात् सेव्यमान कफज्वरम् ॥

—सु० उ० ३९/१८७ ।

मुस्तक वृक्षक बीजानि त्रिफला कटुरोहिणी ।
परुषकाणि च क्वाथ कफज्वरविनाशन ॥

—सु० उ० ३९/१८१ ।

इसी प्रकार पित्तज किंवा कफज ज्वर के अतिरिक्त पित्तकफजन्य द्वन्द्वज ज्वर मे भी कटुका के प्रयोग पित्त-कफहर होने से लाभप्रद होते है, जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

आरग्वधादि सक्षौद्र कफपित्तज्वर जयेत् ।
तथा तिक्ता वृषोशीरत्रायन्तीत्रिफलामृता ॥

—अ० हृ० चि० १/६४ ।

कटुकाविजयाद्राक्षामुस्तपर्पटकै कृत ।
कषायो नाशयेत् पीत. श्लेष्मपित्तभव ज्वरम् ॥

—सु० उ० ३९/१९६ ।

सशर्करामक्षमात्रा कटुकामुष्णवारिणा ।
पीत्वा ज्वर जयेज्जन्तु कफपित्तसमुद्भवम् ॥

—च० द० १/१३३ ।

साम्राज्यकार ने भी इस योग को सञ्जीवनी के साथ अधिक उपयोगी कहा है।

तिक्तया सितया सञ्जीवनी चेदुष्णवारिणा ।
सेविता स्यात्तदा नून पित्तश्लेष्मज्वरान् हरेत् ॥

—सि० साम्रा० २/२५ ।

सन्निपातज्वरे—

सन्निपातज्वरे व्याघ्रीदेवदारुनिशाघनम् ।
पटोलपत्रनिम्बत्वक् त्रिफलाकटुकायुतम् ॥

—अ० हृ० चि० १/६५।

जो ज्वर अनियमित रूप से गर्मी या सर्दी लगने के बाद अनियमित काल मे आता है। तथा जिसका वेग भी विषम होता है, इसे विषमज्वर कहते है। अधिकतया विद्वान् विषमज्वर से मलेरिया का ग्रहण करते है। केवल धातुवैषम्यकृत विषमज्वर निज विषमज्वर है और रोग-कारी साक्षात् बाह्यनिमित्तज जीवाणु से होने वाला आगन्तु विषमज्वर कहा जा सकता है। वेग के अनुसार विषमज्वर के पाच भेद किये गये है—"सन्तत सततोऽन्ये-द्यु'तृतीयकचतुर्थका ।" जो वात की अधिकता से सात दिन, पित्त की अधिकता से दश दिन और कफ की अधि-कता मे बारह दिन तक बराबर बना रहता है, सन्तत-ज्वर कहलाता है। जो प्रतिदिन एक बार दिन मे और एक बार रात्रि मे उतरकर आता है, सतत कहा जाता

है। इसी प्रकार जो दिन रात मे एक बार आता है वह अन्येद्यु ज्वर कहलाता है। एक दिन का अन्तर देकर आने वाला तृतीयक और दो दिनो का अन्तर देकर आने वाला चतुर्थक ज्वर कहलाता है। इन विषमज्वरो मे भगवान् चरक ने दोष की प्राधान्यता को ध्यान मे रखते हुये चिकित्सा करने का निर्देश दिया है। पित्त प्रधान विषमज्वर चिकित्सा मे कटुका की उपादेयता सिद्ध होती है, क्योकि कहा गया है।

विषम तिक्तशीतैश्च ज्वरे पित्तोत्तर जयेत्।

—चरक० चि० ३/२८५।

सन्ततज्वर, जिसमे पित्त किंवा कफ की प्रधानता हो कटुका, इन्द्रजो एव पटोलपत्र कषाय दे—कलिङ्गका पटोलस्य पत्र कटुकरोहिणी।" और सततज्वर मे कटुका, पटोलपत्र, सारिवा, पाठा, मोथा का कषाय दें—"पटोल सारिवा मुस्त पाठा कटुकरोहिणी।" स्नेहस्वेदोपपादित विषमज्वरी ज्वर के आगमन के समय यह क्वाथ पीना चाहिये।

नीलिनीमजगन्धां च त्रिवृता कटुरोहिणीम्।

—चरक० चि० ३/२९१।

आचार्य वाग्भट ने भी कहा है कि (सुश्रुतोक्त वर्णन के आधार पर) वातादि का विभाग कर उक्त क्वाथ विषमज्वर मे देवे—

पटोलकटुकामुस्ता प्राणदा मधुकै कृता।
त्रिचतुर पञ्चश क्वाथा विषमज्वरनाशना ॥

कफ पित्तात्मक जीर्णज्वर मे भी कटुका उपयोगी है। रस कामधेनुकार ने विषमज्वर के पैंतीस भेदो मे एक जीर्णज्वर को कहा है। आयुर्वेदसार मे कहा गया है।

सिता कटुकया युक्ता पीत्वा चोष्णेन वारिणा।
जीर्णज्वर जयेच्छीघ्र कफपित्तकृत ज्वरम् ॥

मञ्जूषाकार ने अभ्रकभस्म मे कटुकादि की भावना देकर उपयोग मे लाना अतीव हितकर कहा है—

तिक्तातिक्त जयन्तीतुलसीपीयूष पर्पटस्वरसै।
भावितमेकादशधा गगन जीर्णज्वरापह सिद्धम् ॥

—सि० भै० मञ्जूषा २/९६।

यूनानी मतानुसार—यह तीसरे दर्जे मे गरम और रूक्ष है। यह वायु और कफ को दस्तो के द्वारा बाहार निकालने वाली है। शरीर की स्निग्धता और शोथ को मिटाती है। शीत के बहुत से रोग और पुराने नजले मे यह लाभ करती है। काले और सफेद दाग अकोता और त्वचा के रोगो मे भी लाभप्रद है। यह पित्त और खून के रोगो का हरण करती है।

आधुनिक मतानुसार—कर्नल चोपडा के कथनानुसार कुटकी प्राचीनकाल से विज्ञात औषधि है। यह पुराने ग्रीक और अरबी चिकित्सको के समय मे ही कई रोगो मे मिलाई जाती है। यह फारमाकोपिया के प्रधान तिक्त पदार्थों मे से एक है और बहुत ही उपयोग मे लाई जाती है। इसमे कडवापन अत्यधिक होता है। इसके सुगन्धित गुण के कारण यह ग्राह्य है और टेनिन की उपस्थिति न होने से यह सकोचक भी नही है। इसीलिये आधुनिक काल के अग्निवर्धक और पौष्टिक प्रयोगो मे यह सम्मिलित की जाती है। यूरोप मे उत्पन्न होने वाली वनस्पति जेंशियालुटिया भी इसकी समानता रखने वाली एक वनस्पति है। कुटकी देशी औषधियो मे एक उत्तम कटु पौष्टिक (बिटर टॉनिक) पदार्थ माना जाता है। इसमे ज्वरनिवारक और पित्तनाशक शक्ति है।

डायमॉक के मतानुसार यह उन्ही रोगो मे काम आती है जिनमे ग्रन्थिरस कम पैदा होता है और बद्धकोष्ठता रहती है।[1] यह कृमि से पीडित बच्चो के रोगो मे लाभ करती है।

पा० द्र० गु० विज्ञान के लेखक लिखते है कि यह तिक्तबल्य एव क्षुधावर्धक तथा भेदन होती है। अधिक मात्रा मे देने से यह विषमज्वरनाशक (Antimalarial) होती है। इसके आशुफल योग निम्नांकित है—

१—इस गुण के कारण कुटकी का स्वल्प मात्रा मे प्रयोग हृज्जन्य आमदोष जिससे अञ्जाइना तथा जलोदर होता है को दूर करने मे इसकी अच्छी भूमिका है। आरोग्यवर्द्धनी गुटिका इसके लिए सर्वथा उपयुक्त योग है।

—र० प्र० त्रि०।

१ एक्स्ट्रक्टम् पिक्रोरहाइ जी लिक्विड I P, I P L।

मात्रा—१५-६० मिनम् (बूद) या १-४ मि० लि०।

२ टिक्चुरा पिक्रोर्हाइजी कम्पोजिटा I P, I P L।

मात्रा—३०-६० मिनम् (बूद) या २-४ मि० लि०।

अनुसन्धान एवं विशिष्ट जनमन्तव्य—

(१) कामला के विभिन्न प्रकार के रोगियो मे कुटकी या उसके योगो का उपयोग किया गया। इनमे पर्याप्त लाभ हुआ। औपसर्गिक यकृतशोथ मे अधिक लाभ हुआ। कुटकी सम्भवत विलिरुवीन के उत्सर्ग को बढाकर एव यकृत कोशाओ का पुनर्जनन करके लाभ पहुँचाती है। —गो० ना० चतु०, रा० ह० सिंह।

(२) कुटकी के ९०% मद्यसारीय सत्व के जल-विलेय अश का प्राणियो मे अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमे कुछ अवयवो पर उद्वेष्टन विरोधी तथा शैथिल्यकारी प्रभाव देखा गया। कुत्ते मे शिरा प्रयोग से दीर्घकालिक पित्तसारक प्रभाव एव श्वेत चूहो मे मुख द्वारा प्रयोग से सारक प्रभाव देखा गया।

—पी० के० दास एव एम० के० रैना।

(३) कार्बन टेट्राक्लोर से खरगोशो मे उत्पन्न की गयी यकृत् विकृति मे इसके सुरासारीय सत्व के प्रभाव का अध्ययन किया गया। यह देखा गया कि इसमे कार्बन टेट्राक्लोर से उत्पन्न यकृत् विकृति को रोकने का गुण है जिससे यकृत् सिरोसिस मे कुटकी के लाभप्रद होने का अनुमान किया जा सकता है।

—वि० न० पाण्डे एव गो० ना० चतुर्वेदी।

(४) काशी विश्वविद्यालय मे अनुसन्धान मे कटुका को परिणामशूल पर विशेष प्रभावी पाया।

(५) कटुका यकृत् की एवं उसके द्वारा पित्त की भी शुद्धि कर इन्द्रियाधिष्ठान मे होने वाली सर्वजन प्रत्यक्ष उत्तेजना को शान्त करने वाली होने से अन्य भेदन किंवा रेचन द्रव्यो की तुलना मे पसन्द करने योग्य है। —वैद्य श्री रणजितराय देसाई।

(६) कुटकी एव उसके योगो का पाण्डु के विभिन्न रोगियो पर प्रयोग किया गया। लगभग १०० रोगियो पर इस सम्बन्ध मे परीक्षण किया गया और उनकी प्रगति के परीक्षण हेतु आधुनिक साधनो का उपयोग किया गया। यह पाया गया कि कुटकी बहुत तीव्र यकृत् एव पित्ताशय पर क्रिया करती है। यह पित्तस्राव को शीघ्र ही नियमित करती है। इससे भूख शीघ्र ही जागृत हो जाती है एव यकृत् की क्रिया शीघ्र ही जागृत हो जाती है। यह चिकित्सा यकृत सक्रमण जन्य कामला मे भी लाभकारी पाई गई है। इस औषधि का कुत्तो पर प्रयोग करने पर यह पाया गया कि यह पित्तनलिका मे पित्त का स्राव करने मे प्रभावशाली है। चूहो मे यकृत् पर इस औषधि का चमत्कारी प्रभाव देखा गया।

—वैद्य श्री प्रह्लादराय देरा द्वारा श्री धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

(७) धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयोगाक मे एक लेख प्रकाशित हुआ है। लेख का शीर्षक है "हृद्रोग पर कुटकी का प्रभाव।" इस लेख मे लेखक ने एक रोगी की चिकित्सा का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। विकार नाम—शोथ, उपद्रव—हृद्रोग एव पाण्डु। सम्प्राप्ति—अग्निमाद्यजन्य आमदोष के कारण ही रोगी मे शोथ, हृद्रोग और पाण्ड तीनो की ही उत्पत्ति सम्भव है। बाह्य शिराओ मे मार्गावरोध करके उसने शोथोत्पत्ति की। रस को प्रदुष्ट करके पाण्डु और हृद्रोग की उत्पत्ति की क्योकि रसवह स्रोतस् का मूल हृदय है और रसप्रदोषज रोगो मे पाण्डु का परिगणन किया गया है।

चिकित्सा—रोगी को १० दिनो तक कटुकी चूर्ण १ ग्राम ३ बार दुग्ध से दिया गया। इस काल मे उसे १॥ लीटर दुग्ध अतिरिक्त दिया जाता था। रोगी को दूध पीने के बाद भूख अवशिष्ट रहने पर सभी कुछ खाता पीता था। इस क्रिया क्रम से उसके शोथ का पूर्ण उपशम हो गया किन्तु पुन शोथवृद्धि प्रतीत होने लगी अत-एव दाल शाक (लवणयुक्त द्रव्य) बन्द कर दिये गये। ४ दिनो के व्यवधान के पश्चात् शुद्ध कसीस ५०० मि० ग्रा० + अर्जुन चूर्ण २ ग्राम ३ बार दुग्ध से हृद्रोग शमनार्थ दिया गया। जो रोगी निर्गम काल तक लेता रहा।

पथ्य पूर्ववत् रहा। इससे निष्कर्ष निकलता है कि यदि निदान ठीक से कर लिया जाय तो आयुर्वेदीय औषधियो के द्वारा अल्प व्यय मे ही शीघ्रतापूर्वक व्याधि का उपशम हो सकता है। दूसरा लाभ यह है कि हम बिना व्ययसाध्य नैदानीय परीक्षणो की सहायता लिये ही अपने दोष-दूष्य विमर्श के द्वारा रोगी की चिकित्सा सफलतापूर्वक कर सकते है। आरोग्यवर्धिनी जो कुटकी के योग से बनाई जाती है, हृद्रोग मे भी लाभदायक होती है।

—श्री प० वागीश्वर शुक्ल वैद्य।

(८) प्रातः-साय ३-३ ग्राम से ६-६ ग्राम तक की मात्रा मे जल के साथ लेने से कटुका चूर्ण ८ दिन मे निःसन्देह पाण्डुरोग को दूर करता है। हम सरकारी आयुर्वेदिक दवाखाने मे तीन सालो से रोगियो को देकर लाभ उठा रहे हैं।

—वैद्य प० श्री बिहारीलाल जी शर्मा।

(९) मेरा अनुभव है कि कटुका मूल बहुत सुन्दर पाचक है। अजीर्ण के बहुत से रोगियो को और उसी तरह आँत के रोगो मे बहुत उपयोगी है।

—मुहिन सरीफ।

(१०) इस औषधि का क्वाथ बनाकर दिन मे ३-४ बार ३-४ दिन तक बराबर सेवन करने से उदररोग खूब पतला रेचन होकर आराम होता है। पेट का अफरा इससे शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसका पूर्ण परिणाम पाने के लिए इस औषधि को ८ दिन तक चालू रखना चाहिये। —सर्जन, मेजर, डी० आर० थम्पमन

प्रो० आई० जे० काकर्ड मद्रास।

(११) इसका टिंचर बनाकर अन्तराज्वर (बारी से आने वाले ज्वर) मे प्रयोग करने से उष्णता कम हो जाती है। परन्तु इससे विरेचन होता है। इसका गुण कब्ज वाले ज्वर रोगी के लिए अति उत्तम है। श्लीपद के रोगी को इस दवा के उपचार से ज्वर एकदम उतरकर मल साफ हो जाता है। उसके पहले अनियमित मल होता है। ८ दिन तक निरन्तर इसके प्रयोग से मलेरिया मे पूरा लाभ होता देखा गया है।

—इण्डीजीशन ड्रग्स कमेटी रिपोर्ट पृ० ३६।

(१२) हमारे मत व निरीक्षण से हम यह बताना चाहते है कि यह औषधि पूर्ण ज्वरघ्न है। इसका रेचक असर निस्सन्देह पूरा काम करता है।

—फार्माकोग्राफिया इण्डिया वा० ७ पे० १/१३।

(१३) यह पाकस्थली के ग्रन्थीय रस को बढाती है। इसलिये अग्नि प्रवर्धक और कटु पौष्टिक है। इसमे कोई जहरीला पदार्थ नही है। यह तिक्तता के कारण ही विशेष उपयोगी है। हृदय की धडकन इसके सेवन से घटती है। इसमे केथार्टिक एसिड रहता है जो मृदुरेचन का कार्य करता है। यह ज्वर की हालत मे अच्छा कार्य करती है। —डा० लालमोहन घोषाल

(सन् १९१२ मे ये मत प्रकट किये गये थे)।

सामान्य प्रयोग

बाह्य प्रयोग—

(१) **शोथ**—कटुका, सहिजन के मूल की छाल और मकोय के पत्ते पीसकर लेप करने से शोथ शान्त होता है।

(२) **इन्द्रलुप्त**—कटुका को कडवे पटोलपत्र-स्वरस के साथ पीसकर लेप करने से इन्द्रलुप्त धीरे-धीरे समाप्त होता है।

(३) **शीताङ्ग सन्निपात**—कटुका, कुलथी, फिटकरी और पुराने उपले की राख का वस्त्रपूत चूर्ण कर हाथ-पैरो पर मलने से शीताङ्ग सन्निपात मे उष्णता आने लगती है।

(४) **स्नायुशूल**—कटुका को तैल मे पकाकर मालिश करने से स्नायुशूल का शमन होता है।

(५) **उदरशूल**—कटुका और धतूरे के फल को काजी मे पीसकर उदर पर लेप करने से सब प्रकार के उदर शूलो मे लाभ होता है।

(६) **स्तनशूल**—कटुका, गिलोय, देवदारु, निम्बपत्र का क्वाथ बनाकर उससे स्तन धोवे। ऐसा करने से स्तनजन्य शूल समाप्त होता है।

आभ्यान्तर प्रयोग—

(१) **ज्वर (सामान्य ज्वर)**—[क] कटुका, हरीतकी, अमलतास, निशोथ और आमलक इन औष-

धियो को समभाग लेकर यवकुट कर ले। इनका क्वाथ बनाकर उसमे मधु मिलाकर सेवन करने से कोष्ठशुद्धि होकर ज्वर उतर जाता है। सामान्य ज्वर हेतु यह उत्तम योग है।

[ख] कटुका, अतीस और गिलोय का क्वाथ भी सामान्य ज्वर मे लाभप्रद है।

(२) पित्तज्वर—[क] कटुका, नागरमोथा, अमलतास, हरड और पित्तपापडा का क्वाथ पित्तज्वर-हर है।

[ख] कटुका, नागरमोथा, इन्द्रजो, पाठा और कायफल का क्वाथ पित्तज्वरहर है।

[ग] कटुका, वासा, पित्तपापडा, चिरायता, यवासा और फूलप्रियगु का क्वाथ भी पित्तज्वरहर है।

[घ] कटुका, गिलोय, चिरायता और पित्तपापडा का क्वाथ विबन्धयुक्त पित्तज्वर मे लाभप्रद है।

[ङ] कटुका, अमलतास, हरड, नागरमोथा, मुनक्का और पित्तपापटा क्वाथ पित्तज्वर को नष्ट करता है।

[च] कटुका, कटकारी, पित्तपापडा और चिरायता का क्वाथ भी पित्तज्वर को दूर करता है।

[छ] कटुका, चिरायता, हरड और कडवी तोरई के फूल के समभाग चूर्ण मे बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तज्वर का शमन होता है।

[ज] कटुका के चूर्ण मे समभाग मिश्री मिलाकर चौगुने गर्म जल से पीना भी पित्तज्वर मे हितकर है।

[झ] ताजी हरी कुटकी को पीसकर मिट्टी के स्वच्छ नवीन पात्र मे रखकर स्वेदित करें (शुष्क कटुका के चूर्ण को भी जल मे पीसकर कल्क को इसी प्रकार स्वेदित करे) और फिर निचोट कर रस निकालें। १० मि० लि० स्वरस मे गोघृत मिलाकर सेवन करने से भी ज्वरजात दाह दूर होता है।

(३) कफज्वर—[क] कटुका, कचूर, वासा, पिप्पली, सोठ, गिलोय और पुष्करमूल का क्वाथ कफज्वर को मिटाता है।

[ख] कटुका, वासा, निम्ब की छाल, अतीस, हरिद्रा और पटोलपत्र के क्वाथ मे मरिच चूर्ण तथा मधु मिलाकर देने मे कफज्वर मे लाभ होता है।

[ग] कटुका, हरिद्रा, नागरमोथा, सोठ और त्रिफला का क्वाथ कफज्वरहर कहा गया है।

(घ) कटुका, त्रिकटु, अतीस, नीम तथा इन्द्रजौ का क्वाथ कफज्वर को दूर करता है।

(ङ) कटुका, कटेरी, कचूर, कायफल, सोठ, पीपल और शतावर का क्वाथ भी कफज्वर मे लाभप्रद है।

(४) वातज्वर—[क] कटुका, अमलतास और पिप्पलीमूल क्वाथ वातज्वर को दूर करता है।

[ख] कटुका, हरड, त्रिकटु, चिरायता और एरण्ड-मूल का क्वाथ भी वातज्वर मे लाभदायक है।

(५) कफपित्त ज्वर—[क] कटुका, नीम की छाल, गिलोय, सोठ और लालचन्दन के क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करने से कफपित्तजन्य ज्वर दूर होता है।

[ख] कटुका, पटोलपत्र, अमृता तथा लालचन्दन क्वाथ भी कफपित्तज्वर शामक कहा गया है।

[ग] कटुका, नागरमोथा, पटोल, नेत्रबाला, सोठ, लालचन्दन, पित्तपापडा, खस और वासा (अडूसा) का क्वाथ पीने से कफपित्तज्वर शान्त होता है।

(६) वातपित्त ज्वर—कटुकी, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापडा और यवासा का क्वाथ वातपित्त ज्वर को दूर करता है।

(७) जीर्ण ज्वर—[क] कटुका, चिरायता, सोठ, देवदारु और पित्तपापडा के क्वाथ मे मिश्री और पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करना जीर्णज्वर मे हितकर है।

[ख] कटुका, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापडा और गिलोय के क्वाथ का नियमित सेवन करने से भी जीर्णज्वर नष्ट हो जाता है।

(८) सन्निपात ज्वर—कटुका, दशमूल, देवदारु, चिरायता, सोठ, धनियां और गजपीपल का क्वाथ सन्निपात ज्वर के उपद्रवो का शमन करता है।

(९) पुनरावर्तक ज्वर—कटुका, खस और नागर-

मोथा का क्वाथ पिलाने मे पुन लौट आने वाला ज्वर मिट जाता है

(१०) विषम ज्वर—[क] कटुका, पटोलपत्र, आम की गुठली, हरड और मुनैठी के क्वाथ से सन्तत ज्वर दूर होता है।

[ख] कटुका, पाठा, पटोलपत्र, मारिवा और नागरमोथा का क्वाथ सतत ज्वर मे हितकर है।

[ग] कटुका, खस, खिरेटी, धनिया, सोठ, पित्तपापडा और नागरमोथा का क्वाथ सतत ज्वर मे लाभ दायक है।

[घ] कटुका, धनिया, सोठ, पित्तपापडा, पिप्पली और लालचन्दन के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर पीने से तृतीयक ज्वर दूर होता है।

[ङ] कटुका चूर्ण को वारह घन्टे दूध मे खरल कर २४० मि० ग्राम की गोलिया बनालें। ज्वर आने के २-३ घन्टे पूर्व १-२ गोली देने मे तृतीयक किंवा चातुर्थक नामक विषम ज्वर आने की सभावना कम रहती है।

[च] कटुका चूर्ण ५०० मि० ग्राम को बताशे मे भर कर आगन्तु विपम ज्वर (मलेरिया) आने मे पूर्व रोगी को खिला देने से ज्वर आने की मभावना नही रहती है।

[छ] कटुका क्वाथ मे पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करना भी विपम ज्वरो मे लाभप्रद है।

[ज] ६ ग्राम कटुका चूर्ण को उबलते हुये ३० मि० लि० पानी मे डालकर २० मिनट तक रखने के बाद चूर्ण के बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करना भी विपम ज्वर मे हितकार है।

[झ] १०० ग्राम कटुका के मोटे चूर्ण को ४०० मि० लि० सुरासार मे मिलाकर ७ दिनो तक सुरक्षित रखें। फिर छानकर ३०-६० बूद दिन मे तीन बार सेवन करने से रोज आने वाला या एक दिन छोडकर आने वाला विवन्धयुक्त विपम ज्वर पलायन कर जाता है।

[ञ] कटुका, मोठ, रक्तचन्दन, गिलोय, नागरमोथा और आमलक क्वाथ चातुर्थक ज्वर मे लाभप्रद कहा गया है।

(११) पाण्डुरोग एवं कामला-(क) कटुका, त्रिफला, अमृता (गिलोय), अनन्तमूल का क्वाथ मधु मिलाकर सेवन करने से पाण्डु रोग मिटता है।

(ख) कटुका के यवकुट चूर्ण को जल मे पकाकर छानकर उसमे मधु मिलाकर सेवन करने से पाण्डु कामला मे लाभ होता है।

(ग) कटुका चूर्ण को मूली स्वरस के साथ सेवन करे। उससे कमाला शीघ्र शान्त होता है।

(घ) कटुका चूर्ण मे समभाग मिश्री मिलाकर कवोष्ण जल से सेवन करना भी कामला मे हितकारी है।

(ङ) कटुका, त्रिफला, दोनो हरिद्रा और माण्डूर भस्म को समभाग लेकर घृत मधु (असमान) के साथ सेवन करना भी फलप्रद है।

(च) कटुका, चिरायता, नीम की छाल, वासा, त्रिफला, गिलोय के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर सेवन करने मे भी पाण्डु कामलादि रोग दूर होते हैं।

(छ) कटुका, चिरायता, निम्बत्वक का शीतकषाय भी हितकर कहा गया है।

(ज) कटुका, हरीतकी और लौहभस्म को एक माह तक सेवन करे। इससे पाण्डु कामला रोग मिट जाते है।

(१२) कास–श्वास (क) कटुका तथा पीपल की छाल का चूर्ण श्वास-कास मे लाभप्रद है।

(ख) कटुका काकडासिंगी और वासा का चूर्ण मधु के साथ सेवन करना भी हितावह है।

(ग) कटुका एव भारगी चूर्ण के प्रयोग से श्वास मे लाभ होता है।

(१३) हृदय रोग—कटुका, पुनर्नवा, चिरायता और सोठ का क्वाथ समस्त हृदय रोगो को दूर करता है।

(ख) कटुका और मधुयष्टी के समभाग चूर्ण को चीनी के शर्बत से सेवन करे। यह पैत्तिक हृदय रोग हर है।

(१४) छर्दि—कटुका चूर्ण को मधु मे मिलाकर सेवन करने मे कफपित्तजन्य छर्दि का शमन होता है।

(१५) सर्वसर—कटुका चूर्ण और पीपल छाल के चूर्ण को मधु मे मिलाकर सेवन करने से सर्वसर नष्ट होता है।

(१६) आमवात—[क] कटुका चूर्ण को गुड की चासनी के साथ सेवन करे।

[ख] कटुका, अतीस, चित्रक, देवदारु और हरीतकी का चूर्ण बनाकर कुछ समय सेवन करना आमवात मे लाभप्रद है।

(१७) रक्तविकार—[क] कटुका, चोपचीनी, नीम, त्रिफला और गिलोय का क्वाथ रक्तविकार को मिटाता है।

[ख] कटुका, मजीठ, दारुहल्दी, नीम की छाल और त्रिफला का चूर्ण बनाकर सेवन करे।

[ग] कटुका, सारिवाद्वय और मुण्डी का क्वाथ भी रक्तविकार मे लाभप्रद है।

[घ] कटुका, सौठ, सुगन्धवाला, अनन्तमूल और नागरमोथा के चूर्ण को कुछ समय तक सेवन करने से रक्तशुद्धि होती है।

(१८) गलगण्ड—कटुका चूर्ण को पकी हुई घिया की गिरी के साथ पीसकर सेवन करें।

(१९) विबन्ध—[क] कटुका, हरड, अमलतास, निशोथ और आमलक का क्वाथ विबन्ध मे हितकर है।

[ख] कटुका चूर्ण मे समभाग मिश्री मिलाकर उष्ण जल से सेवन करे।

(२०) अरुचि—[क] कटुका चूर्ण मे थोडा सा कालानमक मिलाकर सेवन करे।

[ख] कटुका, त्रिकटु, नागरमोथा, इन्द्रजौ और चित्रक का चूर्ण भी लाभप्रद है।

(२१) अग्निमांद्य—[क] कटुका चूर्ण के साथ सौंठ का चूर्ण सेवन करें।

[ख] कटुका, सौंफ और सोंठ का चूर्ण भी अग्निमाद्यहर है।

(२२) आध्मान—कटुका, हरीतकी, अनीस और चित्रक का चूर्ण उष्ण जल मे सेवन करें।

(२३) उदरशूल—[क] कटुका, चित्रक, हरड, वचा चूर्ण को गोमूत्र मे सेवन करने पर कफजन्यशूल का शमन होता है।

[ख] कटुका और कालीमरिच का चूर्ण भी उदरशूल को मिटाता है।

[ग] कटुका, कालीमरिच, भुने हुये सहिजने का गोद सेवन करने से उदरशूल दूर होता है।

[घ] कटुका, मुलहठी, त्रिफला और अमलतास का क्वाथ भी उदरशूलहर है।

(२४) संग्रहणी—कटुका, चिरायता, पटोलपत्र, नीम और पित्तपापडा का चूर्ण भैंस के मूत्र से सेवन करने से कफज सग्रहणी नष्ट होती है।

(२५) स्तन्यन्यूनता—कटुका १ ग्राम, जीरक १ ग्राम, शतावरी २ ग्राम और मिश्री ५ ग्राम दुग्ध मे मिलाकर सेवन करने से नारी के दुग्ध मे वृद्धि होती है।

(२६) वसामेह—कटुका और कूठ का क्वाथ बनाकर सेवन करने से वसामेह का शमन होता है।

(२७) अण्डवृद्धि—कटुका चूर्ण को घृत मे मिलाकर खडा होकर पीवे।

(२८) अपतन्त्रक—भुनी हुई कटुका, सर्जक्षार तथा हिंग्वष्टक चूर्ण समभाग लेकर सेवन करने से अपतन्त्रक आदि वातरोगो मे मल शुद्धि होकर लाभ होता है।

(२९) कंठरोग—कटुका, हरिद्रा, इन्द्रयव, त्रिफला, सोठ, पटोलपत्र और गिलोय का क्वाथ कठरोगो मे लाभप्रद है।

(३०) तृषा—कटुका और नीम की अन्तर छाल का क्वाथ तृषा को मिटाता है।

(३१) कार्श्य—कटुका चूर्ण १ ग्राम को दुग्ध के साथ सेवन करने से बल वृद्धि होती है।

(३२) **हिक्का**—कटुका चूर्ण और स्वर्णगैरिक को मधु के साथ सेवन करे।

(३३) **मेदोरोग**—कटुका चूर्ण और त्रिफला चूर्ण को मधु मे जल मिलाकर सेवन करे।

(३४) **रक्तपित्त**—कटुका चूर्ण और मधुयष्टिका चूर्ण रक्तपित्त मे हितावह है।

(३५) **कृमिरोग**—कटुका चूर्ण और विडङ्ग चूर्ण मधु के साथ सेवन करना कृमिहर है।

(३६) **वातरक्त**—[क] कटुका, वासा और अमृता का क्वाथ वातरक्तहर है।

[ख] कटुका, पटोल, शतावर, त्रिफला और अमृता का क्वाथ भी लाभ पहुँचाता है।

(३७) **उरुस्तम्भ**—कटुका और त्रिफला का समभाग चूर्ण मधु के साथ सेवन करे।

(३८) **मसूरिका**—कटुका, यवासा और पित्तपापडा का क्वाथ मसूरिका मे लाभदायक है।

(३९) **जलोदर**—कटुका चूर्ण और पुनर्नवा चूर्ण जलोदर मे लाभप्रद है।

(४०) **विसर्प**—कटुका, नीम, वासा त्रिफला, चिरायता, पटोलपत्र और चन्दन का क्वाथ विसर्पहर है।

(४१) **शोथ**—कटुका १० ग्राम और दर्भमूल २० ग्राम का क्वाथ दिन मे ५-६ वार पीवे।

(४२) **अम्लपित्त**—कटुका, पटोलपत्र और त्रिफला के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर सेवन करे।

(४३) **बालरोग**—[क] मिट्टी मे कटुका स्वरस किंवा क्वाथ की भावना देकर खिलाने से वालक मिट्टी खाना छोड देता है।

[ख] कटुका को भूनते हुये जलाकर इस भस्म को मधु से चटाने से वमन होकर वालको का कास मिट जाता है।

[ग] भुनी हुई कटुका का चूर्ण २५०-५०० मि० ग्रा० की मात्रा मे सुखोष्ण जल किंवा मधु के साथ सेवन कराने से वालको के ज्वर, शोथ, कृमि, अरुचि, उदरविकार, विवन्ध आदि मिट जाते हैं।

विविध कल्पनायें—

१. **कटुकादि क्वाथ**—[क] कुटकी, नीम की अन्तर्छाल, इन्द्रायण का मूल, वडी कटेहरी की जड, उसवा, बोल की फली, रतनज्योति तथा हरड प्रत्येक द्रव्य ६०-६० ग्राम यवकुट कर सायकाल १० गुने पानी मे भिगो दे, प्रात अग्नि पर चढाकर ५०० ग्राम पुराना गुड भी डाल दे, चतुर्थांश रहने पर छान ले, तथा ठडा होने पर शीशियो मे भर ले मात्रा ६० ग्राम से १२० ग्राम तक। —सिद्ध भेषज मणिमाला।

[ख] कुटकी, गिलोय, नीम की छाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, लालचन्दन, सोठ और इन्द्रजौ ३-३ ग्राम लेकर जौकुट चूर्ण वनावे। इसमे से १२ ग्राम चूर्ण को १९२ ग्राम पानी मे पकावे, ४८ ग्राम जल शेष रहने पर कपडे से छानकर २४०-४८० मि० ग्रा० पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलाये। इसे अमृताष्टक क्वाथ भी कहते है।

इस क्वाथ के सेवन से पित्त और कफजन्य ज्वर, जी मिचलाना, अरुचि, वमन, अधिक प्यास लगना, पेट, हाथ, पैर और आखो मे जलन होना आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

यह काढा सौम्य गुण प्रधान होते हुए भी कफघ्न है, अतएव इस क्वाथ का प्रयोग विशेषकर पित्त और कफजन्य विकार मे किया जाता है। —चक्रदत्त।

[ग] कुटकी, नीम की छाल, नागरमोथा, देवदारु, आवला, हर्र, वहेडा, हरदी, भटकटैया (रेंगनी) और परवल पञ्चाग का क्वाथ पीने से त्रिदोषजन्य ज्वर शान्त होता है। एव दशमूल की १० औषधिया और ११वा पीपर सबको समभाग लेकर क्वाथ वनाकर पीने से भी त्रिदोष ज्वर शान्त होता है। —क्वाथमणिमाला।

[घ] कुटकी, अतीस, पाठा (पाढल), दारुहल्दी, नागरमोथा और इन्द्रजौ को गोमूत्र मे उवालकर क्वाथ बनाले। इस क्वाथ के पीने से कठरोगो का नाश होता है। —चरकसहिता चि० २६।

[ङ] कटुका, सोठ, मिर्च, पीपल, वच, भारङ्गी, चिरायता, इन्द्रायणमूल, हरड, वहेडा, आवला, रास्ना और अनन्तमूल का क्वाथ पीने से चित्तभ्रम, सन्निपात,

उन्माद, भ्रम, प्रलाप, बेचैनी, शरीर की पीडा आदि लक्षण मिट जाते है। —मेघविनोद।

[च] कटुका, देवदारु, हल्दी, नीम, बहेडा, हरड, सोठ, वासा, पोहकरमूल, नागरमोथा, पटोलपत्र और गिलोय सब समानभाग लेकर क्वाथ बनाकर पिलाने मे जिह्वक सन्निपात मे लाभ मिलता है। —मेघविनोद।

[छ] कटुका, इन्द्रजौ, सोठ, चिरायता, धनिया, गजपिप्पली, देवदारु, नागरमोथा, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बिल्व, अरणी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, अरलू, गभारी और पाठा का क्वाथ बनाकर पीने से भुग्ननेत्र सन्निपात दूर होता है। इसके अतिरिक्त कास, श्वास, पार्श्वशूल, छर्दि आदि रोगो मे भी लाभ होता है। —मेघविनोद।

२. कटुकादि चूर्ण—[क] कटुका, नागरमोथा, दन्तीमूल, हरड, सेंधानमक, पिप्पलीमूल, छोटी कटकारी, बडी कटकारी, सोठ, पिप्पली, कचूर, पित्तपापडा, पटोलपत्र, गिलोय, पुष्करमूल, चिरायता—इन औषधियो का वस्त्रपूत चूर्ण बनाकर रखले। ३-५ ग्राम चूर्ण उष्णजल से सेवन करे। इसके उपयोग से सब प्रकार के विषमज्वर, जीर्णज्वर, ग्रहणी, शोथ, अतीसार, शूल, शिरःशूल, कास, श्वास आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। —वैद्यकुतूहल।

[ख] कटुका, कूठ, पाठा, वचा, पिप्पली, मिर्च, सोठ सबका चूर्ण बनाकर जल से सेवन करे। इसके प्रयोग से कफजन्य अतिसार का शीघ्र शमन होता है।

मात्रा—३-६ ग्राम रोगी किंवा रोग की अवस्थानुसार दे। —क्षारपाणिसहिता।

[ग] कटुका, हरड, नागरमोथा, पटोलपत्र, केले की जड, वासा, सफेदचन्दन, मुनक्का, तिपत्तीबूटी १०-१० ग्राम, मिश्री ८० ग्राम, यवक्षार, जवासा ५-५ ग्राम इन सबका चूर्ण बनाकर, ३ ग्राम दवा ठडे जल से सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी आदि रोग दूर होते है। —रामविनोद।

३. कटुकादि वटी—[क] कुटकी के चूर्ण को करेला की पत्ती के रस से भावना देकर पीसकर बडी मटर के बराबर गोलिया बनावे। २-२ गोली प्रातः, मध्यान्ह और सायकाल मे १ घूट कोष्णजल से खावें यह कफपित्त ज्वर मे लाभप्रद है। —चिकित्सादर्श।

[ख] सप्तपर्ण (छतिवन) के वृक्ष की हरी ताजी अन्तर्छाल, करजुए (कंजे, कटकारीकरज) की हरी ताजी पत्ती गिलोय ताजी, कालमेघ और कुटकी सब समभाग लें। सप्तपर्ण की छाल, करजुए की पत्ती, गिलोय और कालमेघ इनको जल से अच्छी तरह धोकर काढा बनाने योग्य अलग अलग कूटे और कुटकी को भी काढा बनाने योग्य जौकुट करें। पीछे सबको अच्छे कलईदार बर्त्तन मे अठगुने जल मे पकावे। जब अष्टमाश जल बाकी रहे तब नीचे उतारकर ठडा होने पर अच्छे कपडे मे उनको दो बार छानकर, कलईदार बर्तन मे डालकर पकावें। पकते-पकते क्वाथ जब करछी को लगने लगे उतना गाढा हो, तब नीचे उतारकर बर्त्तन को धूप मे रखकर सुखावें। जब घन गोली बनाने योग्य हो तब उसमे चतुर्थांश अतीस का चूर्ण मिलाकर ३६०-३६० मि० ग्रा० की गोलिया बनाकर सुखा लें इसको पञ्चतिक्त घनवटी कहते हैं।

मात्रा और अनुपान—एक बार मे १-१ गोली ३-३ घण्टे से जल के अनुपान से दें।

उपयोग—विषमज्वर मे (पारी के बुखार मे) इसका उपयोग करे। —सिद्धयोग सग्रह से।

४. कटुकादि घृत—[क] कुटकी, मोथा, दोनो हल्दी, वत्सक का फल (इन्द्रजौ), पटोल, चन्दन, मुर्वा, त्रायमाण, दुरालभा, पिप्पली सहित पित्तपापडा चिरायता तथा देवदारु इन सबको १२-१२ ग्राम लेकर पीसकर गाय के ३ किलो ६२ ग्राम दूध मे ७६८ ग्राम घी को पकावे रक्तपित्त, ज्वरदाह, शोथ, भगन्दर सहित अर्शो तथा रक्तप्रदर को तथा विस्फोटको को नष्ट कर देता है। —चरकसहिता।

[ख]—कुटकी, मोम, हल्दी, मुलैठी, करज के फल तथा पत्र, परवल की पत्ती, चमेली तथा नीम की पत्तिया इनको समभाग लेकर कल्क करे। इस कल्क से चौगुना घृत तथा घृत से दो गुना जल लेकर घृत पाक करे। इसका प्रयोग करने से व्रण मे लाभ होता है। —चक्रदत्त।

[ग]—कुटकी, नीम, मुलहठी, हरड, बहेडा, आवला (त्रिफला के इन तीनो द्रव्यो) की छाल और त्रायमाण प्रत्येक १२ ग्राम पटोलपत्र तथा निशोथ प्रत्येक ४८ ग्राम और ९६ ग्राम मसूर इन सब को आठ गुने जल मे पकावे। पकाये हुए अष्टमांश शेष रहने पर क्वाथ के बराबर तथा १९२ ग्राम घी को मिलाकर उसको पिये। उससे पैत्तिक गुल्म शान्त होता है। और ज्वर, श्वास, शूल तथा भ्रम मूर्च्छा और अरुचि भी शान्त हो जाती है। (यह रोहिण्यादि घृत है।) —चरक संहिता

नोट—घी और क्वाथ की मात्रा ज्यादा है।
—लेखक।

(५) **कटुकादि लौह**—कुटकी, सोठ, मिरच, छोटी पीपल, दन्ती मूल, वायविडग, हरड, बहेडा, आवला, चित्रक के जड की छाल, देवदारु, निशोथ और गज-पीपल ये १३ द्रव्य १०-१० ग्राम लेकर इन सबसे दुगनी (२६० ग्राम) लौह भस्म ले। इनमे काष्ठादि औषधियो को धूप मे २-४ घटे सुखाकर, कूटकर छान ले इसके पश्चात् इसमे लौह भस्म मिलाकर खरल कर रख ले। २५० किंवा ५०० मि० ग्राम यह लेकर ऊपर से दूध पीवें। —रसेन्द्र चिन्तामणि

(६) **आरोग्यवर्द्धिनी वटी रस**—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गधक १ भाग, लोह भस्म १ भाग, अभ्रक भस्म १ भाग, ताम्र भस्म १ भाग, बडी हर्रे का दल २ भाग, बहेडादल २ भाग, आवला दल २ भाग, शिलाजीत ३ भाग, शुद्ध, गूगल ४ भाग, चित्रक के मूल की छाल ४ भाग और कुटकी २२ भाग ले। प्रथम पारे गधक की कज्जली बना, उसमे अन्य भस्मे शिलाजीत और शेष द्रव्यो का कपडछान चूर्ण मिलावे। पीछे गूगल को नीम की ताजी पत्ती के स्वरस मे ६ घटा भिगो, हाथ से मसल, कपड से छान, उसमे अन्य द्रव्य मिला कर मर्दन करे। नीम की ताजी पत्ती के रस मे ३ दिन घोट सुखाकर चूर्ण रूप मे रखले या ३६०-३६० मि० ग्राम की गोलिया बना छाया मे सुखाकर रख ले।

मात्रा—१-२ गोली। (३६०-६२० मि० ग्राम)।

अनुपान—रोगानुसार जल, दूध, पुनर्नवादि क्वाथ या केवल पुनर्नवा का क्वाथ, दशमूलक्वाथ मूत्रलकषाय आदि।

गुण और उपयोग—आरोग्यवर्द्धिनी उत्तम पाचन, दीपन शरीर के स्रोतो का शोधन करने वाली, हृदय को बल देने वाली, मेद को कम करने वाली और मलो की शुद्धि करने वाली है। यकृत, प्लीहा, वस्ति वृक्क, गर्भाशय, अन्त्र, हृदय आदि शरीर के किसी भी अन्तर अवयव के शोथ मे, जलोदर मे, तीव्र ज्वर और पाण्डु रोग मे इस योग से अधिक लाभ होता है।

—सिद्ध योग सग्रह।

कटुका के पेटेण्ट प्रयोग—बहुत सी आयुर्वेदिक औषधि निर्माणशालाये शास्त्रीय प्रयोगो के अतिरिक्त पेटेण्ट औषधियो का भी निर्माण करती है, कई तो केवल पेटेण्ट औषधियो को ही बनाती है। समय की माग के अनुसार सूचिकाभरण (इञ्जेक्शन) कवच (कैपशूल) एव वटिका (टेवलेट) आदि का निर्माण करती है। कतिपय निर्माणशालाओ ने पाश्चात्य पद्धति के अनुसार नामकरण किंवा प्रचारसामग्री प्रस्तुत की है। इन औषधि निर्माणशालाओ ने आयुर्वेद के प्रचार करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

जी० ए० मिश्रा फार्मेसी, प्रताप फार्मा० देहरादून, मार्तण्ड फार्मा, बडौत, ए० बी० एम० हापुड, बुन्देलखण्ड फार्मा, झासी आदि उच्च कोटि के इञ्जेक्शनो का निर्माण करती है। इनमे बुन्देलखण्ड फार्मेस्युटिकल 'नाय स्पेशल" नामक विषम ज्वरोपयोगी इञ्जेक्शन बनाती है। इस इञ्जेक्शन मे १५ मि० ग्रा० नायसत्व, १० मि० ग्राम चिरायता क्षार तथा १५ मि० ग्रा० कटुकाक्षार डाला जाता है।

जनहित फार्मेस्युटिकल्स हापुड, विषम ज्वर (मलेरिया) मे लाभप्रद ऐलस्टोक्वीन कैपसूल (Alstoquine Capsule) का निर्माण करती है। इस कैपसूल मे सप्तवर्ण, कालमेघ, महासुदर्शन चूर्ण आदि घनसत्वो के साथ कुटकी घनसत्व भी डाला जाता है। १-१ कैपसूल दिन मे ३-४ बार उष्णजल से देना हितकर है। सक्रमण

के समय इसके सेनन मे कोई भय नही रहता है। गर्ग वनौषधि भण्डार, विजयगढ ने "विषम ज्वर" "चर्म-रोगान्तक", "पाण्डुहारी" नामक कैपसूलो को निर्माण कर प्रसारित किया है। इनमे कटुका भी प्रमुख घटक द्रव्य है। ये उक्त रोगो मे समुचित अनुपान से उपयोग मे लाने चाहिये। ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ भी "पाण्डुनील", "अर्शान्तक" कैपसूलो मे कटुका को सम्मिश्रित कर कटुका के महत्व को प्रदर्शित करता है। पकज फार्मा, अलीगढ ने जिस "अर्शहारी कैपसूल" का निर्माण किया है, उसमे भी कटुका है। निर्मल आयुर्वेद सस्थान, अलीगढ ने भी वहुत से कैपसूलो का निर्माण किया है। इनमे से निम्नाकित कैपसूलो मे कटुका मिलाई जाती है।

भारतीय औषध निर्माणशाला राजकोट (गुजरात) ने ज्वर सम्वन्धी दशाओ के उपचार मे एक आदर्श निर्माण प्रस्तुत किया है—"फ्यूवरील टिकिया"। इसमे अन्य औषधि द्रव्यो के साथ कटुका का भी सम्मिश्रण किया जाता है जिससे जीर्ण ज्वर मे यकृत् सम्वन्धी अव्यवस्था दूर होती है। इसी प्रकार यकृत् सम्बन्धी उत्तेजक औषधि है—"लिवेक्स टिकिया" इसमे रेचक, कृमिनाशक एव स्वास्थ्यवर्धक कटुका को भी मिलाया जाता है। सर्पगन्धा, पुनर्नवा, जटामासी, अर्जुन एव कटुका आदि द्रव्यो से निर्मित अलारसिन की आर्जिन टिकिया साधारण रक्तचापाधिक्य का शमन करती है। गेम्वर्स लेवोटरीज वम्वई के "लिवरटोन" एव "गेसो-फिक्स" नामक वटिका पेटेण्ट प्रयोगो मे कटुका मुख्य घटक के रूप मे शोभित है। काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स अमृतसर मलेरिया व अन्य ज्वरो को दूर करने मे श्रेष्ठ "रेमडेज" नामक वटिका का निर्माण करता है, जो गोदन्ती, कटुका, हरताल आदि द्रव्यो से ही निर्मित है। आर्य औषधि फार्मास्युटिकल वर्क्स, इन्दौर ज्वरघ्न, स्वेदल, वेदनाहर "फिवरीन" नामक शुगर कोटेड टिकिया मे कुटकी की भावना देकर वनाता है। इसी प्रकार यही फार्मेसी यकृत् सुधारक अग्नि प्रदीपक "लिवीन" नामक टिकिया भी वनाती है जिसमे कुटकी की प्रधानता है।

"सर्वज्वरहरी गोली" भी विषमज्वर मे लाभप्रद है, इसे देशरक्षक औषधालय, कनखल वनाता है। विषम ज्वरोपयोगी सप्तपर्ण वटी (ऊझा आयुर्वेदिक फार्मेसी) का भी कुटका घटक द्रव्य है। प्रसिद्ध चरक फार्मास्युटि-कल्स के बहुत से पेटेण्ट प्रयोगो मे भी कटुका का उप-योग किया जाता है, ये प्रयोग है—फ्युरिल गोलिया (मलेरिया, इन्फ्लुएञ्जा, सर्दी-जुकाम आदि मे लाभप्रद), लिवोमीन गोलिया (यकृत् विकारो मे लाभप्रद), मेनाल गोलिया (दौर्बल्यहर) सपेरा गोलिया (रक्तचापाधिक्यो-पयोगी), आदि मे भी कटुका यत् किंचित् मात्रा मे सम्मिलित की जाती है।

दीनदयाल औषधालय ग्वालियर के रक्तशोधक नामक पेय मे कुटकी शोभा पाती है। यह रक्तविकारो के शमन करने मे श्रेष्ठ है। खुजली के अत्युत्तम पेय सारिको (निर्मूति फार्मेसी, वीकानेर) मे भी कटुका मिलाई जाती है। साण्डू (द० कृ० सा० व्र० चे० प्रा० लि०) वम्वई भी रक्तशुद्धि पर मिश्रण तैयार करती है। इसके प्रमुख घटक द्रव्यो मे कटुका भी एक घटक द्रव्य है। चरक फार्मास्युटिकल्स "प्युरिला" नामक सीरप का निर्माण करता है। यह वार-वार होने वाले तथा पुराने चर्मरोगो के लिए श्रेष्ठ औषधि है। इस पेय का कटुका घटक है। लिवोमीन गोलियो की भाति लिवो-मीन ड्राप्स एव सीरप मे भी कटुका मिलाई जाती है। इसके सेवन से यकृत् सामान्य रूप मे काम करने लगता है। इससे पित्त का स्राव, आन्त्रगति, पाचन क्रिया सुधरती है। दस्त साफ आते है और भूख लगती है। यह यकृत् के विषप्रतिकारक शक्ति को वढाने मे श्रेष्ठ है। सूजन और जकडन इससे मिटते हैं। कटुका, चिरा-यता, अमृता द्रोणपुष्पी आदि सुप्रसिद्ध ज्वरनाशक वनस्पतियो से निर्मित "ज्वरहारी" नामक पेय श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, अलीगढ द्वारा वनाया जाता है। यह ज्वर-जूडी, तिजारी, चौथैया तथा यकृत् प्लीहा वृद्धि के लिए अक्सीर प्रमाणित सुपरीक्षित औषधि है।

श्री अश्विनी आयुर्वेद भवन, जयपुर (राज०) शास्त्रीय विधि से तैयार उत्तम औषधियो की प्राप्ति का

प्रामाणिक प्रतिष्ठान है। इस प्रतिष्ठान के महत्वपूर्ण कई औषध अनुसन्धानो मे एक "कटुका-कज्जली" भी है। जो अजीर्ण, आन्त्रदौर्बल्य, यकृत्प्लीहावृद्धि नाशक तथा उत्तम उदरशोधक प्रयोग है।

अनुभूत प्रयोग--

१. ज्वरारिष्ट—कुटकी ३० ग्राम, नीम की अन्तरछाल ३० ग्राम, अमृता (गिलोय) ताजी ३० ग्राम, कड्वा चिरायता ३० ग्राम, इन्द्रयव ३० ग्राम—इनको कूटकर १६ गुना पानी मे पकावे जब आधा शेष रह जाय तो छानकर उसमे ५०० ग्राम नमक मिला दे और २-३ बार वस्त्र मे छानकर डाले।

मात्रा—३० ग्राम दिन मे तीन बार पिलावे। इससे मलेरिया, विषमज्वर शर्तिया दूर होता है। परीक्षित है। —प० श्री ओकारप्रकाश आयुर्वेद शास्त्री द्वारा

धन्व० मार्च ५० से।

२ यकृत् विकारहर—कुटकी ३ ग्राम, मुनक्का ५ दाने दोनो को ३६ ग्राम जल मे पकाकर १२ ग्राम शेष रहने पर छानकर छोटे बालक को ३ ग्राम बडे को ६ ग्राम पिलाना चाहिये। इस प्रकार ३ बार देवे। इससे यकृत् विकार दूर होता है। मेरा अनुभूत है।

—डा० श्री अशोककुमार द्वारा

धन्व० सित० ७७ से।

३. पाण्डुनौल कैपसूल (रक्तवर्धक कामला-नाशक)—भुनी हुई कुटकी १० ग्राम माण्डूरभस्म १० ग्राम, जवाखार १० ग्राम सबको खूब घोटकर महीन पाउडर बनाकर ५-५ ग्रेन के कैपसूल बनाकर सुरक्षित रखे।

२-२ कैपसूल दिन मे ३ बार गरम पानी के साथ।

ये कैपसूल यकृत् विकार सुधारक रक्तवर्धक लौह की कमी पूरा करने वाले है। रक्तरजक अणुओ की वृद्धि करते है। पीलिया, पाण्डु (कामला) मे बडे लाभ के साथ इनका प्रयोग किया जाता है।

—डा० श्रीमती निर्मलादेवी वर्मा द्वारा

निराला जोगी फर० ७४ से।

४. पाण्डुघ्न कैपसूल—कुटकी १२ ग्राम, हीरा-कसीसभस्म ६ ग्राम, भुनी फिटकरी, पुनर्नवाक्षार एव गोखरुक्षार प्रत्येक ३-३ ग्राम लेकर प्रथम कुटकी को बारीक पीसकर, शेष वस्तुए मिलाकर विजयसार के क्वाथ मे २ दिन खरल कर धूपित करे एव पुन एक दिन गिलोय स्वरस मे अच्छी तरह घोट ले और शुष्क होने पर ५-५ ग्रेन की मात्रा मे कैपसूल बना ले।

१-२ कैपसूल दोनो समय जल के साथ दे। यह पाण्डुरोग, कामला, मन्दाग्नि, यकृत्प्लीहा के रोग, रक्ताल्पता, सूजन एव मूत्राल्पता आदि को दूर करने मे अत्यन्त लाभकर है।

—कविराज श्री रुद्रनारायणसिह द्वारा

सुधानिधि जौलाई ७५ से।

५. अम्लपित्त में औषधि व्यवस्था—कटुरोहिणी (कुटकी) १॥ ग्राम, पटोल (पचाग) १॥ ग्राम, सर्जक्षार (सोडाबाईकार्ब) १॥ ग्राम।

ऐसी ३ पुडिया, प्रात मध्यान्ह, साय मितोपलाजल के अनुपान से दें। कदाचित् मलावस्तभ विशेष हो तो पुडिया तीन के स्थान पर चार करते हुये एक पुडिया रात को भी इसी अनुपान से दे। अथवा कुटकी १॥ ग्राम के स्थान पर २ से ३ ग्राम कर दे।

—वैद्य श्री रणजीतराय देसाई द्वारा

सचित्र आयुर्वेद जून ६८ से।

६. कामला पर अनुभव सुमन—१२ ग्राम कुटकी को घृत भृष्ट करके चूर्ण बनाकर चार मात्रा प्रतिदिन समान शर्करा मिलाकर गन्ने के रस के साथ देना चाहिये। दिन भर इच्छानुसार गन्ने का रस पिलाया जा सकता है। इस प्रकार चार दिन के प्रयोग से ही प्रवृद्ध पित्त कोष्ठ मे आ जाता है। कुटकी शोथघ्न एव लेखन का कार्य करने से पित्तनलिका के शोथ को दूर कर अवरोध को दूर करने का कार्य करती है साथ ही रेचक भी होने से कोष्ठ से भी मल द्वारा पित्त को बाहर निकाल देती है।

कुटकी का प्रयोग लगभग ५० रोगियो पर करके देखा गया है, शतप्रतिशत लाभप्रद है बशर्ते यकृत्क्षय

(Liver Atrophy) यकृत् अर्बुद (Cirrhosis of Liver) आदि के कारण से कामला न हो तो।

—वैद्य श्री अम्बाशकर दवे द्वारा
स्वास्थ्य दिम० ७६ से।

७. मलेरिया नाशक—कुटकी ६० ग्राम, लाल-फिटकरी का फूला १२ ग्राम, काले मुनक्का बीज रहित १२० ग्राम।

निर्माण विधि—कुटकी को प्रथम कूट-पीसकर कपडे मे छान ले और खरल मे फिटकरी को पीसकर उसमे कुटकी का चूर्ण मिला दे फिर बीज निकालकर मुनक्का मिलाकर एक दिन कूटे और जरबेरी के बराबर गोली बनाकर छाया मे सुखा ले।

मात्रा—२ से ४ गोली तक। दिन मे ३ बार जल के साथ दे।

गुण—मलेरिया ज्वर, एकतरा, तृतीयक आदि शीत ज्वर को शीघ्र रोक देती है।

—प० श्री सुन्दरलाल जी जैन द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से।

८. श्वित्रारि—कुटकी १ भाग, बाकुची २ भाग, पनवाड (पमार, पवाड) बीज १ भाग, शुद्ध गधक १ भाग, अरिष्ट (रीठा) १ भाग, गैरिक १ भाग, कचूर आधा भाग, कालीजीरी १ भाग, रसमाणिक्य आठवा भाग।

निर्माण विधि—उपरोक्त सभी औषधियो को इकट्ठा कर बारीक चूर्ण बनाकर ७२०-७२० मि० ग्रा० की गोलिया बना लें, गोलिया बनाने के लिए गोद मिलाया जा सकता है।

प्रयोग विधि—२-२ गोलिया दिन मे तीन बार पानी के साथ छोटे बडो की मात्रा स्वय विचार ले।

बाह्य प्रयोग—यही चूर्ण या गोली पीसकर गोमूत्र मे मिलाकर दागो पर नित्य लगावे।

गुण—श्वित्र (फुलवहरी) की अचूक औषधि है। शतोनुभूत है। तीन चार माह प्रयोग करना पडता है। पामा, खाज, रक्त विकार पर भी लाभ होता है।

—श्री त्रिलोक सुधीर द्वारा
धन्व० सफलसिद्ध प्रयोगाक से।

९. कोष्ठशान्तिकर चूर्ण—कुटकी ६० ग्राम, अजवायन (यवानिका) ६० ग्राम, सनाय की पत्ती १२० ग्राम को कूटकर कपडे मे छान ले।

आमयिक प्रयोग—

यकृदाल्युदर मे—इसे सिरोसीस ऑफ दी लीवर भी कहते है। इस चूर्ण को ८ आने भर की मात्रा मे १२ बजे दिन एव ६ बजे रात मे गर्म जल से देना चाहिये। यकृत् की वृद्धि कम हो जाती है। पेट से काला, सफेद, मटमैला बदबूदार मल निकलता है। धीरे-धीरे यकृत् के चलते होने वाला ज्वर समाप्त हो जाता है। यकृत् के कारण पेट मे यदि पानी आ गया हो तो सूजन कम हो जाती है।

वातकफज अर्श मे—अर्श मे पाखाने की राह में मस्से होकर पखाने को रोक देते है। लीवर मे आम का सचय होकर भूख बन्द हो जाती है। इस चूर्ण को १२ बजे दिन मे और ६ बजे रात मे गरम पानी से आठ आने भर या १२ ग्राम की मात्रा मे प्रयोग करने पर मस्से सूख जाते है। पेट मे लाल काली पीव की तरह आव निकलती है। पखाना साफ होने लगता है। रोगी को प्रसन्नता होने लगती है पुराने से पुरानी आव आदि पेट मे जमा हो तो कोष्ठशान्तिकर चूर्ण निकाल देता है।

श्वासरोग मे—त्रिदोषज श्वास मे यदि वायु का वेग हो, श्वास गति की तीव्रता हो तो इस चूर्ण को १२ ग्राम की मात्रा मे लेकर दूध मिश्री से घोलकर पिला दे। रोगी को पेट ऐठकर पखाना होगा खूब आव गिरेगी और श्वास का दौरा कम हो जायेगा। पेट साफ होने से भूख तीव्र हो जायगी। मुखपाक समाप्त हो जायेगा।

हृदय के रोगी को पेट साफ रखने के लिए इसे जरूर दे। आव निकलने से पेट की वायु का दबाव हृदय पर नही पडता है और हृदय हल्का लगता है।

—श्री दारोगा प्रसाद मिश्र जी द्वारा
धन्व० सफल सिद्ध प्रयोगाक से।

१०. यकृद्विकारहरी वटी—कुटकी २४० ग्राम, काला नमक और सेंधा नमक ४८-४८ ग्राम और भुनी हीग २४ ग्राम ले। सबको मिला गोमूत्र, चित्रक मूल

का क्वाथ और घीग्वार का रस तीनो की ३-३ भावना देकर १२०-१२० मिली ग्राम की गोलिया वना लेवें।

२-२ गोली दिन मे २ या तीन वार निवाये जल या कुमार्यासव के साथ।

यह वटी यकृत और प्लीहा वृद्धि तथा गुल्म आदि को दूर करती है। यकृत की वृद्धि होने पर जव पचन क्रिया योग्य काम नही करती, यकृत पर दवाने पर दर्द करता है, तथा कब्ज रहती है, तव इस वटी का सेवन कराया जाता है।

—रसतन्त्रसार द्वितीय खण्ड।

११ ज्वरहारी—कुटकी ६ ग्राम, फिटकरी भुनी हुई ३ ग्राम, सुहागा भुना हुआ ३ ग्राम, कलमी शोरा १० ग्राम, काफूर १ ग्राम, मग्ज करोजा ४ ग्राम, अतीस ३ ग्राम—सभी औषधियो को कूट पीस कर पूरा एक दिन खरल करें। आधा ग्राम दवा ताजा पानी के साथ दिन मे ३-४ वार दें। सभी प्रकार के वुखारो के लिए रामबाणः दवा है।

—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।

१२. कामलाहर मोदक—कुटकी चूर्ण, धनिया पिसा हुआ तथा गुड समान भाग का मोदक वनाकर सुवह शाम ५०-६० ग्राम की मात्रा मे देने से कामला मे लाभ होता है।

—श्री उदयलाल जी महात्मा द्वारा
(धन्व० अनुभवाक मे)

१३. जलोदरारि क्वाथ—कुटकी १० ग्राम, निशोथ, भारगी, देवदारु, दारुहल्दी, चीतामूल, वडी-हरड, सफेद पुनर्नवा मूल, कटहेरी की जड प्रत्येक ३-३ ग्राम, एरण्ड मूल, गिलोय, रास्ना की जड ६-६ ग्राम अधकुटा कर ५०० ग्राम पानी मे प्रात काल भिगो दे, साय काल क्वाथ वनाकर रोगी को दे।

कुछ दिनो के सेवन से ही जलोदर मे लाभ होने लगता है।

—सुधानिधि प्रयोग सग्रह अक (द्वितीय भाग)

१४. श्वेतकुष्ठ पर सफल प्रयोग—कुटकी, कसीस और तुलसीपत्र—इन तीनो को जल मे महीन पीसकर प्रतिदिन प्रात रुग्ण स्थान पर लेप करे तथा रात्रि मे गैरिक को जल से पीसकर लगावे। कुछ दिनो तक निरन्तर व्यवहार करने से अवश्यमेव श्वेत कुष्ठ से मुक्ति मिल जाती है। यह परीक्षित है।

—श्री प० भृगुनाथ पाठक द्वारा
धन्व० गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क से।

१५. मलेरिया (मौसमी) बुखार पर प्रयोग—कुटकी, चिरायता, नागकेशर, पित्तपापडा, गिलोय। प्रत्येक समान भाग लेकर उपयोग मे लावे। क्वाथ हेतु यवकुट कर ले तथा चूर्ण हेतु वस्त्रपूत कर ले। उष्ण प्रदेश मे हिम वनाकर, समशीतोष्ण प्रदेश मे चूर्ण की फकी पानी के साथ तथा शीत प्रदेश मे क्वाथ वनाकर दे। हिम किंवा क्वाथ के लिए २४-२४ ग्राम तथा फकी के लिए ३ ग्राम दिन मे दो बार लेकर उपयोग मे लावे। ३-४-दिन देने से मलेरिया नष्ट हो जाता है।

—श्री अज्ञानी उदासीन बावा।

१६. उदरकृमिहर—कुटकी क्वाथ डेड किलो, कुमारी स्वरस आधा किलो, चित्रक क्वाथ आधा किलो, निम्बमूल क्वाथ आधा किलो। इन द्रव्यो को वाष्प सवेदन यन्त्र द्वारा घन वनाकर इनमे वायविडङ्ग, इन्द्र-यव, पलाश, पीपल प्रत्येक ८०-८० ग्राम। इन सब का चूर्ण डालकर छोटे वेर के समान वटी वनाकर प्रात-साय उष्ण जल के साथ देने से पेट के सभी तरह के कीडे गिर जाते हे।

—प० श्री शशीन्द्र पाठक शास्त्री द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से।

१७. विषमज्वरहर—ज्वर पर हजारो प्रयोग आयुर्वेद मे है और एक से एक वढकर हैं। नीचे लिखा काढा हमारा हजारो बार का अनुभूत है और विषम-ज्वर और सामान्य ज्वर दोनो मे समान रूप से उप-कारी हैं। कुनीन का प्रयोग इसके सामने फीका पड जाता है।

गुडूची ताजी हरी, धनिया, नीम की अन्तरछाल, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ प्रत्येक समान भाग। सबको एकत्र कर यवकुट कर लेना चाहिए। इसमे से २४ ग्राम मिलित औषधि लेकर २४० ग्राम जल मे मिट्टी के वर्तन मे शाम को भिगो दीजिये। प्रात काल धीमी आच मे (कण्डी की आच हो तो अच्छा है) काढा बना लीजिये। जब ६० ग्राम जल शेष रह जाय तो उतार कर छान लीजिये और ठण्डा होने पर पिला दीजिये। जो औषधि वर्तन मे बची है उस मे २५० ग्राम पानी और डाल दीजिये और भीगने दीजिये शाम को इसका काढा बनाकर पिलाइये।

—कविराज श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय द्वारा
धन्व० ग्प्तसिद्ध प्रयोगाक से।

१८. प्लीहावृद्धि सहित ज्वरनाशक योग—कुटकी, गिलोय व श्वेत पुनर्नवा ४-४ ग्राम, दारुहल्दी १२ ग्राम ५०० ग्राम पानी मे चतुर्थाश क्वाथ सिद्ध कर छानकर शीतल होने पर ६ ग्राम मधु मिला दोनो समय पिलावे। बहुत बढी हुई तिल्ली, हाथ-पैरो मे सूजन, शरीर पीला, क्षुधानाश, कोष्ठबद्धता हो एव सूक्ष्म ज्वर हमेशा बना रहता हो या उतर चढ जाता हो, क्विनीन बेकार हो चुकी हो, ऐसी दशा मे इस योग से सैकडो को लाभ पहुँचता है।

—वैद्य श्री मोहरसिह आर्य द्वारा
धन्व० वनौ० विशेषाक से।

१९. बालरेचनी वटी—शुद्ध जयपाल १२ ग्राम, कुटकी २४ ग्राम, शुद्ध स्वर्णगैरिक १२ ग्राम। कूट-पीस कर बारीक करें, बाद मे घृतकुमारी के स्वरस मे घोटकर मूग प्रमाण वटी बनावे।

मात्रा—१-२ गोली तक अवस्थानुसार प्रयोग करें।

अनुपान—माता का दूध या गर्म पानी मे घिस कर दे।

उपयोग—बच्चो की कब्जियत (मलावरोध), कफ बोलना, अफरा, पसली (डब्बा) को दूर करने मे अति हितकर है।

—प० श्री परशुराम जोशी द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक से।

२०. कर्णमूल शोथहर—कुटकी, कायफल, कासनी और कोयल (विष्णुक्रान्ता) के बीज समभाग लेकर आक के दूध मे पीसकर लेप करने से कर्णमूल शोथ का शमन होता है।

प० श्री भागीरथ स्वामी।



कण्टकारी

[Solanum xanthocarpum Schrad & Wendle]

N. O. -- SOLANACEAE



आयुर्वेद चिकित्सकों को वनौषधियो के कुछ वर्ग बहुत प्रिय है। इनमे त्रिफला, त्रिकटु, चातुर्जात, विविध पचमूलो के साथ एक दशमूल भी है। दशमूल मे जो द्रव्य आते है उन्हे सभी वैद्य जानते है। मेरे मन मे प्रश्न उठता रहा था कि यदि बेल, पाटला, गम्भारी, अरलू और अरणी की मूलो का ही व्यवहार होता रहा तो २-४ वर्ष मे ही इन बडे वृक्षो का नाम शेष ही रह जायगा। अब यह मेरी शका समाधान को प्राप्त हो गई है और मैंने यह धारणा बना ली है कि प्राचीन काल मे बडे-बडे नगरो का सर्वथा अभाव था और लोगो का पूरा समाज जगलो से जुडा हुआ था। चिकित्सकगण भी जगलो मे जुडे थे। एक-एक पेड के नीचे उनके फल और बीज गिर कर उन्ही के असख्य पौधो को उगा देते थे। इनमे बेल, गम्भारी, श्योनाक और पाटला के पौधे स्वत उग आते थे। इन्ही की जडो का वैद्यगण इस्तेमाल करते थे। आज भी जिनके पास भूमि हो इस प्रकार १००-२०० पौधे पास-पास उगाये जाकर उनकी मूलो का सग्रह और प्रयोग किया जा सकता है। यदि ऐसा कर लिया जाय तो दशमूल द्रव्यो मे बृहत्पञ्चमूल के पेडो की छाल लेने की आवश्यकता नही पडेगी और हम दशो द्रव्यो की मूलो से ही दशमूल तैयार कर प्रयोग करने मे सफल होगे।

मैंने एक पत्र मे भारत के युवा प्रधानमन्त्री राजीवगाधी को यह परामर्श दिया है कि वे २५००० ऐसे ग्रामो को प्रतिवर्ष लें जिनकी आबादी २ से ५ हजार से अधिक न हो। इनके सर्वतोमुखी विकास की योजना बनावे ताकि वहा कोई बेकार न रहे और गरीबी का उनमूलन कारगर ढग से किया जा सके। खेती अच्छी हो, ग्राम का वातावरण स्वास्थ्यप्रद हो। यहा के ग्रामीण स्वस्थ और दीर्घायु हो। इसी सन्दर्भ मे एक सुझाव यह दिया कि ग्राम की कुछ भूमि दुधारू पशुओ के लिए चरागाह के रूप मे और कुछ वनौषधियो को उगाने के लिए सुरक्षित कर दी जावे उनमे तुलसी, लभेडा, दशमूल की दवाए, गुडूची, विधारा आदि की बेले उगवाइ जावे।

लघुपचमुल की वनौषधिया शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारी, बृहती और गोक्षुर वर्षा ऋतु मे आकाशीय जल के प्रभाव से स्वत उग आती है। उत्तरप्रदेश की मेड-मेड पर कटेरी के कण्टकावृत पौधे अपने नीलाभ पुष्पो के साथ उगे रहते हैं। उनकी रक्षा फल लगने और फलो के पकने तक की जानी चाहिए। बृहती का क्षेत्र हिमालय की पूरी तराई है। पर वहा बडे-बडे फार्म बनाकर सरकार ने इन वनौषधियो का सफाया कर दिया है। ऐसी अवस्था मे इनका वपन कर उगाने की व्यवस्था को प्रोत्साहन देना चाहिए।

आज लघुपचमूल के पचाग का प्रयोग करना पडता है क्योकि मूल सुलभ नही रह गई। एक समय था जब सर्दी आरम्भ होने पर होने वाली खासी की रोक-थाम के लिए घर-घर मे कटेरी और बडी कटेरी (जो जहा सुलभ हो) का फाण्ट (चाय) बनाकर गुड या शहद डालकर पीते थे। सास (दमे) के रोगी इसकी जड का क्वाथ लेकर अपने कण्ट से त्राण पाते थे।

इस विशेपाक मे दशमूल की पहली दवा का वर्णानुक्रम से वर्णन किया जा रहा है। इस अवसर पर हम दशमूल के विविध द्रव्यो के गुण-कर्मो पर थोडा प्रकाश डालना उचित समझते हैं। दशमूल की नीचे लिखी दवाए उष्णवीर्य हे--

बिल्वमूल, गम्भारीमूल, अग्निमन्थमूल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती और कण्टकारी।

पाटला अनुष्ण (न गरम और न ठण्डा) है। श्योनाक शीतवीर्य है तथा गोखरू भी ठण्डा है।

दोषो की दृष्टि से स्थिति इस प्रकार है—

आमघ्न—श्योनाक।

वातघ्न—श्योनाक, कण्टकारी, गोक्षुर।

पित्तघ्न—श्योनाक, बिल्व।

कफघ्न—श्योनाक, कण्टकारी।

वातपित्तघ्न—लघुपञ्चमूल।

वातकफघ्न—बिल्व, अग्निमन्थ, बृहत्पञ्चमूल, बृहती, कण्टकारी।

पित्तकफघ्न—श्योनाक।

त्रिदोषघ्न—गम्भारी, पाटला, श्योनाक, शालपर्णी, पृश्निपर्णी।

वातवर्धक—दशमूल, बिल्व।

पित्तवर्धक—बिल्व, कण्टकारी।

कफवर्धक—गोक्षुर।

जिन रोगो मे दशमूल के द्रव्यो को देकर वैद्य यश का भागी बन सकता है वे है:--

श्रम—गम्भारी।

बुद्धिमान्द्य—गम्भारी।

निद्राकर—बृहती।

शिर शूल—शालपर्णी (अर्धावभेदक) दशमूल।

प्रतिश्याय—कण्टकारी।

वातिक कास—बृहत्पचमूल, बृहती, कण्टकारी, दशमूल।

कफज काम— बृहत्पचमूल, बृहती, कण्टकारी, दशमूल।

पित्तज कास—कण्टकारी, गोक्षुर, दशमूल।

रक्तपित्त—पाटलापुष्प, गोक्षुर।

तमकश्वास, हिक्का—पाटला (फल, पुष्प), बृहत्पञ्चमूल, कण्टकारी, दशमू

क्षुद्रश्वास—दशमूल, कण्टकारी।

पाण्डुरोग—अग्निमन्थ।

हृद्रोग—पाटलापुष्प, कण्टकारी, गोक्षुर, दशमूल।

वृक्करोग—गोक्षुर, दशमूल।

प्रमेह—अग्निमन्थ, गोक्षुर।

स्थौल्य—अग्निमन्थ, दशमूल।

वमनहर—बिल्वमूल, पाटला, पृश्निपर्णी।

शूलहर—बिल्वमूल, बृहती।
अर्शोघ्न—पाटला, अग्निमन्थ, पृश्निपर्णी, (रक्तार्श), कण्टकारी, गोक्षुर।
मूत्रकृच्छ्रहर—बिल्वमूल, कण्टकारी, गोक्षुर।
विषघ्न—गम्भारी, पाटला, शालपर्णी, बृहती, दशमूल।
अतीसारघ्न—बिल्व, शालपर्णी, पृश्निपर्णी।
शोथघ्न—बिल्व, पाटला, अग्निमन्थ, दशमूल।
ज्वरघ्न—गम्भारी, बिल्व, पृश्निपर्णी, लघुपंचमूल, दशमूल (सूतिका ज्वर)।
गर्भशोष—गम्भारी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारी।
बालशोष—गम्भारी, शालपर्णी, गोक्षुर।
वातरक्त—गम्भारी, पृश्निपर्णी।
आमवात—गोक्षुर।
क्षतक्षय, यक्ष्मा—गम्भारी।

मेरा जो वक्तव्य है उसको मात्र इस लेख का आमुख मानना चाहिए। कण्टकारी पर श्री पारीक ने जो गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है वह कमाल का है साथ सरल और हृदयग्राह्य भी। —र० प्र० त्रिवेदी।

सूफी सन्त कवि जायसी ने कहा है कि—

चांद जइस जग विधि अवतारा।
दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा॥

इसी भांति स्वयं कण्टकयुक्त कण्टकारी भी आतुर के जीवन पथ में पुष्प बिछा देती है। आचार्य प्रवर प्रियव्रत जी इसके गुणों से मुग्ध होकर जय-जयकार कर रहे हैं—

स्वयमपि कण्टकनिचिता शेते भूमावुपेक्षिता लोके।
सर्वान् कण्ठकरोगैर्विरुजयन्तीति सा जयति॥

यह छोटे बड़े भेद से दो प्रकार की है, किन्तु कण्टकारी के नाम से छोटी का ही बोध होना है। कासहर, कण्ठ्य, हिक्काहरण, शोथहर, शीतप्रशमन, अङ्गमर्दप्रशमन गणों में भगवान् चरक ने कण्टकारी का उल्लेख किया है। महर्षि सुश्रुत ने वरुणादिगण में बृहतीद्वय का उल्लेख किया है—बृहतीद्वय कण्टकारिकया सह बृहती (चक्र)। शास्त्रों में जहां पर भी बृहतीद्वय का उल्लेख मिलता है, उससे उक्त दोनों कण्टकारिका ग्रहण की जाती है। पाचनीय बृहत्यादिगण में भी कण्टकारिका है—"बृहती-कण्टकारिका कुटजफलपाठामधुकं चेति।" लघुपञ्चमूल के अन्तर्गत भी कण्टकारी है। चरक चि० स्था० अ० ३ में भी सन्निपातज्वरापह बृहत्यादिगण का वर्णन मिलता है। यहां पर पहले लघुकण्टकारी का वर्णन किया जा रहा है।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह कण्टकारी कुल (सोलेनेसी–Solanaceae) की औषधि है। आचार्य भावमिश्र ने गुडूच्यादि वर्ग में कण्टकारी का वर्णन किया है तथा आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने "कासहर" द्रव्यों के अन्तर्गत द्रव्यगुणविज्ञान में कण्टकारी का विषद वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री (व्याघ्र के समान स्वर बनाने वाली), निदिग्धिका (शीघ्र बढ़ने वाली)—

व्याघ्री निदिग्धिका क्षुद्रा धावनी कण्टकारिका।
दुष्टस्पर्शा कण्टकिनी सिंही तु बहुकण्टका॥
—अभिधानरत्नमाला॥

निदिग्धिका स्पृशी व्याघ्री बृहती कण्टकारिका।
प्रचोदनी कुलीक्षुद्रा दुःस्पर्शा राष्ट्रिकेत्यपि॥
—अमरकोष।

"बृहती तु निदिग्धिका" इति भागुरिवाक्यादत्र ग्रन्थकृद्भ्रान्त, यतोऽनयोर्महान् भेद इति।
—क्षीरस्वामी।

हिन्दी—छोटी कटेरी, भटकटैया, रेगनी।

राजस्थानी—पसरकटाली, रीगणी।

पंजाबी—कण्डियारी।

गुजराती—भोमारिंगणी।

मराठी—भुईरिंगणी।

बंगला—कण्टिकारी।

तामिल—कान्दनकाटिरि।

तेलगु—कूदा।

अरबी—बादजान वर्री।

फारसी—बादगान बर्री।

अंग्रेजी—यलो-बेरीड नाइट शेड (Yellow-berried Night Shade)।

लैटिन—सोलेनम जैन्थोकार्पम (Solanum Xanthocarpum)।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारत मे पाई जाती है। उष्ण जलवायु मे बालू मिट्टी प्रधान भूमि पर विशेपतया उत्पन्न होती है।

रासायनिक सगठन—इसके पञ्चाग मे वसा तथा रालयुक्त पदार्थ और डायोसजेनिन पाये जाते हैं। सूखे पचाङ्ग को जलाने पर १०.८ प्रतिशत भस्म प्राप्त होती है जिसमे पोटेशियम नाइट्रेट, पोटा कार्बोनेट और पोटा सल्फेट होता है। फलो मे सोलेनीन क्षार होता है। बीजो मे एक विशिष्ट गन्धयुक्त हरिताभ पीत तैल १९.३ प्रतिशत होता हे।

वानस्पतिक परिचय—इसका बहुवर्षायु, कण्टकित, भू पर प्रसरणशील क्षुप १-४ फुट के व्यास मे फैला, चमकीले हरे रङ्ग का होता है। कटक पीले रङ्ग के, लगभग ½ इञ्च लम्बे और कुछ छोटे भी होते है। मूलोद्गम शाखाये प्राय द्विविभक्त होती हैं। पत्र ४-५ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौडे रोमश, डिम्बाकृति, लट्ठाकार या आयताकार, खण्डित और पुन खण्डित या दन्तुर होते हैं।

पुष्प—नीलवर्ण बैगनी, पार्श्विक मजरियो मे, १-१½ इञ्च व्यास के तश्तरीनुमा होते हैं। पुकेशर पीतवर्ण होता है।

फल—गोलाकार, कच्ची अवस्था मे हरितवर्ण और श्वेत रेखाङ्कित तथा पकने पर पीत, मासल होते है। बीज छोटे, चिकने, अनेक, बैगन सदृश होते है।

इसमे दिसम्बर से जून तक पुष्प और फल आते है। इसके पश्चात् फल पककर पीले हो जाते है शिशिर किंवा हेमन्त मे क्षुप जीर्ण-शीर्ण हो जाता है।

भेद—श्वेतकण्टकारी[1]।

इसकी दो जातिया होती हैं। नीलपुष्पा कण्टकारी तथा श्वेतपुष्पा कण्टकारी। वर्णित कण्टकारी नीलपुष्पा कण्टकारी है। यह बहुतायत से उपलब्ध होती है। श्वेतपुष्पा कम उपलब्ध होती है। इसका प्रयोग लक्ष्मणा के स्थान पर किया जाता है।

निघण्टुकारो ने श्वेत कटकारी के पर्यायो मे "लक्ष्मणा" कहा है सुतरा बहुत से वैद्य इसे ही लक्ष्मणा मानकर उपयोग मे लाते है। वस्तुत लक्ष्मणा और श्वेत कटकारी पृथक् है। नीलपुष्पा कटकारी के गुणो के तुल्य ही श्वेतपुष्पा कटकारी को कहा गया है किन्तु "विशेपाद् गर्भकारिणी" कहकर श्वेतपुष्पा की नीलपुष्पा से विशेपतया प्रकट की गई है। श्वेत कटकारी मे गर्भकारक गुण तो है, किन्तु पुत्रदाता गुण नही है, सुतरा यह लक्ष्मणा से भिन्न है। लक्ष्मणा पुत्रदाता कही गई है और यह पुमवन कर्महेतु प्रयोग मे लाई जाती है। ग्रन्थो मे इन दोनो का पृथक्-पृथक् वर्णन भी इन दोनो मे पार्थक्य सिद्ध करता है। अष्टाङ्गसग्रह शारीर १-६१ मे पुसवन विधि मे लक्ष्मणा तथा श्वेत कटकारी का वर्णन एक साथ मिलना भी इनकी पृथक्ता का द्योतक है। लक्ष्मणा मधुररस, गुरु, सर, रूक्षादिगुणयुक्त, शीतवीर्य, मधुर विपाकी और कटकारी तिक्तकटुरस, लघुरूक्ष, तीक्ष्ण गुणयुक्त उष्णवीर्य तथा कटुविपाकी है। लक्ष्मणा एक दुर्लभ दिव्यौपधि हे। वस्तुत यह सदिग्ध वनौषधि

१—लक्ष्मणा शीर्षक से इसे आगे सन्दिग्ध द्रव्यो के प्रकरण मे विस्तार से लिखा जावेगा। —सम्पादक।



कण्टकारी (Solaunm surattense)

विभिन्न नाम : स०—कण्टकारी, क्षुद्रा । हिन्दी—छोटी कटेरी । मराठी—भुईरिंगणी । गुजराती—भोयरिंगणी । बंगला—कारण्टकारी । अंग्रेजी—यलो वेरीड । लेटिन—सोलेनम सुराटेन्स ।

प्राप्ति स्थान : समस्त भारत ।

उपयोगी अंग : पञ्चाङ्ग ।

दोषशमन . कफवातशामक ।

रोगोपयोग : कास, श्वास, हिक्का, रक्तचाप आदि ।

मुख्य योग : व्याघ्री हरीतकी, व्याघ्री तैल ।

है। एतावता गर्भप्रद होने से श्वेत कटकारी को लक्ष्मणा का प्रतिस्थापक माना जा सकता है। राजनिघण्टकार इसके गुण लिखते हैं—

श्वेतकण्टकारिका रुच्या कटूष्णा कफवातनुत्।
चक्षुष्या दीपनी ज्ञेया प्रोक्ता रसनियामिका॥

श्वेतकटकारी के मूल एव पुष्प दोनो ही वन्ध्यत्व-निवारण हेतु प्रयुक्त होते हैं। इसका ताजा मूल गोदुग्ध मे पीसकर ऋतुकाल के पश्चात् ७ दिन तक प्रात काल सेवन करने से गर्भधारण होता है। कतिपय चिकित्सको का मत है कि श्वेतकटकारी के पुष्पो को ऋतुकाल के पश्चात् प्रात-साय तीन दिन तक गोदुग्ध के साथ पिलाने से पुत्रोत्पत्ति होती है। एक समय मे ३ किंवा ५ पुष्प उपयोग मे लेने चाहिये। इन प्रयोगो मे दुग्ध ऐसा उपयोग मे लेना चाहिए जिस गाय के बछड़ा हो और वह भी जीवित हो। चिकित्सको का ऐसा मत है कि यह औषधि प्रति तीन माह तक रजस्वला होने के बाद सेवन करनी चाहिये एव सेवनकाल मे दुग्ध-भात ही उपयोग मे लावे।

अन्य प्रयोग—

(१) पूयमेह—इसके पञ्चाग का क्वाथ पूयमेह मे लाभप्रद है।

(२) कृमिदन्तक—इसके बीजों का धूम्रपान करने से कृमि नष्ट हो जाते है, कृमिदन्तजन्य शूल तत्काल दूर हो जाता है।

(३) श्वास-कास—श्वसन सस्थान के रोगो मे जब कण्ठ एव श्वासनलिका मे शुष्कता हो और कफ बाहर नहीं निकलता हो तो इसके मूल का क्वाथ पिलावे। या इसके पचाग का धूम्रपान करावे।

अनुभूत प्रयोग—

(१) सन्तानदाता घृत—आवाहल्दी १० ग्राम, हल्दी ५ ग्राम, चन्दन ५ ग्राम, मुरा ५ ग्राम, शिलाजीत ५ ग्राम, कपूर ५ ग्राम, मुस्ता ५ ग्राम, भद्रमोथा ५ ग्राम। गोदुग्ध ६ लीटर समस्त द्रव्यो का चूर्ण कर समप्रमाण श्वेतकण्टकारी के स्वरस मे घुटाई करे। इस प्रकार एक सप्ताह तक समप्रमाण श्वेतकण्टकारी के रस की भावना दे। तत्पश्चात् गोदुग्ध मे उबाल जामन लगाकर जमा दें। फिर दही को बिलोकर नवनीत प्राप्त करें। उनको (नवनीत को) गर्म (तपा) कर विशुद्ध घृत प्राप्त करें।

स्मरण रहे दुग्ध को उदुम्बर की लकडी के बने हुए पात्र मे जमावें और उदुम्बर की मथनी से ही मंथन करें।

एक किलो ग्राम घृत मे केसर २ ग्राम, कस्तूरी २ ग्राम, जायफल २ ग्राम, इलायचीदाने २ ग्राम, जावित्री २ ग्राम का सूक्ष्म श्लक्ष्ण चूर्ण कर मिलावें।

मात्रा—यथा रुचि।

अनुपान—खीर अथवा भात यथा रुचि।

समय—जिस रात्रि मे समागमन करना हो, उस दिन हवन करके फिर प्रात काल दोनो (पति पत्नी) खावे।

रजस्वला होने से १२ दिन तक इस घृत का सेवन करे। साथ मे ब्रह्मचर्य का पालन करें। यह घृत तथा खीर केवल प्रात काल ही यथा रुचि सेवन करें। अन्य पदार्थों मे भी मिताहार का ही नियम हो।

इस घृत के साथ शखपुष्पी तथा श्वेतकटेरी का रस वस्त्रपूत कर २ ग्राम ले स्त्री के दाहिने नथुने मे पति सेवन करे, सुघावें नस्य दे।

विशिष्ट मन्तव्य—यह घृत इस विधि से सर्वप्रथम सन् १९५७ ई० मे मास्टर नृसिंह जी सावड वालो को दिया गया ईश्वर कृपा से पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् तो अनेक स्त्रियो को दिया गया, कभी असफलता नही मिली।

—श्री मोहरसिंह आर्य द्वारा
सुधानिधि मई १९७५ से।

(२) गर्भस्थापनार्थ—श्वेतकटकारी की जड को पुष्यनक्षत्र के दिन उखाड लावे फिर इसे कन्या के हाथ से पिसवाकर ३ ग्राम लेकर बछडा वाली गाय एक रङ्ग की हो उसके दूध मे ऋतु समय मे चौथे दिन सेवन करने से वन्ध्या स्त्री को गर्भ धारण होता है।

—क्षुल्लक श्री सिद्धसागर जी द्वारा

पुन वर्ण्य विषय (नीलपुष्पा कण्टकारी) पर आवें।

रस—तिक्त कटु।

यद्यपि "षड्रसनिघण्टु" मे इसका रस कटु ही कहा गया है, किन्तु कटु अनुरस है। मुख्य रस तिक्त ही है।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—यह उष्णवीर्य होने से कफवातशामक है—

पित्तल कफवातघ्न वरुण करणोऽगुरु।
शिग्र्वर्कालर्ककण्टाली भूस्तृण मरिच क्षव ॥
—सिद्धमन्त्र ६०।

गोक्षुरक्षुरजौ व्याघ्री सिंहपुच्छीद्वय स्थिरा।
गोक्षुरादिरिति प्रोक्तो वातश्लेष्महरो गण ॥
—रसेन्द्रसारसग्रह ३२८।

प्रयोज्यअङ्ग—पञ्चाङ्ग।

मात्रा—क्वाथ ४०-८० मि० लि० पत्रस्वर ३-६ मि० लि० पुष्प, फल, मूल चूर्ण १-३ ग्राम।

गुणप्रकाशिका संज्ञा—व्याघ्री।

प्रतिनिधिद्रव्य—बृहती (बडी कन्टकारी) कूठ कण्टकारीमूल, निम्ब पञ्चाङ्ग।

दर्पनाशक—कर्पूर, धनिया।

गुणधर्म—

कण्टकारी कटुस्तिक्ता तथोष्णा श्वासकासजित्।
अरुचिज्वर वातामदोषहृद्गद नाशिनी ॥
—धन्व० निघण्टु।

कण्टकारी कटूष्णा च दीपनी श्वासकासजित्।
प्रतिश्यायार्तिदोषघ्नी कफवातज्वरार्तिनुत् ॥
—राज० निघण्टु।

कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघु।
रूक्षोष्णा पाचनी कास श्वासज्वरकफानिलान् ॥
निहन्ति पीनस पार्श्वपीडाकृमिहृदामयान।
तस्या फल कटुरसे पाके च कटुक भवेत् ॥
शुक्रस्य रेचन भेदि तिक्त पित्ताग्निकृल्लघु।
हन्यात् कफमरुत्कण्डूकासमेद कृमिज्वरान् ॥
—भाव० निघण्टु।

तिक्ता रूक्षा भेदनी च पाचनी पार्श्वरोगजित्।
कृच्छ्र पीठनसहत्री च मलपाके कटूष्णका ॥
—निघ० शिरोमणि।

पित्तल दीपन भेदि वातघ्न बृहतीद्वयम्।
—योगरत्नाकर।

पार्श्वार्तिपीनसहृदामय जन्तुषु स्या-
द्रूक्षा सरा तदुपमा लघु कण्टकारी।
—सि० भे० मणिमाला।

कण्टकारी कटुस्तिक्ता वीर्योष्णा कफवातनुत्।
हन्ति कासज्वर श्वासपीनसान् पार्श्वशूलहृत् ॥
—प्रियनिघण्टु।

कटकारी प्राणवहस्रोतस की महत्वपूर्ण औषधि है। इस सोतस का मूल हृदय और महास्रोत है। वातजन्य हृदयरोग मे वायु के कफस्थान मे जाने में वमन प्रशस्त कहा है, इस हेतु महर्षि सुश्रुत ने सस्नेहलवण द्विपञ्चमूल क्वाथ उपयुक्त कहा है। शमन चिकित्सा मे भगवान् चरक ने जो त्र्यूपणादि घृत कहा है, उसमे कटकारी को लिया है। कफजन्य हृदयरोग मे कफसस्राव, गौरव आदि लक्षण होते है—

गौरव कफसस्रावोऽरुचि स्तम्भोऽग्निमार्दवम्।
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥
—मा० नि०।

इन लक्षणो को शान्त करने मे कटकारी श्रेष्ठ औषधि है। कृमिजन्य हृदयरोग मे भी श्लेष्मिक उपद्रव होते है—"श्लेष्मिकाणा च ये उपद्रवास्ते क्रिमिजहृद्रोगेऽपि स्यु। ते च हृल्लासास्यस्रवणाविपाकादय" (विजयरक्षित)। कफशामक एव कृमिहर होने से यह कृमिजहृदयरोग का भी हरण करती है। आमाशय शोधन तथा लघन-पाचन के पश्चात् इसका प्रयोग हितावह है। तव ही "हृदामय जन्तुषु" (हिता) कहकर इसके गुणो का बखान किया गया है।

इसी प्रकार हृदयरोगजन्य शोथ मे भी यह लाभप्रद है। शोथशामक "कसहरीतकी" नामक शास्त्रीय योग का दशमूल प्रमुख घटक है। अन्यत्र भी—

कृष्णा स पाठा गज पिप्पली च-
निदिग्धिका चित्रकनागरे च।
......हन्यात् त्रिदोष चिरज च शोफम् ॥
—चरक० चि०।

भगवान् चरक ने सू० अ० २४ मे कहा है कि जब सभी मल अर्थात् वात, पित्त और कफ प्रकुपित होकर मलिन आहारशील तथा रजोगुण व तमोगुण से आच्छन्न आत्मा वाले व्यक्ति के रक्तवह, रसवह और मज्जावह स्रोतो को पृथक्-पृथक् या सम्मिलित भाव से प्रतिहत कर उन स्रोतो मे वास करने लगते है तो उस व्यक्ति को मद, मूर्च्छा और सन्यास रोग उत्पन्न होते है। मद मद्य-जनित, विषजनित एव रुधिर जनित होता है—

यश्च मद्यकृत. प्रोक्तो विषजो रौधिरश्च य'।
सर्व एते मदा नर्ते वातपित्तकफाश्रयात् ॥

इनमे रौधिरमद को हाईब्लडप्रेशर कहा जा सकता है। बढे हुये रौधिरमद को कटकारी कम करती है।

यह दीपन पाचन तथा रेचन होने से महास्रोत विकारो मे लाभप्रद है। उदरगतकृमियो को भी अपने तीक्ष्ण गुण से नष्ट करती है। उदररोगो मे उग्रादित्या-चार्य ने एक सिद्ध घृत को उपयोगी कहा है—

निदिग्धिका निम्बकरज पाटली-
पलाशनीली कुटजाग्निपावुभि।
विडङ्गपाठा स्नुहिदुग्धमिश्रितै-
पचेद्घृत तच्च पिवेद् विषोदरी ॥
—कल्याणकारक।

स्थिराद्यघृत (चरक) और ब्रह्मघृत (भै० र०) आदि कटकारी के योग भी इस रोग मे लाभप्रद कहे गये हैं। चरकोक्त "आनाहभेदक लवण" आनाहनाशक एवं शूलघ्न होने से महास्रोत विकारो मे लाभदायक है। आनाह भेदकलवण भी कटकारी आदि से निर्मित होता है। पित्तवातजशूल चिकित्सा मे कटकार्यादि क्वाथ का पाठ है—

निदिग्धिका बृहत्यौ च कुशकाशेक्षुवालका.।
श्वदंष्ट्रैरण्डमूल च वारिणा सह पाचयेत् ॥
पिबेत्सशर्करक्षौद्र शूले पित्तनिलात्मके।
—यो० र०।

वातोल्बण अर्श मे कण्टकारी का क्वाथ वात एवं मलानुलोमन अनुपान के साथ सेवन करना हितावह है—

कण्टकार्या शृत वाऽपि शृत नागरधान्यकै.।
अनुपान भिषग्दद्याद्वात वर्चोऽनुलोमनम् ॥
—चरक० चि० १४/१२६।

अर्श मे इसके बीजो की धूनी देने से वेदना का शमन होता है। नासारोगो मे व्याघ्री तैल नस्यार्थ प्रयुक्त होता है—

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसैन्धवै।
पाचित नावन तैल पूतिनासागदापहम् ॥
—भै० र०।

यह प्रतिश्याय, कास श्वास, पार्श्वशूल, स्वरभेद एव हिक्का रोगो के लिए अतीव उपयुक्त औषधि है। प्रतिश्याय, कास, श्वासादि मे कफ उपादान कारण तथा वायु निमित्त कारण है। आचार्य वाग्भट ने श्वास को आमाशय समुद्भव कहा है। आमाशय मे उत्पन्न आम-विष कफ के साथ मिलकर वायु की प्रतिलोमगति से नासाश्रृङ्गाटक मे प्रत्यावर्तित होकर श्वासपथ मे आकर प्राणवहस्रोतस को दूषित करता है। भगवान् चरक ने कहा है—

यदा स्रोतासि सरुध्य मारुत कफ पूर्वक।
विश्वग्व्रजति सरुद्धस्तदा श्वासान् करोति स ॥
—च० चि० १७।

सुतरा कटकारी वातकफ शामक होने से इन रोगो मे लाभप्रद है।

विविध कथन इस प्रकार है—

यत् किंचित् कफवातघ्नमुष्ण वातानुलोमनम्।
भेषज पानमन्न वा तद्धित श्वासहिक्किने ॥
—चरक० चि० १७

निदिग्धिका चामलकप्रमाणा-
हिङ्ग्वर्धयुक्ता मधुना सुयुक्ताम् ॥
लिहन्नर श्वासनिपीडितो हि-
श्वास जयत्येव बलात् त्र्यहेण ॥
—सुश्रुत० उ० ५१।

श्वासे सिद्धतमोऽयं योग।
—डल्हण।

कण्टकारी जटार्कस्तु सकृष्णा मर्वकासहा ।
—अर्कशतक ५/४२ ।

व्याघ्री वासा जूफिका पौष्कर-
त्वग्यष्टी विश्वा पर्णमूल मुकूलम् ।
एषा क्वाथ खादिरोन्मिश्रित-
श्चेत्पीत कासान्ह्रासता लम्भयेत ॥
—सि० भे० मञ्जूषा ।

क्षुद्रा पञ्चाङ्गक्वाथ पिप्पली चूर्णसयुतम् ।
सहाय समवाप्येय श्वास कास कफ जयेत् ॥
—सजीवनी साम्राज्यम् ।

व्याघ्रीकुसुमसजातकेसरैरवलेहिकाम् ।
जग्ध्वापि चिरतो जात शिशो कास व्यपोहति ॥
—वङ्गसेनसहिता ।

सम्यग् विपक्व द्विगुणेन सर्पि-
र्निदिग्धिकाया स्वरसेन चैतत् ।
श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान्-
निहन्त्यु दीर्मानपि पञ्चकासान् ॥
—सु० उ० ५२ ।

कण्टकारीकृत क्वाथ सकृष्ण सर्वकासहा ।
—भै० र० ।

निदिग्धिका चामलकप्रमाणा-
हिंगुकणाभ्या मधुना च युक्ताम् ।
लिह्यान्नर श्वसनपीडितश्च हिक्का-
जयेत्येव बलात् क्षणेन ॥
—वसवराजीयम् ।

व्याघ्रीस्वरसविपक्व-
रास्नाबाट्यालगोक्षुर व्योषै ।
सर्पि. स्वरोपघात-
हन्यात् कासञ्च पञ्चविधम् ॥
—भै० र० ।

ज्वर चिकित्सा पर लिखा गया अनुपम ग्रन्थ "त्रिशती" आयुर्वेद समाज मे प्रसिद्ध है । इसमे विविध अधिकारो मे कटकारी की एतद् विपयक कार्मुकता प्रकट की गई है । सन्निपात के साथ विविध उपद्रवो को दूर करने मे श्रेष्ठ क्षुद्रादिक्वाथ का पाठ है—

क्षुद्राहरिद्रासुरदारुकद्वीप-
टोलनिंबत्रिफलापयोदा. ।
नयति पोता प्रशम पिपासा-
प्रसेककासारुचि सन्निपातान् ॥
—त्रिशती ६१ ।

सन्निपात मे कफवातप्रधानता होने पर कटकारी अधिक लाभप्रद है—

क्षुद्रामृता नागर पुष्कराह्वयै-
कृत कषाय कफमारुतोत्तरे ।
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे-
ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ॥
—भै० र० १२८ ।

यद्यपि लघुपञ्चमूल वातपित्त शामक है किन्तु पिप्पलीयुक्त इसका क्वाथ कफ का शमन करने मे भी श्रेष्ठ है—

पञ्चमूली कपायस्य सकृष्णस्य निषेवणात् ।
जीर्णज्वर कफकृतो विदधाति पलायनम् ॥
—वैद्य जीवन १/४९ ।

वैसे तिक्त होने से यह सभी ज्वरो मे लाभप्रद है—

निदिग्धिका वारिददेवदारु-
शृत जल हन्ति रुजो ज्वरोत्था. ।
—राजमार्तण्ड ।

गर्भवती के ज्वर मे भी यह आमपाचक, दीपन, विपघ्न होने से लाभकारिणी है—

मृगराजमुखी ! कण्टकारिकामृतावीरुधाम् ।
क्वाथेनेय सगर्भाया ज्वर कास वमि हरेत् ॥
—स० साम्राज्यम् ५८ ।

यह तीक्ष्ण होने से अपस्मार, अपतत्रकादि मे आवेग समय सज्ञानाश को दूर करती है—

नावन स्वरसै. खर्वकण्टकारीफलोद्भवै ।
अपस्मार विनिर्धूय सद्यो वोधाय कल्पते ॥
—सि० भे० मणि० ४५६ ।

वातहर होने से अङ्गमर्द, सन्धिवातादि वातविकारो मे भी प्रयुक्त होती है । वाह्यप्रयोगार्थ प्रसिद्ध मापतैल

(भे० र०) का कटकारी मुख्य घटक है। वेदनास्थापन होने से इसे उपयोगी कहा गया है।

यह मूत्रल होने से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह मे लाभप्रद है—

निदिग्धिकास्वरसोवापि सक्षौद्र कृच्छ्रनाशन ।
—शोढल ।

· · वृहतीद्वयञ्च ।
आलोड्य दध्ना मधुरेण पेय दिनानि सप्ताश्मरि भेदनाय ॥
—चरक० चि० २६/६१ ।

विविध रोगो में कण्टकारी की पथ्य रूप मे उपयोगिता—

(१) कास—कासरोग मे यह पथ्यरूपेण सदा सेवनीय कही गई है।

कण्टकारी कासमर्दो जीवन्ती सुनिषण्णकम् ।
पथ्यमेतद्यथादोषमुक्त कासगदातुरे ॥
—पथ्यापथ्यम् ३३ ।

इसे पथ्यरूप मे सेवन करने की विधि भगवान् चरक ने कही है कि "कण्टकारी के षडङ्ग पानीय विधि से तैयार किये गये स्वरस मे घी कालीमिर्च आदि मसालो से भली प्रकार सस्कार की गई सिद्ध मूग की दाल मे ताजे आमलो का कल्क मिलाकर सेवन करे—

कण्टकारीरसे सिद्धो मुद्गयूप सुसस्कृत ।
सगौराभलक साम्ल सर्वकासभिषग्जितम् ॥
—चरक० चि० १८/१८४।

(२) श्वास—

निदिग्धिका वास्तुक तण्डुलीय-
जीवन्तिका मूलकपोतिकाश्च ।
प्रदीप्तलोहे न च कण्ठकूपे-
दाहोऽपि च श्वासिनि पथ्यवर्ग ॥
—पथ्यापथ्यम् १४२ ।

बहुत कफ वाले श्वासरोगी को छोटी कटकारी, वेलगिरी, काकडासिगी, दुरालभा, गोखरू, गिलोय, चित्रक और कुलथी को जल मे पकाकर छानकर घी, पिप्पली का छोक देकर सोठ तथा नमक के सहित यूष भोजन में देना हितकर है।

निदिग्धिका बिल्वमध्म कर्कटाख्या दुरालभाम् ।
त्रिकण्टक गुडूचीञ्च कुलत्थाञ्च सचित्रकान् ॥
जले पक्त्वा रस पून पिप्पली घृत भर्जित. ।
सनागर सलवण स्याद्यूपो भोजने हित ॥
—चरक० चि० १७/९१-९२ ।

(३) यक्ष्मा—मधुरद्रव्ययुक्त दुग्ध एव दशमूल से सिद्ध घृत यक्ष्मारोगी के बृहणार्थ आहार मे तथा लघुपञ्चमूल से क्वथित जल (अतीसार की अवस्था मे) पान मे हितकर कहे गये हैं।

सिद्ध मधुरकैर्द्रव्यर्दशमूलकषायक ।
क्षीरमासरसोपेतैर्घृत शोपहर परम् ॥
—चरक० चि० ८/१६४ ।

स्थिरादिपञ्चमूलेन पाने शस्त श्रृत जलम् ।
इत्युक्त भिन्नशकृता दीपन ग्राहि भेषजम् ॥
—चरक० चि० ८/१६० ।

(४) पाण्डु—पाण्डु कामला के रोगी को पानाहार मे लघुपचमूल साधित जल को उपयोग मे लाना अतीव हितकारी है।

स्थिरादिभि श्रृत तोय पानाहारे प्रशस्यते ।
—चरक० चि० १६/१०८।

(५) गुल्म—कफजन्य गुल्मरोग मे भी उक्त पञ्चमूली श्रृत जल हितकर कहा गया है।

पञ्चमूली श्रृत तोय पुराण वारुणीरसम् ।
कफगुल्मी पिबेत् काले जीर्ण माध्वीकमेव च ॥
—चरक० चि० ५/१६४

(६) मदात्यय—श्लेष्मिक मदात्यय रोगी को वमन एव उपवास कराना चाहिए। ऐसे समय मे यदि उसे प्यास लगे तो कण्टकारी से उबाला जल, सोठ मिलाकर, ठण्डा हो जाने पर पिलावे।

बलया पृश्निपर्ण्या वा कण्टकार्याथवा श्रृतम् ।
सनागराभि सर्वाभिर्जल वा श्रृतशीतलम् ॥
—चरक० चि० २४/१६४ ।

(७) गर्भपात—सामान्यतया गर्भपात के दो लक्षण होते है—पीडा एव रक्तस्राव। जब उक्त लक्षण होने पर भी चिकित्सा से गर्भ न गिरने की सम्भावना हो तो ऐसे

परिहार्य गर्भपात की चिकित्सा मे पथ्य का विशेष महत्व है। औषधि सिद्ध आहार अधिक उपयोगी है सुतरा महर्षि सुश्रुत ने अनेक प्रयोगो के वर्णन मे कण्टकारी इत्यादि से सिद्ध दुग्धपान को महत्व दिया है।

वृहतीद्वयोत्पल शतावरीसारिवापयस्यामधुकसिद्ध वा पय पाययेत्। —सुश्रुत० शा० १०/६०।

विशेषतया मासानुक्रमेण गर्भस्राव पात चिकित्सा के अन्तर्गत पचममास मे तथा अष्टममास मे इनसे सिद्ध दुग्ध को लाभप्रद कहा है।

वृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरि शुङ्गास्त्व चो घृतम्।
योग पञ्चमे देय गर्भस्रावे पयोयुत ॥
कपित्थबिल्ववृहती पटोलेक्षुनिदिग्धिका।
मूलानिक्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगष्टमे ॥
—सु० शा० १०।

गर्भपात हो जाने पर भी लघुपञ्चमूल से निर्मित पेया देने का निर्देश है।

लघुना पञ्चमूलेन रूक्षा पेया तत पिबेत्।
—अ० हृ० शा० २/६०।

यूनानी मतानुसार—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे मे खुश्क और गरम है। किसी-किसी के मत से यह तीसरे दर्जे मे खुश्क और गरम है। इसके प्रयोग से कफ खासी, दमा और सीने के मर्ज दूर होते है। इसके फल मे भी वही गुण है जो इसकी जड मे है। यह सुजाक, कोढ, कब्ज और मसाने की पथरी को दूर करती है, तथा पेशाब को साफ लाती है।

पेट का दर्द, मन्दाग्नि और पित्त के विकार को नष्ट करने के लिये यह औषधि बहुत फायदेमन्द है। इसके बीजो को मट्ठे और सेंधानमक मे मिलाकर सुखाकर घी मे तलकर सेवन करने से ये तकलीफे दूर होती है।

दात के दर्द मे यह लाभ पहुँचाती है। जब हींग, लोग तैल, दालचीनी तैल, कपूर एव अफीम के प्रयोग से भी दात का दर्द मिटता न हो तो इसके बीजो को चिलम मे रखकर या बफारे की विधि से धुआ दातो मे पहुँचानी चाहिये। धुआ पहुँचते ही दात का दर्द मिटने लगता है। इसके अलावा इसकी जड, छाल, पत्ते और फल का काढा बनाकर कुल्ले करने से भी दातो का दर्द दूर होता है। इसका पञ्चाङ्ग पेट के अफरे को भी दूर करने मे उत्तम है।

आधुनिक मतानुसार—कर्नल चोपडा के मतानुसार यह वनौषधि मूत्रल, कफनि सारक और ज्वर नाशक मानी गई है। इसके मूल और गिलोय इन दोनो का काढा ज्वर और खासी मे लाभप्रद है। यह श्वास, जीर्णज्वर और प्रसव पीडा मे भी लाभदायक है।

पी० डी० वसु के मतानुसार इस वनौषधि का क्वाथ सुजाक (पूयमेह) मे लाभ पहुँचाता है। इसकी कली और फूल आखो से पानी जाने की बीमारी मे फायदा पहुँचाते है।

डायमाक के मतानुसार एन्सली ने दक्षिण भारत मे इस औषधि का उपयोग कफनिस्सारक औषधि के रूप मे किया है। इसके बीजो का धुआ दातो के दर्द को शीघ्र मेटता है।

इस प्रकार आयुर्वेदीय औषधियो पर भी आधुनिक विद्वानो ने अपना मन्तव्य प्रकट कर इन ओषधियो की उपयोगिता के वर्णन मे श्री वृद्धि की है।

अनुसन्धान किंवा मनीषियो के विशिष्ट अनुभव—सुधानिधि के सितम्बर ८० के अक मे तथा आयुर्वेद विकास के अनुसधान अक (नव० ८६) मे डा० श्री सतीशचन्द्र शुक्ल का कण्टकारी विषयक सफल प्रयोगात्मक लेख प्रकाशित हुआ है। इन्होने श्वसन-सथान से सम्बन्धित कई रोगो मे अनुपान भेद से कण्टकारी का प्रयोग किया जिसमे अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। लेखक ने लिखा है कि "इस अनुसधानात्मक परीक्षण (Clinical trial) मे अनुपान एव पथ्य पर विशेष रूप से दोषानुसार रोगी की प्रकृति, अवस्था तथा रोगानुसार निदान को ध्यान मे रखकर प्रयोग परीक्षणो का अध्ययन किया गया। कुल सफलता की प्रतिशतता ९२ प्रतिशत से अधिक पाई गई, साथ ही इस औषधि के प्रयोग से कोई भी दुष्प्रभाव (Toxic Effect) नही देखा गया।" इन्होने कुल २०० रोगियो पर परीक्षण किया। कटकारी पचाग चूर्ण (छाया शुष्क करके निर्मित चूर्ण)

कषाय, अवलेह, मीरप तथा चूर्ण को ५००-५०० मि० ग्रा० के कैपसूलो के रूप मे आवश्यकतानुसार प्रयोग कराया गया। कैपसूल की मात्रा अवस्थानुसार तथा रोगानुसार १ ग्राम से १५ ग्राम तक की रखी गई। औषधि का प्रयोग रोगानुसार ५ दिन से ६० दिनो तक कराया गया। आवश्यकतानुसार अनुपान द्रव्य मे रखे गये वासा स्वरस, तुलसीपत्र स्वरस, मधु, पिप्पली चूर्ण उष्ण जल, आर्द्रक स्वरस, उष्ण दुग्ध, हरिद्रा, आमलकी चूर्ण और कालीमिर्च चूर्ण। इस अध्ययन मे प्रमुखरूपेण निम्नलिखितानुसार श्वसन सस्थान के रोग सम्मिलित थे—

१ कास—वातज कास-३८।
 पित्तज कास-२५।
 कफज कास-२२।
 क्षतज कास-०५।
 क्षयज कास-१४।
२ श्वसनक ज्वर (pneumonia) ३६।
३ तमक श्वास (Bronchial Asthma) ३८।
४ फुफ्फुसीय क्षय (Pulmonary Tuberculosis) १५।
५ श्वसनक प्रणाली प्रदाह (Bronchiatasis) २७

आयुर्वेद प्रकाश (राजस्थान आयुर्वेद विभागीय-पत्रिका) के फर० ७८ के अक मे तत्कालीन क्षेत्रीय उपनिदेशक (वर्तमान निदेशक) वैद्य श्री प्रहलादराय जी देराश्री का "कटकारी का भेषजीय प्रभाव" नामक अनुसधान परक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमे इन्होने लिखा है कि "सूखे कण्टकारी पौधो का सत्व(एक्सट्रैक्ट) ७० प्रतिशत अल्कोहल मे बनाया गया और वाष्पित तत्व को सुखाकर नार्मल सेलाइन मे घोल कर अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के परिणामो से ऐसा प्रतीत होता है कि इस औषधि मे आक्षेप प्रतिरोधक गुण है तो अपस्मार की चिकित्सा मे उपयोगी हो सकता है। डिम्बक्षरण रोधक गुण होने के कारण इसका उपयोग परिवार नियोजन मे भी सक्रिय हो सकता है।"

आचार्य श्री वल्लभराम विश्वनाथ वैद्य अग्रतन वनस्पति विशेषज्ञो मे प्रमुख हैं। उनका सामान्य परिचय वनौषधि रत्नाकर प्रथम भाग के प्राक्कथन मे दिया गया है। उनका एक लेख "सचित्र आयुर्वेद के कैन्सर अक मे" प्रकाशित हुआ है। उन्होने जिन दश द्रव्यों को कैन्सरहर कहा है उसमे कण्टकारिका भी है—"निम्बपारिभद्रारक्तहादशी आरग्वधवलीतकण्टकारिरोहिणीशिवा जोगीपादशाह स्नुवृक्षमहिषाक्षा इति दशेमानि कैन्सरहराणि भवन्ति।" एतद्विषयक उपयोगिता का विवरण इस प्रकार दिया है—"यद्यपि छोटी कटेरी का प्रयोग मैंने कैन्सर पर स्वय नही किया है। किन्तु छोटी कटेरी के ताजा स्वरस का एव फल रहित उसके क्षुप के क्वाथ का प्रयोग कई बार अर्बुद तथा आन्त्र निर्ग्रवि के लिए देखने मे आया है। अत दशमूल की यह औषधि होने के कारण ज्ञात होता है कि कैन्सर मे भी यह अवश्य काम देगी। साथ ही बृहती (बडीकटेरी) का भी प्रयोग करके देखना चाहिये। अमेरिका मे डा० दर्जिस, एम डी नामक सुविख्यात डाक्टर हैं। यद्यपि इन्होने एलोपैथी चिकित्सा मे उन्हे विश्वास नही हुआ, अत 'वे एप्सम साल्ट' का प्रयोग प्रत्येक रोग पर करने लगे और साथ ही वनस्पितियो के स्वरस का भी चिकित्सा मे उपयोग करने लगे। इन वनस्पतियो एव कण्टकारी जाति की जो वनस्पति अमेरिका मे होती है, उसके प्रयोग से कैसर जैसे कई रोगो मे इनको सफलता मिली है। इसके पढने से ज्ञात होता है कि क्षुद्रा और बृहती के पचाग से विविध प्रकार के कैन्सर मे सफलता मिलनी चाहिए।

कटाला किंवा रामकाटा (लैटिन—अगेव्ह अमेरिकाना) विशेषतया अमेरिका मे पाया जाता है। इसकी खेती दक्षिणी अफ्रीका म बहुत बडे पैमाने पर होती है। यह विशेषतया उपदश नाशक है अत. जिस कैन्सर का कारण उपदश पाया जाय उसमे यह लाभप्रद हो सकता है। यह विरेचक, मूत्रल और ऋतुस्रावनियामक भी माना जाता है।

सचित्र आयुर्वेद के वनौपधि विशेषाक (अक्टूबर ७५) मे आचार्य प्रभाकर चटर्जी का एक महत्वपूर्ण लेख

प्रकाशित हुआ है। लेख का शीर्षक है—"My Experiments with Kantakari in the treatment of the diseases of Heart, Lungs and Throat." इस लेख मे आचार्य चटर्जी ने कण्टकारी पर किये गये ४० सालो के प्रयोगो के अनुभवो का सकलन किया है। इसमे इन्होने बगाल मे कण्टकारी का बहुत से रोगो मे प्रयोग किये जाने का वर्णन किया है। मयूराक्षी स्थान जहा पर चरक चतुरानन चक्रपाणिदत्त रहते थे वहा पर इस कण्टकारी की उत्पत्ति विशेषेण बतलाई गई है। आचार्य जी ने इसे शुण्ठी एव अमृता के साथ मे कफज्वरोपयोगी कहा है। गोक्षुर, कुलथी एव वरुण के साथ इसे मूत्रकृच्छ्र किंवा मूत्राघात मे लाभप्रद कहा है। इसके अतिरिक्त मसूरिका, रोमान्तिका, वृद्धिरोग, अपची, ग्रन्थि एव श्वेतप्रदर मे भी इसे लाभदायक कहा है। विस्तारभय से यहा केवल एक प्रकरण का हिन्दी अनुवाद अविकल प्रस्तुत किया गया है—

कण्टकारी का प्रयोग गले के रोगो मे तथा फेफडे के रोगो मे, यक्ष्मा, श्वास, कास, श्वसनिका शोथ, अपची, ग्रन्थि और मुख के अन्दर हुये अर्बुद को नष्ट करने हेतु होता है। यह मैं पहले ही वर्णन कर चुका हूँ कि मैने कण्टकारी का प्रयोग प्रतिश्याय मे कर पर्याप्त लाभ प्राप्त किया है, जो कि कान, नाक, गले और फेफडो के लिए अग्रिम है। अधिकतर रोग उपर्युक्त अगो से सम्बन्धित पित्त और कफ दोनो से होते हैं, लेकिन ये दोनो ही (पित्त-कफ) पगु व प्रभावहीन है। ये वायु मिलने से ही रोग उत्पन्न कर उपर्युक्त अगो पर प्रभावी हो जाते हैं। अधिकतर दु साध्य प्रकार के रोग जो उपर्युक्त अगो पर प्रभाव डालते है, कुढाने वाले है। कफ, गले मे नाक मे ग्रन्थि के साथ शोथ बढाता है। लगातार कण्टकारी के क्वाथ के प्रयोग से आन्तरिक गाठ के आकार को छोटा किया जा सकता है, जो कि बडी होने पर खाने-पीने मे असुविधा उत्पन्न करती है। कास के निरन्तर चलने से मनुष्य के पेट मे सन्ताप और मासपेशियो मे दर्द पैदा होता है, इसे दूर करने हेतु कण्टकारी के क्वाथ के साथ हरीतकी बरावर की मात्रा मे एक-एक तोला देकर दूर किया जा सकता है। कण्टकारी के उत्तम प्रयोग हैं—कण्टकारी अवलेह कण्टकारी घृत, कण्टकारी हरीतकी, कण्टकारी गुड। यह प्रयोग उपर्युक्त रोगो के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

—सचित्र आयुर्वेद अक्टूबर ७५।

प्राणियो के हृदय पर इसके सुरासारीय सत्व एवं एल्कालायॅड सैपोनिन अश का अध्ययन किया गया है। सुरासारीय सत्व से हृदय सकोच मे लाभ होता है तथा रक्तदवाव मे भी लाभ होता है। इस अश मे हृद्वल्य गुण है जिसका परीक्षण रोगियो मे करना आवश्यक है।

—एस एस गुप्त, एस एल सी वर्मा, सी सिंह,
एव श्रीमती पी खण्डेलवाल।

कण्टकारी अवलेह जिसमे प्रमुख द्रव्य कण्टकारी है, उसका परीक्षण वातिक कास नाशक गुण की दृष्टि मे किया गया है। इस परीक्षण मे परालिडडाइड द्वारा कृत्रिम कास उत्पन्न कर इस औषध का तथा आधुनिक औषध कोडीनफास सीरप का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। यह देखा गया कि कण्टकारी अवलेह भी कोडीनफास की तरह प्रभावशाली तथा विश्वसनीय औषधि है और इसके साथ ही यह मार्फिन ग्रुप (अहिफेन सम) के दोषो से मुक्त होने के कारण निरापद औषधि है।

—रा मु सिंह, रा कृ गुप्ता, झा ओझा,
एच एस वाजपेयी एव जे पी गुप्त।

पिलानी के पास सिघाना (झुझनू) से सग्रहीत इसके फलो से सोलेसोडीन (Solasodine १ १६%) नामक तत्व प्राप्त किया गया जिससे अनेक स्टेरायड (Steroids) औषधिया बनायी जा सकती है।

—एम पी गुप्ता एव डी के सातरा।

इनके पचाग के रासायनिक सगठन एव गुण कर्मो का अध्ययन किया गया है। इसमे ग्लूको अल्कालायड स्टेराल तथा पोटेशियम नाइट्रेट के प्राप्ति की पुष्टि की गई तथा एक स्नेहाम्ल, राल तथा फेनोलीय नये द्रव्यो की प्राप्ति हुई। गुणकर्मिय अध्ययन मे देखा गया कि अपरिष्कृत सत्व मे कोई ऐसा द्रव्य है जो हिस्टेमीन को शुष्क कर के रक्तदवाव कम करता है तथा श्वसनिका सकोच करता है। इसमे का कोई भी अश हिस्टैमीन

या एसिटिल कोलीन के प्रभाव को नही रोक सकता, किन्तु ग्लूकोअल्कालायड का सेपोनिन अश हिस्टैमीन (४८/८०) के रक्तदवाव के ह्रासक गुण को रोकने मे समर्थ है। इसके अन्य अशो का भी अध्ययन किया गया है। इसके विभिन्न अशो के प्रभाव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तमक श्वास मे इससे जो लाभ होता है वह फुफ्फुस तथा श्वसनिकाओ मे हिस्टैमीन की कमी हो जाने के कारण एव अशत उसमे के अकार्ड-निक नाइट्रेट के कफनि सारक गुण के कारण है।

—एस एस गुप्ता, एस एल सी वर्मा, सी सिंह, श्रीमती पी खण्डेलवाल एव एन के गुप्त।

इसका सुरासारीय सत्व हिस्टैमीन की कमी करके उसमे होने वाले दुष्परिणाम जैसे रक्तदवाव का कम होना, श्वसनिकाओ का सकोच होना आदि को कम करता है।

—एन के गुप्त, एस एस गुप्त एव महेशराय।
(वा० अनु० दर्शिका—१९६६-१९६८
लेखक डा० श्रीकृष्णचन्द्र चुनेकर)।

वगाल के कविराज कटकारी को मूत्रल औपधियो की भाति जलोदर रोग मे प्रयुक्त करते हैं। काशी-विश्वविद्यालय मे भी अनुसन्धान से इसे जलोदर रोग मे उत्तम प्रभावी पाया गया है।

इस प्रकार कटकारी एक उत्तम औपधि सिद्ध होती है जो प्राणवह स्रोतस् के रोगो मे उपयोगी है।

बाह्य प्रयोग—

(१) दन्तरोग—[क] कटकारी पञ्चाङ्ग के क्वाथ का गण्डूप दन्तशूल को मिटाता है।

[ख] कटकारीफल के वीजो का धुआ लेने से दन्त-शूल शीघ्र ही मिट जाता है। यदि कृमि के कारण दन्त-शूल हो तो वीजो मे नवनीत मिलाकर उसका धुआ लेना चाहिए। इसकी विधि है—एक वर्त्तन मे आग भरकर कटकारी के वीज डालकर उस पर एक ऐसा घडा औधा रख देना चाहिये, जिसके वीच मे एक छेद किया हुआ हो। इस छेद मे एरण्ड की नली या कोई अन्य नली डाल लें। इस नली का मुह जिस दात मे दर्द हो उस पर लगा देना चाहिये, जिससे वह धुआ आक्रान्त स्थान पर पहुँच जाय। इसके फल के चूर्ण का चिलम या हुक्के मे रखकर भी धुआ का सेवन किया जा सकता है। इस धूम्र प्रयोग मे अर्श, भगन्दर, कृमिजन्य कर्णशूल, व्रणकृमि भी नष्ट होते हैं।

(२) नेत्ररोग—[क] कटकारी पत्र को तोडने पर जो दुग्ध सदृश रस निकलता है, उसकी एक-दो वूद दिन मे २-३ वार आखो मे डालने से दूपित जल निकल जाने से नेत्राभिष्यन्द मे आराम हो जाता है। रस को किंचित् उष्ण कर शीत होने पर उपयोग मे लाना अधिक लाभ-प्रद है।

[ख] कटकारीपत्र कल्क को आखो पर रखकर पट्टी वाधने से नेत्रगतशूल का शमन होता है।

[ग] कटकारीमूल को नीवू स्वरस मे घिसकर आखो मे आजने से आखो की धुन्ध व जाला कटने लगता है।

(३) शिरःशूल—कटकारीपुष्प स्वरस का ललाट पर लेप करने से शिर शूल मिटने लगता है।

(४) रक्तपित्त—[क] इसके पत्र किंवा मूल को पीसकर कल्क वनाकर शिर पर लेप करने से नासागत रक्तपित्त मिटता है।

[ख] इसका पत्र स्वरस नाक मे टपकाने से भी लाभ होता है।

(५) अपस्मार—[क] पत्रस्वरस को नाक मे टप-काने से अपस्मार, अपतन्त्रक की वेहोशी दूर होती है।

[ख] कटकारीमूल और भाग वीज को वालक के मूत्र मे पीसकर नाक मे टपकाना भी हितकर है।

(६) स्तनशैथिल्य—कटकारीमूल, अनारमूल की छाल और कदूरी की छाल को जल मे पीसकर लेप करने से स्तन कठोर हो जाते हैं।

(७) विद्रधि—वीजो का लेप करने से सत्वर पाक होकर पूयोत्पत्ति हो जाती है।

(८) ध्वजभङ्ग—वीजो को पीसकर शिश्न पर लेप करे तथा इसके ऊपर एरण्डपत्र वाध दे। इससे कुछ दिनो मे लाभ होता है।

(९) कष्टप्रसव—कटकारीमूल को रविवार के दिन उखाडकर गाय के सीग के साथ वाधें फिर इसे

गूगल की धूनी देकर स्त्री के गले मे बाधने से प्रसव शीघ्र हो जाता है।

(१०) शकुनिग्रह—बालकों के शकुनिग्रह के प्रतिषेधनार्थ कटकारी मूल को बालक के गले मे बाधना हितकर है। यह विशिष्ट दूषित आहार के कारण होता है जिसमे बालक के शरीर मे विशेषतया मल मे मछली की गन्ध आती है। इसमे अतीसार, सन्धिशोथ तथा त्वक् विस्फोट आदि लक्षण दिखलाई देते हैं।

अन्तःप्रयोग—

(१) अग्निमांद्य—कटकारी के बीजो को ससैन्धव तक्र मे औटाकर धूप मे सुखा ले। इस प्रकार निरन्तर सात दिन तक करे, रात्रि मे भिगोवे तथा दिन मे सुखा ले। इसके पश्चात् इन बीजो को घी मे तलकर सेवन करने से अग्निमाद्य मे लाभ होता है। इसके प्रयोग से उदरशूल एव अन्य पित्तविकारो का भी शमन होता है।

(२) आमवात—कटकारी पत्र स्वरस मे कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से आमवात मे लाभ होता है। यह प्रयोग पजाब मे विशेषतया किया जाता है।

(३) पक्षाघात—कटकारी, एरण्डमूल, कौंच की जड और उडद के क्वाथ मे हीग और सैन्धव डालकर पिलाने से पक्षाघात मे लाभ होता है।

(४) हृदयरोग—कटकारी, मधुयष्टि एव अर्जुन चूर्ण को मधु के साथ लेने से कफजन्य हृदयरोग मे लाभ होता है।

(५) प्रतिश्याय—कटकारी, अमृता एव पित्तपापडा का क्वाथ हितकर है।

(६) ज्वर—[क] कटकारीमूल एव अमृता का क्वाथ ज्वर एव कास मे लाभप्रद है।

[ख] कटकारी, धनिया, देवदारु और सोठ का क्वाथ भी ज्वर शामक है।

[ग] कटकारीमूल, गिलोय, खरैटी, वासा एव सारिवा का क्वाथ वातपित्त से उत्पन्न ज्वर को दूर करता है।

[घ] कटकारीमूल, पुष्करमूल, हरड, सोठ, गिलोय इनका क्वाथ तन्त्रिक सन्निपात की पीडा को नष्ट करता है।

[ङ] कटकारीमूल, वासा, पुष्करमूल, दशमूल, सौंफ, भारङ्गी, सोठ, मिरच, पीपल एव एरण्डमूल का गोमूत्र मे सिद्ध किया हुआ क्वाथ सन्निपातजन्य सज्ञानाश को दूर करता है।

[च] कटकारी, पाठा, निम्ब, एरण्डमूल, बिल्व गिरी, पाषाणभेद इनका भी गोमूत्र मे सिद्ध क्वाथ अभिन्यास ज्वर को दूर करता है।

[छ] सामकफज्वर मे त्रिकटु के साथ क्वाथ बनाकर पिलावे।

(७) उपदंश—कटकारी के शीतकषाय मे मिश्री मिलाकर सेवन करे।

(८) हिक्का—[क] कटकारीमूल चूर्ण ३ ग्राम, घी मे भुनी हीग २५० से ५०० मि० ग्रा०, आर्द्रकस्वरस ६ ग्राम, मधु ६ ग्राम मिलाकर बार-बार चाटने से हिक्का एव श्वास मे लाभ होता है।

[ख] इसके मूल का क्वाथ थोडी-थोडी देर से बारम्बार पिलाते रहने से भी हिक्का शान्त होती है।

(९) कास—[क] कटकारी क्वाथ मे पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीने से कास मिटती है। कटकारी से कफ निकल जाता है तथा पिप्पली से पुन कफ की उत्पत्ति नही होती है। जिससे कास मे लाभ होता है।

[ख] कटकारीमूल चूर्ण एव पिप्पली चूर्ण मे मधु एव आर्द्रक स्वरस मिलाकर सेवन करने से भी सत्वर लाभ होता है।

[ग] कटकारी के बीज, वासा, पुष्करमूल, पिप्पली, कालीमिर्च और अगर का चूर्ण मधु से चाटने से क्षयजन्य कास मिटता है।

[घ] नवीन कास मे कटकारीमूल क्वाथ को मधु तथा सैंधवलवण मिलाकर सेवन करे तथा द्वितीयावस्था मे पत्रस्वरस मे मधु तथा पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करे।

[ङ] कटकारी पुष्प केसर को पीसकर मधु में मिलाकर सेवन कराने से बालकों की कास मिटती है।

[च] कटकारीमूल, लवङ्ग एव नागकेशर के चूर्ण को मधु मे मिलाकर देने से भी बालको के जीर्णकास मे लाभ होता है।

(१०) श्वास—[क] कटकारी स्वरस १५ मि० लि० मे १२५ मि० ग्रा० कपूर किंवा २५० मि० ग्रा०, हीग घोटकर पिलाने से श्वासरोग का शमन होता है।

[ख] कटकारीक्षार १५ ग्राम ताम्बूल (पान) मे रखकर चबाने से श्वास का वेग शान्त होता है।

[ग] कटकारीमूल चूर्ण एव आमलकी चूर्ण को मधु के साथ चाटने से भी श्वास मे लाभ होता है।

[घ] कटकारी, वचा और मुलहठी के क्वाथ के साथ २५०-५०० मि० ग्रा० नवसादर देने से कफ पतला होकर निकल जाता है, सुतरा श्वास मे आराम हो जाता है।

[ङ] कटकारीफल क्वाथ मे हीग और सैंधव मिलाकर देने से भी श्वास दूर होता है।

[च] कटकारी पञ्चाङ्ग तथा आमलकी के क्वाथ मे थोडी हीग तथा मधु मिलाकर उपयोग मे लाने से श्वासरोगी को शान्ति मिलती है।

[छ] इसके फलो की किंवा पञ्चाङ्ग की भस्म बनाकर १५० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक सेवन करना श्वास मे हितावह है।

[ज] कटकारीमूल श्वेत जीरा और आमलकी समभाग लेकर चूर्ण बनाकर दिन मे ३-४ बार मधु व आर्द्रक स्वरस के साथ चटाने से जीर्ण श्वास (कफ प्रधान) भाग जाता है।

[झ] कटकारीमूल, अमृता एव आर्द्रक का क्वाथ सज्वर श्वास कास मे लाभप्रद कहा गया है।

(११) मदात्यय—[क] कटकारी चूर्ण के सेवन करने से मदात्यय मिटता है।

[ख] कटकारीमूल को जल मे घोटकर पिलाने से अफीम, भाग, धतूरा आदि के सेवन से उत्पन्न नशा नष्ट हो जाता है।

[ग] कटकारी पञ्चाङ्ग १२ ग्राम लेकर २ लीटर जल मे पकावें। इस जल मे मूग की दाल डालकर पुन. पकावें, फिर इसमे थोडा हरिद्रा चूर्ण तथा आमलकी स्वरस मिलाकर पुन:-पुन: सेवन करावें। इससे मदात्यय मे उत्पन्न तृष्णा का शमन होता है। इसके प्रयोग से कास मे भी लाभ होता है।

[घ] कटकारी क्वाथ भी इस स्थिति मे लाभदायक सिद्ध होता है।

(१२) पार्श्वशूल–कटकारी, अमृता, सोठ, नागरमोथा तथा कुटकी का क्वाथ पार्श्वशूल को हर लेता है।

(१३) मूत्रकृच्छ्र—[क] कटकारी पत्र स्वरस को तक्र मे मिलाकर वस्त्र मे छानकर पीने से मूत्र खुलकर आने लगता है।

[ख] कटकारी क्वाथ मे मण्ड मिलाकर पीना भी लाभप्रद है।

[ग] कटकारीमूल चूर्ण को तृण पचमूल क्वाथ के अनुपान से देना मूत्रकृच्छ्र मे लाभदायक है।

[घ] पुटपाक विधि मे स्वरस निकालकर उसमे मधु मिलाकर प्रात काल पीने से भी मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। स्वरस ६ मि० लि० से २५ मि० लि० तक रोगानुसार लिया जा सकता है, जिसमे मधु समान मात्रा मे मिलाना चाहिये।

[ङ] इसके यवकुट चूर्ण को रात्रि भर भिगोकर प्रात मल छानकर मिश्री मिलाकर पीना भी इस रोग मे लाभप्रद है।

(१४) शोथरोग—कटकारीमूल चूर्ण, पुनर्नवा चूर्ण और अर्जुन चूर्ण को दशमूल क्वाथ के अनुपान से सेवन करना शोथ मे हितकारी है।

(१५) उदररोग—कटकारीमूल, देवदारु, चित्रक, हरिद्रा, बिल्व, पुनर्नवा और वासा के चूर्ण को गोमूत्र के अनुपान से उपयोग मे लाने से उदररोग, शोथरोग मिट जाते हैं।

(१६) तृष्णा—कटकारीमूल एव पञ्चकोल चूर्ण अमृता स्वरस के साथ सेवन करने से वातकफजन्य तृष्णा का शमन होता है।

(१७) मूर्च्छा—कटकारी, गिलोय, सोठ तथा पीपलामूल के समभाग क्वाथ मे २ ग्राम पिप्पली चूर्ण

मिलाकर सेवन करना मूर्च्छा के रोगी के लिए हितकर है।

(१८) अर्श—हरीतकी चूर्ण और कटकारी पचाग के क्वाथ से सेवन करना वातप्रधान अर्श मे लाभप्रद है।

(१९) अण्डवृद्धि—ताजी कंटकारीमूलत्वक् २०-२५ ग्राम और सूखी होने पर १२ ग्राम लेकर सात कालीमिर्च के साथ पीसकर पानी मिला छानकर प्रतिदिन प्रात काल पिलावे। सात दिन तक पिलाने से अण्डवृद्धि रोग दूर हो जाता है। इस प्रयोग मे ताजी छाल लेना अधिक हितकर है। पथ्य मे चने की रोटी और घृत खावें।

(२०) जलोदर—कटकारी क्वाथ मे कलमीशोरा मिलाकर पिलाना इस रोग मे हितावह है।

(२१) स्वरभेद—कटकारीमूल चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण को मिलाकर गोमूत्र के अनुपान मे सेवन करे। इससे कफजन्य स्वरभेद का शीघ्र ही शमन हो जाता है।

(२२) रक्तचाप—सर्पगन्धा चूर्ण के साथ इसका सेवन रक्तचाप मे लाभप्रद है।

(२३) अश्मरी—कटकारीमूल, शोभाञ्जनमूल, और कुलथी क्वाथ से अश्मरी मे लाभ होता है।

(२४) विबन्ध—कटकारीमूल, द्राक्षा, हरीतकी के क्वाथ मे एरण्डस्नेह मिलाकर सेवन करने से कोष्ठवद्धता का निवारण होता है।

(२५) कृमिरोग—कटकारी, त्रिफला, धान्यक, जीरा, अजवायन और पिप्पली का क्वाथ कृमिरोग को नष्ट करने वाला कहा गया है।

(२६) रजोरोध—कटकारीमूल तथा कलौंजी चूर्ण को कुमारी स्वरस के अनुपान से सेवन करना रजोरोध को दूर करता है।

(२७) रक्तविकार—कटकारी, निम्ब, सारिवा, मजीठ एव अमृता के क्वाथ मे मधु एव घृत मिलाकर सेवन करना विविध रक्त विकारो को नष्ट करता है। क्वाथ के शीतल हो जाने पर मधु मिलाकर उपयोग मे लावे।

विविध कल्पनायें

१. कंटकार्यादि क्वाथ—(क) छोटी कटेरी, रास्ना त्रायमाण, गुर्च तथा मसूर की दाल इनका क्वाथ पीने से वातपित्तज्वर दूर होता है। —चक्रदत्त।

(ख) छोटी कटेरी, गुर्च, भारङ्गी, सोठ, इन्द्रजव, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, नागरमोथा, परवल की पत्ती, कुटकी इनका क्वाथ पिलाने से पित्त प्रधान कफ ज्वर, जलन, प्यास, अरुचि, क्य, खासी, हृदय तथा पसलियो की पीडा नष्ट होती है। —चक्रदत्त।

(ग) छोटी कटेरी, गुर्च, सोठ, पोहकरमूल और चिरायता का क्वाथ 'पचतिक्त कषाय' कहा जाता है। इसके प्रयोग से आठ प्रकार के सभी ज्वर नष्ट होते है। —चक्रदत्त।

(घ) छोटी कण्टकारी, सोठ तथा गुर्च के काढे मे छोटी पीपल का चूर्ण ½ से २ ग्राम तक मिलाकर पीना चाहिये। इससे जीर्णज्वर, अरुचि, खासी, शूल, दमा, अग्निमाद्य, लकवा तथा पीनस रोग नष्ट होता है। —चक्रदत्त।

(ङ) छोटी कटेरी, नीम की अतरछाल, गिलोय, सोठ, पोहकरमूल। उपरोक्त पाचो द्रव्यो को तीन-तीन ग्राम लेकर कूटकर २५० ग्राम जल मे क्वाथ करके ६० ग्राम शेष रहे तव छानकर विना ही किसी प्रक्षेप के सुखोष्ण पीने से कास, श्वास, अरुचि, पार्श्वशूल सहित वात श्लैष्मिक, सन्निपात ज्वर, फुफ्फुसो मे रक्त का जमाव और फुफ्फुसो मे श्लेष्मा का जमाव, उरस्तोय प्रतिश्याय ज्वर आदि मे महान उपकारक होता है। —भैषज्य रत्नावली—

(च) छोटी कटेरी, कुलथी, वासा और सोठ इन ४ द्रव्यो के क्वाथ ४८ ग्राम मे पुष्करमूल चूर्ण ६ ग्राम को मिलाकर पान करने से श्वास-कास रोग नष्ट होता है। —शार्ङ्गधर सहिता—

(छ) कण्टकारी, गिलोय, सोठ, नागरमोथा, भारगी, जवासा इन द्रव्यो के क्वाथ मे पिप्पली का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से कफ ज्वर का समूल विनाश कर देता है। —वै० च० चि०।

(ज) कण्टकारी तथा गुरुच के क्वाथ मे हर्र का कल्क मिलाकर देने से ज्वर तथा कास उपद्रव से युक्त राजयक्ष्मा रोग दूर होता है। —क्वाथमणिमाला।

(झ) छोटी कटेरी, पीपर, सोठ, भारङ्गी तथा अडूसा इनका क्वाथ शहद मिलाकर लेने से क्षय को दूर करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

—क्वाथ मणिमाला।

(ञ) छोटी कटेरी, वासा, गुरुच, भारङ्गी, काकडासिगी, गुर्च और कसौजी इनके क्वाथ मे मधु तथा पीपर मिलाकर पीने से पाचो कास तथा पाचो श्वास दूर होते है। —क्वाथ मणिमाला।

२. कटकार्यादि वटी—छोटी कटेरी ९६ ग्राम, निरमली के फल ९६ ग्राम, अफीम पक्की २४ ग्राम, सोनामाखी भस्म ४८ ग्राम, सोठ ४८ ग्राम, सुहागा (फूला हुआ) ४८ ग्राम। सब कूटने वाली वस्तुऐ कूटकर अदरक के रस के साथ पाच दिन तक खरल कर १२०-१२० मि० ग्राम की गोलिया बना रख छोडे। सुबह, शाम और रात को एक-एक गोली अदरक के रस के साथ अथवा दूध के साथ खाने से विषमज्वर, कफज्वर, राजयक्ष्मा और खासी दूर हो जाती है।

—वैद्य कुतुहल।

३. कंटकार्यादि चूर्ण—कण्टकारी की जड, सफेद जीरा और आवला इन ३ द्रव्यो के चूर्ण के साथ मधु मिलाकर चाटने से ऊर्ध्ववात, महाश्वास, तमकश्वास रोग उसी समय नष्ट होते है। —शार्ङ्गधर सहिता।

४. कण्टकारी क्षार—छोटी कटेरी पचाग को सुखा, जला राख को अठगुने पानी मे घोलकर, निथार कर ७ बार छानकर, क्षार पाक विधि से क्षार बना ले।

मात्रा—२४० मि० ग्राम से ९६० मि० ग्राम तक मधु, गुलबनफसादि या श्रृंग्यादि क्वाथ, शर्बत गुलबनफ्सा, शर्बत अडूसा, शर्बत मुलहठी आदि मे मिला कर दे।

गुण—खासी, श्वास, गले की खराबी प्रतिश्याय, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगो को नष्ट करता है। शुष्क कास मे चन्द्रामृत रस २४० मि० ग्राम, मिश्री चूर्ण ४८० मि० ग्राम मे मिलाकर शहद अथवा मुलहठी के साथ दे। —आयुर्वेद सारसग्रह।

५. कण्टकारी सत—इसके पचाग को जौकुट कर उसमे आठ गुना पानी मिला पकावे। दो गुना पानी शेष रहने पर उसे छानकर स्थिर होने के लिए रख दे। पश्चात् ऊपर का पानी पुन पकावें। गाढी हो जाने पर चीनी के पात्र मे सुरक्षित रखे।

मात्रा—१ ग्राम तक शहद के साथ सेवन करने से श्वास रोग दूर होता है। यह पाचक और कृमिघ्न है।

धन्वन्तरि वनौषधि विशेषाक।

६. कटकारी घृत—(क) छोटी कटेरी, गुर्च का काढा प्रत्येक १ किलो ४०० ग्राम, ७६८ ग्राम घृत के साथ पका सिद्ध करे। इसमे वातज कास नष्ट होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। —चक्रदत।

(ख) रास्ना, खरेटी, त्रिकटु गोखरू का कल्क, कल्क से चौगुना घृत, घृत से चौगुना कण्टकारी का रस लेकर घृत सिद्ध करे। इस घृत से पाचो प्रकार के कास नष्ट होते हैं। —चक्रदत्त।

(ग) कण्टकारी का पञ्चाङ्ग लेकर ३ किलो ७२ ग्राम स्वरस निकालें तथा ७६८ ग्राम घी, खिरेटी, त्रिकटु, वायविडङ्ग, कचूर, चीता की जड, कालानमक, जवाखार, बेल की गूदी, आवला, पोहकरमूल, मुनक्का, चव्य, धमासा, अम्लवेत, काकडासिगी, भूम्यामलकी, भारङ्गी, रास्ना, गोखरू का कल्क, घृत का चौथाई लेकर घृत सिद्ध करे। यह कफ के रोग, कास, हिक्का, श्वास आदि को दूर करता है। —चरक सहिता।

(घ) छोटी कटेरी पचाग और बड़ी श्वेत पुष्पवाली समभाग का यवकुट चूर्ण करे। यह एक किलोग्राम को ३० लीटर जल मे ओटावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान ले। फिर इसमे एक किलोग्राम घृत मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब घृत मात्र शेष रह तब उतार कर छान ले। —सुधानिधि मई १९७५।

७. कण्टकार्याद्यवलेह—कटेरी ४ किलो ८०० ग्राम, पीपलामूल २ किलो ४०० ग्राम, चीता १ किलो और दशमूल १ किलो २०० ग्राम लेकर अधकुटा करके

६४ किलो पानी मे पकावे। जब ८ किलो पानी शेष रहे तो छानकर उसमे २ किलो पुराना गुड मिलाकर पकावै, जब करछी से लगने लगे तो उसमे ३८४ ग्राम पीपल और ६०-६० ग्राम दालचीनी, तेजपात, इलायची तथा कालीमिर्च का चूर्ण मिलावें और ठण्डा होने पर उसमे ४८० ग्राम शहद डालकर सुरक्षित रखे।

यह स्वर और बुद्धिवर्धक तथा प्रतिश्याय, खासी, श्वास, अग्निमाद्य, अर्श, गुल्म, प्रमेह, गलरोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ग्रन्थि और अर्बुद नाशक है।

मात्रा—१२ से २४ ग्राम तक।

(ख) कण्टकारी का यवकुट चूर्ण ५ किलो को १२ किलो ८०० ग्राम जल मे क्वाथ करे और चतुर्थांश शेष रहने पर उसे छान लें। इस क्वाथ मे अधोलिखित द्रव्यो का चूर्ण ४८-४८ ग्राम की मात्रा मे डाले। गुडूची, चव्य, चित्रक, नागरमोथा, काकडासिंगी, शुण्ठी, कालीमरिच, पिप्पली, धमासा, भारगी, रास्ना और कचूर। शर्करा १ किलो, घृत एव तैल प्रत्येक ३८४ ग्राम मिलाकर पाक करे। अवलेहवत् घन हो जाने पर चूल्हे से कढाई को उतार ले। शीतल होने पर मधु ३८४ ग्राम मिला लें। इसके बाद वशलोचन चूर्ण १९२ ग्राम, पिप्पली चूर्ण ३८४ ग्राम अच्छी प्रकार मिलाकर अच्छे मजबूत मृत्तका पात्र मे रख ले। यह अवलेह हिक्का और श्वास-कास को जडमूल से नष्ट करता है।

—शार्ङ्गधर सहिता।

(ग) भृगु हरीतकी (व्याघ्री हरीतकी)—जड छाल और पत्ते समेत कटेरी का सर्वाङ्ग ४ किलो ८०० ग्राम और हरड १ किलो २०० ग्राम लेवे, दोनो को एक पात्र मे डालकर १२ किलो १६८ ग्राम जल मे पकावे, पकते-पकते जब चौथाई भाग क्वाथ बाकी रह जाय, तब उसको उतार कर बारीक वस्त्र मे छानकर रख देवे। फिर उस छने हुए क्वाथ मे पूर्वोक्त पकाई हुई १०० हरड और गुड ४ किलो ८०० ग्राम लेकर पकावे, जब अच्छे प्रकार से पककर अवलेह के समान तैयार हो जाय तब उसको उतार कर शीतल कर लेवे, पश्चात् उस मे सोठ ४८ ग्राम, काली मिर्च ४८ ग्राम, पीपल ४८ ग्राम, इलायची ४८ ग्राम, दालचीनी ४८ ग्राम, तेजपात ४८ ग्राम, नागकेसर ४८ ग्राम और शहद २८८ ग्राम। इन सब को मिला देवे। इस अवलेह को विधिपूर्वक शरीर के बल के अनुसार और अग्नि के बलानुसार सेवन करे तो वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, क्षतज श्वास, पीनस और एकादश, लक्षणो वाला महा भयकर राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है। यह भृगु ऋषि की कही हुई "भृगुहरीतकी" नाम से प्रसिद्ध है।

—चक्रदत्त।

८. कण्टकारी अर्क—जमीन मे एक बडा गड्ढा खोदकर उसके मध्य भाग मे नीचे एक और छोटा गड्ढा खोदे। इस छोटे गड्ढे मे एक चीनी का प्याला रख दे। तथा उसके ऊपर एक बडी मटकी जिसके पेंदे मे कई छोटे-छोटे छिद्र कर दिये हो अच्छी तरह जमा देवें। इस मटकी मे कटेरी के पचाङ्ग को अच्छी तरह कुचल कर भर देवे, तथा उसके मुख पर सकोरा रखकर कपडमिट्टी कर दे। पश्चात् मटकी के चारो ओर जगली उपलो से गडढे को भरकर आग लगा दे। आग के शान्त हो जाने पर नीचे के प्याले मे एकत्र हुए अर्क को शीशी मे भर रक्खे।

मात्रा—१० से ३० बूद तक पीने से अपूर्व लाभ होता है। आखे आई हो तो इसे लगाने से आराम होता है। सुजाक मे इसे शहद के साथ चटाते है। कास श्वास मे इसकी बूदे पान के रस के साथ सेवन करना चाहिए। इससे वातज, कफज, क्षयज, कास, छाती का दर्द, शीतज्वर आदि दूर हो जाते है। —वनौषधि चन्द्रोदय—

९. कण्टकार्यारिष्ट—इसका पचाङ्ग ४ किलो तथा अडूसा जड की छाल ४ किलो ग्राम, दोनो को जौकूट कर ५२ किलो पानी मे पकावे। शेष जल ८ या १० किलो रह जाने पर छान कर शुद्ध मटके मे भर उसमे मिश्री १० किलो, शहद १५ किलो, धाय के फूल ३०० ग्राम, और छोटी पीपल, काली मिर्च, काकडासिंगी, कूठ व मुलहठी ४८-४८ ग्राम महीन चूर्ण कर मिलावे। फिर अच्छी तरह सन्धान कर एक मास तक

सुरक्षित रक्खे। पश्चात् छान कर बोतलो मे भर रखें।

मात्रा—२४ से ४८ ग्राम तक सेवन करने से शुष्क खासी, क्षय की या जीर्ण खासी श्वास पर विशेष लाभ होता है। वृक्क के रोग मूत्रकृच्छ्, मूत्राघात पर लाभदायक है। शीतला का वेग शात होता है। शीत-पित्त एव साधारण खुजली, भी इसके सेवन से दूर होती है। —वृ० आ० सग्रह।

१०. कण्टकार्यासवार्क—इसका पचाङ्ग ५ किलो, गुड २ किलो ५०० ग्राम, और जल १० किलो लेकर प्रथम गुड को जल मे घोल कर कटेरी को जो कुट कर मिला देवे। चिकने मटके मे भर मुख वन्द कर घोडे की लीद मे दवा देवे। १५ दिन बाद भवके द्वारा अर्क खीचकर बोतलो मे भर रखे। मात्रा-४८ ग्राम प्रात साय निम्न गोलियो के साथ सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

रेवन्दचीनी, कलमी सोरा और नोसादर तीनो सम-भाग महीन पीस चने जैसी गोलिया वना लेवे। १-१ गोली खाकर ऊपर से आसवार्क पिलावे। यह जलोदर मे लाभप्रद हे। —धन्वन्तरि वनौपधि विशेषाक।

११. कण्टकारी सीरप—आयु० वाच० कवि० श्री गिरधारी लाल मिश्र ने आयुर्वेद विकास आसवारिष्ट विशेपाङ्क मे तथा धन्वन्तरि शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क द्वितीय भाग मे कण्टकार्याद्यरिष्ट का स्वानुभूत विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी वर्णन मे लिखा है कि उपर्युक्त (क्रमाङ्क ९) कण्टकार्याद्यरिष्ट १ किलो मे चीनी २ किलो डालकर १॥ तार की चाशनी वनाले। बस, बच्चो के लिए सुस्वाद सुमधुर "कण्टकारी सीरप', तैयार हे। वाल कास रोग का अमोघ ब्रह्मास्त्र है।

वडो को कण्टकार्याद्यरिष्ट देवे तथा वच्चो को कण्टकारी सीरप देवे। यह सीरप १० वूद से १-२ चाय चम्मच (Teaspoon) तक प्रात साय मध्याह्न या आवश्यकानुसार दे।

—धन्व० शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगाङ्क।

१२ कंटकार्यादि अञ्जन—कण्टकारी का फल जब पक्वावस्था मे आ गया हो उसके बीजो को निकाल कर उसके भीतर पिप्पली ओर सौवीराजन को सम मात्रा मे लेकर भर देना चाहिए। एक सप्ताह के वाद उसे पीसकर या घिसकर अजन करना चाहिए। इससे पिष्टक (Pinguecula) पिसे चावलो के समान शुक्ल वर्ण या जल समान स्वच्छ वर्ण का उठा हुआ वृताकार विन्दु) नामक नेत्र रोग दूर होता है।

—शालाक्य तन्त्र।

१३. कंटकारी तैल—(क) कटकारी पचाङ्ग को पीसकर लुगदी को चारगुना सरसो के तैल मे खूब पका-कर तैल छान ले।

इसकी २-२ वूदे नासिका मे डालने से प्रतिश्याय मे लाभ होता है। —धन्व० वनौ० विशे०।

(ख) कटकारी के ताजे फलो को कूट-पीसकर सम-भाग पानी और दो गुना सरसो का तैल मिलाकर अथवा इसके पचाग के स्वरस मे दो गुना तैल मिलाकर मन्दाग्नि से पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख ले। इसकी मालिश से सन्धिवात आदि विकार ६ दिन मे दूर हो जाते हैं। अपस्मार या योपापस्मार पर इस तैल की नस्य देवे। —धन्व० वनौषधि विशेपाङ्क से।

(ग) कटकारी के पके फलो के टुकडो को एक बोतल मे भर उसमे इतना तिल तैल डाले कि सब टुकडे डूब जावे। फिर बोतल का मुख बन्द कर ४० दिन धूप मे रखे। पश्चात् तैल को छानकर रख ले। इस तैल की नस्य से सिर का दर्द, अर्धावभेदक शीघ्र दूर होता हे। यह तैल इसी प्रकार नस्य के द्वारा अपस्मार, योपा-पस्मार को भी दूर करता है। सन्धिशूल, अङ्गमर्दन एव सुस्ती को दूर करने के लिए इस तैल की मालिस की जाती है। —धन्व० वनौषधि विशेपाङ्क से।

(घ) कटेरी का पचाङ्ग तथा दन्तीमूल, वच, सह-जना छाल, तुलसीपत्र, सोठ, कालीमिर्च, पीपल व सेधा-नमक समभाग पीसकर कल्क करे। कल्क से ४ गुना तिल तैल और तैल से ४ गुना कटेरी पचाङ्ग का क्वाथ

मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करे। इसकी नस्य से पीनस, मस्तिष्क मे कृमि का होना आदि रोग दूर होते हैं। इस तैल को पीने से कफ दूर होकर कास एव श्वास मे लाभ होता है।

(ध्यान रहे नस्य के लिए सरसो के तैल को और पीने के लिए तिल तैल को सिद्ध करना चाहिए)।

—भै० र०।

अनुभूत प्रयोग—

(१) सन्धिवातहर योग—५ किलो या अधिक कटेली पचाङ्ग को कूट कर हाडी मे भरे, और मुख पर कपडा बाधकर ऊपर औधा भगोना रखकर सम्हाल पूर्वक सन्धि स्थान मे मुद्रा करे। फिर भगोना मह हाडी को लगभग पौनी जमीन मे दवावे। भगोने को नीचे और हाडी तल भाग को ऊपर रखे। फिर तीन घण्टे तक ऊपर अग्नि जलाने से अर्क भगोने मे गिरेगा। इस अर्क को छानकर बोतल मे भर लेवे। इसमे से १५-१५ ग्राम अर्क दिन मे ३ वार पिलाते रहने से सन्धिवात की पीडा दूर होती है। उदरपीडा, वात प्रकोप, अफरा और कफ प्रकोप मे भी यह अर्क अच्छा लाभ पहुँचाता है। —रसतन्त्रसार द्वितीय खण्ड से।

(२) स्वरभगहर—रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लोह-भस्म समभाग ले कटकारी के स्वरस से ८ वार भावना देकर मूग प्रमाण गोलिया बनाकर रख ले।

मात्रा—१-२ गोली मधु आदि अनुपान मे।

गुण—सव प्रकार का स्वर भङ्ग दूर होता है।

—श्री वैद्यराज प्रो० वसरीलाल जी साहनी

(३) क्षुद्रादिपानक—कटकारी पचाङ्ग १२० ग्राम' वडी कटेरी पचाङ्ग ६० ग्राम, पुष्करमूल ६० ग्राम, मुलहठी ६० ग्राम, वनफशा के फूल ३० ग्राम, उन्नाव ३० ग्राम, लिहसोड़ा ३० ग्राम, पोस्त के डोडे ३० ग्राम, काकडासिगी ३० ग्राम, मुनक्का ३० ग्राम, जल २ किलो और मिश्री १ किलो। विधिपूर्वक पानक (शर्वत) वना ले।

मात्रा—६ ग्राम से २४ ग्राम, दिन मे २-३ वार।

गुण—शुष्क तथा तर दोनो प्रकार के कास मे वहुत लाभप्रद है। —श्री निरजनदेव जी आचार्य द्वारा धन्व० सफलसिद्ध प्रयोगाक से।

(४) कुकरकासहर योग—छोटी कटेली पचाङ्ग, केले के पत्ते २ नग, घीकवार के पत्ते ३ नग, कालानमक २५० ग्राम सब वस्तुओ के छोटे-छोटे टुकडे करके एक हाडी मे डालकर कपडमिट्टी करके २० किलो उपलो मे फूक देवे। स्वाग शीतल होने पर बारीक कपडछन चूर्ण करे।

मात्रा—वडो को ४८० मि० ग्रा० मधु के साथ, बच्चो को ६० मि० ग्रा० से ३६० मि० ग्रा० तक देवे।

उपयोग—सम्पूर्ण कास तथा खास तौर पर श्वास-जन्य कास, शुष्क कास, कुकरकास मे उपयोगी है पूर्ण परीक्षित है।

—कविराज श्री कमलेश्वर वशिष्ठ आचार्य द्वारा धन्व० सफलसिद्ध प्रयोगाक से।

(५) कासाशनि—[१] कटकारी का पचाङ्ग १ किलो, पियावासा १ किलो, पानी ८ किलो, अवशेष २ किलो चीनी २ किलो।

[२] गुलबनफ्सा, गुलेगावजवा, मुलहठी, दाख प्रत्येक २४०-२४० ग्राम इने ४ किलो पानी मे रात भर भिगो दे और क्वाथ करे शेष १ किलो रहे। अब न० १ के २ किलो क्वाथ और न० २ के १ किलो क्वाथ को एक कडाही मे मिलाकर लेह बना वे। मधु के समान गाढा होने पर उतार लो इसमे सौभाग्य भस्म ६० ग्राम और सोडावाईकार्व ६० ग्राम मिला ले गर्म रहने पर झाग उठेगा। फिर इसे शान्त होने पर हाथ से मिला दे। तव पोड या वोतल मे भर दे। कपूर, अजवायन और सत्व पिपरमेण्ट का मिश्रित घोल मे से २०-२० बूद तक एक पौंड की वोतल मे डाल दे जिसमे मधु के समान वना हुआ लेह तैयार है। कार्क लगा दीजिये। यह वहुत सुन्दर लेह ऐलोपैथी के कफ सीरप के समान है। इसे १-१ या २-२ चम्मच पानी के साथ कफ के रोगो मे प्रयोग करे। —वैद्य श्री प्रदीननारायन यादव द्वारा धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क से।

(६) स्तनशैथिल्यहर—दोनो कटेरी की जड, अनार का छिलका, कन्दूर की जड, कच्ची मूसली और वरगद की जटा (पीले या लालरग की) सब बराबर लेकर पानी मे पीसकर स्तनो पर लेप करे। इससे स्तन सुदृढ होते हैं। —स्वामी श्री परमानन्द जी द्वारा

(७) कासनाशक शर्बत—कटकारी पचाङ्ग २५० ग्राम, वासा (अडूसा) पचाङ्ग १५० ग्राम, मधुयष्टी (मुलहठी) १२५ ग्राम और अदरक का रस ६० ग्राम।

प्रारम्भ की तीन औपधियो का यवकुट चूर्ण कर ३ किलो पानी मे रात भर भिगोवे। प्रात अग्नि पर औटावे, ७५० ग्राम पानी शेष रहने पर अदरक का रस तथा ७५० ग्राम चीनी मिलाकर चाशनी बना ले।

५-१० ग्राम दिन मे तीन बार देने से हर प्रकार की खासी शीघ्र नष्ट हो जाती है। यह कास की अद्वितीय औपधि है। सहस्रो रोगियो पर परीक्षित है, प्रतिश्याय मे भी लाभप्रद है। —प० श्री हरनारायण वैद्य द्वारा
धन्व० गु० सि० प्र० भाग ४ से।

(८) दमे पर अनुभूत प्रयोग—लोग कहते है कि दमा दम के साथ जाता है, परन्तु मैंने नीचे लिखा दमा रोग पर एक प्रयोग का परीक्षण किया जो ८० प्रतिशत दमे के रोगियो को आराम देने मे सफल हुआ।

कटेरी पुष्प १२ ग्राम, मदार पुष्प १२ ग्राम, मुलहठी सत्व १२ ग्राम और छोटी पीपर ६ ग्राम। इन चारो द्रव्यो को बारीक पीसकर धूप मे सुखा ले, तत्पश्चात् उचित मात्रा मे शहद के साथ घोटकर गोलिया बना ले। दौरे के समय २ गोली गुनगुने पानी के साथ निगलवा दे। कुछ ही क्षणो मे दौरा शान्त होता है।

—प० श्री चन्द्रभूषण पाण्डे वैद्य द्वारा
धन्व० सफल सि० प्र० से।

बृहती (बड़ी कण्टकारी) [Solanum indicum]

●

यह भी कन्टकारी कुल (सोलेनेसी) की ही वनौषधि है। इसके विविध भाषाओ मे निम्नाङ्कित नाम है।

संस्कृत—बृहती (बडी), सिंही (सिंह के समान उच्च स्वर बनाने वाली, क्षुद्र भण्टाकी (बैंगन के समान किन्तु छोटा क्षुप), वनवृन्ताकी, कटालु, कटुफला, दुष्प्रर्षणी, वार्ताकी, "वार्ताकी बृहती सिंही" इति वोपदेवः।

हिन्दी—बडी कटेरी, वनभटा, बडी भटकटैया।

गुजराती—उभी रिंगणी।

मराठी—डोरली, वागी, मोठी, चिचुरटी।

राजस्थानी—भोरीगणी, पद सावणी,।

पंजाबी—कडयारी।

बंगला—व्याकुड, गुरकामाई।

तामिल—पाप्पारामल्ली।

तेलगु—तेल्लामूलक।

फारसी—कटाई कला।

लैटिन—सोलेनम इण्डिकम (Solanum indicom)।

उत्पति स्थान—यह भारत के प्राय सभी प्रान्तो की ऊपर भूमि एव समशीतोष्ण जलवायु मे उत्पन्न होती है। पजाब और दक्षिण भारत मे अधिक पाई जाती है।

रासायनिक संगठन—इसके मूल, फल और पत्र मे सोलेनिन (Solanine) सोलेनायडिन (Solanidine) नामक दो क्षाराभ, वसाम्ल (Fatty Acids) और मोम होते हैं। पत्र एव फल मे सोलेसोनिन (Solasonine) नामक ग्लाइकोअलकलॉयड होता है। इसके पत्र, काड तथा फल मे डायोस्जेनिन भी पाया जाता है। फल मे कार्बोहाइड्रेट, मालरेज, सक्रोज, मेलिबिएज तथा एक प्रोटीन विश्लेषक किण्वतत्व पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका क्षुप बैंगन के क्षुप जैसा ३-६ फुट ऊचा अनेक शाखाप्रशाखायुक्त, कटकित होता है। शाखाये रोमश होती हैं जिन पर टेढे मृदु कण्टक होते है। काण्ड दृढ होता है जिन पर कटक दृढ होते हैं। पत्र—३-३ इच लम्वे, १-४ इच चौडे, लट्वाकार, दन्तुर या खण्डित, रोमश, बैंगन पत्र जैसे होते हैं। निचले पृष्ठ पर सिराओ पर दृढ कटक होते हैं। मध्यशिरा के दोनो ओर के भाग छोटे बडे होते है। पुष्ठ—बैंगनी, बैंगनपुष्पाकृति (कभी कभी श्वेत), अनेक शाखायुक्त पार्श्विक मञ्जरियो मे कटक युक्त होते है। फल—$\frac{1}{3}$ इच व्यास, के, गोल, चिकने, कच्ची अवस्था मे हरित, श्वेतरेखाकित तथा पकने पर पीत होते है। जिनके मूल भाग मे त्रिकोणाकार आयताकार बहिर्दल लगे रहते है। ताजे फल कडवे, चरपरे होते हैं, सूखने पर इनमे कडवापन नही रहता है। बीज-चिकने, अनेक, बैंगन समान होते है।

इसमे पुष्प और फल प्राय वर्ष भर तक लगते रहते है।

भेद—इसका एक भेद श्वेत पुष्प वाला होता है। इसका क्षुप बडा होता है। इसे श्वेतबृहती और लैटिन मे सोलेनम टार्वम (Solanum Torvum) कहते हैं। यह ठडे एव आर्द्र स्थानो पर अधिक पाया जाता है। इसके क्षुप उक्त बृहती के समान ही किन्तु ६ से १० फुट तक ऊचे होते हैं। शाखाये सीधी, मुलायम तथा अल्पकटक किंवा कटक रहित होती हैं। प्रशाखाये बहुत कम होती है। पत्र—उक्त बृहती पत्र से किंचित् लम्बे और चौडे होते हे, ये भी कटक रहित होते है। पुष्प-श्वेत तथा बाह्यकोण मे कटक नही होते हैं। यह भी गर्भस्थापक तथा नेत्र रोगहर है। "वातश्लेष्महरा रुच्या नानानेत्ररुजापहा" इति निघण्टुशिरोमणिः।

रस—कटु, तिक्त।

अभिधानरत्नमाला के कटुद्रव्यस्कन्ध के अन्तर्गत इसका पर्यायों के साथ वर्णन किया गया है।

दुष्टस्पर्शा कण्टकिनी सिंही तु बहुकण्टका।
बृहती क्षुद्रवार्ताकी राष्ट्रिका विशदा च सा॥
५/२५

गुण—लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—यह उष्णवीर्य होने से कफ वात शामक व पित्तल सन है।

प्रयोज्यअङ्ग—मूल, फल।

मात्रा—क्वाथ–४०-८० मि०लि०, चूर्ण–३-६ ग्राम

गुणप्रकाशिकासंज्ञा—सिंही।

गुण-धर्म—

बृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफवातहृत।
कटु तिक्तास्य वैरस्यमलारोचकनाशिनी॥
उष्णा कुष्ठ ज्वर श्वास शूलकासाग्निमान्द्यजित॥
—भा० नि०।

बृहती कटुतिक्तोष्णा वातज्वरहरा तथा।
काम श्वासरुचिहरा हृद्रोगामहरा 'नृपे'॥
ग्रहणी पाचनी प्रोक्ता धन्वन्तरिनिघटके।
कफश्लेष्महरा हृद्या दीपनी कुष्टहा तथा॥
आम्योद्भवमलघ्नी च शूलहा 'कैयदेवके'।
कफवातहरा प्रोक्ता 'द्रव्यनाम निघटके'॥
—नि० शिरोमणि।

उष्णा ज्वरश्वसनशूलकफाग्निसादान्
हन्यादगुणौघबृहती बृहती सवातान्।
—सि० भे० मणि०।

बृहती कटुतिक्तोष्णा कफवातहरी मता।
ग्राहिणी पाचनी रुच्या हृद्या वन्हिप्रदीपनी।
ज्वरे कासे तथा श्वासे शूले मान्द्ये च शस्यते॥
—प्रि० निघन्टु।

बृहती उष्ण होने से दीपन-पाचन, ग्राही और कृमिघ्न है सुतरा यह अग्निमाद्य, ग्रहणी, उदरशूल, कृमिरोग एव छर्दि आदि रोगों में लाभप्रद है। पित्तजन्य उदरशूल को नष्ट करने के लिए बृहत्यादि क्वाथ का सेवन हितावह है—

बृहतीगोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुवालका।
पीता पित्तभव शूल सद्यो हन्यु सुदारुणम्॥
—यो० र०।

कफजन्य शूल को नष्ट करने हेतु चिकित्सासूत्र मे कहा गया है कि "सेवेत रुक्षान् कटुकाश्च सर्वान्" सुतरा बृहती रुक्ष एव कटु होने से लाभप्रद है। शूल-चिकित्साधिकार मे कथित "एरण्डसप्तक" व "एरण्ड-द्वादशकक्वाथ" के अन्तर्गत दोनो कटकारी प्रयुक्त हैं। बृहतीफल अरोचकविनाशार्थ प्रयुक्त होता है—

पक्त्वा मस्कारसभृष्टो बृहतीफलसचय।
दध्नि प्रक्वथिते पश्चात् क्षिप्त. पथ्योऽप्यरोचके॥
—वैद्य मनोरमा।

यह हृदयोत्तेजक होने से हृद्दौर्बल्य मे, शोथहर होने से शोथ मे और रक्तशोधक होने से रक्तविकारो मे लाभप्रद है। दशमूल हृदयरोगो की उत्तम-औषधि है। इसके सेवन की विधि है—

दशमूलीकषायन्तु लवणक्षारसयुतम्।
श्वास कासञ्च हृद्रोग गुल्म शूलञ्च नाशयेत्॥
चक्रदत्त।

शोथ मे भगवान् चरक ने चि० स्था० अ० १२ मे उन्मर्दनार्थ कई औषधियो का वर्णन किया है उनमे बृहती का भी इस हेतु उल्लेख मिलता है।

कुष्ठरोग मे बृहतीफल को पथ्य कहा गया है। श्री बसवराज ने जो इस रोग के पथ्य कहे हैं उनमे बृहतीफल की भी गणना की है।

वरापटोलखदिरानिम्बश्च बृहतीफलम्।
यथादोष समस्तानि पथ्यान्येतानि कुष्ठिनाम्॥

बहुदोष वाले कुष्ठी के प्राणो की रक्षा करते हुये पुन-पुन. सशोधन करना चाहिये—"बहुदोष. सशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुलक्षता प्राणान्"। इस निमित्त कुष्ठी के आस्थापन हेतु बृहती को उपयुक्त कहा गया है—

दार्वीबृहतीसेव्यै पटोलपिचुमर्दमदनकृतमाल.।
सरनैहैरास्थाप्य कुष्ठी सकलिङ्गयवमुस्तैः॥
—चरक० चि० ७/४५।



बृहती (Solanum indicum)

विभिन्न नाम : स०—बृहती, सिंही । हिन्दी—बडी कटेरी । मराठी—डोरली । गुजराती—उभी रिंगणी । बंगला—व्याकुड । लेटिन—सोलेनम इण्डिकम ।

प्राप्ति स्थान : प्राय सर्वत्र ।

उपयोगी अंग ; मूल, फल ।

रोगोपयोग : कास, श्वास, कुष्ठ, आदि ।

मुख्य योग : बृहत्यादि क्वाथ ।

दोषशमन · कफवातशामक ।

अन्त परिमार्जन एव वहिपरिमार्जन मे बृहती श्रेष्ठ कही गई है। भगवान् चरक का उपदेश है—

वासा त्रिफला पाने स्नाने चोद्वर्तने प्रलेपे च।
बृहतीसेव्यपटोलाः ससारिवा रोहिणी चैव॥
—च० चि० ७/१२७।

इसके अतिरिक्त वातरक्त चिकित्सा (च० चि० २९/७५) मे भी इसकी उपयोगिता प्रदर्शित की गई है। चरक० चि० अ० २७ मे उरुस्तम्भ चिकित्सा मे कहा गया है कि "सोनापाठा, कत्था, बेल, बडी छोटी कटकारी, चीड, विजयसार, सहजन, जयन्ती, गोखरू, दोनो तुलसी, अरनी, करञ्ज इन सबको जल मे औटाकर सेचन करने तथा गोमूत्र के साथ पीसकर इनका प्रलेप करने से उरुस्तम्भ मे लाभ होता है।"

इसके बीजो के चूर्ण का नस्य मूर्च्छादि मे सज्ञानाश को दूर करता है—

एकं बृहत्या. फलपिप्पलीक-
शुण्ठीयुत चूर्णमिद प्रशस्तम्।
प्रध्मापयेत् घ्राणपुटे विसन्न-
चेष्टा करोति क्षवथुप्रबुद्ध॥—शोढल।

बृहत्यादिगण की औषधिया प्राणवाही स्रोतस स्थित कफभरण को दूर कर श्वासप्रणाली को साफ करने मे श्रेष्ठ सिद्ध हुई है सुतरा यह कास श्वासादि मे हितकारक है। कफोल्वण सन्निपात मे दोनो कटकारी लाभप्रद कही गई है।

सिंही व्याघ्री ताम्रमूली पटोली-
श्रृङ्गी पथ्या पुष्कर रोहिणी च।
साक शट्याः शैलमल्लीज बीज-
वर्ग प्रोक्त सन्निपातारिशेष॥—त्रिशती ६६।

"एष वर्ग सन्निपातारि' प्रोक्त कफप्रायेऽस्य प्रयोग" —वल्लभभट्ट।

बृहती, एरण्डमूलत्वक्, सैन्धव, शिग्रु पुष्प को अजा दुग्ध मे पीसकर वर्त्ति बनाकर आखो मे लगाने से वातजन्य नेत्ररोगो का नाश होता है।

बृहत्येरण्डमूलत्वक् शिग्रो पुष्प ससैन्धवम्।
अजाक्षीरेण पिष्ट स्याद्वर्ति र्वाताक्षिरोगनुत्॥
—चरक० चि० २६।

प० श्री हरिशास्त्री भी अक्षिरोगाध्याय मे वर्णन करते है।

बृहती दुग्धतो घृष्ट्वा काश्यपार्वेर्धगोक्षिकाम्।
मधुनाभ्यजयेत्तेन पुष्पमाप्यपनोधते॥
—सजी० साम्रा०।

सुश्रुतसहिता के सूत्रस्थान २४/९ मे रक्तदोषज रोगो मे इन्द्रलुप्त की गणना की गई है। तथा बसवराज ने इन्द्रलुप्त का कारण एक विशेष कृमि को कहा है।

कृमिभ्य केशनाशश्च तस्य नामेन्द्रलुप्तकम्।

एतावता बृहती रक्तशोधक एव कृमिघ्न होने से इन्द्रलुप्त मे भी लाभप्रद है।

इन्द्र लुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरस।
—शोढल।

इन प्रयोगो के अतिरिक्त यह स्तनवृद्धि, शिश्नवृद्धि आदि मे भी उपयोगी कही गई है।

यष्टीमधुक चूर्ण तु क्षीरव्यामिश्रित पुन।
बृहती फल तोयेन लेपन कुर्वता स्त्रिय.॥
—कुचि० त० २६।

अश्वगन्धा सुरावल्ली शूक सर्षपमेव च।
बृहतीफलतोयेन लिंगवृद्धि प्रशस्यते॥ –२८

किमत्र चित्र यदि वज्रवल्ली-
वचाश्वगन्धा जल शूकपर्णम्।
हेम प्रकाश बृहती फलम्ब-
क्षणेन कुर्यान्मुशलप्रमाणम्॥ –३२

गोश्रृङ्ग मूल कनकस्य बीज-
वचाश्वगन्धा जलशूकचूर्णम्।
हेमाम्बुवर्ण बृहती फल च-
क्षणेन कुर्याद् मुशलप्रमाणम्॥ –३३

स्त्रीद्रावणार्थ—

बृहतीफलमूलानि पिप्पली मरिचानि च।
मधुना रोचना सार्द्ध शिश्नलेपो द्रव स्त्रिया॥
—दत्तात्रेयतन्त्रम्।

निद्रास्तम्भनार्थ—

मधुना बृहतीमूलैरजयेल्लोचनद्वयम्।
निद्रास्तम्भो भवेत्तस्य नान्यथा मम भाषितम्॥
—दत्तात्रेयतन्त्रम्।

क्रमांक	रोग नाम	कटकारी	बृहती	विशेष
१	अग्निमाद्य	+	+	
२	विबन्ध	+	—	
३	कृमिरोग	+	+	
४	ग्रहणी	—	+	
५	उदरशूल	+	+	
६	अरुचि	—	+	
७	छर्दि	—	+	
८	कुष्ठ	+	+	
९	रक्तचाप	+	—	
१०	शोथ	+	+	
११	हृदयरोग	+	+	
१२	प्रतिश्याय	+	+	
१३	कास	+	+	
१४	श्वास	+	+	
१५	स्वरभेद	+	+	
१६	हिक्का	+	+	
१७	पार्श्वशूल	+	+	
१८	अश्मरी	+	+	
१९	मूत्रकृच्छ्र	+	+	
२०	रजोरोध	+	+	
२१	कष्टप्रसव	+	+	
२२	सूतिकारोग	—	+	
२३	नपुंसकता	+	+	
२४	चर्मरोग	+	+	
२५	ज्वर	+	+	विविध ज्वरो मे प्रयुक्त होती है।
२६	योनिकण्डू	—	+	
२७	इन्द्रलुप्त	—	+	
२८	अपतन्त्रक	+	+	
२९	अपस्मार	+	+	
३०	अगमर्द	+	+	
३१	वातरोग	+	+	
३२	कृमिदन्त	+	—	
३३	दन्तशूल	+	—	
३४	अर्श	+	—	
३५	नासारोग (पीनसादि)	+	—	
३६	पूयमेह	+	+	
३७	उदररोग	+	—	
३८	सन्धिवात	+	—	
३९	आमवात	+	—	
४०	उपदश	+	—	
४१	वन्ध्यत्व	+	—	
४२	गर्भपात	+	—	
४३	मेदोरोग	+	—	
४४	यक्ष्मा	+	+	
४५	पाण्डु	+	+	
४६	कामला	+	+	
४७	गुल्म	+	+	
४८	मदात्यय	+	—	
४९	वातरक्त	+	+	
५०	नेत्ररोग	—	+	

यूनानी मतानुसार—यूनानी मतानुसार यह दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है, कुछ लोग इसे तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क मानते है। यह पेट मे कब्ज करती है। दिल को कुव्वत देती है। भूख बढाती है, कफ और खून के फिसाद को दूर करती है। उदर एव मलाशय मे स्थित कीडो को यह नष्ट करती है। खासी दमा, सीने का दर्द, कुष्ठ, गुल्म, पेट का दर्द आदि रोगो मे भी यह लाभ पहुँचाती है। इसकी धूनी देना बवासीर मे फायदे-मन्द है।

मर्दानगी खोये व्यक्तियो के लिए इसकी जड की छाल को दुग्ध मे उबालकर पिलाना लाभदायक है। इसके सेवनकाल मे खटाई तथा वायुवर्धक पदार्थों का भक्षण करना ठीक नही है।

प्रसवकष्ट, गर्भपात, मूत्राघात, सुजाक आदि रोगो मे भी उपयुक्त अनुपान के साथ लाभप्रद होती है। कृमि-जन्य दन्तशूल मे इसके बीजो की धूनी से कृमि नष्ट होते है, जिससे शूल का शमन होता है।

सामान्य बाह्य प्रयोग (बृहती)----

(१) सज्ञानाश—[क] सन्निपात मूर्च्छादि रोगो मे सज्ञानाश को दूर करने के लिए इसके बीजो के चूर्ण की नस्य देने से रोगी शीघ्र होश मे आ जाता है।

[ख] वृहती शुष्कफल, पिप्पली और शुण्ठी का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर नाक मे नस्य देने से भी सज्ञानाश मिट जाता है।

(२) प्रसवकष्ट—इसकी जड को कमर मे वाधने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता हे।

(३) स्त्री द्रावणार्थ—वृहतीमूल, कालीमिर्च, पिप्पली और गोरोचन के सूक्ष्म चूर्ण को मधु मे मिलाकर शिश्न पर लेप कर सहवास करने से स्त्री शीघ्र ही द्रवित हो जाती है एव अति आनन्दानुभूति होती है।

(४) चर्मरोग—चर्मरोगो मे पत्रकल्क का प्रलेप हितावह है।

(५) योनिकण्डू—वृहतीफल एव हरिद्राद्वय को पीसकर योनिपूरण करने से किंवा भली-भाति जल मे पीसकर वर्त्तिका बनाकर योनि मे धारण करने से योनिगत कण्डू का शमन होता है।

(६) इन्द्रलुप्त—पत्र स्वरस को अकेला या मधु मे मिलाकर शिर पर मालिश करने से कुछ दिन मे बाल उगने लगते हैं।

(७) ध्वजभङ्ग—बीजो को भैस के दूध मे पीसकर शिश्न पर लेप करना ध्वजभङ्ग मे हितकर है। लेप पर एरण्डपत्र भी बाधा जा सकता हे।

(८) शिश्नवृद्धि हेतु—[क] फलस्वरस मे किंचित् सा (१००-१२५ मि० ग्रा०) कपूर पीसकर मधु मिलाकर लेप करना लघु शिश्न को वडा बना देता है।

[ख] असगन्ध, गिलोय, सिवार, सरसो इनको वृहतीफल के स्वरस मे मर्दन कर लेप करने से शिश्न वृद्धि होती हे।

[ग] बकुल, वच, असगन्ध, सिवार का पत्ता, नागकेशर, वृहतीफल इनको जल मे पीसकर लेप करने से शिश्न वृद्धि होती है।

[घ] गो के सींग का मूल, धतूरे के बीज, वच, असगन्ध, सिवार, एव वृहतीफल इनको पानी मे पीसकर लेप करने मे भी शिश्नवृद्धि होती है।

(९) स्तनवृद्धि हेतु—मुलहठी, महुआ का चूर्ण इनको दूध मे मिलाकर शुष्ककर वृहती के फल के स्वरस मे लेप करने से स्तनवृद्धि होती है।

(१०) नेत्ररोग—[क] वृहती, एरण्डमूलत्वक्, सैन्धव और सहिजन के पुष्पो को बकरी के दूध मे पीसकर बत्ती बनाकर आखो मे आजने से वातजन्य नेत्ररोगो का शीघ्र ही शमन होता है।

[ख] वृहती दुग्ध को कासे के पात्र मे घोटकर मधु मिलाकर १ बूद आख मे आजने से फूला कटता हे तथा अन्य नेत्ररोगो मे भी लाभ होता है।

अन्तः प्रयोग—

(१) उदरशूल—[क] वृहती क्वाथ मे सैन्धवलवण तथा यवक्षार मिलाकर सेवन करने से उदरशूल का शमन होता हे।

[ख] वृहती, गोखरू, एरण्डमूल, कुश, कास, ईख की जड का क्वाथ मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तजन्य उदरशूल का नाश होता है।

[ग] वृहती, एरण्ड और शुण्ठी के क्वाथ के सेवन से कफजशूल नष्ट होता है।

(२) अरुचि—वृहती फल को दही मे भिगोकर थोडा सैन्धवलवण तथा आर्द्रक स्वरस मिलाकर सेवन करने से अरुचि दूर होती है।

(३) हृदयरोग—वृहती, द्राक्षा, अर्जुन और शुठी को दुग्ध मे उबालकर सेवन करने से वातज हृदयरोगो का शमन होता है।

(४) रक्तविकार—वृहती, त्रिफला, सारिवा और निम्ब का क्वाथ रक्तविकार के लिए श्रेष्ठ हे।

(५) अहिफेनविष—वृहतीपत्र स्वरस मे दूध मिलाकर पीने से अहिफेनजन्य विष लक्षणो का शमन होता है।

(६) छर्दि—[क] पत्र स्वरस मे आर्द्रक स्वरस मिलाकर सेवन करने से छर्दि मिटती है।

[ख] फल स्वरस मे मधु तथा गोघृत असमान मात्रा मे मिलाकर सेवन करने से छर्दि दूर होती है।

(७) पूयमेह—[क] पञ्चाङ्ग के क्वाथ का सेवन इस रोग मे हितकर है।

[ख] २५ ग्राम वृहती पञ्चाङ्ग को २५० मि० लि० मे रात्रि को भिगो दे। प्रात उसे अच्छी तरह मलकर १०-१२ ग्राम मिश्री मिलाकर सेवन करने से भी पूयमेह के रोगी को आराम मिलता है।

(८) गर्भस्राव—पुन:-पुन गर्भस्राव होने वाली औरत को वृहतीमूल एव पिप्पली को पीसकर भैंस के दुग्ध के अनुपान से देना चाहिये।

(९) मूत्रकृच्छ्र—[क] वृहतीपत्र स्वरस मे मधु मिश्री मिलाकर देने से मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है।

[ख]-वृहती, पाढ, मुलैठी, इन्द्रजौ और पृश्नपर्णी का क्वाथ त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र मे लाभदायक है।

(१०) नपुंसकता—वृहतीमूल ताजा ४० ग्राम लेकर दूध मे पकावे। कुछ दिन इसे सेवन करना नपुसक रोगी के लिए हितकर है।

(११) कास—इसके फलो के टुकडे कर उसमे सैंधानमक मिलाकर खाने से कफ निकल जाता है जिससे जीर्ण कास का शमन होता है।

(१२) श्वास—इसके मूल का शीरा पीने से श्वास रोग मे लाभ होता है।

(१३) ज्वर—वृहती एव अमृता क्वाथ सर्व ज्वरो मे लाभप्रद है।

शास्त्रीय योग—

(१) वृहत्यादि क्वाथ—[क] दोनो कटकारी, इन्द्र जौ, मोथा, देवदारु, सोठ और गजपिप्पली का क्वाथ सन्निपात ज्वरहर है। —चरकसहिता।

[ख] दोनो कटकारी, सौंठ, धनिया और देवदारु के क्वाथ का पान करने से समस्त ज्वर नष्ट होते हे। —शा० सहिता।

[ग] वडी व छोटी कटकारी, गोखरु, एरण्डमूल, कुश, कास तथा ईख की जड का क्वाथ वनाकर शीतल होने पर पीने से पैत्तिक शूल का शमन होता है। —चक्रदत्त।

[घ] दोनो कटकारी, पाढ, मुलहठी तथा इन्द्रजौ का क्वाथ त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है। —चक्रदत्त।

[ड] वृहत्यादिगण क्वाथ—वडी, छोटी कटकारी, पुष्करमूल, भारगी, कचूर, काकडासिगी, दुरालभा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, कुटकी यह वृहत्यादिगण है। इसका क्वाथादि वनाकर देने मे उपद्रव सहित काम एव सन्निपात ज्वर का शमन होता है। —चरक सहिता।

बृहतीद्वय के सामान्य प्रयोग—

(१) कृमिदन्त—दोनो कटकारी, भूकदम्ब और एरण्डमूल के क्वाथ का गण्डूप करने से कृमिदन्तजन्य पीडा का शमन होता हे।

(२) मसूरिका—दोनो कटकारी, हरीतकी, धनिया सोठ, और पिप्पली का क्वाथ वनाकर शीतल होने के वाद मधु मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार की मसूरिका मे लाभ होता हे।

(३) हृदय रोग—[क] दोनो कटकारी, अर्जुन और सोठ का क्वाथ वातकफजन्य हृदय रोगो मे लाभप्रद है।

[ख] दोनो कण्टकारी, मुलैठी एव अर्जुन को दूध मे औटा कर चीनी मिलाकर सेवन करने से पित्तज हृदय रोग मे लाभ होता है।

(४) अश्मरी—दोनो कटकारीमूल चूर्ण मीठे दही मे मिलाकर सात दिनो तक पीवे।

(५) कास—[क] दोनो कटकारी, सोठ, वासा, गिलोय, भारङ्गी एव हरीतकी का क्वाथ काम रोग हर हे।

[ख] दोनो कटकारी, मुलहठी, तुलसीपत्र, कालीमिर्च के क्वाथ मे मधु मिलाकर सेवन करे।

[ग] दोनो कटकारी, वासा एव मुनक्का का क्वाथ सेवन करे।

(६) श्वास—दोनो कटकारी, हरिद्रा, सोठ, मिर्च, पीपल, मुलहठी एव गिलोय के क्वाथ मे यवक्षार मिलाकर सेवन करने से श्वास रोग का शमन होता है।

लीयक बृहती नागवल्ली......सूतमातृकादिभिर्मर्दनपुटैरपि मारणीयम् ।" —रसेन्द्र चिन्तामणि से।

इसी प्रकार अन्य धातुओ को भी भस्म निर्माण मे कंटकारी काम आती है । यहा पर विस्तार भय से मात्र रजतभस्म की दो निर्माण विधियो का वर्णन किया जा रहा है ।

१ कटकारी पञ्चाङ्ग का स्वरस निकालकर उसमे रजत के बुरादे को चार प्रहर तक खरल करे । इसके बाद इनकी टिकिया बनाकर शराव सम्पुट कर उपलो की आग मे फूक देवे । इसी भाति तीन-चार बार पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है ।

—ध० वनौ० विशे० से ।

२ रजत (चादी) ६०० ग्राम लेकर शुद्ध कर पतले पतरे बनाकर २-२ इन्च के टुकडे कर लें । फिर एक परात मे कोयले की अग्नि पर उन टुकडो को फैला देवें । सब टुकडे न रखे जाय तो थोडे-थोडे रखे । अच्छी तरह गरम होने पर चिमटे से एक-एक पतरे को उठाकर छोटी कटेरी के रस मे बुझाते जाय । इस प्रकार सब पतरे को २१ बार गरम कर बुझावे । फिर एक बडी हाडी के ऊपर तीसरा हिस्सा तोडकर उसे कडो से (लगभग २॥ किलोग्राम) भर देवे । कण्डो पर कटेरी का चूर्ण, जो रस निचोडने के समय बना है, उसकी एक इन्च की तह करे । इस पर चादी के पतरे फैलावे । ऊपर और कटेरी चूर्ण डाले । उस पर और चादी के टुकडे रखे । इस तरह सब टुकडे २-४ तह मे रख सबके ऊपर १ इन्च या अधिक मोटी तह कटेरी चूर्ण की रखे । फिर ऊपर लगभग २॥ किलो कण्डे जमाकर अग्नि लगा देवें । स्वागशीतल होने पर चादी के पतरे को निकाल लेवे । इस तरह छोटी कटेरी के चूर्ण के भीतर रखकर पाच बार अग्नि देने से पतरे सरलता से टूट जाते है । पश्चात् पतरे को कूटकर चूर्ण कर ले । उसे कटेरी के रस मे शाम तक खरल कर एक सराव मे भर लेवे । उसका साधारण सम्पुट कर रात्रि को २॥ किलो उपलो की अग्नि मे रख देवे । दूसरे दिन पुन कटेरी के रस मे घोटे । १० पुट हो जाने पर उपले थोडे-थोड़े बढ़ाते जाय । २० पुट होने के पश्चात् ५-१० और १५ किलो तक उपले बढावे । इस तरह २८ पुट देवे । आखरी पुट के समय छोटी-छोटी टिकिया बनाकर सूर्य के ताप मे सुखाकर सम्पुट कर अग्नि देवे । यह भस्म हल्के मैले लाल रङ्ग की मुलायम बनती है। ६०० ग्राम चादी की ६४८ ग्राम भस्म बनती है ।

—वैद्य श्री नाथूराम जी देहली वाले द्वारा रसतन्त्रसार व सि० प्र० स० द्वि० ख० से ।

श्री ढुंढुकनाथ ने शङ्करलौह के वर्णन प्रसग मे पथ्यापथ्य का भी वर्णन किया है। प्रथम पथ्य के वर्णन मे—

प्रशस्त वार्ताकफल पटोल बृहतीफलम् ।
हितान्येतानि वस्तूनि लौहमेतत्समश्नताम् ।।

—र० चि० अ० ८ ।

विषौषधि और कंटकारी—

१ मल्लभस्म—कटकारी पञ्चाङ्ग को जलाकर लगभग दो किलो राख प्राप्त होने पर मिट्टी के मजबूत पात्र मे आधी राख भरकर उस पर श्वेत संखिया की १२ ग्राम की डली रखकर उस पर शेष आधी राख अच्छी तरह जमाकर भर देवे । फिर उस पात्र को चूल्हे या भट्टी पर रखे । जब राख ऊपर तक गर्म हो जाय, तब ऊपर से ही एक सलाई से सखिया की परीक्षा कर ले । यदि सलाई उसमे प्रविष्ट हो जाय तो आग को शान्त कर देवे । सखिया की उत्तम भस्म प्राप्त होगी ।

मात्रा—आधा चावल मक्खन के साथ सेवन से कास श्वास को शीघ्र ही दूर करती है । यह भी महान पाचक एव क्षुधावर्धक है ।

—धन्व० वनौ० विशेषाङ्क से ।

२ सोमसिही—इसका प्रयोग प्रसूत रोगिणी स्त्रियों पर करता हूँ । सन्तान होने के बाद वातघ्न औषधि पौष्टिक स्निग्धहार के अभाव मे यह रोग जीवनीय शक्ति की कमी से होता है । वातसस्थान स्नायु मण्डल (नर्वस) की क्रिया शैथिल्य पडने से बोलना बन्द हो जाता है । पसीने से तरबतर शरीर जड़वत् हो जाता है। भीतर से

होश रहता है किन्तु बोलने की शक्ति नही रहती। सिर भारी सुन्न सा हो जाता है। रक्ताल्पता अधिक होने से किसी-किसी स्त्री के पाव मे शोथ भी हो जाता है। ग्राम्य बोल चाल की भाषा मे इसे "परसूत" भी कहते है।

यह बच्चा जनने वाली स्त्रियो को ही नही होता किन्तु प्रसव के बाद १०-१२ वर्ष पीछे या रजोधर्म बन्द होने पर भी होता है। साध्वी, ब्रह्मचारिणी, बाल विधवा, अप्रसूता को भी होता है। मैंने प्रबल रक्ताल्पता ही इसका हेतु समझा है। इसी रोग मे यह औषधि रामबाण का काम देती है योग यह है।

अशुद्ध कच्चा सखिया ३६ ग्राम, कटकारी का स्वरस १ किलो २०० ग्राम। सबको खरल मे डालकर घोटना, घोटते-घोटते गोली बनाने के योग्य होने पर छोटी ज्वार के समान गोली बनाना।

मात्रा—१ वटी। समय प्रात-साय या एक बार।

अनुपान—पान मे रखकर खाना। पान की पीक नही थूकना उसे निगल जाना चाहिए। अगर बिना लगाये पान मे रखकर खाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यह श्वास, कास, रक्ताल्पता, दौर्बल्य, मन्दानल, चूहे के काटने पर उत्पन्न विष में वातपीड़ा, गठिया, पुराने मन्द ज्वरों पर भी अच्छा काम करती है। इसे छोटे कफ प्रधान (लार टपकने वाले) शिशुओ के ज्वर काम मे भी बेधड़क दे सकते है।

मात्रा—½ या ¼ या पूरी गोली भी दे सकते है।

—धन्व० गुण० सि० प्र० च० भाग से।

३ मल्लादिवटी—कटकारी पञ्चाङ्ग का स्वरस निकालकर उसमे शु० मल्ल ३ ग्राम, सफेद कत्था ६ ग्राम मिलाकर पाच दिन घोटें। इसके पश्चात् मूग के प्रमाण गोली बनाकर सुखा लें, चूना कत्था लगे पान (ताम्बूल) मे सुपारी इलायची डालकर इसकी १ गोली भी मिलाकर ७ दिन किंवा ६ दिन तक खावे। खटाई, तेल, गुड़, लालमिरच न खाकर घृत अधिक खावे। इससे उपदंश मे लाभ होता है।

—बूटी प्रचार।

कपिकच्छु

[Mucuna pruriens D C]

N. O. LEGUMINOSEAE--PAPILIONACEAE



कैलिकोफोर्निया मे मुझे कुछ ऐसी महिलाओ से वार्तालाप करने का अवसर मिला जिनकी आयु साठ से सत्तर वर्ष की थी। उन से मैने प्रश्न किया कि क्या उनमे कामवासना अभी तक उपस्थित है ? उनका एक सा ही उत्तर था। हा, उन्हे कामवासवा के झटके से आते हैं और काम-तृप्ति के लिए पुरुष के सहवास की तीव्र इच्छा जग जाती है। उन्हे जितनी बार यह स्थिति वनती है उनमे क्रिया-शक्ति बढ जाती और वृद्ध होने का अभिशाप दूर हो जाता है।

स्थिति तो यह है कि शरीर को निरन्तर स्वस्थ रखने के लिए कामोत्तेजक सैक्स हार्मोनो की सतत उत्पत्ति स्त्री-पुरुष दोनो के लिए ही परमोपादेय होती है। सन्तानोत्पत्ति तो मात्र एक सयोग है। अभग आनन्द की वैषयिक प्राप्ति जीवनसुख का एक महत्वपूर्ण लक्षण है।

इसे प्राप्त करने के लिए कपिकच्छु के वीज का उपयोग किया जा सकता है। यह एक निरापद द्रव्य है। इन्हे घी मे भून कर या सेक कर आटा बना उसे चार गुने दूध मे उबाल कर मावा की शकल मे लाकर उनसे बरफी या पाक तैयार करना और १० ग्राम से २० ग्राम की मात्रा मे प्रात-साय दूध के साथ लेते रहने से कामवर्द्धक अगो को स्वस्थ रखा जा सकता है।

इसके निरन्तर प्रयोग से जहा महिलाओ मे रजोरोध समय से पूर्व नही होता वही पुरुषो मे भी अष्ठीलाग्रन्थि की वृद्धि भी नही देखी जाती। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति ७०-८० वर्ष तक स्वस्थ वना रहता हे।

—र० प्र० त्रि०।

मधुरस्कन्ध की इस औषधि को भगवान् चरक ने बल्य कहा है। यह पुरुष के बल, ओज को वढाकर उसके पौरुष मे वृद्धि करती है सुतरा इसे वाजीकरण वल्य कहा जा सकता है—

वाजी वातिबलो येन यात्यप्रतिहत स्त्रिय।
भवत्यतिप्रिय. स्त्रीणा येन येनोपचीयते॥
तद्वाजीकरण तद्धि देहस्यौजस्कर परम्।

—अ० स० उ० ५०।

महर्षि सुश्रुत ने इसे वातसशमन वर्ग एव विदारिगन्धादि गण मे वर्णित किया है। इस गण की सज्ञा के साथ गुणो का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

विदारिगन्धादिरय गण: पित्तानिलापह।
शोषगुल्माङ्गमर्दोर्ध्व श्वास कासविनाशन.॥

—सु० सु० ३८।

अपि च—

शतावरी वानरीविदारीगोक्षुरेक्षुरक-
बलातिवला इति वृष्यगण।

—र० चि० ८।

प्राकृतिक वर्गीकरण (Classification on natural order) के अनुसार कपिकच्छू शिम्बीकुल (Leguminosae) की औषधि है। इस शिम्बीकुल के तीन उपकुल है—(१) अपराजितादि (२) पूतिकरआदि,

(३) बब्बूलादि । कपिकच्छू अपराजितादि उपकुल (Papilionaceae) की औषधि है ।

आचार्य भावमिश्र ने गुडूच्यादिवर्ग मे इसका वर्णन किया है। आचार्य प्रियव्रतशर्मा ने द्रव्यगुणविज्ञान के द्वितीय भाग मे वृष्यादिवर्ग कहा है। उसमे शुक्रजनन नामक उपवर्ग मे आठ औषधियो का विशद वर्णन किया है। क्रमाङ्क सप्तम पर कपिकच्छू वर्णित है।

वाजीकरण के चार अवान्तर भेद है—शुक्रजनन, शुक्रप्रवर्तक, शुक्रस्रुति-वृद्धिकर और शुक्रस्तम्भन। कपिकच्छू विशेषत शुक्रजनन वाजीकरण है।

कामवासना (Sexual Power) को बढाने वाली औषधियोको आधुनिक एफ्रोडीसियक्स (Aphrodisiacs) कहते है। इन औषधियो के कार्य भेद से मुख्य तीन विभाग किये गये है।

१ कुचिला, फास्फरस आदि औषधिया जननेन्द्रिय केन्द्र या जननेन्द्रिय की सब वातवाहिनिया अथवा जनन-यन्त्र, इनमे से गमनागमन करते हैं, जिससे कामोत्तेजक केन्द्र उत्तेजित होता है।

२ अफीम, गाजा, कस्तूरी, कपूर आदि से मस्तिष्क और प्रतिफलित रूप से जननेन्द्रिय और सम्बन्ध वाला कामोत्तेजक केन्द्र उत्तेजित होता है।

३ कपिकच्छू, पलाण्डु, अकरकरा, मूशली आदि जननेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय और इनके समीप के यन्त्रो की वातवहा नाडियो को उत्तेजित करते हे। फिर उत्तेजना जननेन्द्रिय के वातनाडी केन्द्र मे प्रतिफलित होती है।

नाम—

संस्कृत—

ऋष्यप्रोक्ता महागुप्ता कपिरोमफला च सा ।
मर्कटी चात्मगुप्ता च कण्डूरा कपिकच्छुका ॥
—अभिधानरत्नमाला से ।

कपिकच्छुरात्मगुप्ता रिष्यप्रोक्ता च मर्कटी ।
अजटा कण्डुराध्यण्डा दुरपर्शा वृषायणी ॥
लाङ्गलीशूकशिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षिभि ।
—भा० प्र० नि० से ।

कपिकच्छू—"कपीनामपि कच्छुर्यस्या. कण्डुहेतुत्वात्" बन्दर सदा वसे ही खुजलाता रहता है परन्तु इसके सम्पर्क से वह अधिक खुजलाने लगता है। इसके रोम शरीर पर लगने से अधिक कच्छू (कण्डू)होने से ही इसे कपिकच्छू कहा जाता है।

आत्मगुप्ता—स्वय रोमो मे सुरक्षित रहने के कारण।

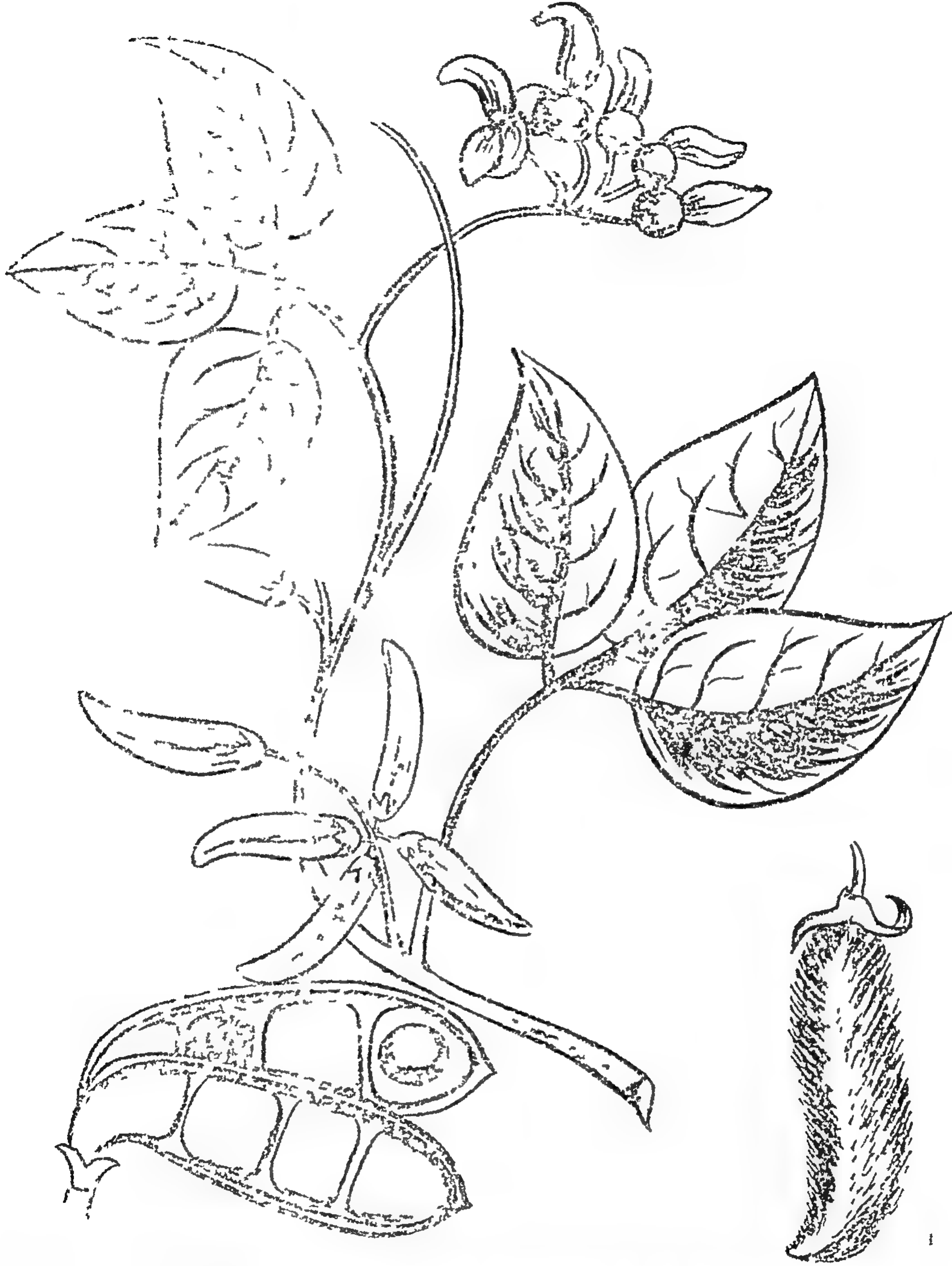
मर्कटी—वानर के समान रोमश होने के कारण।

अजहा—अमरकोष के टीकाकार क्षीरस्वामी ने अजटा के स्थान पर अजहा कहा है। आचार्य बापालाल वैद्य ने अजटा से भूम्यामलकी तथा अजहा से कपिकच्छू समझे जाने का निर्देश दिया हे। "न जहाति शुकान्"—फल का नाश हो जाने तक बीज के कवचकेश साथ ही रहते है।

कण्डुरा—कण्डू उत्पन्न करने वाली।
वृषायणी—वर्षा मे उत्पन्न होने वाली।
अध्यण्डा—अधिक बीजो वाली।
शूकशिम्बी—शूकयुक्त शिम्बी।

हिन्दी—केवाच, कौच।
गुजराती—कौचा, कवच।
मराठी—खाजकुहिली।
पजाबी—आलकुशी।
राजस्थानी—कौच।
तामिल—पुनाइक काली।
तेलगु—पिलियाडुगु।
कन्नड़—नसुकुन्नी।
मलयालम—नईकोरना।
उड़िया—बाइखुजली।
अग्रेजी—काउहेज (Cowhage)।
कॉविच (Cowitch)।
लैटिन—म्युकिना प्रुरियेन्स डी सी।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारत के उष्ण प्रदेशो के मैदानी भागो मे पाया जाता हे। उष्ण प्रदेशो मे इसकी खेती भी की जाती है।



कपिकच्छु [Mucuna Prurita]

विभिन्न नाम : सम्कृत–कपिकच्छू, आत्मगुप्ता । हिन्दी–कौच । मराठी–खाजकुहली । गुजराती–कौचा । अंग्रेजी–काउहेज । लैटिन–म्युकुना प्रुरिटा ।

प्राप्ति स्थान : समस्त भारत ।

उपयोगी अङ्ग : बीज, मूल, रोम ।

दोषशमन : वातशामक ।

रोगोपयोग : क्लैब्य, क्षय, कृमि कष्टार्तव ।

मुख्य योग : वानरी गुटिका, कौंचपाक ।

रासायनिक संगठन—बीजो मे आर्द्रता ९ १, प्रोटीन २५ ० ३, सूत्र ६ ७५ तथा खनिज पदार्थ ३ ९५ प्रतिशत होते है। इसके अतिरिक्त कैलिशयम ० १६, फास्फोरस ० ४७, लौह ० ०२, व गन्धक और मैगनीज भी होते है। बीजो मे डोपा १ ५%, ग्लुटाथायोन, लेसिथिन, गैलिक एसिड, एक ग्लुकोसाइड तथा अनेक क्षाराभ (कुल ० ५३%)—निकोटिन, प्रुरियेनिन, प्रुरियेनिडिन आदि पाये जाते है। बीज मज्जा से एक गहरे भूरे रङ्ग का गाढा तैल निकलता है।

इसके रोमो के लगने मे मुकुनेन (Mucunain) नामक तत्व के कारण हिस्टेमिन का निर्गम होता है, जिससे कण्डू होती है। रोमो मे ० ०१५% सिरोटोनिन भी होता है जिससे पीडा होती है।

वानस्पतिक परिचय—इसकी चक्रारोही, अनेक शाखी, एक वर्षायु रोमश लता होती है। पत्र—६-९ इञ्च लम्बे चिचा के समान सयुक्त त्रिपत्रक होते है। पत्रक लट्वाकार या विपमकोणसमचतुर्भुजाकार (Rhomboid), अर्धहृद्वत्, ३-६ इञ्च लम्बे, ६-७ स्पष्ट पार्श्विक सिराओ से युक्त होते हैं। अग्रय पत्रक—पतगाकार, दोनो पार्श्व पत्रको से छोटा होता है। पुष्पमजरी ½-१ फुट लम्बी, कक्षीय, झुकी हुई होती है, जिस पर १-१½ इञ्च लम्बे नीले या बैंगनी रङ्ग के पुष्प लगते है। शिम्बी (फली)—२-४ इञ्च लम्बी, लगभग ½ इञ्च चौडी होती है, जिसके दोनो सिरे विपरीत दिशाओ मे मुडे होते है। फली पर अनुलम्ब पर्शुक होते है तथा इसके पृष्ठ भाग पर सघन भूरे विपैले रोम होते है, जो शरीर से स्पर्श होते ही तीव्र कण्डू, दाह और शोथ उत्पन्न कर देते हैं। प्रत्येक फली मे ५-६ चमकीले, स्निग्ध, छोटे रक्त श्वेतकृष्ण अण्डाकार चपटे बीज होते हैं। बीजमज्जा श्वेतवर्ण होती है।

वर्षा ऋतु मे लता उत्पन्न होती हे और सितम्बर-नवम्बर म पुष्प और जनवरी-अप्रैल मे फल लगते हैं।

भेद—उत्पत्तिस्थान के भेद से वन्य और बागी द्विविध होते हैं। वन्य जाति के कपिकच्छू की फली पर रोम अधिक व तीक्ष्ण तया बीज छोटे व धूसर होते हैं। औपधि कर्म हेतु इसके ही बीज अधिक प्रभावशाली होते है। बागी किंवा मीठे कपिकच्छू की फलियो पर रोम कम होते है, ये कण्डू भी कम उत्पन्न करते है। एक बागी कपिकच्छू ऐसा भी होता है जिसकी फली पर रोम सर्वथा नही होते। इन बागी कपिकच्छू के छिलको को निकालकर शाक, आचार बनाये जाते है ये पुष्टिप्रद होते हैं।

आचार्य श्री बापालाल वैद्य ने इसकी अन्य दो जातियो का उल्लेख किया है।

१ मुकुना मोनोस्पर्मा (Mucuna Monosperma) मोनो का अर्थ है एक, स्पर्मा यानी बीज। लम्बी चौडी फली मे केवल एक ही बीज होने से इसको मोनोस्पर्मा (एक बीजी) नाम दिया गया है। यह बीज ढाक के बीज की भाति बडा होता है। इसकी लता बहुत बडी और लम्बी होती है।

२ मुकुना जीगान्टेआ (Mucuna Gigantea)—यह लता बहुत लम्बी और बडी होती है और फली भी बडी होती है। इस फली मे दोनो ओर पतनशील रोम (पख समान) होते हैं। इसमे २ से ६ बीज होते है। डा० श्री बलवन्तसिंह ने भी इसका वर्णन किया है।

रस—मधुर, तिक्त।

गुण—गुरु, स्निग्ध।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—मधुर।

दोषकर्म—वातशामक तथा कफपित्तवर्धक।

वातघ्न पित्तकफकृन्मिश्रेया गिरिपादिका।
फल तु कपिकच्छूरुमाण वेत्रकरञ्जजम्॥
—सिद्धमन्त्र।

प्रयोज्य अङ्ग—बीज, मूल, रोम।

मात्रा—बीज चूर्ण ३-६ ग्राम, मूलक्वाथ ५०-१०० मि० लि० रोम—१२५ मि० ग्रा०।

गुण प्रकाशक संज्ञा—मर्कटी—मर्कति वायुवेगेन इतस्ततो गच्छतीति। कपिकच्छू की व्युत्पत्ति आचार्य प्रियव्रत शर्मा मे आलङ्कारिक भाषा मे इस प्रकार की है`

मर्कटकच्छू बीज भुक्त कच्छू करोति कामस्य।
मा न प्रशाम्यति यावद् भुड्क्ते न शत हि नारीणाम् ॥
—प्रि० नि० से।

इसके अतिरिक्त "अजरा" सज्ञा भी गुण प्रकाशिका है।

बीज सग्रह विधि—लम्बी लकडी से फलियो को तोडकर निर्जन स्थान मे बडी सावधानी से चिमटे से पकडकर हथौडी से फोडकर बीज प्राप्त करते हैं अथवा हाथो पर तैल लगाकर बीज निकालते है। पानी मे बीजो को भिगोकर या उबालकर इनके छिलके उतार लिये जाते है, फिर इन्हे सुखाकर उपयोग मे लाते हैं।

वीर्यावधि—२ वर्ष।

प्रतिनिधि—सेमल की मूसली, उटगन बीज।

दर्पनाशक—रोगन मस्तङ्गी, बबूल का गोद।

यह पूर्व मे कहा जा चुका है कि इसकी फलियो के पकने पर इनके रोये इतने अधिक तीक्ष्ण हो जाते है कि छूने मात्र से अत्यधिक खुजली उत्पन्न हो जाती है जिससे मनुष्य अत्यधिक बेचैन हो जाता है। इसके प्रभाव को नष्ट करने के लिये—

१ दूध के मलने से दाह-कण्डू आदि शान्त हो जाते हैं।

२ दही के मलने से भी दाहादि मिट जाते है।

३ गोबर मलने से भी इसका प्रभाव शान्त हो जाता है।

उक्त द्रव्यो के मलने के पश्चात् सुखोष्ण जल से धोकर सुखोष्ण घृत का अभ्यङ्ग करना लाभप्रद उपाय है।

साहित्य में कपिकच्छू का वर्णन—रामभक्त महाकवि तुलसीदास को जीवन के सन्ध्याकाल मे असह्य हाथ का खल्ली रोग हुआ।

वढी है बाह वेदन कही न सही जाति है।
—हनुमानबाहुक ३०।

भारी पीर दुसह शरीर ते बिहाल होत। —४२

तुलसी एक भक्त कवि थे उनके हित सर्वोपयोगिनी एक मात्र भक्ति ही थी। इस रोग की निवृत्ति के लिए उन्होने "हनुमान बाहुक' नामक एक स्तोत्र की रचना की और अपनी इस दैवव्यपाश्रय चिकित्सा से उन्हे रोग से पूर्ण छुटकारा मिला। इसी स्तोत्र मे एक स्थान पर लिखा हुआ है।

वात तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छू बेलि।
उपजी सकेलि कपिकेलि ही उखारिये।
—हनु० बाहुक २४।

कपिकेलि मे कपिकच्छू की बेलि का उल्लेख हनुमान जी के स्तोत्र मे समुचित है। एव विधि उपयुक्त वर्णन ही तुलसी के काव्यो की विशेषता है।

गुणधर्म—

कपिकच्छुर्भृश वृष्या मधुरा बृहणी गुरु।
तिक्ता वातहरी बल्या कफपित्तास्रनाशिनी ॥
तद्बीज वातशमन स्मृत वाजीकर परम्।
—भा० प्र० नि०।

शीतपित्तव्रणासृघ्नी प्रोक्ता राजनिघण्टके।
वातघ्नी कविभि प्रोक्ता धन्वन्तरिनिघण्टके ॥
कैमदेवे बृहणीति भिषग्भि परिकीर्तिता।
—नि० शिरोमणि।

कपिकच्छु पर वृष्या मधुरा बृहणी गुरु।
तद्बीज वातशमन वाजीकरणमुत्तमम् ॥
—म० वि० नि०।

नारीषु वाजिनमिव प्रवन मनुष्य-
सद्य करोति कुपित पवन पिनष्टि।
श्लेष्माणमुत्क्षिपति पित्तभय भिनत्ति-
प्रौढ बल वितनुते कपिकच्छुबीजम् ॥
—सि० भे० मणि०।

नारायण ऋषि के अनुसार धर्म का लक्षण प्रवृत्ति है।
प्रवृत्तिलक्षण धर्म ऋषिर्नारायणोऽब्रवीत्।
—महाभारत शा० २१७/२।

निवृत्ति का अर्थ कर्ममात्र से नही, अपि तु अविहित कर्म या अधर्म से छुटकारा है। वैराग्य का अर्थ भी जीवन से विराग नही, अपि तु अशुभ वृत्तियो से विराग है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता मे कहा है "मैं धर्म अविरुद्ध काम हूँ" (७/११)। इसका अभिप्राय यही है कि धर्म विरुद्ध काम से निवृत्ति हो तथा धर्म अविरुद्ध काम

के सेवन मे प्रवृत्ति हो, यही तो विहित है। सस्कृतकाव्यो के व्याख्याकार मल्लिनाथ ने उद्बोधित किया है—"धर्मार्थ कामासममेव सेव्या यो ह्येकसक्तो स नरो जघन्य ।"

भौतिक विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने प्रकृति के जिन नियमो का ज्ञान प्राप्त किया है, उनके सहारे वह अर्थ और काम के सेवन मे लिप्त है। इस प्रवृत्ति के बिना, जो समृद्धि प्राप्त हुई है, वह सम्भव ही नही थी। किन्तु यह समृद्धि यदि मनुष्य को धर्म से विमुख कर उसके विवेक का हरण कर लेती हे, तो इससे मानव समाज का वास्तविक विकास नही हो पायेगा। इसीलिए धर्म अविरुद्ध अर्थ काम के सेवन का परामर्श दिया गया है। इन्हे मर्यादित करने के लिए ही इन आश्रमो की व्यवस्था की गई थी।

"ब्रह्मचर्याश्रम समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ।" —शतपथ ब्राह्मण।

उक्त व्यवस्थाओ का अतिक्रमण कर भोग के सर्वोत्तम मार्ग सयम को छोडकर जो व्यक्ति आचरण करता है तो वह भोगो को न भोगकर स्वयमेव भोगो द्वारा भोगा जाता है, उसे कातर स्वर मे कहना होता हे—

कितनी थोडी सी यौवन की
हाला हा मै पी पाया।
बन्द गई हो कितनी जल्दी
मेरी जीवन मधुशाला ॥

असयम का दुखद परिणाम ही तो हे—क्लैव्य (नपुसकता)। सुरतक्रिया का कर्त्ता पुरुष है एव अधिकरण है युवति। शिश्नोत्थापन सुरतिक्रिया की एक प्राकृतिक और आवश्यक स्थिति हे। इसके विना सुरत क्रिया सभव नही हो सकती है। कामुक सूचनाओ का मन से ग्रहण होने पर बुद्धि से सहवास करने का निश्चय होने पर मस्तिष्क मे सूचना तारो द्वारा कटिविभागगत सुषुम्ना के जननेद्रिय सम्बन्धी केन्द्र को जाती है। यहा से जननेन्द्रिय सम्बन्धी रक्तवाहिनियो को जाती है, जिससे शिश्न मे रक्त पहुँचाने वाली वाहिनिया विस्फारित होकर उनमे अत्यधिक रक्त भर जाता है और शिश्न से रक्त ले जाने वाली वाहिनिया सकुचित हो जाती हे, जिससे आया हुआ रक्त लौट नही पाता और शिश्न का उत्थान होता है। शिश्नोत्थान ठीक न होना यह क्लैव्य का प्रमुख लक्षण है। इसके भगवान चरक ने चार, महर्षि सुश्रुत ने पाच तथा भावमिश्र, गोविन्ददास एव अज्ञातनामा योगरत्नाकरकार आदि आचार्यो ने सात प्रकार कहे हैं। चरक वर्गीकरण विकृति पर तथा सुश्रुत का वर्गीकरण हेतु पर आधारित हे। क्लैव्य चिकित्सा मे वृष्य किंवा वाजीकरण का विशेष महत्व है अथवा यो कहा जा सकता है कि वाजीकरण सेवन से शरीर मे होने वाली धातुओ के व्यय की पूर्ति होती रहती है, सुतरा यह एक "भविष्यन्ती" वेदनाओ की भी चिकित्सा हे। कपिकच्छू अकेला किंवा औषधियो के साथ इस हेतु उपयुक्त कहा गया है। इस निमित्त इसकी उपयोगिता का शास्त्रो मे विपुल वर्णन हुआ हे। कतिपय वचन यहा उद्धृत हैं—

गुप्ताफल गोक्षुरकाच्च बीज
तयोश्चटा गोपयसा विपाच्य।
खजाहत शर्करया च युक्त
पीत्वा नरो हृष्यति सर्वरात्रम् ॥

—सुश्रुत० चि० २६/३५।

स्वयगुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्ण सशर्करम्।
धारोष्णेन नर पीत्वा पयसा रासभायते ॥

—अ० हृ० उ० ४०/३१।

भूकूष्माण्ड चेक्षुराणा च बीज
गुप्ता बीज वा मुसल्याश्चमूलम्।
चूर्णीभूत छागदुग्धेन पातु
तद्द्देय रात्रिसभोग काले ॥

—कल्याणकारक६/३९।

स्थिरात्मगुप्ताशत मूलकाभि-
निषेवित वै खलु चन्द्रलोहम्
मासद्वयेनैव निहन्ति कार्श्य
वल्यञ्च वृष्यञ्च पर प्रदिष्टम् ॥

—र० तर० १६/७४।

वानरीक्षुरमयूरकबीजैर्निरतुषीकृतयवैश्च समापैं ।
गव्यदुग्धसहितं परिपीतं स्त्रीशतेन कुरुते रतिलीलाम् ॥
—राजमर्तण्ड ३३/१६ ।

वटीर्विदारी कपिच्छुगोछुरैं-
र्विधाय सक्षौद्रघृतेन भोजना ।
सदैव योऽग्नाति मृषा न वर्णये
तदीयवीर्येण जिता न भोजना ॥
—सि० भे० म० ५/१३६ ।

क्षीर शृन य कपिकच्छुमूलै
पिवेत क्षय स्त्रीषु न सोऽम्बुपैति ।
—वृहत् महिता ।

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि कपिकच्छू वलैव्यहर होने के अतिरिक्त क्षय, दौर्वल्य, कार्श्यहर भी है। एक उत्तम कार्श्यहर योग मे प्राणाचार्य सदानन्द शर्मा ने कपिकच्छू की योजना कर महत्व प्रदर्शित किया है—

मृत सुवर्ण परिशीलयन्त स्थिराविदारीवरदाजराभि ।
मासत्रयेणैव कृशाः पु मास प्रपुष्टदेहाश्च वहुप्राजा स्यु ॥

कपिकच्छू बीज और मूल नाडीसस्थान के लिये वल्य होने से नाडी दौर्वल्यु और वातव्याधि मे भी लाभप्रद है—

आत्मगुप्ताशिफारास्ना वलैरण्डकषायत ।
कम्पयुक्तं पक्षवध यशदहन्ति शीलितम् ॥
—र० त० १६/१३५ ।

गन्धमारित ताम्राढ्य लौह तु परिशीलितम् ।
वलात्मगुप्ताक्वाथेन सर्वाङ्ग कवाङ्गातनुत् ॥
—र० त० २०/११६ ।

भापात्मगुप्तकैरण्डवाट्यालकशृत पिवेत् ।
हिंगुसैन्धवसयुक्त पक्षाघात निवारणम् ॥
—च० द० २२/२७ ।

इसका मूल आर्तवजनन होने से कष्टार्तव मे लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त यह योनिसकोचकभी है—

कपिकच्छूभव मूल क्वाथयेत् विधिनाभिपक् ।
योनि सकोर्णता याति क्वाथेनानेन धारयेत् ।
—भा० प्र० ।

मूल मूत्रल होने मे मूत्रकृच्छ्र तथा अन्य वृक्करोगो मे लाभदायक है। वृक्कशोथ के कारण उत्पन्न आक्षेप को नष्ट करने मे यह श्रेष्ठ औषधि है-।

आत्मगुप्ता वलामूलमासीक्वाथेन सीस्रकम् ।
वृक्कशोथसमुद्भूतमाक्षेप नाशयत्यलम् ॥
—र० त० १६/५२ ।

कपिकच्छू रक्तशर्करा को भी कम करता है, अनुसन्धान से यह सिद्ध हुआ है—"द्विदलो मे रक्तशर्करा एव रक्त रस कोलेस्टेरोल को कम करने के गुण पाये गये है, इसलिए चूहो मे कपिकच्छू के प्रभाव का अध्ययन किया गया। यह इन दोनो अशो को कम करता है।
—वा० अ० दर्शिका से।
डा० कृ० च० चुनेकर द्वारा

पञ्चविध वायु मे अपान का स्थान बस्ति, वृषण, मेढ़ आदि वतलाया गया है और शुक्रोत्सर्गमूत्रोत्सर्ग आदि कर्म भी अपान के ही कहे गये है (चरक० चि० २८) किन्तु अष्टाङ्गसग्रह के सूत्रस्थान अध्याय २० मे समान के स्थानो मे मलवह, शुक्रवह स्रोतो का भी उल्लेख है। व्यान वायु तो सर्वदेहचर है ही सुतरा शुक्रमेह मे वात की भी कार्मुकता सिद्ध होती है। शुक्रमेह का वर्णन इन शब्दो मे किया गया है।

शुक्राभ शुक्रमिश्र वा शुक्रमेही प्रमेहति ।
—माधवनिदान ३३/१० ।

प्रायेण शुक्रमिश्र हि शुक्रमेही प्रमेहति ।
म प्राय कामजो यूना विवन्धादौ तु सोऽधिक ॥
—सिद्धान्तनिदान ८/१६ ।

वातनाडी सस्थान एव प्रजनन सस्थान की विकृति से मूत्र के साथ शुक्र आता है। कपिकच्छू दोनो सस्थानो के लिए वल्य होने से शुक्रमेह मे लाभप्रद है। शुक्रमेह विनाशक एक योग कविराज श्रीकृष्णरामभट्ट ने कहा है।

वलावर्मोच्चटा बीज माषै सामिसित रज ।
दुग्धानुपानत साय रेतो गृह्णाति विप्लुतम् ॥
—सि० भे० म० ४/५६६ ।

कपिकच्छू और पथ्य व्यवस्था—यद्यपि, कपिकच्छू एक आहार द्रव्य न होकर औषधि द्रव्य है किन्तु

आहार द्रव्यो के सयोग से इसे पथ्योपयोगी बनाने का वर्णन उपलब्ध होता है। कपिकच्छू एक वृष्य बल्य द्रव्य है, अतः यह क्लैब्यादि रोगो मे लाभप्रद कहा है। कपिकच्छू मधुरस्कन्ध का द्रव्य है, इसका विपाक भी मधुर है और मधुरविपाकी द्रव्य प्राय शुक्रवर्धक होते है।

मधुर सृष्टविण्मूत्रो विपाक कफशुक्रल ।

इसके अतिरिक्त अन्य रस क्लैब्य रोग मे अपथ्य है। सतर्पक होने से मधुर रस का अतियोग भी क्लैब्यरोग उत्पन्न कर सकता है। शास्त्रो मे मधुर रस के अतिरिक्त अन्य रसो को क्लैब्यकर कहा है। अम्लरस दाहक एव पित्त प्रकोपक होने से आहारजन्य एव ध्वजोपघातजन्य क्लीवता उत्पादक है। लवणरस पित्तप्रकोपक होने से पुसत्वनाशक माना गया है। कटुरस को पुसत्व उपहत करने वाला कहा गया है। तिक्तरस को भी शुक्र उपशोपकर कहा है। कषायरस भी पुसत्वनाशक है। सुतरा मधुर रस के अतिरिक्त अन्य सभी रस क्लैब्य मे अनुपयोगी हैं। मधुर रस को "धातूना प्रबल बलम्" कहा गया है। इसे स्पष्ट करते हुये पदार्थ चन्द्रिकाकार चन्द्रनन्दन लिखते हैं—"धातूना रसादीना प्रबल बल कुरुते प्रकृष्टतया शक्त्या युक्त बल जनयेत्" क्लैब्य मे निम्नाङ्कित द्रव्य पथ्य कहे गये हैं—

शालिषष्टिकगोधूममसूरचणकादय ।
हैयङ्गवीनदुग्धे च नवनीत सुरा सिधु ॥

इनके सयोग से कपिकच्छू पथ्यरूप मे प्रयुक्त किया जा सकता है जो उत्तम औषधि भी कही जा सकती है। कतिपय पथ्य प्रयोग निर्दिष्ट हैं।

१ कपिकच्छू बीज और गेहूँ को समानभाग लेकर दरदरा पीसकर दलिया बना ले। इसे १५-२० ग्राम लेकर दूध मे उबालकर खीर बना ले। इसमे मिश्री किंवा मधु तथा घृत मिलाकर प्रातराश के रूप मे सेवन करें। इससे बल वीर्य की वृद्धि होकर शरीर ओजस्वी बनेगा। सायंकालीन लघु आहार के पश्चात् शयनकाल मे भी इसे लें।

२ कपिकच्छू बीज (गिरी) १ किलो तथा धुली हुई उड़द की दाल १ किलो लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण कर ले। इस चूर्ण को गोघृत मे भूनकर रख ले। १०-१५ ग्राम चूर्ण को २५०-३०० मि० लि० दुग्ध मे उबालकर मिश्री मिलाकर सेवन करे। यह भी बल वीर्यवर्धक पुष्टिकारक पथ्याहार है।

३ कपिकच्छू बीज एव उडद की दाल को गाय के दूध मे भिगोकर रख दे। १०-१२ घण्टे भीगने के बाद छाया मे सुखाकर इनका सूक्ष्म चूर्ण कर ले। इस चूर्ण को गोघृत मे भली-भाति भूनकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को मात्रानुसार लेकर मिश्रीयुक्त दुग्ध पीवे। यह भी तदर्थकारी है।

४ कपिकच्छू बीज, तिल, उडद की दाल और साठी चावलो को सममात्रा मे लेकर बकरी के दूध मे पीसकर पूडी बना ले। पूडियों को घृत मे सेक ले। एक-दो पूडी खाकर मिश्री मिलाकर दूध पीवे। यह अतीव वाजीकरण योग है।

५ कपिकच्छू की जड, तिल, असगन्ध और विदारी कन्द इनका चूर्ण साठी चावल के चून मे मिलाकर बकरी के दूध से साने और घी मे पकाकर पूड़िया बना ले। ये अति वृष्य है।

६ जौ को जल मे भिगोकर उन्हे कूटकर तुष रहित कर लें और चावलो को धोकर सुखा ले इसी प्रकार कपिकच्छू बीजो को दूध मे भिगोकर छिलका हटाकर सुखा ले तीनों का चूर्ण बनाकर घृत मे सेक ले। फिर इसे मात्रानुसार दूध मे उबालकर खीर बनाकर घृत एव मिश्री मिलाकर सेवन करे। यह बल्य, वृष्य पौष्टिक पथ्याहार है।

७ बागी कपिकच्छू की अत्यन्त कोमल फलियो का अचार बनाकर रख ले या इन फलियो का शाक बनावे। यह पौष्टिक तथा वातरोगों मे लाभप्रद है।

८ कपिकच्छू बीज (मींगी) १२५ ग्राम सफेद मूसली १२५ ग्राम लेकर कूट-पीसकर, कपडछन कर ले। फिर इसे २ किलो गोदुग्ध मे डालकर खोया बना ले। खोया बन जानें पर इसे २५० ग्राम घी मे भून ले। ठडा होने पर आधा किलो बूरा मिलाकर किसी थाली आदि मे जमा दे। २०-२० ग्राम प्रातः-सायं सेवन करे।

अत्यन्त पौष्टिक और गार्भवर्धक है। इससे नाय विकार भी दूर होते है।

९. कपिकच्छू बीज, उडद की दाल, खजूर का स्वरस, क्षीरकाकोली, शतावरी, महुआ के फूल, मुनक्का और खजूर प्रत्येक ५०-५० ग्राम लेकर ३ किलो २०० ग्राम जल मे पकावे। उस जल का चतुर्थांश शेष रहने पर उसमे ७७५ ग्राम दूध डालकर पकावे। दूध मात्र शेष रह जाने पर उसमे घृत और शक्कर मिलावे। इसे साठी चावल के भात के साथ खावे। इस आहार को चरक ने अत्यन्त वृष्य कहा है।

१० योगरत्नाकरकार किंवा भावप्रकाशकार आदि ग्रन्थो के रचयिताओ ने जो वानरी वटिका नामक कल्प वर्णित किया है वह भी क्लैव्य के रोगियो के लिए उत्तम पथ्य है। इसके निर्माण की विधि है—कपिकच्छू के बीजो को दूध मे अच्छी तरह मे उवालकर उनके छिलके पृथक् कर दें। इसके बाद उन बीजो को अच्छी तरह से पीसकर गाय के दूध मे गाढा-गाढा सान ले। अधिक गाढा भी न करे। फिर कढाई मे घी डालकर मन्द आच पर चढावें। जब घी अच्छी तरह गरम हो जाय तब उस घी मे उसकी पकौडिया बना ले। उन पकौडियो को निकालकर मिश्री की गाढी चासनी मे डाल दे। जब ये पकौडिया खूब चासनी पी ले तब उनको निकालकर शहद से भरे हुये बरतन मे डाल दे और बरतन का मुख बाधकर रख दे। इसकी मात्रा २०-२५ ग्राम है। प्रातः-साय एक-एक मात्रा खाने से नपुसकता नष्ट होकर प्रबल कामशक्ति उत्पन्न होती है। यह उत्तम वाजीकरण है।

११ "वृद्धो के रोग तथा वृद्धावस्था का प्रतीकार" नामक ग्रन्थ के यशस्वी लेखक आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी जी ने इस ग्रन्थ मे रसायन प्रकरण मे बहुत से कल्पो का वर्णन किया है। आप लिखते है कि "कौच के बीजो का एक विशिष्ट प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है। इसमे कौच के बीजो का छिलका छुडाकर ½ पौण्ड तोल मे लेकर उसका आटा बनाकर गाय के दूध मे माड ले। उसे चपाती के रूप मे मिट्टी के तवे पर सेक ले। फिर जब खूब सिक जावे तो उसे पीसकर दुगनी मिश्री या चीनी मिलाकर रख ले। वृद्धो का इस १४ मात्राओ मे तथा तरुणो को ९ मात्राओ मे बाटकर एक मात्रा प्रभात-काल मे दूध से लेते है। इससे रसायन गुण प्राप्त होता है। यदि इसे बराबर लिया जावे तो व्यक्ति का पूर्ण कायाकल्प हुआ रहता है।

इनके अतिरिक्त अन्य भी प्रयोग उपलब्ध होते हैं जो विस्तारभय से यहा वर्णित नही किये जा रहे हैं। कतिपय पथ्यानुरूप प्रयोग "विविध कल्पना" एव "अनुभूत प्रयोग" के प्रकरण मे भी वर्णित है। रोगी रोग स्थिति के अनुसार चिकित्सक को इनका चुनाव कर रोगियो को देना चाहिये। रोगी की अभिरुचि का भी ध्यान रखना आवश्यक है—"कल्पना विधिभिस्तैस्तै. प्रियत्व गमयेत्।"

यूनानी मतानुसार—यह तीसरे दर्जे मे गर्म व रूक्ष है। यह बवासीर को हानि पहुँचावे वाला, शोथ का लय करने वाला, शुक्रवर्धक, स्तम्भनकर्त्ता तथा ओजप्रद है। इसके बीज विरेचक, कामोद्दीपक होने के साथ विच्छू के जहर को भी दूर करने वाले है। इसकी जड ऋतुस्राव नियामक है। इसका धुआ प्रसूतिकष्ट को दूर करता है। कालीमिर्च के साथ इसके पत्ते पेट के क्रमि नाशक है। इसके पत्तो का स्वरस शिर शूलहर, उपदशहर, तथा खून को साफ करने वाला है।

आधुनिक मतानुसार—आर एन खोरी ने कहा है कि इसके बीज नाडियो को ताकत देने वाले, आर्तवस्रावकारी एव वृष्य हैं। ये वात रोगो मे भी व्यवहृत होते है। इसके बीजो का पायस (खीर) शुक्रक्षीणता एव वातव्याधि मे लाभप्रद है। इसकी फलियो के लोमो का चूर्ण सेवन करने से गोलक्रमि (Round worms) नष्ट तथा निस्सारित हो जाते हैं। किन्तु ये भक्षित लोम यदि आतो मे रह जाय तो अत्यन्त दाह उत्पन्न हो जाता है। सुतरा इस अनर्थ की उत्पत्ति के निवारणार्थ केलोमल (रसकपूर), कालादाना किंवा एरण्डस्नेह का विरेचन देना उपयुक्त है।

इसकी जड का क्वाथ अर्दित, पक्षाघात आदि रोगो मे लाभ पहुँचाता है। इसके क्वाथ मे मधु मिलाकर देना

हैजे मे भी हितकर है। इसकी जड मे ज्ञान तन्तुओ को शक्ति देने का गुण होने के कारण सन्निपात की वेहोशी मे यह क्वाथ अतीव लाभप्रद है।

डायमाक के मतानुसार इसके बीज उत्तम कामोद्दीपक है। इसकी जड स्नायु मण्डल को पुष्ट करने वाली है। इसे पक्षाघात मे दिया जाता है। तामील के वैद्य इसकी जड का शीतनिर्यास हैजे मे मधु मिलाकर उपयोग मे लाते हैं।

दत्त के मतानुसार इसकी जड स्नायुमण्डल की तकलीफो मे वडी लाभदायक है। यह अर्दित तथा पक्षवध मे भी लाभप्रद है।

केम्पबेल के मतानुसार ज्वर मे मूर्च्छा किंवा सन्निपात मे इसकी जड का उपयोग किया जाना चाहिए। जलोदर मे इसकी जड को पीसकर इसका लेप पेट पर किया जाता है।

वेस्ट इण्डियन टापुओ मे इसके मूल का क्वाथ पेशाव अधिक लाने वाला और गुर्दे को साफ करने वाला मानते हैं। इसका मलहम वनाकर वे श्लीपद (हाथीपाव) पर लेप करते है। पत्तो के कल्क को नासूर पर लगाते हैं। कौच बीज को बिच्छू के विष को दूर करने मे उपयोग करते है। इसकी फलियो का शीतनिर्यास जलोदर रोग की एक निश्चित दवा मानी जाती है।

कर्नल चोपडा भी इसके बीजो को कामोद्दीपक एव वृश्चिक दश पर उपयोगी मानते हे।

सामान्य बाह्य प्रयोग–

१ **क्षय**–कपिकच्छू बीज, विदारीकन्द, असगन्ध, लोध्र और गोखरू से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग क्षय रोग मे सदा हितकर कहा गया है।

२. **योनिशैथिल्य**–कपिकच्छू मूल का क्वाथ बनाकर उससे योनि प्रक्षालन करे किंवा इस क्वाथ मे पिचु भिगोकर कुछ समय तक योनि मे धारण करे।

३. **शिश्नशैथिल्य**–कपिकच्छू मूल को गर्दभी के मूत्र मे घिसकर शिश्न पर लेप करने से उसकी शिथिलता किवा निर्बलता दूर होकर उसकी वृद्धि होती है।

४. **नाडीव्रण**–[क] ५० ग्राम कपिकच्छू बीजो को पानी से पीसकर टिकिया बनावें। १५० ग्राम सरसो के तैल मे उस टिकिया को जलाकर तैल सिद्ध करले। इस तैल को नाडीव्रण मे लगाने से शोधन-रोपण होता है।

[ख] इसके पत्तो को पीसकर टिकिया बनाकर नाडीव्रण पर वाधने से उसका शोधन होता है।

[ग] पत्रचूर्ण, महिषी शृङ्गभस्म को घृत में मिलाकर लगाने मे नाडीव्रण का रोपण होता है।

५. **कम्पवात**–मूलक्वाथ ६० मि० लि० को २५० मि० लि० सर्षपतैल मे पकाकर मालिश करने से कम्पवात मे लाभ होता है।

६. **जलोदर**–मूल को पानी मे पीसकर उदर पर लेप करना जलोदर मे हितकर है।

७. **ग्रन्थि**–बीजो को पानी मे घिसकर ग्रन्थि पर गाढा-गाढा लेप करे।

८. **श्लीपद**–आक्रान्त स्थान पर मूल को पानी मे पीसकर लेप करना हितकर है।

९. **वृश्चिकदंश**–बीजो की गिरी को पानी मे किंवा मिट्टी के तैल मे घिसकर दश स्थान पर लगाने से दशजनित शूल-दाह का शमन होता है।

१०. **व्रण**–पत्र पीसकर व्रण स्थान पर वाधने से व्रणो का शीघ्र ही शोधन होकर रोपण होने लगता है। कक्षा व्रण पर भी यह उपयोगी हे।

११. **शून्यवात**–कपिकच्छू के रोमो को घृत मे मिलाकर लगाने से त्वचा की शून्यता मिटने लगती है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग––

बाजीकरण योग–(१) कपिकच्छू बीज, गोखरू, सफेद मूसली, गुडूची सत्व, सेमल की मूसली, आवला और शर्करा को समान मात्रा मे लेकर चूर्ण बनाकर ६ ग्राम चूर्ण घृत मे मिलाकर दूध से सेवन करें।

(२) कपिकच्छू बीज, शतावर, गोखरू, गगेरन बीज, बरियारी के बीज, तालमखाना के बीज सब समान लेकर चूर्ण वनाकर गोदुग्ध से सेवन करे।

(३) कपिकच्छू बीज, तालमखाने के बीजो का चूर्ण ससिता दुग्ध से सेवन करे ।

(४) कपिकच्छू बीज, काकडासिंगी और मुलहठी का समभाग चूर्ण बनाकर धारोष्ण दूध मे सेवन करे ।

(५) कपिकच्छू बीज, गोखरू और सफेद घुघची को ससिता दूध मे सेवन करे ।

(६) कपिकच्छू बीज, गोखरू, अपामार्ग के बीज, तुप से रहित जौ और उडद के चूर्ण को गाय के दूध मे पकाकर सेवन करे ।

(७) कपिकच्छू बीज, श्वेत व काली मूसली, शतावर, छोटी इलायची बीज, वंशलोचन, गिलोयसत्व समभाग लेकर दूध से सेवन करें ।

(८) कपिकच्छू बीज, अकरकरा, सफेद मिरच ४-४ ग्राम लेकर चूर्ण बना लें। इसे एक किलो दूध मे पकावे। आधा दूध जल जावे तब मीठा हो जाने लायक मिश्री मिलाकर पीवें ।

(९) कपिकच्छू बीज चूर्ण १८ ग्राम, जायफल, जावित्री, बला (खरेंटी) बीज ३६-३६ ग्राम, देशीकपूर १२ ग्राम, केशर ६ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। प्रात. २५० मि० ग्रा० की मात्रा मे मधु के साथ कुछ दिन सेवन करना चाहिये ।

(१०) कपिकच्छू बीज चूर्ण, कपिकच्छूमूल चूर्ण, दालचीनी मुलहठी, असगन्ध, जायफल, अकरकरा सब समानभाग लेकर चूर्ण बनाकर इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर रख ले । ५-६ ग्राम रात्रि मे दूध के साथ सेवन करे ।

(११) कपिकच्छूमूल का थोडा सा टुकडा मुख मे रखकर सहवास करे ।

(१२) कपिकच्छू बीज, गोखरू, ढाक का गोद, तालमखाना, बीजबन्द, समन्दरशोष, मूसली सफेद, तज सबको समानभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना ले इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर दिन मे दो बार २-३ ग्राम दूध से सेवन करें ।

(१३) कपिकच्छू बीज, जमीनकद्दू, तालमखाना, विदारीकन्द, सफेद मूसली का चूर्ण बनाकर २-३ ग्राम सितायुक्त अजादुग्ध से सेवन करें ।

उक्त योगो को स्वस्थ व्यक्ति वाजीकरण हेतु उपयोग मे लावे तथा नपुसकता, शीघ्रपतन आदि पुरुष रोगो का रोगी उपयुक्त योग चिकित्सक के परामर्शानुसार सेवन करें ।

अन्य आभ्यन्तरीय सामान्य प्रयोग---

(१) **कृमिरोग**—[क] कपिकच्छूपत्र, कालीमरिच के साथ पीसकर सेवन करे ।

[ख] फली के रोम गुड एव मधु या नवनीत से सेवन करे । रोम १२५ मि० ग्रा० ही लेने चाहिये । यह सेवन करने के पश्चात् विरेचन अवश्य लेवे, जिससे कृमि मरकर बाहर निकल जावें ।

(२) **मल्लविष**—रोम सहित फली की छाल एव श्वेत खदिर को जल मे पीसकर थोडा थोडा पिलाते रहने से सखिया से उत्पन्न विष लक्षण शान्त हो जाते हैं ।

(३) **श्वास**—बीजो के चूर्ण को मधु एव आर्द्रक-स्वरस मे मिलाकर सेवन करने से श्वासरोग शान्त होता है ।

(४) **छर्दि**—कपिकच्छू बीज, तेजपत्र ३-३ ग्राम लेकर इसमे १२५ मि० ग्रा० मक्षिकाविट् मिलाकर चूर्ण कर मधु से सेवन करे । इससे छर्दि का शमन होता है ।

(५) **बालापस्मार**—कपिकच्छूमूल को अकरकरा के साथ मातृदुग्ध मे पीसकर पिलाने से बालापस्मार मे लाभ होता है ।

(६) **मूत्रकृच्छ्र**—बीजो के चूर्ण को जल के साथ सेवन करे ।

(७) **श्वेतप्रदर**—बीज चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें ।

(८) **विसूचिका**—मूल के क्वाथ मे मधु मिलाकर पुन-पुन सेवन करने से विसूचिका मे लाभ होता है ।

(९) **उपदंश**—बीजो को जल मे पीसकर निरन्तर सात दिन तक सेवन करना उपदश में हितकर है ।

(१०) **बन्ध्यत्व**—मूल चूर्ण एव कपित्थफलमज्जा चूर्ण का दूध से सेवन करे ।

(११) अतीसार—[क] मूल मे सिद्ध अजादुग्ध सेवन करने से रक्तातीसार एव पक्वातीसार मे लाभ होता है।

[ख] मूल चूर्ण को मधु एव तण्डुलोदक के अनुपान से सेवन करे। इससे भी उक्त अतीसार मे लाभ होता है।

(१२) ज्वर—ज्वर मे जब रोगी प्रलाप करे तव इसके मूल का क्वाथ पिलाना हितकर कहा गया है।

(१३) लालामेह—कपिकच्छू बीज, सफेद मूसली, आवला, शतावर, कूठ, कच्ची हल्दी समभाग लेकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण के वरावर पिसी हुई मिश्री मिलाकर रख ले। प्रात-साय ५-५ ग्राम चूर्ण दूध की लस्सी के साथ सेवन करे। इससे कुछ दिन मे ही लालामेह का निवारण हो जाता है।

(१४) शुक्रमेह—[क] वीज चूर्ण को कुछ दिन दूध से सेवन करे।

[ख] कपिकच्छू वीज, खरैंटी, उटगन के वीज और सफेद किर्मी के चूर्ण से आधी मिश्री मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से भी शुक्रमेह मे शीघ्र लाभ होता है।

(१५) वृक्करोग—[क] वृक्कशूल मे कपिकच्छू-मूल क्वाथ पिलावे।

[ख] वृक्को मे शोथ के कारण उत्पन्न विष आक्षेप उत्पन्न कर देता है। इसे दूर करने के लिए कपिकच्छू वीज, वलामूल तथा जटामासी का क्वाथ लाभप्रद है। आत्ययिक स्थिति मे इस क्वाथ के साथ १००-१२५ मि० ग्रा० सीसकभस्म भी दी जा सकती है

(१६) अर्दित—इसके बीजो की खीर बनाकर खिलावे।

(१७) अवबाहुक—इसके पत्र स्वरस का पान अवबाहुक मे हितकर है।

(१८) पक्षाघात—[क] कपिकच्छू वीज, उडद, एरण्डमूल की छाल, खरैंटी के क्वाथ मे १०० मि० ग्रा० भुनी हीग तथा १ ग्राम सैन्धवलवण मिलाकर पीने से पक्षाघात मे लाभ होता है।

[ख] कपिकच्छू वीज, उडद, खरैंटी, रोहिष घास, रास्ना, असगन्ध, एरण्ड की छाल के क्वाथ मे भी हीग तथा सैन्धव मिलाकर पीना हितकर है।

[ग] कपिकच्छू मूल, रास्ना, बला तथा एरण्डमूल कषाय के साथ यशदभस्म का सेवन कम्पयुक्त पक्षाघात को ठीक करता है।

[घ] कपिकच्छू मूल और बला के क्वाथ के साथ लौहभस्म एव ताम्रभस्म (गन्धकयोगेन) सेवन करें।

(१९) कार्श्य—[क] कपिकच्छू वीज, शालपर्णी और शतावरी के समभाग चूर्ण को ससिता दुग्ध से दो तीन माह तक सेवन करे। इससे शारीरिक दुर्वलता दूर होती है।

[ख] कपिकच्छू वीज, शालपर्णी, विदारीकन्द और असगन्ध का समभाग चूर्ण वनाकर इसे भी निरन्तर २-३ माह तक ससिता दुग्ध से सेवन करे। शीघ्र लाभ के लिए रजतभस्म, लौहभस्म, बङ्गभस्म आदि मे से उपयुक्त भस्म का भी सम्मिश्रण किया जा सकता है।

[ग] कपिकच्छू वीज, अश्वगन्धा, शतावरी, शालपर्णी, वशलोचन का समभाग चूर्ण वनाकर ससिता दुग्ध से कुछ दिन तक सेवन करना भी हितकर है।

[घ] कपिकच्छू वीज का चूर्ण तथा अश्वगन्धा का चूर्ण दूध मे पकाकर मिश्री मिलाकर सेवन करें। इस दुग्धपाक मे १००-२०० मि० ग्रा० लौहभस्म मिलाकर सेवन करना अधिक हितकर है।

पेटेण्ट प्रयोगो मे कपिकच्छू—राजकोट (गुजरात) की भारतीय औषधि निर्माणशाला (वान) कई आकर्षक एव प्रभावशाली योगो का निर्माण करती है। पुरुषरोगो मे लाभप्रद दो महत्वपूर्ण योग इसने प्रसारित किये हैं। जीवनशक्ति एव वीर्य की गुणयुक्तता को सम्वर्धित करने वाली, शुक्रमेह को नष्ट करने वाली एव सामान्य कमजोरी को दूर करने वाली है—वानोविट टिकिया। इसकी प्रत्येक टिकिया मे अभ्रकभस्म, मकरध्वज, गोक्षुरसत्व, अश्वगन्धा, बला, श्वेत मूसली और मुञ्जातक के अतिरिक्त कपिकच्छू भी है। इसका अश्वगन्धा के बाद मुख्य घटक कपिकच्छू ही है सुतरा

यह नाडी मण्डल को चेतनत्व प्रदान करने मे श्रेष्ठ है। पुरुषरोगो के अतिरिक्त यह सूतिकारोग, अर्दित, गृध्रसी, आक्षेपक, भ्रम, वातोन्माद मे भी लाभप्रद है। इस कम्पनी का दूसरा वाजीकरण योगरत्न है—वायसेक्स कुगी। इसमे भी अश्वगन्धा के वाद मुख्य घटक कपिकच्छू ही है। इन द्रव्यो के अतिरिक्त शिलाजीत, वला, केसर, विषतिन्दुक, अकरकरा, मकरध्वज, जुदवेदस्तर और रससिन्दूर भी है।

दत्तात्रेय कृष्णसाण्डू ब्रदर्स चेम्बूर प्रा० लि० वम्बई "वानरी कल्प" के नाम से वाजीकरण योग का निर्माण करती है। इसके प्रत्येक पांच ग्राम क्षोदकण मे १॥ ग्राम कपिकच्छू समाविष्ट है। दूसरा प्रसिद्ध तम योग है—"विमफिक्स टिकिया।" इसका भी कपिकच्छू प्रमुख घटक है सुतरा इसे प्राथमिकता दी गई है। यह वैवाहिक जीवन का यथेष्ट मात्रा मे उपभोग करने के पश्चात् भी उल्लास-उत्साह बनाये रखने मे श्रेष्ठ है। इसमे कोई नशीले द्रव्य नही होने से कोई दुष्परिणाम इसका नही होता।

नाडीमण्डलीय, मासपेशी स्थित अथवा समागमजन्य थकावट के निवारणार्थ अलारसिन कम्पनी का आदर्श आयुर्वेदीय पेटेण्ट प्रयोग है—फोर्टेज टिकिया। इसका भी कपिकच्छू प्रमुख घटक द्रव्य (क्रमाङ्क दो का) है। यह शीघ्रपतन, ध्वजभङ्ग, स्वप्नमेह, अल्प शुक्राणु, मृत शुक्राणु, शुक्रतारल्य, पौरुषग्रन्थिशोथ इत्यादि पुरुष रोगो मे फलदायी है।

आर्य औषधि फार्मा० इन्दौर द्वारा निर्मित ओजेक्स एव ओजेक्स फोर्ट मे कपिकच्छू बीज डाले जाते हैं। ओजेक्स टिकी मे कपिकच्छू २० मि० ग्रा० तथा फोर्ट मे २५ मि० ग्रा० है। यह शक्तिवर्धक, वाजीकरण, शुक्रल, उत्तेजक औषधि है।

प्रसिद्ध हिमालय ड्रग कम्पनी जो टेन्टेक्स फोर्ट (टिकिया) बनाती है। यह कामशक्ति को वढाने मे श्रेष्ठ है। इस योग मे भी कपिकच्छू अपनी महत्ता प्रकट करता है।

जनहित फार्मा० हापुड जो स्पर्मा कैपसूल बनाता है इसमे पुष्पधन्वा रस, शिलाजीत आदि के अतिरिक्त कपिकच्छू भी डाला जाता है। यह भी बल वीर्यवर्धक, स्त्री पुरुष वन्ध्यत्व दोषनिवारक है।

ऊंझा फार्मेसी का "अमीवीटा फोर्ट कैपसूल" भी महत्वपूर्ण पौष्टिक, वाजीकर रसायन योग है। इसमे बहुत से उपयोगी द्रव्यो के साथ कपिकच्छू भी समाविष्ट है।

डूफलेक्स फार्मा, वम्बई का जो "विटारोन सीरप" आता है इसके प्रत्येक ३० मि० लि० मे कपिकच्छू ४५० मि० ग्रा० होता है। यह रसायन, वाजीकरण होने के अतिरिक्त प्रसूति के पश्चात् शिथिल स्नायुओ को सबल बनाकर स्त्री की स्थूलता से रक्षा करता है।

चरक फार्मा० वम्बई बहुत से महत्वपूर्ण प्रयोगो का उत्पादन करता है। कपिकच्छू युक्त इसके दो प्रयोग विशेष हैं—पालरिविन टिकी (तेज) और निओ टिकी। पालरिविन जातीय कमजोरी के लिये उत्कृष्ट शक्ति स्फूर्ति एव चैतन्यता प्रदान कर्त्ता है तथा निओ स्नायुदौर्बल्य, थकावट एव स्वप्नमेह की सर्वोत्तम औषधि है। यह स्त्री एव वृद्धो के कटिशूल को भी कम करती है।

राजस्थान आयुर्वेदिक रिसर्च लेबोरेटरीज जयपुर द्वारा प्रस्तुत विगोरेक्स टिकिया (आयुर्वेदिक प्रोप्राइटरी औषधि) मे भी बहुत से महत्वपूर्ण द्रव्यों के साथ कपिकच्छू बीज समाविष्ट हैं। यह उत्तम वाजीकर, बल्य, पौष्टिक रसायन है। बहुमूल्य रस रसायनो एवं सप्तधातुवर्धक काष्ठादि औषधियो से निर्मित यह औषधि अपना विशेष महत्व रखती है।

आयुर्वेदिक सूचीवेधो, शास्त्रोक्त एव पेटेण्ट औषधियो के विश्वस्त एव प्रामाणिक निर्माता है—सिद्धि फार्मेसी प्रा० लि० ललितपुर। यह फार्मेसी पुरुषत्ववर्धक सैट प्रस्तुत करती है। इस सैट मे "पुन्सवीन" सूचीवेध, स्वर्णमदनपिल्स फोर्ट, तिला इन्द्रोज एवं सीरप अश्वटोन है। इनमे तिला को छोडकर तीनो योगो में कपिकच्छू है। पुन्सवीन सूचीवेध के प्रति मि० लि० मे अश्वगन्धाक्षार २ मि० ग्रा० केशर सत्व २ मि० ग्रा० तथा कपिकच्छूक्षार १ मि० ग्रा० है। स्वर्णमदनपिल्स मे कपिकच्छू के अतिरिक्त अश्वगन्धा, शतावरी, शिलाजीत,

स्वर्णवङ्ग आदि हैं तथा सीरप अश्वटोन मे अष्टवर्ग, अर्जुन, अश्वगन्धा, आत्मगुप्ता आदि है।

विविध कल्पनाये---

(१) अपत्यकर स्वरस---कपिकच्छू बीज, उडद, खजूर, शतावरी, सिंघाडे, मुनक्का सब मिलाकर ७६८ ग्राम (प्रत्येक १२८ ग्राम) इनके बराबर दूध और दूध के बराबर ही जल लेकर पकावे। ७६८ ग्राम (१ प्रस्थ) शेष रह जाने पर शुद्ध वस्त्र द्वारा छानकर शर्करा, वशलोचन और ताजा घी २८८ ग्राम मिलावें। फिर इसमे शहद मिलावें। इसके सेवन से बुढापे से घिरा हुआ एव दुर्बल व्यक्ति विपुल सन्तान प्राप्त करता है तथा युवा पुरुष के समान लैङ्गिक हर्ष को प्राप्त होता है। इसके सेवन काल मे साठी के अन्न का भोजन करे।

—चरकसहिता।

(२) कपिकच्छ्वादि चूर्ण—[क] कपिकच्छू बीज, तालमखाने के बीज, पीपल, मुलहठी इनका अच्छी तरह चूर्ण बनावे और उसमे घी व शक्कर मिलाकर चाटे, इसके पश्चात् दूध पीवे। यह चूर्ण सम्पूर्ण मूत्ररोगो को जीत लेता है। —कल्याणकारक।

[ख] कपिकच्छू बीज, पीपल, तालमखाने के बीज, मुनक्का और मिश्री सब समान भाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण मे घृत, शहद मिलाकर रख ले फिर इसे दूध मे मिलाकर चाटें तथा ऊपर से दूध पीवे। इससे मूत्राघात ठीक होता है। —मेघ विनोद।

[ग] कपिकच्छू बीज, गोखरू, सफेद मूसली, सेमर मूसली, आवला, तालमखाना और गिलोयसत्व ये सब वस्तुये समानभाग लेकर इनका चूर्ण बना वे। चूर्ण के बराबर देशी खाड मिलाकर आयु के अनुसार ६-१२ ग्राम तक गोदुग्ध से सेवन करने से वीर्य सम्बन्धी रोगो मे अत्यन्त लाभ होता है। दुर्बलता दूर होती है। जैसे वृद्ध पुरुषो को लकडी के सहारे की आवश्यकता होती है वैसे ही अशक्त पुरुषो के लिए यह चूर्ण उपयोगी है इसलिये इसका नाम वृद्धदण्ड चूर्ण भी है। इससे शरीर मे धातु की वृद्धि होकर कमर का दुखना मिट जाता है।

—अभिनव बूटी दर्पण।

[घ] कपिकच्छू बीज, तालमखाना, सफेद मूसली, उटगन के बीज, मोचरस, ऊटकटारे की जड की छाल, बीजबन्द, कमरकस, शतावरी समन्दरशोष, सूखे सिंघाड़े इन सबको कूट-पीस छानकर रख लें। ५-६ ग्राम चूर्ण के समानभाग मिश्री मिलाकर गोदुग्ध के अनुपान मे सेवन करें। इसके सेवन से कामशक्ति बहुत बढती है।

—वनौषधि चन्द्रोदय भाग ३ मे।

(३) कपिकच्छू पाक—[क] कौच के बीज की मीग ४८० ग्राम, दूध गाय का ४ किलो, घी गाय का ३०० ग्राम, खाड १ किलो ७५० ग्राम, नागकेशर, जायफल, जावित्री, अजमोद, लौंग, अकरकरा, मिर्च स्याह, सोठ, पीपल छोटी, फौलादभस्म, कंकोल, तज, तेजपात, इलायची छोटी, जीरा सफेद, गजपीपल, प्रियगू, कनक बीज शुद्ध, समुद्रशोख १६-१६ ग्राम, पाक की विधि से तैयार करें। प्रमेह, धातुक्षीणता, शूल, ८४ वातरोग नपुसकता दूर करता है तथा स्त्रियो को गर्भदाता है। स्त्रियो के सूतिका रोग दूर होकर धातु बढती है और बलवृद्धि होती है। —श्री कृष्णपाल वैद्य द्वारा

धन्व० भैषज्य कल्पनाङ्क से।

[ख] कौच के बीजो का मगज एक किलो लेकर पाच किलो गाय के दूध मे कलई के वर्त्तन मे उसका खोया बना ले। फिर एक कलईदार कढ़ाई मे आधा किलो गाय का घी डालकर उसके खोवे को भूनना चाहिये। जब खोवा लाल हो जाय तब उसे दो किलो मिश्री की चासनी मे मिलाकर जायफल, जावित्री, ककोल, नागकेसर, लौंग, अजवायन, अकरकरा, समन्दरशोष, सोठ, मिर्च, पीपर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, सफेद प्रियगु और गजपीपल इन सब औषधियो को एक-एक तोला लेकर कूट-पीस छानकर इस पाक मे मिला देना चाहिये और ३०-३० ग्राम के मोदक बाध लेना चाहिये। इस पाक के सेवन से कामशक्ति बहुत बढती है और नपुसकता का नाश होता है।

—वनौषधि चन्द्रोदय भाग ३।

[ग] कौच के बीजो का चूर्ण १ किलो, गो का दूध २० किलो, गोघृत १ किलो, चीनी देशी २ किलो।

जायफल, जावित्री, शीतलचीनी, लौंग, अजवायन, अमली अकरकरा, समुद्रशोष, त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी कलमी, इलायची छोटी, पीपलामूल, विजयाबीज, शुद्ध कनकबीज, केशर और कौंच की जड ये सब १२-१२ ग्राम लेकर चूर्ण कर लें।

कौंच के बीजो के चूर्ण को दूध मे छोडकर आग पर चढाकर पकावे। जब खोवा सा गाढा हो जाय तब उसमे घृत डालकर भूनकर कडाही आग से उतारकर सब चूर्णो को छोडकर हाथो से खूब मिलाकर उसी मे चीनी भी छोडकर २४-२४ ग्राम के मोदक बनाकर रख लें।

इसकी मात्रा २४ से ४८ ग्राम तक है। इसे दोनो समय या एक ही बार खाकर ऊपर मे गोदुग्ध पीना चाहिये।

इस पाक के सेवन से प्रमेह, क्षीणता, पथरी, गुल्म, शूल, रक्तदोष, वातरोग, शीघ्रपातरोग, स्वप्नमेह और नपुसकता रोग दूर होते हैं।

—श्री रामनारायण जी वैद्य द्वारा
धन्व० जन० ४७ मे।

[घ] कौंच के बीज छिले हुये ९६० ग्राम, शक्कर १ किलो ४४० ग्राम, घृत ३८४ ग्राम और दूध ३ कि० ७२ ग्राम लेकर सबको एकत्र कर मन्दाग्नि पर इतना पकावें कि गाढा होकर करछी को लगने लगे। फिर उसमे जायफल, सोठ मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची लौंग, अकरकरा, जावित्री, तालमखाना, नागकेशर और पुनर्नवामूल का महीन चूर्ण ९६-९६ ग्राम, मूसली का चूर्ण अफीम, पारदभस्म (किंवा रससिन्दूर), लोहभस्म और अभ्रकभस्म २४-२४ ग्राम चन्दन, अगर, कस्तूरी और कपूर प्रत्येक का चूर्ण ३-३ ग्राम मिलाकर अच्छी तरह पाक का करछी से चलाकर जमा देवें या मोदक बना लेवें।

१२-२४ ग्राम की मात्रानुसार सेवन करने से उत्तरोत्तर बलवीर्य की वृद्धि होती है।

—यो० रत्नाकर।

(ङ) कौंचबीज, असगन्ध, गोखरू, बिनौले की गिरी, उटंगन बीज और बादाम १२०-१२० ग्राम। सब औषधियो का कपडछन चूर्ण और बादाम का लाल छिलका उतारकर पीसकर मिला लेवे। इन्हे ५ किलो दूध मे डालकर खोवा बना ले। फिर २५० ग्राम घृत मे खोवा को भली प्रकार भून लें। मूसली सफेद, जायफल, शकाकुल, दालचीनी, बहमन सुर्ख, तोदरी, बहमन सफेद सोठ, मिर्च और पीपल १२-१२ ग्राम का महीन चूर्ण कर उक्त खोवा मे मिला लेवे और समभाग मिश्री की चाशनी मे मिलाकर जमा देवे। १२-३० ग्राम तक सेवन कर ऊपर से दुग्ध पान करे। बल वीर्य की वृद्धि करता है, स्मरणशक्ति बढाता है तथा नपुसकता नाशक है।

—वृ० पाक सग्रह।

(च) कौंच के उत्तम बीजो का बारीक आटा तैयार कराकर तथा बारीक वस्त्र से छानकर, उसमे बराबर भाग उडद का आटा मिलाकर कढाई मे डालकर बराबर के घी मे भून लेवे। पश्चात् देशी खाड की चासनी कर (खाड दुगनी लेवे) उसमे उक्त भुना हुआ आटा डालकर करछी से चलाकर एक जीव कर लेवे। फिर नीचे उतार कर उसमे जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, इलायची, और वशलोचन का महीन चूर्ण १२-१२ ग्राम केशर ६ ग्राम, कस्तूरी ५०० मि० ग्राम अच्छी तरह पीसकर मिला ले, तथा चादी के वर्क ४ ग्राम और स्वर्ण के वर्क २ ग्राम मिलाकर या तो वर्फी जमा दे या १८-१८ ग्राम के मोदक बना लेवे।

१८ ग्राम की मात्रा मे प्रात-साय दूध के साथ सेवन करे। इस पर घी, दूध आदि के बने हुये स्निग्ध पदार्थो का अधिक व्यवहार करना चाहिये। यह पाक स्वस्थ मनुष्य के शरीर मे अत्यन्त बल वीर्य की वृद्धि करता है, तथा नपुसक मनुष्य को पुरुषत्व प्रदान करता है।

—वृ० पा० सग्रह।

(४) कपिकच्छ्वादि वटक—[क] कपिकच्छू के बीज और उडद (दोनो छिलके रहित) का समानभाग चूर्ण लेकर नारियल के थोडे पानी मे भिगोकर रख दे। तीन-चार घण्टो के बाद पीसकर उसमे उसका बीसवा भाग अभ्रकभस्म मिलाकर ३-३ ग्राम के वटक बनाकर घृत मे तल लें। इनमे से एक या दो वटक

शहद और घृत मिलाकर मिश्री युक्त दूध के साथ सेवन करने से कामशक्ति अत्यन्त प्रबल होती है।

—र० रत्नाकर।

(ख) छिलके रहित इसके बीज और उडद की दाल ३८४-३८४ ग्राम लेकर दोनो को पानी मे भिगो दें। फूलकर नरम हो जाने पर अत्यन्त बारीक पीसकर उसमे केसर, नागकेसर, जावित्री, शतावर, गोखरू, तालमखाना, लोग, कालीमिर्च, पीपल तथा सिंगाडे का १२-१२ ग्राम महीन चूर्ण मिलाकर १२५-१२५ मि० ग्रा० के वटक बना ले। उन्हे ३ से ६ किलो तक घी मे तलकर पत्थर या काच के पात्र मे भरकर उसमे उक्त घृत के समभाग शहद मिला मुख बन्द कर तीन दिन तक रखा रहने दे। फिर नित्य १-१ वटक सेवन करने से वीर्य क्षीणता एव नपुसकता नष्ट हो जाती है। पथ्य मे—मधुराहार, दूध भात आदि दे। क्षार, अम्ल आदि अपथ्य है।

(५) कपिकच्छ्वादि नस्य—कपिकच्छू मूल और हीग को गूलर के दूध और झिझिटी के रस मे मिलाकर नस्य लेने से अववाहुक नामक वातरोग शान्त होता है।

—राज मार्तण्ड।

अनुभूत प्रयोग—

(१) शुक्रविकारहर—कौच के बीज छिलके रहित कुटे छने २०० ग्राम, तोरई अधकुटी २५ ग्राम, तालमखाने अधकुटे २५ ग्राम, वशलोचन पिसा हुआ २५ ग्राम, मिश्री पिसी छनी २६० ग्राम सबको मिलाकर चूर्ण तैयार कर ले। ६-६ ग्राम चूर्ण १०० ग्राम गोदुग्ध के साथ प्रात-साय लेने से वीर्य सम्बन्धी सभी विकार दूर होते हैं। —प० श्री ताराचरन शर्मा द्वारा

धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक द्वितीय भाग से।

(२) कृमिरोग पर अनुभव [बालको के लिए]—कपिकच्छू की फली के ऊपर के रूये २ ग्रेन से ३ ग्रेन तक लेकर बालक का बलाबल देखते हुए, ६ ग्राम गुड के बीच मे रखकर खिलायें, इससे कृमि मर जायेंगे। इसके १२ घण्टे बाद शुद्ध एरण्ड तैल का जुलाब देना चाहिये जिससे कृमि बाहर आ जायेगे।

—प० श्री मुरारीलाल त्रिपाठी द्वारा

धन्व० गु० सि० प्र० च० भाग से।

(३) बहुफलप्रद चूर्ण—कौंच के बीजो की मिंगी, सालम मिश्री, सफाकुल मिश्री, तोदरी सफेद, इमली के बीजो की मिंगी, तालमखाना, मखाली के बीज, सफेद मूसली, काली मूसली, सेमल की मूसली, बहमन सफेद, बहमन लाल, शतावर, कीकर की कच्ची सूखी फली, कीकर का सत्व (गोद) तथा ढाक की नरम कली—इन सबको १२-१२ ग्राम लेकर पीस छानकर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण मे २१६ ग्राम देशी मिश्री पीसकर मिला दे।

उक्त चूर्ण को १२-१२ ग्राम की मात्रा मे प्रात सायं फाककर ऊपर से २५० ग्राम धारोष्ण दूध पिया करे। यदि धारोष्ण दूध माफिक न आवे तो तीन उबाल तक दूध को औटाये उसमे ३० ग्राम देशी सफेद चीनी मिला दे। फिर दवा फाककर ऊपर मे उस दूध को पी जाय। ४० दिन तक पथ्यपूर्वक नियमित इसका सेबन करते रहे।

इस चूर्ण के सेवन से हर प्रकार के नये, पुराने, प्रमेह, धातुक्षीणता, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, स्मरणशक्ति की दुर्बलता, शिर दर्द, कमर का दर्द एवं दिल दिमाग की कमजोरी आदि विकार दूर होते है।

औषधि सेवनकाल मे गुड, मिर्च, तैल, खटाई, मैथुन तथा कब्जकारक पदार्थो का सेवन त्याग देना चाहिए। —आयुर्वेदिक चिकित्सासार।

(४) कामोद्दीपन चूर्ण—कौच बीज, गोखरू, विदारीकन्द, कुलिंजन, शतावर प्रत्येक ४-४ ग्राम और छोटी इलायची, पीपर, गिलोय, लालचन्दन, नागकेसर, सफेद मूसली, छडीला, बशलोचन, उटगन के बीज भी प्रत्येक ४ ४ ग्राम बारीक पीसकर सेमर के रस मे २१ भावना दे छाया मे सुखाकर बराबर वजन की पिसी हुई शक्कर मिला ले। १०-१२ ग्राम औषधि २५० मि०

लि० गाय के कच्चे दूध के साथ लेने से धातु मे वृद्धि और कामोद्दीपन होता है।

—महात्मा श्री अचलनारायण जी द्वारा सुगम चिकित्सा।

(५) धातुवर्धक योग—कौंच के बीज, रूमी-मस्तङ्गी, सफेद मूसली, मोचरस, खस-खस दाना, शतावर सब समानभाग ले चूर्ण करें। ३-४ ग्राम दवा दिन मे दो बार जल अथवा गरम दूध से लें।

इसके उपयोग से प्रदर, प्रमेह तथा धातुक्षीणता दूर होती है। —वैद्यराज श्री बसरीलाल जी साहनी द्वारा सरल मि० यो० सग्रह।

(६) वाजीकरण गुलाब जामुन—कौंच बीज का महीन आटा, खरैंटी, श्वेतगुंजा, तालमखाने का चूर्ण, समुद्रशोख, उडद का महीन आटा सब समानभाग लेकर इन सबके बराबर गाय के ताजे दूध का खोवा मिलाकर २५-२५ ग्राम के गोल या चपटे बडे घृत मे सेककर मधु मे डालते जावें और चम्मच से डुबोते जावें। यदि मधु उत्तम उपलब्ध न हो सके तो चीनी (शर्करा) की चाशनी मे डालते जावें।

प्रात-साय १-१ बडा खाकर ऊपर से दूध पी सकते हैं। —महामहोपाध्याय प० श्री भागीरथ जी स्वामी द्वारा धन्व० पुरुषरोगाङ्क से।

(७) कामराज चूर्ण—कौंच के बीज, नागौरी असगन्ध, कमलगट्टे की गिरी, छीले हुए बडे गोखरू, विदारीकन्द ये पाचो १००-१०० ग्राम लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण कर लें फिर इस चूर्ण मे केशर के पानी, भाग का क्वाथ, लहठी का क्वाथ, विदारीकन्द का क्वाथ, श्वेत मूसली का क्वाथ प्रत्येक की ३-३ भावना देकर छाया मे सुखाकर कपडछान कर चूर्ण बना ले। १० ग्राम औषधि मे ५ ग्राम मधु मिलाकर दिन मे दो समय दूध के साथ सेवन करे। इससे सब प्रकार की नपुसकता दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् होता है।

—श्री देवीचन्द्र बेरी।

(८) एक अनुभूत औषधि योग—कौंच बीज, शतावर, मुलहठी, आमलक, विदारीकन्द, गोखरू, श्वेत मूसली' सालमपजा और जातिफल इन दश द्रव्यो को समान मात्रा मे लेकर उतनी ही मात्रा मे मिश्री मिलाकर चूर्ण बना लें। सुबह-शाम इसमे से ५-७ ग्राम चूर्ण दूध के साथ सेवन करे। इसके सेवन से प्रबल कामशक्ति, वीर्यवृद्धि और सम्भोग समय मे ताकत मिलती है।

—वैद्य श्री धीरेन्द्र त्र्यबकलाल जोशी धन्व० पुरुषरोग चिकित्साक।

(९) आनन्द चूर्ण—कौंच के बीजो की गिरी, गोखरू, तालमखाना, उटगन के बीज, ईसबगोल की भूसी, ढाक का गोद, सफेद मूसली, काली मूसली, सफेद बहमन, लाल बहमन, शतावर तोदरी सफेद, तोदरी लाल, सालबमिश्री, शकाकुल मिश्री, लिसोडा, रूमी-मस्तङ्गी, गिलोयसत्व, छोटी इलायची के दाने, वशलोचन १२-१२ ग्राम, मिश्री २१६ ग्राम, बङ्गभस्म, मूगाभस्म, शुद्ध शिलाजीत ६-६ ग्राम ले। काष्ठादि द्रव्यो का चूण करें फिर सब मिलाकर एक जीव करे। शतावरी स्वरस की ७ भावना देकर सुखाकर रख ले।

मात्रा—६ ग्राम।

अनुपान—गोदुग्ध गर्म कर मिश्री मिलाकर दे।

गुण—इस चूर्ण को सोते समय दुग्ध के साथ लेते रहने से सभी वीर्य विकार दूर हो जाते है।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य द्वारा आयुर्वेद विकास अनुभूत चिकित्साक से।



कर्पूर

Cinnamomum camphora Nees. & Eberm
N. O.--LAURACEAE

Dryobalanops aıomatıca Gaeıtın f

N O -DIPTEROCARPEAE



नैसर्गिक कर्पूर की उपलब्धि उपर्युक्त दो जातियो के पौधो से की जाती थी। प ली से सामान्य कपूर और दूमरी से वरास कपूर या भीमसेनी कपूर तैयार किया जाता था तथा विदेशो मे इसका आयात किया जाता था। आजकल इसे सिन्थैटिक रूप मे तैयार किया जाता है और देश मे ही यह तैयार होता है। पारीक जी ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है।

आयुर्वेद मे कर्पूर कुछ रसयोगो मे मिलाकर अथवा मद्यसार मे घोलकर हृदय की क्रिया को उत्तेजित करने के लिए दिया जाता है या लेपो मे प्रयोग किया जाता है। —र० प्र० त्रि०।

कुमुमानि लवगस्य तथा कक्कोलकागुरु।
जातीफलानि कर्पूरमेतत्तञ्च मुगन्धकम्॥

उक्त कथन मे कर्पूर की गणना सुगन्धित द्रव्यो के अन्तर्गत की जाती है। एतावता यह पूजा आदि मे भी उपयोग मे लाया जाता है। जगन्नाथ के सम्मुख भक्त दीप प्रज्वलित करते समय विभोर होकर गाता है।

तमोहारिण ज्ञानमूर्ति मनोज्ञ लसद्वर्तिकर्पूरपूर गवाज्यम्।
जगन्नाथ देवप्रभो विश्वदीप स्फुराज्ज्योतिष दीपमुखर गृहाण॥

और "कर्पूरारातिक्य समर्पयामि" कहकर आरती उतारता है। ये सब विधान कर्पूर की गुणवत्ता किंवा महत्ता के परिचायक हैं।

भगवान् चन्द्रमौलि की कान्ति कर्पूर तुल्य कही गई है। "कर्पूरगौर करुणावतार" "कुन्दकर्पूरकान्ति" आदि वाक्य यही प्रदर्शित करते है। वैद्यवर श्री शार्ङ्ग-धर अन्तक सन्निपात वाले रोगी को इन्ही आशुतोष की स्तुति करने की पेरणा देते हैं।

कर्पूरप्रकरावदातवपुष मद्योगमुद्राजुष।
पिंगोत्तुगजटाकलापरचिर चन्द्रार्द्धमौलि स्तुहि॥

अस्तु चिकित्सा मे कर्पूर की उपादेयता सर्वमान्य है। यह प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार कपूर कुल (लॉरेसी-Lauıaceae) की औषधि है। भावप्रकाश-निघण्टु के द्वितीयवर्ग मे इसका सर्वप्रथम वर्णन किया गया है, सुतरा इस वर्ग का नाम ही कर्पूरादि वर्ग रक्खा गया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्यगुण विज्ञान द्वितीय भाग के तृतीय अध्याय मे हृद्यवर्ग के हृद्य द्रव्यो के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है।

नाम—

सस्कृत—कर्पूर–रोगो को नष्ट कर शरीर को स्वस्थ रखने वाला।

घनसार–ठोस सार भाग।

चन्द्र–चन्द्रमा के समान श्वेत और शीतल होने से।

हिमाह्व–वर्फ के समान श्वेत और शीतल होने से।

पुन्सि क्लीवे च कर्पूरो हिमाह्वो हिमवालुक।
घनसारश्चन्द्रसंज्ञो हिमनामापि स स्मृत॥
—भा० प्र० नि०।

घनसारस्तु कर्पूर चन्द्राह्व हिमवालुकम्।
—अ० र० मा०।

कर्पूरो घनसारक । —हृ० दी० नि० ।

हिन्दी—कपूर
मराठी—कपूर
गुजराती—कपूर
राजस्थानी—कपूर
पंजाबी—कपूर
बंगला—कर्पूर ।
तामिल—कर्पूरम् ।
तेलगू—कर्पूरम्
अरबी—काफूर
फारसी—कपूर
अंग्रेजी—कैम्फर (Camphor)
लैटिन—सिनेमोमम् कैम्फरा (Cinnamomum Camphora) ।

उत्पति स्थान—भारत मे देहरादून, मैसूर एव नीलगिरि पर्वतीय क्षेत्रो मे इसके वृक्ष लगाये जाते है । इसके अतिरिक्त चीन, जापान आदि मे भी पाया जाता है ।

रासायनिक संगठन—यह एक प्रकार का घन उडनशील तैल है जो श्वेत, पारदर्शक स्फटिको, विरल कण समूहो मे प्राप्त होता है । यह जल पर तैरता है । विशिष्ट गंध वाला यह जलाने से शीघ्र जलता है, और खुला रखने से उड जाता है । इसका रासायनिक सूत्र $C_{10}H_{16}O$ है ।

वानस्पतिक परिचय—इसके वृक्ष सदा हरे रहने वाले लगभग १०० फीट तक ऊचे होते है । इनकी परिधि ६-८ फीट तक होती है । काण्ड की छाल ऊपर से खुरदरी तथा धूसर होती है किन्तु अन्तस्त्वक् स्निग्ध (चिकनी) होती है । पत्र–एकान्तर, मृदु, स्निग्ध, २-४ इच लम्बे, पीताभ हरितवर्ण, चर्मवत्, सुगन्धित, तेजपात के समान होते है । पुष्प–पीताभश्वेत, छोटे एव गुच्छो मे होते है । फल–गहरे हरे, मटर के समान गोल, गुच्छो मे होते है, जो अक्टूबर मास मे पक कर काले पड जाते है । बीज-छोटे, कर्पूर गन्धयुक्त होते है । वृक्ष के सभी अगो मे कर्पूर की गन्ध आती है ।

फरवरी मार्च मे पुरानी पत्तिया झड जाती हैं और साथ ही नई पत्तिया निकलती है ।

भेद—कर्पूर उत्पत्ति स्थान, निर्माण भेद एव वर्ण भेद की दृष्टि से अनेक प्रकार का होता है । इसके मुख्य भेदो का वर्णन किया जायेगा । उत्पत्ति स्थान किंवा देशभेद से कर्पूर तीन प्रकार का होता है—

१ भीमसेनी या बरास कपूर (Dryobolanops-Aromatica) यह बोर्निओ से सुमात्रा तक द्वीपो मे मिलता है सुतरा इसे बोर्निया का कपूर किंवा सुमात्रा का कपूर भी कहा जाता है । इसके अतिरिक्त इसका लैटिन नाम ड्रायोबैलेनाप्स एरोमेटिका है । इसका वृक्ष शाल कुल (डिप्टेरोकार्पेसी Dipterocarpaceae) का है । इसके वृक्ष बडे होते हे जिनके काण्ड के कोटरो मे श्वेत पारभासक कपूर एकत्र हो जाता है । यह चीनी कपूर से भारी होता है तब ही तो यह पानी मे डूब जाता है जबकि चीनी कपूर पानी मे नही डूबता है । इसमे एक विशिष्ट गन्ध तथा दाहक स्वाद होता है । मामूली ताप पर यह उडता नही है ।

हमारे देश मे इसके वृक्ष देहरादून मे लगाये गये है । यह एक महगा कर्पूर है इसे पकाने की आवश्यकता नही होती है । औषधि कार्य मे प्राचीन काल से यही उपयोग मे लाया जाता रहा है । रासायनिक दृष्टि से यह त्वचा की रक्त वाहिनियो को अत्यधिक विस्फारित करता है ।

सुमात्रा टापू के पश्चिम की ओर छोटा सा टापू है । इस कस्बे को कानसूर टापू कहते है । इस टापू को बरास भी कहते है इसलिये यह बरास कपूर के नाम से भी जाना जाता है । इसे कृत्रिम रूप से भी तैयार किये जाने का वर्णन मिलता है—

साधारण कपूर ८० ग्राम, छोटी इलायची २८ ग्राम, सफेद चन्दन २० ग्राम, निर्मली के बीज २० ग्राम, रसौत २० ग्राम, नागरमोथा २० ग्राम महीन पीसकर चूर्ण बनाकर गाय के दूध मे घोटकर गोला बनावे । वह गोला डमरू यन्त्र मे रखकर उत्तम कपडमिट्टी कर अग्नि पर धरना चाहिये । इसको चूल्हे पर चढ़ाकर

अगूठे के बराबर वत्ती डालकर घृत भरकर दीपक की अग्नि देवे। ऊपर से पानी देते रहे। एक प्रहर तक उत्तम अग्नि देने से स्फटिकाकार कृत्रिम भीमसेनी कपूर बनता है। बहुत से लोग केसर, कस्तूरी, अम्बर आदि कीमती वस्तुयें भी डालते है। —योगरत्नाकर।

साधारण कपूर २४ ग्राम, समुद्रफेन ३ ग्राम, रसौत ३ ग्राम, छोटी इलायची के बीज ६ ग्राम, केसर १ ५ ग्राम, कस्तूरी ७५० मि० ग्रा०, निर्मली ३ ग्राम, नागरमोथा ३ ग्राम और अगर ३ ग्राम—इन ९ चीजो को साफ धोये हुए खरल मे डालकर गुलावजल दे-दे कर घोटो। पीछे इसकी एक टिकिया बना लो।

कासी की थाली मे इस टिकिया को रखकर ऊपर से फूल-कासी का कटोरा औंधा रख दो। थाली और कटोरे की सन्धियो को पानी मे साने हुये उडद के आटे से बन्द करो, जिससे हवा न आ-जा सके। इसके बाद थाली को ईंटो पर रख दो और थाली के नीचे घी का चिराग ऐसी मोटी बत्ती डालकर जला दो, जिस से दीपक की लौ छोटी अगुली जितनी मोटी उठती रहे। यह चिराग कोई ३ या ३॥ घण्टो तक जलता रहना चाहिये। कटोरे के ऊपर, रेजी का कपडा ८-१० तह करके और पानी मे तर करके रख दो। अगर कपडा सूखने लगे, तो ऊपर से थोडा-थोडा ठण्डा जल टपकाते रहो। इस तरह करने स तीन घण्टो मे भीमसेनी कपूर तैयार हो जायेगा और वह ऊपर के कटोरे मे लगा मिलेगा। कटोरे के जोड छुडा कर कपूर को निकाल कर शीशी मे रख लो। यह कपूर वडे ही काम की चीज है। —चिकित्सा चन्द्रोदय भाग ४।

दूध, शीतलचीनी, इलायची छोटी, सोठ और जटामासी इन ५ चीजो को समान मात्रा मे लेकर चलने या सिल पर अच्छे प्रकार से चटनी की भाति पीसकर एक तावे के कटोरे मे विछा दे और उसके ऊपर कपूर के छोटे-छोटे टुकडे पानी मे भिगोकर रख और उस तावे के कठोरे के ऊपर उसी प्रकार का पीतल का कटोरा औधा करके रख दे। फिर दोनो की दराजो को कपडमिट्टी से बन्द कर दे ताकि कही से भी हवा न निकल सके, फिर इसको बन्द कमरे मे दो गुम्मा ईंटो के चूल्हे पर चढाकर नीचे मोटी बत्ती का घी का दीपक जला दे और ऊपर वाले पीतल के कटोरे पर पानी से तर किया हुआ कपडा निरन्तर रखते रहे। जब कपडा सूखने लगे तब पुन तर कर ले। १०-१२ घण्टे इस प्रकार अग्नि लगाने से कपूर ऊपर के पात्र मे उडकर चिपक जावेगा। ठण्डा हो जाने पर कपडमिट्टी खोल सावधानी से ऊपर के कटोरे मे लगा कपूर छुडा लें, इसे ही भीमसेनी कपूर कहते हैं।

—श्री शिवकुमार शास्त्री का एक लेख।

२. चीनी कर्पूर (Cinnemomum campora) लेख के प्रारम्भ मे इसका ही वर्णन किया गया है। यह सिनमोनिया कैम्फोस नामक वृक्ष का गोद है। वृक्ष की लकडी को पकाकर इसका निर्माण किया जाता है। साथ ही पत्तो से भी कुछ कपूर प्राप्त होता है। यह वृक्ष चीन, जापान, जावा एव पूर्वी द्वीप समूह मे अधिक होता है। आजकल यह भारत मे भी लगाया जाता है। यह जमी हुई पपडी के रूप मे मिलता है सुतरा इसे ढोकेदार कपूर भी कहते हैं। सम्भवत पूर्वकाल मे इसका अधिकतर आयात चीन देश से होता रहा है, सुतरा इसे चीनी कपूर किंवा चीना कपूर कहते हैं। यह जल मे डूबता नही है अपि तु तैरने लगता है। इस को पिपरमेण्ट और अजवाइन सत्व के साथ मिश्रण करने से यह द्रव रूप मे परिणित हो जाता है।

३ भारतीय कपूर—(Ocimum Kilimandscharicum)—यह तुलसी कुल (Labiatae) की कपूरी तुलसी नामक क्षुप से प्राप्त किया जाता है। इसका क्षुप तुलसी के समान होता है तथा इसकी पत्तियो से तीक्ष्ण सुगन्ध आती है। यद्यपि इस क्षुप का मूलस्थान केनिया (पूर्वी अफ्रीका) है किन्तु अब यह भारत के भी महाराष्ट्र, मैसूर, जम्मू, देहरादून आदि स्थानो मे होता है। इसकी पत्तियो से ६१-८० ५% कर्पूर प्राप्त होता है तथा बीजो से १२ ५% हलके पीले रग का तैल प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त कुकरौंधा आदि (Blumea) जाति के पौधो तथा अन्य कर्पूरगन्धि औषधियो से कर्पूर प्राप्त

किया जाता है। इसे पत्री या नागी कपूर कहते है। यह चीन के तेनासरीम नामक प्रान्त मे अथवा कुमायू के पहाडो मे बहुत निकाला जाता है। ब्राह्मी लोग इसे पकाकर कपूर निकालते हैं। यह भीमसेनी कपूर से भारी होता है परन्तु उडता शीघ्र है।

किसी-किसी के मत से हिन्दुस्थान मे एक प्रकार का केला के समान वृक्ष होता है, उस से कपूर बनता है। खानखाना रहीम का यह दोहा प्रसिद्ध है—

कदली सीप भुजगमुख स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये तैसो ही फल दीन॥

इसके बारे मे स्वामी जी ने कहा है कि मेरी समझ मे केला मे कपूर बनाना मिथ्या है। कही पर भी इसका प्रमाण नही मिलता है। —व० शास्त्र।

निर्माण भेद से कपूर दो प्रकार का कहा गया है—पक्व एव अपक्व। पक्व कर्पूर पाक विधि द्वारा कृत्रिम रूप से निर्मित किया जाता है। इसमे वृक्ष के मूल काड तथा शाखाओं द्वारा ऊर्ध्वपातन विधि से तैल एव कर्पूर प्राप्त करते हैं। यह स्वच्छ स्फटिकीय या चूर्ण रूप मे मिलता है। गन्ध तीक्ष्ण होती है। इसका सापक्ष गुरुत्व ०.९९५ है। ताप मे यह जलने वाला तथा उडने वाला है। यह जल मे तैरता है।

जो पाकक्रिया के विना ही वृक्ष के कोटरो मे प्राकृतिक रूप से सचित किया जाता है वह अपक्व कर्पूर होता है। पक्व कर्पूर की अपेक्षा अपक्व कर्पूर उत्कृष्ट माना जाता है। मूल भाग मे सर्वाधिक कर्पूर प्राप्त होता है। पत्तियो से भी कर्पूर प्राप्त होता है। २ प्रतिशत मूल से तथा १ प्रतिशत पत्रो से यह प्राप्त होता है। कपूर के बीजो से ४२ प्रतिशत पीताभ श्वेत स्फटिकीय सुगन्धित स्नेह प्राप्त होता है। कपूर निकालने के बाद जो तैल बचता है वह कर्पूर तैल (Camphor oil) के नाम से जाना जाता है।

आजकल कृत्रिम रूप से रासायनिक क्रिया द्वारा बहुत से कर्पूर तैयार किये जाते है। जो औषधि कार्य की अपेक्षा सेल्यूलाइड आदि बनाने के काम मे आते है। वर्ण भेद से यूनानी चिकित्सको (हकीमो) ने कपूर तीन प्रकार का माना है—

१. रियाही—यह रक्ताभ श्वेत और प्राकृतिक होता है। यह उपर्युक्त भीमसेनी कपूर है जो अपक्व रूप मे प्राप्त किया जाता है।

२. कैसूरी—यह श्वेत उज्वल और स्तरयुक्त होता मे। इसे फार्मोसा कैम्फर भी कहते है यह सभवत पक्व कपूर है।

३. काफ्र मोती—यह मृत्तिकावर्ण होता है तथा पाकविधि के द्वारा कृत्रिम रूप से प्राप्त होता है। इसे ब्लूमिया कैम्फर भी कहते है।

राजनिघण्टुकार ने गुण स्वाद और वीर्य के अनुसार जिन १४ प्रकार के कर्पूरो का वर्णन किया है वे सब इन्ही भेदो के अन्तर्गत आ जाते हैं। वे भेद हैं—

पीतासो भीमसेनस्तदनु शितकर-शङ्करावाससञ्ज्ञ।
प्राशु ि ञ्जोऽब्दसारस्तदनु हिमयुता वालुका जूटिका च।
पश्चादस्यास्तुयारस्तदुपरि सहिम शीतल पक्विकान्या कर्पूरस्येति भेदा गुणरसमहमा वैखर्येन दृश्या।

इसके अतिरिक्त राजनिघण्टुकार ने इनके शिर, मध्य, तल ये प्रधान तीन भेद किये है—

शिरोमध्य तल चेति कर्पूरास्त्रिविधा स्मृत।
शिरस्तत्भाग्रसजात मध्य पणतले तलम्॥
भास्वद्विशदपुलक शिरोजात तु मध्यमम्।
सामान्यपुलक स्वच्छ तले चूर्णं तु गौरकम्॥
स्तम्भगर्भस्थित श्रेष्ठ स्तम्भबाह्ये च मध्यमम्।
स्वच्छमीषद्धरिद्राभ शुभ्रंतन्मध्यम स्मृतम्॥
सुदृढ शुभ्ररुक्ष च पुलक वाह्यजं वदेत्॥

इन विविध भेदो की गुणवत्ता को ध्यान मे रखते हुए आवश्यकता होने पर उपयुक्त कर्पूर को काम मे लिया जाना चाहिये।

कर्पूरस्वरूप—

पक्वात्कर्पूरत प्राहुरपक्व गुणवत्तरम्।
तत्रापि स्यात् यदक्षुण्ण स्फटिकाभ तदुत्तमम्॥
पक्वञ्च सदल स्निग्ध हरितद्युतिचोत्तरम्।
भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति तत कणा॥
हस्ते निघृष्य कर्पूर रेखा हस्तस्य लक्षयेत्।
यदि सा दृश्यते विद्धि कर्पूरमतिभद्रकम्॥
—भै० र०।

१ पक्व कर्पूर की अपेक्षा आम कर्पूर उत्तम किंवा अधिक गुणो वाला होता है।

२ अपक्व कर्पूर अक्षुण्ण (पूर्ण रूप न हो) तथा स्फटिक (बिलौर) के समान हो वह अत्यधिक उत्तम होता है।

३ पक्व कर्पूर दानेदार स्निग्ध एव हरित आभा-वाला उत्तम होता है।

४ भीमसेनी कर्पूर की अपेक्षा भारी होने से जल मे डूबता नही है। चीनी कर्पूर की भाति इसका चूर्ण आसानी से नही होता है। खुला रहने पर हवा की उष्णता से चीनी कर्पूर की भाति उडता नही किंवा अत्यल्प मात्रा मे उडता है। यह साधारण ताप से उडता नही है और द्रवीभूत तथा जलता नही है।

५ चीनी कर्पूर क्लोरोफार्म एव सालवेन्ट ईथर मे शीघ्र ही घुल जाता है। वानस्पतिक तैलो मे भी यह शीघ्र घुल जाता है। यह जल मे डालने पर तैरता है। हवा मे खुला रखने पर उडता है तथा जलाने पर शीघ्र ही ज्वलित होता है तथा धूमयुक्त चमकीली ज्वाला छोडता है।

अपमिश्रण—कर्पूर मे मोम, राल, स्फटिक, स्टार्च, गोदन्ती तथा श्वेत स्वच्छ वर्ण के रालीय पदार्थो की मिलावट कर दी जाती है।

शुद्ध कर्पूर और कृत्रिम कर्पूर की परीक्षा—

१ कर्पूर को परखनलिका मे डालकर थोडा गरम करें तो असली कर्पूर धूम के साथ उड जाता है जबकि नकली उडता नही है।

२ इसके रासायनिक विश्लेषण मे कम से कम ९६% $C_{10}H_{16}O$ होता है।

३ कर्पूर हथेली पर घिसकर हाथ की रेखाओ को देखने पर उन रेखाओ मे यदि कर्पूर दिखलाई दे तो असली समझना चाहिए अन्यथा नकली समझना चाहिये।

४ कर्पूर को नेत्रपलक के ऊपर भाग पर थोडा सा रगडे। रगडने पर नेत्रो मे प्रदाह होकर अश्रुस्राव हो जाय और तत्पश्चात् नेत्रो मे शैत्यानुभूति हो तो उस कर्पूर को असली समझना चाहिये। यदि कर्पूर नेत्र पलको पर लगाने से प्रदाह तो हो किन्तु इसके पश्चात् शैत्यानुभूति न हो तो वह कर्पूर नकली समझना चाहिये।

५ चादी के वरक मे लपेट कर कर्पूर को दिया-सलाई से जलावें यदि असली होगा तो दीपक की लौ की भाति जलेगा।

६ गरमागरम रोटी के टुकडे मे कर्पूर को रखें यदि असली होगा तो पसीज कर नरम हो जायेगा नकली होने पर नरम नही होगा।

रस—तिक्त, कटु, मधुर।

इसका मुख्य रस तिक्त ही है कटु एव मधुर अनुरस है। षड्रस निघण्टु (अभिधानरत्नमाला) के तिक्तस्कन्ध (४/५८) के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया गया है।

गुण—लघु, तीक्ष्ण।

वीर्य—शीत।

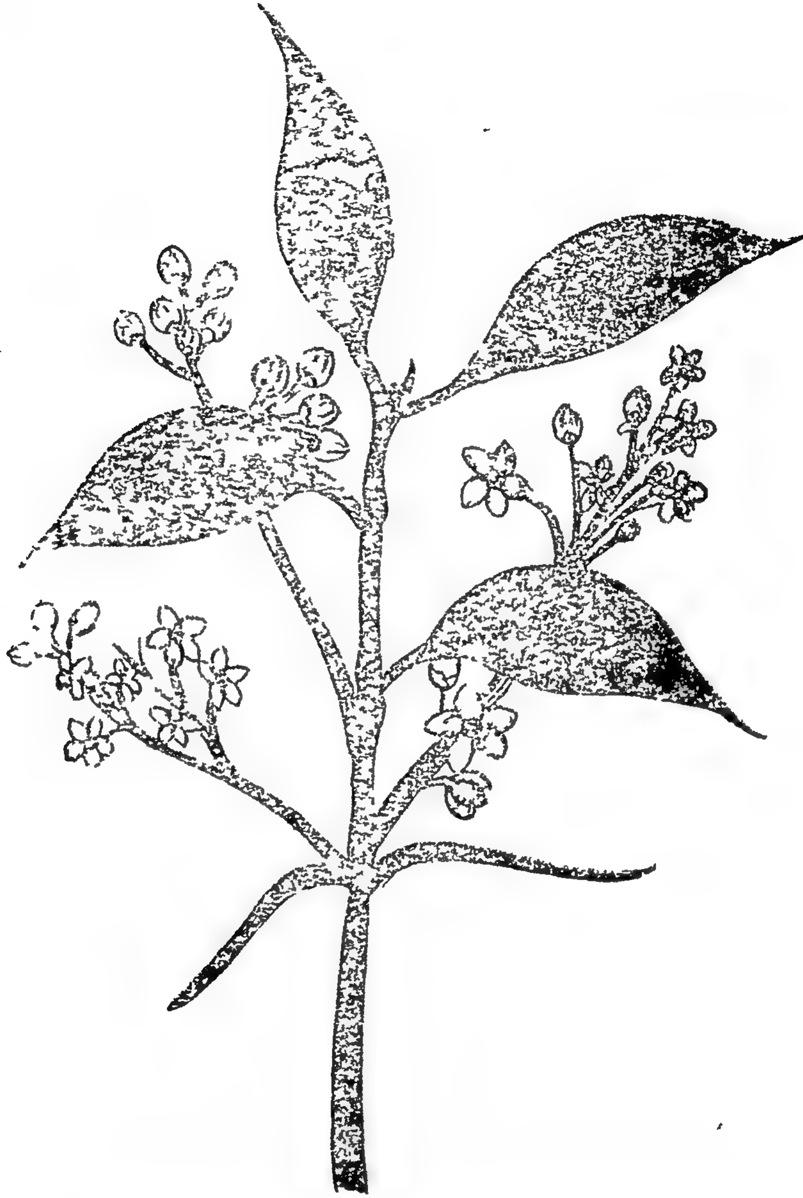
विपाक—कटु।

दोषकर्म—तिक्त होने से यह कफ का, मधुर होने से वात का तथा शीत होने से पित्त का शमन करता है, सुतरा यह त्रिदोषहर कहा गया है। सिद्धमन्त्र ३/४ मे इसे कफघ्न ही कहा है।

प्रयोज्य अङ्ग—निर्यास (सत्व)।

मात्रा—१२५–३७५ मि० ग्रा०।

शुद्धिकरण—भीमसेनी आदि अपक्व कर्पूर प्राय. शुद्ध ही होते हैं। इन्हे शुद्ध करने की आवश्यकता नही होती है। अन्य कर्पूर चिकित्साकर्म मे आभ्यन्तरीय सेवन हेतु शुद्ध कर ही उपयोग मे लाने चाहिये। अजवायन के अर्क मे घोट लेने से यह शुद्ध हो जाता है। केले का पेड काटने से जो पानी निकलता है उसे छान कर बोतलो मे रखलें। यह कदली स्वरस भी कर्पूर के शुद्धिकरण मे उपयोग मे आता है। इस जल मे कर्पूर घोट लेने से भी यह शुद्ध हो जाता है। गोदुग्ध त्रिफला क्वाथ और भृङ्गराजस्वरस समान मिला इसमे कर्पूर को एक प्रहर खरल करने से भी यह शुद्ध हो जाता है।



कपूर (Cinnamomum Camphora)

विभिन्न नाम : सं०—कर्पूर घनसार। हिन्दी - गुजराती - मराठी—कपूर। बंगला—कर्पूर। अंग्रेजी—कैम्फर (Camphor)। लेटिन—सिनेमोमम् कैम्फरा (Cinnamomum Camphora)।

प्राप्ति स्थान : वोर्नियो, सुमात्रा, चीन, देहरादून, मैसूर जम्बू।

उपयोगी अंग : निर्यास (सत्व)। **दोषशमन** त्रिदोषहर।

रोगोपयोग : विसूचिका, हृदयशैथिल्य, क्लैव्य, दाह आदि।

मुख्य योग : कर्पूर रस, कर्पूरधारा, कर्पूरासव।

सुरक्षा—शुद्ध असली कर्पूर का संग्रह कर उसे सुरक्षित रक्खे और समय पर प्रयोग मे लावे। उसे वायु विशेषत उष्णता से बचाने के लिये, जिससे वह उड न सके, निम्नाङ्कित उपाय करे—

१ शीशी मे इसे रखकर भली भाति डाट लगा कर रक्खें जिससे बाहरी हवा एव उष्णता का इस पर प्रभाव न होने पावे अन्यथा इसके उड जाने की संभावना होगी।

२ शीशी मे कर्पूर के साथ कुछ कालीमिर्च, लोग या यव (जौ) के दाने रखकर बन्द रखने से उसकी अधिक सुरक्षा होती है।

प्रयोग विधि—यह पूर्व मे कहा जा चुका है कि इसका प्रमुख रस तिक्त है तथा गुण तीक्ष्ण है अत प्रयोग मे असुविधा होती है सुतरा इसका उपयोग दुग्ध किंवा शर्करा के साथ करना चाहिये जिससे माधुर्य के साथ तिक्त रस एव तीक्ष्ण गुण की न्यूनता हो जाने से सेवन करने मे आसानी रहती है।

उत्सर्ग—इसका उत्सर्ग त्वचा फुफ्फुस और वृक्क के द्वारा होता है।

दर्पनाशक—एलुवा, कस्तूरी, केसर।

प्रतिनिधि—सफेद चन्दन और वंशलोचन।

गुणधर्म—

कर्पूर शीतलो वृष्य चक्षुष्यो लेखनो लघु।
सुरभिर्मधुरस्तिक्त कफपित्तविषापह ॥
दाहतृष्णास्यवैरस्यमेदोदौर्गन्ध्यनाशन।
चीनसज्ञस्तु कर्पूर कफ क्षयकर स्मृत ॥
कुष्ठकण्डूवमिहरस्तथा तिक्तरसश्च स।

—भा० प्र० नि०।

कर्पूर कटुतिक्त च मधुर शिशिर विदु।
तृण्मेदोविषशोपघ्न चक्षुष्य मदकारकम् ॥

—ध० नि०।

चीनक' कटुकस्तिक्तो हृद्य शीत कफापह।
कण्ठदोषहरो मेध्य पाचन क्रिमिनाशन ॥

—रा० नि०।

कर्पूर शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघु।
कफदाहास्यवैरस्यमेद शोषविषापह ॥

—म० वि० नि०।

कर्पूरो लघुलेखनोऽथ मधुरो वृष्यो नमस्यो गुणै-
श्चक्षुष्य क्षिपति प्रदाहजनुषा पूर मुदूर रुजाम्।
वैरस्य विधुनोति कर्षति तृष मनाति मेदोगद-
पित्तश्लेष्मविष विषादयति सत्सौरभ्यत श्लाघ्यते॥

—सि० भे० म० मा०।

कर्पूर शीतलो हृद्यश्चक्षुष्यो लेखनोलघु।
सुरभिरितक्तकटुको दाहदौर्गन्ध्यच्छर्दिहृत् ॥

—प्रि० नि०।

चरक के "दशेमानि" मे कर्पूर का उल्लेख नही है। सूत्रस्थान के ५वे अध्याय मे लिखा है कि "धार्यमास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता। तथा कर्पूरनिर्यासम्।" सुश्रुत के सूत्रस्थान अध्याय ४६ मे कर्पूर के गुणोल्लेख पाये जाते है। यथा—"सतिक्त सुरभि शीत कर्पूरो तथुलेखन तृष्णायां मुख शोषे च वैरस्ये चापि पूजित।" वृद्ध वाग्भट "जातीलवङ्गकर्पूर" करके गुणोल्लेख करते है। वृन्द चक्र इत्यादि के सग्रह मे कही भी कास श्वास व ग्रहणी प्रमेह मे कर्पूर का प्रयोग नही दिखलाई देता, किन्तु रसचिकित्साकारो ने इन समस्त पीडाओ मे कर्पूर का उल्लेख किया है। भावप्रकाश मे वृष्य के लिए भी इसे स्वीकृत किया है। —प० श्री विश्वनाथ द्विवेदी।

यह शोथ, अर्बुदहर है। उचित मात्रा मे हृदय के कार्य की तत्परता, श्वासोच्छ्वास क्रिया, रक्तवहन क्रिया, और सम्भोग की इच्छा बढाता है। अधिक सेवन करने से कामावसादक है। गर्भाशय के लिए यह उत्तेजक है। आर्तव के रक्तस्राव को बढाता है। कर्पूर वेदनाहर है। चमडी, मूत्रपिण्ड, श्वासनलिका की खराबी मे कर्पूर काम करता है। यह मानसविकारहर है। कर्पूर खाने से उदर और गुदा मे प्राप्त कृमि नाश होते हैं। इससे व्रण धोना चाहिये। यह दन्तपीडाहर है। नस्य से नासास्राव होता है। अधिक भीतर की चोट लगने से उत्पन्न वात मे कर्पूर लगाना चाहिये। यह स्नायुशूलहर है। —प० श्री भागीरथ स्वामी।

कर्पूर त्वचा की रक्तवाहिनियो का अधिक विस्तार करता है। मस्तिष्क के लिये अधिक अवसादक है। कर्पूर वातनाशक, दीपक, कफनाशक, कासहर, ज्वरनाशक, स्वेदोत्पादक, कामोत्तेजक आदि अनेक गुणो वाला होता है। इसका उपयोग अतीसार, प्रवाहिका, सग्रहणी आदि मे दस्त को रोकने के लिए योग बनाने मे होता है। इसके अतिरिक्त तैल मे मिलाकर जीर्ण आमवात, मोच, चोट, मरोड, मासपेशियो की ऐठन, फुफ्फुसपाक एव फुफ्फुसावरण शोथ मे मालिश के लिये प्रयोग किया जाता है। —श्री इन्द्रदेव त्रिपाठी।

कर्पूर उत्तेजक, आक्षेपनिवारक, वायुनाशक और कफनि सारक है। कर्पूर में वातहर गुण के साथ सेन्द्रिय-विष नाशक (Antiseptics) गुण भी रहा है। अत अतीसार और विसूचिका मे दिया जाता है। इनके अतिरिक्त श्वासयन्त्र की श्लेष्मिककला मे से प्रदाहज रक्तस्राव होने पर कपूर का धूम विशेष उपकार दर्शाता है। एव वृद्ध मनुष्य आदि को चिरकारी काम होने पर कफघ्न ओषधि के साथ कपूर मिलाया जाता है। स्थानिक वातरोगो मे कपूर को तैल मे मिलाकर मालिश की जाती है। दातो मे कृमि होने पर कपूर अर्क का फाहा रखा जाता है। हिस्टीरिया, नष्टार्तव, कष्टार्तव और इतर आक्षेपयुक्त रोगो मे कपूर विशेष लाभदायक है। स्त्रियो के स्तन का दूध सुखाने मे कपूर महौषधि मानी गई है। —श्री कृष्णानन्द जी स्वामी।

नेत्र सक्रामक रोगो से सुरक्षा कर्पूर देता है। कर्पूर एण्टीबैक्टीरिया (जीवाणु रोधक) तथा एण्टीवाइरस (विषाणु रोधक) भी है। मैंने एक रोगी के समीप मुख ले जाकर उसके नेत्रो को बहुत पास से देखा—मेरे नेत्रो मे हल्की जलन तथा खुजली प्रारम्भ हुई। मैंने तुरन्त नेत्रो की भीतरी नीचे के पलको पर कपूर की डली दो तीन बार घुमाई, नेत्र ठीक हो गये। यह उपाय मेरे कहने से कई लोगो ने किया, किसी के नेत्रो पर रोग का आक्रमण नही हुआ। —श्री सुदर्शनसिंह "चक्र"

यह अल्प मात्रा मे सेवन करने से मेधा को बढाता है सुतरा मस्तिष्क दौर्बल्य एव तज्जन्य रोगो मे लाभप्रद है। वेदना स्थापन होने से वातरोगो मे लाभप्रद है। नाडी दौर्बल्य से उत्पन्न वेदना का सद्य बलाधान कर प्रशमन करता है। मद्य के समान यह प्रत्यावर्तित क्रियाओ को पहले उत्तेजित और बाद मे अवसादित करता है। इससे श्वसन और रक्तसचालन केन्द्र उत्तेजित हो जाते है।

शिरोऽर्ति हन्ति नस्येन स्फटिकीघनसारजम्।
चूर्णं तूर्णं रुणद्धीह रक्त नासास्रुत भृशम्॥

भैषज्यरत्नावली का यह प्रयोग इसकी वेदनास्थापन तथा रक्तावरोधक कार्मुकता को प्रकट करता है। प्रसिद्ध महासुगन्धितैल (च० द०) वातरोगो की प्रसिद्ध औषधि है तथा मेधावर्धक भी है।

महासुगन्धितैल हि विकारान् वातसम्भवान्।
क्षपयेज्जनयेत् पुष्टि कान्ति मेधा धृतिंधियम्॥

इस तैल का कपूर मुख्य घटक है। इसी प्रकार शिर शूलादिहर एक लेप है—

शुण्ठीलवङ्ग कर्पूरै सममर्जुन चन्दनम्।
व्यथानिग्रहलेपोऽय भक्षणाद् हृदयार्तिनुत्॥

प्रसिद्ध वेदनान्तक रस (र० त०) का भी कर्पूर मुख्य घटक है। इस रस की प्रशस्ति मे कहा है।

रसोऽयमम्भसा युक्तो विनिहन्ति विशेषत।
विनिधोत्थानसस्थाना वेदना विविधाश्रयाम्॥

अपतन्त्रक, कम्पवात आदि आक्षेप प्रधान वातव्याधि मे यह विशेष उपयोगी है। अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) एव आक्षेपक ज्वरो मे प्रसिद्ध "हिंगुकर्पूरादि वटी" (सि० यो० स०) १-१ गोली जटामास्यादि क्वाथ के अनुपान से सेवनीय है। अपतन्त्रक वातकफजन्य मानसिक रोग है। कपूर मानसिक एव शारीरिक रोगो का हरण करने वाला है सुतरा यह किंवा इसके द्वारा निर्मित योग (अपतन्त्रकादिवटी आदि) अपतन्त्रक को नष्ट करते है। जब प्रकुपित व्यानवायु नाडी मण्डल की स्थिरता को नष्ट करता है तो कम्पवात की उत्पत्ति होती है। यह स्वतन्त्र किंवा सान्निपाति ज्वरो मे उपद्रव स्वरूप भी हो जाता है। ऐसी स्थिति मे कपूर मिश्रित एक प्रयोग रसतरङ्गिणीकार लिखते हैं।

मनर स्त्रीदग्पन नपुरमनूनम् ।

हिंगुकर्पूरादि वटी प्रति चार घण्टो पर आर्द्रकस्वरस एव मधु के साथ सेवनीय है। नशीली औषधियो एव कष्टदायक द्रव्यो के परिणामस्वरूप श्वसनक्रिया अवसादित हो जाने पर कपूर के प्रयोग से श्वास की गति उत्तेजित हो जाती है और रोगी अकालमृत्यु से बच जाता है। कंठ रोगो मे कंठसुधारकवटी (र० त० सा०) उत्तम कार्य करती है। इसमे कपूर डाला जाता है। इन रोगो की कर्पूराद्य चूर्ण (यो० र०) भी उत्तम औषधि है। खदिरादिवटी भी कपूर के योग से अच्छा कार्य करती है।

यह मूत्रल होने से मूत्रकृच्छ्र मे लाभप्रद है। मूत्राघात मे इसका बाह्य प्रयोग निर्दिष्ट है।

मूत्रे विबन्धे कर्पूर चूर्ण लिंगे प्रवेशयेत् ।

--च० द० ।

मूत्रेन्द्रिय एव शुक्रार्तव उत्पादक इन्द्रिय पर शामक, बल्य एव रसायन असर पहुँचाने वाली प्रसिद्ध चन्द्रप्रभावटी (शा० स०) का प्राथमिक मुख्य घटक कपूर ही है। चन्द्रप्रभा कर्पूर का ही पर्याय है—

कर्पूरो यामिनीनाथो हिमाह्वो हिमवालुक. ।
चन्द्रप्रभः चन्द्रनामा सिताभ्रो घनसारक ॥

—महौषध निघण्टु ।

मालती कुसुमाकर रस (भै० र०) का मुख्य घटक कपूर है। इस रस की प्रशस्ति मे ग्रन्थकार कहता है।

रस सर्वप्रमेहांश्च बहुमूत्रादिक तथा ।
सोमरोगादीन् महन्ति भास्करस्तिमिर यथा ॥

स्वप्नमेह मे कपूर अतीव लाभप्रद है। कहा गया है—

चूर्ण कक्कोलज स्वप्नदोषमस शयम् ।
सकर्पूर शुद्धमापूरमपि स्यादेतदर्थं कृत् ॥

—भै० र० ।

साथ ही यह जन्तुघ्न होने से पूयमेह मे भी लाभप्रद है। सिद्ध योगसग्रह मे वर्णित चन्दनादि वटी ... भी उत्तम औषधि है। इसमे कर्पूर की विद्यमानता है। चन्द्रकला वटी (सि० यो० स०), वृ० वंगेश्वर रस (भै० र०), वृ० पूर्णचन्द्र रस (भै० र०) आदि कर्पूर ... योग भी ... रोगों मे चिकित्सको द्वारा ... किए जाते है।

यह सुगन्धित होने से मुख की दुर्गन्ध को दूर करता है। मुख मे रखने से पहले शैत्य और बाद मे उष्णता का अनुभव होता है। भगवान् चरक ने सूत्र स्थान अध्याय पाच मे कर्पूर हेतु "धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचि-सौगन्ध्यमिच्छता" कह कर इसकी उपादेयता प्रकट की है। भोजन करने पर कुपित श्लेष्मा के प्रतीकार हेतु भी इसकी सुगन्धित द्रव्य की उपादेयता है—

धूमेनापोह्यहृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः ।
पूगककोलकर्पूरलवङ्ग सुमन फलै ॥

—सु० सू० ४६/४८४।

यह तिक्त होने से मुखशोधक भी कहा गया है क्योकि तिक्त रस के लिये कहा है—

तिक्तो विशदयत्यास्य रसनप्रतिहति च ।

—अ० हृ० सू० १०।

तिक्तोरस आस्वाद्यमान आस्य वदन विशदयति निर्मल करोति । —चन्द्रनन्दन ।

यह मुखगत रक्तवहन, लालास्राव एव कफनि-सारण को बढा देता है सुतरा भोजन मे रुचि उत्पन्न होती है। कफ पित्तशामक होने से यह तृष्णा का भी शमन करता है। यह आमाशय के रक्तसंवहन को बढाने तथा आमाशयिक पाचक रस के स्राव की वृद्धि करता है, सुतरा यह दीपन-पाचन है। अनुलोमन होने से आध्मान-आटोपादि रोगो मे भी हितावह है। अन्त्र मे इसकी जन्तुघ्न एव आक्षेपहर क्रिया होती है। इन्ही गुणो के कारण यह अन्नवहस्रोतस के अग्निमाद्य, अति-सार, सग्रहणी, विसूचिका, छर्दि आदि रोगो मे लाभ-प्रद है। अरुचि हेतु कर्पूरादि चूर्ण (यो० र०), अग्नि-माद्य हेतु सर्वतोभद्र रस, (सि० यो० स०), अतिसार हेतु कर्पूर रस (सि० यो० स०), ग्रहणी हेतु सिन्दूर-भूषण, छर्दि हेतु रसादि चूर्ण (सि० यो० स०), गुल्म, कृमि, अर्श हेतु काकायन वटी (च० द०) और विसू-चिका हेतु कर्पूरासव (भै० र०) आदि प्रयोग कर्पूर की इस हेतु कार्मुकता प्रकट करने मे पर्याप्त है। इन्ही रोगो को नष्ट करने वाले कर्पूर के कतिपय प्रयोग निम्नाकित हैं—

विधुसुरभि सदम्भो वान्तिदम्भो विशिष्ट
समहिमरुचिराजीलेपन वा हृदीष्टम् ।

—सि० भै० मञ्जूषा ।

भो ! वैद्य ! विधुसुरभि=कर्पूरखण्डेन वासित पटपूत च सदम्भ=शुद्ध जल विशिष्ट वान्तिचम्, वान्ति द्यति=खण्डयति तादृशम् । यद्वा=हृदिआमाशये च हिमरुचि=कर्पूर, राजी=राईइति प्रसिद्धा तयो समानयोर्लेपनाभिष्टम् । लेपनमिद कोष्णयोर्वेधेय घटिकार्धादूर्ध्वं च न धार्यमन्यथा स्फोटोत्पत्ति सभवेत् ।

—श्री हनुमत्प्रसाद शास्त्री ।

दरद कृतकर्पूर मुस्तेन्द्रयवसयुतम् ।
सर्वातीसारशमन खाखसीक्षीरभावितम् ॥

—भै० र० ।

कर्पूरस्त्र्यूषण रास्ना लवणानि हरीतकी ।
सर्जि क्षार यव क्षार मातुलुङ्ग सम समम् ॥
चूर्णमुष्णाम्बुना पेय बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
श्लेष्मिक ग्रहणीदोष सवातञ्च विनाशयेत् ॥

—भै० र० ।

मसीरकर्पूररसाञ्जनाख्यै
पूर्णोदर वै पिचुमन्दसारै ।
मूल विरक्व पुटपाकरीत्या
दुर्नामदु ख दलयत्यवश्यम् ॥

—मञ्जूषा ।

चन्द्रानने चन्द्ररसाञ्जनाभ्या
सघोटितार्धव वटीयमाशु ।
रक्तार्शसा लोपकरोति योगो
नाथेन दत्तो दययात्र मह्यम् ॥

—स० साम्राज्यम् ।

विसूचिकाहर कर्पूरासव की प्रशस्ति मे ग्रन्थकार लिखते है—

विसूचिकाया परमौषध तत्
निहन्ति चान्यान् विविधान् विकारान् ॥

— भै० र० ।

अन्यान् विविधानौदरान् विकारास्तथा शीतप्रलेप-कादीन् सन्निपातिकाश्च विकारान शमयति ।

—श्री नरेन्द्रनाथ शास्त्री ।

यह अल्पमात्रा में देने से वृष्य (कामोत्तेजक) है किन्तु अधिक मात्रा में देने से कामवसादक है। मन्मथ रस (भै० र०) पूर्णचन्द्र रस (भै० र०) मदन-मञ्जरी वटी (र० त० सा०) और आनन्द वटी (आ० [illegible]) आदि [illegible] प्रसिद्ध प्रयोगों में कर्पूर डाला जाता है। शास्त्रों में अनेक कर्पूरयुक्त वृष्ययोग बताए गए हैं—

लोहि[illegible]सारेण [illegible] घृतम् ।
[illegible] च पीत्वा [illegible] वृषायते ॥

—र० र० स० उ० ३०।

कर्पूर [illegible] मधु [illegible] ।
मर्दयित्वा [illegible] यावत् तिष्ठति ।
[illegible] प्रयोजयेत् ।
मधुना [illegible] करोत्यलम् ॥
कर्पूर [illegible] सौभाग्य [illegible] ।
[illegible] नाम्ना मदन जीवन. ॥

—र० र० स० उ० २८।

[illegible] मधु [illegible] कर्पूर [illegible] नागरम् ।
[illegible] नारीहृदयवल्लभ ॥
[illegible] चापि [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] कर्पूर [illegible] सह ।
[illegible] ॥

—[illegible] ।

मायाफलैर्यद्वनसारपुष्पसारान्वितैर्लेपितमादरेण।
तद्वृद्धभावेऽपि वलीविमुक्त-
स्त्रीणावरागश्लथतानयाति॥

—रा० मा०।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों में अत्यधिक कामवासना, योनिकण्डू, कटिशूल, गर्भाशयिक पीड़ा, कष्टार्तव आदि व्याधियों में भी यह लाभदायक है। यह स्तन्यशमन होने से स्तनों पर इसका लेप दुग्ध को कम करता है।

यह त्वचा की रक्तवाहिनियों को प्रसारित करता है तथा स्वेदग्रन्थियों को उत्तेजित करता है एतावता यह स्वेदजनन और प्रशमन है। पित्तान्तक रस (रसामृत) दाह की उत्तम औषधि है, इस रस का कपूर मुख्य घटक द्रव्य है। भैषज्य रत्नावली में वर्णित हिमसागर तैल दाह की प्रशस्त औषधि है। कपूर, कमल और चन्दन का लेप दाह हरने में श्रेष्ठ है।

लिम्पन्नम्बुजचन्द्र चन्दन चयैरम्भ च गाङ्ग पिबम् ।
ताप घोरतर जयेद्धिमतर गङ्गाधरं च स्मरन् ॥

—भि० भै० मञ्जूषा।

उसी प्रकार स्वेदजनन होने से ज्वरघ्न, लेखन होने से मेदोरोगहर एवं विषघ्न होने से अनेक बाह्याभ्यन्तर विषों में लाभप्रद है। चक्षुष्य होने से नेत्ररोगों में भी हितावह है। एक प्रयोग है—

वटक्षीरेण [illegible] [illegible]कर्पूरज रज. ।
[illegible] हन्ति शुक्रचापि घनोन्नतम् ॥

—वङ्गसेन।

यह दन्तरोगों में भी उपयोगी है। इसके प्रयोग से विविध दन्त मञ्जन एवं अन्य दन्तरोग नाशक औषधि बनाई जाती है। [illegible]रोगजित् दशनसंस्कार चूर्ण (भै० र०) प्रसिद्ध है।

[illegible], [illegible] एवं [illegible] होने से यह [illegible], [illegible], विस्फोट, [illegible] आदि में भी लाभप्रद है।

[illegible] कर्पूर [illegible] ।
[illegible] ॥

—च० द०।

स्नायुकोपरि सम्बद्धा चन्द्रबाह्लीक चक्रिका।
समूलमुन्मूलयति स्नायुक नात्र सशय ॥
—सि० भै० मणि०।

सन् १९७३-७४ मे अनुसधानकेन्द्र उदयपुर ने कपूर चूर्ण को स्नायुक मे प्रशस्त पाया।

विविध चर्मरोगो की भी यह प्रशस्त औषधि है—

कर्पूरगन्धपाषाणपटीरै परिकल्पित।
लेपो वृषणकण्डूतिखण्डने खलु पण्डित ॥
(चर्मरोगान्तको लेप त्वक्कण्डूदाहदद्रुनुत्)
—सि० भै० मणिमाला।

मृतमगसुभागाभ्या गन्धचन्द्रौ विचूर्णयेत्।
तेन चैकावटी नारिकेल तैले विघोटयेत् ॥
तस्यावलेपत पामा दशाहान्नश्यति ध्रुवम्।
शतधौतघृतेप्येव फल कुर्याद्वरानने ॥
—र० साम्राज्यम्।

गुडूचीनिम्बजक्वाथै खदिरेन्द्रयवाम्बुना।
कर्पूरनिशुगन्धिभ्या युक्त सूत द्विगुञ्जकम् ॥
विस्फोट त्वरित हन्याद् वायुर्जलधरानिव।
—भै० र०।

परिलेह नामककर्णपालीरोगे—

बहुशो गोमयै तप्तै स्वेदित परिलेहितम्।
घनसारै समालिम्पेदजामूत्रेण कल्पितै ॥
—च० द०।

लोमशातनार्थ—

कर्पूराग्निणख चूर्णयवक्षारमन शिलै।
तालयुक्तै पचेत्तैल लोमशातनमुत्तमम् ॥
—भै० र०।

कर्पूरभल्लातक शखचूर्ण क्षारो यवानाञ्च मन शिलाय।
तैल सुपक्व हरितालमिश्र लोमानि निर्मूलयति क्षणेन ॥
—भै० र०।

सिध्मे त्वग् रोगसिद्धये—

मलयोद्भवकर्पूरकल्पितो लेपसत्तम।
विभूति रहमा हन्ति परा काष्ठा गतामपि ॥
—सि० भै० मणि०।

कपूर के प्रसंग मे कपूरधारा (अमृतधारा) का वर्णन नही करने से यह वर्णन ही अधूरा रहेगा। आज बहुत मे व्यवसायियो के द्वारा निर्मित यह अमृतधारा, पीयूपधारा, कर्पूरधारा, अमृतसिन्धु, सुधासिन्धु, अमृतविन्दु, जीवनविन्दु आदि के नामो से उपलब्ध होती है। मंजूषाकार इसके विषय मे कहते हैं—

यवानीपुदीनाख्यसत्त्वेन्दुसारा-
चरीर्ति किं किं न पीयूषधारा।
पराारोग्यदा पङ्क्तिविन्दुप्रचारा-
दियं सेव्यतानूनमत्रापि वारा॥
—सि० भै० मञ्जूषा ३।

यवानीसत्त्वम्—"अजवायन का सत्त" इति प्रसिद्धम्, पुदीनाख्यसत्वम्—"पोदीने का सत्त" "पिपरमेण्ट" इत्यादि प्रसिद्धम्, इन्दु—कर्पूर—एतानि त्रीणि सारभूतानि यत्र तादृशी पीयूप धारा किं किं न चरीकर्ति, अपि तु विपूचीवमनातिसार विषदाहहल्लासकास श्वास ज्वरादीना प्रायोऽनेकेषा रोगाणा नाशनरूप सर्वमेव कार्य करोत्यर्थ। —कुञ्चिका।

यूनानी मतानुसार—कपूर की तबियत तीसरे दर्जे की सर्द और खुश्क है। कुछ के मत से इसमे कुछ गर्मी की तासीर भी होती है। यह दिल और दिमाग मे बल देने वाला और क्षय, जीर्णज्वर, निमोनियां, अतीसार, फ़ेफडो के जख्म को नष्ट करने वाला है। जिगर गुर्दो के शोथ को यह दूर करता है। चर्मरोगो मे भी यह अत्यन्त लाभप्रद है। जहरीले और फैलने वाले फोडे-फुसियो को नष्ट करने मे यह श्रेष्ठ है। इसमे कृमिनाशक शक्ति का महान् गुण है। यह नाक से बहते खून को रोकता है। हैजे के रोग को नष्ट करने मे इसका अत्यधिक महत्व है। यह उत्तेजक है किन्तु बाद मे अधिक मात्रा मे अवसादक है। अधिक मात्रा नपुसकता को उत्पन्न करती है। इब्नमसूर ने लिखा है कि मेरे एक दोस्त ने चार माशे कपूर एक साथ खा लिया, जिससे उसकी पुरुषार्थ शक्ति कम हो गई। दूसरे दिन भी इसी प्रकार चार माशे कपूर इसने खाया जिससे उसकी पुरुषार्थ शक्ति बिलकुल ही नष्ट हो गई। तीसरे दिन खाने से उसका मेदा (आमाशय) ही खराब हो गया और हाजमा शक्ति कमजोर हो गई। मुहीते आजम मे भी

इसकी अधिक मात्रा को नामर्दी उत्पन्न करने वाली कहा है।

हकीम गिलानी के मतानुसार भीमसेनीकपूर बहुत गरम है यहा तक कि उसकी गरमी तीसरे दर्जे मे भी बढी हुई रहती है। कुछ लोगो की राय है कि जब तक कपूर मेदे मे रहता है तब तक सर्दी करता है और जब वह जिगर की तरफ जाता है तब गरम हो जाता है।

इसका पहला असर फैलने वाला और स्फूर्ति पैदा करने वाला होता है। दूसरा असर यह होता है कि यह खून मे मिलकर सब अङ्गो की बढी और घटी हुई कुव्वत को सुव्यवस्थित करता है। यह धनुर्वात मे भी लाभदायक है। इसके अतिरिक्त दमा, कुक्कुर खासी, दिल की धडकन, दिल का फूल जाना, पेशाब की रुकावट नही रहना, औरतो का भूतोन्माद, गठिया, जोडो का दर्द, बदन का सडना आदि रोगो मे भी यह बडा लाभ पहुँचाता है। इसकी ज्यादा मात्रा बेहोश करने वाले तेज असर जहर की तरह होती है।

आधुनिक मतानुसार—डा० खोरी के मतानुसार कपूर बाह्य प्रयोग मे त्वचा पर लौहित्योत्पादक एव शोथ व अर्बुद को लोप कराने का साधक है। समुचित मात्रा मे इसके सेवन से रक्तमवहन और श्वासोच्छ्वास की क्रिया मे वृद्धि होती है। कपूर स्त्री सम्भोग की स्पृहा कराता है किन्तु अधिक काल तक सेवन करने से जननेन्द्रिय मे अवसाद उत्पन्न कर देता है। इससे गर्भाशय को भी उत्तेजना प्राप्त होती है और आर्तव स्राव मे वृद्धि होती है। कपूर दर्द को भी मिटाता है। सुजाक के रोगी को जब शिश्न मे आकर्षणवत् अत्यन्त पीडा होती है और शिश्न की अधोवक्रता पैदा होती है उस काल मे कपूर आराम पहुँचाता है। प्रसवोपरान्त मनोविकार होने पर कपूर अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे दिया जाना चाहिये। क्रिमिमारणार्थ कपूर को पानी मे मिलाकर पिचकारी देनी चाहिये। कपूर का नस्य नासास्राव मे लाभप्रद है। घृष्ट, पिञ्चित व सन्धिगत वायु मे एव पेशियो के आक्षेप से होने वाले दर्द मे जैतून का तैल ४ भाग मे कपूर १ भाग मिलाकर मर्दन करना चाहिये।

डाक्टर देसाई के मतानुसार कपूर वायुनाशक, दीपन, पीपनाशक, रक्त मे श्वेतकणो को बढाने वाला, कफनाशक, खासी को मिटाने वाला, पसीना लाने वाला, ज्वरघ्न, दाह को मिटाने वाला, थोडी मात्रा मे कामोद्दीपक और अधिक मात्रा मे कामवासना को नष्ट करने वाला होता है। यह स्तनो मे दूध की कमी करता है, मस्तिष्क मज्जा तन्तुओ को उत्तेजना देने वाला है। हृदय के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तेजक है और रक्त वाहिनियो का सकोचक है। साधारण मात्रा मे सेवन मे यह समस्त शरीर मे उत्तेजना उत्पन्न करता है और बाद मे अवसाद उत्पन्न करता है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार कपूर उत्तेजक, [illegible]दायक और पेट के अफरे को दूर करने वाला है।

वर्डवुड के मतानुसार यह आक्षेप निवारक, अपशामक, स्नायुमडल को शान्ति पहुँचाने वाला, हृदय को उत्तेजना देना वाला, पेट के अफरे को दूर करने वाला व ज्वर को हटाने वाला है। बाह्य प्रयोग करने पर यह वेदनाहर औषधि का काम करता है।

डा० रामसुशीलसिंह ने पाश्चात्य द्रव्यगुणविज्ञान मे कपूर के गुणकर्म तथा प्रयोग का वर्णन इस प्रकार किया है।

त्वचा पर स्थानिक प्रयोग से यह रक्तिमोत्पादक, प्रतिक्षोभक तथा स्थानिक वेदनाहर प्रभाव करता है। इसके अतिरिक्त यह साधारण जीवाणु वृद्धिरोधक (Antiseptic) भी होता है। प्रतिक्षोभक एव स्थानिक वेदनाहर होने के कारण इसका उपयोग मालिश की दवाओ मे पेशीशूल, मोच, आमवात व्याधियो मे किया जाता है। फुफ्फुसावरण शोथ (Pleurisy) एव श्वासनलिका शोथ (Bronchitis) से होने वाले पार्श्वशूल मे कडवे तैल मे या तारपीन के तैल मे मिलाकर मालिश करने से सूजन एव दर्द का शमन होता है। सत्तपिपरमैण्ट (मेथाल) या क्लोरल हाइड्रेट के साथ कपूर मिलाने से द्रव बन जाता है। यही अमृतधारा है। इसका उपयोग शिर शूल मे मस्तक पर लगाने के लिए तथा दन्तशूल मे किया जाता है। अनेक दन्तमजनो मे भी कपूर मिलाया जाता है।

मुख द्वारा सेवन किये जाने पर भी अन्ननलिका पर रक्तोत्पादक प्रभाव होता है। अल्प मात्रा मे प्रयुक्त होने पर मुख मे तीता स्वाद एवं जलन सी अनुभव होती है और आमाशय मे उष्णता की अनुभूति होती है। यह आमाशयिक स्राव एव पुर सरणगति मे वृद्धि करता है। यह कपूर दीपन एवं वातानुलोमन होता है। किन्तु अधिक मात्रा मे सेवन किये जाने पर आमाशयान्त्र प्रणाली मे प्रदाह करता है। जिसके परिणामस्वरूप वमन तथा अतीसार होने लगते हैं। आमाशयगत उत्क्लेश कारक प्रभाव के कारण प्रत्यक्षित रूप से यह श्वासप्रणालिकाओं के स्राव मे वृद्धि करता है। अत यह कफनिस्सारक (Expectorant) भी होता है। अन्य उत्पत्र तैलो की भाति यह प्रत्याक्षिप्तरूप से श्वसन को भी उत्तेजित करता है, इन्जेक्शन के रूप मे प्रयुक्त होने पर वह क्रिया और भी तीव्र हो जाती है। अर्ककपूर (कैम्फर वाटर) का उपयोग घरेलू चिकित्सा मे उदर के आध्मान एव शूल (Flatulence and colic) मे किया जाता है। स्प्रिट कैम्फर का प्रयोग हिस्टीरिया (योषापस्मार) रोग मे उत्तेजक प्रभाव के लिए करते हैं। गर्मियों मे अजीर्ण एव वायुविकृति से होने वाले अतीसार मे पल्वक्रिटाकम् ओपियो के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

आमाशय पर स्थानिक क्रिया से यह प्रत्याक्षिप्त रूप से हृदय पर उत्तेजक प्रभाव करता है। अतएव आशुकारी हृदयोत्तेजक (Diffusible Stimulant) के रूप मे इसका उपयोग अनेक ऐसी आत्ययिक अवस्थाओ मे किया जाता है, जब हृदय की खराबी न होने पर भी हृदय की गति के अवरोध की आशका होती है। कपूर त्वचा की रक्तवाहिनियो को विस्फारित करता है, और इसके सेवन से अल्कोहल की भाति शरीर मे उष्णता का अनुभव होता है। इसके इस गुण का उपयोग सर्दी लगने मे किया जाता है। उपर्युक्त दोनो प्रकार के गुण आयुर्वेदीय कस्तूरीभैरव योग के सेवन से उपलब्ध हो सकते हैं। त्वचागत रक्तवाहिनियो के विस्फारित होने से रक्तभार (Blood pressure) गिर जाता है। इस प्रकार कपूर साधारण स्वेदल (Diaphoretic) एव सन्तापहर (Antipyretic) भी होता है। अन्य उत्पत् तैलो की भाति कपूर के प्रयोग से भी साधारण श्वेतकायाणूत्कर्ष (Leucocytosis) होता है। पहले न्यूमोनिया मे हृदय मे हृदय को बल देने के लिए कपूर का जैतून के तेल मे बनाया हुआ विलयन अधस्त्वक् सूचिकाभरण द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। किन्तु अब उसका स्थान इन्ही औषधियो ने ले लिया है।

कपूर श्वसन पर उत्तेजक प्रभाव करता है तथा साथ ही श्वासनलिकाओ के स्राव को बढ़ाकर कफनिस्सारक प्रभाव करता है। अतएव खासी के निवारण के लिए अनेक कफमिक्सचर मे मिलाकर ब्राकाइटिस एवं ब्राको न्युमोनिया आदि व्याधियो मे प्रयुक्त किया जाता है। एतदर्थं कम्फर के टिंक्चर का व्यवहार करते है। उग्र कास मे कम्फोरेटेड टिंक्चर आव ओपियम् का प्रयोग करने से कास का भी शमन होता है तथा रोगी को निद्रा भी आ जाती है। मस्तिष्क एव सुषुम्ना शीर्षगत केन्द्र मस्तिष्कगत क्रिया के कारण कपूर अल्कोहल की भाति उत्तेजक (Excitant) तथा उल्लास कारक (Expilarant) होता है। किन्तु मात्राधिक्य के कारण प्रलाप, शिरोभ्रम, कम्प एव आक्षेप आदि उपद्रव पैदा करता है।

अल्पमात्रा मे कपूर सुषुम्ना शीर्षगत केन्द्रो पर उत्तेजक प्रभाव करता है, जिससे श्वसन मे तीव्रता तथा रक्तभार मे क्षणिक वृद्धि होती है, किन्तु अधिक मात्रा मे प्रयुक्त होने से इसके ठीक विपरीत प्रभाव होकर उक्त केन्द्रो पर क्रियाघातक प्रभाव (Paralytic effect) होता है। मृत्यु श्वसन भेद (Respiratory Failure) के कारण होती है।

कर्पूर का विष प्रभाव—शरीर पर भिन्न-भिन्न विषो की जो क्रियायें होती हैं उनके अनुसार उनका वर्गीकरण किया गया है—

१ दाहक विष (Corrosives)।
२ क्षोभक विष (Irritant poisons)।
३ वातनाड़ी प्रभावक (Neurotics)।

वातनाडी प्रभावक के मस्तिष्कप्रभावक, सुषुम्ना-प्रभावक; हृत्प्रभावक, फुफ्फुसप्रभावक और प्रान्तीयनाडी प्रभावक आदि भेद है। इनमे मस्तिष्कप्रभावक विषो के मुख्यतया तीन भेद किये गये हैं—निद्रालु, मादक और प्रलापक। इनमे प्रलापक विषो मे धतूरा, वेलाडोना, भांग, खुरासानी अजवायन आदि। कपूर की गणना भी प्रलापक विषो के अन्तर्गत है। शरीर मे इसकी अधिक मात्रा पहुँचने से यह विष लक्षण उत्पन्न कर देता है। ये विष लक्षण दो प्रकार के होते है।

१ तीव्र विष लक्षण—सहसा अधिक मात्रा मे कपूर सेवन करने से तीव्र विषलक्षण उत्पन्न होते हैं ये अधिक घातक होते हैं। अधिक मात्रा से उदरशूल, हृल्लास, छर्दि, भ्रम, प्रलाप, आक्षेप, दृष्टिमांद्य, नीलिमा, पक्षाघात, अवसाद, मूत्रावरोध, सज्ञानाश एव मुखशोथ होता है। अन्ततोगत्वा सन्यास होकर मृत्यु हो जाती है। यद्यपि यह हृल्लास, वमन और अतीसार का रोधक है परन्तु अतिमात्रा मे सेवन करने पर कभी-कभी वमन, अतीसार भी कर देता है। इससे रक्तातीसार भी हो जाता है। इसकी अतिमात्रा से निश्वास, मूत्र, वमन और मल मे भी कपूर की गन्ध आने लगती है।

२ जीर्ण विष लक्षण—अधिक दिनो तक सेवन करते रहने से तन्द्रा, दौर्बल्य, रक्ताल्पता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

शवपरीक्षा—क्वचित् रोगियो की मृत्यु हो जाने पर मृत की आखें विसूचिका से मृत के समान धसी रहती है। समस्त महास्रोत मे लाल रेखाये दिखलाई देती हैं। क्षुद्रान्त्र मे कोई विशेष विकृति नही पाई जाती। बृहदन्त्र मे मल तथा कपूर उपलब्ध होता है।

चिकित्सा—१ विष लक्षणो के उत्पन्न होते ही आमाशय प्रक्षालन तथा वामक औषधियो से आमाशय स्थित कपूर को निकालना चाहिये। यदि देर हो गई हो तो विरेचन देना चाहिये। यदि रोगी को अतीसार हो रहा हो तो भी विरेचन औषधि का प्रयोग किया जाना चाहिये। विष प्रभाव किंवा अतिरेचन से कफान्त विरेचन के बाद यदि रक्तातीसार हो तो अवरोधक औषधि देकर अतीसार रोकना श्रेयस्कर है।

२ दाह को शान्त करने के लिए यद्यपि शीतवीर्य औषधि का प्रयोग करना चाहिये किन्तु वह औषधि हृद्य अवश्य होनी चाहिये। उस हेतु प्रवाल उत्तम द्रव्य है। इसके साथ उष्ण एव उत्तेजक द्रव्यो का मिश्रण आवश्यक है। इन द्रव्यो मे कुचीलु, कस्तूरी, अम्बर, जुदवदेस्तर मुख्य है। प्रवालभस्म के साथ मकरध्वज का उपयोग हितावह है। शरीर को उष्ण रखने के उपाय करते रहने चाहिये।

३ पृथक् पृथक् उपद्रवो की भी समुचित चिकित्सा करनी आवश्यक है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग

(१) प्रतिश्याय—कपूर की पोटली बनाकर बार-बार सूघते रहने मे प्रतिश्याय के लक्षण शान्त होते हैं।

(२) विचर्चिका—यशदभस्म किंवा यशदपुष्प (जिंक आक्साइड) को कपूर तैल मे मिलाकर लगावें।

(३) दाह—कपूर, कमल और चन्दन का लेप करे।

(४) सिध्मकुष्ठ—चन्दन के साथ कपूर घिसकर लेप करे।

(५) छर्दि—कपूर और राजिका (राई) को जल मे पीसकर कुछ गरम कर हृदय, आमाशय के स्थान पर लेप कर दे। लेप आधा घण्टे से ज्यादा न रखें अन्यथा स्फोट हो जायेंगे।

(६) शिर:शूल—कपूर और श्वेतचन्दन को तुलसी-पत्रस्वरस मे घिसकर ललाट पर लगावे।

(७) शीतपित्त—कपूर को नारियल के तैल मे मिलाकर मालिश करे।

(८) सद्योव्रण—कपूर पीसकर घृत मिलाकर व्रण मे भर देने से वह पकता नही है।

(९) दुग्धवृद्धि—बालक की मृत्यु पर जब स्तनों मे अत्यधिक दुग्ध वृद्धि हो तो उसे कम करने के लिए स्तनो पर कपूर का लेप करे।

(१०) दन्तशूल—[क] अफीम १ भाग, हीग २ भाग और कपूर ४ भाग पीसकर कृमिजन्य दन्तकोटर मे भरने से दन्तशूल का शमन होता है।

[ख] कपूर, हीग, बच और दालचीनी के चूर्ण को पूर्ववत् रखे।

[ग] कपूर, हीग, बच और विडङ्ग का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर रखने से भी दन्तशूल शान्त होता है।

(११) ध्वजभङ्ग—[क] भैस के घृत मे कपूर मिलाकर शिश्न पर मले।

[ख] कपूर, माषपर्णी और मधु का लेप करे।

[ग] कपूर, अकरकरा सुहागा और मधु का लेप करें।

[घ] कपूर, सुहागा, पीपल, जमीकन्द का रस, धतूरे का रस, अगस्त का रज, शहद और घृत को समान भाग लेकर घोटकर लेप करने से शिश्न की वृद्धि होती है।

[ङ] कपूर, सुहागा और मधु मिलाकर शिश्न पर लेप कर स्त्री सहवास करने से स्त्री तत्काल द्रवित हो जाती है।

[च] कपूर, मुलहठी, छोटी पीपल, सोंठ को पाटला के रस एव मधु मे घोटकर शिश्न पर लेप कर सहवास करने से स्तम्भन होता है।

[छ] कपूर, केशर, कूठ पीपल, गोरोचन और मधु के मिश्रण का शिश्न पर लेप कर सहवास करने से भी स्तम्भन होता है।

[ज] कपूर, सुहागा, पारद और मधु का शिश्न पर लेप करने से भी स्तम्भन होता है।

(१२) महायोनि—[क] कपूर और माजूफल को समानभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर मधु मे सानकर बेर तुल्य गोली बना ले। इस गोली को सहवास के चार घण्टे पूर्व रखे और सहवास के समय बाहर निकाल दे। इसके उपयोग से योनि का सकोच होता है। गोली के स्थान पर सूक्ष्म चूर्ण को भी योनि मे रखा जा सकता है।

[ख] कपूर, माजूफल के चूर्ण के साथ फिटकरी का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर भी पूर्ववत् उपयोग मे लाया जा सकता है।

[ग] कपूर, कस्तूरी, केसर, नख, लाख, श्वेतचन्दन, अगर, कूठ, और मधु को मिलाकर योनि को इससे धूपित करने से योनिगत दुर्गन्ध का शमन होकर वह कठोर होती है।

(१३) मूत्रकृच्छ्र—जरासा कपूर जलाकर शिश्न छिद्र मे रखे।

(१४) पार्श्वशूल—कपूर ३ ग्राम, अफीम १५ ग्राम और तारपीन तैल १२ ग्राम मिलाकर मालिस कर ऊपर से धतूरे के पत्तो पर तैल लगाकर उन्हे गर्म करके बाधने से शूल मिटता है।

(१५) नेत्ररोग—[क] लडके वाली स्त्री के दुग्ध मे भीमसेनी कपूर को पीसकर आखो मे आंजने से मोतियाबिन्द मे लाभ होता है।

[ख] वट दुग्ध मे कपूर को घोटकर लगाने से फूला (शुक्र) मिट जाता है।

(१६) आमवात—[क] कपूर को तारपीन के तैल मे मिलाकर अभ्यङ्ग करे।

[ख] कपूर, अफीम और राई के तैल का अभ्यङ्ग करें।

(१७) स्नायुक—[क] कपूर गोघृत मे मिलाकर लगावे।

[ख] कपूर, नरकचूर समानभाग लेकर पीसकर इनके बराबर गुड मिलाकर कपडे पर मलहम की तरह लेप कर दे, वस्त्र के बीच मे एक छेद रखें और नारु पर चिपका द, ऐसा २-३ दिन तक करें।

(१८) रक्तपित्त—[क] कपूर को गुलाबजल मे पीसकर नाक मे टपकावे।

[ख] तिल तैल को गर्म कर उसमे कपूर मिलाकर नाक मे टपकाने से ऊर्ध्वग रक्तपित्त का शमन होता है।

(१९) उदरशूल—कपूर, जायफल और हल्दी को समानभाग लेकर पानी मे पीसकर पेट पर लेप करें।

(२०) पामा—[क] चूना १ भाग, हरिद्रा १ भाग और २ भाग कपूर लेकर इन्हे नारियल के तैल मे मिलाकर अभ्यङ्ग करने से पामा का शीघ्र विनाश होता है।

[ख] कपूर, गन्धक को चन्दन के तैल मे मिलाकर लेप करें।

[ग] कपूर, चिरौजी को पीसकर नारियल के तैल मे मिलाकर मालिश करें।

[घ] कपूर, करुन्दा और नीबू स्वरस को पीसकर इस मिश्रण का लेप करें।

[ङ] कपूर, सुहागा और अफीम को गोमूत्र या गुलाबजल मे घोटकर मलमल का कपडा भिगोकर खुजली (पामा) के स्थान पर रखने से यह रोग शान्त होता है। इससे पहले गर्म जल मे फिटकरी और सुहागा डालकर प्रक्षालन करें।

(२१) वृश्चिक दंश—कपूर को सिरके मे मिलाकर दंश स्थान पर लेप करें।

आभ्यन्तर प्रयोग—

१. अर्श—१२० मि० ग्रा० कपूर और इसके समान रसौत लेकर ठण्डे पानी से घोटकर सेवन करने से अर्श (रक्तार्श) मे लाभ होता है। पूर्ण लाभ हेतु ८-१० दिनो तक सेवन करना चाहिए।

२. आमवात—२४० मि० ग्रा० कपूर और ६० मि० ग्रा० अफीम को सोठ के फाण्ट से सेवन करें।

३. कामोन्माद—कपूर की अधिक मात्रा को कदली स्वरस के साथ सेवन करे।

४. अजीर्ण—कपूर २५० मि० ग्रा० सेंधानमक १२ ग्राम और सेकी हुई अजवायन ६० ग्राम का चूर्ण बनाकर ४ ग्राम प्रतिदिन सेवन करे।

५. मुख की दुर्गन्ध—[क] कपूर, लोग, तेजपत्र, नागकेशर, कस्तूरी को बारीक पीस अर्क केवडा मे पीसकर गोलिया बनाकर मुख मे धारण करने से मुख की दुर्गन्ध दूर होती है।

[ख]—कपूर, कवाबचीनी और टकणक्षार की गोली बनाकर मुख मे धारण करने से भी दुर्गन्ध मिटती है।

६. हिक्का—कपूर १२० मि० ग्रा०, पीपरमेन्ट, १२० मि० ग्रा०, और कस्तूरी ६० मि० ग्राम को मधु मे मिलाकर चटाने से भयकर हिक्का नष्ट होती है। आत्ययिक अवस्था मे ६० मि० ग्रा० मकरध्वज भी मिला सकते हैं।

७. मक्कल शूल—कपूर को पान मे रखकर खिलादे।

८. कष्टार्तव—२५०-५०० मि० ग्रा० कपूर, कालाजीरा १ ग्राम को मधु मे मिलाकर २-३ बार चटावें।

९. प्रसवोन्माद—कपूर को शखपुष्पीस्वरस के अनुपान से सेवन करावे।

१०. मुखपाक—कपूर और मिश्री को पीसकर मुख मे रखे।

११. पित्तज्वर—कपूर एक भाग, कत्था ४ भाग को पीसकर १५०-५०० मि० ग्राम जल किंवा गुलकंद के साथ सेवन करे।

१२ स्वप्नमेह—[क] कपूर ५० ग्राम, त्रिफला ५० ग्राम, बचमीठी १० ग्राम सबको पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बनाले। रात्रि मे सोते समय ३ ग्राम चूर्ण ठण्डे जल से सेवन करे।

[ख] कपूर १ ग्राम, अफीम २ ग्राम, शीतलचीनी ६ ग्राम, हरिद्रा १२ ग्राम, मिश्री २४ ग्राम लेकर चूर्ण बनाले। रात्रि मे सोते समय ठण्डे जल से २ ग्राम चूर्ण का सेवन करें।

१३. श्वास—कपूर और हीग को मिलाकर गोली बनाकर २-२ घन्टे के अन्तर से श्वासरोगी सेवन करे।

१४ मल्लविष—कपूर १ ग्राम को ३०-४० मि० लि० गुलाबजल मे मिलाकर पीने से सखिया खाने से उत्पन्न विष का शमन होता है।

१५. स्नायुक—कपूर को गोघृत मे मिलाकर सेवन करें।

१६. रक्तप्रदर—कपूर और लालचन्दन को घोटकर पीवे।

१७. प्रसबकष्ट—१२५ मि० ग्राम कपूर को केले के फल पर बुरक कर खिलाने से प्रसव शीघ्र होता है।

१८. सन्निपात—कपूर १२० मि० ग्राम, हिंगु (भर्जित) १२० मि० ग्रा० त्रिकटु चूर्ण १ ग्राम और आर्द्रक स्वरस १०-१२ मि० लि० का मिश्रण कर सेवन करे।

१९. शीघ्रपतन—(क) भीमसेनी कपूर, कस्तूरी १-१ ग्राम, अफीम, जावित्री ४-४ ग्राम को नागरबेल के पान के रस मे घोटकर १२०-१२० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। १ गोली मिश्रीयुक्त दुग्ध के साथ सेवन कर।

(ख) भीमसेनी कपूर, खुरासानी अजवाइन, जायफल १-१ ग्राम, समुद्रफेन १२ नग, अफीम ५०० मि० ग्रा० को पीसकर चने बराबर गोलिया बनाले। १-२ गोली मधु से सेवन करे।

२०. हृदयरोग—(क) कपूर को अर्जुनारिष्ट से सेवन करें।

(ख) कपूर को नागरबेल के पान मे रखकर सेवन करें।

२१. कास—वयोवृद्ध मनुष्य श्वासप्रणालियो के प्रदाह से कास का प्रकोप हो जाता है, ऐसी स्थिति मे कपूर को सितोपलादि चूर्ण के साथ देने से उत्तम लाभ होता है।

२२. कुपीलुविष—कुचिला की अधिक मात्रा सेवन करने से उत्पन्न विष लक्षणो की शान्ति हेतु कपूर का प्रयोग हितावह है।

२३. आन्त्रिक ज्वर—इस रोग मे नाडी क्षीण और तेज, जिह्वा शुष्क एव प्रलाप आदि वातसस्थान के अवसादन के लक्षण प्रतीत होने पर कपूर के साथ लौग तथा कस्तूरी देने से शीघ्र लाभ दृष्टिगोचर होने लगता है। यदि जिह्वा लाल हो तथा उदर मे वेदना सह अतिसार हो, तो कपूर का प्रयोग नही करना चाहिये। बेहोशी की स्थिति मे उक्त योग को अदरख के रस किंवा मधु के साथ मिलाकर चटाना लाभप्रद होता है।

२४. पूयमेह—इस रोग मे शिश्न दृढ हो जाने पर उसमे वेदना होती है, ऐसी स्थिति मे कपूर २५० मि० ग्रा० अफीम ३० मि० ग्रा० के साथ मिश्रण कर सेवन करने से लाभ होता है।

२५. मेदोरोग—कपूर को अग्निमथकषाय के साथ कुछ दिन सेवन करना चाहिये।

२६. अग्निमांद्य—कपूर १२५ मि० ग्रा०, शख भस्म २५० मि० ग्रा०, सैन्धव लवण ५०० मि० ग्रा० को आर्द्रक स्वरस ३ ग्राम एव निम्बुक स्वरस ५ ग्राम मे मिलाकर सेवन करने से अग्निमाद्य का शीघ्र ही शमन हो जाता है।

२७. अतिसार—कपूर १२५ मि० ग्रा०, जातीफल १२५ मि० ग्रा०, भृष्टजीरक १ ग्राम, भृष्ट शतपुष्पा १ ग्राम के चूर्ण को दाडिम स्वरस किंवा मधु के साथ सेवन करे।

२८. आध्मान—कपूर १२५ मि० ग्रा०, शुण्ठी १ ग्राम, सैन्धव ५०० मि० ग्रा०, हरीतकी २ ग्राम को गुलकन्द किंवा उष्ण जल के साथ सेवन करें।

२९. अपतन्त्रक—कपूर २५० मि० ग्रा०, जटामासी, नेत्रवाला, रक्तचन्दन १-१ ग्राम के चूर्ण को ब्राह्मी क्वाथ के साथ सेवन न करना चाहिये।

३०. न्यून रक्तदाब—कपूर १२५ मि० ग्रा०, शु० कुचला १२५ मि० ग्रा०, असगन्ध, पिप्पली १-१ ग्राम चूर्ण को मधु किंवा दुग्ध के साथ सेवन करे।

पेटेण्ट प्रयोगो मे कपूर—

शुद्ध कपूर और जैतून के तेल के द्वारा निर्मित बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक यूनानी फार्मेस्यूटिकल झासी का "स्पे० कालरा" नामक इञ्जेक्शन विसूचिका की उत्तम औषधि है। यह वमन-विरेचन केन्द्रो को अवसादित करता है। जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी झासी के "कपूर", "वेल" और "विसूचिकान्तक" इञ्जेक्शन भी कपूर निर्मित है। ये मन्दाग्नि, विसूचिका, अतिसार आदि मे उपयोगी हैं। कपूर एव कस्तूरी के क्षारो से बनाया गया 'गन्धकपूर' इञ्जेक्शन की विसूचिका एव

उसके उपद्रवो मे उत्तम लाभ करता है। इस का ... फार्मा (देहरादून) निर्माण करता है।

आर्य औषधि फार्मा० इन्दौर के ... "क्लोरीमीन" और मूत्रल अश्मरी हर "गोनान्टी" टिकियो का भी कपूर घटक द्रव्य है। चरक फार्मा० के मधुमेहहर "जे० क० २२" टिकिया एव "विगराल" टिकिया मे मे भी कपूर डाला जाता है। देशरक्षक औषधालय द्वारा निर्मित "काफाल लाजेन्जेज" शुष्क कास, स्वरभग तथा मुखपाक की उत्तम चूसने की गोलियो मे भी कपूर होता है। अतिसार, सग्रहणी, अजीर्ण आदि रोगो प लाभप्रद लक्ष्मी कैमीकल इन्ड० मथुरा द्वारा निर्मित "एण्ट्रा-मिक्स," की गोलिया है। ... कुटज, कपूर, हीग आदि हैं। ये गोलिया सादा, कुर्चो और फोट के नाम से तीन प्रकार की आती हैं।

दन्त रोगो मे कपूर की उपयोगिता प्रसिद्ध है। प्रायः सभी औषध निर्माणशालाए जो मजन तैयार करती हैं उनमे प्राय कपूर अवश्य डाला जाता है। अलारसिन का "जी ३२", जनहित हापुड का 'हर्बल टूथ पाउडर", लक्ष्मीकैमीकल इन्ड० मथुरा का "नया-डैन्टा (सुपर) आदर्श दन्त मजन", चरक फार्मा का "गमटोन दत मजन", देशरक्षक का 'दतमाहिना मजन" आदि प्रसिद्ध दतमजन कपूर सहित निर्मित होते है। हिमालया ड्रग कपनी के पाईलेक्स मरहम म १ २२५% कपूर होता है। यह शोथहर, वेदनाहर, रक्तरोधक मरहम अर्श (बवासीर) को उत्तम औषधि है। चरक फार्मा० की अर्शोघ्नी "अर्शोनिक" टिकिया का भी कपूर घटक द्रव्य है।

यह पूर्व मे कहा जा चुका है कि अपतत्रक (हिस्टीरिया) मे कपूर अतीव लाभप्रद है। ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ़ के "हिस्टीरियाहर कपसूल" म कशर, कपूर वच ८०-८० मि० ग्राम, तथा बालछड १६० मि० ग्राम एव खुरासानी अजवायन ३२० मि० ग्राम है। २-२ कैपसूल दिन मे तीन बार जटामास्यादि क्वाथ किंवा जल के अनुपान स सेवन करने पर इस रोग मे लाभ होता है।

त्रिमूर्ति फार्मेसी बीकानेर (राज०) द्वारा निर्मित 'नवगुण तैल" मे भी त्रिफला, नीमस्वरस, सम्भालुपत्र रस आदि के साथ कपूर डाला जाता है। यह तैल चोट, मोच, सूजन, सन्धिशूल आदि मे उपयोगी है। सक्रामक रोग प्रतिकारक भारतीय औषधि निर्माणशाला का "डर्मफेक्स तैल" मे कई उपयोगी सात तैलो के साथ कपूर मिलाया जाता है। इसी निर्माणशाला द्वारा निर्मित प्रसिद्ध "तुलसी कम्पाउन्ड" मे दालचीनी, नीलगिरी और सर्षप तैलो के साथ ३-३ प्रतिशत कपूर, अजवायन सत और पिपरमेंट सत डाला जाता है। यह प्रतिश्याय, कास आदि की उत्तम औषध है। इसी प्रकार श्वासनलिका के सकोच को दूर कर कफ को ढीला कर आसानी से निकालने हेतु देशरक्षक का "कफकेसरी" शर्बत है। इनका भी कपूर मुख्य घटक है।

विविध कल्पनायें —

१. कर्पूरादि वटी—[क] कपूर, शुद्ध अफीम, नागरमोथा, सेका हुआ इन्द्रायन, शुद्ध हिंगुल और आग पर फुलाया हुआ सुहागा प्रत्येक समभाग ले। प्रथम हिंगुल, अफीम और कपूर को जल से मर्दन करे। उनके अच्छी तरह मिल जाने पर अन्य वस्तुओ का कपडछान चूर्ण किया हुआ मिला, ३ घण्टा जल से मर्दन कर २५०-२५० मि० ग्राम की गोलिया बनाकर छाया मे सुखालें। इसे कर्पूर रस भी कहते है।

मात्रा—१-२ गोली।

अनुपान—जल।

उपयोग—कर्पूरादि वटी का उपयोग अतिसार मे मल के पक्व होने के लक्षण दीखे और बिल्वादि चूर्ण आदि पाचन-ग्राही योगो से लाभ न हो और स्तम्भन औषध की आवश्यकता पडे तब केवल अथवा बिल्वादि या जातीफलादि चूर्ण के साथ मिलाकर दे।

—सिद्धयोग सग्रह।

[ख] कपूर २४ ग्राम, जायफल, सुपारी, लौंग, छोटी इलायची के बीज, कबाबचीनी, शुद्ध टकण, शुद्ध फिटकरी, मिश्री प्रत्येक १२-१२ ग्राम, कत्था ३६ ग्राम लेकर सब द्रव्यो को कूटकर कपडछन चूर्ण करे। पश्चात्

त्रिफला क्वाथ, बबूल की छाल का क्वाथ गूलर के पत्ते का क्वाथ—इनकी पृथक्-पृथक् एक भावना देकर मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २५०-२५० मि० ग्रा० की गोलिया बना छाया मे सुखाकर रख ले।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली दिन मे ५-६ बार मधु मे रखकर अकेले ही या मिश्री के टुकडो के साथ चूसे।

गुण और उपयोग—इस वटी को मुख मे रखकर इसका रस चूसने से मुह मे छाले पडना (मुह आ जाना) मुह से बदबू आना, दातो से पीब निकलना और दन्तवेष्ट रोग (पायरिया) आदि मुख के रोगो और गले के रोगो को शीघ्र नष्ट करती है। जिह्वागत रोग जिह्वा लाल हो जाना, फट जाना जडता रहना—इनमे शीघ्र लाभ करती है। शुष्क कास रोग मे मिश्री के टुकडो के साथ चूसने से गला साफ होकर शीघ्र ही लाभ होता है। —आयुर्वेद सार संग्रह।

[ग] कपूर, बच, नागरमोथा, चिरायता, देवदारु, हल्दी, अतीस, चव्य, वायविडङ्ग, गजपिप्पली, शुण्ठी, कालीमरिच, पिप्पली, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सर्जिकाक्षार, यवक्षार, सैंधानमक, सोंचर नमक, बिड्नमक प्रत्येक ३-३ ग्राम, सफेद निशोथ, दन्ती, तेजपात, दालचीनी, इलायची बडी, वंशलोचन प्रत्येक १२-१२ ग्राम, लोह भस्म २४ ग्राम, शर्करा २४ ग्राम, शिलाजीत ९६ ग्राम, शुद्ध गुग्गुल ९६ ग्राम। समस्त द्रव्यो का चूर्ण बनाकर उसमे गुग्गुल, शिलाजीत मिलाकर वटिया बना ले। यह समस्त रोगो को नष्ट करने वाली "चन्द्रप्रभा वटी" प्रसिद्ध है। यह वटी २० प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, विबन्ध, आनाह शूल, शिश्नेन्द्रिय के रोग यथा उपदंश आदि ग्रन्थि, अर्बुद, आन्त्रवृद्धि, कटिशूल, श्वास-कास, विचर्चिका, अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, हलीमक, समस्त प्रकार के कुष्ठ, अर्शरोग, खजली, प्लीहोदर, भगन्दर, दात और नेत्र के रोग, स्त्रियो की आर्तव सम्बन्धी व्याधिया, पुरुषो की वीर्य सम्बन्धी व्याधिया, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोग नष्ट करती है। चन्द्रप्रभा वटी रसायन, वीर्यवर्धक, बलकारक एव पित्त और कफ सम्बन्धी व्याधियो को नष्ट करती है। यही प्रसिद्ध चन्द्रप्रभा वटी है। —शार्ङ्गधर संहिता।

[घ] कपूर, अनार के फल की छाल और लोग १२-१२ ग्राम, कालीमरिच पीपल, बहेडे की छाल, कुलिंजन ये सब २४ २४ ग्राम, और सब औपधियो के बराबर सफेद कत्था लेना। सबको मिलाकर बबूल की छाल के क्वाथ की भावना देकर २५०-२५० मि० ग्राम की गोलिया बना लेना।

मात्रा—१-१ गोली दिन मे २०-१५ बार मुह मे रखकर चूसना।

उपयोग—सब प्रकार की खासी दूर होती है। जिसमे सूखी खासी मे कफ नही आता है और जिसमे रात्रि को बहुत त्रास होता है, निद्रा भी पूरी नही आ सकती वह खासी ५-६ रोज मे ही मिट जाती है।

क्वाथ का जल उतना मिलाना चाहिए, कि ३ घन्टे खरल करके गोली बन सके। अधिक जल हो जायगा, तो कपूर उडकर कम हो जायेगा। —रसतन्त्रसार।

[ङ] घी मे सेकी हुई असली हीग १ भाग, कपूर १ भाग, कस्तूरी ½ भाग ले। सबको एकत्र घोटकर १२५-१२५ मि० ग्राम की गोलिया बनाले। कपूर और हीग को एकत्र घोटने से प्राय गोली बनाने के योग्य हो जाता है यदि न हो तो जरा शहद मिलावे। इसे ही हिंगु कर्पूरवटी कहते है।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—ठडे जल से १ गोली निगला दें। यदि रोगी गोली निगलने मे समर्थ न हो तो गोली को शहद या अदरक के रस मे मिलाकर जीभ पर लगादें।

उपयोग—ज्वर मे सन्निपात को देखते ही हिंगुकर्पूरवटी दे। इससे नाडी की गति सुधरती है। और हाथ पैर फेंकना, कपडा फैंकना, उठ बैठ करना, बकना आदि लक्षण कम होते है। श्वसनक ज्वर में इससे कफ पतला होकर निकलने लगता है, कफ की दुर्गन्ध नष्ट होती है और कफ गत रोगजन्तु का नाश होता है। हृदरोग और दमे मे हिंगुकर्पूर वटी से लाभ होता है। —सिद्धयोग संग्रह।

[च] गुड और कपूर क्रमश १० एव ५ ग्राम की मात्रा मे घोटकर मिलावें तथा १-१ ग्राम की गोलिया बनाले, ये गोलिया उस ही प्रकार श्वास तथा काम मे होने वाले कष्ट को दूर करेगी जिस प्रकार सूर्य अन्धकार दूर करता है। —सिद्ध भेषज मणिमाला।

[छ] कपूर ६ ग्राम, कस्तूरी ६ ग्राम, कालीमिर्च, पीपल, बहेडा, कुलिजन प्रत्येक २४-२४ ग्राम, अनार के फल के वक्कल ४८ ग्राम और खैरसार सबके समान भाग लेकर पानी मे खरल करके मूग के बराबर बना छाया मे सुखाकर रख ले।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम-दोपहर चूसे या गर्म जल से दे।

गुण और उपयोग—नवीन कफ मे इसका उपयोग विशेष किया जाता है, सर्दी जुकाम की वजह से कफ की वृद्धि होकर ज्वर आना, सिर मे दर्द, आखो मे पानी चलना, खाने की इच्छा न होना, दस्त मे कब्ज आदि उपद्रव होते है। ऐसी अवस्था मे इस वटी के सेवन से विशेष लाभ होता है। यह वटी विकृत कफ करती तथा कफ सम्बन्धी उपद्रवो को दूर कर आरोग्य प्रदान करती है। —भा० भै० र०।

[ज] शुद्ध कपूर, हीग, अफीम, नागरमोथा, चूर्ण और इन्द्र जौ का चूर्ण १-१ भाग लेकर एकत्र घोटकर पानी मे पीसकर २५०-२५० मि० ग्राम की गोलिया बनाले। यह अतिसार, ज्वरातिसार, रक्तातिसार और सग्रहणी मे लाभकारी है।—धन्व० वनौ० विशेपाक।

[झ] कपूर, कस्तूरी और शहद समभाग लेकर खूब खरल कर ३०-६० मि० ग्राम की गोलिया बना रखे। यह ज्वर और शैथिल्य की दशा मे उपयोगी होती है। —धन्व० वनौ० विशेपाक।

[ञ] ६ या ८ ग्रेन (१ ग्रेन=६० मि० ग्रा०) उत्तम कपूर को २० ग्राम गुड मे मिलाकर ३ गोलिया बनावें, प्रात काल रोगी को एक गोली दातो से स्पर्श न हो इस सावधानी के साथ निगलवा दे और १०० कदम चलावे, पुन एक गोली उस ही प्रकार निगलाकर १०० कदम चलावे, पुन एक गोली उसी प्रकार निगला देने मे स्नायुक (नहरवा) जन्य असह्यपीडा का भी शमन होकर स्नायुगुक्त नष्ट होगा।

—सिद्ध भेपज मणिमाला।

२. **कर्पूरादि चूर्ण**—[क] कपूर, लोग, वडी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, खस, सोठ, कालाजीरा, काला अगर, वशलोचन, जटामासी, नीलोफर, पिप्पली, लालचन्दन, तगर, सुगन्धवाला, ककोल (शीतलचीनी) सभी समान भाग लेकर इन सब से अर्ध भाग मिश्री मिलाकर चूर्ण बना लें।

यह चूर्ण रोचन, तर्पण, वृष्य, त्रिदोपघ्न, वल्य, हृद्रोग-कटिरोग, कास-श्वास, हिक्का, पीनस, यक्ष्मा, वातार्श नाशक है। इसके अतिरिक्त यह प्रमेह, गुल्म, अतिसार, ग्रहणी आदि रोगो को भी अनुपान भेद से नष्ट करता है। —भै० र०।

मात्रा—१-३ ग्राम।

[ख] कपूर, त्रिकटु, रास्ना, पाचो नमक, हरड, सर्जिक्षार, यवक्षार इन सब को समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर ले, फिर इसमे बिजौरे नीबू के रस की भावना देकर रख ले। यह चूर्ण २ ग्राम उष्ण जल के साथ कुछ दिन सेवन करने से वातज कफज ग्रहणीरोग का विनाश होकर बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है। —भै० र०।

[ग] कपूर, दालचीनी, शीतलचीनी, तेजपत्ता, जायफल प्रत्येक १-१ भाग, लोग २ भाग, जटामांसी ३ भाग, कालीमिर्च ४ भाग, पिप्पली ५ भाग, सोठ ६ भाग और मिश्री सभी औषधियो के बराबर लेकर यथाविधि चूर्ण बना ले। २-३ ग्राम चूर्ण उचित अनुपान से सेवन करने से अरुचि, खासी, स्वरभग, श्वास, गुल्म, छर्दि, अर्श, पीनस और कण्ठ के रोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण पित्तशामक तथा कफनि सारक है। अरुचि मे इस का प्रयोग सफल हुआ है। यक्ष्मा रोगी मे रुचि उत्पन्न करने म यह श्रेष्ठ है। अन्न-पानादि आहार द्रव्यो मे मिलाकर भी इस सेवन करने से रुचि बढ़ती है। हृदय की गति क्षीण होने पर किंवा नाडी दौर्बल्य होने पर इसके सेवन से हृदय को बल एव उत्तेजना

मिलती है तथा नाडी की गति मे शीघ्र ही सुधार होकर ठीक चलने लगती है। रक्तचाप की कमी मे इसके प्रयोग से उत्तम प्रभाव होता है। यह उत्तेजक होने के साथ-साथ हृदय के लिए बलवर्द्धक भी है।

—भैं० र०।

३. **कर्पूरासव**—(क) मृतसजीवनी सुरा १०० भाग, कपूर ८ भाग, छोटी इलायची १ भाग, नागरमोथा १ भाग, सोठ १ भाग, अजवायन १ भाग और काली मिरच १ भाग। पहले सुरा मे कपूर को पीसकर मिला दे, इसके पश्चात् शेष प्रक्षेप द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण डाल दे। वर्तन का मुख बन्द कर एक मास तक छोड दें। बाद मे छानकर रख लें। ५-१० बूद पानी मे मिलाकर देने से विसूचिका मे लाभ होता है।

—भैं० र०।

[ख] सुरा १० किलो, अफीम ३२० ग्राम, कपूर ६४० ग्राम छोटी इलायची, नागरमोथा, जायफल, लोग, इन्द्रयव, सोठ, अजवाइन, कालीमिर्च प्रत्येक ८०-८० ग्राम। सभी सुरा मे मिलाकर बोतल मे रख दे। बार-बार हिलावे। एक माह बाद छानकर उपयोग मे लें। ५-२० बूद जल मे मिलाकर सेवन करने से अजीर्ण, विसूचिका, उदरशूल, कास, श्वास, आदि रोग नष्ट होते हैं। —आयुर्वेद विकास आसवारिष्ट विशेषाक।

[ग] कपूर १५० ग्राम कूटकर एक बोतल मे भरे। उसी मे मधु ३०० ग्राम और शुद्ध अफीम २० ग्राम डालकर बोतल का मुख अच्छी तरह वन्द कर दे। ७ दिन के पश्चात् उपयोग मे ले। मात्रा—१-३ बूद मिश्री-चूर्ण या बताशे के साथ देने से विसूचिका मे लाभ होता है। —धन्व० शा० सि० प्र० द्वि० भा०।

[घ] असली रेक्टीफाइड स्प्रिट १६ भाग मे ४ भाग कपूर डाल दे। इसी मे १ भाग फूल पिपरमेन्ट भी डाल दे। विसूचिका की प्रारम्भिक अवस्था मे ५-२० बूद तक दे। १५-२० मिनट के अन्तर से इसे देते रहे।

—आयु० सार सग्रह।

४. **कर्पूरादि हिम**—[क] कपूर १ ग्राम २५० मि० ग्रा०, बादाम १८ ग्राम और चीनी १८ ग्राम लेकर प्रथम कपूर और चीनी को एकत्र घोटे, फिर बादाम मिलाकर घोटे। घोटते समय थोडा-थोडा पानी मिलाते जावे। लगभग ६०० मि० लि० तक पानी मिला देने पर कपडे से छानकर बोतल मे भर कर रखें। ३०-१०० मि० लि० तक सेवन कराने से विसूचिका मे हृदय की कमजोरी, चक्कर आना आदि दूर होते है। यह उत्तेजक है, ज्वर की सुस्ती को भी यह दूर करता है।

[ख] कपूर १ ग्राम २५० मि० ग्रा०, सफेद मिर्च १ ग्राम ५०० मि० ग्रा०, छोटी इलायची १ ग्राम २५० मि० ग्रा० तथा बादाम, सौफ और मिश्री १८-१८ ग्राम ले। पहले मिर्च, इलायची, बादाम और सौफ को चटनी की तरह पीसे। फिर कपूर और मिश्री मिला २० औस जल के साथ छान लेवें। मात्रा—१-२ औस।

इस हिम का उपयोग अंशुघात, दाह, ज्वर मे थकावट, अपचन, अपचन जनित अतिसार और विसूचिका मे हृदय की निर्बलता से चक्कर आना आदि विकारो पर २-२ घण्टे पर ३-४ बार दिया जाता है।

५. **कर्पूराम्बु**—एक लीटर साफ पानी खूब गरम कर ठण्डा कर ले। जब पानी ठण्डा हो जाय तब कपूर की ३७५ मि० ग्रा० की डली कपडे मे बाधकर उक्त जल मे शीशी मे डालकर ढक्कन वन्द कर २४ घण्टे रख दे। इसे १० से ५० मि० लि० तक आवश्यकतानुसार पिलावे। इसके सेवन से हृदय को बल मिलता है। शरीर का ताप भी कम हो जाता है। मुखशोष, दाह, बेचैनी आदि भी दूर हो जाती है।

६ **कर्पूरधारा** (अमृतबिन्दु, अमृतधारा)—४०-५० ग्राम कपूर को लेकर केले की जड क रस मे खरल कर सुखा ले। फिर उसी कपूर को अजवाइन के अर्क मे खरल कर सुखा ले। फिर एक साफ शीशी मे उस कपूर को डालकर इसमे उसी के बराबर अजवाइन के फूल और पिपरमेन्ट के फूल भी तोल कर डाल दे और काग लगाकर शीशी को रख दे। इस औषधि को ५-६ बूद की मात्रा मे बताशे के साथ देने से विसूचिका, उदरशूल, अतिसार, अजीर्ण इत्यादि सैकड़ो प्रकार के रोगो मे बडा लाभ होता है। —वनौषधि चन्द्रोदय।

७ कर्पूरादि मलहम—[क] कपूर १० ग्राम, सफेद मोम ५० ग्राम, सफेदा १०० ग्राम और मीठा तैल १०० ग्राम लेना। पहले तैल और मोम को गरम करें, थोडा ठण्डा होने पर सफेदा मिलावे, फिर कपूर मिलाकर मरहम बना लेवे। यह मरहम सब प्रकार के घाव बहुत जल्दी भर देता है। रसतन्त्रसार मे यह व्रणामृत श्वेत मरहम नाम से लिखा गया है। —रसतन्त्रसार।

[ख] कपूर ५० ग्राम, साबुन १०० ग्राम और तारपीन का तैल २०० ग्राम लें। पहले कपूर और साबुन को खरल कर मिला लेवे। फिर तारपीन तैल मिलाने से कपूर मिल जायेगा। यह वातशूल और उदरशूल मे मालिश करने से लाभप्रद है।

—रसतन्त्रसार।

[ग] कपूर २ ग्राम, मुरदाशग और सफेदा काशगीरी प्रत्येक १४-१४ ग्राम, श्वेत मोम २८ ग्राम, तिलतैल ७० ग्राम। तैल को गरम करके उसमे मोम पिघलायें और अन्य द्रव्यो को कूट-छानकर उसमे मिलायें। शीतल होने पर एक अण्डे की सफेदी मिलाकर काम मे लेवें। यह ही मरहम काफूर है। इसके लगाने से ओष्ठव्रण मे आराम होता है। —यूनानी सि० यो० सग्रह।

[घ] कपूर, सगजराहत २-२ ग्राम, मुर्दासङ्ग, तूतिया १-१ ग्राम, राल १५ ग्राम, कत्थाश्वेत ६ ग्राम, मोम देशी ४ ग्राम, गोघृत ४८ ग्राम ले।

मोम तथा घृत के अतिरिक्त सब द्रव्यो को कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। पीछे मोम, घी को गरम करके इसमे चूर्ण डाल दे और घोट ले। फिर इस मलहम को ७ बार पानी से धो ये। यह मलहम नये पुराने फिरङ्ग व्रणो को शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

—सुधानिधि फिरङ्ग अक

[ङ] कपूर, सफेद राल, मुर्दासङ्ग और मोम १०-१० ग्राम, वैसलीन या घी ५० ग्राम लेवे। वेसलीन या घी को गरम करके मोम मिला लेवे, फिर कुछ गरम घी में राल, कपूर और मुर्दासङ्ग का चूर्ण डालकर मलहम बना लेवें। इस मलहम को थाली मे डालकर १०-२० बार पानी से धो लेवें। यह मलहम अति सडे हुए घावो को शोधित करके भर देता है। फोडो के लिए उत्तम औषधि है। —गावो मे औपधि रत्न।

८ कर्पूरादि तैल—[क] कपूर, भिलावा, शखभस्म, यवक्षार, मैनसिल तथा हरिताल इनका कल्क ४ पल (१९२ ग्राम) तैल १६ पल (७६८ ग्राम) और जल ६४ पल (३ ०७२ ग्राम) लेकर पाक करें। तैल सिद्ध हो जाने पर छानकर सुरक्षित रखे। इस तैल के लगाने से रोम शीघ्र नष्ट होते हैं। —चक्रदत्त।

[ख] कपूर १२ ग्राम, रतनजोति १२ ग्राम, श्वेतचन्दन का चूरा २४ ग्राम, एरण्ड की जड १२५ ग्राम, भृङ्गराज का स्वरस २५० मि० लि०, तितलौकी के फल का पानी या गूदी द्वारा बनाया गया क्वाथ ५०० ग्राम, तिल तैल १ किलो।

पहले पूर्व की चारो औषधियो को कूटकर भृङ्गराज के रस मे महीन पीस डाले, फिर सबको कढ़ाई मे डाल मन्द-मन्द आच से पकावें और सिद्ध हो जाने पर उतारकर छान ले। सुगन्धित बनाना हो तो २५० ग्राम सन्तरे का सिरा तैल मिलाकर बोतलो मे भरकर काग लगाकर पन्द्रह दिन रख छोडे फिर काम मे लावे। प्रतिदिन इस तैल को सिर पर मर्दन करने से बहुत भयकर और पुरानी सिर की पीडा नि सन्देह मिट जाती है। दो सप्ताह के सेवन से आख की लालिमा सहित शिरोव्यथा नष्ट होती है। —प्रयोग पुष्पावली।

९ कर्पूरादि नस्य—[क] देशी कपूर, नई केसर, थोडा सा श्वासकुठार रस, चीनी एक पत्थर पर रखकर थोडा पानी छोडकर श्वेतचन्दन के मूठा से रगडें, जो घृष्ट निकले उसका नस्य देने से पैत्तिक शिर.शूल का शमन होता है। मस्तक पर इसका लेप भी करें।

—चिकित्सादर्श भा० ३।

[ख] कपूर २५० मि० ग्रा०, छोटी इलायची का दाना ३ ग्राम, पीलीहरड ६ ग्राम, मजीठ २४ ग्राम, श्वेतचन्दन का चूरा २४ ग्राम, पुराने एरण्ड वृक्ष की जड का छिलका ४८ ग्राम। इन सबका कपड़छन चूर्ण गरम पानी से घोटकर झरबेरी के बेर के बराबर गोली बना छाया मे सुखा ले। इन गोलियो को चिकने पत्थर पर पानी

के साथ घिसकर नस्य लेने से सिर की पीडा दूर होती है। —प्रयोगपुष्पावली।

१० **कर्पूरादि फेनिल (साबुन)**— कपूर १ ओस तथा रेक्टीफाइट स्पिरिट २ ओस, रोजमरी २ ओस और सादा साबुन २ किलो। पहले साबुन को किसी वर्त्तन मे डालकर थोडे जल के साथ उसे पिघलावे। जब वह पिघलकर पानी मे मिल जाये तब उसे नीचे उतार ले। स्पिरिट मे कपूर डाल देने से गलकर उसी मे मिल जावेगा, फिर कपूर मिलाये हुये स्प्रिरिट और रोजमरी को गीले साबुन मे डालकर लकडी से चलावे जब गाढा हो जावे, वर्त्तन मे डाले, जम जाने के बाद लम्बे टुकडे काटकर साचे द्वारा बटिया बनाकर इसे उपयोग मे लावें।

कर्पूर घटित कतिपय एलोपैथिक प्रयोग—

(१) पोटासियम एसिटेट १५ ग्रेन, टिक्चर इपेकाक १० बूंद, सिरप सिल्ला २० बूंद, सिरप टोलू १ ड्राम।

एक्वा कैम्फर आवश्यकतानुसार १ औस तैयार औषधि के लिए।

एक्वा कैम्फर—१००० मि० लि० परिस्रुत जल मे १ ग्राम कैम्फर (कपूर) डालकर बनाया जाता है।

यह एक उत्तम कफनिसारक (Expeactorant) मिश्रण है।

(२) फिनौल १ भाग और कैम्फर ३ भाग मिलाकर रखें। यह दन्तशूल के लिए परमोपयोगी है। इसकी फुरैरी लगाने से दन्तशूल शीघ्र ही शान्त हो जाता है। यह गर्भाशय के पुराने शोथ और उसके मुख के व्रण पर भी लगाया जाता है।

(३) कैम्फर ½ औस, डिहाइड्रेटेड अल्कोहल् ½ औंस।

इसकी २-५ बूंद बताशे मे रखकर देनी चाहिये। इसे रुबीनी का साल्यूशन (Rubini Solution) भी कहते हैं। आशुकारी उत्तेजक (Diffusible Stimulant) होता है।

(४) कैम्फर २ भाग, क्लोरोफार्म १ भाग। यह मिश्रण दन्तशूल मे परमोपयोगी है। लगाते ही दर्द शान्त हो जाता है।

(५) एसिड कार्बोलिक १ भाग, टिंचर आयोडीन रेक्टी० २ भाग, पल्व बोरेक्स २ भाग, ऐक्वा कैम्फर कुल १०० भाग।

मुखरोगो मे गण्डूष (कुल्ले) करने और योनि मे डूश लगाने के लिए यह उपयोगी है।

(६) कैम्फर १ ग्रेन, पल्वक्रीटा एरोमेटिक कम ओपियो २० ग्रेन। यह ग्रीष्मकालीन अतीसार के लिए उपयोगी है।

(७) कैम्फर १ ड्राम, क्लोरल हाइड्रेट १ ड्राम, आयल क्लोव्ज १ ड्राम, मैन्थोल १५ ग्रेन।

सबको मिलाकर फुरैरी से दन्तशूल के शमन हेतु लगावे।

(८) कैम्फर १ ग्रेन, इपिकाक पाउडर चौथा ई ग्रेन। यह भी अतीसार मे अतीव लाभप्रद है।

(९) कैम्फर १ ग्रेन, आक्साइड जिंक, बोरिक्स और स्टार्च तीनो मिलाकर २ ड्राम। इन चारो का मिश्रण घाव भरने मे परमोपयोगी है। इसके उपयोग से जलन ही शान्त होती है।

कर्पूरयुक्त विविध दन्तमंजन—

(१) कपूर १५ अकरकरा ३ ग्राम, माजूफल ६ ग्राम, फिटकरी ९ ग्राम, खडियामिट्टी १२ ग्राम, गोदन्तीभस्म १२ ग्राम। इन सबको पीसकर सुरक्षित रखे। प्रतिदिन दोनो समय सरसो के तैल मे मिलाकर मजन करे। इसके प्रयोग से दन्तक्रमि, पायोरिया आदि नष्ट होते हैं।

(२) भीमसेनीकपूर, पकायी फिटकरी, मण्डूरभस्म, हरड, बहेडा, आवला, माजूफल, अनार की छाल, कत्था और सुहागा समानभाग लेकर कूट-पीसकर कपडछन कर रख दे। इससे मजन करने से दन्तशूल, दन्तक्रमि आदि दन्तरोग दूर होकर दात स्वच्छ होते हैं। इसके प्रयोग से मुख की दुर्गन्ध भी मिटती है।

(३) कपूर ३ ग्राम, रक्त स्फुटिका १० ग्राम, खडियामिट्टी ३० ग्राम, सत पोदीना १ ग्राम मिलाकर

पीसकर रख लें। इससे मंजन करने से दांत मजबूत होते हैं।

(४) कपूर, सैंधानमक, माजूफल, चिकनीसुपारी, बायविडङ्ग, समुद्रफेन, कत्था, जलकपुरी, फिटकरी का फूला, सुहागे का फूला, गोलमिरच, मौलसिरी की छाल सबको १-१ भाग लेकर खड़ियामिट्टी ५ भाग लें। कपूर और खड़ियामिट्टी को छोड़कर बाकी सब दवायें कूट-पीसकर कपड़छन कर लें अब खड़ियामिट्टी को पीसकर इसमे मिला दें फिर कपूर मिलाकर शीशियों मे भरकर रख लें। दातों की अनेक शिकायतें इससे दूर होती है।

(५) कपूर ५ ग्राम, कत्था सफेद १० ग्राम, रूमीमस्तङ्गी २० ग्राम, माजूफल ३० ग्राम, मौलसिरी की छाल ४० ग्राम, संगजराहत ५० ग्राम को पीसकर कपड़छन चूर्ण बनाकर मंजन करें।

(६) कपूर ५ ग्राम, छोटीइलायची ५ ग्राम, अकरकरा १० ग्राम, सैंधानमक १० ग्राम, रूमीमस्तङ्गी २० ग्राम, चिकनीसुपारी २० ग्राम, त्रिफला चूर्ण और खड़ियामिट्टी ३०-३० ग्राम मिलाकर चूर्ण तैयार कर मंजन करें।

(७) कपूर १० ग्राम, फिटकरी का फूला, सुहागे की खील, माजूफल, अकरकरा ६-६ ग्राम, तज तथा लवङ्ग ३-३ ग्राम, सेलखड़ी १०० ग्राम सबको पीस कपड़छन कर मंजन बना लें। यह मंजन दांतों को ठण्डक पहुंचाने वाला, दांतों को मजबूत तथा स्वच्छ बनाने वाला है।

(८) कपूर १०० ग्राम, मधु २०० ग्राम और एरण्डतैल ४०० ग्राम लेकर इनका सम्मिश्रण कर लें। यह दन्तरोग नाशक उत्तम टूथपेस्ट है।

(९) कपूर ३ ग्राम, फिटकरी ६ ग्राम, रूमीमस्तङ्गी १२ ग्राम, तालीसपत्र १२ ग्राम, सोंठ १२ ग्राम, भुना नूनिया ३ ग्राम, दालचीनी ६ ग्राम, सेंधानमक १२ ग्राम, भुना श्वेत जीरा १२ ग्राम, छोटी इलायची का दाना २४ ग्राम। इन सबका सूक्ष्म चूर्ण कर प्रतिदिन इस मंजन को दांतों पर मलने से मसूड़े दृढ होते हैं और रक्त का निकलना बन्द हो जाता है।

अनुभूत प्रयोग---

(१) योगेश्वर शिरःशूलहर मलहम— कपूर २० ग्राम, पिपरमेण्ट १० ग्राम, सत् अजवायन ५ ग्राम, मोम २० ग्राम, गोघृत ५० ग्राम।

निर्माण विधि—सर्वप्रथम प्रारम्भ की तीनों औषधियों को एक शीशी मे परस्पर मिला लें और कार्क लगाकर कुछ देर धूप मे रख दें जिससे दवा पिघलकर अर्क का रूप ले ले। फिर घृत को आग पर गर्म कर मोम भी मिला लें जब वह पिघल जाये तो पात्र को नीचे उतार कर उपर्युक्त अर्क मिला लें और ठंडा होने पर खुले मुख की पेचवाली शीशी मे अथवा डिब्बी मे भरकर बन्द रखें। थोड़ी सी लेकर मस्तक पर खूब रगड़ने से सब प्रकार के शिर शूल मिट जाते हैं।

—वैद्य श्री बाबूनाथ जी योगेश्वर द्वारा धन्वन्तरि अप्रैल ६६ से।

(२) दुखती आंखों के लिए प्रयोग—कपूर ३ ग्राम, पिपरमेण्ट ६० मि० ग्राम, अफीम ६० मि० ग्राम, तुलसीपत्र स्वरस ३० मि० लि०, पान का स्वरस ३० मि० लि० सबका घोल बना लें। एक दिन हो जाने पर साफ कपड़े से छान लें। फिर मजबूत कार्क वाली शीशी मे रखें। दो-दो बूंद आंख मे डालें। ऐसे ३-४ बार दिन मे डालें। उसी दिन आराम हो जायेगा। ककड़ा सरीखा लगना, दर्द होना तुरन्त दूर हो जावेगा। तीसरे दिन आंखें अच्छी हो जावेंगी।

—श्री चौधरी वृजराजसिंह द्वारा धन्व० अक्टू० ६० से।

(३) पेशाब मे जलन होने पर प्रयोग—'किन्हीं रोगजन्य उपलक्षण स्वरूप, या गर्मी के मौसम मे अधिक देर तक काम करने से या नंगे पैर मे घूमने से पेशाब मे जलन, मूत्र का रङ्ग पीला या रक्ताभ जैसा हो जाना, बार बार थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है। ऐसी अवस्था मे तत्काल लाभ के लिए स्वर्णगेरू ६० ग्राम, शीतलचीनी (कबाबचीनी) १० ग्राम तथा कपूर देशी २ ग्राम तीनों को पृथक्-पृथक् पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण बना लें। पश्चात् तीनों को एकत्र खरल मे

डालकर खरल करे। शीतल जल के साथ प्रति मात्रा २ ग्राम दें। पहली मात्रा मे ही लाभ प्रतीत होता है। आवश्यकता होने पर दो घण्टे के वाद दूसरी मात्रा देवें। सहायक प्रयोग के रूप मे कालीमिट्टी गीली कर नाभि पर भी लेप कर दे। १०-१५ मिनट बाद ही मूत्रव्यथा, दाहादि दूर होकर स्वच्छ मूत्र उतरने लगता है। प्रयोग अनेकश. परीक्षित है।

—वैद्य श्री वद्रीलाल गुप्त द्वारा
धन्व० सित० ८७ से।

(४) स्तम्भन वटी—भीमसेनी कपूर, जावित्री, भाग, लौंग, अफीम, केशर, मकरध्वज, शुद्ध शिलाजीत सब समान भाग लेकर सहजन के फूल के स्वरस और शालमली (सेमर) के मुली के रस मे ४ प्रहर ताम्र के पात्र मे ताम्र के लोटे से घोटे। वाद मे १ वेर बरावर गोली वना छाया मे सुखाकर रखें। १ गोली सम्भोग के १ घण्टा प्रथम गरम दूध मे लेवे। स्तम्भन होगा।

—वैद्य श्री प० यमुनाप्रसाद शर्मा द्वारा,
धन्व० जून ५७ से।

(५) दूषित व्रणो के लिए प्रयोग—कपूर ३ ग्राम और कच्ची गोदन्ती का वस्त्रपूत चूर्ण ६ ग्राम। इस सब को पीस घाव पर बुरकना चाहिए या डालकर रुई से वाध देना चाहिए। इससे पुराने दूषित व्रण शीघ्र ही शुद्ध होकर भर जाते हैं।

—वैद्य श्री सरदार लाखनसिंह द्वारा,
धन्व० जून० ५७ से।

(६) सप्तामृत धारा—देशी कपूर, सत्व अजवाइन, सत्व पिपरमेण्ट, यूकेलिप्टस आइल १२-१२ ग्राम, दालचीनी का तैल ६ ग्राम, सोठ का तैल ३ ग्राम, लौंग का तैल ३ ग्राम। सव औषधि एक चौडे मुख की काच के कार्क वाली वोतल मे डाल दे और कार्क लगा दे। ३६ घण्टो मे सव औषधि प्रवाही रूप मे वन जायगी। इसकी दस वूदो से वीस वूदो तक दिन मे तीन वार जल या वताशे मे दे। वालको को चौथाई मात्रा दे।

गुण—बेचैनी, जी मिचलाना, अजीर्ण, मन्दाग्नि, आलस्य, आमातिसार, पेट का हर दर्द, हैजा, अफरा आदि सेवन करने से मिट जाते है। मस्तिष्क शूल मे मलना, कान के दर्द मे ग्लेसरीन के साथ डालें, दात के दर्द मे रुई का फाहा वनाकर रख दें, बिच्छू काटने पर फाहा वनाकर रख दे, छाती के दर्द मे मलने से शीघ्र लाभ होता है।

—वैद्य श्री जयन्तीलाल बी० भट्ट द्वारा,
धन्व० दिस० ५६ से।

(७) दद्रुनाशक अर्क—कपूर १०० ग्राम, पिपरमेण्ट ५० ग्राम, अजवाइन के फूल ५० ग्राम, लोहवान के फूल ५० ग्राम। पहले प्रारम्भ की तीनो औषधियो को मिला ले। जब पानी की तरह हो जावें तब लोहवान के फूल मिला ले। काच की शीशी मे मजबूत कार्क लगाकर रख ले। दाद को खुजाकर फुरैरी लगा दे। दाद विदा हो जायेगा, साथ ही खाज भी। इसी प्रकार अनुपान भेद से यह औषधि हैजा, त्वचा के रोग और कान की बीमारियो मे भी लाभ करती है। दातदर्द जुकाम, सिरदर्द मे भी अक्सीर है।

—वैद्य प० श्री चन्द्रशेखर जैन,
धन्व० अगस्त ७६ से।

(८) आधाशीशी [अर्धकपाली] पर प्रयोग—मुनक्का बडा बीजरहित ५ नग बारीक मसल डालिये और उत्तम कपूर १ ग्राम लेकर बारीक करके मुनक्का कपूर एक मे मिलाकर खरल मे डाल अच्छी तरह मिला लें और उसकी ६ गोलिया वना लें और अरने कडे की अच्छी राख लेकर गोलियो पर थोडी-थोडी डाल दे। सूर्य उदय होते ही २ गोली मुह मे डालकर रोगी निगल ले, २ घण्टे के वाद २ गोली और निगल ले, फिर २ घण्टे के बाद निगल ले। १० वजे तक तीनो मात्रा लेले। ईश्वर की कृपा से जरूर लाभ होगा। यदि कुछ असर रहे तो तीसरे रोज और औषधि तैयार कर सेवन करे। —वैद्य श्रीकृष्णराव पटेल द्वारा,
धन्व० अप्रैल ६६ से।

(९) स्वप्नप्रमेहहर प्रयोग—भीमसेनी कपूर १ ग्राम, पिसी-छनी हल्दी १२ ग्राम, पिसी-छनी शीतलचीनी ६ ग्राम, अफीम २५० मि० ग्रा० और पिसी हुई

मिश्री २५ ग्राम। सबको मिलाकर छानकर रखे। इसकी मात्रा २ ग्राम की है। रात को सोते समय १ मात्रा खाकर २५० मि० ली० शीतल जल पीने से चन्द रोज मे स्वप्नदोप जाता रहता है। परीक्षित है।

—वावू श्री हरिदास वैद्य द्वारा,
चि० च० भाग ४ से।

(१०) विर्चचिकाहर मरहम—कपूर, रसकपूर, मुर्दासङ्ग, मोम, कत्था और छोटी इलायची के वीज ६-६ ग्राम, लौनी घी सौ वार का धुला हुआ २४ ग्राम। इन सब को रसवत् घोट ले और मोम को पिघला कर मिला ले, फिर इस मे घृत मिलाकर सुरक्षित रखे। इससे विर्चचिका शीघ्र ही मिट जाती है। कुछ समय निरन्तर लगावे। —वैद्य श्री गोपाल गोविल द्वारा,
धन्व० रक्तरोगाङ्क से।

(११) शीघ्रपतनहर योग—कपूर (भीमसेनी), शुद्ध शिंगरफ, लोहबान कोडिया, अफीम प्रत्येक दवा १२-१२ ग्राम। पहले शिंगरफ को इतना खरल करे कि उसमे चमक विल्कुल न रहे, तव लोहवान, फिर अफीम और वाद मे कपूर को मिलाकर और खरल कर के चने के आटे की सहायता से २५० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। शाम को एक गोली दूध के साथ सेवन करे। घी, मक्खन, मलाई आदि ताकतवर खुराक अधिक मात्रा मे खावे। सम्भोग शक्ति को वढाने और शीघ्रपतन को दूर करने की रामवाण दवा है।

—श्री सत्यपाल मेहता द्वारा,
चिकित्सक दिस० ७२ से।

(१२) कण्ठसुधारक प्रयोग—कपूर २ ग्राम, दालचीनी १ ग्राम, इलायची ६ ग्राम, मुलहठी सत्व ६ ग्राम। इन सव को कूट-पीसकर सरसो-दाने के वरावर गोलिया बना ले। यदि किसी कारण से गला वैठ गया हो तो ४-५ गोली चूसे। —प्रतापमल गोविन्दराय द्वारा,
अपना इलाज खुद करो।

(१३) विशूचिका मे उदरशूल पर प्रयोग—कपडछन लालमरिच का चूर्ण १२० मि० ग्रा०, हल्दी का चूर्ण १२० मि० ग्रा०, कपूर शुद्ध ६० मि० ग्रा०। इनकी जल के साथ एक गोली वनाकर निगल जाना चाहिये। इससे उदर प्रदेश मे उत्पन्न अति उत्कट दर्द समाप्त हो जाता है। प्राय एक मात्रा मे ही शूल शान्त हो जाता है। कभी-कभी २-३ वटी का भी प्रयोग करना पडता है। प० श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी द्वारा
वैद्य सहचर से।

(१४) नेत्रविकारहर अंजन—भीमसेनी कपूर ३ ग्राम, अफीम १ ग्राम, रसौत ६ ग्राम, मुलहठी ६ ग्राम, मिश्री ६ ग्राम, यशदभस्म १२ ग्राम। इन्हे खूब वारीक घोटकर शीशी मे रख ले। इस अजन को प्रतिदिन सलाई से लगाने से नेत्र सम्वन्धी शिकायत कभी नही होती। इससे नेत्रो का दाह, पानी गिरना' कीचड आना तथा धुधला दीखना आदि नष्ट हो जाते है।

—प० श्री श्यामसुन्दराचार्य वैश्य द्वारा
अनुपान विधि से।

(१५) धातुक्षीणताहर वटी—भीमसेनी कपूर ५०० मि० ग्रा०, वङ्गभस्म ८ ग्राम, शुद्ध शिलाजीत १२ ग्राम, सफेद मूसली का चूर्ण ४८ ग्राम सव एकत्र कर वबूल गोद के जल मे १ पहर खरल कर ५००-५०० मि० ग्राम की गोलिया बना ले और छाया मे सुखा लें। १-१ गोली प्रात -साय गो के धारोष्ण दूध से लें। ४० दिन के सेवन से धातुक्षीणता, स्वप्नदोष आदि नष्ट हो जाते हैं। —श्री कविराज वेदव्यासदत्त शर्मा द्वारा
धन्व० पुरुपरोगाङ्क ६८ से।

(१६) स्वप्नमेहहर व्यवस्था—कपूर ६० मि० ग्रा० शीतलचीनी १२० मि० ग्रा०, कलमीशोरा ६० मि० ग्रा०, ब्राह्मीवटी १२० मि० ग्रा०। रात्रि समय मे पीसकर जल से सेवन करे। कुछ समय सेवन करने से स्वप्नदोप दूर होता है।

—डा० श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा द्वारा
धन्व० पुरुषरोगाङ्क से।

(१७) नेत्रांजन—समुद्रफेन ७० ग्राम, फिटकरी १० ग्राम, वहेडे की गिरी १० ग्राम, भीमसेनी कपूर २० ग्राम, शुद्ध कृष्णाजन १० ग्राम।

पहले समुद्रफेन को नीबू के रस मे गलावें और खरल मे डालकर मक्खन के समान हो जाय तब तक घोटते रहे। बाद मे कपडछन करके शेष द्रव्य मिलाकर १२ घण्टे तक निरन्तर खरल करके रख ले। नेत्राभिष्यन्द के कारण होने वाली लाली, अश्रुस्राव आदि मे लाभकारी है। —वैद्य श्री उदयलाल महात्मा द्वारा धन्व० गुप्तसिद्धप्रयोगाक भाग १ मे।

(१८) मुष्कशोथहर प्रयोग—मुलतानी मिट्टी एक आना भर कपूर तीन टिकिया, घी १२५ ग्राम (शतधौत) सबको मिलाकर मरहम बना ले। इसे इन्द्रिय और खासकर अण्डकोषो की सूजन पर उपयोग मे लावें। यह शुक्रदोष (शिश्नवृद्धिनिमित्तोपायजन्य विकृति) की उत्तम औषधि है। एक व्यक्ति को इस व्याधि मे उक्त मलहम मे आशातीत लाभ हुआ। तीन दिन मे ही सारा शोथ हट गया। किन्तु उसे चलने मे दर्द होता था। उसके बाद दो टिकिया कपूर एक बोतल मे डालकर पानी बनाया, वही पानी पीने को दिया। प्रति मात्रा मे १० बूद अच्छा गुलाब जल चार-चार घण्टे मे एक मात्रा दी, इस प्रकार पेशाब साफ होकर नसो का झटका भी बन्द हो गया। यह मेरा अनुभूत योग है।

—श्री मागीलाल राठौड द्वारा
धन्व० नव० ५६ से।

(१९) संभ्रम [पित्तज] हृदयरोगनाशक चूर्ण—गावजवा के पत्ते २० ग्राम, भीमसेनी कपूर, मूगा की जड, मुक्ता, आबरेशम कच्चा कतरा हुआ, सब १० १० ग्राम, धनिया सूखा १० ग्राम, सम्भालू के बीज, मुस्तक, वंशलोचन सब ७ ७ ग्राम, भुनी फिटकरी १० ग्राम।

मूगा की जड और मोती को अर्क गुलाब मे चार दिन पीस लें। फिर सुखाकर रख ले। कपूर, आबरेशम गिले अरमनी और वंशलोचन को एक साथ पीसकर इसमे घुटी हुई मोती और मूगा की पिष्टी मिला दे। फिर शेष औषधि को कपड छानकर उसमे मिला दे। और सबको घोटकर एकजान कर ले। बाद मे शीशी मे भरकर रख ले। यही सभ्रम हृदयरोग नाशक चूर्ण है। इसकी मात्रा ७ ग्राम की है दिन मे तीन-चार बार मिश्री की चासनी युक्त शर्बत से इसका व्यवहार करें।

—स्व० श्री सोहनलाल जी गुरदासपुर द्वारा
सुधानिधि जटिलरोग चिकि० से।

(२०) हैजे की दवाई—कपूर १ ग्राम, छोटी-इलायची ३ ग्राम, शहद ६ ग्राम और अदरख का रस ३ ग्राम सबको पत्थर पर घर के सफेद चन्दन से घिसकर तीन-तीन ग्राम आधे-आधे घण्टे से चटाने से हैजे मे आराम हो जावेगा। —स्वामी श्री परमानन्द

(२१) मुंहासे एवं चेहरे के अन्य दाग धब्बे में उत्तम प्रयोग—बादाम का तेल २४ ग्रा०, चन्दन का तेल ६ ग्रा०, लेकर कलईदार बर्त्तन मे रखकर थोडा गरम कर उसमे ६ ग्रा० मोम (पिघलाकर) तथा ६ ग्रा० कपूर घोल दे। फिर उतारकर उसमे २४ ग्रा० ग्लिसरीन मिला दे। फिर शीशी मे भर लें। प्रातःकाल एव रात्रि को सोते समय लगाये।

—डा० श्री विद्यानन्द शुक्ल द्वारा
धन्व० दिस० ७८ से।

(२२) तारुण्यपिडिकाहर प्रयोग—कपूर १० ग्रा०, सन्तरे के छिलको का चूर्ण १० ग्रा०, हरिद्रा चूर्ण ५० ग्रा०, मसूर की दाल का बेसन २०० ग्रा०। इन सबको नारियल के तेल मे मिलाकर मुख पर उबटन करे। —श्री लोकेश पारीक द्वारा
विशेषाङ्क के लिए प्रेषित।

(२३) बाल धोने का मसाला—कपूर १२ ग्रा० चौकिया सुहागा २४ ग्रा०। दोनो का महीन चूर्ण कर २५० मि० लि० पानी मे पकावे। १८० मि० लि० जल रह जाने पर उतार लें और शीतल होने पर इस पानी को हाथ से बालो मे अच्छी तरह मलकर साफ जल से धो डाले तो बालो का सिमटना, रूसी और मैल दूर होकर बाल मुलायम हो जाते हैं। इससे बालो का गिरना बन्द होकर उनकी जडे मजबूत होती हैं।

—आचार्य प० श्री महावीर प्रसाद द्वारा
—प्रयोगपुष्पावली।

कपूर पर मेरा अनुभव--

(१) ऊर्ध्वपातन्तक सत्व—कपूर २० ग्रा० और रसकपूर १० ग्राम ले। दोनो को खरल कर एकजीव बना, एक मिट्टी के प्याले मे डालकर ऊपर दूसरे प्याले के होठ इसके समान जोड दें और सुदृढ सम्पुट करके चूल्हे पर चढाकर नीचे अगूठे के समान मोटी दो लकडी जला ४। ५ घण्टे तक निरन्तर आच जलाकर वन्द कर दे। शीतल होने पर खोलकर सत्व प्राप्त करे। यदि रसकपूर का सत्व पातन न हुआ हो, तो पुन पूर्ववत् खरल कर दो प्यालो मे वन्द कर सत्वपातन करे।

मात्रा—४ से ८ चावल तक।

अनुपान—मक्खन या मलाई मे लपेट कर दे।

उपयोग—पूयमेह, सुजाक को नष्ट करने के लिए महौषधि है। नया या पुराना पूयमेह रोग समूल नष्ट हो जाता है। शतशोऽनुभूत है।

(२) कर्पूर नस्य—कपूर १ भाग, नवसादर १२ भाग ले। दोनो को सूक्ष्म पीसकर सुरक्षित रखना।

प्रयोग विधि—इसमे एक चुटकी नस्य ले, नाक मे रखे, और जोर से ऊपर सीधी खीचे कि नस्य मतिष्क तक पहुँच जाए। फिर सिर मुह ढीला कर नीचा कर दे। इससे नेत्र, नासिका तथा मुखमार्ग से जल का स्राव होगा, इस नस्य से किसी को छीकें आ जाती हैं कभी नही भी आती।

रोगोपयोग--

(१) सन्निपात तथा मृगी—नाक मे नस्य रखकर ऊपर से जोर से फूक दें कि नस्य मस्तिक तक पहुँच जाए। यदि किसी नलकी से फूके तो उत्तम रहेगा।

(२) अर्धावभेदक—आधे सिर के दर्द मे जिस ओर दर्द हो उसी ओर नस्य दें।

(३) शिर शूल -दोनो नथुनो मे नस्य दे।

(४) प्रतिश्याय नजला-दोनो नथुनो मे नस्य दें।

(५) दाढ़ दर्द—जिस ओर दर्द हो उससे दूसरी ओर नस्य दे।

(६) कर्णशूल—जिस कान मे पीडा हो उसी ओर नस्य दे।

(७) मुखशोथ—दोनो ओर नस्य दे।

(८) नेत्राभिष्यन्द—दोनो नथुनो मे नस्य सूघें।

यह नस्य अद्भुत है, चमत्कारी है। उपर्युक्त रोगो मे आश्चर्यजनक लाभ प्रदान करता है।

—वैद्य मोहरसिंह आर्य, मिसरी, भिवानी (हरयाणा)
विशेषाक के लिए प्रेषित।

करञ्जत्रय

आयुर्वेद के ग्रन्थों में तीन प्रकार के करंजों का उल्लेख मिलता है—

I Pongamia pinnata (Linn) Merr
N O —LEGUMINOSEAE–PAPILIONACEAE

II Caesalpinia crista Linn
N. O —LEGUMINOSEAE–CAESALPIANACEAE

III Holoptelia integrifolia Planch
N O —MORACEAE



इनमे पहले को डहरकरज या डिठोहरी कहते है, दूसरा लता करज, कजा या काटाकरज कहलाता है और तीमरे को पापडी कहा जाता है। यही पापडी पूतिकरञ्ज है और इसे ही चिरविल्व भी कहा जाता है। चरकसहिता के प्रथम अध्याय मे जो फलिनियो मे दो द्रव्य उदकीर्य और प्रकीर्य बतलाये हैं, वे क्रमश डहरकरज और लताकरज है और दोनो ही कटुस्कन्ध मे आते है। पूतिकरज की त्वचा को चरक ने विरेचक लिखा है, जो तिक्तस्कन्ध का द्रव्य है।

वैद्यसहचर (वैद्यनाथ प्रकाशन) मे आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी ने जो मलेरिया सहार नामक योग लिखा है उसमे जो करजबीज चूर्ण दिया गया है वह लताकरज के बीज की मीगी ही है।

सेन्ट्रल काउन्सिल आफ रिसर्च इन आयुर्वेद और सिद्ध ने आयुष–६४ जो मलेरिया के लिए एक पेटेण्ट योग तैयार किया है उसका एक घटक भी यही करज है।

मै अपनी चिकित्सा मे पुरीष मे जो पाये जाने वाले उलूकमुखी क्रिमि (जियार्डिया लैम्ब्लिया) के सहार हेतु घी मे भूनकर इसी करजबीज (कुबेराक्ष) की मज्जा को कैपसूल मे रखकर प्रतिदिन प्रात काल निगलवाता हूँ। इससे २१ दिन मे इस क्रिमि से कोष्ठ मुक्त हो जाता है।

—र० प्र० त्रि०।

संहिताग्रन्थो मे करञ्जद्वय का यथास्थान वर्णन मिलता है। करञ्जद्वय से नक्तमाल और चिरबिल्व का बोध होता है। केवल करञ्ज से नक्तमाल तथा पूतीक किंवा पूति करञ्ज से चिरबिल्व समझा जाता है। आचार्य भावमिश्र ने करञ्ज के अतिरिक्त पूतिकरञ्ज का भी वर्णन किया है किन्तु करञ्ज (नक्तमाल) के पर्यायो मे ही चिरबिल्वक दे दिया है। श्रीमन्मदनपाल नृपति ने इस त्रुटि को शुद्ध कर लिया है। इन्होने "पूतिकोऽन्य पूतिपर्ण- प्रकीर्णश्चिरबिल्वक" लिखकर चिरबिल्वक को पूतिकरञ्ज के पर्यायो मे कहा है। हृदय दीपक निघण्टु मे भी ऐसा ही वर्णित है—

पूतिकरज पूतीक प्रकीर्यश्चिरबिल्वक.।
अन्योदकीर्यो नक्ताह्व कैऽर्यो नक्तमालक ॥

इन दो करञ्जो के अतिरिक्त बाद मे कण्टकी-करञ्ज (लताकरञ्ज) भी मिलने लगा जिससे करञ्जो की सख्या तीन हो गई। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने कण्डूघ्न वर्ग मे करञ्ज (नक्तमाल) का, लेखन (कर्शन) वर्ग मे चिरबिल्व का तथा विषमज्वरघ्न वर्ग मे कण्टकी-करञ्ज (लताकरञ्ज) का वर्णन किया है। अपने निघण्टु-ग्रन्थ मे इन्होने नक्तमाल एव चिरबिल्व को करञ्जद्वय तथा कण्टकीकरञ्ज को मिलाकर करञ्जत्रय की सज्ञा दी है—

नक्तमाश्च पूतीक करञ्जद्वयमुच्यते ।
वल्लीकरञ्जसहित तत् करञ्जत्रय भवेत् ॥
—प्रि० नि० हृ० व० २१४ ।

यद्यपि सुश्रुतसहिता के दोनो टीकाकार डल्हण एव चक्रपाणि ने करञ्जद्वय से चिरविल्व और कण्टकीकरञ्ज ग्रहण किया है—"करञ्जद्वयमित एकश्चिरविल्व', द्वितीय कण्टकी विटपकरञ्ज (ड)" "द्वितीय करञ्ज कण्टकीकरञ्ज नटे इति ख्यात (च०)" अष्टागहृदय के व्याख्याकारो ने करञ्जद्वय से नक्तमाल एव चिरविल्व को ग्रहण किया है—"करञ्जयुग्ममेक पूतिककरञ्ज-श्चिरविल्वाख्योऽपरो नक्तमालाख्य । —अरुणदत्त ।

करञ्जयुग्म करञ्जद्वयम् । एक पूतिकरञ्ज, चिर-विल्वपरपर्याय । द्वितीयो नक्तमालपरपर्याय ।
—चन्द्रनन्दन ।

आचार्य प० श्री भागीरथ स्वामी ने गुच्छकरञ्ज, घृतकरञ्ज, पूतिककरञ्ज, चिरविल्व, कण्टककरञ्ज का विस्तृत वर्णन किया है। इन्होने पूतिकरञ्ज और कण्टक-करञ्ज को एक ही माना है। घृतकरञ्ज कण्टकीकरञ्ज का ही एक भेद है। यह मोटा होता है जो बंगाल मे अधिक होता है। गुच्छकरञ्ज भी इसकी ही जाति विशेष है। घृतकरञ्ज के फूल लाल होते है जिनके तुर्रे आते हैं। गुच्छकरज के सिन्दूरी रङ्ग के गुच्छेदार फूल आते हैं। इनकी लताये कटककरज से वडी होती हैं।

श्रीयुत वनवारीलाल मिश्र भिषगाचार्य, एच० पी० ए० ने करज की चार जातियो का उल्लेख किया है—करज, करजी, कण्टकरज और चिरविल्व ।

आ० सू० श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी ने वनौषधि विशे-षाक मे करज की विविधता व्यक्त करते हुये कहा है—"आयुर्वेद निघण्टुओ मे करजद्वय के अतिरिक्त उदकीर्य (षड्ग्रन्थ), अङ्गारवल्ली, महाकरज, रीठाकरज आदि कई करज से सम्वन्धित नाम पाये जाते हैं। जिनसे पाठको को और भी भ्रम हो जाता हे। उक्तकरजद्वय भेद के अतिरिक्त वगाल मे—अम्लकरज विषकरज, माकड़ाकरज और गेंटेकरज नाम और देखे जाते हैं। इनमे से अम्लकरज तो वास्तव में करमर्दक (करौंदा) है। विषकरज अङ्गारवल्ली या महाकरज है। माकडा या मर्कटीकरज उदकीर्य है तथा गेटेकरज षड्गन्य है।" और खिन्नमन से उन्होंने इसी प्रसग मे कहा है कि—"वृक्षकरज और लताकरज के कई भेद होने से तथा उनका स्पष्ट उल्लेख या वर्णन न होने से आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे उनकी पहिचान या प्रयोगो मे वडी गटवडी होती है ।"

लताकरज मे कण्टकीकरज की उपादेयता अधिक होने से किंवा अन्य भेदो मे प्राय समानता होने से यहा कण्टकीकरज का ही वर्णन किया जा रहा है। वृक्षकरज मे करज (नक्तमाल) और पूतिकरंज (चिरविल्व) प्रमुख है। करजी और चिरविल्व एक ही है। आचार्य भाव-मिश्र ने जिस करजी का वर्णन किया है वह चिरविल्व ही है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने चिरविल्व के पर्यायो मे करजी कहा है। आचार्य त्रिवेदी ने भी यही वात कही है—'यद्यपि ग्रन्थो मे करज के पर्यायवाची नामो मे चिरविल्व नाम भी दिया है तथा इसके वृक्ष का आकार प्रकार और गुणधर्म भी बहुत कुछ करज से मिलता-जुलता सा होने से इसे करजी भी कहते हैं।" सुतरा वर्णनीय करजत्रय है—नक्तमाल, चिरविल्व, और कण्टकी करज। तीनो के गुणो मे भिन्नता होने से तीनो का पृथक् वर्णन आवश्यक है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने इन तीनो जातियो का वर्णन करज (नक्तमाल) के प्रसङ्ग मे करते हुये तीनो का वर्णन पृथक्-पृथक् किया है। एता-वता यहा पर भी ऐसा ही किया जा रहा है।

यह स्मरण रहे कि नक्तमाल वातकफशामक चिर-विल्व कफपित्तशामक तथा कण्टकीकरज त्रिदोषशामक है। अन्त मे करज शब्द की व्युत्पत्ति देकर इस विषय को आगे वढाया जायेगा—

नक्त सुनीलैर्भृ दुपुष्पभारै
सशोभते प्राक्पतितै. प्रभाते ।
नीलत्विषा रजयति प्रवाह
त्वषा नदीना विकच. करज. ॥
—प्रि० नि० हृ० व० २०६

करञ्ज [Pongamia Pinnata]



चरकसंहिता के कटुक एवं तिक्त स्कन्ध में पठित करंज को कण्डूघ्न एवं विरेचन कहा गया है। कण्डू (खाज-खुजली) को नष्ट करने वाले द्रव्य कण्डूघ्न कहे जाते हैं। विरेचन के अन्य भेदों के अतिरिक्त—अधिक द्रव विरेचन, पित्तविरेचन तथा श्लेष्म विरेचक भेद से तीन भेद किये गये है। इनमें करंज श्लेष्म विरेचक द्रव्य है। महर्षि सुश्रुत ने कफसंशमन द्रव्यों के अन्तर्गत करंज को कहा है। इसके अतिरिक्त यह आरग्वधादिगण, अर्कादिगण, श्यामादिगण तथा शिरोविरेचन गण के अन्तर्गत भी लिखित है। इनमें आरग्वधादिगण श्लेष्मा, विष, मेह, कुष्ठ, ज्वर, वमि और कण्डूहर तथा व्रणशोधन है। अर्कादिगण कफ, मेद, विष, कृमि कुष्ठहर तथा विशेषतः व्रणशोधन है। श्यामादिगण गुल्म, विष, आनाह, उदररोग, विबन्ध तथा उदावर्तरोगहर है। संशोधन द्रव्यों की गणना में शिरोविरेचन द्रव्यों में पिप्पलीविडङ्गादि जो द्रव्य कहे हैं उनमें करंज भी है।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह शिम्बीकुल (लेग्युमिनोसी-Leguminosae) की औषधि है। आचार्य भावमिश्र ने इसका अपने निघण्टु के गुडूच्यादि वर्ग में वर्णन किया है। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने कण्डूघ्न द्रव्यों में इसका सर्वप्रथम वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—करंज (जल को रंगने वाला), नक्तमाल (रात्रि में शोभायमान), गुच्छपुष्पक (गुच्छेदार पुष्पों से युक्त), घृतपूर्ण (बीजों में घृत के समान गाढा तैल होने के कारण), स्निग्ध पत्र (चिकने पत्तों वाला)।

हिन्दी—डिठौरी, करुअइनी।

मराठी—करंज।

गुजराती—करंज, कणझी।

बंगला—डहर करंज।

तेलगू—पुनगु, कनक।

तामिल—पोंगम्।

मलयालम—पोन्नम्।

काश्मीरी—होंगे।

राजस्थानी—कुलगच, किणगच।

अंग्रेजी—इण्डियन बीच (Indian Beech)।

लैटिन—पोंगेमिया पिनेटा (Pongamia Pinnatta)।

उत्पत्ति स्थान—इसके वृक्ष मध्य और पूर्वी हिमाचल प्रदेश (४००० फीट तक), दक्षिण भारत एवं लंका में विशेषतः उसके तटवर्ती स्थानों में मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में तिक्त और गाढे रंग का तैल Pongamia oil (करंज तैल) २७-३९ प्रतिशत होता है। इसमें करंजीन (Karanjin) नामक सक्रिय तत्व होता है। इसकी मुख्यतः जन्तुघ्न क्रिया होती है। पोंगेमाल (Pongamol) भी इसमें मिलता है।

मूलत्वक् में कनुगिन (Kanugin) तथा डिमेथोक्सि कनुगिन (Demethoxy Kanugin) नामक दो तत्व होते है। पुष्प में पोंगेमिन (Pongamin) क्वर्सिटिन आदि तत्व होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसके वृक्ष मध्यम आकार के २५-५० फीट ऊंचे होते हैं।

पत्र—८-१४ इञ्च लम्बे विषमपत्रक होते हैं जिनमें ५-७ चमकीले, आयताकार, लट्वाकार ० ५ इञ्च लम्बे पत्रक लगे रहते हैं।

पुष्प—नीलाभ श्वेत, कक्षीय मंजरियों में लगते हैं। बहिर्दल—भूरे रङ्ग का तथा अन्तर्दल ½ इञ्च का होता है। इसके ध्वज का पृष्ठ भाग रेशमी होता है। पुंकेशर १० होते हैं जिनमें दशवां केशर पुष्प के ठीक मध्य में होता है।

फल—१३-२ इन्च लम्बा, चपटा, चिकना, काष्ठीय तथा पीछे की ओर कुछ मुड़ा होता है। अग्रभाग भी चञ्चुवत्, नुकीला और मुड़ा हुआ होता है।

बीज—प्रत्येक फल में एक अण्डाकार या वृक्काकार, १.७-२ से० मी० लम्बा १.२-१.८ से० मी० चौड़ा, सिकुड़नयुक्त, रक्ताभ भूरे चर्मवत् आवरण से युक्त तथा तैल से पूर्ण होता है। मई-जून में इसके पुष्प तथा दिसम्बर-जनवरी में फल लगते हैं।

साहित्य में करंज वर्णन—प्रकृति प्रेमी महाकवि कालिदास ने बहुत से प्राकृतिक स्थानों के वर्णन प्रसङ्ग में वहाँ उत्पन्न वनौषधियों का मार्मिक वर्णन किया है। रघुवंश महाकाव्य में रेवातीर वर्णन में नक्तमाल (करंज) का भी स्मरण किया गया है।

स नर्मदारोधसि शीकरार्द्रै मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।

—रघु० ५-४२।

रस—तिक्त, कटु, कषाय।

गुण—लघु, तीक्ष्ण।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—यह उष्ण वीर्य होने से कफ एवं वात को शमन करता है तथा पित्तवर्धक है।

प्रयोज्य अङ्ग—त्वक्, पत्र और बीज।

मात्रा—त्वक् व पत्र स्वरस १०-२० मि० लि०। बीज चूर्ण १-३ ग्राम।

गुण धर्म—

करंज कटुक पाके रसे तिक्तकषायक।
कटुको गुणतस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो विनियच्छति॥
बलासपित्तकुष्ठार्शोमेदोऽहोदरव्रणक्रिमीन्।
तत्पत्र कटुक पाके रसे दीपनपाचनम्॥
कफ वातपह शोफविपार्श क्रिमिकुष्ठजित्।

—कै० निघण्टु।

करंज- कटुकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषजित्।
कुष्ठोदावर्त गुल्मार्शोव्रणक्रिमिकफापहा॥
तत्पत्र कफवातार्श क्रिमि शोथहर परम्।
भेदन कटुक पाके वीर्योष्ण [illegible]
तत्फल कफवात [illegible] मेहार्श कृमिकुष्ठजित्

—भा० नि०

करञ्जोऽग्निजित [illegible] कफपित्तास्रशोफजित्।
व्रणार्शः क्रिमीन् हन्ति [illegible] योनिदोषहा॥

—ध० नि०।

करञ्जो नक्तमाल [illegible]
उष्णवीर्यो हरेत् कुष्ठ [illegible]॥
करञ्जविटपाना तु [illegible]।
[illegible] बीजतैलं स्यात् [illegible]

—प्रियनि०

[illegible] पत्र [illegible] प्रमेहजित्।
बीज [illegible] कटुक पाके लघु वातकफापहम्॥

—गु० सू० ५६।

करंजतैल—करंजतैल की कटुतैलों में गणना की गई है।

पृथ्वीकामूल जीमूतदन्तीकवचशिग्रुजम्
निम्बातसी करंजार्कहस्तिकर्णीगुदीभवम्॥
शंखिनीनिम्बक तैल-तैल ज्योतिष्मतीभवम्।
कुसुम्भसर्षपयोद्भूत तैल सौवर्चल तथा॥

इसके गुण इस प्रकार व्यक्त किये गये हैं—

करंज ''तैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमि कुष्ठ प्रमेह शिरोरोगहराणि च।

—सु० सू० ४५/११५।

करंजतैल नयनार्तिनाशन वातामयध्वसनमुष्णतीक्ष्णम्।
कुष्ठार्तिकण्डूतिविचर्चिकादह लेपेन नानाविधचर्मदोषनुत्॥

—राजनिघण्टु।

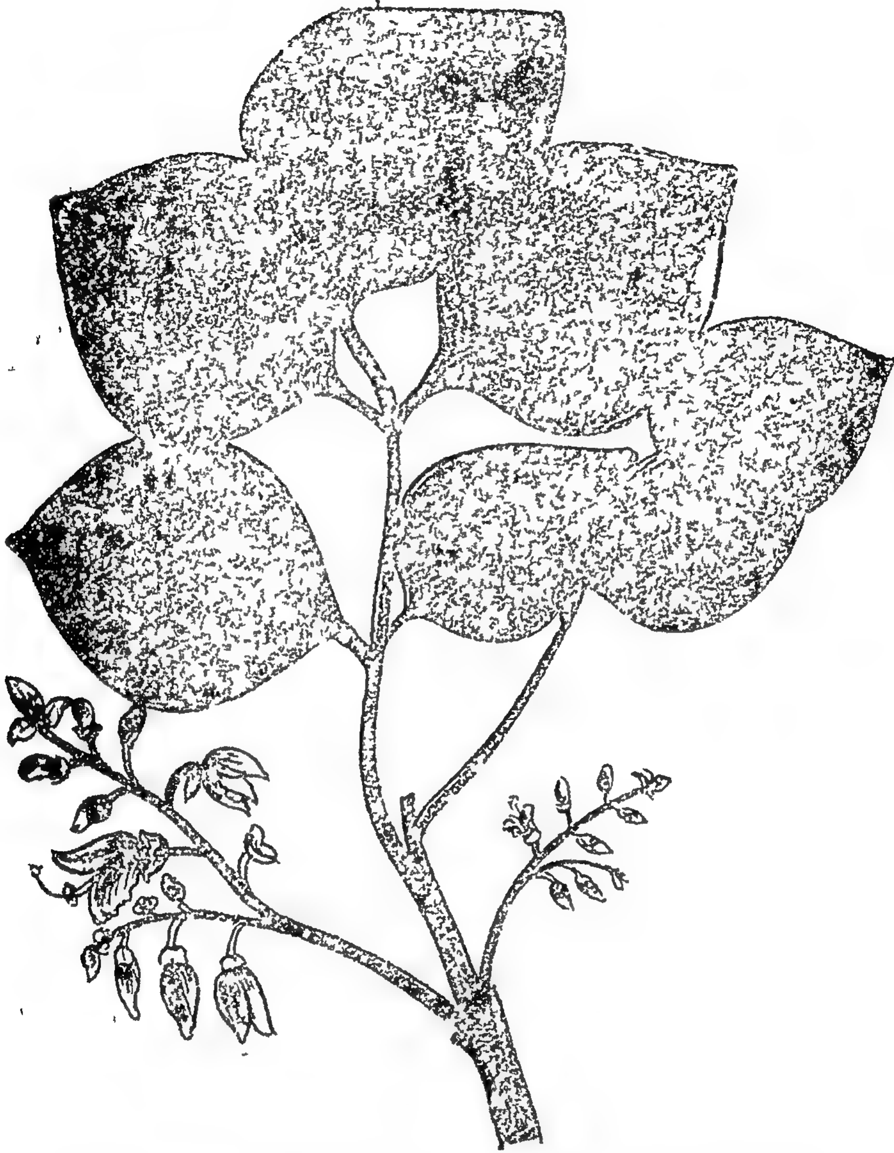
पित्तल कफवातघ्न तैलमार्ककरंजजम्।

—सि० म०।

कतिपय प्रयोग—

कारंज वा सार्षप वा क्षतेषु-
क्षेप्य तैल शिग्रुकोशाम्रयो वा।
पक्व सर्वैर्वा कटूष्णै सतिक्तै-
शेषं च स्याद्दुष्टवत् सविधानम्॥

—सु० चि० ६/५३



करञ्ज (Pongamia Pinnata)

बिभिन्न नाम : स०—करज, नक्तमाल। हिन्दी—डिठौरी। गुजराती—कणझी। मराठी—करञ्ज। बंगला—डहर करञ्ज। अंग्रेजी—इण्डियन बीच (Indian Beech)। लेटिन—पोगेमिया पिनेटा (Pongamia Pinnata)।

प्राप्ति स्थान : मध्यपूर्वी हिमालय, दक्षिण भारत, लका।

उपयोगी अंग : त्वक्, पत्र, बीज। **दोषशमन** . कफवातशामक।

रोगोपयोग : कुष्ठ, गुल्म, क्रिमि, प्रमेह, आदि।

मुख्य योग : करञ्जादि चूर्ण, करञ्जादि वटी।

करजसर्षपशोभाजनकोशाम्र बीजतैलानि स्वभावतो दुष्टव्रणयोगीनि तानि चापक्वान्येव । पक्वमित्यादि—तान्येव सर्वं कटुकैर्मरिचादिभि, तिक्तैस्तु निम्बादिभि, सामान्यकषाय परिभाषया कषायीकृतं पक्वानीति।
—डल्हण ।

तैल करजबीजोत्थ वह्निसैन्धवगाहितम् ।
चूर्णित लेपयेद्धन्ति शीघ्रमेव तु काकणम् ॥
—व० रा० १३ ।

करजपूतिकस्नेहा दुष्टव्रणेषूपयुज्यन्ते ।
—मु० चि० ३१/५ ।

करजबीजतैल स्यात् त्वग्दोषदलन परम् ।
—प्रि० नि० ।

कच्छुपामाविचर्चिकासु 'तैल वा नक्तमालजम् ।
—मु० चि० २०/१८ ।

नक्तमालजतैले नापरवेनैर, कटुकौषध ।
सिद्धेन, इत्यन्ये—
—डल्हण ।

करञ्ज रक्तशोधक कहा गया है। सुतरा कुष्ठादि रक्तविकारो मे लाभप्रद है। "न कण्डू श्लेष्मणा विना" के अनुसार विकृत रक्त एव कफ ही कण्डु को उत्पन्न करते है। त्वचागत लसीका मे विकृत रक्त मलिन कफ आदि से त्वचा के सूक्ष्म स्रोतो के अवरोध को हटाने के लिए उस जगह अपेक्षित घर्षण क्रिया के प्रवर्तक विकार का नाम कण्डु है। यह कुष्ठादि रोगो का प्राय प्रमुख लक्षणविशेष है। जैसा कि पूर्व मे कहा गया है। अत अन्य रक्तविकारो की अपेक्षा यह कण्डूनिवारण मे उत्तम कण्डुयुक्त कुष्ठो मे करञ्ज की उपादेयता प्रदर्शित की गई है—

स्तब्धानि सुप्तसुप्तान्यस्वेदनकण्डुलानि कुष्ठानि ।
कूर्चदन्तीत्रिवृताकरवीरकरञ्जकुटजानाम् ॥
—च० चि० ७/५६ ।

इसके अतिरिक्त करञ्ज के कुष्ठोपयोगी अन्य प्रयोग भी वर्णित है—

सर्षपकरञ्जकोषातकीना तैलान्यथेगुदीना च ।
कुष्ठेषु हितान्याहुस्तैल यच्चापि खदिरसारस्य ॥
—च० चि० ७/११९ ।

कुष्ठ करञ्जबीजान्येडगज. कुष्ठसूदनो लेपः ।
—च० चि० ७/९३ ।

कुष्ठमित्यादिको योगो जलपिष्टो ज्ञेय. । तेनारग्वधीयोक्ते "करञ्जबीजेडगज सकुष्ठ गोमूत्र पिष्ट च च परः प्रदेह."इत्यत्र गोमूत्रपिष्टत्व विशेषः, तेन न पौनरुक्त्यम् ।
—चक्रपाणि ।

सैन्धव दन्तीमरिच फणिज्झक पिप्पली करञ्जफलम् नस्य स्यात् सविडङ्ग क्रिमिकुष्ठ कफप्रदोषघ्नम् ॥
च० चि० ७/४८ ।

उभे हरिद्रे कुटजस्य बीज करञ्जबीज सुमनः प्रवालान् ।
त्वच समध्या ह्यमारकस्य लेप तिलक्षारयुत विदध्यात् ॥

इसके अतिरिक्त सुश्रुतोक्त महावज्रक तैल (चि० ९) तथा भेलोक्त करवीरादियोग (चि० ६) मे भी करञ्जबीज समाविष्ट है। इसका तैल विशेषेण लाभप्रद है—

तैल करञ्जबीजोत्थ वन्हिसैन्धवगाहितम् ।
चूर्णित लेपयेद्धन्ति शीघ्रमेव तु काकणम् ॥
—व० रा० १३ ।

वृक्षकार्कनक्तमालनिम्बवर्षाभूक्वाथैश्च परिषेकः ।
—सुश्रुत० चि० २३/१२ ।

तथा—

नक्तमालार्कमूलाना वृषस्यारग्वधस्य च ।
कषाय परिषिक्त तु श्वयथूना निवारणम् ॥
—भे० स० चि० १९/२७ ।

के अनुसार यह शोथ शामक भी है। व्रणशोथ मे यह विशेष उपयोगी है। दो कारणो के अनुसार व्रणशोथ की दो प्रकार से परिभाषा की गई है—"व्रणस्य पूर्वरूपत्वेनोत्पन्न शोथ. व्रणशोथ" तथा "व्रणस्य शोथ व्रणशोथ."। प्रथम कारण से उत्पन्न व्रणशोथ मे चिरबिल्व दारण होने से अधिक उपयोगी है तथा द्वितीय कारण से उत्पन्न व्रणशोथ मे उक्त करज (नक्तमाल) अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। भैषज्यरत्नावलीकार ने व्रणशोथाधिकार मे नक्तमालस्य पत्राणि से जो करञ्जाद्य घृत कहा है वह व्रणस्य शोथशामक है। करञ्ज शोथशामक होने के अतिरिक्त व्रण का शोधन एव रोपण भी करता है। उक्त घृत की प्रशस्ति मे कहा गया है—

दुष्टव्रणप्रशमन तथा नाडीविशोधनम् ।
सद्यश्छिन्नव्रणानाञ्च करञ्जाद्यमिद शुभम् ॥

—सु० चि० १६ ।

व्रणगतकृमिविनाशार्थ भी यह लाभप्रद है—

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद् व्रणकृमीन् ।

—व० राजीयम् ।

दुष्ट पिडिकाओ को नष्ट करने हेतु भोजराज ने एक उत्तम लेप कहा है—

नक्तमालतरुबीजविमिश्रै
सर्षपैस्तिलयुतैश्च पेपितै. ।
यान्ति दुष्टपिडिका· प्रतिक्षण
लेपिता विलयमाशु देहिनाम् ॥

—राज० मा० क्षु० ३४ ।

क्षुद्ररोगो मे ही एक रोग "अलस" नाम से वर्णित है जो दूषित कीचड के सयोग से पावो के आर्द्र रहने से अगुलियो के बीच मे हो जाता है जिसे लोक मे खारवा, पिर्वा, कदरी आदि नामो से जाना जाता है। यह करञ्जक्वाथ मे निम्बुकस्वरस मिलाकर पैर धोने से ठीक हो जाता है । इसके अतिरिक्त इसमे उक्त करञ्जाद्य घृत भी लाभप्रद है । वैद्यवर वसवराज ने एक प्रयोग दिया है—

करञ्जबीज रजनी कासीस पद्मक मधु
रोचना हरिताल च लेपोऽयमलसे हितम् ॥

स्वरचित प्रयोगपुष्पाञ्जली मे भी एक प्रयोग नक्तमालादि वर्णित है—

नक्तमाल खस रोचना पल्लव निम्ब पटोल ।
अलस विनाशन श्रेष्ठ ये निशा शिवा हिम बोल ॥

यह रक्तप्रसादन होने से वातरक्त मे भी लाभप्रद है । कहा भी गया है—

करजबन्दाककुलीरमन्दिरै -
प्रशस्तमुल्लेखनमम्लकाजिकै ।
कटूष्णमाश्वेव विनाशयेद्भुव-
प्रभजनास्र प्रवनो यथाऽम्बुदम् ॥

—वैद्य मनोरमा ।

आमवात एव सन्धिवात की भी यह प्रशस्त औषधि है । सन्धिवात के लक्षण इस प्रकार कहे गये है—

शरीर गन्धलिप्त च शूल वायुप्रकोपत ।
देहे च विकृतिश्चैव रोमहर्षो विलापनम् ॥
अङ्गसन्धिषु पीडा च सन्धिवातस्य लक्षणम् ।

—व० रा० ६ ।

"औषधि कल्पलता" मे करजकल्प निर्दिष्ट है—

तैलेन पाचिता तस्य जटा वैद्यानुकोमलाम् ।
जयेदवश्य नियत सन्धिवात न सशय ॥

महर्षि सुश्रुत ने वातव्याधि चिकित्सा मे जो पत्र लवण लिखा है उसमे नक्तमाल (करज) की भी उपयोगिता प्रकट की गई है । व्याख्याकार आचार्य डल्हण ने इस पत्रलवण को कफ प्राय वातरोगो मे उपयोगी कहा है किंवा—

वातप्रधानेषु कफ प्रधानेषु वा तथा सकुचिताध्मातादिषु भोजनोपयोगीनि लवणान्युत्पादनन्नाह गन्धर्वेत्यादि । गन्धर्वहस्त एरण्ड, नक्तमाल करज, पूतीकश्चिरविल्व, सर्वपत्रसम लवण सैन्धव देयमिति वृद्धवैद्या ।

उरुस्तम्भ चिकित्सा मे महर्षि भेल ने जो "वंशादियोग" एव "पिचुमन्दादि उद्वर्तन" कहा है उसमे नक्तमाल लिया गया है । इसके अतिरिक्त करंजादि लेप इस प्रकार वर्णित किया गया है—

करजस्सुरसो विल्व देवदारु वचार्जुनौ ।
तर्करी मेषश्रृङ्गी च शोभाजन आरली ॥
उभे वृहत्यौ स्योनाक श्वदट्रा खदिरासने ।
जलसिद्धैरिमैस्तुल्यै कषाये परिषेचनम् ॥
एतैरेवौषधैस्तुल्यै क्षीरपिष्टै प्रलेपयेत् ।
अनेन विधिना शीघ्रमूरुस्तम्भ प्रशाम्यति ॥

— भै० स० चि० १६ ।

इसी प्रकरण मे चरकोक्त उत्सादन प्रयोग भी वर्णित है—

वल्मीकमृत्तिकामूल करजस्य फल त्वचम् ।
इष्टकाना ततश्चूर्णं कुर्यादुत्सादन भृशम् ॥

—च० चि० २७/४९ ।

इसके बीजो का चूर्ण शिरोविरेचन होने से नस्य रूपेण शिरोरोगो मे उपयोगी है। वैद्यवर शार्ङ्गधर ने त्रिशती मे जो प्रचेतना वटी (अञ्जनार्थ) वर्णित की यह शिरोरोग, अक्षिरोग, भ्रम, अपस्मार, चित्त-भ्रमादि रोगो मे लाभप्रद है। इस वटी के निर्माण मे करञ्ज बीज भी काम मे लाये जाते हैं।

अपस्मारादि इन रोगो मे करञ्जादियोग भी उपयोगी है—

करञ्जदारुसिद्धार्थकटभी रामठ वचा।
समङ्गा त्रिफला व्योष प्रियङ्गुश्च समाशका ॥
वस्तमूत्रेण सपिष्य नस्यपानाञ्जनादिषु।
योज्या योगोऽयमुन्मादेऽपस्मारे भूतरोगिषु ॥
—योगरत्नाकर।

आचार्य वाग्भट ने इस योग को इस प्रकार कहा है—
त्रिफलाव्योषपीतद्रुयवक्षारफणिज्जकै।
श्यामापामार्गकारञ्ज बीजैस्तैल विपाचितम् ॥
वस्तमूत्रे हित नस्य चूर्णं वाध्मापयेद्भिषक्।
—अ० हृ० उ० ७/३२।

नेत्रगतपुष्प एव पाण्डुता को नष्ट करने मे भी इनके बीजो की उपादेयता है—
किंशुकस्य रसभावित मुहुर्नक्तमालतरुबीज रज।
वर्तियोगविधिना विनाशयत्याशु नेत्रगतपुष्पपाण्डुताम् ॥
—रा० मा० ने० १४।

यह मूत्रसंग्रहणीय होने से प्रमेह मे भी लाभ पहुँचाता है। प्रमेह विनाशक प्रसिद्ध न्यग्रोधादि चूर्ण का करञ्ज मुख्य घटक है। सभी प्रकार के प्रमेह मे उपयोगी द्रव्यो का विवरण महर्षि सुश्रुत ने दिया है उनमे शुक्रमेहोपयोगी द्रव्य कहे हैं—
शुक्रमेहिन दूर्वाशैवलप्लवहठकरञ्जकसेरुकषाय पाययेत्।
—सु० चि० १२/९।

मधुमेह अथवा क्षौद्रमेह के अतिरिक्त इक्षुमेह मे भी मूत्र मे मधुरता होती है। मधुमेह मे वात की प्रधानता होती है जबकि इक्षुमेह मे कफ की प्रधानता है। इक्षुमेह मे मूत्र से शर्करा जाती है किन्तु जब रक्त मे भी शर्कराधिक्य स्वाभाविकापेक्षया हो जाता है तब उसे मधुमेह कहा जाता है। इक्षुमेह के लक्षण इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

अत्यर्थं मधुर शीत मूत्र मेहति यो भृशम्।
शीतमेहिन्माहस्त पुरुष .... ॥
—च० नि० ४/१९।

करञ्ज तिक्त तथा कफघ्न होने से विशेषतया इक्षुमेह मे लाभप्रद कहा गया है। इक्षुमेह मे इसके पुष्प किंवा पत्र उपयोगी हैं। एक प्रयोग है—

करञ्ज शुण्ठी भूनिम्ब निम्ब गिलोय विडङ्ग।
कणामूला कणा कटुका इक्षुमेह कर भङ्ग ॥

यह कटु एव तिक्त होने से दीपन पाचन है। उष्ण एव तीक्ष्ण होने से भेदन कृमिघ्न तथा यकृदुत्तेजक है। सुतरा अग्निमान्द्य, अर्श, गुल्म, कृमि, विबन्ध, उदावर्त एव उदररोगो मे हितावह है। उक्त रोगो में इसकी छाल एव पत्रस्वरस अधिक लाभप्रद है। कृमिरोग मे बीज तैल भी उपयोगी कहा गया है। अब क्रमश इन रोगों मे करञ्ज उपयोग का शास्त्रीय वर्णन अपेक्षित है—

अर्कपय स्नुहीकाण्ड कटुकालाबुपल्लवा।
करञ्जो वस्तमूत्र च लेपन श्रेष्ठमर्शसाम् ॥
—अ० हृ० चि० ८।

करञ्जपल्लवान्खादेद्वातवर्चोऽनुलोमनम्।
—अ० हृ० ८/५४।

कीटारिकम्पिल्लकरञ्जशीप्या-
पलाशबीजानि विचूर्णितानि।
गुडेन मनीय गुडीकृतानि-
कुक्षिस्थकीटप्रणिपातनानि ॥
—सि० भै० मञ्जूषा।

करञ्जनिम्बशिखरीगुडूच्यर्जकवत्सकै।
पीत कषायो वमनाद्घोरा हन्ति विसूचिकाम् ॥
—च० द० ६/८७।

करञ्जलवण नाम स्निग्धभाण्डस्थित च तद्।
गुल्मप्लीहशूलरक्तगुल्म विनाशयेत् ॥
—व० रा० १९।

मुस्ताकरजमूलत्वक् शुण्ठीभिः क्वथित जलम् ।
प्रवाहिणे हित श्रेष्ठ गुदभ्रशञ्च नाशयेत् ॥
—ववा० मणि० ।

ग्रन्थिवीसर्पशूले—

नक्तमालत्वचा शुष्कमूलकं कलिनाऽथवा ।
—अ० हृ० चि० १८/२५

विषरोगे—

विल्वस्य मूलं सुरसस्य पुष्प-
फल करजस्य नत सुराह्वम् ।
फलत्रिकं व्योषनिशाद्वय च-
वस्तस्य मूत्रेण सुसूक्ष्मपिष्टम् ॥
भुजङ्गलूतोन्दुर वृश्चिकाद्यं-
विषूचिका जीर्णगर ज्वरैश्च ।
आर्तान्नरान्भूत विधर्षिताश्च-
स्वस्थीकरोत्यञ्जनपाननस्यैः ॥
—अ० हृ० उ० ३६ ।

यह उष्ण और तीक्ष्ण होने से गर्भाशयविशोधक भी है । इसके अतिरिक्त कफघ्न एव कासहर होने से कास में भी लाभप्रद है । कुक्कुरकास (Whooping cough) मे यह विशेषत लाभप्रद है। इसके बीजो का चूर्ण किंवा बीजो को पानी मे घिसकर उष्ण कर देना कुक्कुरकास में हितकर होता है । यह व्याधि सक्रामक है । जब इसका प्रकोप हो या घर मे एक बच्चे को यह कास हो जाने पर अन्य बच्चो को उसके सक्रमण से बचाने के लिए बच्चो को इसके बीजो की माला पहिना देना उपयुक्त । इस प्रकार इसके प्रयोग से उक्त कासरोग से बचाया जा सकता है ।

भगवान् चरक ने श्वित्र को त्रिदोषज कहा है फिर भी दोषो की उल्बणता के अनुसार इसके वात, पित्त, कफजन्य भेद किये हैं । यथाहि—

विज्ञेय त्रिविधं तच्च त्रिदोष प्रायशञ्चतत् ।
—च० चि० ७ ।

वातजन्य श्वित्र अरुण एव रूक्ष होता है यह रक्ताश्रित होता है । पित्तजन्य श्वित्र ताम्रवर्ण का होता है इसमे दाह होता है यह मासाश्रित होता है । कफजन्य श्वित्र श्वेतवर्ण, स्निग्ध, स्थूल और कण्डूयुक्त होता है—"श्लेष्मणा श्वेत स्निग्ध बहल कण्डूमञ्च तत् ।" यह मेदाश्रित होता है । धन्वन्तरि पत्रिका के नवम्बर १९७२ के अक मे श्री जवाहरलाल झा ने इस रोग पर एक विशेष लेख प्रस्तुत किया है । इसकी चिकित्सा मे इन्होने वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, सूर्यकिरण सेवन को अधिक महत्व दिया है तथा औषधि द्रव्यो मे वाकुची तथा करज की प्रधानता प्रदर्शित की है । वस्तुत करज कुष्ठघ्न द्रव्य होने से श्वित्र मे भी लाभप्रद है । श्वित्र एव कुष्ठ के कारणो मे प्राय समानता है अतएव आचार्यों ने कुष्ठ-प्रकरण मे ही श्वित्र का वर्णन किया है । फिर भी यह स्मरण रहे कि करज कफ, वातशामक द्रव्य है सुतरा कफोल्वण किंवा वातोल्वण श्वित्ररोग मे ही यह लाभ पहुँचाता है । स्वय पित्तवर्धक होने से पित्तजन्य किंवा मासाश्रित श्वित्र मे इसका उपयोग उपयुक्त नही है क्योकि यह पित्त की वृद्धि कर दाहादि को बढा सकता है ।

इसके अतिरिक्त यह कैंसर (कर्कटार्बुद) मे भी लाभप्रद पाया गया है । इण्डियन कैन्सर रिसर्च इन्स्टट्यिट बम्बई के डायरेक्टर डा० वी० ए० खानोलकर ने करज के बीजो के अर्क के कैन्सर नाशक प्रभाव पर अनुसन्धान कर यह प्रमाणित किया था (सचित्र आयुर्वेद अप्रैल (१९८१) ।

वैद्यरत्न सुखरामदास जी ओझा की राय से विद्रधि के बाह्य एव आभ्यन्तर भेद कैन्सर कहला सकते हैं । करज बाह्य एव आभ्यन्तर विद्रधि मे लाभप्रद कहा गया है अत आप कैन्सर मे करंज को उपयोगी मानते है । इन्होने करज के प्रयोग से कई कैन्सर के रोगी ठीक किये । कैन्सर के रोगियो को आप करजादि घृत के साथ वरुणादिक्वाथ पिलाते थे और इससे रोगियो को लाभ पहुँचाते थे ।

इस सम्पूर्ण विवरण के साथ यह भी स्मरण दिलाना आवश्यक है कि करजवृक्ष की छोटी शाखायें दातुन के भी काम आती है इससे दात क्रमिरहित तथा स्वच्छ होते हैं । इस दातुन से मुख की दुर्गन्ध दूर होकर भोजन मे रुचि होती है । अत कहा है—"करजविटपानां तु दन्तधावनमिष्यते ।"

यूनानी मतानुसार—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे मे गरम और तीसरे दर्जे मे खुश्क है यह आख की ज्योति को भी तेज करता है। इसके पत्ते और फूल पेशाव की बीमारियो को दूर करते हैं। यह दाद, खुजली, फोडे-फुसी आदि चर्म रोगो मे भी लाभप्रद है। यह कृमि-रोग मे भी लाभदायक है। यूनानी हकीम करज की जड को स्तम्भन मानते है। उनका कहना है कि करज की जड को दात के नीचे दवाकर स्त्री सहवास करने से स्तम्भनशक्ति वढती है। खजानुल अदविया के लेखक ने लिखा है कि करज के वीज साप और विच्छू के जहर मे भी मुफीद है।

आधुनिक मतानुसार—कर्नल चोपडा के मतानुसार इसके पत्तो को उवाल कर उस जल से स्नान करना आमवात मे हितकारी है। इसके मूल का स्वरस दुष्ट विद्रधि का शोधन करने मे श्रेष्ठ है। इसका तैल खाज-खुजली एव अन्य चर्मरोगो मे लाभप्रद है। तैल के अन्त प्रयोग से मन्दाग्नि दूर होती है यकृत् सक्रिय होता है। इसके बीजो का चूर्ण पौष्टिक माना गया है। यह ज्वरहर चूर्ण कफनि सारक होने से विशेषत कुक्कुर कास मे लाभदायक है।

रावर्टस के मतानुसार सीलोन मे साप के जहर को उतारने के लिए ताजा वीज या जड को पानी या नर-मूत्र मे पीसकर आखो मे आजा जाता है। इसकी कुछ बूद नाक मे भी टपकाई जाती हैं जिससे वेहोशी दूर हो जाती है।

पटवर्धन के मतानुसार इसका तैल खाज-खुजली, दद्रु आदि कई चर्मरोगो मे तथा शस्त्र से उत्पन्न घावो के भरने मे श्रेष्ठ है।

गिप्सन के मतानुसार भी इसका तैल चर्मरोगो की श्रेष्ठ औषधि है। नीबू के रस के साथ तैल मिलाकर लेप करने से चर्मरोग तथा आमवात मे लाभ होता है।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग

(१) नेत्ररोग—करजफल चूर्ण को पलाशपुष्प स्वरस की २१ भावना देकर कुछ उसे सुखा लें और उसकी वर्त्तिकायें बना ले, इस वर्त्तिका को जल में घिसकर आख मे लगावे इससे आख की फूली कट जाती है।

(२) अर्श—इसके कोमल पत्तो को पीसकर अर्शांकुरो पर प्रलेप करने से रक्तस्राव रुकता है। पत्तो को गोमूत्र मे पीसकर भी लेप करना हितावह है।

(३) कुष्ठ—इसके पत्र, नीमपत्र और खदिरपत्र को गोमूत्र मे पीसकर लेप करने से तथा इन्ही पत्रो के क्वाथ से स्नान कराने से कुष्ठ मे लाभ होता है।

(४) श्वित्र—[क] इसके बीजो के साथ सफेद कन्नेर का मूल पीसकर लेप करें।

[ख] इसके वीज, हरिद्रा, हरड और राई को पीसकर लेप करना भी श्वित्र मे हितकर है।

(५) व्रण—[क] पत्तो का उपनाह बनाकर बाधे।

[ख] इसके कोमलपत्र स्वरस तथा नीमपत्र स्वरस मे प्लोत को तर कर बाधने से व्रण का शोधन-रोपण शीघ्र होता है।

[ग] पत्तों को काजी मे पीसकर उष्ण कर बाधने से व्रण का शोथ मिटता है तथा वे शुद्ध होते हैं।

[घ] व्रण की सूजन को दूर करने के लिये इसके पत्र, नीम के पत्र तथा निर्गुण्डी के पत्र का उपनाह बनाकर बाधना चाहिये।

(६) विद्रधि—करज बीज मज्जा को थूहर के पत्र स्वरस मे पीसकर लगावें।

(७) पामा—इसके पत्र क्वाथ से स्नान कर पत्र स्वरस लगावें।

(८) आमवात—पत्र क्वाथ का स्वेदन करें तथा पत्र क्वाथ से स्नान करे।

(९) अर्धावभेदक—इसके पुष्प के साथ गुड मिलाकर अथवा बीज को पानी मे पीसकर उसमे गुड़ मिलाकर किंचित् उष्ण कर छानकर जिस ओर शूल हो उसके विरुद्ध वाले नासारन्ध्र मे एक-दो बूद टपकावें फिर आधा घण्टे के वाद दूसरे नासारन्ध्र मे भी टपकावें। ऐसा कुछ दिन करने से पूर्ण लाभ होता है।

(१०) विस्फोटक—इसके बीज, तिल और सरसो समभाग लेकर पीसकर लेप करने से विस्फोटक मिटता है।

(११) इन्द्रलुप्त—इसके पुष्पो को पीसकर सिर मे लेप करने से बाल उगते हैं।

(१२) विसर्प—करज की छाल का कल्क उष्ण कर लेप करें।

(१३) उरुस्तम्भ—करंज पञ्चाङ्ग और अग्निमन्थ को गोमूत्र मे पीसकर लेप करना हितावह है।

(१४) अरुचि—करज शाखा की दातुन करने से भोजन मे रुचि उत्पन्न होती है।

(१५) अण्डवृद्धि—बीजो को जल मे पीसकर लेप करें।

(१६) सन्धिवात—करजमूल को तैल मे पकाकर अभ्यङ्ग करें।

(१७) स्तम्भनहेतु—पत्र स्वरस को हथेली तथा पैरों के तलुओ पर मर्दन करने से शुक्र का स्तम्भन होता है।

(१८) युवानपिडिका—बीजो को दूध मे भिगोकर पीसकर चेहरे पर मलने से मुख पर हुई युवान पिडिकाये नष्ट होकर मुख की कान्ति बढती है।

(१९) मूषकविष—बीज एव छाल को पीसकर दंश स्थान पर लगावे।

(२०) ज्वर—बीज को जल मे पीसकर मस्तक पर लेप करने से विशेषत कफजन्य ज्वर मे शान्ति मिलती है। इसका लेप हाथ पैरो पर भी करना चाहिये।

(२१) शिर:शूल—बीज मज्जा के साथ समभाग सहजने के बीज, तेजपात, वच और खाड मिला खरलकर महीन चूर्ण बना ले। उसके नस्य से छीकें आती हैं जिससे दूषित जल निकल जाता है और शिर शूल मिट जाता है।

(२२) गर्भपात निवारणार्थ—कुसुम के रङ्ग से रगे हुये कपडे मे इसका एक बीज लाल धागे से बाधकर गर्भवती की कमर मे बाध देने से गर्भपात होने का भय नही रहता।

(२३) अस्थिव्रण—त्वक् स्वरस मे तिल तैल तथा थोड़ा सा नीलाथोथा मिलाकर लेप करें।

(२४) भगन्दर—त्वक् स्वरस की पिचकारी भगन्दर व्रण मे लगाने से व्रण का शोधन होता है।

करंज तैल के प्रयोग----

(१) कर्णस्राव—कान मे तैल डालने से कर्णस्राव मिटता है।

(२) युवान पिडिका—इस तैल को युवान पिडिकाओ पर लगावें।

(३) इन्द्रलुप्त—सिर पर इस तैल का अभ्यङ्ग लाभप्रद है।

(४) आमवात—आमवात मे सन्धिस्थानो पर इस तैल का अभ्यङ्ग हितकारक है।

(५) यूकानाशार्थ—बालो मे जूयें हो जाने पर इस तैल की अच्छी तरह मालिश करे।

(६) कुष्ठ—कुष्ठ के घावो पर यह तैल लगावे।

(७) कण्डू—इस तैल मे यशदपुष्प (जिंक आक्साइड) मिलाकर लगावे।

(८) काकण कुष्ठ—इसके तैल मे चित्रक और सेधानमक मिलाकर लेप करने से काकणकुष्ठ का शमन होता है।

(९) रक्तविकार—रक्त विकृति मे बाह्य प्रयोगार्थ इसका उपयोग लाभप्रद है। उपदश किंवा अन्य कारणो से शरीर पर हुये चट्टो को दूर करने के लिये इस तैल मे नीबू स्वरस मिलाकर लगावे। इससे कण्डू, व्यङ्ग, विचर्चिका आदि चर्मरोग भी मिटते है।

(१०) पामा—इसके तैल मे गधक, कपूर और नीबू स्वरस मिलाकर लगाने से पामा शीघ्र ही दूर होती है।

(११) कृमिरोग—यह बाह्य आभ्यन्तर प्रयोग से कृमियो को नष्ट करता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

[१] अर्श—(क) इसके कोमल पत्तो का कल्क बनाकर घृत किंवा तैल मे भूनकर सत्तू के साथ मिलाकर भोजन के पूर्व खावे। इससे मलावरोध दूर होकर उदरस्थ वायु का शमन होता है।

(ख) पत्तो को पीसकर छानकर पीने से भी लाभ होता है। पत्रस्वरस भी लाभप्रद होता है।

(ग) इसके मूल की छाल के चूर्ण को गोमूत्र मे पीसकर पीवे तथा पथ्य मे केवल तक्र का ही सेवन करे।

[२] छर्दि—(क) करजपत्रसिद्ध यवागू लाभप्रद है।

(ख) पत्रस्वरस मे नीबूस्वरस और मधु मिलाकर सेवन करे।

(ग) पत्रकण्टक मे सैन्धव तथा दाडिमस्वरस मिलाकर सेवन करना भी हितकर है।

(घ) कोमलपत्र और सैन्धव पीसकर उसमे नीबूस्वरस तथा काजी मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है।

(ड) बीजो को सेक कर उसके टुकडे बनाकर खावे।

(च) सिके हुये बीजो के चूर्ण मे शक्कर तथा मधु मिलाकर चाटे।

[३] कास—पत्रस्वरस मे काली मिर्च मिलाकर सेवन करें।

[४] कुक्कुर कास—बीजचूर्ण को मधु मे मिलाकर सेवन करे। अधिक लाभ के लिए इसमे बालसुधा भी मिलाया जा सकता है। बीजो को पानी मे घिसकर भी दिया जा सकता है।

[५] कुष्ठ—(क) करजपत्र, निम्बपत्र तथा खदिरपत्र स्वरस कुष्ठ मे लाभप्रद है।

(ख) पत्रस्वरस मे चित्रकमूल और सैंधेनमक का चूर्ण मिलाकर दुगने पतले दही मे मिलाकर पीने से २-३ माह मे गलित कुष्ठ का शमन होता है। इस से मन्दाग्नि दूर होती है।

[६] यकृदाल्युदर—पत्रस्वरस मे वायविडग तथा छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर भोजनोत्तर कुछ दिनो तक सेवन करना हितकर है।

[७] गुल्म—(क) यवागू के साथ पत्तो को पकाकर सेवन करने से पाचन-क्रिया मे सुधार होता है तथा गुल्मजनित शूल शान्त होता है।

(ख) करजबीज, त्रिकटु, चित्रक, हरीतकी तथा बिल्वफल चूर्ण के सेवन करने से गुल्म, शूल, श्वास आदि रोग दूर होते है।

[८] इक्षुमेह—(क) इक्षुमेह मे पुष्पो का चूर्ण हितकर है।

(ख) करजबीज, सोठ, चिरायता, नीम की छाल, गिलोय, विडग, पिप्पली, पिप्पलीमूल और कुटकी का क्वाथ इक्षुमेह को दूर करता है।

[९] अश्मरी—करजबीजमज्जा १ ग्राम को तिगुने मधु मे मिलाकर सेवन करे। दूसरे दिन इसकी मात्रा २ ग्राम करे इसी प्रकार ११ दिन तक १-१ ग्राम बढाकर पुन उसी क्रम से १-१ ग्राम घटाकर ३ ग्राम पर आ जांय। इस कल्प से अश्मरी नष्ट होती है।

[१०] शूल—बीजमज्जा चूर्ण के बराबर कालानमक, सोठ और भुनी हुई हीग मिलाकर ५०० मि०ग्रा० से १ ग्राम तक सुखोष्ण जल से सेवन करें।

[११] कृमि रोग—बीजो का अर्क ४-५ बूद लेकर उसमे १२५ मि० ग्रा० भुनी हुई हीग मिलाकर कुछ दिन सेवन करे।

[१२] पूयमेह—मूलत्वक् स्वरस मे (अभाव मे छाल के क्वाथ मे) नारियल का जल और चूर्णोदक (चूने का निथरा हुआ जल) समभाग मिलाकर पीने से पूयमेह मे लाभ होता है।

[१३] बहुमूत्र—पुष्पो का क्वाथ किंवा फाँट किंवा शुष्क कर चूर्ण बनाकर सेवन करने से बहुमूत्र तथा तज्जन्य पिपासा शान्त होती है।

[१४] प्रसूतिकष्ट—करंजफल बीजमज्जा चूर्ण को शर्करा के साथ खाने से बालक सुखपूर्वक पैदा होता है।

[१५] पुसंवन हेतु—करज की छाल, लहसुन को खूब पीसकर दही मे मिलाकर गर्भवती को दूसरे-तीसरे माह मे खिलाने से पुत्र लाभ होता है।

[१६] अन्तर्विद्रधि—करजमूल को गोमूत्र मे पीसकर तीन दिनो तक पान करे और गाय का ही तक्र इससे अन्तर्विद्रधि का शीघ्र शमन होता है।

[१७] नेत्र रोग—फलो को भून कर खाने से मोतियाबिन्दु मिटता है।

[१८] शीताद—करजबीज मज्जा चूर्ण मे मिश्री मिलाकर सेवन करने से शीताद मे लाभ होता है। दांतो से रक्त गिरना शीघ्रही बन्द हो जाता है।

[१९] गुदभ्रंश—करज मूल की छाल, सोठ और नागरमोथा के क्वाथ के पान करने से गुदभ्रंश मे लाभ होता है। इस प्रयोग से प्रवाहिका भी दूर होती है।

[२०] रक्तपित्त—करञ्जफलमज्जा चूर्ण को असमान घृत, मधु मे मिलाकर सेवन करने से रक्तपित्त मे लाभ होता है।

[२१] विष रोग—करजफलमज्जा, बिल्वमूल, मजीठ के पुष्प, देवदारु, त्रिकटु एवं दोनो हरिद्रा को बकरे के मूत्र मे पीसकर रखे। इसके पान से सर्प, मकड़ी, मूषक, वृश्चिक आदि से और हैजा, अजीर्ण, कृत्रिम विषजन्य विकारों से पीड़ित रोगी लाभ प्राप्त करता है। भूताभिषङ्ग तथा ज्वर से पीड़ित रोगी को भी इस प्रयोग से लाभ मिलता है। पान के अतिरिक्त इस चूर्ण को बकरे के मूत्र मे ही पीसकर अजन के रूप में या नस्य के रूप मे भी उपयोग मे लाना लाभदायक कहा गया है।

विविध कल्पनायें—

१ करंजादि क्वाथ—करंज, नीम की छाल, अपामार्ग, गिलोय, श्वेत तुलसी और कुंडे की छाल प्रत्येक ४ ४ ग्राम लेकर क्वाथ बनावे। जिस विसूचिका के रोगी को वमन कराने की आवश्यता हो उसे यह क्वाथ पिलावे। इस क्वाथ के पीने से वमन होगा। इससे जहर निकल जायेगा। और विसूचिका शान्त हो जायेगी। —चक्रदत्त।

२. करंजादि चूर्ण—(क) करंज, चित्रक, सैंधानमक, सोठ, इन्द्रजौ, अरलू का चूर्ण तक्र के अनुपान से सेवन करें। इसके सेवन से अर्श विशषत रक्तार्श का निवारण होता है। मात्रा १-३ ग्राम। —भै० र०।

(ख) भुने करज की गुदी, कालानमक, सोंठ घी मे भूनी हीग सभी समान भाग लेकर कपडछन चर्ण करलें। मात्रा ३-४ ग्राम, अनुपान—एरण्डमूल, सोठ का क्वाथ किंवा उष्ण जल। इसके सेवन से वातजन्य उदरशूल नष्ट होता है। —यो० रत्नाकर।

३ करंजादि घृत (क) करज के नवीन पत्ते और फल, चमेली के पत्ते, परवल, नीम के पत्ते, हल्दी, दारु हल्दी, मोम, मुलेठी, कुटकी, मजीठ, लालचन्दन, खस, नीलोफर, श्वेत अनन्तमूल, कृष्ण अतन्तमूल, और निशोथ इन प्रत्येक औषधियो के १२-१२ ग्राम कल्क से १ प्रस्थ (७६८ ग्राम) घृत को ८ प्रस्थ जल के साथ पाक करें। यह घृत दूपित व्रणो को शान्त करने वाला तथा नाडीव्रण को दूर करने वाला है। यह सद्योव्रण को भी शीघ्र ही अच्छा करता है। —चक्रदत्त।

(ख) करञ्ज की जड़ की छाल, नीम के पत्ते, अर्जुन की छाल, शाल की छाल, जामुन की छाल, वरगद की छाल, पीपल की छाल, गूलर की छाल पाकर की छाल, सिरस की छाल के क्वाथ तथा कल्क से घृत सिद्ध करलें। घृत ४ किलो, क्वाथार्थ द्रव्य ८ किलो जल ६४ किलो, शेष १६ किलो, कल्क द्रव्य १ किलो लेकर घृत सिद्ध करें।

इसके पीने तथा लगाने से जलन, पाक, शिश्न से पूयादि का स्राव होना तथा तदनुगत् लालिमा सहित उपदंश रोग नष्ट होता है। —चक्रदत्त।

४. करंजादि तैल—करञ्जबीज, चित्रकमूल, चमेली के पुष्प, कन्नेर की जड प्रत्येक ४०-४० ग्राम लेकर कल्क बनालें और तिल तैल ६४० ग्राम मे इसका पाक करे। परिपाक हो जाने पर उतार कर छान लें तथा सुरक्षित रखलें। इस तैल की मालिश करने से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट होता है। —शा० स०।

५ करंजवर्ति—करज के बीजो से मिंगी निकालकर चूर्ण बनालें और इस चूर्ण को अनेक बार पलाश (ढाक) के फूलो के स्वरस की भावनाए देकर वर्तिका बनालें। इस वर्तिका को नेत्रो मे लगाने से शुक्र (फूला) आदि शस्त्र क्रियासाध्य आखो के रोग नष्ट भी होते है। —शा० स०।

६. करंजादि लेप—करज की छाल, नीम की छाल और सम्मालू के पत्ते इनको समान मात्रा मे लेकर खूब पीसकर इसमे थोड़ा सा घृत मिलाकर लेप करने से व्रणगत कृमि नष्ट हो जाते है। —शा० स०।

चिरबिल्व (Holoptelea Integrifolia)

चिरविल्व को भगवान् चरक ने भेदनीय गण मे कहा है। इसके उपयोग से आतो की पुरस्सरण गति बढ जाती है और द्रव भी अधिक निकलता है। वेगपूर्वक मल का नि.सरण होता है, सुतरा इसे भेदन की सज्ञा मिली है। इसके अतिरिक्त इसको लेखनीयगण मे भी वर्णित किया है। जैसा कि कहा गया है—"मुस्तकुष्ठहरिद्रादारुहरिद्रावचातिविषाकटुरोहिणीचित्रकचिरविल्वहैमवत्य इति दशेमानि लेखनीयानि भवन्ति।" (च० सू० ४)। पतला करना या कृशता करना औषधि कर्म मे लेखन है। शस्त्रकर्म मे घर्षण करके ऊपर के दोष मांस या त्वक् को पृथक् कर देना लेखन है। इसकी परिभाषा व्याख्याकारो ने इस प्रकार दी है—लेखनं कर्शनं, तस्मै हित लेखनीयम्। —योगीन्द्रनाथ।

लेखन देहे उरलेपादिकान् भावान् विच्छिनत्ति।

—इन्दु।

लेखन पत्तलीकरणम्। —डल्हण।

यद् द्रव्य धातून रसादीन् मलान् वा विशोष्य शुष्कान् कृत्वा लेखयेत् स्कूलस्य कृशता कारयेत् तल्लेखनम्। —आढमल्ल।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह चिरविल्व कुल (Ulmaceae) की औषधि है।

उत्पत्ति स्थान—यह समस्त भारत मे दो हजार फीट की ऊचाई तक के स्थान पर पाया जाता है। विशेषतया पजाव, गुजरात-काठियावाड, बुन्देलखण्ड, अजमेर, आसाम मे पाया जाता है।

नाम—

संस्कृत—चिरविल्व, पूतिकरञ्ज, पूतिक, करञ्जी।
हिन्दी—चिलविल, कालीपपडी, वनचिल्ला।
मराठी—बावली, पापरी।
गुजराती—चरेल, कणजो।
तामिल—आपा।
तेलगु—नेविलि।
कन्नड़—नीलवाही।
मलयालम—आवल।
उड़िया—घरञ्जी।
अंग्रेजी—जगलकार्क ट्री।
लैटिन—होलोप्लेटिया इण्टेग्रिफोलिया (Holoptelea Integrifolia)।

रासायनिक संगठन—इसके बीजो से ३७ ४% एक पीले रंग का तैल निकलता है। करज की अपेक्षा इसके बीजो मे तैल कम निकलता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका वृक्ष मध्यम प्रमाण का होता है। छाल मे उभार तथा शाखायें श्वेताभ होती हैं। इसके पत्र १–८ इच लम्बे, २–४ इच चौडे, अण्डाकार-लट्वाकार, लवाग्र होते हैं। इसकी हरी पत्तियो पर पारदर्शक विन्दु दिखाई देते हैं तथा इन पत्तियो के सूख जाने पर अधर पृष्ठ पर छोटे बिन्दु की भाति उभार दिखलाई देते हैं। इसके पुष्प छोटे, हरे-पीले तथा गुच्छो मे होते हैं। इसके फल प्रायः वृत्ताकार, झिल्लीदार पंख से युक्त होते हैं।

इसके वृक्ष पर वसन्त ऋतु मे पुष्प आते हैं तथा इसके बाद फल लगते हैं।

इसके पत्र तथा छाल को मसलने से इसमे दुर्गन्ध आती है अतएव इसे पूतिकरंज कहा जाता है।

रस—तिक्त, कषाय।
गुण—लघु, रूक्ष।
वीर्य—उष्ण।
विपाक—कटु।
दोष-कर्म—कफपित्तशामक।
प्रयोज्य अङ्ग—त्वक्, पत्रशुङ्ग (नवीन पत्राकुर) बीजमज्जा।



चिरबिल्व [Holoptelea Integrifolia]

विभिन्न नाम : संस्कृत–चिरबिल्व । हिन्दी–चिलबिल । मराठी–बावली । लैटिन–होलेप्टेग्रिलिया इण्टेग्रिफोलिया (Holoptelea Integrifolia) ।

प्राप्ति स्थान : प्राय समस्त भारत में २ हजार फीट की ऊंचाई पर ।

दोषशमन : कफपित्तशामक ।

उपयोगी अङ्ग : त्वक्, पत्राकुर ।

रोगोपयोग : कृमि, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, छर्दि आदि ।

मात्रा—त्वक् क्वाथ–५०-१०० मि० लि० ।
पत्राकुर चूर्ण–२-३ ग्राम ।
वीजमज्जा चूर्ण–१-२ ग्राम ।

गुण-धर्म—

चिरविल्वस्तु पूतीको भेदनीयगणे स्मृतः ।
नवं तत्पत्र शुङ्गञ्च भेषजेषु प्रयुज्यते ॥
चिरविल्व. सरस्तिक्तो वीर्योष्णो गुल्मभेदन. ।
आनाहे जठराध्माने शूले गुल्मे प्रशस्यते ॥
—प्रियनिघण्टु ।

यह अग्निमाद्य, छर्दि, उदररोग, अर्श, कृमि, शूल, उदावर्त, गुल्म आदि पाचन-संस्थानगत रोगो को दूर करने मे श्रेष्ठ है। दीपन भेदन, कृमिघ्न एवं पित्तसारक होने से इस सस्थान की उक्त व्याधियो को दूर करने मे यह श्रेष्ठ है। जैसा कि वर्णन मिलता है—

विल्वाऽजमोदघननागरधान्यकोग्रा
पूतीकबालकशरीरदहनै श्रृताम्बु ।
तृड्शूलयो. परिपिबेत्‍‌······ ॥
—वा० मणि० ।

चिरविल्वाग्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारलुम् ।
तक्रेण पिबतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ॥
—भै० र० ।

पलाशवीजपत्तूरपूतिकाद्वा पृथिविवेत् ।
प्रशस्त कृमिरोगेषु लिह्यात्क्षौद्रयुतान्पृथक् ॥
—अ० हृ० चि० ।

पूतिकपत्रगजचिर्भटचव्यवन्हि
व्योषं च संस्तरचित लवणोपधानम् ।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमन्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरश्वयथु पाण्डुगदोद्भवेषु ।
—अ० हृ० चि० १४/३८ ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवाया
शम्पाकपूतीककरञ्जयोश्च ।
सिद्ध कषाये द्विपलांशिकाना
प्रस्थो घृतात् स्यात् प्रतिरुद्धवाते ॥
—च० चि० २६/२२ ।

तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एवसुखावह. ।
चिर विल्वाकुरान् वापि तैलभृष्टास्तु भक्षयेत् ॥
—सु० उ० ४२ ।

करञ्जमज्जो द्वितय त्रय वा
विभर्ज्य साकं पटुनानिगीर्णम् ।
शूल समूल हरति प्रसह्य
कूल यथा निर्झरिणीप्रवाहः ॥
—सि० भे० मणि० ४/५१० ।

गाढ पुरीष (कठिन मल) वाले उदर रोगी को पूति करजादि के पत्तो का शाक बनाकर खिलाना हितकर कहा गया है—

शङ्खिनी स्नुक्त्रिवृद्दन्तीचिरविल्वादिपत्रकै. ।
शाक गाढपुरीषाय प्राग्भक्त दापयेद् भिषक् ॥
—चरक० चि० १३/१६७ ।

प्लीहोदरिण पिप्पलीसैन्धवचित्रकयुक्त पूतिकरञ्ज क्षार वाम्लसुत त्रिड्लवणपिप्पलीप्रगाढम् ।
—सु० चि० १४/१३ ।

वान्ति शान्तिमुपैति मित्र लिहता कोलास्थि वा केवलं । भृष्टं वापि करञ्जवीजशकलं मसीमल माक्षिकैः ।
—सि० भे० मञ्जूषा ।

यह प्रमेहघ्न होने से प्रमेह मे भी उपयोगी है। प्रमेहोपयोगी धान्वन्तर घृत के घटकद्रव्यों मे "दशमूलं करञ्जौ द्वौ" कहकर इसका निर्देश किया गया है। भगवान् चरक ने प्रमेह चिकित्सा में एक महत्वपूर्ण बात कही है—

स्थूल प्रमेही बलवानिहैक कृशस्तथैक परिदुर्बलश्च ।
सबृंहण तत्र कृशस्यकार्यं सशोधन दोषबलाधिकस्य ।
—च० चि० ६/१५ ।

उक्त सूत्र मे चिकित्सा का महत्वपूर्ण पहलू प्रदर्शित किया गया है यह एक प्रमेह चिकित्सासूत्र ही नही अपितु सामान्य चिकित्सासूत्र कहा जायेगा। आयुर्वेद मार्तण्ड प्रात.स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी महाराज अपनी चिकित्सा मे इस सूत्र को विशेष महत्व देते थे। उनके शिष्य प्रशिष्यो ने इस प्रणाली के अनुसार चिकित्सा कर अनन्त यश प्राप्त

किया है। चिकित्सक चूडामणि माननीय पडितप्रवर श्री नन्दकिशोर जी महाराज ने अपने एतद् विषयक उद्गार इस प्रकार व्यक्त किये थे—"आयुर्वेद शास्त्र के सिद्धान्तानुसार जिस वैद्य मे लघन बृहण करने की योग्यता अथवा अनुभव हो जाता है वही चिकित्सा मे अत्यधिक सफलता प्राप्त करता है। मुझे बहुत समय पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज के चरण कमलो मे आश्रय लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैने ध्यानपूर्वक इस बात का अनुभव किया कि प्रत्येक रोगी की चिकित्सा करते समय वे अपने हृदय में इस प्रकार के शास्त्रीय सिद्धान्तो को मनन किया करते थे और फलस्वरूप जो व्यवस्था करते प्राय. बहुत अशो मे रोगी के लिये लाभप्रद ही सिद्ध होती। मेरे विचार से स्वामी जी की चिकित्सा-प्रणाली का यही रहस्य है और सर्वोत्कृष्ट है कि आर्ष ग्रन्थो को ध्यानपूर्वक पढकर मनन करते हुये रोगी की कल्याण कामना से चिकित्सा पथ मे अग्रसर होता रहे।"

चिरविल्व लेखन (कर्षण) द्रव्य है अत यह स्थूल प्रमेही के लिये उपयुक्त है। प्रमेह का भेद प्रमुख दूष्य है—

वसा मासं शरीरस्य क्लेद शुक्र सशोणितम्।
मेदो मज्जा लसीकौज प्रमेहे दूष्यसग्रह ॥

"मेदोमासादीनि त्वत्यन्तदूष्योपदर्शनार्थं पृथगुक्तानि। —कण्ठदत्त।

महर्षि सुश्रुत ने मधुमेह को मेदोदोषज माना है—"ग्रन्थिवृद्धिगलगण्डार्बुदभेदजौष्ठ प्रकोप मधुमेहातिस्थौल्यातिस्वेदप्रभृतयोमेदोदोषजा।" सुतरा यह मधुमेह मे भी उपयोगी कहा गया है।

वृद्धवाग्भट ने श्वासपीनसोपयोगी जो हिंस्रादि घृत कहा है, उसमे चिरविल्व की उपयोगिता प्रकट की गई है। महर्षि भेल ने उरुस्तम्भ चिकित्सा प्रकरण मे जो द्विपंच मूल्यादि तैल कहा है उसका भी चिरविल्व प्रमुख घटक है। आचार्य वाग्भट ने उत्तर स्थान के तीसरे अध्याय मे बालग्रहनिवारणार्थ जो स्नानद्रव्य कहे हैं उनने चिरविल्व को प्राथमिकता दी है—

पूतीकरञ्जत्वक्पत्र क्षीरिभ्यो बर्बरादपि।
तुम्बीविशालारलुकाशमीबिल्वकपित्थका।
उत्क्वाथ्य तोय तद्रात्रौ बालानास्नपन शिवम्॥

व्रणदारण मे, चिरविल्व विशेष उपयोगी कहा गया है।

चिरविल्वस्तथा दन्ती चित्रको हयमारकः।
कपोतकङ्कगृध्राना मललेपेन दारणम्॥
—व० रा० २१।

यह रक्तशोधक एव कुष्ठघ्न होने से रक्तविकारो मे तथा कुष्ठादि चर्मरोगो मे भी प्रयुक्त होता है। एक लेप महर्षि सुश्रुत ने एतद्विषयक कहा है—

पूती कार्कस्नुड् नरेन्द्रद्रुमाणा-
मूत्रै पिष्टा पल्लवा. सौमनाश्च।
लेप श्वित्र हन्ति दद्रूर्वणाश्च-
दुष्टान्यर्शास्येष नाडीव्रणाश्च॥
—सु० चि० ६/३६०।

"हरीतकीकरञ्जिकाविडङ्गसिद्धार्थकल वणरोचनावल्गुजहरिद्रा कल्कैर्वा लेप।" —सु० चि० ६/१०।

अन्य रोगो मे भी—

जलोदरे—पूतिकरञ्जबीज ··काञ्जिकपीत शमयेत् जलोदरमपि। —वङ्गसेन।

अम्लपित्ते—

पूतिकरजशुङ्गानि घृतभृष्टानि रोगिणे।
निवेद्य भोजने कार्यं वमन कोष्णवारिणा॥
—वङ्गसेन।

मसूरिकायाम्—

रस पूतिकरजस्य चामलक्या रस तथा।
पिवेत् सशर्कराक्षौद्र शोफनुत् कफपैत्तकै॥
—वङ्गसेन।

शरीरदौर्गन्ध्ये—

परिणततिन्तिडीकान्वितपूति करजोत्थबीज वा।
—शोढल।

कफज श्लीपदे—

पिवेत्······श्लीपदाना निवृत्तये।
पूतिकरजपत्राणा रस वाऽपि यथाबलम्॥
—शोढल।

अपरापातनार्थम्—

चर्म पूतिकरजस्य ।
पिष्ट तुषाम्बुना पीतमपरा पातयेत् क्षणात् ॥
—वैद्य मनोरमा ।

सामान्य प्रयोग----

वाह्य प्रयोग

[१] दद्रु—[क] वीजो को पानी मे पीसकर लेप करने से दद्रु मिटता है।

[ख] वीज मज्जा चूर्ण को नारियल के तैल मे मिलाकर दद्रु पर मर्दन करें।

[२] उरुस्तम्भ—वीज मज्जा तथा सरसो को गोमूत्र मे पीसकर उरु पर लेप करे।

[३] व्रण—[क] वीज मज्जा को तिल तैल किंवा गुलरोगन मे पकाकर व्रणो पर लगावे। इससे उनका शीघ्र रोपण होता है।

[ख] पत्तो को पीसकर उनसे चतुर्गुण सुखोष्ण तिल तैल किंवा करज तैल मिलाकर व्रणो पर लगाने से भी वे शीघ्र ही ठीक होने लगते हैं।

[४] श्वित्र—इसके पत्तो के साथ आक, थूहर, अमलतास एव चमेली के पत्तो को मिलाकर गोमूत्र मे पीसकर दिन मे ३-४ वार लेप करे। इस लेप से श्वित्र के अतिरिक्त व्रण, दुष्टव्रण, दाद एव अर्श भी ठीक होते है।

[५] अण्डवृद्धि (मूत्रज)—इसके वीजो को पीसकर अण्ड पर लेप करे।

[६] आमवात—इसकी मूल या छाल को पानी मे पीसकर या उवालकर उस कल्क मे स्वच्छ वस्त्र मे रखकर निचोडे। निचोडने से जो लुआवदार रस निकले उस रस को सन्धि स्थानो पर लेप करें। इस लेप से आमवातज सन्धिशूल एव शोथ का शमन होकर रोगी को आराम मिलता है। लेप के पश्चात् थोडी देर मे उस स्थान पर घृत किंवा कोई वातशामक सिद्ध तैल (अभाव मे तिल तैल) लगाकर छानने से जो वचा हुआ कल्क है उसे आक्रान्त स्थान पर वाध देवें। ऐसा करने से शूल एवं शोथ का निश्चित शमन होता है। यह प्रयोग कुछ दिन करते रहना चाहिये। यह प्रयोग सन्धिवात मे भी लाभप्रद है।

[७] स्नायुक (नारु)—[क] छाल को पीसकर कुछ गर्म कर बाधने से स्नायुक जात उत्सेध फूट जाता है और वह नष्ट होता है।

[ख] इसी छाल के साथ [illegible] की छाल को इसी भांति पीसकर बाधने से भी स्नायुक समाप्त होता है।

[८] शोथरोग—चिरविल्व की छाल का आक्रान्त स्थान पर लेप करना शोथनाशक है।

[९] व्रणशोथ—चिरविल्व और निम्ब को पीसकर व्रणशोथ पर लेप करना हितावह है।

[१०] विद्रधि—चिरविल्व, दन्तीमूल, निम्ब, कन्नेर की छाल और जगली कबूतर के मल को पीसकर उष्ण कर उपनाह बनाकर विद्रधि पर बाधने से वह शीघ्र पककर फूट जाती है।

[११] गात्रदौर्गन्ध्य—शरीर की दुर्गन्ध को दूर करने के लिए चिरविल्व एव तिन्तिडीक बीजों को घोट-पीसकर शरीर पर लेप करें।

आभ्यन्तर प्रयोग—

१ छर्दि—करजफल को सेककर खाने से छर्दि वन्द हो जाती है। किंवा भृष्टफल चूर्ण मे मक्षिकामल मिलाकर मधु के साथ सेवन करना भी लाभप्रद है।

२ उदररोग—चिरविल्वक्षार को लवण, विडङ्ग और पिप्पली चूर्ण के साथ मिलाकर नीवू स्वरस के साथ पान करने से उदररोगो मे लाभ होता है। उदररोगो मे चिरविल्वपत्र शाक का सेवन हितावह है। जलोदर मे वीजकल्क को काजी मे मिलाकर पीना चाहिये।

३ श्लीपद—चिरविल्व पत्रस्वरस का पान श्लीपद मे हितकर है। इसमे मधु एव सर्षपतैल मिलाकर पिलाना अधिक हितकर है।

४ गुल्म—चिरविल्व एव अमलतास के कोमल अंकुर गुल्म रोग को नष्ट करने मे श्रेष्ठ हैं।

५. कृमिरोग—चिरविल्वपत्र स्वरस में मधु मिलाकर सेवन करना कृमिरोग मे लाभप्रद है।

६ मसूरिका—[क] चिरविल्व पत्राकुरस्वरस मे कालीमिर्च मिलाकर सेवन करना मसूरिका मे हितकर कहा गया है।

[ख] इसके स्वरस मे आमलकी स्वरस एव शर्करा, मधु मिलाकर सेवन करने से भी मसूरिका मे शीघ्र ही लाभ दृष्टिगोचर होता है। इसके प्रयोग से शोथ का शमन हो जाता है।

७ अम्लपित्त—चिरविल्व के पत्राकुरो को घृत मे भूनकर रोगी को खिलावें इसके बाद उष्ण जल पिलाकर वमन करावे, इससे बढे हुये पित्त के निकल जाने से रोगी शान्ति प्राप्त करता है।

८. अपरापातनार्थ—चिरबिल्व की छाल के चूर्ण को चावलों के धोवन के पानी (तण्डुलोदक) मे मिलाकर पीने से अपरा गिर जाती है।

९. शूल—[क] चिरविल्व पत्राकुरो को तिल तैल में भून लें। इन भूने हुये पत्राकुरो के खाने से शूल शीघ्र ही समाप्त होने लगता है।

[ख] चिरविल्व पत्राकुरो को भूनकर उसमे काला नमक मिलाकर सेवन करने से भी शूल नष्ट होता है। इससे मन्दाग्नि एव कृमिरोग भी दूर होते हैं।

१०. मलावरोध—चिरविल्व के पत्राकुरो का शाक मलावरोध के रोगी के लिए लाभप्रद है। मलावरोध जन्य रोगो मे भी इसका शाक गुणकारी कहा गया है।

११. अर्श—[क] चिरविल्व पत्राकुर, चित्रक, सैंधानमक, सोठ, इन्द्रजौ और श्योनाक का समभाग चूर्ण बनाकर २ ग्राम की मात्रा से तक्र के अनुपान से कुछ दिन सेवन करना अर्श के रोगी के लिए लाभप्रद है।

[ख] चिरविल्व की छाल, चित्रक और हरीतकी के क्वाथ मे सैन्धवलवण मिलाकर सेवन करना भी अर्श मे हितकर है।

१२ अग्निमांद्य—चिरविल्व पत्राकुर और पञ्चकोल के क्वाथ मे पीपर का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से अग्निमाद्य दूर होकर गुल्म, अजीर्णादि रोगो का शमन होता है।

१३. पिपासा—चिरविल्वत्वक्, अजमोद, विल्वत्वक्, धनिया, छडीला, कचूर और चित्रक का क्वाथ पिपासा को शान्त करता है।

१४. रक्तविकार—चिरविल्वत्वक्, निम्बफल, त्रिफला और दोनो सारिवा का क्वाथ रक्तविकार मे लाभप्रद है।

१५ मेदोरोग—चिरविल्व और विडङ्ग के चूर्ण को मधूदक के अनुपान से सेवन करे।

१६. प्रमेह—चिरविल्व, दारुहल्दी, त्रिफला, अमृता और पिप्पली का क्वाथ प्रमेह मे हितकर है।

१७. कुष्ठ—पत्तो को घोट-पीसकर नित्य पीवे।

१८. रक्तपित्त—बीजमज्जा का चूर्ण घृत, मधु के साथ सेवन करे।

कल्पनाये—

(१) चिरबिल्वादि क्वाथ—पूतिकरज, पुनर्नवा, चित्रक, हरीतकी, पिप्पली, सोठ और सेंधानमक का क्वाथ अर्श, भगन्दर तथा गुल्म को दूर करता है और अग्नि को बढाता है। —क्वा० म० माला।

(२) पूतिकादि लवण—पूतिकरज के पत्ते, गजपीपल, रक्ततूंबी की जड, चव्य, चित्रक, सोठ, मिर्च, पीपल इन्हे यवकुट कर हाडी मे फैला देवे उसके ऊपर सैन्धवलवण बिछावे पुन उसके ऊपर पूतिकरजादि रखे इसी क्रम से रखकर हाडी का मुख बन्द कर कण्डे की अग्नि मे फूक देवे। स्वागशीत होने पर निकालकर घोटकर रख ले। इसे कफगुल्मी को भोजन, पान, शाक, मट्ठा आदि मे मिलाकर देवे। इसके अतिरिक्त उदररोग, शोथरोग पाण्डुरोग आदि से आक्रान्त रोगी भी इसका सेवन करे। —अ० हृ०।

(३) पूतिकाद्यरिष्ट—पूतिकरज की छाल ९ किलो ६०० ग्राम, को २४ किलो ५७६ ग्राम जल मे पकावे जब जल ¼ शेष रह जाय तो छानकर ३ किलो ८४० ग्राम गुड और ३८४ ग्राम त्रिकटु का चूर्ण मिलाकर एक मास गर्म स्थान मे रखे। फिर छानकर मात्रानुमार सेवन करने से अर्श, प्लीहारोग, गुल्म एव उदररोग नष्ट होते हैं तथा अग्नि दीप्त होती है। —अ० हृदय।

कण्टकी करञ्ज [Caesalpinia Crista]

कण्टकीकरज शिम्बीकुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae) की औषधि है। इसका उपकुल कण्टकीकरज (सीजलपिनिआयडी–Caesalpinioideae) है। भावप्रकाशनिघण्टु के गुडूच्यादिवर्ग मे इसका करजी के नाम से वर्णन मिलता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने द्रव्य गुणविज्ञान के द्वितीय भाग मे प्रसिद्धतम जो ६ विषमज्वरघ्न द्रव्य कहे हैं, उनमे इसका वर्णन भी किया गया है।

नाम–

संस्कृत—कण्टकीकरज, लताकरज, करजी।

हिन्दी—करजुवा, कटकरेज।

वंगला—नाटाकरज।

मराठी—सागरगोटा।

गुजराती—काकच।

तामिल—काजिचिकाय।

तेलगु—गच्छाकाया।

मलयालम—कजनचिक्कुरु।

कन्नड़—गजगकायि।

अंग्रेजी—फीवरनट (Fever nut)।

लैटिन—सीजलपिनिया क्रिस्टा (Caesalpinia Crista)।

उत्पत्ति स्थान—यह समस्त भारत मे २५०० फीट की ऊचाई तक विशेषत समुद्र के तटवर्ती प्रदेश (वम्बई, वगाल तथा दक्षिण भारत) मे अधिक पाया जाता है।

रासायनिक सगठन–बीजो मे वोण्डुसिन (Bonducin) नामक तिक्त ग्लाइकोसाइड, स्थिर तैल २०%, क्षार ३$\frac{3}{4}$%, प्रोटीन २०%, स्टार्च ३५$\frac{1}{2}$% होते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका वडा प्रसरणशील कटकिन गुल्म होता है। इनके काण्ड तथा शाखाओ पर सीधे कांटे होते हैं तथा पत्तो पर कुछ टेढे होते हैं।

पत्र—पक्षवत्, स्थायी उपपत्रयुक्त, पक्ष ६-८ जोडे, पत्रक प्राय ८ जोडे आयताकार या लट्वाकार $\frac{1}{2}$-१ इञ्च लम्बे $\frac{1}{2}$ इञ्च चौडे होते हैं।

पुष्प—हलके पीतवर्ण पुष्पगुच्छ किंवा मंजरियो मे $\frac{1}{2}$-$\frac{3}{4}$ इञ्च व्यास के होते हैं। प्रत्येक पुष्प मे प्राय. ५ पखुडिया होती हैं।

फली—इसके निचले पुष्प ही फल मे परिणत होते हैं। ये फलिया २-३ इञ्च लम्बी, आयताकार, चपटी कटकावृत एव स्फोटी होती है। अपक्व अवस्था मे ये फलिया पीताभ हरितवर्ण तथा पक्व किंवा सूख जाने पर भूरे रङ्ग की हो जाती है। पककर फूटने पर इनके अन्दर के वीज विखर कर गिर जाते हैं। इन फलियों मे १-२ वीज निकलते हैं। ये वीज गोलाकार $\frac{1}{2}$-$\frac{3}{4}$ इञ्च व्यास के कठिन तथा चमकीले होते हैं। वीजावरण नीलाभ धूसर होता है और वीजमज्जा पीताभ श्वेत होती है। इस मज्जा के दो दल होते हैं। यह मज्जा तैलयुक्त होती है। यह गध मे उग्र और अत्यन्त कडवी होती है। वर्षा मे इस वृक्ष पर पुष्प तथा शीतकाल किंवा वसन्त मे फल लगते हैं।

रस—तिक्त, कषाय।

गुण—लघु, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—यह त्रिदोषशामक है।

प्रयोज्य अङ्ग—वीज।

मात्रा—वीजमज्जा चूर्ण १-३ ग्राम।

हानिकारक-वक्षस्थल और कण्ठ के लिये, दर्पनाशक, नमक और घी।

गुणधर्म—

करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटुपाकिनी
वीर्योष्णा वमिपित्तार्श क्रमिकुष्ठप्रमेहजित् ॥

—भा० प्रा० नि०।



कण्टकी करञ्ज (Caesalpinia Crista)

विभिन्न नाम : सं०—कण्टकी करञ्ज, लताकरज। हिन्दी—कटकरेज। गुजराती—काकच। मराठी—सागरगोटा। बंगला—नाटाकरज। अंग्रेजी—फीवर नट। लेटिन—सिजलपिनिया क्रिस्टा (Caesalpinia Crista)।

प्राप्ति स्थान : बम्बई, बंगाल, दक्षिण भारत।

उपयोगी अंग : बीज।

रोगोपयोग : विषमज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, कास-श्वास।

मुख्य योग : विषज्वरघ्नी वटी।

दोषशमन : त्रिदोषशामक।

कण्टककरञ्जजा वल्ली कण्टाढ्या सर्वतिक्तका ।
द्वित्रिबीजा सर्वतिक्ता त्रिपुरा कृमिनाशिनी ॥
—शिवदत्त ।

करञ्ज.कण्टकी वल्लीकरञ्ज इतिकथ्यते ।
लतारूपेण वृक्ष हि कञ्चिदाश्रित्यवर्धते ॥
तद्वीजन्तु कुवेराक्ष तिक्तमुष्ण प्रभावत ।
विपमज्वरहन्तृ स्याद् यकृच्छूलनिवारणम् ॥
—प्रि० नि० ।

करञ्जिकोष्णा वातार्श कृमिकुष्ठप्रमेहजित् ।
—म० वि० नि० ।

लताकरजपत्र तु कटूष्ण कफवातनुत् ।
तद्वीज दीपन पथ्य शूलगुल्महर 'नृपे' ॥
—नि० शि० ।

कण्टकीकरञ्ज ज्वरघ्न विशेषत विपमज्वरघ्न है। विपम ज्वर प्राय त्रिदोपज होता है, त्रिदोष मे भी वात की प्रधानता होती है क्योकि विषमारम्भ विसर्गित्व वात का स्वाभाविक लक्षण है और प्रेरक योगवाही होने के कारण कफ और पित्त को भी प्रसारित करता है। कफ के साथ मिलकर प्रारम्भ मे शैत्य उत्पन्न करता है और उनके शान्त होने पर पित्त बढकर दाह की उत्पत्ति का कारण होता है। आधुनिक विज्ञान मे भी मलेरिया की जो तीन अवस्थायें (कम्पावस्था, सन्तापावस्था, प्रस्वेदावस्था) व्तलाई गई है उनमे प्रथम वात श्लेष्माजन्य तथा शेष दोनो पित्तजन्य होते हैं। इस प्रकार विषमज्वर त्रिदोषज होता है। कण्टकीकरञ्ज त्रिदोषशामक होने से विपमज्वरघ्न है। इसमे जो तिक्त सत्व है वह कुनैन के जैसा ही विपमज्वर प्रतिवन्धक है। विपमज्वर मे प्रयुक्त तीन प्रयोग प्रदर्शित है—

करञ्जवीजचूर्णेन सेवित सम्वलोऽमल ।
शीतज्वर निहन्त्याशु दिनैकेन न सशय ॥
—र० त० ११/१५६ ।

करञ्जमज्जातिविपे मरीच
छर्दैस्तुलस्यास्त्रिगुणैर्विमर्द्य ।
चणप्रमाणा गुटिकाहिनास्ति
ज्वरातिसारानलमार्दवानि ॥
—सि० भे० मणि ।

करञ्ज तुलसीनिम्वधत्तूरादित्यपल्लवै ।
सवेल्लजै कृता वट्यो हसन्ति शिशिरज्वरम् ॥
—सि० भे० मञ्जूषा ।

अन्य ज्वरो मे—

करञ्जमज्जा प्रसृतिप्रमाणो
गद्याणयुग्म घुणवल्लभाया. ।
सितासहायान्यनयो रजासि
वल्लद्वयानि ज्वरमुज्जयन्ति ॥
—सि० भे० मणि० ।

करञ्जनिम्वभूनिम्वैरमृताम्वुदपर्पटै. ।
अर्को निष्कासितो युक्त्या ज्वर तिरयति त्वरम् ।
—सि० भे० मञ्जू० ।

करञ्जतुलसीनिम्बरविपल्लवजा गुडा' ।
निषेधयन्ति नियमाज्जीवाणु जनिताञ्जवरान् ॥
—सि० भे० मञ्जू ।

विषम ज्वर की जीर्णावस्था मे यकृत्प्लीहा वृद्धि हो जाती है ऐसी स्थिति मे भी करज उपयोगी है। सुश्रुतसहिता के प्लीहोदर चिकित्सा मे कहा गया है कि करञ्ज के क्षार मे षड्गुण अम्लकाञ्जिक मिलाकर बहुत सी वार छानकर विड्लवण और पिप्पली मिलाकर देवें। सु० चि० १४/१३। इस सूत्र मे यद्यपि पूतिकरञ्ज शव्द लिखा है। किन्तु व्याख्या मे डल्हण के अन्य विचार को प्रदर्शित किया है—

पूतिकरञ्जश्चिरविल्व, कण्टकीकरञ्ज इत्यन्ये। कल्पनामाह—कण्टकीकरञ्जक्षारमर्धपलमात्र षड्गुणाम्लकाञ्जिकेन वहुश परिस्रुत पिप्पलीविड्लवणप्रक्षेपम्। विडस्थाने सैन्धव मिति केचित् पठन्ति। —डल्हण।

इसके अतिरिक्त यह वेदनास्थापन, शोथहर, दीपन, ग्राही, शूलप्रसमन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, श्वासहर, प्रमेहघ्न, कुष्ठघ्न, और गर्भ निरोधक है। वसवराजीयम् का एक सुन्दर श्लोक है—

घनदनयनमज्जाटङ्कणैर्हिङ्गु सिन्धू-
रुचकमरिचशुण्ठी दीप्यपथ्याकणानाम् ।
क्रमश इति च वृद्ध चूर्णमुष्णाम्बुनाच
जनयति जठराग्नि सर्वशूल निहन्ति ॥

विशेष गुणधर्म—चूहो मे कृत्रिम शोथ उत्पन्न करके इसके शोथहर प्रभाव का अध्ययन किया गया। फेनिल ब्यूटेझोन की तुलना मे इससे पर्याप्त लाभ देखा गया। —वा० आ० दर्शिका।

"इसकी मीगी का चूर्ण गुदभ्रंश, मूत्राशयभ्रंश और गर्भाशयभ्रंश की सर्वोत्तम उत्कृष्ट औषधि है जिसे पोटेशियम परमेगनेट या त्रिफला क्वाथ के सामान्य घोल से प्रक्षालनोपरान्त चूर्ण सयुक्त वस्त्र और कवलिका के सहारे वहिर्गत भाग को अन्दर कर (T. shaped) लगोटवत् बन्धेज लगा देना चाहिये। इस प्रकार की चिकित्सा से ८० वर्ष तक की आयु के पुराने तीन रोगियो को इस बीमारी से यहा के अन्तरग विभाग मे उन्मूलन कर दिया गया है। इस प्रकार कटकरंज के मीगी का यह सर्वसाधारण प्रयोग अनुसन्धान की दिशा मे आवश्यक विचार विनमय की अपेक्षा करता है, जिसमे उक्त महान् गुण के अतिरिक्त स्वेदल, मूत्रल और ज्वरघ्न गुणो का यथोचित् मात्रा में सन्निवेश के कारण चिरनीन सम बुखार दूर करने का गुण है।"

—डा० श्री सत्यनारायण द्वारा
धन्वन्तरि जून ६९ से।

सुधानिधि के मलेरिया अङ्क (आचार्य श्री कृष्णदत्त शर्मा द्वारा सपादित) मे "मलेरिया के उपद्रव तथा चिकित्सा" नामक एक महत्वपूर्ण लेख कविराज श्री वी० एस० प्रेमी का प्रकाशित हुआ है। योग निर्माण मे द्रव्यो की योजना मे कविराज जी अतीव कुशल हैं, जिससे चिकित्सक समाज परिचित हैं। इनके योग आर्ष योगो की भाति प्रभावशाली होते है। मलेरिया के उपद्रवो के अनुसार आपने औषधि द्रव्यो की महत्वपूर्ण सूची प्रस्तुत की है। इसमे आमाशय सम्बन्धी उपद्रवो मे, उदर सम्बन्धी उपद्रवो मे तथा कफज मलेरिया के उपद्रवो मे करज को उपयोगी कहा है मुतरा उक्त उपद्रवो मे करज की योजना कर चिकित्सा करनी चाहिये।

इसी अक मे यज्ञ चिकित्सा-विषयक लेख भी प० नन्दकिशोर शर्मा "वैद्य रत्न" का प्रकाशित हुआ है। आपने लिखा है कि मलेरिया के रोगी के निकट इन औषधियो को धूप की भाति जलाना चाहिये। इस से वायु मण्डल मे घूमते हुये रोग कीटाणु सहज मे ही नष्ट हो जाते है। जिससे मलेरिया का संक्रमण नही हो पाता। हवन सामग्री मे जिन आठ वनौषधियो का उल्लेख किया है, उनमे करञ्ज भी है। इन औषधियो को समानुपात लेकर कुल का दशवा भाग शर्करा व दशवा भाग ही घृत भी मिलाकर उपयोग मे लाना चाहिये। —सुधानिधि अगस्त १९७७।

प्रसूता को बुखार रहने पर इससे वहुत लाभ होता है। ज्वर कम होता है, गर्भाशय का सकोच होता है, उदर वेदना शमन होती है, मासिक धर्म साफ आता है और क्षत (घाव) हुआ हो तो वह भी जल्दी भर जाता है। प्रसूता को ज्वर न हो तो भी इसके बीज दिये जाने चाहिये। ज्वर के पश्चात् की निर्वलता को दूर करने के लिये लता करज के बीजो की गिरी का चूर्ण शक्ति लाने के लिये दिया जाता है। यह प्रबल आमाशय पौष्टिक औषधि है। इसके बीज मे कडवा द्रव्य महातिक्ता (क्विनाइन) की कोटि का है। इससे क्विनाइन समान ही शीत ज्वर का रोध होता है।

—स्वामी श्री कृष्णानन्द जी द्वारा
गावो मे औषधरत्न से।

यूनानी मतानुसार—करजफलमज्जा तीसरे दर्जे मे गरम और रूक्ष तथा किसी-किसी के मतानुसार पहले दर्जे मे गरम और दूसरे दर्जे मे खुश्क है। यह सूजन को दूर करने वाली, ज्वर मे लाभदायक, गुल्म नाशक है। एक हकीम के मत से चौथैया बुखार मे जब अन्य कोई दवा कामयाव नही होती हो तो कटकरज के पतो को कालीमिरच के साथ पीसकर पिलाने से बडा लाभ होता है।

खजायनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि औरतो के वन्ध्यत्व को नष्ट करने वाली हैं। अण्डकोष मे जल भरने की बीमारी मे भी यह फायदेमन्द है। पेट मे कृमियो को नष्ट करने मे भी यह लाभप्रद है। इसके पत्र कफ के दोष के लिए मुफीद है। इसका तेल

जखमो के अन्दर बहुत लाभ पहुँचाता है। जखमो मे पडे हुये कीडे इसके लगाने से नष्ट हो जाते है।

आधुनिक मतानुसार—इण्डियन फारमाकोपिया की पुनरावृत्ति के लिये मद्रास कमेटी ने जो आफिशियल रिपोर्ट प्रस्तुत की थी उसमे लिखा था कि इसके बीज बहुत उपयोगी सस्ते, पार्यायिक ज्वरो को नाश करने वाले और पौष्टिक हैं। सामान्य, निरन्तर रहने वाले और सविराम ज्वर मे और श्वासरोग मे यह लाभप्रद है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई ने कहा है कि सूतिका ज्वर मे कटकरज के बीज से बहुविध लाभ है। इस से ज्वर कम होता है एव अन्य विकार भी शान्त होते है। इन्होने इसे उष्ण, रूक्ष, कटु, पौष्टिक, ज्वरघ्न ग्राही, शोथघ्न, रक्तप्रशमन, वेदनाशामक, कृमिघ्न कहा है। इसकी शोथघ्न क्रिया निर्गुण्डी की अपेक्षा कम दर्जे की है। इसके पत्रो का स्वरस गलित कुष्ठ और उपदश की द्वितीयावस्था मे उपयोगी है। उपदश मे उत्पन्न रक्तविकार के धब्बे इससे नष्ट तो हो जाते है तथापि रोग का बढना दूर नही होता। इसके तेल से व्रण भर जाते है किन्तु व्रण के ऊपर नयी त्वचा बहुत मोटी आती है।

कर्नल चोपडा ने लिखा है कि—सन् १८६८ मे इसके बीज भारत की फारमाकोपिया मे पौष्टिक और ज्वरघ्न औषधि के रूप मे दर्ज किये गये। यह पर्यायिक ज्वरो के निवारण करने मे बहुत प्रसिद्ध है। यह ध्यान मे रखकर इण्डिजेनस ड्रग्स कमेटी की सरक्षणता मे इस की परीक्षा की गई। यद्यपि इसके परिणाश इतने निश्चित रूप से प्राप्त न हो सके, फिर भी इस कमेटी ने इसे उत्तम बलदायक और उत्तम ज्वरनाशक बतलाया।

डायमाक के मतानुसार इसके बीज ज्वर-निवारक और घावपूरक हैं। इसके आधे बीज की मीगी को लोग के साथ देने से शूल और पीपल के साथ देने से मलेरिया मे लाभ होता है। कुष्ठ मे भी यह लाभप्रद है। कृमियो को नष्ट करने मे भी यह श्रेष्ठ कहा गया है।

डा० इसनार्ड, चीफ मेडिकल आफिसर कस्टम डिपार्टमैण्ट, लारसेलीज लिखते हैं कि इसके बीजो मे पाया जाने वाला कटु तत्व यदि दश से लगाकर बीस सेण्टी ग्राम तक सविराम ज्वरो मे दिया जाय तो क्विनाइन साल्ट की तरह ही गुण दिखाता है।

श्रीयुत रूपलाल जी वैश्य ने डा० श्री क्षेत्रमोहन चट्टोपाध्याय के उद्गारो को उद्धृत किया है, कटकरज की गुणवत्ता को प्रकट करने हेतु इसके उपयोगी अंश को प्रसङ्गानुसार यहा पर भी उद्धृत करना समीचीन होगा। आप लिखते हैं कि "मैं एक देहाती डाक्टर हूँ। मलेरिया पूर्ण स्थानो मे रहने के कारण मुझे इसकी चिकित्सा का अधिक अवसर मिला है। कुनैन के दाम बढ जाने से मैं चिन्ता मे पड गया। इतने मे मेरे मन मे एक नया विचार आया कि जब इस देश मे कुनैन का आविष्कार नही हुआ था तब क्या मनुष्यो का ज्वर दूर नही होता था? कुनैन के समान ज्वर को दूर करने वाली औषधि क्या इस रत्नगर्भा ऐश्वर्यमयी भारतभूमि मे दुर्लभ हैं? जिस देश मे चरक सुश्रुत और वाग्भट की गवेषणामयी सहिताये अब भी अपने अतीत गौरव की घोषणा कर रही हैं, वह देश क्या हमेशा कुनैन की ही उपासना करता रहेगा? अचानक मुझे करज याद आया। मैंने उनका सग्रह करना शुरू किया और इसकी उपयोगिता के विषय मे अनेक कविराजो से सम्पर्क किया। डिमक, थोरी आदि डाक्टर महोदय भी इसी करज के गुणो की भिन्न-भिन्न प्रकार से परीक्षा कर पुस्तके लिख गये है, उनका भी अध्ययन किया। इस दरिद्र देश मे, दरिद्र समाज में, दरिद्रियो के बीच मे रहकर मैंने करज की परीक्षा प्रारम्भ कर दी। अब मै जिस रोगी को कुनैन देना उपयुक्त समझता हूँ उसे करज ही सेवन कराने लगा, अंकुर, जड की छाल के प्रयोग के बाद मैंने इसके बीजो का चूर्ण व्यवहार करना शुरू किया तो मालूम हुआ कि करज के गुण उसके बीजो मे ही अधिक परिमाण में स्थित हैं। करज के बीजो का चूर्ण १० ग्रेन परिमाण मे एक बार मे सेवन कराने से इसी दिन ज्वर का वेग बहुत कम हो जाता है। दूसरे दिन और एक बार खाने से ज्वर

नही बढता । तीसरे दिन फिर करज के सेवन करने की आवश्यकता नही रहती । इसके सेवन के लिए मैं इसे इस प्रकार तैयार करता हूँ । करंजवीज की गिरी को सुखाकर वारीक कूट-पीसकर चूर्ण बनाकर, तीन भाग चूर्ण मे एक भाग पिप्पली चूर्ण मिलाकर शहद के साथ घोटकर गोलिया वना ली। मैंने प्राय चार महीनो तक अनेक रोगियो को करज का सेवन कराया, सभी जगह करज के व्यवहार से लाभ पाया । आज अपने देश की औषधियो के गुण दोषो की परीक्षा होनी आवश्यक है । कितने ही विदेशी चिकित्सको ने यह कार्य किया है और हम इस प्रकार आलसी और कर्त्तव्य पथ से विमुख है, जो अपने हाथ का खजाना आलस्य से खो वैठे हैं ।

कोमान के मतानुसार इसके पिसे हुये वीज कालीमिर्च के साथ मिलाकर मलेरिया के रोगी को दिये जाते हैं । इनमें ज्वर निवारक शक्ति है । तीव्र मलेरिया मे यह लाभप्रद नही है ।

अग्रेजी औषधि अर्गट (Ergot) के समान इसका उपयोग होता है । यह गर्भाशय को सकुचित करता है, मासिकधर्म को नियमित करता है । वायुगोला और शूल को नष्ट करता है । वमन और विरेचन को भी वन्द करता है । इसके उपयोग से गर्भाशय सम्बन्धी समस्त विकार दूर होते है । सूतिका ज्वर मे यह विशेष उपयोगी है ।

डाक्टरी मतानुसार यह सामयिक ज्वर के लिए बहुत अच्छी औषधि है । क्षयजन्य कास और श्वास मे इसके वीजो की मज्जा लाभप्रद है ।

इसकी जड का रस शीतल और स्निग्ध है । यह उपदश मे लाभप्रद है ।

इसके पत्तो का स्वरस शीतपित्त, जीर्णज्वर उपदश की द्वितीयावस्था मे उत्पन्न चर्मविकारो मे लाभप्रद है ।

इसके पुष्पो को मुख मे धारण करने से उग्र कास, गण्डमाला, मधुमेह तथा सोमरोग का शमन होता है ।

इसका तैल उष्ण तथा वीर्य नाशक है । यह आक्षेप, पक्षाघात, कम्पवात आदि वात रोगो मे तथा चर्म विकारो मे उपयोगी कहा गया है ।

चीन मे इसके पत्ते रजोनि सारक के रूप मे उपयुक्त होते हैं । मलाया मे ठहर-ठहर कर आने वाले ज्वर मे इसके कोमल पत्ते व्यवहृत होते हैं ।

अत यह कहा जा सकता है कि कटकरज बहुत सस्ती, सुलभ और अत्यन्त गुणकारी औषधि है जो क्विनैन के स्थान पर उपयोग मे लाई जा सकती है । मलेरिया के अतिरिक्त यह मलेरिया के बाद उत्पन्न सग्रहणी रोग को दूर करने मे भी श्रेष्ठ है ।

विशेष ज्ञातव्य—१ करजवीजमज्जा अन्य अङ्गो की अपेक्षा अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई है ।

२ रोगी को करज खाली पेट सेवन न करावे । खाली पेट सेवन करने से प्राय. रोगी वमन कर देता है । अत सेवन से पूर्व उसे कुछ गरम दूध अवश्य पिलावे ।

३ करज वाल, वृद्ध, स्त्री सभी को निर्भयता से सेवन कराया जा सकता है । गर्भावस्था मे भी इसका सेवन निषेध नही है ।

४ करज सेवन से पूर्व यदि रोगी को विरेचन दिया जाय तो यह अधिक लाभप्रद सिद्ध होता है ।

५ करज के वीजो की दुर्गन्ध को दूर करने के लिए १-२ वूद दालचीनी का तैल इसके साथ मिलाकर सेवन किया जा सकता है ।

६ करज नये-पुराने दोनो प्रकार के ज्वरो मे लाभप्रद है ।

७ इसकी एक मात्रा से ही ज्वर मे लाभ दृष्टिगोचर होने लगता है ।

८ इसके सेवन से दूर हुआ ज्वर पुन लौटकर नही आता है ।

९ जीर्णज्वर से उत्पन्न प्लीहा एव यकृत् वृद्धि को भी यह दूर करता है । अत यह कहा जा सकता है कि ज्वर के उपद्रव इसके सेवन से शान्त होते हैं ।

१० यह रोग को दूर करने के अतिरिक्त रोगी के शरीर मे नवीन रक्त का भी सचार करता है । अतः ज्वर किंवा अन्य रोगो से उत्पन्न दुर्बलता मे भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है किन्तु अनुपान एव पथ्य की समुचित व्यवस्था होना अति आवश्यक है ।

सामान्य प्रयोग--

बाह्य प्रयोग

१ कर्णकसन्निपात---कटकरजफ मुस्तक, कूठ, सैन्धव, हसराज, सैन्धव और गुग्गुल को जल मे पीसकर आक्रान्त स्थान पर लेप करने से शोथ-शूल शान्त होते है।

२ कफज्वर---कटकरज फल मज्जा जल मे पीसकर नाभि मे टपकाने से कफज्वर का शमन होता है।

३ शीतज्वर---फलमज्जा को पानी मे घिसकर ज्वर आने के पूर्व २-४ बूंद का नस्य देने से भी ज्वर दूर हो जाता है।

४ आमवात—[क] सन्धिस्थानो के शोथ पर करज के वीजो का लेप हितावह है।

[ख] इसका तैल भी अभ्यङ्ग हेतु हितावह है।

५ रक्तस्राव—फलो के चूर्ण का लेप करे।

६ वृषणशोथ—[क] कर जवीजमज्जा को एरण्डस्नेह मे मिलाकर मोटा-मोटा लेप करे।

[ख] इसकी कोमल पत्तियो का भी एरण्डतैल मे मिलाकर लेप किया जा सकता है।

[ग] वीजमज्जा मे घृत मिलाकर उष्णकर लेप कर वाध देने से भी शोथ शूल का शमन होता है।

७ व्रण—वीजमज्जा को तैल मे उवालकर पीसकर लगाने से व्रण का शीघ्र रोपण होता है।

८ कर्णस्राव--वीजमज्जा का चूर्ण कान मे २-३ वार डालने से कर्णस्राव मिटता है।

९ तारुण्य पिडिका—वीजमज्जा चूर्ण को मुख पर मलने से तारुण्य पिडिकाये नष्ट होती है।

१० वृश्चिकदंश—करजफलमज्जा को सिरके में पीसकर लेप करने से पीडा मिटती है।

११ शोथ—पत्रस्वरस मे एरण्डतैल मिलाकर लेप करे।

१२. जलोदर—जलोदरजन्य शोथ पर वीजमज्जा को कुछ [illegible] के साथ थोडा जल मिला पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

१३ अर्श—[क] करज के वीजो की अर्श के मस्सों पर धूनी देना हितावह है।

[ख] वीजमज्जा मे एरण्डस्नेह मिलाकर अर्शांकुरों पर लेप करें।

१४ दन्तशूल—[क] करजवीजो के छिलको को जलाकर पीसकर उसमे सैन्धवलवण मिलाकर रख लें। इस चूर्ण मे सरसो का तैल मिलाकर दातो पर तथा मसूडो पर मलें इससे शूल समाप्त होता है।

[ख] मज्जा को भूनकर उसमे भुनी हुई सुपारी तथा फिटकरी को मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर रखें। इसका मंजन करना भी दन्तरोगो मे लाभप्रद है।

१५ विस्फोटक—इसकी मूल को पीसकर लगावें।

१६ चर्मविकार—इसके तैल का मर्दन करे।

१७ वातरोग—वातरोगो मे भी तैल का अभ्यङ्ग लाभप्रद है।

१८ गर्भधारणार्थ—करजफलमज्जा को स्त्री के दुग्ध मे पीसकर उसमे स्वच्छ महीन वस्त्र भिगोकर वत्ती वनाले। इस वत्ती को कुछ समय योनि मे धारण करे। इसके पश्चात् इसे निकालकर सभोग करने से गर्भ धारणा हो जाती है। जिस स्त्री को पुनः-पुन. गर्भस्राव हो जाता हो उसे भी यह वत्ती धारण करनी चाहिए किन्तु गर्भावस्था मे इसे धारण करना ठीक नही है।

१९ उपदंश—करजमूल स्वरस से शिश्न को धोना लाभप्रद है। इसके प्रयोग से उपदंशज व्रण का शोधन होता है।

२० नेत्रशुक्र—करजफलमज्जा का सूक्ष्म चूर्ण कर इसमे २१ वार पलासपुष्प स्वरस की भावना देकर वत्तिया वनाले। इस वत्ती को जल मे घिसकर लगावें।

२१ उदरशूल—करजवीजमज्जा को चिलम में भर कर धूम्रपान करने से उदरशूल नष्ट होता है।

आभ्यन्तरीय प्रयोग---

१ कुष्ठ—करजवीजमज्जा का चूर्ण कुष्ठ रोग मे लाभप्रद है।

२ हृद्रोग—इसके पत्तो का स्वरस हृद्रोगहर है।

३. रजःकृच्छ्रता—पत्रस्वरस के प्रयोग से रजःकृच्छ्रता दूर होती है।

४ यकृद्‌वृद्धि—करंज के कोमल पत्तो का सेवन इसमे लाभप्रद है।

५ अजीर्ण—करंजफलमज्जा और भृष्ट हिंगु का बिलोये हुये दूध मे पीसकर पिलाने से अजीर्ण रोग दूर होता है।

६ प्रसवकष्ट—करंजफलमज्जा के सेवन से प्रसव कष्ट कम होता है

७. दौर्बल्य—करंजफलमज्जा को दूध के साथ सेवन करने से रोग जन्य दौर्बल्य दूर होता है।

८. उपदंश—[क] उपदंश की प्रथम अवस्था मे करंज की कोपल तथा नीम की कोपल १०-१० ग्राम लेकर जल मे घोंट कर पीवें।

९. उदरकृमि—(क) वीजमज्जा को पीसकर गुड़ मिलाकर खिलाने से कृमि निकल जाते हैं।

(ख) मज्जा को भूनकर १ ग्राम मे २५० मि०ग्रा० पलाशबीज चूर्ण मिलाकर जल के साथ सेवन करने से भी कृमि निकल जाते हैं।

(ग) बीजमज्जा के साथ विडग का चूर्ण सेवन करना भी हितकर है।

(घ) बीजमज्जा, कालानमक, सोठ और भुनी हिंगु का समभाग चूर्ण उष्णोदक से सेवन करने से भी कृमिरोग नष्ट होता है।

१० प्लीहोदर—२ नग पिण्डखजूर को बीज निकालकर ६० मि० लि० जल मे रात्रि मे भिगो दें। प्रात. उसे मसल कर ५०० मि० ग्रा० कटकरंजफलमज्जा चूर्ण मिलाकर पिला दें। इसी भाति प्रात' पिण्डखजूर को भिगोकर सायकाल सेवन करें। इस प्रकार १५ दिन तक पथ्यपूर्वक सेवन करने से विषमज्वर से उत्पन्न प्लीहावृद्धि दूर हो जाती है।

११ जीर्ण आमातिसार—सेकी हुई करंजफलमज्जा, सेका हुआ जीरा और सेकी हुई सौंफ तीनो समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। दिन मे ३-४ बार ४ ४ ग्राम चूर्ण जल, मधु तथा तक्र के साथ सेवन करने से जीर्ण आमातिसार मिट जाता है।

१२ प्रसूता का उदरशूल (मक्कलशूल)—करंज बीज एक की मज्जा, भुनी हिंगु २५० मि० ग्रा०, सैन्धव नमक २५० मि० ग्रा० के सूक्ष्म चूर्ण मे घृत मिलाकर देने से वातशमन होकर प्रसूता का उदरशूल नष्ट हो जाता है।

१३ गुल्म—सेकी हुई बीजमज्जा के साथ लवग मिलाकर सेवन करे।

१४ आध्मान—सेकी हुई बीजमज्जा के बराबर कालानमक मिलाकर जल के साथ सेवन करे।

१५ रक्तातिसार—बीजमज्जा को गाजे के साथ मिलाकर सेवन करने से रक्तातिसार मे लाभ होता है।

१६. कफातिसार—करंज, पाठा, बिल्व, शुण्ठी और हरीतकी का क्वाथ कफातिसार को नष्ट करता है।

१७ प्रवाहिका—करंज, मुस्तक, अतीस, त्रिकटु, बिल्व, शुण्ठी, पिप्पलीमूल और कुटजत्वक् का क्वाथ प्रवाहिका को दूर करता है। यह प्रयोग सशूल अतिसार तथा विषम ज्वरादि के कारण उत्पन्न सग्रहणी मे भी लाभदायक कहा गया है।

१८ विषम ज्वर—(क) करंजबीजमज्जा को सूक्ष्म चूर्ण कर ले। फिर इसमे चतुर्थांश छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ खूब खरल कर ६० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। दिन मे २-३ बार जल के साथ सेवन करने से विषमज्वर मे लाभ होता है। ज्वर के उतर जाने पर इसका प्रयोग करे। ज्वरावस्था मे इसका प्रयोग न करे।

(ख) बीजमज्जा तथा कालीमिर्च का समभाग चूर्ण १-२ ग्राम तक की मात्रा मे दिन मे दो बार जल के साथ सेवन करे। इससे पारी से आने वाला ज्वर दूर हो जाता है। यह सामान्य ज्वर मे भी लाभप्रद है।

(ग) पलासपापडा (पलास के बीज के ऊपर का लाल छिलका उतारे हुये) और करंजबीज मज्जा

ग्राम कूट-छानकर पानी से कालीमिर्च के प्रमाण की गोलिया वना ले। २ ४ गोली प्रतिदिन उष्ण जल से दे।

(घ) करजवीजमज्जा, कालीमिर्च और सम्भालू के हरितपत्र पीसकर १-१ ग्राम की गोलिया वना ले। १-१ गोली ज्वर चढने के ८ घण्टे पूर्व १-१ घण्टे से देते रहे।

(ङ) पत्रस्वरस मे हीग किंवा कालीमिर्च मिलाकर खिलावे।

(च) करजमज्जा चूर्ण ३० ग्राम, पीपल का चूर्ण १० ग्राम और इलायची का चूर्ण ५ ग्राम लेकर एकत्र कर शहद मे खरल कर ५०० मि० ग्रा० की गोलिया वना ले। प्रतिदिन दिन मे २-३ वार १-१ गोली अल के साथ सेवन करे।

(छ) करज के अकुर, चिरायता, पटोलपत्र, धनिया, पित्तपापडा, नीम की छाल और गिलोय इन सवको समानभाग लेकर चतुर्थांश अवशिष्ट करे। इस क्वाथ के सेवन से ज्वर विशेषतया विषमज्वर दूर होता है।

(ज) करजवीजमज्जा ४० ग्राम, पीपल चूर्ण २० ग्राम को नीम के अर्क मे ६०० मि० ग्रा० की गोली वनाकर दे।

(झ) करज के नव अकुरित शाखे और पत्तो के क्वाथ का पान करने से भी विषमज्वर मे लाभ होता है।

(ञ) करजफलमज्जा के चूर्ण को तुलसीपत्रस्वरस एव मधु के साथ सेवन करे।

(ट) करजफलमज्जा चूर्ण, पिप्पली चूर्ण और कालीमिर्च के चूर्ण को अदरख के स्वरस तथा मधु के साथ सेवन करे।

(ठ) करजफलमज्जा, निम्व की अन्तरछाल और गुडूची क्वाथ भी इसमे लाभप्रद है।

(ड) करजफलमज्जा, चिरायता, कालीमिर्च, गिलोय-सत्व और पिप्पली का चूर्ण भी लाभदायक है।

(ढ) करजफलमज्जा, द्रोणपुष्पी के वीज, नागरमोथा और नीम की कोपलो को तुलसीपत्रस्वरस के साथ पीसकर गोलिया वना लें। इन्हे दूध के साथ सेवन करें।

१९ अन्य ज्वर—(क) अतीस से दशगुना करज-वीजमज्जा लेकर सूक्ष्म चूण वना ले इसके समानभाग मिश्री मिलाकर रखे। प्रातः-साय २-३ ग्राम सेवन करे। यह कफजन्य तथा पित्तजन्य ज्वर मे लाभप्रद है।

(ख) करजवीजमज्जा, मुनक्का, देवदारु, कुटकी, मोथा, आवला गिलोय, अमलतास और हीग का क्वाथ चित्तभ्रम सन्निपात मे लाभ पहुँचाता है।

(ग) करजबीज दो की मज्जा और ५ ढाक के बीज दोनो को पानी मे पीसकर मटर के समान गोलिया बना ले। १-१ गोली दिन मे दो वार जल के साथ सेवन करने से प्राय सभी सामान्य ज्वर नष्ट होते हैं।

(घ) वीजमज्जा, कालीमिर्च, लवङ्ग और जावित्री को समभाग लेकर चूर्ण वना लें। यह चूर्ण सूतिका रोग को नष्ट करने मे श्रेष्ठ है।

(ङ) करज, तुलसी, निम्व, अर्क के पत्तो के साथ गुड को पीसकर गोलिया बना ले। ये गोलिया ग्रन्थिक और श्लेष्मिक ज्वर को नष्ट करती है।

(च) करजमूल का क्वाथ श्वसनकज्वर मे लाभ-प्रद है।

२० अण्डकोष वृद्धि—करज वीजो को भूभल या गरम राख मे सेक ले फिर इनकी मज्जा (गिरी) को निकालकर इसका सूक्ष्म चूर्ण तैयार कर ले। प्रात काल रोगी को दूध पिलाकर इस चूर्ण को मधु मे मिला कर चटा वे। निरन्तर सात दिन तक सेवन करने से अण्ड की जलवृद्धि मिट जाती है।

२१ उदावर्त—करज के मूल को पानी मे पीस-कर उष्ण कर पिलाने से उदावर्त दूर होकर आराम होता है।

२२ शोथ—पत्र स्वरस मे एरण्डस्नेह मिलाकर पीने से शोथ का शमन होता है।

२३ श्वास—करजवीजमज्जा के सूक्ष्म चूर्ण को अदरकस्वरस तथा मधु मे मिलाकर कुछ दिन सेवन करें। इससे कास एव ज्वर भी शान्त होते है।

२४ अग्निमाद्य—करजफलमज्जा का शुष्क चूर्ण, सोठ, अजवायन, कालीमिर्च और कालेनमक का चूर्ण अग्निमाद्य को मिटाता है।

विविध कल्पनायें —

(१) वटी—[क] महातिक्ता १०० ग्राम, कटकरञ्जबीज ५० ग्राम, लालमिर्च के बीज २५ ग्राम, कपूर देशी १२.५ ग्राम, शुद्ध हिंगुल १० ग्राम इन सभी द्रव्यो के कपडछन चूर्ण को, रसाञ्जन ५० ग्राम को १०० मि० लि० जल मे मल छानकर उसी पानी से खरल मे खूब घोटकर चने के बराबर गोलिया बना ले।

१ वटी दिन मे ४ बार १-१ घण्टे पर शीतोदक से दें। यह विषमज्वरघ्नवटी विषमज्वर मे अतीव लाभ पहुँचाती हैं। —वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य।

[ख] करञ्जफलमज्जा अतीस, शुद्ध फिटकरी, नाय बूटी की जड प्रत्येक समभाग लेकर द्रोणपुष्पी स्वरस, काली तुलसी स्वरस और अपामार्ग पत्र स्वरस मे क्रमश भावना देकर ५०० मि० ग्राम की गोलिया बना वे। २-२ गोली गर्म जल से ४ बार ४-४ घण्टे के अन्तर से दे। शीतपूर्वक ज्वर मे अतीव लाभप्रद है। —चिकित्सादर्श।

[ग] कटकरञ्जबीजमज्जा १० ग्राम, पुरानी छोटी पीपल १० ग्राम, विलायती बबूल के ताजी पत्ते तथा कालीजीरी ५-५ ग्राम इन सबको जल के साथ घोटकर फालसे के आकार की गोलिया बना ले। ये गोलिया वात पित्तज्वर से जीर्ण रोगियो के लिए अमृत के समान लाभप्रद हैं। —सि० भै० मणिमाला।

[घ] कटकरञ्जबीज मज्जा, अतीस तथा कालीमिर्च प्रत्येक का चूर्ण १०-१० ग्राम को खरल करे तथा ३० ग्राम तुलसी के पत्ते मिलाकर पुन. घोटे एव ४-४ ग्रेन की गोलिया बना लेवे। २-२ गोली प्रात-साय ताजे पानी के साथ देवें। इनसे शीतज्वर का वेगावरोध होगा। —सि० भै० मणि०।

[ङ] करञ्जबीजमज्जा ३० ग्राम, कालीमिर्च १० ग्राम, सोठ १० ग्राम, कालानमक १० ग्राम जल मे घोटकर ५०० मि० ग्रा० की गोलिया बना वे। १-२ गोली गर्म जल से सेवन करने से वातजन्य उदरशूल नष्ट होता है। —चिकित्सादर्श।

[च] बीजमज्जा, इन्द्रायणमूल, बनफसा, अतीस, फिटकरी का फूला, पीपल, बडी हरड़ ये सब समानभाग ले। इनका सूक्ष्म चूर्ण कर शहद मे मिलाकर चने के बराबर गोलिया बना ले। २-२ गोली दिन मे ३ बार जल के साथ दे। यह सब प्रकार के नवीन ज्वरो मे लाभप्रद है। —र० त० सा०।

[छ] बीजमज्जा, पित्तपापडा, चिरायता, अतीस, गिलोयसत्व, कटु परवल के फल और कुटकी ये प्रत्येक ५०-५० ग्राम लेकर बारीक चूर्ण करे। फिर भागरे के रस मे खरल करके ५०० मि० ग्रा० की गोलिया बना वे। १-४ गोली तक दिन मे ३ बार जल के साथ देने से ठण्ड लगकर आने वाला ज्वर दूर होता है। ज्वर आने के ६ घण्टे पूर्व २-२ घण्टे के अन्तर पर ३ बार औषधि देने से ताप रुक जाता है। यह प्लीहायकृतादि दोषो को दूर करती है। —र० त० सा०।

[ज] बीजमज्जा २० ग्राम और त्रिकटु २० ग्राम मिलाकर बारीक चूर्ण करे। फिर द्रोणपुष्पी का स्वरस ४० ग्राम मिलाकर खरल करे और चने समान गोलिया बना ले।

मात्रा—२-२ गोली दिन मे ३ बार जल से दें। एक बार ताप आने से ४ घण्टे पूर्व, दूसरी बार २ घण्टे बाद और ताप न आवे तो तीसरी बार दो घण्टे बाद देवे। इसके प्रयोग से सब प्रकार के विषमज्वर और नवीन ज्वर २-४ दिन मे ही दूर हो जाते हैं।

—र० त० सा०।

(झ) करञ्जबीजमज्जा १० ग्राम, विभीतकफलमज्जा १० ग्राम, चोवचीनी २० ग्राम मधु के साथ खरल कर छोटे बेर प्रमाण गोलिया बना ले। इन गोलियो के सेवन से मस्तिष्क स्नायवीय शक्ति प्रतिदिन सुदृढ हो बलवान होती है। —अभि० बू० द०।

(ञ) करञ्ज पत्र, पुष्प, मूल, मूलत्वक् और सीक की छाल सब बराबर ले खरल कर बेर के समान वटी बनाकर सेवन करने से वात, पित्त, कफ जनित ज्वर, मलेरिया, काला ज्वर आदि दूर होते हैं।

—अभि० बू० द०।

(२) पाक—कटकरञ्ज के बीजो की गिरी ६४० ग्राम लेकर रात्रि को जल मे भिगो दे। प्रात.काल उसको

निकालकर ४ किलो दूध मे डालकर चूल्हे पर चढा दे। साधारण आच के द्वारा यह पाचन किया जाना चाहिये। जब दूध और गिरी पकते-पकते खोवा बन जाय तो उसको एक कडाही मे १६० ग्राम घी डालकर मृदु आच से भून लें। जब वह खोवा लाल हो जाय तो उसमे तज, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, सोठ, मिर्च, पीपल, जावित्री, जायफल, लोग, विडङ्ग, सौफ, जीरा, नागरमोथा, खरैंटी, हल्दी, दारुहल्दी, लोहभस्म, ताम्रभस्म, बङ्गभस्म प्रत्येक २०-२० ग्राम ये औषधिया डालकर खूब रगडाई करें। अच्छी तरह मिल जाने पर उतारकर रख ले। यह पाक चौबीस घण्टे मे केवल एक बार ही सेवन किया जाता है।

मात्रा—६ ग्राम से ४० ग्राम तक। स्थायी लाभ के लिये ४० दिन तक प्रयोग करे।

यह गुल्म की अव्यर्थ औषधि है। इसके अतिरिक्त शूलरोग, पाण्डु, अतीसार, अरुचि, अजीर्ण, मन्दाग्नि, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, संग्रहणी, पीनस, दौर्बल्य, स्वप्नदोष, सोमरोग, प्रमेह आदि रोगो को दूर कर बल, स्फूर्ति, कान्ति, पुष्टि और कार्य करने की क्षमता को बढ़ाता है। —धन्व० चि० वि० प्र० भा०।

३ अर्क—(क) करञ्जपत्र, निम्ब की अन्तरछाल, हरा चिरायता, हरा गिलोयपञ्चाङ्ग, नागरमोथा और पित्तपापडा प्रत्येक २००-२०० ग्राम, जल १२ किलो। इन सब औषधियो को यवकुट कर जल मे एक दिन भिगो दे तथा दूसरे दिन नलिकायन्त्र से अर्क खीच ले। यह अर्क १०-१५ मि० लि० तक दिन मे दो-तीन बार दें। इसके उपयोग से सभी प्रकार के ज्वर ठीक हो जाते है। —सि० भे० मञ्जूषा।

(ख) करज के पत्ते, निम्ब वृक्ष की अन्तरछाल, चिरायता हरा, धनिया, गिलोय पंचाग हरा, आवला प्रत्येक २००-२०० ग्राम, जल १२ किलो।

विधि—इन सब औषधियो को जौकुट कर जल मे १ दिन भिगो दें तथा दूसरे दिन भवका से ७ बोतल अर्क खीच लें। और उस अर्क मे फिटकरी की खील, सुहागे की खील, गोदन्ती हरताल भस्म, चूना, निम्बू का रस ६-६ ग्राम मर्दन कर मिला दें। यह गुलाबी रग का अर्क बन जायेगा।

मात्रा—१०-२५ ग्राम तक ज्वर आने मे पूर्व १-२ बार मे पिला दें। ज्वर उतरने के बाद भी दूसरे दिन भी १-२ मात्रा और दे दें।

उपयोग—विषम ज्वर मे उपयोगी अर्क है। अन्य ज्वरो मे भी लाभदायक है। कुछ दिन के प्रयोग से जीर्ण ज्वर को समूल नष्ट कर देता है।

—प्रयोग मणिमाला।

४ शिरोविरेचन (नस्य)—कटकरजबीजमज्जा, सहिजन के बीज, तेजपात, सरसो और दालचीनी प्रत्येक समभाग लेकर कपडछान चूर्ण करें। इस चूर्ण का नस्य देने से सब प्रकार के शिरोरोग शान्त होते हैं।

—बो० र०।

५ तैल—करज, सतोना, कलिहारी, थूहर का दूध, आक का दूध, चीता, भागरा, हल्दी, गोमूत्र और वत्सनाभ इन द्रव्यो से तैल को पकाकर सिद्ध कर लें। इस तैल की मालिश करने से विसर्प नष्ट होता है।

—भावप्रकाश।

पेटेण्ट प्रयोग—

विषमज्वर, वात श्लेष्म ज्वर, पित्तजन्य ज्वर आदि मे उपयोगी 'क्युरील" नामक टिकिया (टेबलेट) का चरक फार्मा० निर्माण करती है। इसमे बहुत से सिंकोना-त्वक्, गिलोय, कुटकी आदि के साथ करज भी डाला जाता है।

देशरक्षक औषधालय कनखल (हरिद्वार) "सर्व-ज्वरहारी" नाम से गोलियो का निर्माण करता है। इन गोलियो के निर्माण मे करज बीजमज्जा, कालमेघ, कुचला छाल, सप्तपर्ण छाल, कुटकी चूर्ण के घनसत्व का प्रयोग किया जाता है। यह सर्वज्वरहारी गुटिका प्रत्येक प्रकार के ज्वर मे आराम पहुँचाती है। विषम-ज्वर (मलेरिया) में तो यह रामबाण है। २-२ गोली दिन मे ३ बार गर्म जल से देनी चाहिये। यदि मलेरिया का सक्रमण चल रहा हो तो पूरे परिवार को १-१

गोली दिन मे दो वार देते रहने से मलेरिया का भय नही रहता।

अनुभूत प्रयोग—

(१) सर्वज्वरवारण वटी—गिलोय हरी १०० ग्राम, चिरायता २० ग्राम, कालीमिर्च ५ ग्राम। सव को यवकुट कर १ किलो पानी मे उवाले। जव करीब १०० ग्राम रह जाय तव उतार कर खूब मल-छानकर इसमे कटकरंज की मींगी (मज्जा) १०० ग्राम का चूर्ण खूब बारीक पीस छानकर मिलाकर अच्छी तरह तब तक घोटें कि जब तक सुचिक्कण गोलियां बांधने लायक हो जाय, फिर चणक प्रमाण वटी बना लें। १–४ गोली तक अर्क गावजवां या नौंफ के सयोग से प्रातः सायकाल दें।

—श्री रूपलाल जी वैश्य द्वारा
अभिनव बूटी दर्पण से।

(२) सर्वज्वरहर वटी—करंज के कोमल पत्र १२ ग्राम, हरी गिलोय ६ ग्राम, कालीमिर्च ३ ग्राम, पीपल ३ ग्राम, कालानमक ३ ग्राम, नीम की हरी सींकें २॥ अदद। बारीक पीसकर मटर समान गोली बनालें। प्रात'-सायं १-२ गोली उचित अनुपान द्वारा सेवन करने से सर्वज्वर, अरुचि, मन्दाग्नि इत्यादि नष्ट होते हैं। —श्री रूपलाल जी वैश्य।

(३) विषमज्वर केतु—घटक द्रव्य–शुद्धमल्ल (श्वेतसंखिया) १० ग्राम, करज चूर्ण १ किलोग्राम और करंजपत्र स्वरस (भावना हेतु)।

सर्वप्रथम मल्ल के चने के समान छोटे टुकड़े कर पाच लीटर गोदुग्धमे दोलायन्त्र मे शोधन किया गया। तीन घण्टे दोलायन्त्र से स्वेदन कर पोटली को वाहर निकालकर किंचित् उष्ण जल से धोया पश्चात् वस्त्र के अन्तः स्थित मल्लखण्डो को भी वाहर एक तामचीनी के पात्र मे रखकर उष्णजल से धोकर स्वच्छ कर लिया गया एव शुष्क किया गया।

शुद्धमल्ल को खरल मे डालकर सूक्ष्म चूर्णित किया गया पश्चात् करज चूर्ण भी डालकर पूर्णतया मिश्रित किया गया। भावनार्थ करजपत्रो का १ लीटर स्वरस लेकर इस चूर्ण मे भावना दी गई एव तीन दिन मर्दन किया गया। जव गोली वनाने योग्य लुगदी तैयार हो गई तव २ गुजा परिमाण (२५० मि० ग्रा०) की गोलिया वनाकर छाया शुष्क किया गया।

यहा मुख्य औषधि मल्ल ही है, किन्तु आधार के लिए (वेस) करज चूर्ण लिया गया। भावना द्रव्य भी करजपत्र स्वरस ही लिया गया, क्योकि रसौषधिया यथा रोग व तद्-तद् गुणकर्म वाली वनस्पतियो के सम्मिश्रण से कार्य करने को उग्र हो जाती हैं। उक्त औषधि का प्रयोग १०० रोगियो पर किया गया जिनमे सभी को पूर्ण लाभ हुआ। १-५ वर्ष के रोगियो को आधी गोली, ६ वर्ष से १५ वर्ष तक के रोगियो को १ गोली तथा १५-६५ वर्ष के रोगियों को १-२ गोली दी गई। मात्रा प्रात-साय दी गई। अनुपान दुग्ध किंवा उष्ण जल रखा गया। कुछ रोगियों को दूसरे दिन भी उक्त औषधि दी। रोगियों को तीन दिन बाद बुलाकर पूछने पर ज्ञात हुआ कि रोग की पुनरावृत्ति नही हुई। रोगियों के स्वास्थ्य परीक्षण करने से किसी प्रकार का उपद्रव व दुष्परिणाम उपस्थित नही हुआ। नाजुक मिजाज के छ रोगी, जिसमे चार स्त्रिया, दो पुरुष थे, को दवा कैंपसूल मे भरकर दी गई। पथ्य मे दुग्ध, चाय, गेहूँ का दलिया, कृशरा दिया।

—श्री सन्तोषकुमार मिश्र आ० वृ०, एम० ए०
व्याख्याता, रा० आ० सस्थान, जयपुर आयुर्वेद
विकास ज्वर चिकित्साक से।

(४) एक मलेरियानाशक अनुभूत योग—अभ्रकभस्म १ ग्राम, लौहभस्म १ ग्राम, शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण १ ग्राम, करजवीज मीगी चूर्ण २ ग्राम, पीपल चूर्ण २ ग्राम।

इनको नीवू के रस मे खरल कर १२० मि० ग्रा० की गोलिया वना ले। १ गोली गर्म जल के साथ दिन मे हर २-२ घण्टे के पश्चात् ज्वर चढने के ६ घण्टे पूर्व से देना प्रारम्भ करें।

इससे पारी से आने वाला बुखार नष्ट होता है।

—डा० श्री जहानसिंह चौहान द्वारा
सुधानिधि अगस्त ७७ से।

(५) **मलेरिया संहार**—कल्पनाथ सत्व, १२ ग्राम, सप्तपर्णत्वक् सत्व १२ ग्राम, कुटकी सत्व १२ ग्राम, कुचलात्वक् सत्व १२ ग्राम, शुद्ध करजदीज ४८ ग्राम, रक्तस्फटिका ४८ ग्राम।

विधि—सबको मिलाकर पानी के साथ ३६० मि० ग्राम की गोलिया बना लेनी चाहिए।

विशेष—इससे सफलतापूर्वक आन्तरिक, तिजारी, चौथैया इत्यादि ज्वरो मे शतश लाभ उठाते हैं।

यह कुनैन की भाति लाभकारी आयुर्वेदिक निरूपद्रव महौषधि है। कुनैन की तरह इससे ज्वर शीघ्र रुक जाता है, किन्तु कोई उपद्रव जैसे कान से सुनाई न देना आख से दिखाई न देना, बाल झड जाना इत्यादि नही होते। आधी गोली की मात्रा मे यह दूध के साथ योग करने पर ज्वर की निर्बलता को दूर करती है। जाडे के बुखार के दिनो मे नित्य एक गोली सेवन करने पर मलेरिया होने का भय नही रहता। यह विद्यालय अनुसन्धान विभाग की एक प्रधान आविष्कृत औषधि है और भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त मे इसकी सफलता का सन्देश प्राप्त हो चुका है। इससे शीघ्र लाभ प्राप्त करने के लिए रेचक चूर्ण की ६२० मि० ग्रा० की एक मात्रा उष्णोदक से देकर पेट साफ होने पर तब "मलेरिया सहार" का प्रयोग शत प्रतिशत लाभदायक होता हे।

अवधि—यदि रेचक औषधि देकर किया गया हो, प्रथम दिवस ही ज्वर रोक देती है।

मात्रा—३६० मि० ग्रा० से १ ग्राम, २०० मि० ग्राम तक अधिक से अधिक १ दिन मे ५ ग्राम दी जा सकती है।

पथ्य—दूध, साबूदाना, यवयूप। —वैद्य सहचर।

(६) **आयुर्वेदिक कुनैन**—गेरू ५ ग्राम, नौसादर ५ ग्राम, मग्ज करज २० ग्राम सबको कूट पीसकर छान लें। २४० मि० ग्राम से ४८० मि० ग्राम तक दवा ताजे पानी के साथ दे। यदि बुखार चढने से पूर्व दवा दे दी जाय तो बुखार नही चढेगा। चढे हुए बुखार मे देने पर यह दवा पसीना लाकर बुखार को उतार देती है। —स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।

(७) **करंजवटी**—करज की गिरी १२० ग्राम शुद्ध गन्धक १२० ग्राम, शुद्ध फिटकरी ६० ग्राम, गोन्दती हरताल भस्म १२० ग्राम, महासुदर्शन घनसत्व ६० ग्राम, असली अतीस ६० ग्राम इन सब औषधियो को लेकर निम्बछाल के क्वाथ की सात भावनायें देवे। २४०-२४० मिली ग्राम की गोलिया बनाकर छाया मे शुष्क करे।

उपयोग—प्रतिदिन सुबह और शाम १-१ गोली जल के साथ सेवन करने मे विषमज्वर (मलेरिया) आदि सभी ज्वर शीघ्र नष्ट होते है। ज्वर पर अनुभूत है।

—वैद्य श्री हरीराम जी बराटे द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक (चतुर्थ भाग) से।

(८) **शीतज्वर नाशक**—करज की मिंगी ६० ग्राम, छोटी पीपल ३० ग्राम, गूमा के फूल (द्रोणपुष्पी) ६० ग्राम, कालीमिर्च १८ ग्राम, लालफिटकरी की भस्म ३० ग्राम—सबको मिलाकर तुलसी स्वरस की ३ भावनायें देकर चने के बराबर गोली बना लेना चाहिये।

सेवन विधि—शीतज्वर आने से पूर्व १-१ घन्टे के अन्तर से ३ बार १-१ या २-२ गोली उष्णोदक के साथ देना चाहिए।

गुण—ज्वर पहिले ही दिन जाता रहता है। इन गोलियो से शीत-ज्वर (इकतरा, तिजारी, चौथैया) निश्चय ही जाता रहता है, इस पर मुझे पूर्ण विश्वास है।

—प० हरिप्रसाद जी चतुर्वेदी द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक (द्वितीय भाग) से।

(९) **बच्चो के सर्व प्रकार के ज्वर पर**—कटकरज गिरी १२ ग्राम, पीपर ६ ग्राम, जेठी मधु (मुलैठी) ६ ग्राम, सुहागा का लावा ६ ग्राम।

विधि—सुहागे के अतिरिक्त उपरोक्त तीनो वस्तुओ का कपडछान चूर्ण कर अलग-अलग उपरोक्त मात्रा मे लेवे और सुहागे का लावा बनाकर ६ ग्राम की मात्रा मे मिला देवे। बाद मे पानी मे पीसकर ६० मिली ग्राम की गोली बनावे।

गुण—बच्चो को मात्रा के अनुसार यथायोग्य अनुपान से देवें। सर्व प्रकार का ज्वर बन्द होगा। अनुभूत हैं।

नोट—इसकी मात्रा ११० से २४० मि० ग्राम पर्याप्त है।

अनुपान—शहद या माता के दूध के साथ देना।

—श्री व्यासराम कविराज द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक (चतुर्थ भाग) से।

(१०) शीतज्वर हरी—करज की मीग भुनी १२ ग्राम, अतीस कढवी १२ ग्राम, कालीमिर्च १२ ग्राम, तुलसीपत्र ३६ ग्राम। सबको पीसकर गिलोय स्वरस की ७ भावना देकर रख लीजिये।

मात्रा—१२० मि० ग्राम अनुपान उष्णोदक।

प्रयोग—शीतज्वरहर।

—प० श्री वेदव्रत शर्मा द्वारा
(धन्व० सफलसिद्ध प्रयोगांक) से।

(११) ज्वरांकुश—करज की मात्रा ४८ ग्राम, रसौत ४८ ग्राम, कालीजीरी अतीस६-६ ग्राम। उपर्युक्त औषधियो को कूट कपडछन कर तुलसीपत्र स्वरस मे १ दिन घोटें और चने बरावर गोलिया वनाये।

गुण—यह गोलिया मलेरिया वुखार के लिये अच्छी हैं। २ वारी (पाली) पिलाने से ही वुखार रुक जाता है।

सेवन विधि—वुखार आने से ८ घण्टे पहिले से २-२ घण्टे के अन्तर से पानी के साथ देना चाहिये।

—वैद्य विट्ठलराम हीरालाल जी त्रिवेदी द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक (प्रथम भाग) से।

(१२) तृतीयान्तक वटी—करजगिरी १२ ग्राम, शुण्ठी १२ ग्राम, श्यामधतूरा वीज २४ ग्राम—सवको पृथक्-पृथक् पीसकर खरल मे डालकर मिरच के वरावर गोलिया वनाकर छाया मे सुखाले।

सेवन विधि—ज्वर आने से ६ घण्टा पूर्व २ गोली फिर २-२ घण्टा वाद २-२ गोली जल के साथ दें। वारी के दिन जव ज्वर आने का समय वीत जाय तव दूध चावल सेवन करे। यदि रोगी को मलावरोध हो तो वारी के दिन से पहिले दिन पचसकारादि चूर्ण देकर विरेचन करा देना चाहिये।

गुण—तृतीयक ज्वर तथा कम्पज्वर को उसी दिन रोक देती है। —धन्व० भाग १६ अक १-२— से।

(१३) विषमज्वरारि वटी—करज चूर्ण २०० ग्राम, गोदन्ती भस्म (निम्ब स्वरस से भावित), सौभाग्य भस्म, स्फटिका भस्म प्रत्येक ५०-५० ग्राम को कूट पीसकर करज पत्र मूल, तुलसी, निम्ब, सप्तपर्णी, द्रोणपुष्पी, हारसिंगार के क्वाथ मे अलग-अलग ६-६ बार खरल कर झरवेर के वरावर गोली वना छाया मे सुखाकर रख ले।

सेवन विधि—ज्वर आने से पूर्व २-२ घण्टे पर १-१ गोली निगलवावे।

उपयोग—नूतन विषमज्वर मे उपयोगी गोली हैं।

—श्री मोहन जी भट्ट द्वारा
गुप्तसिद्ध प्रयोगाक (चतुर्थ भाग) से।

(१४) ज्वरनाशक वटी—करजमीग, पीपल ४०-४० ग्राम, सफेद जीरा, ववूल की पत्ती २०-२० ग्राम, तुलसी की पत्ती हारसिंगार की पत्ती, गूमा की पत्ती, सहदेई की पत्ती, वनगोभी की पत्ती कालीमरिच प्रत्येक १०-१० ग्राम।

सव दवाओ को महीन पीसकर २ रोज द्रोणपुष्पी (गूमा) के रस मे और दो रोज तुलसीपत्र के स्वरस मे खरल कर छोटी झरवेरी के वरावर गोली वना लें। प्रात, साय, मध्याह्न १-१ गोली पानी के साथ सेवन करें। हर प्रकार के वुखारो को दूर करने मे अक्सीर है।

—रामदेवप्रसाद द्वारा
धन्व० अक्टूवर ४१ से।

(१५) मलेरियाहर वटी—करज की मिगी ५० ग्राम, कुटकी ६० ग्राम, गोदन्ती भस्म ५० ग्राम, कर्पूर २० ग्राम, कालीमरिच ५० ग्राम, सव को कूट-छानकर तुलसी स्वरस तथा गूमा स्वरस की भावना देकर झरवेरी के समान वटी वनाकर ज्वर आने से ३ घण्टा पहले १ वटी व १ वटी १ घण्टा पूर्व गरम जल के साथ सेवन करने से मलेरिया ज्वर २-३ दिन मे निश्चित रूप से रुक जाता है।

—पं० श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा द्वारा
प्राणाचार्य प्रयोगमणिमाला से।

(१६) विषमज्वरहर वटी—करज की मीग ५० ग्राम, जीरा सफेद किञ्चत् भुना हुआ २५ ग्राम, बबूल की ताजी पत्ती (डण्ठल रहित) २५ ग्राम, पीपरामूल ५० ग्राम, मेहदी के बीज ५० ग्राम, चक्रमर्द के बीज ४० ग्राम, गोदन्ती हरताल भस्म २५ ग्राम।

सब औषधियो को कूट छानकर गोदन्ती मिलाकर सत्यानाशी के स्वरस की ३ भावना देकर चना प्रमाण की गोलिया बनाले।

१-४ गोली तक गरम जल के साथ ज्वर के पूर्व सेवन करावे। बाद मे ज्वर उतरने पर १-२ गोली सुबह-शाम २-४ दिन तक प्रयोग करावे।

—प० क्षेमचन्द जैन द्वारा
प्राणाचार्य प्रयोग मणिमाणा से।

(१७) विबन्धरोगध्वसिनी—करज की गिरी सफेद २४० ग्राम, छोटी पीपल ६० ग्राम, दालचीनी १२ ग्राम, लाहौरी नमक २४ ग्राम, लाल गेरु ६ ग्राम। सबका चूर्ण बनाकर गोली बना ले।

बडो के लिए २ गोली छोटो के लिए १ गोली गरम जल के साथ दे।

जाडा देकर बुखार आना, सिर दुखना, प्यास लगना, हाथ पैरो मे हडकल होना, जीर्णज्वर, प्लीहा, यकृत आदि दूर होकर नवीन खून बढता है।

विशेष गुण—दो माह निरन्तर सेवन करने से खूनी बवासीर भी जाती रहती है।

—श्री वैद्य प० भोवरेलाल जी शर्मा द्वारा
धन्व० गप्तसिद्ध प्रयो० प्रथम भाग से।

८ जूड़ी पर—करज मीग, गोदन्ती भस्म, गेरु, फिटकरी श्वेत का फूला, चूना बुझा हुआ। समान भाग लेकर तुलसी स्वरस तथा गुडूची स्वरस मे घोटकर चना प्रमाण गोलिया बनाकर रख लीजिये।

ज्वर से ३-४ घण्टे पूर्व १-१ घण्टे के अन्तर से २-२ गोली निगलने से किसी प्रकार का जाडे का ज्वर न आयेगा। यदि कोई ज्वर का निश्चित् समय न हो तो ४-४ घण्टे के अन्तर मे ४ बार देनी चाहिये। जिस दिन ज्वर की बारी न हो उस दिन भी इसी प्रकार लेना चाहिये। यह पूर्ण मात्रा है। दुर्बल रोगी व १० वर्ष वाले को १-१ गोली लेनी चाहिये। इससे कम उम्र वाले को आधी गोली ही पर्याप्त है।

—श्री वैद्य इन्द्रमणि जी जैन द्वारा
—धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयो० प्रथम भाग से।

६. पाली ज्वरहर—पाली के ज्वर मे नागरवेल के २ पानो मे भुने हुये कटकरज बीज १ की गिरी, एक रुपया जितने आकार का आक का पान और चार लोग मिलाकर ६ घण्टे पहले दो-दो घण्टे पर खिला देने से और रोगी को दूध, जल या चाय के अलावा कुछ भी न खिलाने से पाली टल जाती है। शीत ज्वर पर लता करज अति मूल्यवान औषधि सिद्ध हुई है।

—स्वामी श्री कृष्णानन्द जी महाराज द्वारा
(गावो मे औषधरत्न प्र० भा०) से।

२० शूतुशूल कुठार चूर्ण—करज की गिरी २५० ग्राम, (३६ ग्राम घृत मे भून लें), सोठ, सेंधानमक, कालानमक १८०-१८० ग्राम, सुहागाभस्म ६० ग्राम, शुद्ध हीग १२० ग्राम, यवक्षार १२० ग्राम, मीठासोडा ३०० ग्राम, सबको कूट छानकर बोतल मे भर लें। मात्रा १ ग्राम से २ ग्राम तक। अनुपान गर्म जल से।

प्रयोग—शूतुशूल, अफरा, मक्कलशूल, उदरकृमि के लिये हितकर सिद्ध हुआ है।

—वैद्य श्री कृष्णमूर्ति शर्मा द्वारा
धन्व० सफलसिद्ध प्रयो० द्वितीय भाग से।

२. कुबेराक्षि वटी—करज के बीज ४८ ग्राम, ताम्र भस्म ७२ ग्राम, छोटी इलायची १२ ग्राम, कर्पूर कचरी १२ ग्राम, कपूर ठेला ३ ग्राम।

पहिले छोटी इलायची व कपूर को एक जगह खरल करे, जब यह खरल होते होते एक दिल हो जाये तब अन्य द्रव्यो को मिलाकर पानी के साथ खरलकर सरसो के बराबर गोलिया बनावे।

अनुपान एव उपयोग—अन्नद्रवशूल, परिणामशूल मे सुबह शाम एक-एक गोली पानी के साथ खाये।

—श्री लाला बदरीनारायण सेन द्वारा
धन्व० गुप्तसिद्ध प्रयोगाक चतुर्थ भाग से।

कर्कटशृंगी

Galls of Pistacia integerrima Stew. ex Brandis

N. O. ANACARDIACEAE



सुश्रुत और वाग्भट दोनो ने शृ गी या कर्कटशृ गी का उल्लेख काकोल्यादिगण तथा पद्मकादिवर्ग मे किया है। साथ ही चरक ने इसे मधुरस्कन्ध मे लिखा है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि काकडासिंगी के नाम से जो अत्यन्त कषैला द्रव्य मिलता है इससे सर्वथा भिन्न कोई अन्य वर्ग के पादप जिनके फल सीग जैसे मुडे और मधुर रस प्रधान हो प्राचीन काल मे कर्कटशृ गी नाम से लिये जाते थे। जीवन्ती वर्ग (Asclepidiaceae) के कुछ पादपो के फलो मे यह स्वरूप और माधुर्य मिलता भी है। इसलिए कर्कटशृ गी पर पुन खोज की आवश्यकता प्रतीत होती है।

भावमिश्र ने इसका जो वर्णन किया है शृ गी कषाया तिक्तोष्णा इत्यादि वह इसी द्रव्य का वर्णन है जो आजकल बाजार मे मिलता है। तथा जिसे पारीक जी ने अपनी कलम से उपकृत किया है।

—र० प्र० त्रि०।

कर्कट (कक्कड) नामक वृक्ष के पत्र, पत्रवृन्त (पत्र-डठल) किंवा शाखाओ पर कीट विशेष के द्वारा निर्मित शृङ्गाकार (सीग के समान) कोषवत् रचना की जाती है। ये कोष किंवा कृमिगृह ही कर्कटशृङ्गी के नाम से जाने जाते हैं—

कर्कटवृक्षे कीटै सरचित शृङ्गसन्निभ कोष।
कर्कटशृङ्गी विदिता विविधगुणाढ्यौषधिर्लोके ॥

भगवान् चरक ने इसे कासहर एव हिक्का निग्रहण गण मे कहा है तथा महर्षि सुश्रुत ने काकोल्यादि गण मे कहा है। प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह आम्रकुल (एनाकार्डिएसी–Anacardiaceae) की औषधि है। भावमिश्र ने इसका हरीतक्यादि वर्ग मे तथा प्रियव्रत जी ने कासहरवर्ग मे वर्णन किया है।

नाम—

संस्कृत—शृङ्गी, कर्कटाख्या।

कर्कटशृङ्गी—कर्कटवृक्ष मे होने वाली शृङ्गाकार रचना।

कुलीरविषाणिका—केकडे के सीग की भाति।

आजशृङ्गी—बकरे के सीग के समान।

हिन्दी—काकडासिङ्गी।

मराठी—काकडशिङ्गी।

बंगला—काकडाशृङ्गी।

तामिल—काकडाशृङ्गी।

तेलगु—काकडाशृङ्गी।

राजस्थानी—काकडासीगी।

पजाबी—ककडसिङ्गी।

गुजराती—काकडा।

लैटिन—पिस्टेसिया इन्टेग्रिमा (Pistacia Integerrima Stewartex Brandis)।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय के निम्न तटवर्ती पश्चिमोत्तर पहाड़ियो पर १२००-८००० फीट तक तथा कुमायू, नेपाल, आसाम, बगाल मे भी इसके वृक्ष पाये जाते है।

रासायनिक सगठन—इसमे टैनिन २०-७५ प्रतिशत, उडनशील तैल १३ प्रतिशत, राल ५ प्रतिशत होता है। उडनशील तैल ताजी अवस्था मे वर्ण से रहित

एव कुछ समय तक रखने से पीतवर्ण विशिष्ट गन्ध व स्वाद युक्त होता है। पत्र और फल मे क्रमश १६ तथा ८ प्रतिशत टैनिन होता है।

वानस्पतिक परिचय—लोक मे "कवकड" नाम से प्रसिद्ध तून के सदृश लगभग ४० फीट ऊचा वृक्ष ही कर्कटशृङ्गी का उत्पत्तिस्थल है। इसकी छाल गहरे धूसरवर्ण की किंवा कृष्णाभ होती है जिसको काटने से सुगन्धित स्राव होता है। इस वृक्ष के पत्र युग्म अथवा अयुग्मपत्राकार तथा ६-८ इञ्च लम्बे होते हैं। पत्रक ४-६ जोडे, किंचित् सनाल, भालाकार, लम्बे नोक तथा सरलधार वाले और चिकने होते है। नव किसलय (नये कोमल पत्र) रक्तवर्ण के होते हैं। पुष्प पार्श्विक मजरियो मे, छोटे रक्ताभ होते है। फल—चिकने, सिकुडन युक्त, गोलाकार ¼ इञ्च व्यास के (लम्बाई से चौडाई अधिक) होते हैं। ये पक जाने पर धूसरवर्ण के होते है। वृक्ष पर अप्रैल-जून मे पुष्प लगते है और इसके बाद फल लगते है।

यह पूर्व मे कहा गया है कि इसके पत्र, शाखाओ पर लम्बे-लम्बे शृङ्ग के समान कृमिगृह (Galls) लगते हैं। ये एफिस नामक कृमियो द्वारा बनाये जाते हैं, जो कर्कट-शृङ्गी के नाम से चिकित्सा मे प्रयुक्त होते है। यह कृमि-गृह शृङ्गाकार, पोला होता है। इसका भीतरी पृष्ठ रक्ताभ होता है तथा इसे तोडने पर इसके अन्दर जाला सा दिखाई पडता है, यह उस कीट का अवशेष भाग होता है। यह श्वेताभ होता है। ऊपर का वर्ण धूसर होता है, यह कठिन, सिकुडनयुक्त १-३ इञ्च लम्बा तथा ½-२ इञ्च चौडा होता है।

हरीतकी आदि वृक्षो पर भी ये कोप प्राप्त होते हैं जो कर्कटशृङ्गी (काकडासिंगी) के नाम से ही व्यापारियो द्वारा विक्रय किये जाते हैं। तितिडिक जाति (Rhus) के वृक्षो पर भी ये कोप (कृमिगृह) बनते हैं। इसी जाति के होलारि या होलसिंग (लैटिन—रस सक्सिडोनिया—Rhus Succedania) नामक पौधे की शाखाओ पर भी ये शृङ्गाकार कोष पाये जाते। यद्यपि वास्तविक कर्कटशृङ्गी से यह पृथक् है और उसके गुणो के समान यह उत्तम गुणों वाली नही है। इसे कर्कटशृङ्गी मानना उपयुक्त नही है क्योकि डा० श्री बलवन्तसिंह ने स्पष्ट कहा है—"कुछ लोगो ने भ्रम से कर्कटवृक्ष का नाम रस सक्सिडोनिया दे दिया है।" फिर भी इसके गुणो मे एव कर्कटशृङ्गी (कर्कट वृक्षोत्पन्न) के गुणों मे बहुत कुछ साम्यता है अतएव यह प्रतिनिधि रूप मे व्यवहृत की जाती रही है।

यह प्रतिनिधि कर्कटशृङ्गी विशेषतया सकोचक होती है। इसके फल क्षय मे उपयोगी हैं। जापान मे इसके फलो के रस से एक प्रकार का मोम तैयार किया जाता है, जिससे मोमबत्तिया बनाई जाती हैं।

रस—कषाय, तिक्त।

गुण—लघु, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

दोषकर्म—यह उष्णवीर्य होने से कफवात शामक है।

प्रयोज्यअङ्ग—शृङ्गाकार कोप।

मात्रा—१-३ ग्राम।

हानिकारक—यह यकृत्, आमाशय एव वृक्क के लिये हानिकारक है।

दर्पनाशक—कतीरा, सिकञ्जबीन।

गुणधर्म—

शृङ्गीकषाया तिक्तोष्णा कफवातक्षयज्वरान्।
श्वासोर्ध्ववाततृट्कासहिक्कारुचिवमीर्हरेत् ॥
—भा० प्र० नि०।

तिक्ता कर्कट शृङ्गी च गुरुश्चोर्ध्वसमीरजित्।
कासश्वासार्ति यक्ष्मघ्नी वान्तितृष्णारुचिर्जयेत् ॥
—ध० नि०।

तिक्ता कर्कक शृङ्गी तु गुरुरुष्णानिलापहा।
हिक्कातिसारकासघ्नी श्वासपित्तास्र नाशिनी ॥
—रा० नि०।

शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा हन्ति हिध्मावमिज्वरान्।
तृष्णाभ्रमकफश्वास क्षयकासोर्ध्वमारुतान् ॥
—म० वि० नि०।

शृङ्गिका क्षयसमीरबलास श्वासतृट्कसनहिक्कनहन्त्री।
—सि० भे० म० मा०।



कर्कटश्रृंगी (Pistacia integerrima)

विभिन्न नाम : संस्कृत–कर्कटशृंगी, अजशृंगी। हिन्दी–काकडासिंगी। मराठी–काकडशिङ्गी। बंगला–काकडा शृङ्गी। लैटिन–पिस्टेशिया इन्टेग्रिमा (Pistacia Integerrima)।

प्राप्ति स्थान : पश्चिमोत्तर भारत, पश्चिमी हिमालय।

उपयोगी अङ्ग : शृङ्गाकार कोष। **दोषकर्म** : कफवातशामक।

रोगोपयोग : कास, श्वास, हिक्का, वमि, बालरोग।

मुख्य योग : शृंग्यादि चूर्ण, बालचतुर्भद्रा।

श्रृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवातविनाशिनी ।
ज्वरे कासे क्षये श्वासे छर्द्या हिक्कासु शस्यते ॥
—प्रिय० नि० ।

कर्कटश्रृङ्गी प्राणवहस्रोतस के रोगो की उत्तम औषधि है। यह उष्ण, बल्य एव कफनिःसारक है। कास, श्वास, श्वासनलिकाशोथ एव राजयक्ष्मा आदि मे यह अच्छा लाभ पहुँचाती है। इससे श्लेष्मिक कला को बल मिलकर कफ बाहर निकलने लगता है। कफघ्न होने से नया कफ नही बनने देती है। गलशोथ तथा उपजिह्विका वृद्धि मे भी यह हितावह है। इसके द्वारा विनिर्मित श्रृङ्ग्यादि चूर्ण प्रसिद्ध है—

श्रृङ्गी कटुत्रयफलत्रयकण्टकारी-
भार्गी च पुष्करजटा लवणानिपञ्च ।
चूर्णं पिवेदशिशिरेण जलेन हिक्का-
श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेपु ॥
—भै० र० ।

कविराज जयदेव शास्त्री ने कास के नाश हेतु कर्कटश्रृङ्गी को श्रेष्ठ कहा है—

कृष्णा कर्कटश्रृङ्गी च कट्फलश्च कटुत्रिकम् ।
एते ककार कथिता कासनाशनहेतवे ॥
—सि० भै० मजू० ।

ककारा ककारादिभेषजानि । एषा व्यस्ताना समस्ताना वोभयकापि प्रयोग । स च मधुना लेहरूप ।
—कुचिका ।

"तन्द्रा मोह प्रलापश्च कास श्वासोऽरुचिर्भ्रम" आदि सन्निपातिकज्वरलक्षणो के शमनार्थ श्रृङ्गी किंवा श्रृङ्गी समन्वित योग लाभप्रद कहे गये है—

श्रृङ्गीशटीन्द्रयवधन्वयवासवाट्य-
पथ्यापटोल कुलकादशमूलसिद्धम् ।
पीत्वा कषायमिमक प्रणिहति कष्टा-
नष्टादशागमखिलानपि सन्निपातान् ॥
—त्रिशती ६७ ।

"अष्टाङ्गावलेहिका" का भी यह घटक है। कर्कटश्रृङ्गी विशेषतया सकास श्वास कफज्वर मे लाभप्रद है।

श्रृङ्गीकणा कट्फलपुष्कराणा-
क्षौद्रान्विताना विहितोऽवलेह ।
श्वासेन कासेन युत बलास-
ज्वर जयेदत्र न कापिशङ्का ॥
—वैद्य जीवन १/३५ ।

वातश्लेष्मिक ज्वर मे यह कालीमिर्च, लोग, तुलसीपत्र एव अदरख के सयोग से अच्छा कार्य करती है।

तिक्त और उष्ण होने से यह कटुपौष्टिक है। इसके सेवन से क्रमश बल की वृद्धि होती है। क्षयरोग मे यह लाभप्रद है। भगवान् चरक ने क्षयरोगी के कास को दूर करने के लिये मधुघृत युक्त निम्नाङ्कित औषधिया उपयुक्त कही है।

खर्ज्जूर पिप्पली द्राक्षा पथ्या श्रृङ्गी दुरालभा ।

भैषज्य रत्नावलीकार ने इस रोग मे "श्रृङ्ग्यर्जुनाद्य चूर्ण का वर्णन किया है—

श्रृङ्ग्यार्जुना श्वगन्धानागबला-
पुष्कराभयाछिन्नरुहा. ।
तालीसादिसमेता -
मधुसर्पिभ्या यक्ष्महरा. ॥

कश्मीर मे इसके फलो का भी क्षयरोग मे उपयोग किया जाता है। यह दीपन, वातानुलोमन होने से अग्निमाद्य, अरुचि, उदावर्त, तृष्णा आदि पाचन सस्थान के रोगो में भी लाभप्रद है। "यत् ग्रहण्यामाम सपाच्य वह्नि कृत्वा तत्रस्थ द्रव च शोषयित्वा सग्रहण करोति तदुष्णग्राहक ज्ञेयम्" आढमल्ल की उक्त परिभाषा के अनुसार यह उष्ण सग्राहक द्रव्य है सुतरा अतीसार प्रवाहिका आदि मे हितावह है। बालकों को दन्तोद्भेद के समय कई कष्ट सहने पड़ते हैं—

विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम् ।
अतिस्पन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥

इन कष्टो को दूर करने मे कर्कटश्रृङ्गी उत्तम है। कास, ज्वर, छर्दि आदि उपद्रवो को दूर करने हेतु आचार्य वाग्भट ने श्रृङ्गी, पिप्पली और अतिविषा को मधु के साथ देना उपयुक्त कहा है। इन्ही द्रव्यो को आचार्य शार्ङ्गधर ने भी उपयुक्त कहा है। कई आचार्यों

ने पिप्पली के स्थान पर मुस्तक को लिया है। उक्त चारो द्रव्यो के सयोग का प्रयोग "वालचातुर्भद्रिकावलेहिका" चिकित्सक समाज मे प्रसिद्ध है—

घनकृष्णारुणा शृ गीचूर्ण क्षौद्रेण मयुतम्।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्न श्वासकासवमीहरम्॥
—भै० र०।

इसके अतिरिक्त "कर्कटादि चूर्ण (भै० र०)" तथा "शृङ्ग्यादिघृत (अ० हृ०)" आदि प्रयोग भी बालरोगो मे लाभदायक सिद्ध हुए है।

प्रदर एवं पूयमेह आदि मे गर्भाशय के शोथ एव शूल के शमन मे भी यह श्रेष्ठ है। रक्तगुल्म को दूर करने हेतु शृ गी, पिप्पली आदि द्रव्यो से निर्मित शृङ्ग्यादि क्वाथ (क्वाथमणिमाला) हितावह कहा गया है।

यह शोथहर एवं रक्तरोधक होने से शोथ तथा क्षतो मे भी बाह्यप्रयोगार्थ उपयोगी है। शोथ मे इसका लेप तथा क्षतो पर इसका अवचूर्णन हितावह है। मसूडो से रक्त आने पर इसके क्वाथ से गण्डूष करना लाभदायक है। आचार्य वाग्भट ने इसे वृष्य कहा है—

कुलीरशृ ग्य य कल्कमालोडच पयसा पिबेत्।
सिताघृतपयोऽन्नाशी सनारीपु वृपायते॥

बालरोगों में कर्कटशृङ्गी की उपादेयता—

१ ज्वर—(क) कर्कटशृ गी का सूक्ष्म चूर्ण १२५ मि० ग्रा०, फूली हुई फिटकरी का चूर्ण १२५ मि० ग्रा० दूध से दिन मे २-३ बार दें।

(ख) कर्कटशृ गी का सूक्ष्म चूर्ण १२५ मि० ग्रा०, नवसादर ६० मि० ग्रा० दूध से दिन मे २-३ बार दे।

(ग) कर्कटशृङ्गी का सूक्ष्म चूर्ण १२५ मि० ग्रा०, कलमीशोरा १२५ मि० ग्रा० जल से दें। इसमे ज्वर भी उतर जाता है, तथा पेशाब भी खुलकर उतर जाता है।

२ छर्दि—शृङ्गी का चूर्ण १२५ मि० ग्रा०, वशलोचन चूर्ण १२५ मि० ग्रा० जल के साथ दिन मे २-३ बार दे।

३ अजीर्ण—(क) शृङ्गीचूर्ण १२५ मि० ग्रा० + कालानमक १२५ मि० ग्रा० जल से दे।
(ख) " " + सोठचूर्ण " "
(ग) " " + सैन्धव " "
(घ) " " + जीरकचूर्ण " "
(ङ) " " + सौंफचूर्ण " "
(च) " " + घृतभ्रष्ट हीग " "

४ तृष्णा—(क) शृङ्गीचूर्ण १२५ मि० ग्रा० + एलाचूर्ण १२५ मि० ग्रा० दूध से दे।
(ख) " " + स्वर्णगैरिकचूर्ण " "
(ग) " " + मिश्री " "

५ उत्फुल्लिका (पसली चलना)—
(क) शृङ्गीचूर्ण १२५ मि० ग्रा० + भारङ्गीचूर्ण १२५ मि० ग्रा० उष्ण जल से।
(ख) " " + उसारेविन्द " "
(ग) " " तुलसी स्वरस से दे।
(घ) " " अदरख स्वरस से दें।

६ विबन्ध—(क) शृङ्गीचूर्ण १२५ मि० ग्रा० + हरड जुलाफा चूर्ण १२५ मि० ग्रा० दूध से।
(ख) " " + शुद्ध सौभाग्य " "

७ प्रतिश्याय-(क) शृङ्गीचूर्ण १२५ मि० ग्रा० + कालीमिर्च चूर्ण १२५ मि० ग्रा० मधु से।
(ख) ,, ,, + लोगचूर्ण ६० मि० ग्रा० उष्ण जल से तीव्र प्रकोप मे।
८ कास— (क) ,, ,, + मधुयष्टि चूर्ण १२५ मि० ग्रा० मधु से।
(ख) ,, ,, + शुद्ध सौभाग्य ,, ,,
९ अतिसार— ,, ,, + नागरमोथा चूर्ण ,,, जल से।
१० रक्तातिसार— ,, ,, + मोचरस ,, ,,

उक्त औषधियो को मीठा वनाने के लिए इनमे शक्कर (वूरा) मिलाया जा सकता है। उक्त मात्रा एक वर्ष के वालक को है। आयु के अनुसार इस मात्रा से अल्प किंवा अधिक मात्रा का निर्धारण करें। मात्रा के लिए आचार्यों ने परिभाषा दी हे—"मात्रा अनपायि परिमाणम्"। मात्रा-लाभ के स्थान पर हानि न पहुँचावे-यह सदैव ध्यान रखने की आवश्यकता है। वालको को दी जाने वाली मात्रा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। वालको को विषौषधिया नही देनी चाहिए। निरापद काष्ठादि औषधियां वालको के लिये अधिक हितावह हैं।

यूनानी मतानुसार—यह दूसरे दरजे मे गरम और तीसरे दरजे मे खुश्क है। यह हर तरह की खासी, दमा, हिचकी, कै, और खूनी दस्तो को मिटाने मे उमदा है। कफ के उपद्रवो को दूर करने मे यह अव्वल है। यह मेदे (आमाशय) को ताकत देती हे किन्तु अधिक प्रयोग से हानि पहुँचाती है। यह प्यास, वायुगोला, ववासीर आदि बीमारियो को दूर कर भूख को वढाती है।

आधुनिक मतानुसार—डा० वामनगणेश देसाई के मतानुसार यह कफरोगो की उत्कृष्ट औषधि है। इसके सेवन से श्वासनलिका का नवीन किंवा जीर्णशोथ समाप्त होता है। इस शोथ मे शिथिलता उत्पन्न होती है और इससे जो काम उत्पन्न होता है वह कर्कटशृ गी के सेवन से नष्ट होता है। श्वासनलिका की श्लेष्मिक त्वचा पर इपिकोना की अपेक्षा कर्कटशृ गी का प्रभाव अधिक होता है। इसके उपयोग से सचित कफ निकल जाता है और नये कफ की उत्पत्ति नही होने पाती है।

कर्नल चोपडा ने कहा है कि कफ, कास और क्षय की यह प्रमुख आयुर्वेदिक औषधि है। यह सुगन्धित द्रव्यो के साथ देने से अधिक शान्तिदायक सिद्ध हुई है। यूनानी हकीम इसे फुफ्फुस के रोगो मे, रक्तातीसार मे और छर्दि मे लाभदायक मानते है। यूरोपियन लेखक भी इसका उल्लेख तो करते हैं किन्तु इसके विषय मे कोई विशद वर्णन इन्होंने नही किया है।

इसमे व्याप्त शिथिल तैल फुफ्फुसों की पीड़ा को कम करने की भूमिका निभाता है। पाये जाने वाले टेनिन्स भी सकोचक गुण प्रकट करते हैं।

डिमक ने भी इसके उक्त गुण कहे हैं। इसके अतिरिक्त डिमक ने यह भी कहा है कि—इसके गर्भ में निकलने वाले धूलि के समान पदार्थ को अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने से मालूम होता है कि यह कांकड़ासिंगी निर्माण करने वाले कीडो की मृतदेह के अतिरिक्त कुछ नही है।

इन विद्वानो के मतो की भी तद्वदेव जानकारी आवश्यक है।

सामान्य प्रयोग—

वाह्य प्रयोग

(१) शोथ—कर्कटशृ गी को गोमूत्र मे पीसकर शोथस्थान पर लेप करे।

(२) शीताद—कर्कटशृ गी के क्वाथ का गण्डूष

(३) क्षत—कर्कटशृ गी के चूर्ण का अवधूलन करने से क्षयजन्य रक्तस्राव वन्द हो जाता है।

(४) पुण्डरीक कुष्ठ—कर्कटशृ गी के चूर्ण का प्रलेप हितावह है।

(५) रक्तपित्त—कर्कटशृ गी, विल्वगिरि, हरमल, कायफल, सेवती के फूल, वासे की कोपल सब बराबर

लेकर इन सबमे दुगनी मिश्री मिलाकर नस्य लेने से नाक और मुख से गिरता रक्त बन्द हो जाता हे।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

(१) कास—[क] शृ गी, कूठ, कायफल, मोठ, पिप्पली और भारगी के क्वाथ मे मिलाकर सेवन करने मे कफजकास का शमन होता है।

[ख] शृ गी, कायफल, पीपल और पुष्करमूल का चूर्ण मधु से चाटने से भी कफजकास मे लाभ होता है।

[ग] शृ गी, कालीमिरच, पीपल, अतीस और मुलहठी का चूर्ण मधु के साथ सेवन करने से भी उक्तकास दूर होता है।

[घ] शृ गी चूर्ण को कटकारीक्वाथ के अनुपान से सेवन करना भी हितावह है।

[ङ] शृ गी और त्रिकटु चूर्ण को मधु से सेवन करें।

[च] पुष्करमूल, कायफल चूर्ण के साथ शृ गी चूर्ण समधु सेवन करना भी कफजन्य कास को दूर करता है।

[छ] शृ गी, सोठ और पिप्पलीमूल का चूर्ण मधु से सेवन करे।

[ज] शृ गी, पिप्पलीमूल, सैन्धव और ववूल के गोद को जल के साथ पीसकर २५० मि० ग्रा० की गोलिया बनालें। १-२ गोली मुख मे रखकर चूसने से भी कफजन्य कास शीघ्र ही मिट जाता है।

[झ] शृ गी, कट्फल, देवदारु, भारगी, सोठ और हरड का चूर्ण अदरख के स्वरस से सेवन करें।

[ञ] शृ गी चूर्ण, मूली के बीजो का चूर्ण समानभाग लेकर घृत और मधु मिलाकर सेवन करने से आक्षेपजनक कास किंवा श्वास का शमन होता है।

[ट] शृ गी चूर्ण को तिल तैल मे मिलाकर सेवन करें। इससे वातज कास दूर होता है।

[ठ] शृ गी, सोठ, कचूर और मिश्री के चूर्ण मे बादामरोगन मिलाकर सेवन करने से भी वातजन्य कास दूर होता है।

[ड] शृ गी, मुलहठी, मुनक्का, लाक्षा, शतावरी और बंशलोचन इन सबके वरावर मिश्री मिलाकर मधु तथा घृत (असमान मात्रा मे) मिलाकर सेवन करने मे क्षतज कास मे शीघ्र ही लाभ होता है।

[ढ] शृ गी, खजूर, पिप्पली, मुनक्का, हरीतकी और यवासा का चूर्ण मधु घृत युक्त सेवन करना क्षयजन्य कास मे हितावह है।

(२) श्वास—[क] शृ गी और कट्फल के चूर्ण को मधु के साथ श्वासरोग मे सेवन करें।

[ख] शृ गी, विल्वगिरी, भारगी, पिप्पली और हरड का क्वाथ भी हितावह है।

(३) अतीसार—[क] शृ गी और विल्वफलमज्जा चूर्ण का जल के साथ सेवन करना अतीसार मे हितावह है।

[ख] इसके चूर्ण को मलाई के साथ सेवन करने से आमातीसार मिटता है।

[ग] शृ गी, एला, सोठ, अनारदाना, कालाजीरा, सफेदजीरा, नागकेशर, जायफल को समानभाग लेकर इनके वरावर मिश्री मिलाकर जल से सेवन करना भी अतीसार मे हितकारक है।

(४) संग्रहणी—घृत मे इसको पकाकर सूक्ष्म चूर्ण कर मिश्री मिलाकर सग्रहणी को दूर करने के लिए सेवन करे।

(५) वमन—शृ गी चूर्ण के वरावर नागरमोथा का चूर्ण मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से कफजन्य वमन दूर होता है।

(६) मन्दाग्नि—शृ गी चूर्ण को पिप्पली चूर्ण के साथ मधु मिलाकर सेवन करने से मन्दाग्नि तीव्र होती है।

(७) क्लैब्य—कर्कटशृ गी के कल्क को दूध मे मिलाकर पीवें। इसके ऊपर सिताघृत दुग्ध युक्त आहार करे।

(८) वालरोग—[क] शृ गी चूर्ण को मधु एव घृत के साथ सेवन करे। इसमे श्वासरोग का शमन होता है।

[ख] शृ गी को जलाकर भस्म वना मधु के साथ चटावे से बालको का कास मिट जाता है।

(९) हृदयशूल—शृंगी, पुनर्नवा और धमासा का क्वाथ बनाकर सेवन करने से हृदयशूल मिटता है। इससे वातज-कफज कास तथा अभिन्यासज्वर भी दूर होते हैं।

(१०) कफजज्वर—[क] कर्कटशृंगी, कटकारी-मूल, कायफल, मरिच, सोठ और पिप्पली का क्वाथ कफज ज्वर को दूर करता है।

[ख] शृंगी, पिप्पली, कट्फल और पुष्करमूल का चूर्ण भी मधु के साथ सेवन करने से श्वास कास युक्त कफज ज्वर का शमन होता है।

(११) वातश्लेष्मिकज्वर—शृंगी, कालीमिर्च, लोग, तुलसीपत्र, एव अदरख की चाय बनाकर सेवन करने से वात श्लेष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएंजा) समाप्त होता है।

विविध कल्पनाये—

१. क्वाथ—(क) काकडासिङ्गी, भारङ्गी, हर्रे, जीरा, पीपल, चिरायता, पित्तपापडा, देवदारु, वच, कूठ, यवासा, कायफल, सोठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, कपूर, पाठा, सम्भालू के बीज, गजपीपल, चव्य, चित्रा, पिपरामूल, त्रायमाणा, अमलतास, नीम की छाल, इनारुन, वाकुची, वायविडङ्ग, हल्दी, दारू-हल्दी, अजवायन, अजमोदा, सरसों, वहेडा, गुरुच, दोनो पञ्चमूल, (वेल, सोनापाठा, गम्भारीपाठा, अरवी, शरविन, पीष्विन, वनउडद, गोखरू) इन द्रव्यो को समान लेकर क्वाथ वनावें और घी मे भुना हुआ हीग और अदरक का रस मिलाकर पिलाने से भयकर तन्द्रा से युक्त अभिन्यास ज्वर भयकर १३ प्रकार का सन्नि-पात ज्वर विशेषकर, कर्णशूल, हिचकी, मूर्छा, ग्लानि, तन्द्रा, कास, मूत्रकृच्छ्र, शीतज्वर, प्यास, दाहज्वर, पृष्ठ का शूल और शिर की पीडा शान्त होती है।

—क्वाथमणिमाला।

(ख) काकडासिङ्गी, पीपर छोटी, सोफ, देवदारु, अशोक की छाल,, हीग, लाटाकरञ्ज, पूतीकरञ्ज, हर्रे, धनिया, लहसुन, और पाठा का क्वाथ शूल से युक्त रक्तगुल्म को दूर करता है। —क्वाथ मणिमाला।

(ग) काकडासिङ्गी, दशमूल, कचूर, पोकरमूल, धमासा, भारगी, इन्दयव, परवल के पत्ते, कुटकी, पय समान भाग लेकर प्रमाण १२ ग्राम जल ५०० ग्राम मे क्वाथ करे जब चतुर्थांश रहे छानकर मधु २४ ग्राम मिलाकर पीने से कास हृदय पीडा पसली का शूल श्वास हिचकी वमि ये रोग दूर होते हैं।

(घ) काकडासिङ्गी, कुडे की छाल, हरड की छाल, नागरमोथा, कचूर, चिरायता, भारगी, हल्दी, कुटकी, पोकरमूल, चित्रक, कालीमरिच, छोटी कटेरी, अडूसा, आवला, देवदारू, वहेडा, चव्य, सोठ, पीपल, कायफल ये समान भाग दर्दरा करके मात्रा १२ ग्राम लेकर जल ५०० ग्राम मे क्वाथ करे जव चतुर्थांस शेष रहे मधु २४ ग्राम मिलाकर पीने से कफ, छत, कास, कठ, कुब्ज सन्निपात दूर होता है।

(च) काकडासिङ्गी, वच, रीगणी, बडी, धमासा, रासना, गिलोय, शुण्ठी, कुटकी, पोकरमूल, ब्राह्मी, भारगी, चिरायता, वासा, कचूर समान भाग लेकर प्रमाण १२ ग्राम जल ५०० ग्राम मे क्वाथ करे जब चतुर्थांस शेष रहे छानकर पीने से जिह्विक सन्निपात दूर होता है।

(छ) काकडासिङ्गी, कटेली वड़ी, रीगणी छोटी गिलोय, मुन्नका, जीरा, सोठ, कालीमरिच, पीपल, वायविडग समान भाग लेकर प्रमाण १२ ग्राम जल ५०० ग्राम लेकर क्वाथ करें जव चतुर्थांस रहे तब छानकर ६० ग्राम घृत मे पिसे हुये चावल खाकर पीने से श्वास, हिचकी, कास, अभिन्यासज्वर, सधिवात, कब्ज वाले रोग नष्ट होते है।

(ज) काकडासिङ्गी, रीगणी, पोकरमूल, भारंगी, कपूर, धमासा समान भाग लेकर प्रमाण १२ ग्राम जल ५०० ग्राम मे क्वाथ करें जव चतुर्थांस शेष रहे पीने से कफ विकार मिट जाते हैं।

(झ) काकडासिङ्गी, धमासा, पोकरमूल, भारंगी, कचूर, रीगणी सवको समान भाग लेकर मात्रा १२ ग्राम, जल ५०० ग्राम मे क्वाथ करें। जब चतुर्थांस

शेष रहे, छानकर सेवन करें। इससे अभिन्यास नामक सन्निपात दूर होता है।

(ज) काकड़ासिङ्गी हिंगु, कायफल, हल्दी, कूठ, सम्भालू, कुटकी, रास्ना, एरण्ड, लहसुन, दारुहल्दी, अमलतास, परवल के पत्ते, त्रायमाणा, निशोथ, चित्रक, धमासा, दन्ती, गिलोय, तुम्बरु, छोटी इलायची, दालचीनी, बायविडंग, चिरायता, करज, गूगल, वासा, कुड़ाछाल, इन्द्रयव, क्षीरकाकोली, कालेमूग, सतावर, कालीमिरच, ब्राह्मी, भारगी, गजपीपल, सोठ, हरड की छाल, फालसा, मूर्वा, मालती, पीपल, पीपलामूल, नागरमोथा, अजमोद, अजवाइन, सोफ, अगरु, लालचन्दन, बव्य, सारिवा, वच, कायफल, दशमूल ये चौंसठ औषधि समान भाग लेकर ५० ग्राम का चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ बनाकर पीने से आठो प्रकार के ज्वर दूर होते हैं।

(ट) काकडासिङ्गी, मुनक्का, गिलोय, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ, कुटकी, पाठा, चिरायता, धमासा, खस, धनिया, कमल की जड, नेत्रबाला, कण्टकारी, पोकरमूल, नीम की छाल, कचूर ये अठारह औषध समान भाग लेकर आधा किलो जल में क्वाथ कर छानकर पीने से जीर्णज्वर नष्ट होता है। अडूसे के साथ सेवन करने से श्वास, काम शोथ आदि रोग नष्ट होते है।

(ठ) काकडासिगी, पीपल, कायफल, सोठ, भारङ्गी, कालीमिरच, अजवायन, कण्टकारी, सम्भालू, चित्रक, वासा समान मात्रा मे लेकर १२ ग्राम द्रव्यो का क्वाथ बनाकर पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीने से कास मिटता है।

२ चूर्ण—(क) काकडासिगी, अर्जुन की छाल, असगन्ध, नागबला, पोहकरमूल, हरड, गुर्च सब बराबर लेकर तथा तालीसादि चूर्ण की औषधिया सब समानभाग लेकर सबको एकत्र कर चूर्ण कर रखलें। यह चूर्ण १-२ ग्राम मात्रा मे मधु तथा घृत से चाटने से यक्ष्मा को दूर करता है। —भैं० र०

(ख) काकडासिगी, त्रिकटु, त्रिफला, कण्टकारी, भारंगी, पोहकरमूल, पाचो लवण बराबर लेकर चूर्ण करें। इसे १ ग्राम की मात्रा मे उष्ण जल के साथ पीने से हिक्का, श्वास, ऊर्ध्ववात, कास, अरुचि तथा पीनस रोगो का नाश होता है। —च० द०

(ग) काकड़ासिगी, अतीस तथा पिप्पली का चूर्ण बनाकर मधु के साथ चाटने से बालको का कास, ज्वर और वमन शान्त होते हैं। मात्रा १००-३५० मि० ग्रा०।

(घ) काकडासिगी, अतीस, नागरमोथा, सोठ, कालीमिरच, पीपल, हरड़, बहेडा, आवला, बडी कटेहरी, पोहकरमूल, समुद्रनमक, कालानमक, सेंधानमक, विडनमक, यवक्षार ये सब बराबर लेकर पीस छान लें। १-३ ग्राम तक उष्ण जल या मधु के साथ सेवन करें। बालको को १२५-३७५ मि० ग्रा० तक उक्त अनुपान से ही दिन मे ३ बार दे। इसके सेवन से बालको की छाती मे कफ जमना, हर प्रकार की खासी, कब्ज, दांत निकलने के समय की पीडा, पसलीरोग (डब्बारोग), हरे, पीले दस्त, ज्वर इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। बालको के लिये यह चूर्ण बडा लाभदायक है। वैसे बडो के लिये भी हिक्का, श्वास, कास, पीनसादि मे लाभप्रद है। —र० त० सा०

(ङ) काकडासिगी, अतीस, सोठ, धाय के पुष्प, बिल्वफलमज्जा, नागरमोथा, बेर के फल की गिरी को समभाग लेकर चूर्ण करले। २५० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक इस चूर्ण को मधु के साथ बच्चो को देने से उनके ज्वर, अतीसार, ग्रहणी, छर्दि, रक्तस्रुति, कास, श्वास, अहिपूतना आदि रोग नष्ट होते हैं। —भैं० र०

(च) काकडासिगी, सोठ, पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर, कालीमिर्च समानभाग लेकर सबके समान मिश्री मिलाकर मात्रा २ ग्राम को गिलोय और वासा के क्वाथ के साथ पीने से महाघोर श्वास ३ दिन मे दूर होता है। —वनौ० शा०

३. अवलेह—(क) काकडासिगी, नागरमोथा, पीपल और अतीस इनका चूर्ण बनाकर चटाने से बालको के ज्वर, अतीसार, श्वास, कास और वमनरोग नष्ट होते हैं। यह प्रसिद्ध बालचातुर्भद्रिका अवलेह है। इसकी मात्रा १२५-२५० मि० ग्रा० है। —च० द०

(ख) काकडासिगी, कायफल, पोहकरमूल, सोठ, मिरच, छोटी पीपल, जवासा, कालाजीरा समानभाग लेकर कपडछन चूर्ण बनाकर मधु से चाटने से भयकर सन्निपातज्वर, हिचकी, दमा, खासी तथा अन्य गले के रोग दूर होते हैं। इसे अष्टाङ्गावलेहिका कहा जाता है।

(ग) काकडासिगी, कपूर, पीपल, भारगी, नागरमोथा, धमासा और गुड समानभाग लेकर चूर्ण करले। १ ग्राम मे १० ग्राम तिल तैल मिलाकर चाटें। इसके प्रयोग से वातजकास नष्ट होता है।

४ वटी—(क) काकडासिगी, कालीमिरच, पीपल, सोठ, छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी, लौंग, जायफल, बशलोचन, कचूर, असगध, अनारदाना प्रत्येक ३ ग्राम, लोहभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक ४० ग्राम मिश्री १२० ग्राम सबको पृथक्-पृथक् पीसकर परस्पर मिलावे। सूक्ष्म कर मधु मे मिलाकर गोली बनावे।

मात्रा—१ ग्राम तक सेवन कर ऊपर से १ ग्राम पीपल का चूर्ण मिलाकर मधु से चाटे। इसके प्रयोग स सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है।

(ख) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, काकडासिगी और सैंधवलवण समानभाग लेकर ब्राह्मी के रस से खरलकर २५० मि० ग्रा० की गोलिया बनाले। १-१ गोली प्रात-साय उष्ण जल से किंवा मधु से सेवन करने से समस्त सन्निपातजन्य ज्वर दूर होते है।

(ग) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध अफीम, काकडासिगी, फूला हुआ सुहागा, जायफल प्रत्येक १०-१० ग्राम लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर शेष औषधिया मिलाकर अदरख के रस की १४ बार भावना देकर खरल करे। मोठ के समान गोली बनाकर १-१ गोली प्रात-साय देवे। इससे श्वास कास का शमन होता है।

(घ) काकडासिगी, कालीमिरच, पीपल, लौंग, जायफल, वशलोचन, कचूर, असगन्ध, अनारदाना प्रत्येक १०-१० ग्राम, लोहभस्म ६० ग्राम, अभ्रकभस्म ८० ग्राम, मिश्री ५०० ग्राम, मधु ५०० ग्राम मिलाकर गोलिया बनावें। २-४ ग्राम तक सेवन करने से कास मिटता है तथा हृदय, यकृत् और मस्तिष्क की क्रिया सशक्त होती है।

पेटेण्ट प्रयोगो मे कर्कटशृङ्गी—दत्तात्रेय साण्डू ब्रदर्स द्वारा निर्मित कुक्कुरकास पर महत्वपूर्ण पेय प्रयोग है—"हूपिन सायरप।" इसके प्रमुख घटक द्रव्यो मे कालीद्राक्षा, यष्टिमधु, कुलिजन, बृहती, भारङ्गी आदि के अतिरिक्त कर्कटशृङ्गी भी है।

लक्ष्मी कैमीकल इण्ड० कृष्णानगर मथुरा का एक महत्वपूर्ण पेटेण्ट पेय प्रयोग है—"परटूमेक्स।" यह खासी जुकाम ब्राकाइटिस का आदर्श शर्वत है। फैफडो मे एकत्रित कफ को आसानी से निकालता है तथा शान्ति और स्वास्थ्यप्रद है। इसके प्रत्येक ५ मि० लि० मे निम्नाकित द्रव्य है—यष्टिमधु २० मि० ग्रा०, काकडासिगी १० मि० ग्रा०, टङ्कण ५ मि० ग्रा०, सोठ ३० मि० ग्रा०, आकपुष्प १० मि० ग्रा०, भारगी ५ मि० ग्रा०, तालीसपत्र १० मि० ग्रा०, वसाका ५० मि० ग्रा०, सोमलता ५ मि० ग्रा०, अतीस ५ मि० ग्रा०, कायफल १० मि० ग्रा०, अपामार्ग १० मि० ग्रा०, गिलोय २५ मि० ग्रा०, कनकासव १ मि० लि०, अभायारिष्ट १ मि० लि०, शर्वत इत्यादि है। इसकी १-१ चम्मच दिन मे ३ बार देनी चाहिये।

देशरक्षक औषधालय कनखल (हरिद्वार) द्वारा निर्मित कफनि सारक शर्वत (सीरप) मे भी वासा मधुयष्टि, छोटी कटेरी आदि द्रव्यो के साथ कर्कटशृङ्गी का भी उपयोग किया जाता है। यह शर्वत श्वासनलिका में होने वाले सकोच को दूर करता है तथा कफ को ढीला कर के आसानी से निकालता है।

जनहित फार्मस्युटिकल्स हापुड (उ० प्र०) जो श्वासहारी कैपसूल बनाता है उसमे भी पारदभस्म, मल्लसिन्दूर आदि रसौषधियो के अतिरिक्त कर्कटशृङ्गी आदि काष्ठादि औषधियो के घनसत्व भी डाले जाते है। यह तीव्रश्वास के शमन करने मे श्रेष्ठ है।

चरक फार्मास्युटिकल्स असामान्य एव पुराने कठविकारो मे उपयुक्त कोफोल नामक वटी का निर्माण करता है। ये गोलिया गले की खरास, सूखी या कफ-

युक्त खासी मे कफ को पतलाकर निकालती है। ये गले को-साफकर स्वर को सुधारती हैं। इनमे आम्रहरिद्रा, बहेडा, दालचीनी, मुलहठी, लौग आदि द्रव्यो के साथ ककटशृङ्गी भी है।

अनुभूत प्रयोग—

(१) बालशोषहर—काकडासिगी, अतीस, लघु-पिप्पली, हरड, बहेडा, आंवला, भारगी प्रत्येक १२-१२ ग्राम, सबके वजन के बराबर वशलोचन लेकर सबका चूर्ण बनाकर उसमे १४ स्वर्ण वर्क मिलाकर अश्वगन्धा के काढे से भावना देकर प्रतिदिन १ पहर की घुटाई करे। प्रतिदिन एक भावना देते जावे। २२वे दिन यथोचित मधु से घुटाई कर २४०-२४० मि० ग्राम की वटिया बना ले। माता के दूध से या शहद से अथवा दोनो मिलाकर दिन मे ३ वार (साय, प्रात, मध्याह्न) देवे। यह आवश्यक है कि गाय दुग्ध का शोधन कर लिया जाय। यदि माता गर्भवती है तो बच्चे को उसका दूध न पिलाया जाय। महालाक्षादि अथवा शखपुष्पी तैल से बालक के शरीर की मालिश करना भी अनिवार्य है। इस योग से मैंने कई बालशोष से पीडित बच्चो को प्राणदान दिया है। —वैद्य श्री शेषराव जैन द्वारा

धन्व० अगस्त १९५६ से।

(२) कासान्तक वटी—काकडासिगी, पुष्करमूल, लघुपिप्पली, भारगी, हरड का वक्कल, टङ्कण समान-भाग, मदार और कटेरी के फूलो मे की केशर समान-भाग, वशलोचन और छोटी इलायची दोनो समानभाग। इन्हे तीन भागो मे विभक्त करे।

काकडासिगी और टङ्कण तक १ भाग, पुष्पो की केशर दूसरा भाग, वंशलोचन इलायची तीसरा भाग।

गुरु यह है कि तीसरा भाग यदि १ भाग, तो दूसरा २ भाग और पहलाभाग ४ भाग। इस तरह १-२ और ४ के अनुपात से लेना चाहिए। इन्हे इकट्ठे पीसकर अलग रख ले। अदरख रस तथा वासा रस दोनो समानभाग मे इतना लो जिसमे गुड सहित चाशनी मे उपरोक्त द्रव्य मिश्रित होकर वटी बनाने योग्य अवलेह तैयार हो जावे। तब मटर बराबर वटिया बना लेवे। मुख मे रखकर चूसे। छोटे बच्चो को दूध मे घिसकर माता के स्तन पर लेप कर सूखने पर पिलाने से भी चूसने के समान ही लाभ करता है।

—वैद्य श्री शेषराव जैन द्वारा

धन्व० अगस्त १९३६ से।

३. सर्वकासहर—काकडासिङ्गी, अतीस, काली-मिरच, पीपल, वशलोचन, मुलेठी, शृङ्गभस्म ५०-५० ग्राम को लेकर कूट-छानकर चूर्ण मे ५ ग्राम अहिफेन मिलाकर रख लेवे। मात्रा—५-५ ग्राम दिन रात मे ४ वार मधु के साथ। सभी प्रकार के कास पर प्रयोग करे। —डा० श्री रतन सक्सेना द्वारा

(सुधानिधि अप्रैल ७८) से।

४ दन्तोद्भेदरोगविनाशक चूर्ण—काकडासिगी, अतीस, नागरमोथा और वायविडङ्ग इन चारो को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस को ५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम की मात्रा मे बच्चो को देने से ज्वर, अतिसार, खासी, दात निकलने के समय के उपद्रव इत्यादि सब रोग नष्ट होकर बालक हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ रहता है।

—श्री चन्दराज भण्डारी द्वारा

(व० चन्द्रो०) से

५. बालामृत—काकडासिगी, नागरमोथा, पीपल और अतीस के चूर्ण मे अर्धभाग सितोपलादि चूर्ण मिलाकर ५००-७०० मि० ग्राम तक प्रात.साय मधु-किवा दूध के साथ शिशु को चटाने से शीघ्र ही दीपन कार्य होकर उसके लिये रोग प्रतिवन्धक होता है। दन्तोद्भव के समय कोई विकार नही होने पाते। बालक बलवान होकर स्वस्थ रहता है। इसके साथ समभाग सितोपलादि चूर्ण तथा चतुर्थभाग किंवा अर्धभाग शृंगभस्म मिलाकर प्रात साय ७५० मि० ग्रा० की मात्रा मे मधु के साथ देते रहने से आस्थिक्षीणता एव अस्थिवैषम्य मे उत्तम लाभ होता है।

—श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी द्वारा

(धन्व० शिशुरोगाङ्क) से

६. दन्तोद्भेदविकार हर योग—काकडासिगी, नागरमोथा, पीपल और अतीस का समभाग चूर्ण

तैयार कर ले। इस चूर्ण मे समानभाग सुहागे की खील डालकर रख ले। आवश्यक पडने पर ५०० मि० ग्रा० (वालक की आयु के अनुसार मात्रा का निर्धारण करे) औपधि मे थोडा पानी मिलाकर चम्मच मे डालकर आग पर गर्म कर वालक को पिलावे। दात निकलते समय के सामन्य विकारो मे यह वहुत लाभदायक योग है। सहस्रो रोगियो पर परीक्षित है।

—वैद्यराज श्री देवीशरण गर्ग द्वारा
(सुधा० प्र० स० भा० ३०) से

७. **श्वासामृत**—काकडासिंगी, भारगी, गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, सोठ, पीपल, पुष्करमूल प्रत्येक १५-१५ ग्राम लेकर मोटा चूर्ण वना लें। ६० ग्राम जल को खूब औटावे। जल के औट जाने पर उसे चूल्हे से नीचे उतार कर उसमे ५ ग्राम चूर्ण डालकर किसी पात्र मे ढक कर रख दें। जव गुनगुना जल रह जाय, तव उसे छान लें और १ ग्राम यवक्षार मिलाकर पिला दें। तमक श्वास की अमोघ औषधि है।

—वैद्य श्री चन्द्रशेखर व्यास द्वारा
(सुधानिधि अप्रैल ८२) से

८. **बाल कुकुरकासहर योग**—काकडासिंगी, छोटी पीपल, वहेडा, अतीस प्रत्येक २०-२० ग्राम लेकर इसमे नौसादर, सुहागा (भुना हुआ) १०-१० ग्राम मिलाकर कूट पीसकर छान ले। प्रतिदिन ४-६ ग्राम चार वार शहद के साथ सेवन करें। इससे कुकर कास मे लाभ होता है। खासी खुश्क तो कों इसमे कुछ मक्खन या मलाई भी मिला सकते हैं।

—श्री शिशिर पाठक द्वारा
(सुधानिधि जुलाई ८१) से

९. **श्वासहारी प्रयोग**—काकडासिगी, पीपली, मुलेठी, लोग, मीठे अनार का छिलका हर दवा वरावर वरावर लेकर कूट पीसकर कपडे मे छानकर मधु द्वारा चने के वरावर गोलिया वनालें। एक एक गोली प्रात.साय और दौरा के समय गरम पानी मे अदरक के रस की ५-१० वूदें मिलाकर दें। दमा का दौरा और वलगम वाली खासी को तुरन्त आराम आ जाता, है फेफडो मे जमा लेसदार कफ पतली होकर आसानी से निकल जाता और रोगी के तमाम कष्ट दूर हो जाते है।

—मासिक चिकित्सक दिस० ७२ से

१०. **कालीखांसी निवारक सिद्ध योग**—काकड़ासिंगी, मुलहठी, भुनाहुआ सुहागा, चिचिड़ी की पत्ती, खुरासानी अजवाइन, सवको वरावर वरावर लेकर कूट पीस लेवें। इसमे से १२५ मि० ग्रा० चूर्ण वयानुसार १ चम्मच मधु मे मिलाकर दिन मे दो बार चटाये। काली खासी मे इससे शीघ्र ही लाभ होगा।

—डा० हकीम श्री विक्रमाजीत नन्दा द्वारा
(धन्व० यूनानी चिकि०) से

११ **दमादमन**—काकडासिंगी ५० ग्राम, पुष्करमूल ५० ग्राम, पिप्पली ५० ग्राम, वहेडा की छाल ५० ग्राम, नौसादर सत्व १० ग्राम, शुद्ध सोनागेरू ६ ग्राम। सबको वारीक पीस छानकर ५०० मि० ग्राम से १॥ ग्राम तक मधु मे मिलाकर दिन मे २-३ वार चटावें। श्वास रोग मे यह अति उत्तम उपयोगी योग है।

—प० श्री रामगोपाल शर्मा द्वारा
(प्रयोग मणिमाला) से

काञ्चनार

[BAUHINIA VARIEGATA]



"याभि क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातव. समा', सा चिकित्सा विकाराणाम्" के अनुसार दोषो की समता सम्पादन क्रिया ही चिकित्सा कही जाती है। यह क्रिया चार रूपों में प्रतिपादित की जाती है—

१ क्षीण दोषो का बृंहण।

२ कुपित दोषो का शमन।

३ बृद्ध दोषो का निर्हरण।

४. सम दोषों का संरक्षण।

बढ़े हुये दोषों के निर्हरण मे वमन-विरेचन का प्रमुख स्थान है। वमन को ऊर्ध्वभागहर तथा विरेचन को अधोभागहर भी कहा जाता है। महर्षि सुश्रुत ने काचनार को ऊर्ध्वभागहर कहा है—देखिये सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ३९/३ इस प्रसग मे यह भी उल्लेख कर देना समीचीन होगा कि सहिता ग्रन्थो मे विशेषतया चरकसहिता मे काचनार के लिए "कर्बुदार" शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रियनिघण्टुकार ने तब ही तो कहा है—"कांचनार कर्बुदारश्चरकेण प्रकीर्त्तित" (क्योकि इसका एक पुष्पदल कर्बुर अर्थात् चित्रित होता है)। चरक-चतुरानन चक्रपाणिदत्त ने स्पष्टतया कहा है कि—"कोविदार. स्वनामख्यात', स शरदि पुष्पति, कर्बुदारस्तु कांचनार, स वसन्ते पुष्पति—च० स० क० स्था० १/१४ आयुर्वेददीपिकायाम्। किन्तु डल्हणाचार्य ने सु० स० सू० ३९/३ की व्याख्या मे यह कहकर "कोविदार काचनार, कर्बुदार: श्लेष्मान्तक "वव" इति "लिसोडा" इति च देशभाषायां प्रसिद्ध:" कहकर इस मान्यता को विपरीत करदी है—यह उपयुक्त नही, अस्तु। वृद्धवाग्भटाचार्य ने भी वमनोपयोगी द्रव्यो में कर्बुदार (काचनार) को कहा है। भगवान् चरक ने इसे वामक न कहकर वमनोपग कहा है। जो द्रव्य वमन द्रव्यो के साथ सहायक रूप में प्रयुक्त किये जाने पर उनकी शक्ति को बढाता है—वमनोपग कहा जाता है। ये द्रव्य हैं—"मधुमधुरुकोविदार कर्बुदारनीपविदुलविम्वी शणपुष्पीसदापुष्पा प्रत्यक्पुष्पा इति दशेमानि वमनोपगानि भवन्ति"—च० सू० ४/१३। चक्रपाणि ने व्याख्या की है—"स्नेहोपगानीति स्नेहस्य सर्पिरादे, स्नेहनक्रियाया सहायत्वेनोपगच्छन्तीति स्नेहोपगानि, मृद्वीकादिस्नेहोपगयुक्तस्य सर्पिरादे स्नेहने प्रकर्षवती शक्तिर्भवतीत्यर्थ., तथा वमनोपगानीत्यत्र मदनफलादीनां वमनद्रव्याणा मधुमधुकादीनि सहायानि भवन्तीति।" आचार्य दृढबल ने इस वमनोपग द्रव्यो के प्रयोग की प्रस्तुति कल्पस्थान अध्याय एक मे की है।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार इसका कुल शिम्बीकुल (लेग्युमिनोसी–Leguminosae) तथा उपकुल कण्टकीकरज (सीजलपिनिआयडी–Caesalpinioideae) है। भावमिश्र ने इसे गुडूच्यादिवर्ग मे वर्णित किया है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने गण्डमाला नाशक द्रव्यो मे प्रथम इसका वर्णन किया है।

नाम–

संस्कृत—काचनार–स्वर्ण के समान सुन्दर वर्ण वाले पुष्पो वाला।

गण्डारि—गण्डमाला को नष्ट करने वाला।

चमरिक—चमर के समान पुष्प वाला।

युगपत्रक—जुडे हुये दो पत्तो वाला (पत्र के अग्रभाग मे ऐसा गहरा चीरा रहता है जिससे मालूम होता है कि दो पत्ते एक साथ जुडे हो)।

कर्बुदार—चित्रित पुष्प किंवा विदीर्ण पत्र वाला।

स्वल्पकेसरी—अल्प केसर वाला।

हिन्दी—कचनार।

गुजराती—चम्पाकाटी।

मराठी—कोरल, काचन।

बंगला—काचन।

पंजाबी—कचनाल, कुलाड।

राजस्थानी—कचनार।

तामिल—मदारे।

तेलगु—देवकांचनमु।

लैटिन—बाहिनिया वेरीगेटा (Bauhinia Variegata)।

मलयालन—शुवन्नमन्दारम्।

अंग्रेजी—Mountainebony।

उत्पति स्थान—यह भारत मे प्राय सर्वत्र ४००० फीट की ऊंचाई तक होता है। उद्यानो मे इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में टैनिन (कषाय द्रव्य), शर्करा और भूरे रङ्ग का गोद होता है। बीजो से १६ ५% एक पीले रग का तैल निकलता है।

वानस्पतिक परिचय—इसका वृक्ष मध्यम प्रमाण का होता है। इसकी छाल नलिकाकार अर्धगोल और लम्बी होती है। इसका बाहरी भाग खुरदरा तथा कुछ अनियमित दानेदार उभारो वाला होता है। छाल का अनुलम्ब छेदन करने पर अधस्त्वक् कई भागो मे दिखाई देती है। इसमे पतली पतली लम्बी धारियां होती हे।

पत्र—एकान्तर [illegible], कुठिताग्र, २½-६ इञ्च लम्बे व ३-६½ इञ्च चौडे होते हैं। ये गहरे हृदयाकृति होते है इनमे ६-११ सिरायें होती है। पाच दल पत्रो मे प्राय चार श्वेत और एक लाल होता है। पत्रवृन्त ५-१ ७५ इञ्च लम्बा, दृढ तथा रोमश होता है।

पुष्प—बडे श्वेत या बैगनी या गुलाबी होते हैं जिनमे एक अन्तर्दल कुछ पीले रङ्ग का होता है। बहिर्दल [illegible]वाकार, नलिका ¾-१ २५ इञ्च लम्बी, चौडी लट्वाकार, अन्तर्दल २-२½ इञ्च लम्बे, अभिलट्वाकार, पुकेशर ३-५ होते हैं। शिम्बी (फली) ½-१ फुट लम्बी, ¾-१ इञ्च चौडी, चपटी, चिकनी, कठिन और मुडी हुई होती है जिसमे १०-१५ बीज होते हैं।

माह फरवरी-मार्च मे पतझड के समय प्राय: निष्पत्र हुये वृक्ष मे पुष्प निकलते है तथा अप्रैल-मई मे फल लगते हैं।

भेद—काचनार के कई भेद है। डाक्टर ऐन्सली ने इसके तेरह भेदो का उल्लेख किया है। पुष्पभेद ने इसके मुख्यतया तीन भेद किये गये हैं—

१ श्वेत काचनार (Bauhinia Veriegata)।
२ रक्त काचनार (Bauhinia Purpurea)।
३ पीत काचनार (Bauhinia Tomentosa)।

श्वेत काचनार ही मुख्य काचनार है जिसका पूर्व से वर्णन किया जा रहा है। रक्त काचनार को ही कोविदार कहा जाता है। इसे लोक मे कोइलार कहते हैं। यह शरदृऋतु मे पुष्पित होता है तथा शीतऋतु मे फलित होता है। इसके पत्र अधिक लम्बे तथा चौडे, पत्रखण्ड तीक्ष्णाग्र, पुष्पकलिकाये पचकोणीय, फलियां ऊपर की ओर कुछ चौडी होती है। कोविदार के गुण काचनार के समान ही हैं किन्तु काचनार की अपेक्षा कोविदार कुछ न्यून गुणो वाला है—

कोविदार काचनारसमो न्यूनो गुणेऽल्पश।

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने इस पद्य मे इसका सक्षिप्त परिचय दिया है—

कोविदारो युग्मदलो बहुपाटलपुष्पयुक्।
कोरका पचकोणाश्च भृ श शरदि पुष्यति॥
—प्रि० नि० १६८

कहते हैं कि यह भूमि का विदारण कर निकलता है, अत. कोविदार कहलाता है—"को भूमे विदारणाद् कोविदार।" कालिदास के वचनो का अनुसरण करते हुये यह बात आचार्य प्रवर ने इस प्रकार मनभावन शब्दो मे कही है—

पुष्पागमाच्छरदि लुब्धमधुव्रतालि-
श्चित्त विदारयति कस्य न कोविदार:।
भूम्ना स्वदारुवरनिर्मितलाङ्गलेन-
चित्त विदारयति कोरपि कोविदार:॥
—प्रियनिघण्टु १८६



काञ्चनार (Bauhinia Variegata)

विभिन्न नाम : संस्कृत–काञ्चनार, गण्डारि, युगपत्रक । हिन्दी–कचनार । गुजराती–चपाकाटी । मराठी–कोरल, काञ्जन । बंगला–काञ्चन । लैटिन–बाहिनिया वेरीगेटा (Bauhinia Variegata) ।

प्राप्ति स्थान : भारत मे सर्वत्र ४ हजार फीट की ऊंचाई पर ।

दोषशमन : कफपित्तशामक ।

उपयोगी अङ्ग : त्वक्, पुष्प ।

रोगोपयोग : गण्डमाला, मेदोरोग, कुष्ठ ।

मुख्य योग : काञ्चनार गुग्गुल ।

कोविदार के कतिपय शास्त्रीय प्रयोग यहा प्रस्तुत है—

सर्पदष्टे—

कोविदारशिरीषार्ककटभीर्वाऽपि भक्षयेत् ।

—सु० स० क० ५/१८

कोविदारस्य पुष्पाणि कार्श्माश्चाथ शाल्मले ।
अन्नपानविधौ शाक यच्चान्यद्रक्तपित्तनुत् ॥

—च० चि० ४/३७

कोविदारस्य मूलाना मथितेन रज पिबेत् ।
अश्नञ्जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते हतनामभि ॥

—अ० हृ० चि० ८/३२

निम्बैन्द्रीकोविदाराभा क्षुद्राकट्वीकृत शृतम् ।
सगुड शमयेपाण्डुमलबन्धोऽदशकान् ॥

—मि० मै० मजूषा

पीत काचनार पश्चिमोत्तर भारत तथा श्री लका मे विशेष होता है। पार्वत्य प्रदेशो मे उत्पन्न होने के कारण इसे "गिरिज" कहा गया है। उपर्युक्त दोनो काचनारो की अपेक्षा इसके पेड एव पत्र बडे होते है। पत्र वृहत्तर होने के कारण इसे "महायमलपत्र" की सज्ञा दी है। मई-जून मे कोमल पत्ते फूटते हैं। इसके पुष्प गहरी गुलाबी छटायुक्त पीत रङ्ग के एव उक्त काचनार पुष्पो की अपेक्षा आकार मे बडे होते है। पुष्प का वाह्यकोष आध इञ्च लम्बा तथा घने रोवो से व्याप्त होता है। पुष्प के आभ्यन्तरीय कोष की पखुडिया १॥-२ इच लम्बी होती हैं। फलिया—चपटी ४-५ इच लम्बी तथा आधा इच चौडी होती हैं। ये पीताभ हरित रग की होती हैं जो सूखने पर बादामी हो जाती है। फली से ६ से १५ तक गोल चमकीले चपटे भूरे रग के बीज निकलते हैं।

इसके गुणधर्म पडित श्री भागीरथ स्वामी ने इस प्रकार व्यक्त किये है—

१ छाल के क्वाथ से आन्त्रकृमि मिटते है।

२ मूलत्वक् क्वाथ यकृत् शोथ मे हितकर है।

३ त्वक्क्वाथ गण्डूष मुखपाकहर है।

४ शुष्कशिम्बी चूर्ण आमातीसार को मिटाता है।

५ पत्र चूर्ण शतपुष्पार्क के अनुपान से भी आमातीसार मिटता है।

६ पुष्पावाथ भी आमातीसारहर है।

७ सिरके मे बीजो को पीसकर लेप करने से व्रण के कृमि नष्ट होते हैं।

शेष गुण श्वेत काचनार के समान ही हैं।

यह पूर्व मे कहा जा चुका है कि इन सभी भेदो मे श्वेतपुष्प काञ्चनार अधिक उपयोगी है सुतरा इसका विस्तृत वर्णन इस लेख मे किया गया है। सदैव गण्डमालादि रोगो मे इसका ही उपयोग करना उचित है। इसकी छाल मे धूर्त विक्रेता अन्य काचनारो की छाल मिलाकर इसके नाम से बेचते हैं, अत उनकी सम्यक् जाचकर ही उपयोग मे लिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त काचनार की छाल मे वट जटा की छाल किंवा वटशाखा की छाल भी मिला दी जाती है। इनको भी भली-भाति देख लेना चाहिये। वास्तविक द्रव्य ही अभीष्ट लाभ पहुँचा सकता है सुतरा असली-नकली की परीक्षा करना चिकित्सक के लिए अनिवार्य है। नकली की बहुतायत से खिन्न मन हो एक कवि ने कहा है—

बस, नाम ही रह गया असली का यहा।
माल सब नकली मिले बाजार मे ॥

कांचनार का साहित्यमय वर्णन—आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने काचनार का साहित्यमय कमनीय वर्णन किया है जिसमे काचनार को वर का रुप दिया है। उपमेय मे उपमान का आरोप उसके समस्त अङ्गो के साथ किया जाने के कारण निम्नाकित पद्य मे साङ्गरूपक अलकार है—

वसन्तकाले वरकाचनार को-
दधाति हार धवलप्रसूनकम् ।
सुगन्धितास्यो ननु भृङ्गलोचनै-
प्रतीक्षते कामपि फुल्लिता लताम् ॥

—प्रियनिघण्टु १९७

सस्कृत साहित्य मे कवि कालिदास का स्थान सर्वोपरि है। प्रकृतिवर्णन के वे सिद्धहस्त कवि माने गये हैं। उपमा विषयक किंवा शृगार रस प्रधान स्थल के वर्णन मे उन्होने वनौषधियो का भी वर्णन किया है। "ऋतुसहार" मे ऋतुओ के वर्णन मे बहुत सी वनौषधियो का वर्णन उपलब्ध होता है। वसन्तऋतु मे अशोक काच-

नारादि वृक्षो पर मनभावन पुष्प देखकर कवि गा उठा है।

द्रुमा सपुष्पा सलिल सपद्म -
स्त्रिय सकामा पवन सुगन्धि ।
सुखा. प्रदोषा दिवसाश्च रम्या -
सर्वं प्रिये चारुतर वसन्ते ॥

यह पूर्व मे कहा जा चुका है कि कोविदार काचनार का ही भेद है। काचनार वसन्त मे तथा कोविदार शरदृतु मे पुष्पित होता है। शरदृतु वर्णन मे कोविदार की सुन्दरता का सुन्दर वर्णन किया है—

मन्दानिलाकुलित चारुतराग्रशाख -
पुष्पोद्गमप्रचय कोमल पल्लवाग्र ।
मत्तद्विरेफपरिपीतमधुप्रसेक -
चित्त विदारयति कस्य न कोविदार ॥

—ऋतुसहार ३/६

इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण मे भी कि० का० ५०/२६ मे कचन वृक्ष के नाम से काचनार का उल्लेख मिलता है।

अव पुन मूल विषय (श्वेत काञ्चनार) पर आये। इसके रसगुणादि इस प्रका है—

रस—कषाय ।

गुण—रुक्ष, लघु ।

वीर्य—शीत ।

विपाक—कटु ।

प्रभाव—गण्डमालानाशक ।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष तक ।

दोषकर्म—रुक्ष, लघु गुणो से तथा कषाय रस से कफ का एव शीतवीर्य से पित्त का शमन करता है। "सिद्धमत्र" के रचयिता ने भी कफपित्तघ्नवर्ग मे इसका उल्लेख किया है।

प्रयोज्य अङ्ग—त्वक् और पुष्प ।

मात्रा—त्वक् (छाल का चूर्ण ३-६ ग्राम, क्वाथ ४०-८० मि० ली० ।

गुणप्रकाशकसंज्ञा—गन्डारि-"गन्डारि स्याद् गण्डमालानाशकत्वात् प्रभावत." ।

गुणधर्म—

काञ्चनारोहिमो ग्राही तुवर श्लेष्मपित्तहृत् ।
कृमिकुष्ठगुदभ्रंश गण्डमाला व्रणापहा ॥
कोविदारोऽपि तद्वत्स्यात्तयो पुष्प लघुस्मृतम् ।
रूक्ष सग्राहि पित्तास्रप्रदरक्षयकासनुत् ॥

भा० प्रा० नि० ।

काञ्चनार कपाय स्याच्छीतो ग्राही व्रणापह. ।
कफपित्तहरो गण्डमालापचि विनाशन. ॥

—प्रि० नि० ।

शणस्य कोविदारस्य कर्बुदारस्य शाल्मले. ।
पुष्प ग्राहि प्रशस्त च रक्तपित्ते विशेपत ॥

—च० सू० २७ ।

रक्तस्तु काञ्चन शीत. सरो ह्यग्निप्रदीपन ।
सप्रोक्तस्तुवरो ग्राही . कफपित्तव्रणक्रिमीन् ॥
गण्डमाला रक्तपित्तकुष्ठवातांश्च नाशयेत् ।
गुदभ्रंश रक्तपित्त नाशयेत्पुष्पमस्य च ॥
श्वेतस्तु काञ्चनो ग्राही तुवरोमधुर स्मृत ।
रुच्यो रूक्ष श्वासकासपित्तरक्तविकारहा ॥
क्षतप्रदरनुत्प्रोक्तो गुणाश्चान्ये तु रक्तवत् ॥
पीतस्तु काञ्चनो ग्राही दीपनो व्रणरोपण. ।
तुवरो मूत्रकृच्छ्रस्य कफवाय्वोश्चनाशन. ॥

—नि० रत्नाकर ।

मेद, कफ और शोणित के सचय से गलप्रदेश मे गण्डनामक व्याधि उत्पन्न हो जाती है—

मेद कफाच्छोणितसचयोत्थो ।
गलस्य मध्ये गलगण्ड एक ॥

—चरक० चि० १२ ।

एवविध बहुत से गण्ड उत्पन्न होने पर गण्डमाला कही जाती है। यद्यपि सुश्रुत भोज आदि आचार्यो ने इसका स्थान कक्षा, वक्षण आदि भी कहे है किन्तु चरकाचार्य इसका 'गलस्य मध्ये' कह कर एकमात्र स्थान गलप्रदेश ही कहते है। इस रोग के कारण मे कफदुष्टि की प्रधानता है। भोज एवं कण्ठदत्त ने इसमे त्रिदोष की कार्मुकता स्वीकार की है। वस्तुत गण्डमाला मे कफ वात की प्रधानता होती है। जब कुछ दिनो के

बाद पित्त का प्रकोप होने पर उनमे पाक होने लगता है किंवा वे चिरस्थायी हो जाती है तो वे 'अपची' के नाम से जानी जाती है– चिरपाकिभिरेपैव चिरस्थापचिकाभवेत्" । जब यह ज्वर, प्रतिश्याय, कास छर्दि आदि लक्षणो से युक्त हो तब क्षयात्मिका हो जाती है, ऐसी स्थिति मे यह असाध्य मानी गई है । प्रारम्भिक अवस्था मे यदि नियमित काचनार के कल्पो का सेवन किया जाता है तो अवश्यमेव लाभ दृष्टिगोचर होता है । कहा गया है—

पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पेया काञ्चनारत्वच शुभा ।
विश्वभेषजसयुक्ता गण्डमालाहरा परा ॥
—चक्रदत्त ।

काञ्चनारत्वच क्वाथ शुण्ठी चूर्णेन सयुत ।
माक्षिकाढ्य सकृत्पीत क्वाथो वरुणमूलज ।
गण्डमाला हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥
—भै० र० ।

काञ्चनारत्वच क्वाथ शुण्ठी चूर्णेन नाशयेत् ।
—शा० स० ।

त्वच काञ्चनारस्य सलवाय तोये
जनाजीवनी द्विद्विवार भजन्ति ।
निबध्नन्ति तत्कोष्णकल्क च कण्ठे
न ते गण्डमालाभयेन व्यथन्ते ।
—सजीवनीसाम्राज्यम्

इसके अतिरिक्त "काञ्चनार गुग्गुल" (भै० र०) "काञ्चनारगुडिका" (भै० र०), गण्डमालाकण्डन रस (यो० र०) आदि इसके प्रमुख शास्त्रीय प्रयोग व्यवहृत होते है । कविराज श्री हरिवक्षजी जोशी ने एक औषधि व्यवस्था लिखी है—

प्रारम्भिक अवस्था मे यदि गण्डमाला की चिकित्सा की जाय तो ८० प्रतिशत रोगियो को अवश्य लाभ हो सकता है, जिन रोगियो मे सञ्चित विष की मात्रा अधिक नहीं हो उन्हे निम्नलिखित औषधियो का प्रयोग कराया जाय ।

प्रात.-सायम्—काञ्चनार गुग्गुल १ ५-१ ५ ग्राम ।

अनुपान—काञ्चनार छाल गोरखमुण्डी, खैरछाल, हरीतकी और विजयसार की लकड़ी का क्वाथ बनाकर उसमे मधु मिलाकर सेवन करायें ।

मध्यान्ह एव रात्रि—गण्डमालाकण्डनरस ५००-५०० मि० ग्राम० ।

अनुपान—सरिवाद्यासव २५ मि० ग्रा० १ औस समान पानी मिलाकर पीना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त निर्गुण्डी तैल की नस्य एव इसी तैल का ग्रन्थि पर अभ्यङ्ग कर नमक की पोटली से सेक करे । भोजन मे पौष्टिक खाद्य, छेना वगैरह और दूध दिया जाय । स्वच्छ वातावरण, प्रात -साय भ्रमण, ब्रह्मचर्य आदि आवश्यक है । इस प्रकार ६ मास तक नियमित रूप से चिकित्सा करने पर नि सन्देह लाभ होगा ।"
—धन्वन्तरि सिद्ध चिकित्साङ्क

अन्य व्यवस्था—१ काचनार गुग्गुल दिन भर मे १५ ग्राम तक देना ।

२ लौहभस्म दिन भर मे ७५० मि० ग्रा० तक ।

३ शिलाजीत दिन भर मे ३ ग्राम तक ।

४ त्रिफला चूर्ण दिन भर मे ३० ग्राम तक देना चाहिये ।

५ काचनार की छाल २० ग्राम का क्वाथ भी साथ मे पिलाना चाहिये । —वैद्य श्री जुगताराम दुबे

प्रात —काचनार गुग्गुल २ ग्राम वरुणादि क्वाथ से ।

सायम्—गण्डमालाकण्डन रस २ ग्राम खदिरारिष्ट से ।

भोजनोत्तर—विडङ्गारिष्ट (श्लीपदाधिकार) दोनो समय दे । —वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य

इसके अतिरिक्त लसीकाग्रन्थियो की वृद्धि पर भी काचनार अच्छा कार्य करता है । चुल्लिकाग्रन्थी (Thyroid Gland) की क्रियाविकृति पर सावेदनिक क्रियावरोधक औषधि के रूप मे आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी ने इसकी उपादेयता प्रदर्शित की है—

"काचनारत्वक् सत्व व सर्पगन्धाघनसत्व—ये औषधिया सावेदनिक क्रियाओ की अवरोधक (Antisympa-

lhetic Drugs) हैं। यदि वडी मात्रा मे १-१ ग्राम की लगातार ६ या ८ घण्टे पर मुख द्वारा दी जाय।"

—आत्ययिक चिकित्सा

यह कषाय शीत होने से रक्तस्तम्भक है, सुतरा रक्तपित्त मे लाभप्रद है। शाल एव निम्ब की भाति काचनार मे भी मसूरिकारोधक गुण है—

उत्थिता प्रविशेत् या च ता पुन वाह्यतो नयेत्।
काचनारत्वच. क्वाथस्ताम्रचूर्णविचूर्णित ॥

—गा० स० म० ख०

स्तम्भन गुण के कारण अतीसार, प्रवाहिका मे विशेषत रक्तातीसार मे तथा रक्तार्श मे यह लाभप्रद है। भगवान् चरक ने रक्तार्श चिकित्सा प्रकरण मे उपयोगी ६ खण्डयोग कहे है उनमे "काश्मर्यामलकाना सकर्बुदारान् फलाम्लाश्च" कहकर अतिरिक्त प्रवृत्ति को रोकने हेतु प्रथम खण्ड का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त प्रवाहिका के कारण कि गुणशैथिल्य के कारण उत्पन्न हुये गुदभ्रंश मे भी यह लाभप्रद है। इसके क्वाथ का बाह्याभ्यन्तर प्रयोग हितावह कहा गया है। यह कृमिघ्न होने से कृमिरोग मे भी लाभदायक है। कासरोग मे भी लाभ पहुँचाता है। आर्तव स्राव की अधिकता को भी मिटाता है। मूत्र सग्रहणीय होने से यह प्रमेहरोगहर भी है। कफपित्तहर होने से विशेपत कफजन्य किवा पित्तजन्य प्रमेहो मे यह लाभ पहुँचाता है। कुष्ठघ्न होने से कुष्ठादि मे जहा लसिका स्राव की विशेपता हो वहा यह अपनी शोषण क्रिया द्वारा लसिकास्राव को वन्द करता है, तथा अपने कषाय रस से त्वचा की शुद्धि करता है। व्रणशोधन, व्रणरोपण तथा शोथहर होने से इसके त्वक् क्वाथ प्रक्षालन से शीघ्र ही व्रणो का शोधन-रोपण होता है। विशेपतया मधुमेहजन्य व्रण पिडिकाओ पर इस क्वाथ का वाह्याभ्यन्तर प्रयोग हितावह है। नाडीव्रण मे "काचनार गुटिका" अतीव लाभप्रद है। —भै० र०

यह रूक्ष होने के कारण लेखन है और लेखन होने से मेद को कम करता है। कफशामक एव मेदहर होने से ही यह गण्डमाला, अपची, अर्बुद आदि रोगो को दूर करता है। काचनार गुग्गुल की प्रशस्ति मे कहा गया है—

गलगण्ड यमत्युग्रमपचीमर्बुदानि च।
ग्रन्थीन् व्रणानि गुल्माश्च कुष्ठानि च भगन्दरम्॥

उदय कैंसर आयुर्वेदिक हास्पिटल के सस्थापक वैद्यराज श्री रामसिंह गोहिल ने एक काचनारादि कतिपय औषधियो का क्वाथ प्रदर्शित किया है। जो कैंसर रोग मे लाभप्रद है। जिसके उपयोग से वे स्वय भी इस दारुण रोग से मुक्त हुये थे। क्वाथ है यह—काचनार, रक्तरोहितक, पुनर्नवा, तुलसीपत्र, शिग्रु, अश्वत्थ, अमृता, शरपुखा, वरुण, अजमोद और हरिद्रा के क्वाथ मे १ ग्राम बोल तथा १ ग्राम शिलाजीत मिलाकर सुवह-शाम पीने से कैंसर की रोकथाम होती है। इसका उपयोग श्री गोहिल ने दो माह तक किया था।

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग

(१) स्नायुक—काचनार की छाल को पीसकर लेप करने से शोथ, शूल का शमन होता है।

(२) विद्रधि—छाल को तण्डुलोदक के साथ पीसकर पुल्टिस वनाकर बाधने से विद्रधि पक कर फूट जाती है।

(३) व्रण—क्षत व्रणो को छाल के क्वाथ से धोना हितावह है। इससे व्रण का शोधन एव रोपण होता है।

(४) प्रमेह पिडिका—प्रमेह पिडिकाओ को भी इसके क्वाथ से धोना हितकर है।

(५) गुदभ्रंश—छाल के क्वाथ से गुदा का प्रक्षालन तथा पत्रकल्क का बन्धन गुदभ्रंश मे लाभप्रद है।

(६) ग्रन्थि—काचनार की छाल, चित्रक और वासामूल की छाल को पानी मे पीसकर लेप करने से ग्रन्थि ठीक होती है।

(७) दन्तशूल—कोमलपत्र या छाल के चूर्ण किवा छाल की भस्म का मजन दन्तशूल को मिटाता है।

(८) रक्तार्श—काचनार की छाल, जामुन की छाल तथा वकुल (मोलश्री) की छाल के क्वाथ से रक्तार्श रोगी को गुदप्रक्षालन करना चाहिये।

(९) मुखपाक—[क] काचनारमूलत्वक् क्वाथ मे कत्था मिलाकर गण्डूष करना मुखपाक मे लाभप्रद है।

[ख] वकुल की छाल मे तिगुनी काचनार की छाल लेकर क्वाथ कर गण्डूष करना भी हितकर है।

[ग] काचनार की छाल और दाडिम के पुष्पो के क्वाथ से गण्डूष करना भी मुखपाक रोग को दूर करता है। इसमे पारद, हिंगुल, भल्लातक एव रसकपूर आदि के सेवन से उत्पन्न मुखपाक भी दूर होता है।

(१०) नेत्राभिष्यन्द—पत्रो को पीसकर टिकिया बनाकर नेत्रो पर रखकर वाधने से लाभ होता है।

(११) सन्धिवात—मूल को पानी मे घिसकर गर्म कर आक्रान्त स्थान पर लेप करना लाभप्रद है।

(१२) गण्डमाला—[क] एक भाग लोध्र की छाल का चूर्ण तथा पाच भाग काचनार की छाल को जल के साथ पीसकर लेप करना गण्डमाला विनाशक है।

[ख] काचनार की छाल, गुग्गुल, गन्धक और रसौत को जल मे पीसकर गण्डमाला पर लेप करना भी हितकर है।

[ग] एक भाग सोठ चूर्ण और चार भाग काचनार छाल को जल मे पीसकर लेप करना भी उसी प्रकार लाभदायक है।

[घ] काचनार की छाल, सैन्धवलवण और कज्जली (पारद + गन्धक) को समानभाग लेकर आक के दूध मे पीसकर गण्डमाला पर लेप करना भी लाभदायक है।

(१३) शोथरोग—इसकी जड को पानी मे घिसकर तथा गरम कर रक्तविकारजन्य तथा सन्धिवातजन्य शोथ पर लेप करना हितावह है।

आभ्यन्तर प्रयोग—

(१) प्रमेह—पुष्पकलिका, शर्करा के साथ सेवन करना प्रमेहहर है।

(२) आमातीसार—पत्र चूर्ण शतपुष्पा के अर्क के साथ सेवन करें।

(३) आन्त्रकृमि—पुष्पकलिका का किंवा छाल का क्वाथ पीने से आन्त्रकृमि नष्ट होते हैं।

(४) रक्तार्श—[क] पुष्प चूर्ण के बराबर मिश्री मिलाकर नवनीत के साथ चाटना रक्तार्श मे हितकर है।

[ख] पुष्प चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर दूर्वास्वरस के अनुपान से सेवन करना भी रक्तार्श मे हितकर है।

(५) रक्तप्रदर—पुष्पकलिका क्वाथ रक्तप्रदर को मिटाता है।

(६) मेदोरोग—मेदोरोग मे नियमित मूलक्वाथ गुग्गुल के साथ सेवन करना चाहिये।

(७) स्वप्नमेह—छाल का चूर्ण कुछ समय तक सेवन करना हितकर है।

(८) उपदंश—काचनार छाल का अर्क बनाकर कलमीशोरा के साथ सेवन करने से उपदंश के उपद्रव शान्त होते है।

(९) कास-श्वास—काचनार पचाग की भस्म बनाकर मधु के साथ किंवा छाल के क्वाथ मे मधु मिलाकर सेवन करना कास-श्वास मे हितकर है।

(१०) पूयमेह—काचनार की छाल, इन्द्रायणमूल, बबूल की फली और छोटी कटेरी का क्वाथ पूयमेह को नष्ट करता है।

(११) प्रवाहिका—काचनार के पुष्पो को घी मे भून ले और इसके बराबर शक्कर मिलाकर चावलो के पानी के साथ सेवन करे। इसके सेवन से वातजन्य प्रवाहिका का शमन होता है।

(१२) गण्डमाला—[क] ४० ग्राम छाल को स्टील के पात्र मे ४०० मि० लि० जल मे पकावे जब ५० मि० लि० शेष रहे तब उतार छानकर उसमे ३-४ ग्राम शुण्ठी चूर्ण तथा १० ग्राम मधु मिलाकर ४० दिन तक नियमित सेवन करने से गण्डमाला मे लाभ होता है।

[ख] चावलो के पानी मे काचनार की छाल पीसकर उसमे सोठ चूर्ण मिलाकर भी सेवन करना गण्डमाला के रोगी के लिए हितकर है।

[ग] काचनार की छाल के क्वाथ मे पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करना भी लाभदायक कहा गया है।

[घ] काचनार पुष्पो के क्वाथ मे मधु मिलाकर सेवन करना भी हितकर है।

(१३) आध्मान—३ माशा अजवायन का चूर्ण खाकर इसकी छाल का क्वाथ पीने से आध्मान दूर होता है।

(१४) अरुचि—काचनार की पुष्पकलिका उबालकर घी मे भूनकर खाने से भोजन मे हुई अरुचि दूर होकर रुचि उत्पन्न होती है।

(१५) विदग्ध—विदग्ध को मिटाने के लिए पुष्पो का गुलकन्द बनाकर नियमित सेवन करना चाहिये।

(१६) मसूरिका—स्वर्णमाक्षिक भस्म को काचनार की छाल के क्वाथ के अनुपान से कुछ समय सेवन करने से मसूरिका पूर्णतया बाहर निकल जाती है, जिससे रोगी लाभ प्राप्त करता है।

(१७) कुष्ठ—कुष्ठरोग मे काचनार की छाल के क्वाथ मे २५० मि० ग्रा० सोठ का चूर्ण तथा १०-१५ बूद बाकुची तैल मिलाकर कई दिनो तक सेवन करना चाहिये।

(१८) सर्वसर—बबूल की फली और दाडिमफल के छिलके का चूर्ण काचनार की छाल के क्वाथ के अनुपान मे सेवन करना सर्वसर मे हितकर है।

यूनानी मतानुसार- यह दूसरे दर्जे मे शीत और खुश्क है। किसी के मतानुसार यह समशीतोष्ण है। यूनानी ग्रन्थकार इसे कब्ज उत्पन्न करने वाला तथा भेदे व आतो को कूवत देने वाला मानते हैं। यह कठमाला, कृमिरोग, खूनविकार मे मुफीद है। इसके अतिरिक्त यह प्रमेह मे भी लाभप्रद है। उक्त रोगो मे इसकी छाल का उपयोग किया जाना चाहिये। इसके पुष्पो की कलिया खासी, दस्त, बवासीर, मासिकधर्म की अधिकता और पेशाब की राह से खून जाने मे मुफीद है।

पीले कचनार की छाल का काढा पिलाने से आतो के कीडे मरते हैं। इसकी सूखी पत्तियो के चूर्ण की फकी देने से आमातिसार मिटता है। इसकी जड की छाल का क्वाथ पिलाने से जिगर की सूजन मिटती है।

लाल कचनार की जड का क्वाथ पिलाने से हाजमे की कमजोरी मिटती है। अजवायन के चूर्ण के साथ यह क्वाथ आफरे को मिटता है। इसकी कलियो का चूर्ण मिश्री तथा मक्खन मे मिलाकर चटाने से खूनी बवासीर दूर होती है। इसकी चाय या फूल के क्वाथ को शीतलकर उसमे थोडा शहद मिलाकर पिलाने से गण्डमाला तथा अन्य रक्त रोग दूर होते है। कुष्ठरोग मे इसकी छाल के क्वाथ मे बाकुची तैल मिलाकर सेवन कराया जाता है।

देर से हजम होने के कारण कचनार किन्ही व्यक्तियो को अति सेवन से आफरा एव खुश्की उत्पन्न कर देता है। गुलकन्द, लवण एव गरममशाला इन द्रव्यो को शान्त करने मे सहायक होते है।

आधुनिक मतानुसार—डा० डीमक के मतानुसार इसके पत्तो का क्वाथ मलेरिया ज्वर के कारण हुए शिर शूल को मिटाता है। इसकी छाल एव अनार के फूल के क्वाथ से गण्डूप करने से मुखपाक मे लाभ होता है। इसकी कलियो का क्वाथ, खासी, खूनी बवासीर, रक्तमेह एव प्रदर मे लाभप्रद है।

मान्याल और घोष के मतानुसार भीतरी उपचार मे इसकी छाल विशेष उपयोगी है। यह धातुशोधक, पौष्टिक और सकोचक है। कठमाला रोग मे यह अत्यन्त लाभप्रद है। इस रोग मे गले की ग्रन्थि बढ जाने पर इसे चावल के पानी और सोठ के साथ उपयोग मे लिया जाता है। विद्रधि मे इसकी ताजी छाल का स्वरस लाभप्रद है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह पेचिश में लाभप्रद है और विषनिवारक है। इसके फल मूत्रल, बीज पौष्टिक और कामोद्दीपक है। यह साप व विच्छू के जहर मे लाभप्रद है। केस और महस्कर ने भी इसे साप और विच्छू के जहर मे लाभप्रद कहा है।

डा० खोरी के मतानुसार इसकी मूलत्वक् एवं पुष्पमुकुल रसायन तथा सग्राहक है। मूलत्वक् का क्वाथ गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, कुष्ठ एव अन्य चर्म रोगो मे सेव्य है। गण्डमाला मे शुण्ठी चूर्ण के साथ, तण्डुलोदक के साथ देना चाहिये। किंवा शाल्मली निर्यास (Gum-resin of boswellia serrata), हरीतकी एव अन्यान्य सुगन्धित औषधियो के साथ देना चाहिये। काञ्चनार-

मूलत्वक्, दाडिमपुष्प, बब्बूलत्वक् के क्वाथ का गल-क्षत व लालास्राव के प्रतिकारार्थ गण्डूष करायें। कलियो का क्वाथ रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि के प्रचुर रक्तस्राव, श्लेष्मधरकला के रक्तस्राव (Bleeding from Thimucous surfaceis), कास एवं रक्तमूत्रता आदि रोगो मे सेवन करने योग्य है।

डा० नगेन्द्रनाथ सेन ने कहा है कि इसकी मूल का क्वाथ मेदो विनाशक है सुतरा मेदस्वी मनुष्य को इसका सेवन करना चाहिये। इसका गोंद प्रवाहिका और अर्श मे भी लाभदायक है। इसकी छाल तथा खदिर की छाल के क्वाथ से गण्डूष करने से कटी हुई जीभ ठीक होती है। इसके स्वरस के सयोग से स्वर्णभस्म भी बनाई जाती है।

डा० जार्जवैट ने कहा है कि इसकी छाल कसैली, बल्य और चर्मरोगहर है। जड का क्वाथ आध्मान, ग्रहणी आदि मे लाभदायक है। शुष्क पुष्पमुकुल रक्तार्श, रक्तातिसार मे हितावह है। पुष्पो के कल्क मे शर्करा मिलाकर सेवन करने से कोष्ठ की कठोरता दूर होती है।

डा० देसाई के अनुसार यह नवीन रोगो मे शीघ्र ही लाभ पहुँचाता है। इसकी क्रिया त्वचा के उपभाग रसग्रन्थि पर होती है। इससे इन भागो की विनिमय क्रिया मे सुधार होता है। इसकी अधिक मात्रा सेवन से वमन-विरेचन होने लगता है। यह व्रण शोधन तथा व्रणरोपण है अत इसके मूल क्वाथ से व्रणो का प्रक्षालन करना उत्तम है। ग्राही होने से यह अतिसारादि मे भी लाभप्रद है। गण्डमाला एव अपची की यह श्रेष्ठ औषधि है। इन रोगो मे चिकित्सक इसे खूब प्रयोग मे लाते हैं। छाल के क्वाथ को गुग्गुलु आदि प्रयोजक औषधियो के साथ दिया जाता है।

डा० नाडकर्णी के मतानुसार इसकी छाल रसायन बल्य एव सकोचक है। इसकी जड कोष्ठवात प्रशमन (Corminative) है। जड का क्वाथ अग्निमांद्य और स्थूलता पर लाभप्रद है। छाल के कल्क मे शुण्ठी चूर्ण मिलाकर गडमाला की ग्रन्थियो पर लेप किया जाता है। छाल के क्वाथ से व्रणों का धोना उपयुक्त है। इस क्वाथ के पान से अतिसार में लाभ होता है।

पुष्प—आनुलोमिक क्रिया करता है। शुष्क पुष्प कलिकायें अर्श, प्रवाहिका, कृमिरोग को दूर करती हैं।

मलाबार प्रान्त में इसकी मूल की छाल का क्वाथ यकृत के प्रदाह पर दिया जाता है। इसे ये कृमिरोग मे भी उपयोगी मानते हैं। गण्डमाला तथा अर्बुद पर इसकी छाल को कूटकर व्रण पाचनार्थ लेप के रूप मे उपयोग में लाते हैं।

भस्मनिर्माण मे काञ्चनार की उपादेयता—

(१) रस तरङ्गिणीकार ने स्वर्णमारण के विविध प्रकारों मे पञ्चम मारण के अन्तर्गत काञ्चनार का वर्णन किया है। उक्त मारण प्रकार इस प्रकार है—"विशुद्ध स्वर्ण के सूचीवेध्य पत्रो को खरल मे डाल इसमे सम-भाग शुद्ध पारद मिलाकर तीन दिनो तक नीबू के स्वरस मे मर्दन करके जल से अच्छी तरह धो लें। अब इसमे स्वर्ण से आधा भाग श्वेतपाषाण का चूर्ण मिला जम्बीरी नीबू के रस मे तीन दिनो तक मर्दन कर द्रव भाग को सुखाकर चूर्ण कर लें। अब इस चूर्ण मे स्वर्ण के बराबर भाग शुद्ध गन्धक चूर्ण मिलाकर लघु सम्पुट मे बन्दकर लघुपुट मे फूक दें। इस प्रकार तब तक लघुपुट मे फूकते रहे जब तक स्वर्ण की चन्द्रिका रहित भस्म न हो जाय। निश्चन्द्र भस्म होने पर इस भस्म को काञ्चनार की छाल के स्वरस मे भावना देकर फिर लघुपुट मे फूके। इस प्रकार काञ्चनार स्वरस की भावना देकर तीन पुट दें। इस विधि से बनी हुई स्वर्णभस्म पके हुये जामुन के रग की होती है। स्वर्ण-भस्म बनाने की यह सरल विधि है।

वक्तव्य—उक्त पञ्चम मारण प्रकार है श्वेतपाषाण (सगमरमर) चूर्ण पहिले एक बार ही डालना चाहिये, दूसरे पुटो मे नही। यह आधा भाग श्वेत पाषाण चूर्ण निश्चन्द्रभस्म करने तक प्राय उड जाता है यह दग्ध होकर किञ्चित् क्षार रूप मे अवशिष्ट रहता है।

—प० श्री धर्मानन्द शास्त्री।

(२)—काञ्चनारत्वक् किंवा पुष्पो को पीसकर उसमे ६ ग्राम गधक मिलाकर इस कल्क मे विशुद्धस्वर्ण-



कोविदार [Bauhinia Purpurea]

विभिन्न नाम : सं०–कोविदार। हिन्दी–कोइलार, कचनार लाल। मराठी, बंगला–रक्तकांचन। लैटिन–बोहिनिया पुरपुरा (Bauhinia Purpurea)।

प्राप्ति स्थान : प्राय पहाडी प्रदेश।

उपयोगी अंग : त्वक्, पुष्प।

रोगोपयोग : काञ्चनारवत्।

पत्र रख शराव सपुट कर अग्नि दे। इस प्रकार २१ वार पुट देने से स्वर्ण की भस्म तैयार हो जाती है। रजतभस्म बनाने के लिये काञ्चनार कल्क मे रजतपत्र रखकर पुट दे। इस कल्क मे गन्धक मिलाने की आवश्यकता नही है। —महत श्री मुखरामदास द्वारा।

(३)—काञ्चनारत्वक् स्वरस मे समभाग शुद्ध पारद एव शुद्ध गन्धक की कज्जली को खूब खरल करें। इसके पश्चात् एक भाग स्वर्णपत्रो पर एक भाग कज्जली कल्क का लेप कर दें। फिर काञ्चनार छाल को सूक्ष्म पीसकर दो मूषा बनाकर उनमे उक्त स्वर्णपत्रो को बन्द करदें और इस मूषा को शराव सम्पुट मे बन्द कर ऊपर अच्छी तरह कपडमिट्टी कर तीव्राग्नि मे फूक दे।

इस प्रकार केवल तीन बार पुट देने से निरुत्थ स्वर्णभस्म तैयार हो जाती है। यह शास्त्रानुमोदित उत्तम प्रक्रिया है।

—आ० सू० श्री प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी।

विविध कल्पनायें—

१ काञ्चनारादि क्वाथ—काञ्चनार की छाल १ किलो ग्राम, पित्तपापडा, कुटकी, मुडी, उसवा प्रत्येक ५०० ग्राम, वरना की छाल २५० ग्राम इन सबको यवकुट कर रखले। आवश्यकतानुसार २५-६० ग्राम द्रव्य लेकर सोलहगुने जल मे पकाकर चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ करलें। छानकर, ठडा होने पर इसमे १०-१५ ग्राम मधु मिलाकर सेवन करें। इस प्रकार प्रात.साय क्वाथ बनाकर सेवन करने से गडमाला, ग्रन्थि एव अन्य रक्तदुष्टिजन्य विकृतिया समाप्त होती हैं।

२. काञ्चनारघन—२५० ग्राम काञ्चनार छाल को यवकुट करले। इसे २ ५६० लिटर जल मे पकार्दे, जब ६४० मि० लि० जल शेष रहे तब पाक समाप्तकर पतले कपडे से छान लें। पुन इसका पाक करें जब तक घन न हो। जब घन हो जाय तब उतारकर शीतल होने दे। इसे सुरक्षित रखे। और आवश्यकतानुसार उपयोग मे लावें। मात्रा-४ ग्राम गरम दूध के साथ दिन मे २ वार देने मे गण्डमाला, अपचि आदि रोगों में लाभ होता है।

३ काञ्चनारगुग्गुलु—(क)काञ्चनार की छाल ४८० ग्राम, हर्रे का दल ९६ ग्राम, आवला दल ९६ ग्राम, सोठ ४८ ग्राम, कालीमिर्च ४८ ग्राम, छोटीपीपल ४८ ग्राम, वरुना की छाल ४८ ग्राम, छोटी इलायची १२ ग्राम, दालचीनी १२ ग्राम, और तेजपात १२ ग्राम ले सबका कपडछन चूर्ण कर, सबके बरावर साफ किया गूगल ले, उसको पत्थर की खरल मे या लोहे के इमामदस्तो मे कूटें, जब गूगल नरम हो जाय तब उसमें थोडा-थोडा करके सब चूर्ण मिला दे और कूटकर गोली जैसा बने तब १ ग्राम ५०० मि० ग्राम की गोलिया बनाकर शीशी मे भर लें।

मात्रा और अनुपान—सवेरे शाम २ गोली लें ऊपर से काञ्चनार की छाल, वरुना की छाल, गोरखमुण्डी और वेर की छाल या लकडी का बुरादा इनका क्वाथ बनाकर दे। इस क्वाथ के अभाव मे हरीतकी क्वाथ किंवा उष्णजल से भी सेवन किया जा सकता है। इसके उपयोग से गण्डमाला, अपची, अर्बुद, ग्रन्थि, व्रण, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर आदि विनष्ट होते हैं।

—सिद्धयोगसंग्रह।

(ख) काञ्चनार की छाल का चूर्ण १४४ ग्राम, मिर्च, पीपल २४-२४ ग्राम, त्रिफला १२ ग्राम इन सबके चूर्ण को एकत्र कर उसमे २५२ ग्राम गूगल मिला खूब कूटें। अच्छी तरह एक जान हो जाने पर उसमे ३६० ग्राम शहद मिला खूब खरल करे। जब गोली बनाने लायक हो जाय तो इसकी ६ ग्राम तक की गोलिया बना ले। इनका सेवन उक्त प्रकार से करने से गण्डमाला, गलगण्ड, व्रणग्रन्थि आदि का नाश होता है।

४ काञ्चनारारिष्ट—इसकी कोमल पत्तिया ५ किलो जौकुट कर उसमे ५२ किलो जल मिला पकावें। १३ किलो जल शेष रहने पर उसे चिकने तथा गूगल से धूपित मटके मे भर उसमे धाय के फूल ५०० ग्राम, शहद १० किलो तक तथा सोठ, सफेद जीरा, कालीमिर्च और शुद्ध गूगल का चूर्ण ४८-४८ ग्राम मिला दे। अच्छी

तरह मुखसंधान कर एक मास तक सुरक्षित रखें। पश्चात् छानकर बोतलो मे भर रखे।

मात्रा—१२ ग्राम से ४८ ग्राम तक निवाये जल के साथ सेवन करने से शीघ्र रक्तशुद्धि होती है। गण्डमाला, कुष्ठादि, चर्मरोग, दाह अतिसार तथा आत्र के कृमियो का यह नाशक है।

५ गुलकन्द काञ्चनार—काञ्चनार के अर्धविकसित पुष्प (अधखिले) १ भाग, मिश्री या दानेदार शक्कर २ भाग दोनो को अच्छी तरह मसलते हुये मिलाकर बरनी मे भर १५ दिन तक धूप मे रक्खे। गुलकद तैयार हो गया।

मात्रा—३० ग्राम तक सेवन करने से कब्जी तथा रक्तविकार और खूनी बवासीर का नाश होता है।

६ गण्डमालाकंडनरस—शुद्ध पारा १२ ग्राम, शुद्ध गन्धक ६ ग्राम, ताम्रभस्म १८ ग्राम, मण्डूरभस्म ३६ ग्राम, सोठ, मिर्च, पीपल २४-२४ ग्राम, सैंधानमक ६ ग्राम, काञ्चनार की छाल का चूर्ण, गुग्गुल १४४-१४४ ग्राम लें। पहले पारा और गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमे अन्य औषधियो का कूट कपडछन चूर्ण मिला (गुग्गुलु मे गोघृत मिलाकर कूटकर नरम करें फिर औषधियों और गुग्गुलु को एकत्र मिला अच्छी तरह कूटकर २५०-२५० मि० ग्राम की गोलिया बनाकर रखले।

मात्रा और अनुपान—१-१ गोली सुबह-शाम काञ्चनार की छाल के क्वाथ से या ताजे जल से दे।

गुण और उपयोग—गलगण्ड, गण्डमाला (कण्ठवेल बंधा) अपची और गाठवाले फोडे-फुन्सियो पर इस दवा का अच्छा प्रभाव होता है। गण्डमाला रोग की यह उत्तम दवा है।

यह रस कफ प्रकृति वालो को बहुत शीघ्र लाभ पहुँचाता है। गण्डमाला वालो को अक्सर बद्धकोष्ठ हो जाता है, उनके लिये भी यह रस बहुत उत्तम है। यह मन्दाग्नि को दूर कर पाचक पित्त को जाग्रत करता है।

गण्डमाला या गलगण्ड की ग्रन्थिया शरीर मे सर्वदा विद्यमान रहती ही हैं। ये ग्रन्थिया दोनो काख (बक्षण), गले के नीचे और कण्ठ मे होती है। इनमे जब कफ दूषित होकर मिल जाता है और साथ मे वायु भी मिला होता है, तब इन ग्रन्थियो की वृद्धि होती है। इनकी वृद्धि काल मे गाठ मे दर्द होता तथा बुखार भी हो जाता है। मन्दाग्नि और बद्धकोष्ठता तो हो ही जाती है। अत. कमजोरी भी बढने लगती है। हाथ पैर भी फटने लगते है। कभी-कभी ये गाठें पककर फूट भी जाती हैं, फिर भी दर्द कम नही होता, फूटने पर यह बहने लगती हैं। उचित उपचार करने पर भर भी जाती हैं, कभी नही भी भरती। स्राव बार बार होता रहता है ये बहुत दिन मे भरती हैं अत' यह व्याधि बहुत कठिन होती है। इसमे चिकित्सा की उपेक्षा करने पर इसकी जड बहुत मजबूत हो जाती है। फिर लाचार होकर शस्त्र क्रिया ही करानी पडती है। ऐसे भयकर रोग से बचने के लिये यह रस दिया जाता है।

—आयुर्वेद सारसग्रह।

पेटेन्ट प्रयोग—बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक यूनानी फार्मस्यूटिकल वर्क्स "काचनार" नाम से सूचीवेध का निर्माण करती है। १ मि० लि० के एम्पुल मे १२ मि० ग्राम काचनारसत्व होता है। मासपेश्यान्तर्गत १-२ मि० लि० सप्ताह मे दो बार ३ माह तक देने से लाभ होता है। यह लसीका ग्रन्थियो के सचार मे वृद्धि कर ग्रन्थियो के शोथ का विलयन करता है, अत गण्डमाला, गलगण्ड नष्ट होते हैं। श्लेष्मा तथा आम विपाक होने से इससे रक्त आमातिसार भी दूर होता है।

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी भी 'कचनार" सूचीवेध बनाती है। १० मि० लि० के व्वाइल मे कचनार १६ मि० ग्रा० तथा स्वर्णक्षीरी १४ मि० ग्रा० है। यह भी गण्डमाला, ग्रन्थि, सर्वसर, रक्तमेह, व्रण, विद्रधि आदि रोगो को विनष्ट करने मे श्रेष्ठ है।

प्रसिद्ध हिमालय ड्रग कपनी वेदना, रक्तस्राव एव शोथयुक्त अर्श रोग को मिटाने वाली "पाईलेक्स" टिकिया का निर्माण करती है। इसमे गुग्गुलु, महानिम्बबीज, शिलाजीत, त्रिफला, खुम्ब, दारुहरिद्रा, अमलतास के साथ काञ्चनार का भी प्रयोग हुआ है।

चरक फार्मास्युटीकल्स अनपेक्षित मेद को नष्ट करने किंवा स्थूलकाय शरीर को ठीक आकार मे लाने हेतु "ओवेनील" नामक टिकिया का निर्माण करता है। इसकी १६५ मि० ग्राम की प्रति टिकिया मे शुद्ध गन्धक गोरखमुण्डीघन, पुनर्नवा, त्रिफलागुग्गुलु, कैशोरगुग्गुलु के अतिरिक्त काचनारगुग्गुलु भी ३० मि० ग्रा० मिलाया जाता है।

आर्य औषधि फार्मास्युटिकल वर्क्स इन्दौर "इम्यूरीन" नामक रक्तशोधक, सारक, कृमिघ्न, शोथहर, ग्राही, सीरप का निर्माण करता है। इसके प्रति १०० मि० लि० मे महामजिष्ठादि क्वाथ, अनन्तमूल, उसवा, खदिर, चोपचीनी, चिरायता, पर्पट, नीम, चन्दन, गुग्गुलु आदि के अतिरिक्त कॉचनारत्वक् भी ३५ मि० ग्राम डाली जाती है। यह २-२ चम्मच दिन मे ३-४ बार कुछ समय देते रहने से रक्तविकृतिजन्यगो रो मे लाभ होता है।

अनुभूत प्रयोग—

१ मुखपाकहर प्रयोग—यदि मुखपाक उपदशजन्य हो तो काचनार की छाल अथवा पत्र २५० ग्राम यवकुट कर उसमे ३६ ग्राम तक कत्था और ६ ग्राम फिटकरी मिला २ किलो जल मे औटावे। एक या डेढ किलो जल शेष रहने पर उतारकर छान ले और सुखोष्ण होने पर कुल्ले करे। एक माह तक साथ ही साथ त्रिफला चूर्ण ६ ग्राम और मिश्री ६ ग्राम नित्य सेवन करे। पथ्य मे हलकी वस्तुऐ खावे। एक माह तक नित्य उक्त ताजा तैयार कर दिन मे ३-४ बार कुल्ले करे।

—आचार्य श्रीकृष्णप्रसाद त्रिवेदी

२ उपदशहर क्वाथ—काचनार की छाल, नीम की छाल, बकायन की छाल, बबूल की कच्ची फली, इन्द्रायन की जड, छोटी कटेरी का पचाग इन ६ औषधियो को २४०-२४० ग्राम लेना, और पुराना गुड सबके समान लेना। सबको जौकुट कर मिलाकर १० गुने पानी मे मिट्टी के घडे मे क्वाथ करना। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर शीतल होने पर छानकर बोतलो मे भर लेना।

मात्रा—१२० ग्राम रोज सुबह ४० दिन तक पिलाना।

उपयोग—उपदश और सुजाक मे दूषित हानिकर औषधियो के सेवन से अथवा अपथ्य पालन से उपदश अथवा सुजाक के उपद्रव शेष रहे हो, उनका इस औषधि के सेवन से जुलाब लगकर जडमूल से नाश हो जाता है। भोजन हलका और सादा लेना चाहिये।

—श्री प० मगुलाल जी द्वारा
रसतन्त्रसार से।

३ गण्डमालाहर कवच—काचनारत्वक् ३ किलोग्राम लेकर यवकुट करे, इसे २४ लीटर जल मे डालकर क्वाथ करे। चतुर्थांश रहने पर उतारकर छान लें। फिर इसमे शुद्ध गुग्गुल २ किलोग्राम मिलाकर पाक करें। तत्पश्चात् त्रिफला ४८० ग्राम, त्रिकटु २४० ग्राम, वरुणत्वक् ८० ग्राम, इलायची २० ग्राम, दालचीनी २० ग्राम, तेजपात २० ग्राम। इन सबको यवकुट कर आठ गुने पानी मे २४ घण्टे भिगोकर घन प्राप्त करे फिर सबको मिलाकर खरल करे। चाहे खरल करते-करते एक माह लग जाय परन्तु इसका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। फिर २५० मि० ग्रा० कवच (कैपसूल) मे भर ले। २ कवच दिन मे ४ बार प्रति ३ घण्टे के बाद जल से सेवन करे। इससे गण्डमाला मे शीघ्र लाभ होता है।

—श्री एम० एस० यादव द्वारा
सुधानिधि सितम्बर ७५ से।



किराततिक्त
[SWERTIA CHIRAYITA]



कलिंग, वैदेही, यावनी, मलयज आदि देशो के नाम से प्रसिद्ध औषधियो की भाति कैरात किंवा किरात भी प्रसिद्ध औषधि है। रस के आधार पर संज्ञा दी जाने वाले द्रव्यो मे भी इसका नाम है अत इसे "किरात-तिक्त" कहा जाता है। यह संज्ञा इसके उत्पत्तिस्थान एव रस की द्योतक है। तिक्त द्रव्यो की वार्ता चलते ही सहसा इसका नाम मुख पर आ जाता है। 'तिक्तद्रव्येषु मत प्रधानम्" के अनुसार भगवान् चरक ने तिक्तस्कन्ध मे इसका उल्लेख किया है। आचार्य वाग्भट ने भी इस स्कन्ध की मुख्य औषधियो के वर्णन मे इसको स्थान दिया है—

तिक्त पटोली त्रायती वालकोशीरचदनम्।
भूनिम्बनिम्बकटुकातगरागुरु वत्सकम्॥

इसी प्रकार षड्रसनिघण्टुकार ने भी तिक्तद्रव्यस्कन्ध नामक चतुर्थस्कन्ध मे "भूनिम्बरलुनिम्बपुष्करजया-क्षुद्राग्निमन्थस्नुही" कहकर इसका वर्णन किया है।

दुग्ध बालको का आहार होने से "बालजीवन" के नाम मे भी पुकारा जाता है। स्तनो से निकलने के कारण इसे "स्तन्य" भी कहते हैं। यद्यपि स्तन इसका प्रकाश स्थान है किन्तु उत्पत्तिस्थान सम्पूर्ण शरीर ही है। यथा हि—

रसप्रसादो मधुर पक्वाहारनिमित्तज।
कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्त स्तन्यमित्यभिधीयते॥
—सुश्रुत० नि० १०।

विविध गुरु एव दुष्ट आहार से दूषित दोष उसे दूषित कर देते हैं। किराततिक्त लघु एव रूक्ष द्रव्य होने से उसे शुद्ध कर देता है। स्तन्यदुष्टि वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज एव त्रिदोषज भेद से विविध होती है। किराततिक्त तिक्त होने से कफपित्तज दुष्टि को एव उष्ण-वीर्य होने से वातजदुष्टि को दूर करता है। विशेषतया यह कफपित्तशामक होने से कफपित्तजन्य दुष्टि को दूर करता है। सुतरा भगवान् चरक ने "दशेमानि स्तन्य शोधनानि" के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है।

दर्शन पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम्॥

के अनुसार तृष्णापित्त (पाचक) का कर्म है। पैत्तिक-गुणो की वृद्धि से शरीर मे जल किंवा सोमगुण की कमी होने से तृष्णा मे वृद्धि होती है। किराततिक्त इस वृद्धि का शमन करता है सुतरा भगवान् चरक ने "दशेमानि तृष्णानिग्रहणानि" के अन्तर्गत भी इसका उल्लेख कर इसकी इस निमित्त उपयोगिता प्रदर्शित की है।

महर्षि सुश्रुत ने इसे आरग्वधादि गण मे वर्णित किया है। यह गण श्लेष्मविषापह, व्रणशोधन एव मेह कुष्ठज्वरवमीकण्डूघ्न कहा गया है। आचार्य वाग्भट ने भी इस गण का वर्णन किया है। इन्होने इस गण को विषमज्वरघ्न कहा है।

रसेन्द्रसारसग्रहकार ने किरातादिगण के नाम से एक स्वतन्त्र गण का वर्णन किया है जो पित्तरोगहर कहा गया है।

किरातममृतानिम्ब कुस्तुम्बुरुशतावरी।
पटोल चन्दन पद्म शाल्मल्युदुम्बरो जटा॥
पैत्तिकामयहन्ताय किरातादिगणो मत।

प्राकृतिक वर्गीकरण के अनुसार यह भूनिम्ब कुल (जेन्शिएनेसी—Gentianaceae) की ओषधि है। आचार्य भावमिश्र ने इसका हरीतक्यादि वर्ग मे वर्णन किया है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने ज्वरघ्न वर्ग मे क्रमाङ्क २ पर इसका वर्णन किया है। ज्वरारम्भक मुख्य दोष

पित्त को यह अपने तिक्तरस से शान्त करता है सुतरा कहा है—

"ज्वरे न किंचित्परम किराताव् ।"

—वालबोधोदय.

वातपित्तादि जनितज्वरे किराताव् भूनिम्वाव् परमं श्रेष्ठ ज्वरनाशकमित्यर्थं, न किञ्चिदस्ति। किरातस्य त्रिदोषशामकत्वाज्ज्वरे इति सामान्येनोक्ति सगता। सेवनञ्चास्य पुन. कषाय चूर्ण तैलादिना यथास्थल विधेयम्। —कुमारी टीका

नाम—

संस्कृत—किराततिक्त, कैरात, कटुतिक्त, किरातक, काण्डतिक्त, अनार्यतिक्त, भूनिव, रामसेवक, तिक्त आदि।

व्याकरण साहित्याचार्य, पडित श्री हरगोबिन्द मिश्र के अमरकोष की टीका में चिरातिक्त, चिरतिक्त, आदि ग्रन्थान्तर मे उपलब्ध आंशिक समानाकार किंवा प्रसिद्धतम पर्यायों का भी उल्लेख किया है। सम्भवत. हिन्दी का नाम चिरायता इन्हीं पर्यायों से बना है।

हिन्दी—चिरायता ।

गुजराती—करियातु, चिरायत ।

बंगला—चिरेता ।

मराठी—किराईत ।

पंजाबी—चरैता ।

राजस्थानी—चिरायतो ।

तामिल—नीलवेम्बु ।

तेलगु—नीलवेमु।

मलयालम— नीलवेप्पा ।

कन्नड़—नीलवेबु ।

अरबी—कसबुजजरीरा ।

फारसी—नोनिहाद, नोनिहादल्दी ।

अंग्रेजी—चिरेट्टा (Chiretta) ।

लैटिन—स्वर्शिया चिरायिता (Swertia Chirayita) ।

उत्पत्ति स्थान—यह हिमालय के निम्नवर्ती उष्ण क्षेत्र कश्मीर से भूटान तक ४ हजार से १० हजार फीट तक की ऊचाई पर होता है। यह नेपाल मे विशेष होता है। मध्यप्रदेश एव दक्षिण भारत मे भी यह पाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमे पीतवर्ण का एक तिक्त ओफेलिक एसिड होता है। इसके अतिरिक्त अन्य जैव सक्रिय सगठक हैं। दो प्रकार के तिक्त ग्लाइकोसाइडस चिरानिन और एमेरोजिण्टिन होते हैं। एमेरोजिण्टिन नामक ग्लाइकोसाइड विश्व के सर्वाधिक तिक्त पदार्थों में से एक है। इसकी तिक्तता एक करोड चालीस लाख मे एक भाग की नगण्य सी सान्द्रता पर भी अनुभव होती है। यह सक्रिय घटक ही इसकी औषधि सम्बन्धी क्षमता का प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त दो क्रिस्टलीय-फिनाल जेन्टीयोपीक्रीन नामक पीले रग का एक न्यूट्रल क्रिस्टल यौगिक तथा एक नये प्रकार का जैन्थोन जिसे सुर्खचिरिन नाम दिया है. होता है। इससे ८ जैन्थोन निकाले गये है। इण्डियन फार्मेकोपिया द्वारा निर्धारित मानको के अनुसार इसमे तिक्त घटक १ ३ प्रतिशत से कम नही होना चाहिये तथा भस्म का अनुपात ४ से ६ प्रतिशत होना चाहिये।

वानस्पतिक परिचय—इसका वर्षायु क्षुप २-४ फुट ऊचा होता है। इसका काण्ड स्थूल नीचे गोलाकार, ऊपर चतुष्कोणीय कृष्ण जामुनी होता है।

पत्र—अभिमुख, स्निग्ध, २-३ इन्च लम्बे, $\frac{1}{2}$-$\frac{3}{4}$ इच चौडे, भालाकार नोकदार, पाच सिरायुक्त, प्राय' अवृन्त होते हैं। नीचे के पत्र बडे व ऊपर के छोटे होते है।

पुष्प मजरी—अनेक शाखा प्रशाखा युक्त होती है, जिस पर हरित-पीत वैगनी आभायुक्त छोटे पुष्प आते हैं।

फल—अडाकार ६ मि० मी० व्यास के नुकीले तथा बीज चिकने व बहुकोणीय होते हैं।

पुष्पकाल—जून-जोलाई एव फलकाल—अगस्त-सितम्बर। फल पक्व होने पर इसका सग्रह करते हैं।



किराततिक्त (Swertia Chirayita)

विभिन्न नाम : सस्कृत–किरात, किराततिक्त। हिन्दी–चिरायता। गुजराती–करियातु। मराठी–किराईत। बगला–चिरेता। अग्रेजी–चिरेट्टा (Chiretta)। लैटिन–स्वर्शिया चिरायता–(Swertia Chirayita)।

प्राप्ति स्थान : कश्मीर, भूटान, नेपाल, दथिणी भारत।

उपयोगी अङ्ग : पचाग। **दोषकर्म** : त्रिदोषहर।

रोगोपयोग : जीर्णज्वर, विषमज्वर, चर्मरोग आदि।

मुख्य योग : किरातादि क्वाथ, सुदर्शन चूर्ण।

भेद—इसकी लगभग १८० जातिया प्राप्त होती हैं। हमारे देश मे इसकी ३७ जातिया उपलब्ध होती हैं। इनकी कतिपय प्रमुख जातियो का सक्षिप्त वर्णन त्रिवेदी जी ने किया है। यहा पर भी इनका वर्णन किया जा रहा है।

१ बेगनी फूल वाला काश्मीरी किरात (Swertia Purpurascens)—यह पश्चिमोत्तर हिमालय के उष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से कुमाऊ तक प्राप्त होता है। इसके काण्ड छोटे और शाखाये फैली हुई रहती हैं। पत्तिया आयताकार या भालाकार करीब ४ से० मी० लम्बी १॥ से० मी० चौडी होती हैं। पुष्पदलो के दोनो चक्रो मे पाच-पाच विच्छेद होते है। दलपत्र हलके सुर्खी लिये बैगनी रग के होते है और दलचक्र के आधार पर एक काला चक्र होता है। विच्छेद बाहर की ओर मुडे हुये और एक-एक ग्रन्थि से युक्त होते हैं। ठा० श्री बलवन्त-सिंह ने वनौषधिदर्शिका मे इस जाति का उक्त वर्णन किया है।

२ छोटा किरात (Enicostema-Littorale)—यह बगाल और बिहार के अतिरिक्त भारत मे प्राय. सर्वत्र आर्द्र भूमि पर विशेषत समुद्र के किनारे के प्रान्तो मे पाया जाता है। इसके छोटे-छोटे पर्वयुक्त, बहुशाखा युक्त, सीधे खडे हुये या जमीन पर कुछ मुडे हुये चतुष्कोण किंवा कुछ नलिकाकार, चिकने मूल से ऊपर तक पत्र युक्त काण्ड वाले २ से २० इच तक ऊचे होते है। इसके पुष्प श्वेतवर्ण के होते है।

इसे सस्कृत मे मामज्जक, तिक्तपत्रा कहते है। इसके अतिरिक्त नागजिह्वा, नाही और कृमिहृत् भी इसके नाम है। हिन्दी मे नाय, नाई, मामेजवा आदि नाम हैं। यह विषमज्वर की प्रसिद्ध औषधि है। गुजरात एव मद्रास में ग्रामवासी इसे देशी क्विनाईन कहते हैं और किरात-तिक्त के स्थान पर इसे ही उपयोग म लाते है। इसे प्राय भाद्रपद मास मे लाकर साफकर सुखाकर रख लेते हैं और समय पर उपयोग मे लेते हैं। वैसे भी यह किराततिक्त का प्रतिनिधि द्रव्य है। औषधिकार्य मे इसका पञ्चाङ्ग ही उपादेय है किन्तु मूल मे गुण अधिक होते हैं। यह विषमज्वर के अतिरिक्त कुष्ठ, मधुमेह एव कृमिरोग मे भी अतीव फलप्रद है। दीपन, पाचन, मारक एव यकृदुत्तेजक होने से आमदोष, विबन्ध व यकृद्दौर्बल्य मे भी लाभप्रद है। लेखन होने से मेदोरोग मे, विषघ्न होने से विषरोगो मे एव रक्तशोधक होने से रक्तविकारों मे भी लाभदायक है।

रस—तिक्त।

वीर्य—उष्ण।

गुण—लघु, रुक्ष, विपाक-कटु तथा यह कफपित्त शामक है—

नाही च नागजिह्वाख्या तीक्ष्णपत्रा विनीदिणका।
कृमिहृत् क्षारकर्मा च तथा मामज्जक स्मृत ॥
—नी० नि०

नाही मामज्जकश्चैव तिक्ता पित्तकफापहा।
मधुमेहे तथा कुष्ठे शस्यते विषमज्वरे ॥
—प्रि० नि०

गावो मे औषधि रत्न के लेखक ने इसके कतिपय उपयोगी प्रयोगो का उल्लेख किया है—

१ सामान्य ज्वर (कफ पित्त जनित), विषमज्वर—इसके पञ्चाङ्ग के क्वाथ मे कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर सेवन करें। इसके प्रयोग से धातुगत ज्वर (जीर्णज्वर) भी दूर होते है। जीर्ण ज्वर मे अरुचि की स्थिति मे इसके पत्रो मे नमक मिलाकर आहार के साथ दिया जाना चाहिये।

२ मधुमेह—इसके अर्क मे शिलाजीत मिलाकर सेवन करे। अर्क ६० मि० लि०, शिलाजीत ५०० मि०-ग्राम।

३ पित्तज्वर जनित शिर शूल—इसके पञ्चाङ्ग का क्वाथ पीवे तथा इसके पत्रो को सिर पर बाधें।

४ गण्डमाला, ग्रन्थि—नवीनपत्र १२ ग्राम मे १ ग्राम लवण मिलाकर थोडे जल के सयोग से कल्क कर लेप करे। फाला हो जाने पर जल निकालकर घृत लगा दे।

विशिष्ट प्रयोग—इसके पचाङ्ग का घन क्वाथ कर उसमे चौथाई भाग कालीमिर्च और कटकरंज बीज का चूर्ण मिला, खूब घोटकर चने के समान गोलिया बना

ने। २-२ गोली उपयुक्त अनुपान मे देवें। इसके उपयोग से ज्वर, उदरशूल, कृमि आदि रोग दूर होते है।

—धन्व० वनौषधि विशेषाङ्क से।

३. मधुर किरात किंवा पर्वतीय किरात—(S Angustifolia) यह हिमालय मे चिनाब से भूटान तक उत्पन्न होता है। उत्तरप्रदेश एवं पजाब मे प्राय इसका व्यवहार किया जाता है। यह स्वाद मे असली किरात की अपेक्षा कम तिक्त होता है। तिक्त कम होने से ही इसे मधुर किरात (मीठा चिरायता) कहा जाता है। इसका काड चतुष्कोण, पक्षयुक्त, १-३ फुट ऊचा, पुष्प-नीलाभश्वेत, पत्र-नकरे २ ४ इंच लम्बे होते हैं।

४. पीले फूल वाला काश्मीरी किरात—(S Alata) यह उक्त मधुर किरात का उपभेद है। कश्मीर से शिमला तक प्राय इसी का उपयोग किया जाता है। यह भी किंचित् ही तिक्त होता है। इसके पुष्प हरे, पीले, कुछ बैंगनी दाग वाले होते है। कश्मीर मे यह बुई तथा पंजाब मे चिरेता, हमन तूनिया के नामो से जाना जाता है।

५ दक्षिणी पश्चिमी किरात (S Ducussata) इसका छोटा क्षुप, काण्ड-चतुष्कोणयुक्त, पत्र-वृन्तरहित, सयुक्त विशेषत अक्ष पर परस्पर भेदन करने वाले तथा पुष्प सघन कलगी मे नीलाभ-श्वेत होते है। दक्षिण के पश्चिमी भागो मे प्राय इसीका व्यवहार होता है। इसे वहा कडु, कर्नी, शिलाजीत, नालारम कहते है। यह स्वाद मे अत्यन्त तिक्त तथा गुणो मे कुटकी किंवा त्रायमाणा के समान है।

६-दक्षिणी किरात (S A Var Pullchella)—इसके पत्र प्राय. ३ इंच से अधिक लम्बे, पुष्प-छोटे सुन्दर श्वेत होते है। यह नीलगिरी, पश्चिमघाट, छोटा नागपुर आदि स्थानो पर होता है।

७ श्वेत पुष्पो वाला काश्मीरी किरात—(S Paniculata) यह कालमेघ (Andrographis-paniculata) का प्रतिनिधि द्रव्य है। यह कश्मीर से नेपाल तक पाया जाता है। इसकी प्रत्येक शाखा मे छोटे-छोटे श्वेत पुष्प होते है।

८ बडा किरात—(Exacum Bicolor) इसके पुष्प श्वेत, सुन्दर, दलपत्रो का अन्तिम भाग नीलाभ, डोंडी मुलायम बादामी रंग की चमकीली होती है। यह दक्षिण मे कोंकण मे वर्षाऋतु मे उत्पन्न होता है। यह दीपन एव बल्य है।

९ आवा किरात (तितखेन चिरायता)—इसे मराठी मे ऊद किरायत कहते है। इसका लैटिन नाम E Tetragonum है। यह उत्तरप्रदेश के पहाडी स्थानो पर उत्पन्न होता है। इसका क्षुप १ हाथ ऊचा, काड चतुष्कोण, पत्र विपरीत, वृन्तरहित, शल्याकृति किन्तु कुछ छोटे होते है। इसके पुष्प नीले होते हैं। यह दीपन एव कटुपौष्टिक है।

१० कोकणी किरात—(Erythraea Roxburghi)—इसे बगला मे जिमि, मराठी मे लुन्तक और हिन्दी मे बारीक चिरायता कहते है। इसका क्षुप भारत मे प्राय. सर्वत्र विशेषत कोकण, बगाल मे उत्पन्न होता है। इसके पुष्प गुलाबी, सुन्दर सितारो के समान होते है।

११ जापानी किरात (S chinensis)—इसका क्षुप छोटा ४-१४ इंच ऊचा, काड बहुत बारीक होता है। यह स्वाद मे अत्यधिक तिक्त होता है।

इनके अतिरिक्त (S perennis, S corymbosa, S Affinis) आदि कई जातिया है। ये सब किरात के प्रतिनिधि रूप मे किंवा अपद्रव्य के रूप मे प्रचलित है। भावमिश्र ने नैपाली किरात का उल्लेख कर इसके दो प्रकारो का उल्लेख किया है। इसे ही अर्धतिक्त भी कहा गया है सभवत यह मीठा किरात है। — किरात कोऽन्यो नैपाल सोर्द्धतिक्तो ज्वरान्तक ।

अपमिश्रण—इसमे उक्त उपजातियो के अतिरिक्त मजिष्ठा (Rubia cordifolia) की जडो तथा कालमेघ (Andrographis paniculata) की काण्डशाखाओ व पत्तियो की मिलावट की जाती है। मजिष्ठा को इसके मूल एव काण्ड का वर्ण स्वाद से असली किरात को पृथक किया जा सकता है। कालमेघ बाजार मे देशी चिरायता किंवा हरी चिरायता के नाम से जाना जाता है। इसका काण्ड प्राय चतुष्कोणीय गाढे

हरितवर्ण का अनेक सीधी तनु विपरीत शाखाये युक्त होता है। पर्वान्तर (Inter nodes) भाग लम्बाई के रुख मे खातयुक्त होता है। पत्र स्तम्ब पर चतुर्पंक्तिक क्रम मे भालाकार हरितवर्ण के एव मसृण होते हैं। पुष्प छोटे छोटे गुलाबी रक्ताभवर्ण के फल यवसदृश होते हैं।

परीक्षा—असली किरात मे इसकी विभिन्न उपजातियो के अपमिश्रण को उपर्युक्त वर्णन के अनुसार पृथक् करना चाहिये। काण्ड के भीतर निरन्तर बडे स्पजी तन्तु समूह, भूरे रग तथा अतितिक्त रस से असली किरात की पहचान की जा सकती है। इसके अतिरिक्त किरात क्वाथ या सत्व मे फेरिक क्लोराइड द्रव मिलाने पर नीली स्याही-जैसा रग हो जाता है। इस विधि से तथा अन्य रासायनिक विश्लेपण से असली किरात को पहचाना जा सकता है।

इसकी मुख्य परीक्षा विधि यही है कि दीखने मे एक से होते हुये भी शेष स्वाद मे अर्ध तिक्त किंवा मधुर होते है। छाल के अन्दर की बनावट को ध्यान से देखकर भी भेद किया जा सकता है। अनुप्रस्थ काटने पर मज्जा का भाग स्पष्ट दिखाई देता है। यह कोमल होता है। आसानी से पृथक हो जाता हैं।

रस—तिक्त।

गुण—लघु, रूक्ष।

वीर्य—उष्ण।

विपाक—कटु।

प्रभाव—ज्वरघ्न, दाहघ्न, कृमिनाशक।

वीर्यकालावधि—एक वर्ष।

दोषकर्म—यह तिक्त होने से कफ पित्त तथा उष्ण वीर्य होने से वात का शमन करता है। इस प्रकार यह त्रिदोष शामक है। विशेपत यह कफ पित्त शामक है। वैद्याचार्य श्री केशवदेव ने इसे कफपित्तघ्न वर्ग मे ही कहा है—

वातकृत् कफपित्तघ्न करञ्जीनिम्बपद्मका।
द्रवन्ती सप्तलादन्ती वासाभूनिम्बपर्पटा॥

—सिद्धमन्त्र।

प्रयोज्य अङ्ग—पचाग।

मात्रा—क्वाथ–५०-१०० मि० लि०।

चूर्ण—१-३ ग्राम।

संग्रह-संरक्षण विधि—फल पूर्णतया परिपक्व हो जाने पर शरदऋतु मे क्षुप को औपधि प्रयोगार्थ एकत्र करते है। इसकी छाल को सुखाकर अनार्द्र-शीतल स्थानो मे बन्द डिब्बो मे रखा जाता है। इस संग्रहीत किरात को एक वर्ष तक उपयोग मे लाया जा सकता है।

गुणप्रकाशक सज्ञा—किरात भारत की एक जगली जाति का नाम है। यह जाति मुख्यत हिमालय के पहाडी प्रदेशो मे निवास करती थी। "किरातार्जुनीयम्" सस्कृत का महाकाव्य है। इसमे किरात वेषधारी भगवान् शिव एव अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। ज्वर रूपी व्याघ्र को किरातो की भाति नष्ट करने के कारण इसे किरात कहा जाता है। इसी भाति रोगरूपी राक्षसो को नष्ट करने मे यह राम सेना की तरह सक्षम होने से रामसेना किंवा रामसेनक कहा जाता है। उक्त सज्ञाये इसकी प्रमुख रोग सहारिणी कार्मुकता को प्रदर्शित करती है।

गुणधर्म—

किरात सारको रूक्ष शीतलस्तिक्तको लघु।
सन्निपातज्वरश्वासकफपित्तास्रदाहनुत्॥
कासशोथतृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत्।

—भा० प्र० नि०

लघुस्तिक्तक सारको रूक्षशीत-
तृपाकुष्ठ जन्तुव्रण श्लेष्मगीत।
निहन्ति ज्वर श्वासकासान्किरातः
सपित्तास्रशोफान्यथेणान्किरात॥

—सि० भे० मणि०

किराततिक्त कफपित्तहन्ता-
तिक्तेषु द्रव्येषु मत प्रधानम्।
वरो ज्वरघ्न. कृमिकुष्ठदाह-
व्रणादिषु व्याधिषु चाति शस्त॥

—प्रि० नि०

किरातको रसे तिक्त सरोऽशीतो लघुस्तथा ।
श्लेष्मपित्तास्रशोफार्श कामतृष्णाज्वरापह ॥
—ध० नि०

यह त्रिदोषशामक एव ज्वरघ्न होने से प्राय सभी ज्वरो मे लाभप्रद होते हुये भी विशेपत जीर्णज्वर एव विषमज्वर को दूर करता है। ज्वर के साथ यह दाह एव यकृत्प्लीहा वृद्धि को भी मिटाता है। ज्वरजन्य दौर्बल्य को भी दूर करता है।

सात दिन तक के ज्वर को तरुण ज्वर, बारह दिन तक के ज्वर को मध्य ज्वर एव इसके पश्चात् के ज्वर को जीर्ण ज्वर कहते है। रसकामधेनुकार ने विषमज्वर के पैंतीस भेदो मे एक जीर्णज्वर को कहा है। यद्यपि दोष सातो धात्वाग्नियो से सात दिनो मे पच जाते हैं किन्तु सन्निपात ज्वर मे बारह दिनो तक आमावस्था बनी रहती है, सुतरा जीर्णज्वर तेरहवें दिन से माना है। जीर्णज्वर त्रिदोषजन्य होते हुये भी दोषो की अधिकता से द्वन्द्वज कहलाता है, एतावता वह कृच्छ्रसाध्य होता है—

"कृच्छ्रसाध्य द्विदोपजम् ।" किराततिक्त विशेपत कफपित्तशामक होने से कफपित्तात्मक जीर्णज्वर मे विशेपत लाभप्रद है। प्रसिद्धतम सुदर्शन चूर्ण का किराततिक्त प्रधान घटक द्रव्य है—

सर्व चूर्णस्य चार्धांश कैरात प्रक्षिपेत्सुधी ।

भगवान् चरक ने तृतीयक एव पुनरावर्तक ज्वर मे किराततिक्त को उपादेय कहा है—

किराततिक्त तिक्ता मुस्त पर्पटकोऽमृता ।
घ्नन्ति पीतानि चाभ्यासात् पुनरावर्तक ज्वरम् ॥

चरकचतुरानन चक्रपाणिदत्त ने अपने चिकित्सासार-संग्रह मे किराततिक्त के बहुत से उपयोगी प्रयोग लिखे हैं—

किराततिक्त मृमृता द्राक्षामामलकी शटीम् ।
निष्क्वाथ्य पित्तानिलजे क्वाथ त सगुड पिवेत् ॥१॥
किरात नागर मुस्त गुडूचीञ्च कफाधिके ।
पाठोदीच्यमृणालैस्तु सह पित्ताधिके पिवेत् ॥२॥

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द-
तिक्तेन्द्र बीजधनिकेभकणाकषाय ।
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोह-
श्वासादियुक्तमखिल ज्वरमाशु हन्ति ॥३॥

त्रिशती मे वैद्यवर श्री शार्ङ्गधर ने क्रमश वातपित्तहर, सन्निपातहर, तन्द्रिक सन्निपातहर, आदि क्वाथ वर्णित किये हे ये सब क्वाथ किरात प्रधान है। इसके अतिरिक्त भुग्ननेत्र सन्निपात मे लाभप्रद किरातादि अवलेह का भी वर्णन किया है—

किरात कृष्णोपणराजि काभि-
र्मधुप्लुताभि प्रवरोऽवलेह ।

मणिमालाकार ने कफपित्तहर एव कफपित्तात्मक जीर्णज्वर मे उपयोगी प्रयोग प्रदर्शित कर उपकृत किया है—

ननु रामसेनकाष्ट -
प्रविरलधान्याकदलधन्य ।
कि कुरुते वैद्यपते-
ज्वर झटिति जर्जरीकुरुते ॥१॥
बनप्सिका शार्करसञ्ज्ञ तात्मना-
किरात पीयूष लताशृतेन य ।
द्विसन्ध्यमासप्तदिन पिवेत् कला-
न्तरय जीर्णज्वरनिर्मिता रुज ॥२॥
किराततिक्तप्रस्थ पुराणचपलापलम् ।
पचेत् पयसि निक्षिप्य यावत् सर्वपय क्षय ॥
किरातवल्कसात् कृष्णा पृथक्कृत्य विशोपयेत् ।
तद्रजो मधुना लिह्याज्जीर्णज्वरपराजित ॥३॥
रामसेनभव सत्व सर्वज्वरनिवारणम् ॥४॥

मि० भे० मणिमाला के उक्त अन्तिम श्लोक मे किराततत्व को सर्वज्वर निवारण कहा है। इसी सत्व की महत्ता को मञ्जूषाकार अपनी साहित्यमयी शैली मे इस प्रकार मे प्रदर्शित करते है।

यद्भारतीयभिषजा भवनेषु भाति
तद्भेषज वहुगुण भज भूमिभक्त ।
यच्चास्रपित्तदवथू ज्वरकीटकास
श्वासादिकान् शमयति द्रुतमत्यसत्वम् ॥

इस श्लोक के पादो के अन्तिम अक्षरो के सम्मेलन से "तिक्तसत्वम्" शब्द बनता है। यह कवि की कविता चातुरी को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त कविराज जी ने किरातादि वटी एव किरातकणा नामक प्रयोगो का भी वर्णन किया है।

साम्राज्यकार ने भी सभी ज्वरो मे सजीवनीवटी के साथ किराततिक्त की उपादयता इन शब्दो मे प्रकट की है।

किरातकल्केन मम वटीय
द्रुत प्रविश्यान्तरमातुराणाम्।
ज्वरान शेशानपि हन्ति कान्ते
दुर्गेव दुर्दैत्यगणानुदग्रान् ॥
—स० साम्राज्यम् २/२८।

किरात (चिरायता) तिक्त रस की उत्कृष्ट समष्टि का द्रव्य होने से लघुउष्ण-रूक्ष होने से आमाशयोद्भव आम प्रधान अग्निमाद्यकारी ज्वर मे आशुलाभकारी है।
—वैद्य श्री मदनगोपाल शर्मा
(स० साम्राज्य टीकाकार)

यह दीपन, अनुलोमन, आमपाचन, पित्तसारक एव कृमिघ्न होने से अग्निमाद्य, अजीर्ण, अम्लपित्त, अतिसार ग्रहणी, विबन्ध, तृष्णा, यकृद्विकार, पाण्डु-कामला, कृमिरोग आदि पाचनसस्थान की व्याधियो को दूर करता है। चक्रपाणिदत्त ने अम्लपित्तहर एक क्वाथ कहा है—

वासामृतापर्पटक निम्बभूनिम्बमार्कवै।
त्रिफलाकुलकै क्वथ सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥

तदनुसार लोलम्बराज ने भी अपने ग्रन्थो मे अम्लपित्तहर क्वाथ कहा है—

भूनिम्बनिम्ब त्रिफलापटोली
वासामृतापर्पटभृङ्गराजै।
क्वाथो हरेत् क्षौद्रयुतोऽम्लपित्त
चित्त यथा वारवधूविलास।
—वैद्य जीवनम्।

वैद्यक-चमत्कार चिन्तामणि मे पटोली के स्थान पर कलिङ्ग (कुटज) को लिया है।

भगवान् चरक ने पित्तातिसारहर ६ योग कहे है। उनमे प्रथम है—"किराततिक्तको मुस्त वत्सक सरसाञ्जन"। इन चारो द्रव्यो को मधु और तण्डुलोदक के साथ देने से लाभ होता है। इसी प्रकार पैत्तिक ग्रहणी मे उपयोगी भूनिम्बादि चूर्ण का वर्णन किया गया है। इस चूर्ण की कार्मुकता इस प्रकार स्पष्ट की है—

गुडशीताम्बुना पीत ग्रहणीदोषगुल्मनुत्।
कामला ज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥
—च० स० चि० १५।

इस चूर्ण का चक्रदत्त, वैद्यक-चमत्कार चिन्तामणि और सिद्ध भैषज्य मञ्जूषा आदि ग्रन्थो मे भी वर्णन हुआ है। पाण्डु-कामला रोगहर क्वाथ मे भी किराततिक्त की उपादेयता प्रदर्शित की है—

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजै कृत।
क्वाथ क्षौद्रयुतोहन्यात् पाण्डुरोग सकामलम् ॥
—चक्रदत्त।

भैषज्य रत्नावलीकार ने कृमिरोग हर जो पलाशबीजादि चूर्ण कहा है, इसमे भूनिम्ब चूर्ण मुख्यघटक है।

पित्तजन्य कास श्वास मे कफज एव श्वासहर होने से यह लाभदायक है। यह हृद्य होने से हृदयदौर्बल्य मे भी हितावह है। शोथहर भी यह कहा गया है—

भूनिम्बविश्वकल्क जग्ध्वापेय पुनर्नवाक्वाथ।
अपहरति नियतमाशु शोथ सर्वाङ्गगन्नृणाम् ॥
—चक्रदत्त।

लोलम्बराज ने किरात और शुण्ठी के क्वाथ को ही उपयोगी माना है—

शोफ किरातक महौषधयो कषायो
दूरीकरोति रघुनाथ इवारिवीरम् ॥
—वै० च० चिन्ता० ४/६।

यह रक्त पित्त मे अतीव लाभप्रद है। भगवान् चरक ने "किरात तिक्तक क्रमुक समुस्त" से चार श्लोको मे विविध द्रव्यो के साथ चन्दन की योजना कर कल्प कहे है। इनमे चन्दन के साथ शीतकषाय, कल्क, फाट किंवा क्वाथ बनाकर किराततिक्त के उपयोग का परा-

मण दिया है। इसके प्रयोग से सशासदाह तृष्णायुक्त उदीर्ण रक्तपित्त शान्त होता है। चक्रपाणिदत्त ने भी किराततिक्त का एक परमोपयोगी प्रयोग वर्णित किया है।

भद्रणाम्त्रोटकत्वग्रमविन्द्रदुययुतो घृताद्द्विगुण ।
भूनिम्वकल्क ऊर्द्ध्वरंगपित्तासकासश्वासघ्न ।।

—चक्रदत्त।

चरकसंहिता मे जो यवागू कल्प कहे है, उनमे किराततिक्त खस, मोथा के जलसाथ रस मे पेया बनाकर सेवन करना निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त रक्तपित्तोपयोगी हितकर शाको मे भी किराततिक्त को महत्व दिया है। तदनुसार कविराज विश्वनाथ ने अपने "पथ्यापथ्यम्" नामक ग्रन्थ मे कुछ रक्तपित्तहर पथ्यो का इस प्रकार वर्णन किया है।

भूनिम्बशाक पिचुमर्दपत्र-
तुम्बी कलिङ्गानि च ताजमक्कु ।
द्राक्षा सिता माक्षिकमिक्षवश्च-
शीतोदक चोद्भिदवारि चापि ।।

यह रक्तशोधक, स्वेदजनन एव कुष्ठघ्न होने से रक्त विकार, चर्मविकारो मे लाभदायक सिद्ध हुआ है। विसर्परोग का लक्षण बतलाया गया है—

अतिदाहरुजारागस्रावारुच्यरति प्रदा ।
क्षुद्रव्रणविसर्पा स्यु सर्वत पर्सिर्पणात् ।।

—अञ्जन निदान

इस रोग मे किराततिक्त को उपयोगी कहा है—
किराततिक्तक लोध्र दद्याद्वीसर्प शान्तये।

—चरक० चि० २१

भूनिम्ब वासाकटुकापटोलफलत्रिकाचन्दननिम्वसिद्ध ।
विसर्पदाहज्वर वक्त्र शोषविस्फोटतृष्णा वमिनुत् कषाय ।।

—चक्रदत्त ५३

कफजन्य विस्फोट हर क्वाथ वर्णित है—
भूनिम्ब सवचा वासा त्रिफलेन्द्रजवत्सकै ।
पिचूमर्दपटोलाभ्या कफजे मसूरिकाघ्नम् ।।

—भै० र०

उपदश मे उपयोगी भूनिम्बादि घृत कहा गया है। इसके उपयोग से सभी प्रकार के उपदश शान्त होते है—

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्ज जातीखदिराशनानाम् ।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्व सर्वोपदशापहर प्रदिष्टम् ।।

—चक्रदत्त

मणिमालाकार ने जो कुछ ससूदन रस कहा है, इसका प्रमुख आदि द्रव्य किराततिक्त ही है। किराततिक्त, भृङ्गराज, अमरबेल का स्वरस, नीम का मद किंवा गोद तथा नीम का ही शहद इन पाचो द्रव्यो को एक काचकूपी मे भरकर ८ दिन तक धूप म रखने के पश्चात् दिन मे २-३ बार २०-२० ग्राम सेवन करने से कुष्ठ एव सभी प्रकार के उग्र रक्तविकार नष्ट होते है। पथ्य मे केवल लवणरहित चने की रोटी ही देनी चाहिये। इस प्रयोग से हृदय का दाह, कृमि, शोथ, पाण्डु और नेत्ररोग भी मिटते है। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थकार ने एक शीतकषाय का भी वर्णन किया है जिसका किराततिक्त घटकद्रव्य है। किराततिक्त और यवासा को १०-१० ग्राम लेकर सायकाल मृत्पात्र मे रखकर इसे पानी मे भिगो दे। प्रात उसमे २५० मि० लि० दूध मिलाकर छानकर, निचोड ले और रोगी को पिला दे। इसके उपयोग से कच्छू कुष्ठ एव अन्य चर्मविकार, रक्तविकार नष्ट होते है।

पूर्व मे कहा जा चुका है कि यह स्तन्यशोधन द्रव्य है। भगवान् चरक ने चिकित्सा स्थान के अन्तिम अध्याय मे किराततिक्त के क्वाथ को उत्तम स्तन्यशोधक कहा है। एक स्थान पर कहा है।

किराततिक्तक शुण्ठी सामृता क्वाथयेद्भिषक् ।
त क्वाथ पाययेद्धात्री स्तन्यदोषनिवर्हणम् ।।

—च० चि० ३०/२६४

लोलम्बराज ने इन द्रव्यो मे अन्य द्रव्यो को मिलाकर उपयोगी क्वाथ की रचना की है—

गोपी वृकीदारकिरातमूर्वा-
तिक्तामृताविश्वघनेन्द्रजानाम् ।
क्वाथोऽयमुक्तो मृगलोचनाना-
दुष्टस्य दुग्धस्य विशोधनाय ।।

—वै० जी० ३/३३

इसी प्रकार विविध प्रकार के प्रदर को दूर करने वाले कषाय मे भी किराततिक्त की योजना की गई है—

कटङ्कटेरीरसजाव्दवासा-
भूनिम्बभल्लीतिलज कषाय ।
क्षौद्रान्वितश्चञ्चल लोचनाना-
नानाविधानि प्रदराणि हन्यात् ॥
—वं० जी० ३/३४

प्रदर के अतिरिक्त प्रमेह मे विशेषत तिक्त होने से मधुमेह मे यह अतीव लाभप्रद है। यह एक कटुपौष्टिक द्रव्य है। अजीर्ण के कारण किंवा ज्वर के कारण उत्पन्न दौर्बल्य को दूर करने मे यह श्रेष्ठ है। लघन एव आहारातियोग के कारण आमाशय की पाचन शक्ति दुर्बल हो जाने पर क्षुधावर्धन तथा पाचन मे सुधार करने हेतु तिक्तौषधियो किंवा कटु पौष्टिक द्रव्यो का प्रयोग विशेष लाभकारी है। ज्वरादि तीव्र व्याधियो से मुक्त होने पर रोगोत्तर काल मे इनका प्रयोग विशेष उपयोगी होता है, किन्तु शूल, वमन, शोथ एव व्रण युक्त सभी आमाशय की व्याधियो मे इनका प्रयोग निषिद्ध है।

यह व्रण शोधन होने से क्वाथ रूप मे व्रण धोने मे भी प्रयुक्त होता है।

यूनानी मतानुसार—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे के आखिर मे गरम और खुश्क है। यह दिल और जिगर को ताकत देता है। सर्दी के कारण उत्पन्न जिगर और मेदे की सूजन को मिटाता है। यह खूनविकार, मूत्र की रुकावट, जलोदर, सीने का दर्द, गुर्दे का दर्द, गर्भाशय का दर्द, गृध्रसी, खासी, कब्जियत आदि रोगो मे लाभ पहुँचाता है। बिगडे हुये बुखार मे यह अत्यन्त उपयोगी है। अजमोद के साथ इसको देने से पागलपन मे लाभ होता है। खुश्क और तर खुजली, कुष्ठ आदि चर्मरोगो मे भी यह हितकर है। पीसकर आखो मे लगाने से आखो की ज्योति बढती है। अग्निदग्धव्रण पर गुलाबतेल और सिरके के साथ पीसकर लगाना चाहिये। इसके सेवन से हाजमा दुरुस्त होकर भूख बढती है। हकीम श्री दलजीत सिंह के अनुसार जीर्णज्वर के साथ अपच व शरीर मे दाह हो तो यह तुरन्त लाभ करता है।

आधुनिक मतानुसार—इसका जातीय नाम (Generic Name) स्वर्शिया (Surertia) इमेनुएल स्वर्ट (Emanuel) नामक एक वनस्पति विशेषज्ञ के नाम पर रखा गया है।

श्री सन्याल और घोष के मतानुसार यह एक प्रकार की कटु औषधि है। यह मुख्य रूप से अन्न प्रणाली पर अपना विशेष प्रभाव डालती है। मुख मे जाकर यह स्वाद के स्नायुओ को उत्तेजित करती है। पेट मे पहुँचकर यह पाचक रसो को उत्तेजित करती है जिससे भूख तेज लगती है। यह अग्निवर्धक होने के साथ पौष्टिक भी है। यह ऐसे मलेरिया मे उत्तम लाभप्रद पाई गई है जिसमे मुख्यतया अग्निमाद्य पाया जाता है।

श्री डायमाय के मतानुसार पश्चिमी भारत मे वायु नलियो के प्रदाह के कारण उत्पन्न दमे की बीमारी मे इसका सफलता के साथ उपयोग किया जाता है

श्री दत्त के मतानुसार किरात, नीम गिलोय, त्रिफला और आम्बी हल्दी का क्वाथ बनाकर देने से पित्तज्वर, आतो के कृमि, शरीर की जलन और चर्मरोगो मे लाभ होता है।

श्री खगेन्द्रनाथ बसु के अनुसार प्रात. खाली पेट लिया गया किरात क्वाथ, चूर्ण किंवा किरात भिगोया जल मिश्री के साथ लेने से उदरस्थ कृमि समाप्त हो जाते है। इसके लम्बे समय तक प्रयोग से कुष्ठरोग भी नष्ट हो जाता है।

डा० श्रीप्रसाद बनर्जी के अनुसार यह इन्फ्लुएन्जा, मलेरिया और टायफाइड जैसे अलग-अलग कारणो से उत्पन्न ज्वरो मे समानरूप से लाभदायक है।

श्री कर्नल चोपडा ने अपने ग्रन्थ "मेडीसिनल प्लाण्ट्स आफ इण्डिया" मे इसे एक उत्तम प्रतिसंक्रामक (एण्टीबायोटिक), ज्वरघ्न, जीवनी शक्तिवर्धक एवं जीवाणु-कृमिनाशक कहा है।

डा० आर० एन० खोरी के मतानुसार यह सारक तथा ज्वरहर। गर्भिणी के वमन को यह शीघ्र रोक देता है। दाह, कृमिरोग तथा चर्मरोगो मे भी यह लाभप्रद है। हिमालय के प्रादेशिक उद्भिदो मे यह बहुत ही देय है, वहाँ यह शक्तिवर्धन हेतु प्रयुक्त होता है।

डा० श्री रामसुशीलसिंह ने पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान मे वानस्पतिक तिक्तौषधियो को दो समुदायो मे विभक्त किया है—साधारण तिक्तौषधिया एव सौगन्धिक तिक्तौषधिया। इनमे साधारण तिक्तौषधियो के अन्तर्गत किराततिक्त का उल्लेख किया है। इसके सक्षिप्त वर्णन के पश्चात् इन्होने इसके योगो का वर्णन किया है। ये योग है—

१ इन्फ्युजम् चिरेटी कम्पोजिटम् कन्सन्ट्रेटम् (चिरायते का क्वाथ) मात्रा ३०-६० मिनम् या २ से ४ मि० लि०।

२ टिंक्चुरा चिरेटी कम्पोजिटा (कम्पाउण्ड टिंचर आफ चिरेता)—मात्रा २ से ४ मि० लि०।

३ इन्फ्युजम् चिरेटी रिसेन्स् (चिरायते का अभिनव फाण्ट) मात्रा—१५ मि० लि० से ३० मि० लि०।

४ इन्फ्युजम् चिरेटी कन्सन्ट्रेटम् (कन्सन्ट्रेटेड इन्फ्युजन आफ चिरेटा) मात्रा—२-४ मि० लि०।

होम्योपैथी मतानुसार—होम्योपैथी मे किराततिक्त की उपयोगिता ज्वर निवारण हेतु सर्वप्रथम डा० कालीकुमार भट्टाचार्य जी ने प्रतिपादित की। किराततिक्त नये और पुराने दोनो प्रकार के ज्वरो को मिटाता है। नये वे जो अक्सर विषाणु या मलेरिया पेरासाइट-जन्य होते हैं। पुराने जीर्ण ज्वर बहुधा कमजोर लोगो मे जड जमाये बैठे घातक जीवाणुओ के कारण होते हैं। आखों मे जलन के साथ दोपहर के बाद चढने वाले तेज बुखार के लिये होम्योपैथी वैद्य किराततिक्त को ही प्रमुक्त करते हैं।

कालाजार नामक जीर्णज्वर रोग मे जिसमे प्लीहा एव यकृत् दोनो बढ जाते है यह चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। इसका मदर टिंक्चर एक और तीन एक्स की पोटेन्सी मे होम्योपैथी मे प्रयुक्त होता है।

मान्य लेखको के उद्‌गार—किराततिक्त का प्रयोग रोगोत्तरकालिक दौर्बल्य के निवारण के लिए किया जाता है। इससे भूख बढती है और आहार का पाक ठीक तरह से (दीपन-पाचन) होता है। भारतीय चिकित्सको मे यह एक उत्तम मलेरियानाशक औषधि के रूप मे प्रसिद्ध है। वैद्य-हकीम द्वारा प्रयुक्त मलेरिया नाशक (विषमज्वरघ्न) योगो का यह एक प्रधान घटक होता है। एतदर्थ डाक्टर लोग मिक्सचर मे मिलाने के लिए इसके क्वाथ किंवा फाण्ट का उपयोग करते हैं। अन्य तिक्त द्रव्यो की भाति यह भी रक्तशोधक है। एतदर्थ इसके हिम या फाण्ट (Infusion) का व्यवहार होता है। —डा० श्री रामसुशीलसिंह

एलोपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी और यूनानी सभी मे एक स्वर से इसके ज्वरघ्न प्रभावो की प्रशंसा की है। एलोपैथी मे एण्टीबायोटिक्स की बाढ आ जाने पर भी किराततिक्त की हानि रहित विशेषताओ को अभी तक कोई चुनौती नही दे पाया है। सिनकोना की तरह ही यह मलेरिया ज्वर पर प्रभाव डालती है तथा यकृत् एव रक्त से इसके पेरामाइट्स् को निकाल बाहर करती है। अन्य रासायनिक एण्टीमलेरियल लेने के बाद जो कमजोरी आती है, वह इसको ग्रहण करने पर अनुभव नही होती। —श्रीब्रह्मवर्चस्

भारतवर्ष मे यह एक सुप्रसिद्ध कटु पौष्टिक औषधि मानी जाती है। यह बिलकुल कडवा और गन्ध रहित होता है। कटुपौष्टिक होते हुये भी यह इस जाति की अन्य औषधियो की तरह आतो मे सकोचन पैदा नही करता बल्कि दस्त मे नियमितता लाता है। यह पित्त को उत्तेजित कर देता है और पित्तस्राव की क्रिया को व्यवस्थित करता है। इसलिए गठिया से पीडित मनुष्यों को इसे पौष्टिक पदार्थ के रूप मे देने से अच्छा लाभ होता है। यह पौष्टिक, ज्वरनाशक और विरेचक है। जीर्ण विषमज्वर के अन्दर जब कि विषमज्वर का विष शरीर के अन्दर गुप्त रूप से रहता है और अपना स्वरूप ज्वर के रूप मे प्रकट न करके अजीर्ण, अग्निमाद्य और हलकी हरारत के रूप मे प्रकट करता है। ऐसी स्थिति मे इन लक्षणो को नष्ट करने के लिए यह बहुत उपयोगी होता है। इसका ज्वरघ्न धर्म अत्यन्त मृदु स्वभाव का होता है। इसलिये ज्वर की चिकित्सा मे केवल इसी वस्तु के ऊपर विश्वास नही रखा जा सकता। पार्यायिक ज्वरो को रोकने की शक्ति भी इसमे

बहुत कम है। स्वाभाविक भी सूजन और उसके सकोच-विकास की वजह से पैदा हुये दमे मे यह लाभदायक है। आमाशय की शिथिलता मे यह एक उत्तम औषधि है। इससे जीभ साफ होती है और दस्त भी साफ होता है। —श्री चन्द्रराज भण्डारी

सामान्य प्रयोग—

बाह्य प्रयोग

१ व्रण—किरातिक्त क्वाथ से व्रण को धोने से उसका उत्तम शोधन होता है।

२ अग्निदग्धव्रण—किरातितिक्त को गुलाब तैल एव सिरके मे पीसकर लगावे।

३ गर्भिणी ज्वर—किरातिक्त क्वाथ से रञ्जित वस्त्र को धारण करने से सामान्य सभी ज्वर विशेषत गर्भिणी ज्वर का शमन होता है।

४ नेत्ररोग—किराततिक्त को पीसकर आखो पर लेप करने से नेत्रज्योति बढती है।

५ अजगल्लिका—सुदर्शन चूर्ण और टकणक्षार को पीसकर लेप करे।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

१ कफज्वर—[क] १० ग्राम किराततिक्त, १० ग्राम धनिया हरा (पत्र) दोनो को उबलते हुये ६० ग्राम जल मे छोडकर तुरन्त उतारकर ढक दे तथा सुखोष्ण रहने पर मसलकर छान लें एव पान करे। यह फाण्ट कफज्वर शामक है। इसके अतिरिक्त पित्तज्वर, तृष्णा, कुष्ठ एव शोथ मे भी यह लाभप्रद है,

[ख] किराततिक्त, सोठ, नागरमोथा और गिलोय का क्वाथ पीवे।

२ पित्तज्वर—[क] किराततिक्त, खस, आमला का शीतकषाय बनाकर मधु मिलाकर सेवन करें।

[ख] किराततिक्त, नीम गिलोय आम्रहरिद्रा का क्वाथ सेवन करे। यह क्वाथ कृमि, दाह और चर्म रोग-हर भी है।

[ग] किराततिक्त, गिलोय और त्रिफला का क्वाथ सेवन करे।

[घ] किराततिक्त पित्तपापडा और नागरमोथा का क्वाथ भी हितकर है।

[ङ] किराततिक्त, अमृता, धान्यक, रक्तचन्दन और पित्तपापडा का क्वाथ भी पित्तज्वर मे लाभप्रद है।

३ सामान्य ज्वर—किराततिक्त, सोठ, गिलोय, कण्टकारी और कूठ का क्वाथ आठ प्रकार के सभी सामान्य ज्वरो मे हितकर है।

४ वातपित्तज्वर—किराततिक्त, सोठ, नागरमोथा, पित्तपापडा, गिलोय क्वाथ लाभप्रद है।

५ वातकफज्वर—[क] किराततिक्त, अमृता, देवदारु, कायफल, वचा क्वाथ इस ज्वर मे लाभप्रद है।

[ख] किराततिक्त, गिलोय, सोठ, अर्कमूल की छाल, नेत्रबाला और खस का क्वाथ भी हितकर है।

६ दूषजलजनितज्वर—किराततिक्त, निशोथ, सुगन्धवाला पीपल विडङ्ग सोठ, कुटकी का चूर्ण मधु के साथ सेवन करे।

७ जीर्णज्वर—[क] किराततिक्त १० ग्राम और वच १ ग्राम का क्वाथ बनाकर पीवे।

[ख] किराततिक्त ४ ग्राम, सोठ डीकामाली ७-७ ग्राम का फाण्ट बनाकर सेवन करे।

[ग] किराततिक्त, सोठ, कुटकी, खजूर एव कुटजत्वक् का क्वाथ समधु सेवन करें।

[घ] किराततिक्त चूर्ण ३ ग्राम को रात्रि के समय जल २५ मि० लि० मे भिगोकर प्रात छानकर उसमे कपूर, शिलाजीत २५० २५० मि० ग्रा० तथा ५-७ ग्राम मधु मिलाकर सात दिन तक सेवन करे।

८ ज्वरातिसार—किराततिक्त, कुटज, मुस्तक, अतीस और सोठ का क्वाथ सेवन करे।

९ पित्तातिसार—किराततिक्त मुस्तक, इन्द्रजौ और रसौत का चूर्ण मधु और तण्डुलोदक के साथ दें।

१० कृमिरोग—[क] किराततिक्त, निम्बत्वक्, विडङ्ग, पलाशबीज समभाग लेकर चूर्ण बनाकर गुड मिलाकर तीन दिन तक सेवन करे।

[ख] किराततिक्त और हरीतकी का क्वाथ सेवन करें।

[ग] किरातनिक्त, त्रिफला, गिलोय और आम्र-हरिद्रा क्वाथ सेवन करे।

[घ] किरात चूर्ण और एरण्डबीज का कल्क उष्ण जल से सेवन करे।

[ङ] किरातहिम मे हरीतकी और विडङ्ग का चूर्ण मिलाकर सेवन करे।

११ उदरशूल—किरातक्वाथ स्वरस मे सैन्धव, हींग और कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर सेवन करे।

१२ स्तन्यविकृत—[क] किरातनिक्त, अनन्तमूल, गिलोय, शतावरी और सोठ का क्वाथ सेवन करें।

१३ उन्माद—किरातनिक्त और अजमोद का चूर्ण देना चाहिये।

१४ हृदयरोग—किरातनिक्त, सोठ कुटकी और पुनर्नवा क्वाथ हृदयरोग मे हितकर है।

१५ गर्भिणी की छर्दि—किरात चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें।

१६ पामा—[क] किरात का शीतकषाय बनाकर सेवन करे।

[ख] किरात, गिलोय, त्रिफला एवं आम्रहरिद्रा क्वाथ सेवन करे।

१७ अम्लपित्त—[क] किरातनिक्त चूर्ण २ ग्राम और भाग का चूर्ण ५०० मि० ग्रा० को १२५ मि० लि० जल मे भिगोकर प्रात छानकर पीवे। इसी प्रकार प्रात भिगोकर सायकाल पीवे।

[ख] किराततिक्त और भृंगराज के क्वाथ को मधु के साथ देवे। किन्तु आमाशयिक व्रण मे उक्त प्रयोग लाभप्रद नही होते है।

१८ रक्तपित्त—किराततिक्त के शीतकषाय मे ३ ग्राम घिसा हुआ चन्दन मिलाकर सेवन करे। इसी प्रकार प्रात भिगोकर सायकाल मे सेवन करे।

१९ शोथ—[क] किरातनिक्त और सोठ का क्वाथ सेवन करे।

[ख] किरातनिक्त और सोठ के कल्क को पुनर्नवा क्वाथ के अनुपान मे सेवन करे। इससे सर्वाङ्गशोथ का शमन होता है।

२० कामला—किरातनिक्त, कुटकी और निम्ब-त्वक् कुल ६ ग्राम लेकर कोरे मिट्टी के बर्तन मे भिगोकर प्रात मसल छानकर पीवे। इसी प्रकार प्रात भिगोकर सायकाल पीवे।

२१ बाल यकृद् विकार—किरातनिक्त के चूर्ण को कुमारीस्वरस किंवा कुमार्यासव के साथ सेवन करावे।

विविध कल्पनाये—

१ किरातादि कल्क—किराततिक्तकल्क, नागरमोथा तथा सिहोर की छाल का दो बद रस, मात्रा दुगना घृत मिलाकर चाटने से ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त, कास तथा श्वास नष्ट होते है।

२ किरातादि क्वाथ—(क) किरातनिक्त, कुटकी, नागरमोथा, पित्तपापडा और गिलोय का क्वाथ बनाकर अभ्यासपूर्वक लगातार पीने से पुनरावर्तक ज्वर नष्ट होता है। —चरकसहिता।

(ख) किराततिक्त, नीम की छाल, पिप्पली, कचूर, शुण्ठी, शतावरी, गुडूची और बडी कटेरी का क्वाथ कफ ज्वर को नष्ट करता है। —शा० संहिता।

(ग) किराततिक्त, गडूची, मुनक्का, आमला, कचूर इनका क्वाथ बनाकर उसमे गुड मिलाकर सेवन करने से वातपित्त ज्वर नष्ट होता है। —चक्रदत्त।

(घ) किराततिक्त, देवदारु, दशमूल, सोठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रयव, धनिया और गजपीपल क्वाथ का सेवन करने से तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह, मोह तथा श्वास आदि उपद्रवो के साथ होने वाले समस्त ज्वर नष्ट होते है। —चक्रदत्त।

(ङ) किरातनिक्त, लोध्र, चन्दन, धमासा, सोठ, कमलकेसर, नीलोफर, बहेडा, मुलहठी तथा नागकेसर का क्वाथ विसर्प को शान्त करता है।

—चरकसंहिता।

(च) किराततिक्त अडूसे की छाल, कुटकी, परवल की पत्ती, त्रिफला, लालचन्दन, नीम की छाल का क्वाथ बनाकर पीने से विसर्प, ज्वर, दाह, मुखशोष, विस्फोट, तृष्णा तथा वमन आदि रोग दूर होते है।

—चक्रदत्त।

(छ) किराततिक्त, कुटकी, गिलोय, गजपीपल, रास्ना, कचूर, देवदारु, इन्द्रायण की जड, अडूसा, सोठ पुष्करमूल, दोनो कटेरी, जवासा, काकडासिंगी इनका क्वाथ अत्यन्त दु:ख देने वाले सन्निपात को भी दूर करता है। —त्रिशती।

(ज) किराततिक्त, कुटकी, पीपर, इन्द्रजो, कटेरी, कचूर, बहेडा, देवदारु, हरड, मरिच, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमला, पुष्करमूल, चित्रक, काकडासिंगी, अडूसा, और सोठ का क्वाथ कण्ठ कुब्ज सन्निपात को शीघ्र ही दूर करता है। —त्रिशती।

(ज) किराततिक्त, नीम की छाल, हरड, बहेडा, आवला, परवल की पत्ती, अडूसा, गिलोय, पित्तपापडा और भृङ्गराज का क्वाथ शहद मिलाकर पीने से अम्लपित्त दूर होता है। —वैद्य जीवन।

(ञ) किराततिक्त, नीम की अन्तर छाल, मुलेठी, मोथा, अडूसा की पत्ती, पित्तपापडा, खस, हरड, बहेडा, आवला और इन्द्रजो समभाग लेकर क्वाथ बनावे। क्वाथ ठडा हो जाने पर मधु मिलाकर पीने से विस्फोटक रोग शान्त होता है। —भै० र०।

(ट) किराततिक्त, नागरमोथा और इन्द्रजो समभाग लेकर क्वाथ बना लेवे। इसमे थोडा रसौत और थोडा मधु मिलाकर पीने से वेदनायुक्त पित्तातिसार का शमन होता है। —भै० र०।

३ किरातादि शीतकषाय—किराततिक्त ३ ग्राम और गिलोय १२ ग्राम लेकर कूटकर ८० मि० लि० जल मे सायकाल भिगोकर प्रात छानकर ५०० मि० ग्रा० पीपरि चूर्ण, ६ ग्राम मधु मिलाकर पिये। इसके उपयोग से जीर्ण धातुगत ज्वर का शमन होता है। —चिकित्सादर्श।

४. किरातादि चूर्ण—(क) किराततिक्त, कुटकी, सोठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रजो बरावर बरावर, चित्रक दो भाग, कुडा की छाल सोलह भाग इन सब का चूर्ण करे। गुड और शीतल जल के साथ पिया हुआ यह चूर्ण ग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि तथा अतिसार का नाश करता है। —चरकसहिता।

(ख) किराततिक्त, वच, त्रायमाण, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, चन्दन, खस, दारुहल्दी की छाल, कुटकी, कुटज की छाल, इन्द्रजो, नागरमोथा, अजवाइन, देवदारु, परवल, नीम के पत्ते, इलायची, सोरठी मिट्टी, अतीस, दालचीनी, सहजने के बीज तथा मूर्वा और पित्तपापडा इन सबका चूर्ण करके मधु से चाटें। इससे हृदयरोग, ग्रहणीरोग, गुल्म, अरुचि, ज्वर, कामला, अतिसार और मुख रोग नष्ट होते हैं। —चरकसंहिता।

(ग) त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी बडी कटेरी, कचूर, त्रिकटु, पीपलामूल, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाणा, नेत्रबाला, नीम की छाल, पुष्करमूल, मुलेठी, कुटज छाल, अजवाइन, इन्द्रजो, भारङ्गी, सहजना के बीज, फिटकरी, वच, दालचीनी, पद्माख, खस, सफेद चन्दन, अतीस, वरियारा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रक, चव्य, परवलपत्र, जीवक, ऋषभक, लोग, बंशलोचन, कमलपुष्प, काकोली, तेजपात, जावित्री, तालीसपत्र इन सब को समान मात्रा मे, इन सबसे आधाभाग किरात मिला सूक्ष्म चूर्ण कर लेवे। यह सुदर्शन चूर्ण है। यह तीनों दोषो का नाश कर समस्त ज्वरो को नष्ट करता है। विविध ज्वरो के अतिरिक्त तन्द्रा, भ्रम, पिपासा, श्वास, कास, पाण्डु, हृदयरोग, कामला, कटिशूल, पार्श्वशूल आदि को भी यह चूर्ण नष्ट करता है। सभी ज्वरो मे अनुपान के रूप मे ठडा पानी देना चाहिये। —शा० सहिता।

५ किरातादिघृत (भूनिम्बादि घृत)—किराततिक्त, नीम की छाल, त्रिफला, परवल के पत्ते, करंज के बीज, चमेली के पत्ते, खैर की लकडी और विजयसार इन सबको मिलाकर एक किलो लें और मिलकर पीसकर कल्क बनालें। फिर इन्ही आठो द्रव्यो को मिला आठ किलो लेवे और ६४ किलो जल मे क्वाथ बनाले। १६ किलो जल शेष रहने पर उतार ले। इसके बाद कल्क, क्वाथ और चार किलो घृत को कडाही मे रख से पकाकर घृत सिद्ध करें। इसके उपयोग से उपदश मन्दाग्नि नष्ट होता है। —चक्रदत्त।

६ **किरातादिक्षार**—किराततिक्त, कवीला, कुटकी, पठोलपत्र, नीम की छाल, पित्तपापडा को भैंस के मूत्र के साथ जलाकर क्षार तैयार करे । यह क्षार अग्निवर्धक है। —चरकसहिता ।

७ **किराततिक्तकासव**—किराततिक्त ८० ग्राम, गिलोय ४० ग्राम, मुनक्का ६० ग्राम अच्छी तरह यवकुट कर ८०० मि० लि० अल्कोहल किंवा उत्तम देशी मद्य मे मिलाकर शुद्ध चीनी मिट्टी के पात्र मे या काच के पात्र मे भरकर यथाविधि सधान कर १५ दिन सुरक्षित रखें। फिर अच्छी तरह छानकर शीशियो मे भर लें । २-१५ बूद तक जल मिलाकर देने से जीर्णज्वर पित्तज्वर, विबन्ध, यकृतवृद्धि आदि को दूर कर बल प्रदान करता हैं। मलेरिया ज्वर जिसमें अग्निमाद्य की प्रधानता हो उसमे यह विशेष लाभकारी है। इसका अधिक दिनों तक उपयोग न करे ।

—धन्व० वनौ० विशेषाङ्क ।

किरातार्क—किराततिक्त २५ किलो को जौकुट कर सायकाल २५ किलो पानी मे भिगो दें । प्रातः भवके मे डालकर यथाविधि अर्क निकाल लें । २५ मि० लि० से ५० मि० लि० तक दिन मे चार बार देने से जीर्णज्वर, विषमज्वर, रक्तविकार आदि मिटते है ।

९ **किराततिक्तक फाण्ट**—उबलते हुये परिस्रुत जल १२५ मि० लि० मे इसका यवकुट चूर्ण २५ ग्राम डालकर वन्द रखे दे । १५ मिनट बाद छानकर १५-३० मि० लि० तक सेवन करे। यह ३२ घन्टो तक प्रयोग के योग्य रहता है। इसका उपयोग रोगोत्तर कालिक दौर्वल्य निवारणार्थ उत्तम होता है। इससे भूख बढती है एवं भोजन का परिपाक ठीक होने लगता है।

—पा० द्र० गु० विज्ञान ।

१०. **किराततिक्त पानक** (चिरायते का शर्वत)—नागरमोथा, दारुहल्दी, दालचीनी, कुटकी, अकरकरा और अतीस २५-२५ ग्राम । किराततिक्त १५० ग्राम और पानी ५ किलो तथा चीनी ३ किलो लेवे ।

प्रथम वनौषधियो को इमामदस्ते मे कूटकर दरदरा सा चूर्ण बनाकर इसे ५ किलो पानी के साथ कड़ाही मे डालकर कडाही को चूल्हे पर रखकर अग्नि प्रज्वलित कर दे । चतुर्थ भाग जल शेष रहने पर कडाही को नीचे उतारे और शीतल होने पर जल को मोटे कपडे से किसी काच या चीनी के बर्तन मे छान ले और बर्तन को ऐसे स्थान पर रखे जहा पर यह हिले नही, स्थिरता से रहे । कुछ समय के पश्चात् जब बर्तन की पैंदी मे गाद सी नीचे बैठ जाय तब बर्तन मे से निथरा हुआ पानी निकाल ले । किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि गाद पानी के साथ नही आने पाए । इस पानी को ३ किलो चीनी के साथ कड़ाही मे डालकर पुनः अग्नि पर रखकर पकावें । एक तार की चासनी होने पर तत्काल ही कडाही को चूल्हे से नीचे उतारकर ठण्डे पानी की छीटे देकर रख दे । पूर्णरूप से शीतल होने पर पोटासियम मेटा बी सल्फेट ३०० मि० ग्रा० मिलाकर बोतलो मे भरकर रख दे । शर्वत तैयार है । पोटाशियम मेटा बी सल्फेट डालने से शर्वत अधिक दिनो तक सुरक्षित रहेगा । यदि कोई रग डालना चाहे तो खाने का कोई रग मिलाकर शर्वत को रगीन बनाले ।

२ माह से १ वर्ष तक के शिशु को १५-२० बूद, २-१० वर्ष के बालक को चाय चम्मच से १-२ चम्मच शर्वत समभाग अथवा दो गुना जल के साथ दिन मे २-३ बार दे । यह खाज, खुजली तथा चर्म-विकार, यकृत, प्लीहा वृद्धि, पाण्डुरोग, ज्वर, अग्निमाद्य आदि रोगो मे अतीव लाभप्रद है । —सुधानिधि फर० मार्च ८७ ।

११. **किरातादि उद्धूलन**—किराततिक्तक, कुटकी, कूठ, सोफ, इन्द्रजो और कचूर सबको समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करना । सन्निपात मे अत्यन्त पसीना आता हो और कंठावरोध हो, तब यह औषधि शरीर के प्रत्येक साधो पर मालिश करने से सन्निपात के उपद्रव शान्त हो जाते है । —र० त० सार ।

पेटेण्ट प्रयोगो मे किराततिक्त—सिद्धि फार्मेसी प्रा० लि० ललितपुर "चिरायता" नामक सूचीवेध का निर्माण करती है । इसके प्रति मि० लि० मे ० ०१ मि०-ग्रा० चिरायतासत्व तथा १० मि० ग्रा० चिरायताक्षार होता है। यह जीर्णज्वर एव विषमज्वर की सभी

अवस्थाओं मिला उपयोगी में लाभप्रद है। सामान्यतया यह पित्त एवं कफज ज्वर रोगों में लाभप्रद है। ज्वर एवं ज्वर के दाह, तृषा आदि लक्षणों का यह शीघ्र शमन करता है। यह प्रोटाजोआ, कृमिनाशक एवं कीटाणु-नाशक औषधि है। शरीर में निरोधक शक्ति ला देने में भी यह सहायक सिद्ध होता है। इसी प्रकार यह फार्मेसी "मलेरियन' नामक सूचीवेध को भी बनाती है। इसमें चिरायता, सप्तपर्ण, नाय कुचला और द्रोणपुष्पी जैसे सुप्रसिद्ध वनौषधियों द्वारा इसका निर्माण किया जाता है। यह मलेरिया शीतज्वर, पुनरावर्तक विषमज्वर आदि पर अच्छा लाभ करता है। इसके प्रयोग से मलेरिया के कीटाणु ग्लकोज शर्करा का उपयोग नहीं कर पाते, परिणामतः वह नष्ट जाता है। पूरा लाभ के लिए तीन इन्जेक्शन लगाने चाहिये।

जे० एण्ड ज० डिशेन "अर्योसिन" (मोतीज्वराहर), "आयोबिन" (रक्तशोधक), आगोसीनीन (मलेरियाहर), और 'रेमोरिन" (वेदनाहर) आदि सूचीवेधों में किरात तिक्त का प्रयोग करते हैं।

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी झांसी भी "चिरायता" नामक सूचीवेध का निर्माण करती है। इसमें १६ मि० ग्रा० चिरायता तथा १४ मि० ग्रा० नाय होता है। यह विषमज्वर, जीर्णज्वर मन्दज्वर, शीत ज्वर, आगन्तुज ज्वर एवं सप्तधातुगतज्वरों में लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त 'नाय" ज्वरकेशरी" 'ज्वरसंहार" नामक सूचीवेधों में भी किराततिक्त होता है।

बुन्देलखण्ड फार्मेस्युटिकल झांसी जो 'चिरायता" नामक सूचीवेध का निर्माण करता है उसमें उसके प्रति एम्पुल में ? मि० ग्रा० चिरायताक्षार होता है। इसके अतिरिक्त इसके 'नाय स्पेशल" के प्रति एम्पुल में १५ मि० ग्रा० नायसत्व और १५ मि० ग्रा० कुटकीक्षार के अतिरिक्त १० मि० ग्रा० चिरायताक्षार भी होता है।

शर्मा मेडिको के 'विषमज्वरारि कैपसूल" में गिलोय-सत्व १२५ मि० ग्रा०, वंशलोचन ३५ मि० ग्रा०, सर्व-ज्वरहर लौह १२५ मि० ग्रा०, महासुदर्शन घनसत्व ५० मि० ग्रा०, महाज्वरांकुश १२५ मि० ग्रा० के साथ निरा-यता भी ५० मि० ग्रा० होता है यह सब प्रकार के विषमज्वरों में लाभप्रद है। पञ्जफार्मा अलीगढ के ज्वरघ्न कैपसूल का भी चिरायता गोदन्तीभस्म के बाद प्रमुख दूसरा घटक द्रव्य है। इस कैपसूल में इसकी मात्रा ८० मि० ग्रा० होती है। यह वातकफज्वर, विषमज्वर में लाभप्रद है। श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ के ज्वरान्तक कैपसूल में भी मृत्युञ्जय रस, लक्ष्मीविलास रस, त्रिभुवनकीर्तिरस, गोदन्तीभस्म (प्रत्येक १२५ मि०-ग्रा०) के अतिरिक्त किराततिक्त चूर्ण ५० मि० ग्रा० होता है। यह भी ज्वरहर है।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स के 'फेटोमेन्ट" टेबलेट में मेदोहर गुग्गुल २०० मि०ग्रा०, त्रिमूर्तिरस २५ मि०ग्रा०, गन्धकरसायन २५ मि० ग्रा०, अनन्तमूल २५ मि० ग्राम के अतिरिक्त किरात तिक्त भी २५ मि० ग्राम है। इसके सेवन से मेदोरोग, आमवात, हृदयरोग, रक्तविकार आदि का शमन होता है।

सिद्धि फार्मेसी के "ज्वरीना" एवं काली कुनेन टिकिया में भी किराततिक्त है। ज्वरीना सामान्यज्वरों में तथा कालीकुनेन मलेरिया में लाभप्रद है।

जनहित फार्मेस्युटिकल्स हापुड की रक्तसुधा गोली में भी किरात है। इसके अतिरिक्त अन्य कतिपय रक्त शोधक द्रव्य है जिनमें स्वर्णक्षीरी, नीम, गुलाबपुष्प, त्रिफला, अर्क चन्दन की भावनायें दी जाती है। यह कुष्ठ, खाज-खुजली, फोड़े फुंसी युवानपिडिका आदि रोगों में लाभप्रद है।

चरक फार्मा० की "ब्युरिल" गोलियों में बहुत सी औषधियों के अतिरिक्त किराततिक्त चूर्ण भी होता है। तथा इनमें किराततिक्त क्वाथ की भावना भी दी जाती है। इसी में किराततिक्त के भेद छोटा चिरायता मामे-जगा की भी भावना दी जाती है। इसके अतिरिक्त "पिगमेन्टो" नामक गोलियों में भी किराततिक्त है। ये गोलियां श्वेतकुष्ठ में लाभप्रद है। चरक फार्मा० का ही "कृमिनल सीरप" है। जिसमें अन्य कृमिनाशक द्रव्यों के अतिरिक्त किराततिक्त भी है। यह कृमि और उनके विपरीत प्रभाव से होने वाले ज्वर, अतिसार, शीतपित्त,

ग्राम आदि उपद्रवों में भी उपयोगी पथ्य है। यह आयु के अनुसार शिशु को आधा चम्मच, बच्चों को १ चम्मच और प्रौढ को २ चम्मच दिन मे २-३ बार मात दिन तक दी जाती है। प्रसिद्ध लिवेमीन सीरप, ड्रप्स एव गोलियो मे भी किराततिक्त होता है। इसके अतिरिक्त महिलाओ के उत्तम टॉनिक 'एम २ टोन सिरप" मे भी यह डाला जाता है।

द० कृ० मा० व्र० चे० प्रा० लि० बम्बई के 'हिमोग्लोबीन" मे किराततिक्त होता है। यह रक्तविकृति की जनि उत्तम औषधि (पेय) है।

दीनदयाल औषधालय ग्वालियर के द्वारा निर्मित रक्तशोधक पेय मे भी उसवा, उन्नाव, त्रिफला, गिलोय, कुटकी आदि द्रव्यो के साथ किराततिक्त भी होता है। यह रक्त साफ करने के लिये उत्तम औषधि है।

आर्य औषधि फार्मास्युटिकल वर्क्स इन्दौर द्वारा निर्मित इम्यूरीन नामक सुमधुर सुगन्धित प्रवाही मे महामंजिष्ठादि क्वाथ के अतिरिक्त बहुत सी अन्य औषधियो का मिश्रण होता है, इनमे किराततिक्त भी है। इसके प्रति १०० मि० लि० मे ३५ मि० ग्र० किराततिक्त है। यह पेय रक्तशोधक, मारक, कृमिघ्न तथा शोथहर है।

अनुभूत प्रयोग—

१. किरातकणा—छोटी पीपल १०० ग्राम का चूर्ण बनाकर उसमे चिरायते का काढा देवे। जब पीपल घोटते घोटते गाढी हो जाय तब फिर चिरायते का काढा देवे। इस प्रकार २१ बार क्वाथ देकर सूखने पर काच की शीशी मे रखे। मात्रा २५० ३७५ मि० ग्रा० मधु से दिन मे २-३ बार देवें। इसके उपयोग से कफावृत जीर्णज्वर दूर होता है। —वैद्य श्री चन्द्रशेखर व्यास।

२. किरातयुक्त परिधान—६० ग्राम किराततिक्त को कुचलकर रात के समय २ किलो जल मे भिगो दे उसी मे १॥ मीटर धुला हुआ मलमल का कपडा भी डालकर प्रात पात्र को मन्दी आच पर रख दे। ६० ७० मि० लि० जल शेष रहने पर उतारकर काढा निकाल बिना निचोडे ही सुखा डाले। रोगी के शरीर के अनुकूल उसी कपडे की गजी (बनियान) बना पहना देवे। ४-५ दिन बाद उसे साबुन साफकर फिर वैसे ही किरात तिक्त के क्वाथ मे पकाकर पहना देवे। इस प्रकार कुछ दिन तक इसका व्यवहार करने से जीर्णज्वर, पित्तप्रकोप जन्य महीन फुसिया, कामला, खुजली आदि चर्मरोग दूर होते है। रोगी के शरीर मे अनुकूल कपडे मे कमीवेसी भी की जा सकती है।

—वैद्य प० श्री चोआलाल मिश्र।

३ रक्तशोधक प्रयोग—चिरायता, उशबा और गोरखमुण्डी प्रत्येक १०-१० ग्राम, रसौत शुद्ध ५ ग्राम सबको बारीक पीसकर चने के बराबर गोलिया बना लें। १ गोली प्रात और १ गोली साय ताजे पानी के साथ दे। यह अद्वितीय रक्तशोधक और हर प्रकार के चर्मरोगो मे प्रभावकारी है।

—स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती।

४ बलप्रद प्रयोग—किराततिक्त क्वाथ १०० मि० लि०, हीराकसीस २५० मि० ग्रा० दोनो को शीशी मे मिलाकर रख ले।

२५ मि० लि० प्रात-साय तथा भोजन के बाद पीने से पाण्डुरोग दूर होता है। यह अशक्तता मे रक्तवर्धक और बल्य है।

—वैद्यराज प्रो० श्री बसरीलाल साहनी।

५. वातरक्तहर प्रयोग—चिरायता, उसबा, कासनी, सोफ, तुख्मरिहा, सनाय प्रत्येक १२० १२० ग्राम, सबको बारीक कूट पीस सात पुडिया बना ले। एक पुडिया प्रात मिट्टी के बर्तन मे ४८० ग्राम पानी मे भिगो मन्द अग्नि मे पकावे २४० ग्राम जल शेष रहने पर छानकर पिला दे, जो छानन या (फोक) बचे उसे उसी बर्तन मे ४८० ग्राम पानी मे भिगो कर सध्या को उसी तरह क्वाथ कर छानकर पिलावे, इस तरह सात दिन दे। पथ्य केवल दूध, घी शक्कर मे भोजन करे।

—वै० श्री काशीनाथ शर्मा द्वारा।

(धन्व० गु० सि० प्र०) से।

६ विविधज्वर हर प्रयोग—चिरायता, नीम की अन्तर छाल, कुटकी, मजीठ, लाल चन्दन, तुवरीलाज, शुद्धनौसादर सत्तो २४०-२४० ग्राम, जल १० किलो, श्वेत फिटकरी भस्म ६ ग्राम।

निर्माण विधि—फिटकरी भस्म को घोटकर शेष वस्तुओ को यवकुट कर मिट्टी के पात्र मे भर दे। दृढ मुखमुद्रा कर १ माह रखा रहने दे। १ माह बाद खूब मोटे कपड़े से छानकर स्वच्छ करले। गाद न बैठने पावे। इसमे श्वेत फिटकरी भस्म (श्वेत केनाश्म भस्म) मिलाकर १५ दिन तक काच पात्र मे रखे (मुखमुद्रा करना आवश्यक है) दिन मे दो बार हिला दिया करें। १५ दिन छानकर कार्य मे लावे।

प्रयोग विधि—देशकालानुसार मलेरिया ज्वर रोगी को २ से ४ ड्राम तक ज्वर आने से पूर्व २ मात्रा दें। प्रायः ज्वर पहले दिन ही रुक जाता है। ज्वर रुक जाने पर ३-४ दिन तक आधी मात्रा प्रात साय सेवन करे जिससे पुनः आक्रमण न हो।

नोट—यदि रोगी को कोष्ठबद्धता हो तो किसी सौम्य विरेचन से कोष्ठशुद्धि अवश्य करें।

—श्री शिवनारायणदेव द्वारा
ध० गु० सि० प्र० २ से।

७ देशी कुनाइन—सप्तपर्ण (सतौने) की छाल २४०ग्राम, चिरायता २०० ग्राम दोनो औषधियो का क्वाथ करे फिर इस क्वाथ मे करजगिरी, फिटकरी, छोटी पीपल, हरड बडी समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उपरोक्त क्वाथ मे डाल-कर पकावे जब कुछ अवलेह जैसा गाढा हो जावे तब उतारकर शीतल होने पर मटर के बराबर गोलिया बनावे।

विधि—ज्वर आने के तीन घण्टा पूर्व १ गोली गरम दूध के साथ देवे।

गुण—इससे शीतज्वर, तिजारी, चौथैया दूर होवे है। यह योग क्विनाइन की तरह बहिरापन, दृष्टि दोष कर्णपीडा, नीद न आना, शिर मे चक्कर आना, आदि उपद्रव नही करता और गुणो मे क्विनाइन के तुल्य है।

— श्री राघवानन्द शास्त्री द्वारा
धन्व० गु० सि० प्र० से २।

कुचेलक
[STRYCHNOS NUXVOMICA]



प्रदर, प्रमेह, धातुक्षय, वातव्याधि आदि रोगो मे बहुश प्रयुक्त औषधि कुचला, कारस्कर कुल (Loganiaceae) की है। भावप्रकाशनिघण्टु के फलादिवर्ग के अन्तर्गत इसका वर्णन उपलब्ध होता है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा लिखित द्रव्यगुणविज्ञान (औद्भिद औषध द्रव्य) के मेध्यादि वर्ग नामक प्रथम अध्याय मे आक्षेपजनन के अन्तर्गत इसका वर्णन किया गया है। कुचला की अधिक मात्रा सेवन करने मे इसमे स्थित तिक्त रस और क्षोभक गुण के कारण आक्षेप-प्रलाप आदि लक्षण उत्पन्न होने के कारण इसे आक्षेपजनन कहा गया है। इसकी अति मात्रा सुषुम्नास्थित पूर्व शृङ्ग के चेष्टाकर नाडी गण्डो को क्षुब्ध कर अनियमित चेष्टाये उत्पन्न करती हैं जिसके परिणामस्वरूप मासपेशियो मे अनियमित आकुचन और प्रसारण होकर आक्षेप उत्पन्न होते हैं। आक्षेप उत्पन्न करने के कारण इसे आक्षेपजनन कहा गया है।

नाम—

संस्कृत—कुपीलु, विषतिन्दुक, काकतिन्दुक, काकपीलुक, कारस्कर।

हिन्दी—कुचला।

गुजराती—झेरकोचला।

बंगला—कुचिले, विषमुष्टि।

मराठी—काजरा।

तामिल—येट्टिकोट्टाई।

तेलगु—मुष्टिविट्टलु।

मलयालम—काञ्जील।

अरबी—अजराकि, हव्बुल गुराव्।

फारसी—कुचूला, फुलूसेमाही।

अंग्रेजी—नक्सवोमिका (Nuxvomica)।

लैटिन—स्ट्रिकनस नक्सवोमिका (Strychnos Nux vomica)।

उत्पत्ति स्थान—यह देश (भारत) के उष्ण प्रान्तो मे विशेषत. तमिलनाडु, उडीसा, केरल, गोवा आदि के वन्य स्थानो मे उत्पन्न होता है। लका मे भी यह पाया जाता है। कहा है—कोङ्कणे तथा वगे दक्षिणे च विशेषत।

रासायनिक संगठन—भारत मे उत्पन्न कुचला मे लगभग २ ६ से ३ प्रतिशत तक कुल क्षाराभ होते हैं जिनमे १ २५ से १·५ प्रतिशत स्ट्रिकनीन होता है। इसके अतिरिक्त ब्रुसीन १ ७ प्रतिशत, वोमिसिन, स्ट्रिकनिक अम्ल से सयुक्त आइगास्युरीन, लोगानिन (एक ग्लुकोसाइड), प्रोटीन ११ प्रतिशत, पीतरजक पदार्थ, स्नेह, गोद, श्वेतसार, शर्करा ६ प्रतिशत, मोम, पार्थिव फास्फेट और भस्म २ प्रतिशत होते हैं। स्ट्रिकनीन केवल बीजो मे तथा ब्रुसीन ताजी छाल मे सबसे अधिक (३ १ प्रतिशत) और काण्ठ एव पत्तियो मे कुछ कम होता है।

वानस्पतिक परिचय—कुचला, शिंशि जाति का वृक्ष माना जाता है। यह ४०-५० फीट ऊचा होता है। इसका काण्ड (तना) टेढा और मोटा होता है। शाखायें पतली और दृढ होती हैं। छाल पतली चिकनी और धूसरवर्ण होती है।

काण्डसार—काटने पर श्वेत किन्तु कुछ देर बाद पीताभ धूसर हो जाता है।

पत्र—चिकने अभिमुख, किञ्चित् दुर्गन्धि, लट्वाकार या गोलाकार २-४ इञ्च लम्बे, ३–५ इञ्च लम्बे पत्रवृत्त से युक्त होते हैं। पत्तियो पर तीन मजबूत तथा दो

कमजोर सिरायें ऊपर से नीचे तक होती है। पुष्पदंड ३–१ इञ्च लम्बा होता है जिस पर लगभग ⅓ इञ्च लम्बे श्वेत किंवा हरिताभ श्वेत, नलिकाकार पुष्प अधिकाश छोटी प्रशाखाओ के अग्रभाग पर लगते है। पुकेशर पात्र और गर्भाशय दो भागो मे विभक्त होता है। पुष्पो मे हरिद्रा जैसी गन्ध आती है। फल गोलाकार, पकने पर चमकीले नारगी रग का हो जाता है। फलावरण कठिन तथा फलमज्जा कोमल श्वेतवर्ण तथा अतितिक्त होती है। बीज –प्रत्येक फल मे २ से ५ तक ½ इञ्च व्यास के और ½ इञ्च मोटे बटन के समान गोल, कठिन और श्वेत धूसरवर्ण होते है। यह चमकीले रेशमी बालो से युक्त होता है जिसका एक पृष्ठ नतोदर और दूसरा उन्नतोदर होता है। बीजो के अन्दर एक जिह्वा होती है, जो विषैली होती है। वसन्तऋतु (मार्च-अप्रैल) मे इसके वृक्ष पर फूल आते है और हेमन्त (दिसम्बर–जनवरी) मे फल पकते है।

भेद—यद्यपि कुचला एक ही प्रकार का होता है किन्तु कुचला के गुणो के प्राय समान गुण धर्म वाली दो तीन वनस्पतिया मिलती है। कुचले के कुल की ही एक बडी जाति की लता होती है जो कुचल लता के नाम से प्रख्यात है। इसमे स्ट्रिकनीन और ब्रूसीन कुचला की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। यह लता दक्षिणभारत मे कोकड से लेकर कोचिन तक विशेष रूप से पाई जाती है। इस लता का तना मोटा, छाल धूसर वर्ण, पत्र–तमालपत्र समान, पुष्प छोटे, फल–बडे बेर के फल जैसे होते है। इसका सर्वाङ्ग तिक्त होता है। औषधि कार्य मे इसकी जड, लकडी, पत्र और फल लिये जाते हैं।

नाम—

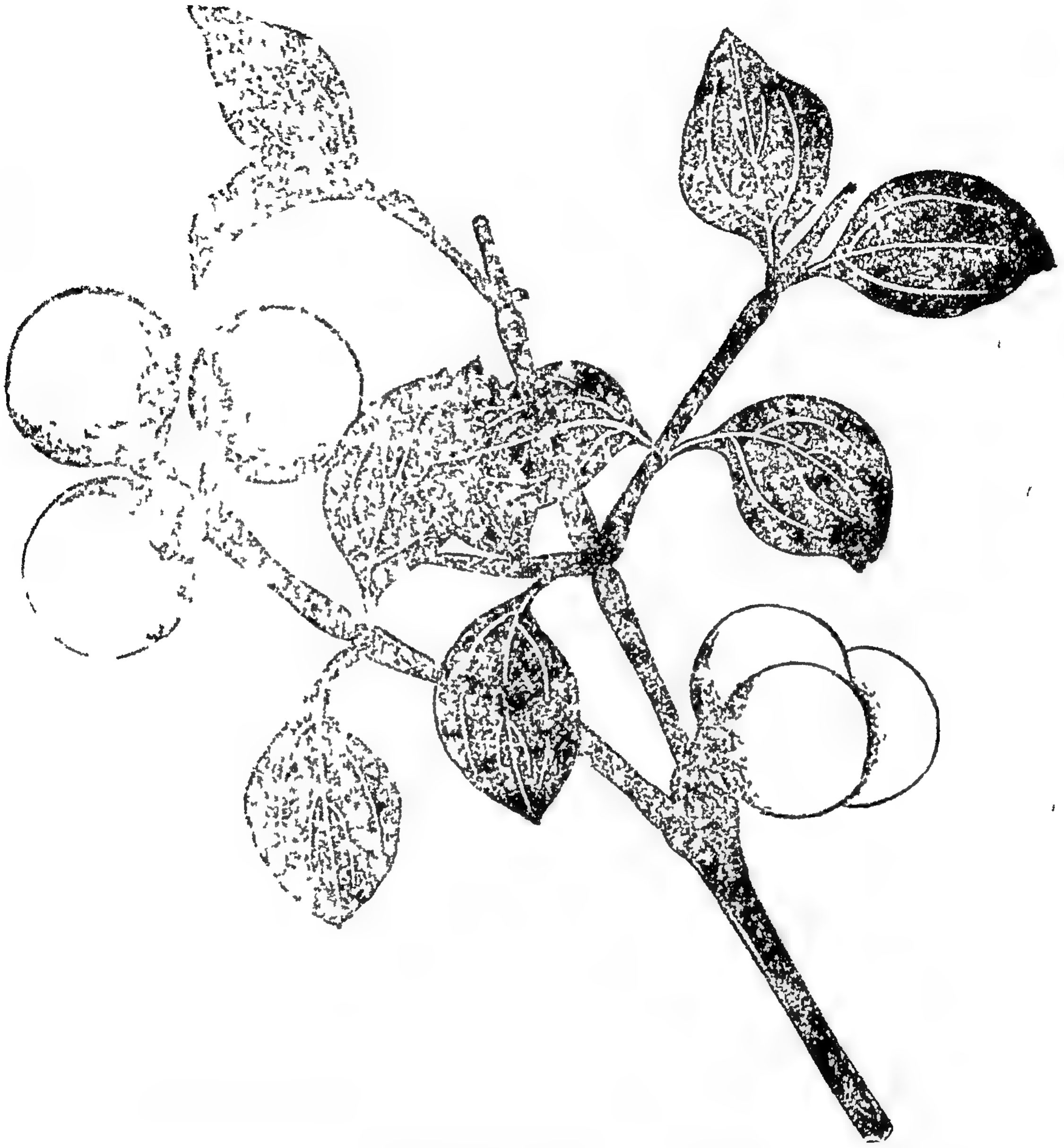
संस्कृत—कटुकवल्ली, विदारलता, कुचलवल्लि।
हिन्दी—कुचलालता।
बंगला—कुचलालता।
गुजराती—गोगनी लकडी।
मराठी—गोवाचे लाकुड, देवकाडी, काजरवेल।
अंग्रेजी—स्नेक वुड (Snake wood)।
लैटिन—स्ट्रिकनस कालुब्राइन (Strychnos Calubrine)।

यह कटुपौष्टिक, कृमिनाशक, चर्मरोगनाशक तथा ज्वरघ्न है। तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरो मे यह विशेषतया लाभप्रद है। जीर्णज्वर मे इसका क्वाथ उपयोगी है। ज्वर मे इसकी जड अधिक उपयोगी है। मसूरिका मे इसके प्रयोग से शूल–शोथ का शमन होता है। इसके मूल को कालीमिर्च के साथ पीसकर पिलाने से अतीसार नष्ट होता है। उन्माद की तीव्र दशा मे इसके फलो को पीसकर शिर पर लेप करना लाभप्रद है। इसकी जड और कालीमिर्च को तैल मे पकाकर इस तैल की मालिश करने से सन्धिवात मे लाभ होता है। विद्रधि एव दुष्टव्रणो पर इसके पत्र काजू के साथ पीसकर लेप करना हितावह है। इसके अन्य प्रयोग कुचला के अन्य प्रयोगो की भाति है। कुचला की भाति इसकी भी अधिक मात्रा सेवन करने से विष लक्षण उत्पन्न होते है अत इसका उपयोग सावधानी से ही किया जाना आवश्यक है।

कुचला के वृक्षो पर चढने वाली एक पराश्रयी लता होती है। इसे कुचले का बादा या मलगा कहते हैं। इसके गुणधर्म सामान्यतया कुचले के समान ही होते हैं। यह औषधि सिक्किम खासया पहाडी, छोटा नागपुर तथा दक्षिण भारत मे उत्पन्न होती है। यह वन्दकादि कुल (Loranthaceae) की औषधि है।

हिन्दी—कुचले का मलगा, कुचले का बादा।
मराठी—काजराचे बाडुगल।
बंगला—बन्दा, परगाछा।
तामिल—पुलरुई, उच्चिचेडि।
तेलगु—बदानिका, वाजिनिका।
लैटिन—विस्कम मोनोइकम। (Viscum Monoicum)।

कुचले के अभाव मे यह उपयोग मे लाई जा सकती है। इसके पत्र औषधि उपयोगार्थ उपयुक्त होते है। इसके शुष्क पत्तो का चूर्ण स्ट्रिकनीन एव ब्रूसीन के प्रतिनिधि के रूप मे काम लिया जाता है। इसकी मात्रा ६० मि० ग्रा० से २४० मि० ग्रा० तक है।



कुचला (Strychnos nuxvomica)

विभिन्न नाम : संस्कृत–कुपीलु, विषतिन्दुक, कारस्कर। हिन्दी–कुचला। गुजराती–झेरकोचला। मराठी–काजरा। बंगला–कुचिला। अंग्रेजी–नक्सवोमिका। लैटिन–स्ट्रिकनस नक्सवोमिका (Strychnos Nuxvomica)।

प्राप्ति स्थान : मद्रास, उड़ीसा, ट्रावनकोर, लंका आदि।

उपयोगी अङ्ग : बीज, मज्जा। **दोषशमन :** कफवातशामक।

रोगोपयोग : वातरोग, नपुंसकता, कुष्ठ, मन्दाग्नि, अर्श आदि।

मुख्य योग : अग्नितुण्डी वटी, नवजीवन रस, लक्ष्मीविलास रस।

विषमज्वर और आमवात मे इसके पत्तो को भृष्ट हिंगु के साथ देने से लाभ होता है। आमवात मे पत्तो को पीसकर लेप भी किया जा सकता हैं। पानी मे पीसकर लेप करने से कण्डू भी मिटती है। शेष गुणधर्म कुचले के समान ही है। इसकी अधिक मात्रा स्तम्भ, चुनचुनाहट आदि उत्पन्न कर देती है, सुतरा इसे समुचित मात्रा मे ही उपयोग मे लावें।

कुचला की ही एक जाति विशेप पपीता (Strychnos Ignatti) है। इसके बीज लम्बे गोल होते हैं। इसमे भी स्ट्रिकनीन एव ब्रूसीन विशेष प्रमाण मे पाया जाता है।

अपमिश्रण—इसके बीजो मे निर्मली के बीज मिलावट के रूप मे कर दिये जाते हैं। निर्मली के बीज प्राय. अधिक मोटे और छोटे होते है। कुचला के बीज गोल चपटे बटन की तरह होते है। बीज के बीच मे एक खात होता है। स्पर्श मे यह मसृण किन्तु बहुत कठोर होता है। इसके किनारे पर छोटा सा उभार होता है। इस प्रकार इसकी परीक्षा कर उपयोग मे लावें।

ऐतिहासिक महत्व—सहिता ग्रन्थो मे इसका वर्णन उपलब्ध नही होता। सुश्रुतसहिता के सूत्र स्थान अध्याय ३८ मे वर्णित सुरसादिगण मे कथित विषमुष्टि का डल्हण के अनुसार अर्थ बकायन है। भावप्रकाश मे वर्णित विपमुष्टि के वातकारक गुण से कई व्यक्ति इसे कुचला नही मानते जिसका निराकरण गुणधर्म के प्रकरण मे किया जावेगा। शार्ङ्गधरसहिता मे इसका यथास्थित वर्णन मिलता है।

अरबदेशवासियो का दावा है कि सर्वप्रथम हमने इसकी उपयोगिता प्रदर्शित की। किन्तु भारतीय इसे प्राचीनकाल से उपयोग मे लाते रहे हैं। यूनान और योरोप में इसकी जानकारी बाद मे हुई है। योरोपवासियो को अरबो द्वारा सोलहवी शताब्दी मे इसकी जानकारी हुई। जर्मनी मे डाक्टर वेलटी ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया। सन् १६४० मे यह इङ्गलैड के पसारियो के यहा पहुँच गया। किन्तु उस समय कुत्ते, बिलाव, बिल्ली आदि को मारने के लिए ही यह उपयोग मे लाया जाता था। इसके पश्चात् यह औषधि हेतु भी उपयोग मे लाया जाने लगा।

रस—तिक्त, कटु।
गुण—रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण।
वीर्य—उष्ण।
विपाक—कटु।

दोषकर्म—तिक्त-कटुरस एव रूक्षलघु गुण के कारण यह कफ का तथा उष्ण होने के कारण वात का शमन करता है।

भावमिश्र ने इसे कफपित्त शामक अथच वात को प्रकुपित करने वाला कहा है। सिद्धमन्त्रकार ने भी इसे कफपित्तघ्न कहा है। इसके अतियोग से जो विषलक्षण उत्पन्न होते है, इनके आधार पर इसे वातप्रकोपक कहा है। आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने कहा है—"अतिमात्रा मे तथा अशोधित अवस्था मे देने पर यह ओज क्षय के द्वारा वायु को प्रकुपित करता है जिससे आक्षेप उत्पन्न होते हैं।

प्रयोज्य अङ्ग—बीजमज्जा।
मात्रा—६०-२५० मि० ग्राम।

रसतरङ्गिणीकार ने इसकी १२५ मि० ग्रा० तक ही मात्रा कही है।

आरभ्य गुञ्जापादाशाद् गुञ्जैकप्रमित परम्।
मात्राविद्विनियुञ्जीत विमल विषतिन्दुकम्॥

कुछ व्यक्ति अभ्यास से इसकी अधिक मात्रा का सेवन करने लगते है। अत. प्रयोग करते समय सहिष्णुता पर भी विचार कर लेना चाहिये। इसके पश्चात् ही उपयुक्त मात्रा का निर्धारण करना चाहिये।

शोधन—(१) परिपक्व कुचला बीजो को काञ्जी मे तीन दिनो तक पडे रहने दें। तीन दिनो के बाद बीजो को काञ्जी से निकाल कर इसकी बाहरी त्वचा को छील कर निकाल दें। और धूप मे सुखाकर लोहे के खरल मे खूब कूट कर चूर्ण कर ले इस विधि से कुचला शुद्ध हो जाता है। —र० त०।

(२) कुचले के बीजो को एक तवे मे थोडा सा घी डालकर मन्द मन्द अग्नि से तब तक भूनें जब तक कि

बीजो की बाहरी त्वचा कपिश वर्ण (कुछ लाल-नीली सी) न हो जाय। उक्त वर्ण हो जाने पर बाहरी छाल को पृथक् कर के भीतरी मज्जा को उसी समय गरम गरम कूट ले। इस विधि से शीघ्र आवश्यकता पडने पर कुचले को शुद्ध किया जाता है। र० त०।

(३) कुचला बीजो को एक कपड मे बाधकर पोटली बनालें। अब इस पोटली को दोलायन्त्र मे गाय का दूध डालकर उसमे लटकाकर तीन घन्टे तक पकाये। तीन घन्टो बाद बीजो को निकाल कर बाहर की त्वचा पृथक कर उसी समय लोहे के खरल मे कूटकर चूर्ण कर लें। इस विधि ने भी कुचला बीज उत्तम रूप से शुद्ध हो जाता है। —र० त०।

(४) इच्छानुसार कुचला लेकर प्रथम भैंस के गोबर मे ३ दिन रखे बाद मे धो कर ३ दिन केले के रस मे उबालें, बाद मे २४ घन्टे त्रिफला के क्वाथ मे उबालें, फिर गाय के मट्ठा मे एक दिन भिगो दे, फिर धोकर ऊपर का छिलका और बीज की हरी पत्ती अलग कर गाय के घी मे भून ले। यह कुचला शुद्ध हो गया, पीसकर प्रयोग मे लावे। —धन्व० फर० ५१।

(५) आधा किलो मुल्तानी मिट्टी दो किलो पानी मे घोलकर एक हाडी मे भर दे, फिर उसमे २५० ग्राम परिपक्व कुचला छोड दे और हाडी को चूल्हे पर रख दे, फिर नीचे मन्द मन्द आग जलावे, जब चार घण्टे आग लग जावे तब हाडी मे से कुचलो को निकाल कर गरम पानी से धो डालें और चाकू से ऊपर का छिलका और बीच की हरी पत्ती निकाल कर फेंक दे, फिर गाय के घी मे भून कर बारीक पीस कर बोतल-शीशी मे रख लें। यह कुचला शोधन की उत्तम विधि है। —धन्व० फर० ५१।

(६) अच्छे पुष्ट कुचले लाकर उनको मिट्टी या काच के पात्र मे गोमूत्र मे भिगो दे। दूसरे दिन उस गोमूत्र को निकाल कर नया गोमूत्र भरदे। इस प्रकार सात दिन गोमूत्र मे भिगोवें। आठवे दिन चाकू से छीलकर कुचले के ऊपर के छिलके तथा दो दलो के अन्दर की जीभ को निकाल दे। पीछे कपड़े मे बाधकर गाय के दूध मे दोलायन्त्र मे पका कपडे से निकाल, गरम जल से धो ले। कुचले के योगो मे डालना हो तो उसी समय सरौते से छोटे टुकडे कर पीस डाले, सूखने के बाद बडे परिश्रम से चूर्ण होता है। —सिद्धयोग सग्रह।

(७) एक किलो ग्राम कुचला को कडाही मे डालकर ३० से ६० ग्राम तक एरण्ड तैल मिला मसल कर मन्दाग्नि से भूने। जब वे फूल जावे तथा शीघ्र ही आसानी से तोडने पर टूट सके तब उन्हे शुद्ध मानकर तुरन्त निकालकर चूर्ण कर रखे। भूनते समय कोई दाना कच्चा रह जाय तो उसे निकाल डालना चाहिये। इस प्रकार एरण्ड तैल से शुद्ध किये गये कुचले की मात्रा बहुत ही कम देनी चाहिये क्योकि यह विशेष उग्र है। —धन्व० वनौ० विशे०।

(८) परिपुष्ट श्वेत वर्ण कुचला को गोमूत्र मे रखकर फुला ले। गोमूत्र प्रतिदिन बदलते रहे। इक्कीसवे दिन कुचला को गोमूत्र के स्थान पर स्वच्छ जल मे रखें। जल भी प्रतिदिन बदलते रहे। इस प्रकार कुचला को दस दिन तक जल मे रख निकाल कर ऊपर की त्वचा उतार कर अन्दर का अकुर निकाल, पश्चात् खूब खट्टी काजी (आरनाल) मे चार प्रहर स्वेदन कर उष्ण जल से धो कुचले को चार प्रहर दुग्ध मे उबालें। —रसयोग सागर।

वक्तव्य—अशोधित कुचले की अल्पमात्रा ही अधिक प्रभावी होने से कई चिकित्सक इसे अशोधित रूप मे ही उपयोग मे लाते हैं। शोधन से कुचला मे स्थित क्रियाशील (कार्मुक) अश स्ट्रिक्नीन तथा ब्रूसीन न्यूनाधिक मात्रा मे नष्ट हो जाता है। यह अश कुछ गोमूत्रादि मे चला जाता है। और कुछ भूनने से नष्ट होता है, सुतरा उसका शोधन न करना ही उपयुक्त समझ कर कतिपय चिकित्सक उपयोग मे लाते हैं। पाश्चात्य चिकित्सक भी इसे शुद्ध नही करते हैं। अशुद्ध कुचले का ही सत्व निकालकर उपयोग मे लाते हैं। किन्तु अशोधित कुचले के सत्व निर्माण मे उसकी घातक शक्ति कई गुना बढ जाती है जो कालान्तर मे गरविष के रूप मे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है।

मुतरां इनका शोधन आवश्यक है। आयुर्वेदोक्त विधियो से विष-उपविषो का शोधन कर उन्हे सौम्य बनाया जाता है। विशुद्ध विष शरीर पर हानिकर प्रभाव नही डालते, वे अमृततुल्य कार्य करने मे सक्षम होते हैं।

उपर्युक्त शोधन प्रकारो मे सामान्यत शोधन घटक गोदुग्ध, गोघृत तथा गोमूत्र है। आधिक्येन चिकित्सक इस विधि को अपनाते हैं—सात दिन तक गोमूत्र मे रखकर छिलका निकाल कर गोदुग्ध मे उबालकर घी मे भून लेते हैं। इसका चूर्ण तत्काल ही कर लेना चाहिय अन्यथा चूर्ण करना कठिन हो जाता है। दूसरी बात यह है कि ज्यो ज्यो कुचला नर्म होता है इसमे तिक्तता आती है। अत तिक्तता के निवारणार्थ रसयोगसागर के रचयिता पडित श्री हरिप्रपन्न जी ने गोक्षुर, शिवा शतावरी के क्वाथ मे चार प्रहर उबाल कर छोटे छोटे खड कर, सूखा चूर्ण करने का परामर्श दिया है। वैद्य श्री ठाकुरदत्त जी ने इस हेतु कुचले के साथ बबूल की छाल के खडो को उबालना उपयुक्त कहा है।

विष प्रभाव—अविशुद्ध किंवा अतिमात्रा मे प्रयुक्त किये जाने पर जो द्रव्य विषाद उत्पन्न करे, उसे विष कहा जाता है। जैसा कि महर्षि सुश्रुत ने कहा है—"विषादजननत्वाच्च विषमित्यमिधीयते" (सु० स० क० १२)। यह विष स्थावर और जङ्गमभेद से दो प्रकार का है। स्थावर विषो मे वानस्पतिक, धातवीय, क्षार आदि का ग्रहण होता है। स्थावर विषो की सख्या ४७ कही गई है। विषाक्त अवयवो के नाम पर इन विषो का विभाजन किया है, जिनमे यह कुचला फल विषो की श्रेणी मे आता है। पुनश्च प्रधान विष और अप्रधान विष किंवा विष और उपविष भेद से स्थावर विष द्विविध है। इनमे उपविष ९ प्रकार के कहे गये हैं जिनमे कुचला प्रमुख है। आजकल कुचला महाविषो के अन्तर्गत गिना जाता है। यह सुषुम्ना पर प्रभाव करने वाला विष (Spinal Poison) है। अधिक मात्रा के सेवन से एक दो घन्टो मे निम्नाङ्कित उपद्रव प्रकट होने लगने है। अशोधित कुचला के सेवन से ये उपद्रव अतिशीघ्र ही उत्पन्न हो जाते हैं—

(१) रोगी को अत्यधिक घबराहट होती है।

(२) रोगी के कन्धो, पीठ और पैरो मे पीडा तथा ऐंठन होती है।

(३) रोगी हाथ-पैरो को बार-बार पीटता है।

(४) रोगी का सारा शरीर जकड जाता है।

(५) रोगी के हाथो की मुट्ठी बन्द हो जाती है।

(६) सिर आगे या पीछे की ओर झुक जाता है।

(७) नाडी की गति अनियमित हो जाती है।

(८) रोगी के सभी सन्धिस्थल ढीले पड जाते हैं।

(९) श्वास लेने मे रोगी को बाधा होती है।

(१०) अन्त मे श्वासावरोध होने से रोगी की मृत्यु हो जाती है। सत्व सेवन से उक्त लक्षण अतिशीघ्र होते है।

धनुर्वात के लक्षणो के तमाम लक्षणो को देखकर इसके विष का अनुमान किया जा सकता है। दोनो के लक्षण समान होने से वास्तविक निदान करना कठिन हो जाता है। फिर भी निम्नाङ्कित बातो पर ध्यान देने से सही निर्णय किया जा सकता है।

कुचलाविष	धनुर्वात
(१) थोडे समय से ही मृत्यु हो जाती है।	(१) मृत्यु २४ घन्टो तक क्वचित् अधिक समय तक नही होती।
(२) आक्षेप के वेग के बाद पेशिया प्राय ढीली हो जाती हैं।	(२) पेशिया ढीली नही होती।
(३) एक साथ सारी पेशियो मे प्रभाव होता है। हनुस्तम्भ प्रारम्भ मे न होकर अन्त मे होता है।	(३) ग्रीवा की पेशिया एव हन्वस्थि की क्रिया सर्वप्रथम रुकती हैं।
(४) क्षत का कोई इतिहास नही मिलता।	(४) क्षत का इतिहास पाया जाता है।
(५) वमन और अतिसार मे स्थित पदार्थो के रसायनिक परीक्षण से उसमे कुचला विष पाया जाता है।	(५) व्रण के स्राव के परीक्षण से धनुर्वात के जीवाणु पाये जा सकते हैं।

चिकित्सा—(१) वमन द्वारा विष को बाहर निकाले। किंवा आमाशय प्रक्षालन विधि से आमाशय का प्रक्षालन करे।

(२) आंतो मे पहुँचे विष के निर्हरण हेतु हरीतकी कषाय पिलावे। बस्ति का प्रयोग करे।

(३) शमन हेतु वात पित्त शामक चिकित्सा करे। साथ मे हृदयगति को नियमित रखने पर विशेष ध्यान दें।

(४) रोगी को अंधेरे तथा एकान्त स्थान मे रखें। निम्नाङ्कित औषधियो का सेवन लाभप्रद है—

(१) गोदुग्ध मे घृत व मिश्री मिलाकर पिलावें।

(२) शुद्ध सौभाग्य ५०० मि० ग्राम से १ ग्राम तक ६० ग्राम घृत मे मिलाकर पुन पुन पिलावे।

(३) दरियाई नारियल पानी मे पीसकर पिलावे।

(४) जायफल का क्वाथ बनाकर पुन पुन पिलावे। इसको पिलाने के बाद पुन वमन करावे।

(५) कर्पूर का जल पुन-पुन पिलावें। कर्पूर का जल बनाने की विधि कर्पूर के सूचीवेध भी उपयुक्त है। इसमे जामुन फलमज्जा चूर्ण भी लाभप्रद है।

(६) तम्माकू १५ ग्राम को ६० ग्राम जल मे उबालकर घन हो जाने पर पुन पुन (पाच भाग बनाकर) पिलावें।

(७) स्तम्भ और आक्षेप को शान्त करने हेतु अहिफेन या अहिफेन के योग उपयोग मे लावें।

(८) पाश्चात्य चिकित्सक कुचले के विष को निष्क्रिय करने के लिए टौनिकाम्ल खिलाते हैं और यह खिलाकर ही आमाशय का प्रक्षालन करते है। आक्षेप को रोकने के लिए क्लोरोफार्म सुंघाते हैं और फिनोबार्बिटल सोडियम किंवा तत्सम अन्य औषधि का शिरा द्वारा प्रयोग करते है। आक्षेप रोकने के लिए कोई निद्रालु औषधि शांत वातावरण तथा प्रयोग करना यह परिस्थिति अत्यावश्यक हैं। निद्रा लाने के लिये छोटी मात्रा में मार्फिया दिया जाता है। इस हेतु अन्य उपयोगी योग भी काम मे लाये जाते है। आवश्यकतानुसार आक्सीजन-व्यवस्था और कृत्रिम श्वास क्रिया भी उपयुक्त समझी जाती है।

(९) कुचला के सामान्य विष प्रभाव किंवा रोगी की स्थिति सामान्य दशा मे सामान्य चिकित्सा की जानी चाहिये किन्तु रोगी की विशेष दशा किंवा उपद्रवो मे विशेष चिकित्सा की जाकर रोगी की प्राण व रक्षा आवश्यक है। एतदर्थ हृद्य, जीवनीय, विषघ्न द्रव्यो का समुचित प्रयोग आवश्यक है।

गुणधर्म—

कुपीलु शीतलं तिक्तं वातलं मदकृल्लघु।
परंव्यथाहरं ग्राहि कफपित्तास्रनाशनम्॥
—भा० प्र० नि०।

कारस्कर. कटूष्णश्च तिक्तो दीपनपाचन।
सरो वातामयध्वंसी वल्यो वाजीकर स्मृत॥
—प्रि० नि०।

कारस्कर कटूष्णश्च तिक्त कुष्ठविनाशन'।
वातामयास्रकण्डूतिक फामार्शोव्रणापह॥
—राज० नि०।

विषतिन्दुकमाग्नेयं कटुकं दीपनं परम्।
उग्रवीर्यं तीक्ष्णसारं कामोद्दीपनमुत्तमम्॥
अम्लपित्त प्रशमनं मूत्रलं क्षुत्प्रदीपनम्।
पाचनं श्लेष्महरणं बलमज्जननं परम्॥
मेदोहरं रुचिकरं सारमेयविषापहम्।
ग्रहणीहरमत्यन्तं तथोन्मादविनाशनम्॥
आध्मानापहमत्यन्तं तथाजीर्णविनाशनम्।
आमाशयोत्थशूलघ्नं हृद्दौर्बल्यहरं परम्॥
श्वासप्रशमनञ्चैव तथा फुफ्फुसशोथनुत्।
अर्धाङ्गादिनं वातघ्नं नाडीबलविवर्धनम्॥

यह वात का शमन करने के कारण वातरोगो मे अतीव लाभप्रद है। नाडीशूल, अर्दित, पक्षाघात, अनिद्रा, आदि को यह शीघ्र ही दूर करता है। नवीन रोगो की अपेक्षा पुरातन वात रोगो मे यह अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। तीक्ष्ण होने से यह उत्तेजक है तथा नाडीबल्य है। इसके सेवन से वातनाडी विशेषतया प्रभावित होती है। क्योंकि यह आंतो मे शीघ्र ही

मिश्रित होता है एव पित्ताशय द्वारा रक्तवाही स्रोतो को उत्तेजित कर शिराकण्डराओ द्वारा वातनाडियो को गति प्रदान करता है। इसमे वातवाहिनियो का सकोच दूर होता है। ऐसी स्थिति मे रोगी अपने को स्वस्थ अनुभव करता है। अविधिना निर्मित भस्म सेवन करने से विविध रोग उत्पन्न कर देती है। बिना शुद्ध किये सीसक की भस्म के सेवन करने से शरीर मे त्वक् रोग, गुल्म, शोथ, क्षय, पक्षाघात आदि रोगो की उत्पत्ति होती है। कुचला अशुद्ध सीसक भस्म सेवन जात पक्षाघात को भी नष्ट करता है। इसी प्रकार मदात्यय से उत्पन्न हुये पक्षाघात को भी दूर करने मे समर्थ होता है। प्राणाचार्य सदानन्द लिखते हैं—

दुष्टनागाशनाद्भूत वा मदात्ययसम्भवम्।
अर्धाङ्गवात हन्तीह भृशमङ्गविशेषणम्॥

कफावृत वात रोगो को यह शीघ्र दूर करता है। कफावृत वात विकृति जन्य एक योग है—शीतवात। जिसके लक्षणो को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

हिमन्ति हि गात्राणि रोमाणि स्फुरितानि च।
शिरोऽक्षिवेदना तस्य शीतवातस्य लक्षणम्॥
—यो० र०

देहेऽतिशीतल मूर्च्छा नेत्रभ्रमणमेव च।
कण्ठशूल शिरश्छूल शीतवातस्य लक्षणम्॥
—व० र०

इसमे योगराज के साथ कुचला का प्रयोग अत्यधिक हितावह है। इस रोग एव इसमे कुचलादि औषधियो के उपयोग का अधिक वर्णन स्वसपादित धन्वन्तरि वातव्याधि चिकित्सा विशेषाङ्क मे वैद्य श्री वेंकटलाल शर्मा भिषगाचार्य का लेख देखने की कृपा करे।

आ० के० छपरवाल, जी० एल० शर्मा, जी० पी० शर्मा ने अपने अनुसन्धान के परिणाम को इन शब्दो मे व्यक्त किया है—'गृध्रसी के रोगियो मे शोधित कुपीलु चूर्ण दिया गया। यह देखा गया कि केवल फेनिलब्यूटेझोन की अपेक्षा उसके साथ कुपीलु के प्रयोग से अधिक लाभ होता है। —र० अ० दर्पिका

वेदनास्थापन एव शोथहर होने से यह इन विकारो मे विशेष लाभप्रद है।

यह कफवातशामक, दीपन-पाचन एव ग्राही होने से पाचनसस्थान के अग्निमाद्य, आध्मान, विषूची, आमाशयशोथ, आमदोष, अर्श और ग्रहणी आदि रोगो का हरण करता है। वातहर होने से शूलप्रशमन और शूलप्रशमन होने से उदरशूल को तथा कृमिघ्न होने से कृमिरोग का भी नाश करता है।

वातप्रधान अग्निमाद्य मे कुचला, नवसादर आदि से निर्मित वटिका हितावह है—

विषमुष्टिकनवसागर वाल्हीकैरम्लवावितैर्बहुश।
मन्दाग्निमूलविकृतिर्हरन्ति हरिमन्थमेदुरा वटिका।
—सि० भै० म० ४/२५६

विषूचीविषया वटी—

प्रत्येक भर्जयित्वाग्नौ कुचेलाहिंगुसादरम्।
त्रिमर्याद्धि कृतावट्यो विसूचीविषया स्मृता॥
—सि० भै० म० ४/२७७

वातिके अर्शसि—

विषमुष्टिकप्रलेपश्चत्वारिंशद्दिनैर्निहन्त्यर्श।
—सि० भै० म० ४/१९८

आध्माने—

अत्यम्लवदनास्वाद, नव वा चिरकालजम्।
आध्मान नाशयत्याशु भोजनोत्तरकालिकम्॥
—र० त० २४/१९१

शीतप्रधान विषमज्वर मे इसके प्रयोग से शीत का शमन होता है एव ज्वर का वेग रुकता है। मणिमालाकार ने ज्वराकुश नामक दो प्रयोग तथा विषमुष्टिक वटी नामक प्रयोग का वर्णन किया है जो विषमज्वर मे अत्युपयोगी है। कर्णकसन्निपात मे कर्णमूल पर लेप करने से भी यह शोथ-शूल का शमन करता है। एक अत्युपयोगी लेप है।

जबीरनीरमर्दितमुग्राविषतिन्दुकामकाशीमम्।
आसालुकतुल्ययुत कर्णककरिकुम्भकसरि प्रथितम्॥
—त्रिशती

यह उत्तेजक एव शोथहर होने से हृदयशैथिल्य, हृत्कपाटविकृति, हृदयोदर आदि विकारो मे प्रयुक्त होता है। इसके सेवन से रक्तभार मे वृद्धि होती है। इसके

अतिरिक्त कफघ्न होने से कास तथा फुफ्फुसशोथ मे उपयोगी है। उत्तेजक होने से बस्तिशैथिल्य को दूर करता है। बस्ति की शिथिलता के कारण जब मूत्र बूद-बूद कर पुन-पुन आता है तो इसका उपयोग करना चाहिये। बालको को शय्यामूत्र मे भी यह हितावह है। यह तिक्त, बल्य तथा जठराग्नि धात्वग्नियो को दीप्त करने वाला होने से मधुमेह मे भी लाभप्रद है। एक विद्वद्वरेण्य का कथन ध्यान देने योग्य है।

मधुमेहजन्य शरीरमाधुर्य (ग्लायकीमिया) तथा मूत्रमाधुर्य (ग्लायकोस्यूरिया) मे तिक्त रस अधिक कार्य साधक होता है। तिक्त माधुर्य का सर्वोपरि प्रत्यनीक विरा विपक्षभूत होता है। इनमे विषतिन्दुक विशेष फलप्रद है। क्योकि यह जठराग्नि और धात्वाग्नियो का दीपक होने से रसधातु का पचन सम्यक् करता है। जिससे उसके मूलभूत कफ की पुष्टि न्यून कर उसके कोप से होने वाले शरीर व मूत्रमाधुर्य को शान्त करता है। —वै० श्री रणजितराय देसाई

वृष्य होने से शीघ्रपतन ध्वजभङ्गादि मे भी यह लाभप्रद है। रुटुपौष्टिक एव बल्य होने से रोगोत्तर दौर्बल्य, सामान्य दौर्बल्य मे यह लाभ पहुँचाता है। वृद्धावस्थाजन्य दौर्बल्य मे यह विशेपत लाभप्रद है। कुष्ठ, कण्डू और अतिस्वेद को भी यह दूर करने मे श्रेष्ठ है।

व्रण एव सद्योव्रण मे इसके पत्रो मे उपनाह बनाकर लगाया जाता है। सन्धिवात, आमवातादि मे शूलशमन हेतु इसके बीजो का लेप हितावह है। वृद्धि रोग मे वेदना की शान्ति के लिए इसका लेप निदिष्ट है—

विषमुष्टिकरोहिषतृणलेपो गोमूत्रकल्पित कोष्ण।
उत्पद्यमानरूपं वर्ध्मं विशेषेण विघटयति॥
—सि० भे० म० मा० ४

श्वान जब रोगग्रस्त होकर पागल हो जाता है तो उसके दश से विपजन्य लक्षण होते हैं। दशस्थान से नाडियो द्वारा इसका विषाणु सुषुम्नाशिर की ओर बढ कर सामान्यत २०-३० दिन मे उग्ररूप मे रोग को प्रकट करता है। इस अलर्कविष से उत्पन्न जलसन्त्रास से बचने के लिये कुचला का प्रयोग हितावह है—

विषतिन्दुक बीज तु प्रत्यह परिशीलितम्।
निहन्ति कुक्कुरविष खलु मासैकमात्रत॥
—र० त० २४/२३०

ऐसी पुरानी माहवारी की विकृति जो समय से पूर्व होती हो और रक्त भी अधिक निकलता हो तो कुचला की योजना हितावह सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त श्वेतप्रदर की वेदना का भी यह शमन करता है—

सवेदना तथा पीतदुर्गन्धस्रावसयुक्तम्।
विनिहन्ति विशेषेण श्वेतप्रदरजा रुजम्॥
—र० त० २४/१२६

यूनानी मतानुसार—यूनानी मत से यह बहुत गरम और खुश्क है। यहा तक कि तीसरे दर्जे के आखिर तक गरम और खुश्क बतलाया जाता है। कम मात्रा मे देने से यह सर्दमिजाज मे जो खराबी उत्पन्न हो जाती है, उसको गरममिजाज की तरफ बदल देता है और बदन को कुव्वत देता है। लकवा, गठिया, कमर का दर्द तथा स्नायु जाल मे सम्बन्ध रखने वाली दूसरी बीमारियो मे यह बहुत लाभदायक है। यह मासिकधर्म और पेशाब को साफ करता है। यह पथरी को भी तोडकर बाहर निकालता है। इसका लेप करने से चेहरे का कालापन, झाई, तर खुजली और दाद मे लाभ होता है।
—ब० शास्त्र

आधुनिक मतानुसार—कुचला के बीज उत्तेजक, स्नायुबलदायक है। यह वात, अजीर्ण, ग्रहणी, विषूचिका, ध्वजभङ्ग, शूल, आतो की दुर्बलता से उत्पन्न विबन्ध, श्वास, शुक्रमेह, गुदभ्रंश, हृत्स्पन्दन, मनोविकार, मदात्यय, आक्षेप, मद्यपी के वमन का अजीर्ण, नशा रोकने तथा कफजन्य कई रोगो मे हितकारक है।

डिमक का कथन है कि कुचला की हरी डाल के दोनो ओर पात्र रखकर बीच मे अग्नि जलाने से जो रस टपकता है वह कुछ बिन्दु उसके देने से प्रबल अतीसार और विषूचिका दूर होते है। वाजीकरणार्थ अनेको लोग इसके बारीक टुकडो को पान मे रखकर चबाते हैं।

इसमे एक प्रकार की महनता उत्पन्न होती है। नीबू के रस मे कुचला की जड की छाल की गोली बनाकर सेवन करने से स०त विषूचिका मे शान्ति प्राप्त होती है। कुचला एक भयानक विष है, यह कभी भी नही भूलना चाहिये।

डाक्टर देसाई के कथनानुसार कचला अत्यन्त महत्व की उत्तम औषधि है। स्नायुजाल समूह को इतनी प्रत्यक्ष उत्तेजना देने वाली दूसरी कोई औषधि इसके समान नहीं है। इसका प्रभाव शरीर पर स्थाई रूप से होता है।

एलोपैथी चिकित्सा मे कुचला के प्रधानतया कुचला चूर्ण (Nux Vomica Powder), कुचला सत्व (Strichnine) और इसका टिंक्चर आदि प्रयोग प्रयुक्त होते हैं। कुचला सत्व–जौहर (Strichnine) इनमे प्रमुख औषधि है। कुचले को प्रभावी बनाने मे इसकी ही प्रमुख भूमिका होती है। डिजीटेलिस और कहवे के सत्व के साथ यह हृदयरोगो मे अतिलाभदायक है। पक्षाघात मे इसकी १/२० ग्रेन की मात्रा मे पिचकारी देने से बडा लाभ होता है। वृद्धावस्था मे जब मूत्रपिण्ड की शक्ति कम हो जाती है। मूत्र बार-बार और बिन्दु, बिन्दु होता है तो यह सत्व बहुत लाभ करता है। रक्ताल्पता मे लौह के साथ इसका उपयोग किया जाता है, जो अतीव लाभप्रद होता है। अफीम छुडाने के लिए भी कुचला को व्यवहार मे लाया जाता है। इसमे टिंक्चर नक्सवोमिका को पोटाशियम ब्रोमाइड के साथ दिया जाता है। इसके उपयोग से अफीम व्यसनी शनै-शनै अफीम खाना सहज मे ही छोड देता है।

इसके द्वारा निर्मित ऐलोपैथी के कतिपय उपयोगी प्रयोग यहा दिये जा रहे है।

१ पि० नक्स वोमिका—कुचला चूर्ण २ ग्रेन या कुचला सत्व १/२० ग्रेन, लौग २ ग्रेन, सोठ १ ग्रेन, अण्डे की सफेदी मे गोलिया बनाई जाती हैं। गोली १२० मि० ग्रा० की होती है जिन्हे भोजनोपरान्त उपयोग मे लाया जाना चाहिये।

२ पि० कौल्चिमिनी एँट नक्सवामिका—कौल्चिसिन १/६४ ग्रेन, ऐक्स० नक्सवामिका १/४ ग्रेन, ऐक्स० हायोमायेमस १/२ ग्रेन, मिल्क शूगर पर्याप्त। २-३ गोली गठिया (गाऊट) मे बडी उपयोगी हैं।

३ नक्सवामिका पाउडर—मात्रा–१-४ ग्रेन। यह क्षुधावर्धक, बलकारक, हृदय और श्वासक्रिया को उत्तेजित करने वाला और स्नायु व मस्तिष्क को बल देने वाला है। अरुचि, अग्निमाद्य, कब्ज, आमाशय प्रदाह, हृदय की कमजोरी, पक्षाघात आदि मे यह उपयोगी है।

४ टिंक्चर नक्सवामिका—कुचीले के बीज वाष्प देने से नरम होते हैं। फिर छोटे-छोटे टुकडे कर, टोचकर छाया मे सुखा लें। इन टुकडो को या चूर्ण को १० गुनी उत्तम देशी शराब मे भिगोकर एक सप्ताह तक रहने दे (शराब के स्थान पर मृतसंजीवनी सुरा अधिक उपयोगी हो सकती है)। फिर उसे दबाकर निचोड लेवें। मात्रा–५ से १५ बूद। भोजनोपरान्त सेवन से अग्नि प्रदीप्त होती है।

५ लाइकर स्ट्रकिनया–४ ग्रेन सत्व कुचला (एक्स० नक्स०), ६ बूद हाइड्रोक्लोरिक एसिड, २ ड्राम (१२० बूद), शराब, ६ ड्राम पानी मिलाकर तैयार किया जाता है।

६ टोनिक पिल्स—फेरी आर्सेन १/४ ग्राम, एक्स० नक्सवामिका १/४ ग्राम, क्विनाइन सल्फ० २ ग्राम, पिल्स-रेई को २ ग्राम उचित मात्रा मे दें।

७ ज्वरहर मिक्चर—कुनैन सल्फेट २ ग्रेन, टिंक्चर आयरन क्लोराइड १० मिनम, टिंक्चर नक्सवामिका ४ ग्रेन, डाइल्यूट हाइड्रोक्लोरिक एसिड ३ ग्रेन, पानी १ औंस। कमजोरी दूर कर ज्वर हटाता है।

इसी प्रकार नक्सवोमिकापिल्स, नक्सवोमिका टिंक्चर व नक्सवोमिका पाउडर के साथ अन्य उपयोगी द्रव्यो का समिश्रण कर बहुत से प्रयोग बनाये जा सकते है।

होमियोपैथी मतानुसार—होमियोपैथिक रोग की चिकित्सा न कर रोगी की चिकित्सा करता है, सुतरां इसमे रोग को कोई महत्व नही है। यह लक्षणो के आधार पर चिकित्सा सम्पादित करता है। एतावता इसमे कोई पेटेण्ट औषधि नही होती है। इसमे औषधि के उपयोग के नाम से ही रोग-रोगी को नाम दिया जाता

है अर्थात् जिस रोगी को अमुक दवा देनी है, वही उस दवा का रोगी है। इसी भांति जिस रोगी को कुचला (नक्सवोमिका) देना होता है वह कुचला-नक्सवोमिका का रोगी कहा जाता है।

बहुत दिनों तक मिर्च किंवा अधिक मसालों से युक्त एवं गरिष्ठ भोजन के सेवन करने से, मदिरा, भांग, गांजा, तम्बाकू, अहिफेन आदि मादक वस्तुओं के अत्यधिक सेवन से तथा अधिक जागरण से जो रोग उत्पन्न होवे उनमें प्रायः नक्सवोमिका के लक्षण रहते हैं और सम लक्षण युक्त रोग में यह जादू की तरह काम करता है।

जिनको छोटी सी बात से क्रोध आ जाता है, छोटी-छोटी बातों से जो चिढ़ जाते हैं, जिनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया है, ऐसे व्यक्ति के लिए नक्सवोमिका हितावह है। सतर्क, ईर्षालु, कलहप्रिय, कृश, मद्यप, आलसी जो प्रायः बल्य औषधियों का सेवन करते रहते हैं, जो गृहस्थी की चिन्ताओं में अहर्निश उलझे रहते हैं किंवा चिन्तित रहते हैं तथा जिन्होंने विशेष अध्ययन कर अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दिया है, जिन्हें कोष्ठबद्धता (कब्ज) सदा रहती है—ऐसे व्यक्तियों के लिए नक्सवोमिका बहुत उपयोगी है। नक्स के रोगी में आत्महत्या करने की प्रबल प्रवृत्ति होती है किन्तु मृत्यु से यह सदैव भयभीत रहता है।

कई चिकित्सक एलोपैथिक दवाओं से उत्पन्न प्रभाव को समाप्त करने हेतु भी इसको उपयोग में लाते हैं। उक्त औषधियों के प्रभाव को समाप्त करने के पश्चात् ही वे अन्य होमियोपैथिक औषधि देते हैं। ऐसी स्थिति में सर्वत्र इसे देना उपयुक्त नहीं। उत्तेजक औषधियों के सेवन के बाद नक्स जैसे लक्षण उपस्थित होने पर (जो प्रायः हो जाते हैं) इसे अवश्य उपयोग में लावें। तब यह अवश्यमेव प्रतिषेधक के रूप में कार्य करता है।

प्रयोगपूर्व ज्ञातव्य—

(१) नवीन रोगों की अपेक्षा पुराने रोगों में कुचला किंवा कुचला के योग लाभप्रद होते हैं।

(२) इसका लम्बे समय तक उपयोग हितावह नहीं है। अधिक समय तक उपयोग से इसका विष संचित होकर हानि पहुँचा सकता है। लम्बे समय तक उपयोग में लाने की पूर्ण आवश्यकता पड़ने पर एक सप्ताह उपयोग के पश्चात् २-३ दिन तक बन्द कर पुनः प्रारम्भ किया जा सकता है किन्तु अधिक समय तक निरन्तर उपयोग उपयुक्त नहीं है।

(३) इसके सेवन काल में घृत-दुग्ध का अधिक सेवन हितावह है। इससे इसका विष प्रभाव होकर कोई हानि होने की सम्भावना नहीं रहती।

(४) यह ग्राही होने से मलविष्टम्भकारक है सुतरां इसके साथ विरेचन द्रव्य भी देने चाहिये। आचार्यों ने शास्त्रीय प्रयोगों में इस बात को सदैव ध्यान में रखा है। यथाहि अग्नितुण्डी रस में त्रिफला, लक्ष्मीविलासरस में सौभाग्य और शूलनिर्मूलन रस में अम्लवेत का मिश्रण किया गया है। त्रिफलादि के मिश्रण से मलविष्टम्भ दूर होने के साथ इसका विष प्रभाव भी न्यून होता है।

(५) स्पर्शन रहित कठिन मांसपेशी शोथयुक्त नूतन पक्षाघात में इसका प्रयोग कदापि न करें। शून्यवात में यह हितकर नहीं है।

(६) लम्बी बीमारी के पश्चात् बलप्रदानार्थ लौहभस्मादि प्रयोगों के साथ कुचला का प्रयोग हितावह है। यह स्वयं पौष्टिक होने से बलप्रदान करता है, भस्मों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है तथा पाचनशक्ति को स्वल्प नहीं होने देता है।

(७) यदि रोगी तमाकू-प्रिय हो किंवा उसका विभिन्न कारणों से तीव्र क्रोध आने का स्वभाव हो गया हो तो उसे यह न्यूनातिन्यून मात्रा में प्रयोग करना चाहिये।

(८) इसका प्रभाव रीढ़ तथा नीचे के अङ्गों पर एवं पेट पर अधिक होता है, सुतरां नीचे के अर्धाङ्गवात में यह विशेष लाभकारी है। मस्तिष्क गत कशेरुका प्रदाह किंवा रक्तस्रावजन्य अर्धाङ्गवात में इसका प्रयोग हितावह नहीं है।

(९) यद्यपि शैय्यामूत्र मे इसका उपयोग हितावह है किन्तु यदि मूत्रावरोध के कारण दिन मे पेशाव न होकर रात्रि मे हो जाता हो तो इसका उपयोग उपयुक्त नहीं है।

(१०) यह पौष्टिक द्रव्यो के साथ बृंहण करने वाला और कर्षण गुण वाले द्रव्यो के साथ कर्षण करने वाला है। बृंहण हेतु प्राय घृत के साथ एव कर्षण हेतु मधु के साथ दिया जाता है।

(११) प्रयोग से पूर्व रोगी की सहिष्णुता पर अवश्य ध्यान देवे।

सामान्य प्रयोग—

वाह्य प्रयोग

(१) अग्निदग्धव्रण—कुचलाक्वाथ मे घृत मिलाकर व्रण पर लगावें।

(२) व्रण—कुचलापत्र का उपनाह बांधने से व्रणगत कृमि नष्ट होते हैं।

(३) श्वानविष—नरमूत्र मे कुचला को घिसकर दश स्थान पर लगावे।

(४) ग्रन्थि—कालीमिर्च के साथ कुचला को घिसकर लेप करें।

(५) ग्रन्थिकज्वर—ग्रन्थि पर कुचला, एलवा और अफीम को जल मे पीसकर लेप करे।

(६) अर्श—[क] कुचला और अफीम को पानी मे घिसकर अर्शांकुरो पर लेप करें।

[ख] कुचला का धूम्र लगावें।

(७) गुदभ्रंश—कुचला के कोमल पत्तो के क्वाथ मे गुद प्रक्षालन करें।

(८) कर्णमूलशोथ—[क] कुचला को गोमूत्र मे पीसकर लेप करे।

[ख] कुचला, बच, कूठ, हीराकसीस, हरताल और नीलाथोथा को नीबू के रस मे पीसकर लेप करें।

(९) जिह्वाशूल—कुचला चूर्ण को मधु, मलाई के साथ सेवन करें।

(१०) अपक्व विद्रधि—[क] कुचला को गोमूत्र मे पीसकर लेप करें।

[ख] कुचला और समुद्रफल को जल मे पीसकर गर्मकर लेप करें। इससे विद्रधि पककर शीघ्र फूट जाती है।

(११) स्नायुक—कुचला को जल के साथ घिसकर गाढा लेप करे। लेप पर सुहागा और सिन्दूर बुरककर एरण्डपत्र बांध दें। ऐसा दो-तीन बार करने से स्नायुक नष्ट हो जाता है।

(१२) प्रसवकष्ट—कुचला को पानी मे घिसकर नाभि पर लेप करे।

(१३) आमवात—[क] कुचला को पीसकर सन्धि स्थानो पर लेप करे।

[ख] कुचला, सोठ और सामर सींग को मिलाकर लेप करें।

(१४) दन्तशूल—कुचला भस्म को लेकर उसके बराबर ये द्रव्य लें—कालीमिर्च, रूमीमस्तङ्गी, फिटकरी, अकरकरा और सैन्धवलवण। इनसे मंजन तैयार कर मजन करें।

आभ्यन्तरीय प्रयोग—

(१) अर्श—[क] शु० कुचला चूर्ण मे मिश्री मिलाकर सेवन करने से रक्तार्श, कृमि, त्वक् विकार आदि दूर होते हैं।

[ख] वातार्श मे कुचला चूर्ण के साथ समभाग कालीमिर्च मिलाकर सेवन करें।

(२) गुल्म—कुचला को रात में मिट्टी के पात्र मे १६० मि० लि० जल मे भिगो देवें। सुबह उस पानी को छानकर पीवे। यह वातज गुल्म मे हितावह है।

(३) कृमिरोग—वायविडङ्ग, बथुआ के बीज १-१ भाग और कुचिला आधा भाग लेकर सेवन करे।

(४) उदरशूल—[क] कुचला, टङ्कण (शुद्ध), कालानमक, और शखभस्म सेवन करे।

[ख] कुचला चूर्ण १५० मि० ग्रा०, लवङ्ग चूर्ण ५० मि० ग्रा० को आर्द्रकस्वरस और मधु के साथ सेवन करे।

[ग] पातालयन्त्र से कुचले का निकाला तैल किंचित् सा पान मे रखकर सेवन करें।

(५) अनिद्रा—[क] कुचला चूर्ण को पिप्पलीमूल चूर्ण के साथ सेवन करे।

[ख] कुचला चूर्ण और पारसीक अजवायन सेवन करे।

[ग] कुचला चूर्ण को सर्पगन्धा चूर्ण के साथ सेवन करें। इनका अनुपान महिषीदुग्ध होना चाहिये।

(६) सर्पविष—[क] कुचला चूर्ण को कालीमिर्च के साथ सेवन करे।

[ख] कुचला मूल को जल मे घिसकर मुख मे डालें।

(७) श्वास—कुचला और कालीमिर्च को थूहर के दूध मे घोटकर चने बराबर गोली बना लें। १-१ गोली ३० ग्राम गोघृत के साथ सेवन करे।

(८) स्नायुक—कुचला चूर्ण १२५ मि० ग्रा० शुक्तिभस्म ५०० मि० ग्राम को घृत एव मधु के साथ सेवन करें।

(९) मूत्राघात—विषमज्वर जन्य मूत्राघात मे कुचला चूर्ण को गोक्षुर व कटकारीफाट से सेवन करे।

(१०) हृदयरोग—कुचला चूर्ण, शृङ्गभस्म को मधु के साथ सेवन करे।

(११) शय्यामूत्र—[क] कुचला चूर्ण को बबूल-त्वक् क्वाथ से सेवन करे।

[ख] कुचला चूर्ण को कुन्दरूपत्र स्वरस से सेवन करें।

(१२) अतीसार—हरड के मुरब्बे पर कुचले के अर्क की बूंद डालकर सेवन करें।

(१३) अहिफेनव्यसन—[क] जिस दूध मे कुचले का (गोमूत्र मे करने के बाद) शोधन किया जाय उस दूध का खोआ बनाकर खिलावें।

[ख] कुचले को घी मे भूनकर अफीम के समान वजन मे देते रहे।

(१४) सन्धिवात—कुचला १२५ मि० ग्रा०, लौह-भस्म १२५ मि० ग्रा० और शुद्ध गुग्गुल १ ग्राम को रास्नादिक्वाथ के साथ सेवन करे।

(१५) शीतवात—कुचला चूर्ण, भृष्टहिंगु नीबू स्वरस मे ७ दिन तक खरल कर २५० मि० ग्रा० की गोली बनाकर कवोष्ण जल से १-२ गोली देवें।

(१६) श्वेतप्रदर—कुचला चूर्ण को किंवा त्रिबङ्ग-भस्म के साथ मधु मे मिलाकर सेवन करे।

(१७) कम्पवात—सोंठ और अजवायन के साथ कुचला चूर्ण लेकर गोघृत से चाटे।

(१८) कटिशूल—सोठ, रास्ना, अजवायन, शतावरी, विधारा और असगध के साथ कुचला सेवन करे।

(१९) क्लैब्य—[क] कुचला चूर्ण, कालीमिर्च चूर्ण २०-२० ग्राम तथा त्रिफला ३० ग्राम लेकर कुमारी-स्वरस से खरल कर १२५ मि० ग्रा० की गोलियां बनाकर १-२ गोली सितायुक्त दुग्ध से सेवन करें।

[ख] कुचला चूर्ण को विदारीकन्द चूर्ण के साथ सेवन करें।

[ग] कुचला चूर्ण को असगध चूर्ण के साथ सेवन करे।

[घ] कुचला चूर्ण और अकरकरा चूर्ण को घृत के साथ सेवन करे।

[ङ] कुचला, मरिच, वङ्गभस्म और लोहभस्म को कुछ समय सेवन करे।

[च] कुचला चूर्ण को मिश्री, मलाई, मक्खन के साथ सेवन करें।

(२०) गृध्रसी—कुचला चूर्ण, रौप्यमाक्षिक भस्म, अभ्रकभस्म को घृत-मधु के साथ सेवन करे।

(२१) पक्षाघात—कुचला को कोयलो पर जलाकर उसकी भस्म बना लें। इसमें समभाग कृष्णमरिच मिलाकर १२० मि० ग्रा० ताम्बूल मे रखकर प्रात-साय सेवन करें। इसके उपयोग से जीर्ण पक्षाघात मे लाभ होता है।

(२२) शीताङ्ग सन्निपात—कुचला चूर्ण के साथ लवङ्ग चूर्ण का सेवन हितावह है।

(२३) विषमज्वर—कुचला चूर्ण एव कालीमिर्च के चूर्ण को अमृता, तुलसी एव मुस्तक के क्वाथ से सेवन करे।

(२४) वृद्धजनदौर्बल्य—वृद्धो को वैकान्तपिष्टी एव पिप्पली चूर्ण के साथ इसे सेवन कराने मे उनकी सामान्य दुर्बलता नष्ट होकर सामान्य रोगो से छुटकारा मिलता है।

(२५) अग्निमाद्य—जीरक, सैन्धव और हरीतकी चूर्ण के साथ कुचिला को आर्द्रकरस से सेवन करें।

(२६) आध्मान—कुचला चूर्ण किंवा वटी को कुमार्यासव के साथ सेवन करें।

विविध कल्पनायें

रस—

(क) नवजीवन रस—शुद्ध कुचला २४ ग्राम, लोह भस्म २४ ग्राम, रससिन्दूर २४ ग्राम, सौंठ, काली मिर्च तथा पिप्पली चूर्ण २४ ग्राम लेकर सबको एकत्रकर खरल मे अदरख के रस से खूब मर्दन करें जब गोली बनने योग्य रह जाय तो इसकी एक १२० मि० ग्रा० की एक एक गोली बनालें। इसको नवजीवन रस नाम से कहा जाता है। यह नवजीवन रस, सेवन करने से मनुष्य को नवीन जीवन प्रदान करता है। इसके सेवन से पाचक रस अधिक मात्रा मे उत्पन्न होने से यह दीपक और आम रस को पचाने के कारण यह पाचक है। इसके सेवन से स्वस्थ शरीर मे बल पैदा होता है। ज्ञानवाली तथा चेष्टावाही नाडियो की शक्ति बढती है। आतो मे होने वाला शूल तथा आध्मान नष्ट होता है। इसके सेवन से मलबन्ध दूर होता है और पुराने अतिसार मे लाभ होता है। आधाशीशी के दर्द मे यह बहुत लाभ करता है। और शरीर मे यह रक्त की वृद्धि करता है और शरीर के किसी भाग मे होने वाले वातिक शूलो को तथा मानसिक परिश्रम से उत्पन्न शिथिलता को दूर करता है। —र० त०।

(ख) लक्ष्मीविलास रस—शुद्ध कुचला चूर्ण ६२ ग्राम, सुहागा खील ७२ ग्राम, कालीमिर्च चूर्ण ४२ ग्राम, लोह भस्म ४८ ग्राम, शुद्ध गन्धक २४ ग्राम, शुद्ध पारद १२ ग्राम लेकर पहले पारे और गन्धक की कज्जली कर लें। फिर इसमे अन्य औषधिया खरल मे अदरक के रस से मर्दन करें, फिर इसको शतावर, भुई आवला और भागरे के स्वरस की तीन-तीन भावना देकर १२० मि० ग्रा० की एक-एक गोलिया बनावे। इसको "लक्ष्मी विलास" नाम से कहा जाता है। इस रस के सेवन से शरीर मे अत्यधिक तरुणावस्था की शोभा बढ़ जाती है। रोग के दुर्बल हुए शरीर वाले कृश तथा नष्टवीर्य मनुष्यो के लिए यह शारीरिक पुष्टि को उत्पन्न करता है और वीर्य की वृद्धि करता है। इसके सेवन से शरीर में बल और वर्ण की वृद्धि होती है। अग्निमान्द्य के विकार नष्ट होते हैं और शरीर मे रक्त की वृद्धि होती है और सुन्दरता बढती है। —र० तर०।

(ग) अग्नितुण्डी (वटी) रस—शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध गन्धक, अजमोद, हरड, बहेडा, आवला, सज्जीक्षार, यवक्षार, चित्रक मूल की छाल, सेंधानमक, जीरा, कालानमक, वायविडग, सामुद्रलवण, सोंठ, मिर्च, पीपल सब समभाग और शुद्ध कुचला सबके समभाग लें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना, उसमे अन्य द्रव्यो का कपडछन किया चूर्ण मिला, जम्बीरी नीबू के रस मे ३ दिन मर्दन कर २४० मि० ग्रा० की गोलिया बना सुखाकर रख लें। मन्दाग्नि, अजीर्ण और उदरशूल मे १-२ गोली जल के अनुपान से भोजन के बाद या यथावश्यक दिन मे ३-४ बार दें। —शा० सहिता।

वक्तव्य—यह सर्व प्रसिद्ध शास्त्रीय प्रयोग शार्ङ्ग-धर संहिता का है। भैषज्यरत्नावली आदि ग्रन्थो मे भी यह उद्धृत किया गया है। वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने भी इसे सिद्ध योगसग्रह के अग्निमाद्य अजीर्णाधिकार मे लिखा है। रसतरङ्गिणीकार ने इससे त्र्यूषण को निकालकर कुचले के साथ सभी द्रव्य सभी समान लिये हैं अर्थात् कुचला सर्वतुल्य न होकर सभी द्रव्य सम-भाग लिये हैं। इसे उत्तम दीपन-पाचन अग्निमाद्य, अर्श-अतिसार-कटिशूलहर तथा नाडीबलवर्द्धक कहा है। रस-तन्त्रसार के लेखक ने इसे श्वानविष, निर्बलता, स्वप्न-मेह, हृदरोग, सग्रहणी, यकृद्वृद्धि, आन्त्रपुच्छविद्रधि, कृमिरोग और जीर्णपक्षाघात मे भी उपयोगी कहा है।

इसका शार्ङ्गधरोक्त पाठ ही सुप्रचलित है और विशेषत वैद्यजन इसी आधार पर इस रस का निर्माण करते है। पडित प्रवर श्री हरिप्रपन्न जी ने १५-२० ग्रन्थो मे इसके वर्णन का उल्लेख किया है और सभी मे कुचले के लिये "विषमुष्टि" शब्द का प्रयोग किया गया है। शार्ङ्गधर सहिता के व्याख्याकार आढमल्ल ने

इसका अर्थ कुचेला (कुचला) किया है और काशीराम इसका अर्थ बकायन का फल किंवा कुचला दोनो देकर दोनो के अभाव मे समुद्रफल ग्रहण करने की सूचना दी है। इस विषय मे श्री हरिप्रपन्न जी ने विविध रोगो मे उपयोगी द्रव्य के अनुसार अपना मत इस प्रकार प्रदर्शित किया है—अग्नितुण्डया सम्प्रदायानुसारेण आग्निमाद्यार्शो विकारकृमिषु प्रायोवैद्यवरा प्रयोग कुर्वन्ति। तत्रार्श. कृमिविकारयो' विषमुष्टिशब्देन महानिम्बजीजानि ग्राह्याणि, अग्निमाद्ये कुचलेति प्रसिद्ध द्रव्यम्।"

इस योग की हिन्दी व्याख्या मे पडित जी ने लिखा है कि "कुचले का विशेष शोधन किया जाए तो इसकी ३ रत्ती की गोली बनाकर दे सकते हैं। परन्तु जब कुचले के छिलके मात्र ही निकालना शुद्धि अभीष्ट हो तो मरिच जितनी ही गोली बस है। इसीलिए रसेन्द्र कल्पद्रुम मे ६ रत्ती की मात्रा लिखी है। पर जब बकायन के बीज डालकर बनानी हो तो २ रत्ती की गोली बस है"।

(घ) शूलनिर्मूलन रस—सोंठ, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च चूर्ण, शखभस्म, सेंधानमक, रससिन्दूर, जीराचूर्ण, अमलवेत चूर्ण, प्रत्येक सम्भाग मे लें और सबसे आधा भाग शुद्ध कुचला चूर्ण लेकर सबको एकत्र खरल मे अदरख मे सहिजने के रस के साथ मर्दन करे। जब गोली बनाने योग्य हो जाय तो इसकी १२० मिली ग्राम की गोली बनालें। इसको "शूल निर्मूलन रस" नाम से कहा जाता है। रस दीपन और पाचन होने से अग्निमान्द्य रोग को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से अतीसार, ग्रहणी, तथा विसूचिका रोग भी नष्ट होते है। पाचक, शक्ति का वर्धक होने से इसके द्वारा शरीर मे बल वीर्य की वृद्धि होती है और उत्पादक अगो की शक्ति बढ जाती है। इसके कुछ दिन प्रयोग से गुल्म रोग नष्ट हो जाता है। परन्तु वातिक शूल, विशेषत उदरशूल को नष्ट करने मे निश्चित अनुभूति औषधि है। —र० तर०।

(ङ) सुप्तिवातारि रस—शुद्ध कुचला चूर्ण २४ ग्राम, समभाग पारद गन्धक की कज्जली २४ ग्राम, सोठ मिर्च तथा पिप्पली चूर्ण २४ ग्राम लेकर एकत्र खरल मे डाल इसकी सात भावना निर्गुण्डी स्वरस की और सात भावना पलाश (ढाक) बीज कषाय की देकर २४० मि० ग्रा० की गोलिया बनालें। इसको सुप्तिवातारि रस कहते हैं। यह सुप्तवात सुन्नवात को नष्ट करता है। —र० तर०।

(च) कृमिमुगद्ररस—शुद्ध पारद १० ग्राम, शुद्ध गन्धक २० ग्राम, अजमोद ३० ग्राम, वायविडग ४० ग्राम, शुद्ध कुचला ५० ग्राम, पलास (ढाक) के बीज ६० ग्राम लेकर सबको यथाविधि चूर्ण कर एकत्र मिला मर्दन कर रखलें।

यह रस अपनी तीक्ष्णता से कफज कृमियो को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। २५० मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० तक मधु के साथ देकर ऊपर नागरमोथा का क्वाथ पिलावे। इसे ३ दिन सेवन करने के बाद चौथे दिन जुलाब देना चाहिये। —र० रा० सु०।

२ वटी—(क) एरण्ड तैल मे भूनकर शुद्ध किया हुआ कुचला १ भाग, कालीमिर्च १ भाग लेकन दोनो सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् इन्द्रायण फल स्वरस के साथ १२ घन्टे तक खरल करे। गोली बनने योग्य होने पर १२० मिली ग्राम की गोलियां बना सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ गोली तक दिन मे २-३ बार आवश्यकतानुसार जल के साथ दें। वात रोगो मे पान के रस के साथ दे।

गुण और उपयोग—इस वटी के उपयोग से नवीन ज्वर, विषम ज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, उदरवात, उदरशूल, जीर्ण, वातरोग, पागलकुत्ते विष आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, गृध्रसी आमाशय और पक्वाशयिक वात प्रकोप, तथा चेष्टा (ज्ञान) तन्तुओ की विकृति को शीघ्र नष्ट करती हैं।

वातवाहिनी नाड़ियो एव स्नायुमण्डल का तनाव दूर होकर कठिन वात रोगो को नष्ट करने मे यह औषधि उत्तम एव शीघ्र प्रभावकारी सिद्ध हुई है। अग्नि को बढाकर भूख भी अच्छी लगती है तथा स्नायुमण्डल को शक्ति प्रदान कर काम शक्ति को जागृत करती है। —सि० भे० म० मा०।

(ख) शु० कुचला चूर्ण १२ ग्राम हिंगुल ६ ग्राम, जायफल, जावित्री, अकरकरा ३-३ ग्राम केशर १.५ ग्राम और कस्तूरी ७५० मि० ग्राम लेकर सबको बगला-पान मे १८ घन्टे खरल कर १२० मि०ग्रा० की गोलिया बनाले। १-२ गोली दिन मे १-२ बार दूध के साथ देने से नपुसकता, स्वप्नमेह दौर्बल्य, वात रोग आदि का शमन होता है। —गा० औ० रत्न।

(ग) शुद्ध कुचला १२ ग्रान, सुपारी १२ग्राम, कालीमिर्च ६ ग्राम, इमली के बीज ८ नग लेकर सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करना, पीछे जल मे बारीक चने के बराबर गोली बांध लेना।

मात्रा—१ से २ गोली दिन मे दो बार जल से देना।

उपयोग—अतिसार, जुकाम, अजीर्ण, मन्दाग्नि, हृदय की निर्बलता, पुराना वात रोग, धातुक्षीणता, उदरशूल आदि रोगो को दूर करती है।

विशेष उपयोग हमने अफीम का व्यसन छुडाने मे किया है। अफीम के व्यसनी को अफीम छुडाने के लिए अफीम के समान वजन से गोली देने से, पूरा-पूरा नशा आता है और ८-१० रोज मे अफीम छूट जाती है। अफीम छूटने के बाद शरीर का कालापन दूर होकर लाल बन जाता है। अफीम और औषधि, दोनो छूटने पर कुछ भी तकलीफ नही होती। —र० त० सा०।

(घ) शुद्ध कुचला १२० ग्राम, धाय के फूल २४ ग्राम, सोंठ, कालीमिर्च, धनिया, सेधानमक, अनीम और आवला ये नव वस्तुएं १२-१२ ग्राम मिलाकर बारीक चूर्ण कर लें। फिर चूर्ण से तीन गुनी शक्कर की चाशनी के साथ चूर्ण को मिला घोटकर बेर के समान गोलिया बना लेना।

मात्रा—एक-एक गोली दिन मे २ बार जल के साथ लेना।

उपयोग—संग्रहणी, मन्दाग्नि, ताप, अतिसार, शूल और वातरोग मे अतिलाभदायक है। —र० त० सा०।

(ङ) शुद्ध विषमुष्टी २४ ग्राम, जायफल, जावित्री, [illegible], केशर, समुद्रफल, बडी इलायची, प्रत्येक १२-१२ ग्राम, कस्तूरी ३ ग्राम नागवल्ली के पान के स्वरस मे १२० मि० ग्रा० की गोलिया बना लें। प्रत्येक वातव्याधि पर अक्सीर है।

अनुपान भेद से अन्य व्याधियो पर भी प्रयोग करे।

मात्रा—२ वटी से ४ वटी तक।

—धन्व० सि० चि०।

(च) शुद्ध कुचला, अफीम और सफेद गोलमिर्च—इन तीनो को १२-१२ ग्राम लेकर कूट पीसकर छान लो। इसके बाद इस चूर्ण को खरल मे डालकर, अदरख के रस के साथ खूब घोटो। घुट जाने पर १२० मि० ग्रा० की गोलियां बना लो। एक-एक गोली सोंठ के चूर्ण और गुड के साथ खाने से आमातीसार और हैजा का निश्चय ही नाश होता है। —चि० च०

(छ) १२ ग्राम शुद्ध कुचला, सौठ २४ ग्राम और हर्रा का छिलका २४ ग्राम, लेकर कपडछान चूर्ण कर पानी से घोटकर ५०० मि० ग्रा० की गोलिया बना लेवे। इस गोली को मुह मे धारण करते रहने से गल-शुण्डी, कण्ठशालूक रोग शान्त होता है। —र० र० स०

(ज) शुद्ध आमलासार गधक, हिंगुलोत्थपारद, शुद्ध वत्सनाभ विष, अजवायन, सज्जीखार, हरड़, बहेडा, आंवला, जवाखार, सैंधानमक, चीते की जड, सफेदजीरा, कालानमक, वायविडङ्ग, छोटीपीपल, सौठ, कालीमिर्च, १२-१२ ग्राम। शुद्ध कुचले का बारीक चूर्ण १४४ ग्राम। पारा गन्धक की कज्जली बनाकर इसमे विष मिलाकर घोटो। फिर कुचला का बारीक चूर्ण डालकर घोटो। अन्त मे शेष समस्त चीजो का बारीक कपडछन चूर्ण करके मिला दो और नीबू का रस दे-देकर दो दिन तक ८-८ घण्टे की घुटाई करावे। फिर २४० मि० ग्रा० की गोलिया बना लो।

पुराने पड गये पक्षाघात को मिटाने एव वातवाहि-नियो को दुरस्त करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। प्रात-साय १-१ गोली महारास्नादि क्वाथ से दो।

कब्ज, वातविकार, शून्यता, ज्वर, पाचन विकार आदि के साथ रहने वाले पक्षाघात को भगाने मे अति उत्तम प्रयोग है। — धन्व० सित० ६७

(झ) कुचला चूर्ण ३० ग्राम, सोठ, मिर्च, पीपल १०-१० ग्राम मिलाकर सोठ क्वाथ मे १२ घण्टे तक खरल कर १२० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले । १-२ गोली दिन मे २-३ बार जल के साथ देने से विषमज्वर, मन्दाग्नि, गुल्म, श्वानविष एवं वातरोगो का नाश होता है। —गा० औ० रत्न

(ञ) ५० ग्राम कुचला को भैसे के एक किलोग्राम गोबर मे पानी मिलाकर घोलकर धूप मे रखे, शाम को मटकी मे चूल्हे पर चढाकर २ घण्टे मन्द आच दे, और लकडी से चलाते रहे । प्रात कुचलो को साफकर बीच की जिह्वा निकाल दें । प्रत्येक के ४ ४ टुकडे कर पोटली मे बाधकर दोलायन्त्र विधि से दूध मे पकाकर, कूटकर चूर्ण बना लें । इसके पश्चात् उसमे स्फिटक जायफल, जावित्री १०-१० ग्राम चूर्ण कर मिला अदरख स्वरस किंवा पान स्वरस किंवा कुमारी स्वरस मे खरल कर ५००-५०० मि० ग्रा० की गोलियाँ बना ले । प्रात -साय १-१ गोली दूध, घृत किंवा मधु के साथ सेवन करने से आमवात मे लाभ होता है । इसके सेवनकाल मे दूध-घृत का अधिक सेवन करें । —स्वास्थ्य

(ट) शु० कुचला चूर्ण १० ग्राम, अफीम ५ ग्राम, सोंठ, मिर्च, पीपल २०-२० ग्राम । इन सबको लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें । उसके पश्चात् उसमे कान्तिसार भस्म ३ ग्राम मिलाकर पान के रस मे २-३ घण्टे घोटकर मटर के बराबर गोलिया बना ले । १-१ गोली दिन मे ३ बार दशमूल क्वाथ से दें । उसके प्रयोग से जीर्ण पक्षाघात एवं नवीन अर्दित शीघ्र ही दूर होता है । —धन्व० सित० ६७

(ठ) शुद्ध कुचला ६० ग्राम, कालानमक तथा कालीमिर्च प्रत्येक १२५-१२५ ग्राम । इन सबको कपडछन कर नागरबेल के पान स्वरस की तीन भावना देते हुये खरल करें एव १२५ मि० ग्रा० की गोलिया बना ले । १-३ गोली तक सेवन करने मे विषमज्वर का वेग नही चढेगा । —सि० भे० म० माला

(ड) शुद्ध कुचला ७० ग्राम, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेडा, आवला तथा लोहबान के फूल १०-१० ग्राम लेकर सभी को जल मे पीसकर मटर के आकार की गोलिया बना ले । ये गोलिया अग्नि प्रबल कर क्षुधा बढाती है । —धन्व० जुलाई ६४

(ढ) शु० कुचला ४० ग्राम, अफीम २० ग्राम, नागरमोथा, इन्द्रयव, बेल का गूदा और जायफल प्रत्येक १०-१० ग्राम । कूटने वाली औषधियों को कूटकर कपडछन कर बेल के गूदे के क्वाथ मे एक दिन घोटकर चने बराबर गोली बनावें । १-१ गोली दोनो समय दही के साथ सेवन करने से प्रवाहिका, अतीसार, सग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं । —धन्व० फर० ५१

(ण) शु० कुचला, कालीमिर्च दोनो २०-२० ग्राम, शुद्ध धतूरे के बीज, सफेद चन्दन का बुरादा, लालमिर्च प्रत्येक १०-१० ग्राम इन सबको पीसकर जल मे घोटकर चना बराबर गोली बना ले । १-१ गोली दोनो समय गरम जल के साथ सेवन करने से कुत्ते तथा पागल स्यार का विष दूर होता है । —धन्व० फर० ५१

(त) शुद्ध कुचला २० ग्राम, दालचीनी, जावित्री, जायफल, ऊदसलीब और लौंग प्रत्येक १०-१० ग्राम । इन सबको यमान्यर्क (अजवायन का अर्क) मे घोटकर चना प्रमाण की गोलिया बनावे । ताजी जल से १ गोली देने मे सम्पूर्ण शरीर की वातनाडियो को बल मिलता है । आमाशय और आत की गति को तीव्र करती है तथा कफज रोगो मे लाभकारी है । इस यूनानी औषधि को हब्ब अजाराकी कहते है । —यू० सि० यो० स०

(थ) कुचला लेकर एक वर्त्तन मे डालकर कुमारी-गूदा भर दे । गूदा शुष्क होने पर आर्द्रकरस भर दे और १५ दिन बाद निकालकर छील डालें तथा खरल कर रखलें । यह शोधन है । फिर कुचला, केशर १०-१० ग्राम, दालचीनी, जावित्री, सुरजान प्रत्येक ४० ४० ग्राम, सोठ १०० ग्राम, बडी इलायची के बीज ५० ग्राम को पानी मे पीसकर जङ्गली बेर के समान गोलिया बनावें । १-१ गोली दूध के साथ प्रात -साय दे । वीर्यप्रद, बल्य, शक्तिप्रद होने के साथ यह वटी आमवात, वातशूलहर हैं । —धन्व० यूना० चि० वि०

(द) शुद्ध कुचला १ भाग, सोठ २ भाग, इनको रसोन स्वरस मे मिलाकर १२५ मि० ग्रा० की गोलिया

बना ले। २-४ गोली भोजन के उपरान्त देने से प्रमेह, बहुमूत्र, विवन्ध आदि मे लाभ होता है।

—सुधानिधि अगस्त ७५

(घ) शुद्ध कुचला २० ग्राम, लोहभस्म १० ग्राम और स्वर्णमकरध्वज ६ ग्राम। तीनो को दशमूलक्वाथ मे खरल कर मूग के समान गोलिया बना ले। १-२ गोली प्रात-साय दूध के साथ सेवन करने से स्वप्नमेह, कटिशूल शिर शूल पिंडलियो का दर्द आदि दौर्वल्यजन्य रोग मिटते हैं।

—सुधा० सित० ८२

(३) **विषतिन्दुक गुग्गुल**—[क] शुद्ध कुचला का बारीक चूर्ण ४० ग्राम, शुद्ध अफीम १० ग्राम, कालीमिर्च का कपडछन चूर्ण १०० ग्राम, शोधित गुग्गुल २०० ग्राम। सबको मिलाकर खूब कुटाई करें। घी से कुटवाना ठीक रहेगा। फिर ५०० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। इसे प्रात-साय महारास्नादि क्वाथ से दें। कब्ज हो तो अफीम के स्थान पर शोधित जयपाल मिलावे। जीर्ण पक्षाघात पर यह विशेष फलप्रद है।

—धन्व० सित० ६७

(४) **कुचला घृत**—कुचला १५ नग ५ दिन तक अर्क दुग्ध मे भिगोवें। फिर गोदुग्ध ५ किलो मे उबाले। ४ किलो शेष रहने पर उतारकर जमा दें। दूसरे दिन मथकर घृत निकालें। १-२ ग्राम घृत रोटी के साथ दिन मे एक बार खाने से श्वासरोग मे शीघ्र लाभ होता है।

(५) **कुचलासव**—[क] शुद्ध कुचला चूर्ण २४ ग्राम, चिरायता, गिलोय, नागरमोथा चूर्ण १२-१२ ग्राम, मुनक्का ४८ ग्राम, गुड ३६० ग्राम और जल २ किलोग्राम सबको एकत्र मिलाकर काच के पात्र मे भरकर अच्छी तरह मुख मुद्रा कर एक मास तक सुरक्षित रखे। फिर छानकर काम मे लावें। २०-४० बूद तक १०-२० मि० लि० जल मे मिलाकर दिन में दो बार दें। यह हृदयशक्ति, क्षुधावर्धक, बलवर्धक एव प्रतिश्याय तथा त्रिदोषनाशक है। किसी भी रोग के बाद की दुर्बलता एव अग्निमाद्य को शीघ्र दूर करता है।

—वृ० आ० सग्रह

[ख] शु० कुचला ३६ ग्राम, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय १२-१२ ग्राम, मुनक्का ४८ ग्राम, जायफल, दरियाई नारियल, दोनों अजवायन, दोनो जीरे ६-६ ग्राम, दालचीनी ३ ग्राम, लौंग ८ ग्राम, काकडासिंगी १ ग्राम, गुड ३६० ग्राम पानी २ किलो।

निर्माण विधि—सभी वनौषधियो को जौकुट कर ले। फिर इन जौकुट की हुई दवाओ को तथा गुड व पानी को भली-भाति मिलाकर चौडे मुह के काच के वर्त्तन मे भरकर मुख बन्द कर एक मास रखा रहने दे फिर छानकर बोतलो मे भरकर प्रयोग मे लावे।

मात्रा—इसकी ८-८ बूद २॥-२॥ घण्टा बाद पानी मिलाकर प्रयोग करे।

गुण धर्म—यह योग आशुलाभकारी स्थायी गुणकारी तथा सस्ता है। यह योग न्यूमोनिया प्रकाश नामक पुस्तक का है। जिसके लेखक आयुर्वेद मनीषी वैद्यराज प० देवकरण जी वाजपेयी वैद्य शास्त्री, उत्तरीपुरा (कानपुर) है। लेखक ने इसमे योग के सम्बन्ध मे लिखा है कि मै इसको जटिल नाडी मन्द होने वाली अवस्था मे मल्लसिन्दूर के साथ प्रयोग कर लाभ प्राप्त करता रहा हूँ।

मैंने इसको जटिल नाडी मन्द होने वाली अवस्था के अतिरिक्त शीत पूर्वक विषमज्वर व वातरोगो मे तथा पेट की बीमारियो मे भी लाभप्रद पाया है।

—धन्व० शा० सि० प्र० द्वितीय भाग

(६) **शर्बत कुचला**—शुद्ध कुचला अनार के फूल ये दोनों ६०-६० ग्राम, शुद्ध सुहागा चौकिया, केशर काश्मीरी, सफेद चन्दन का बुरादा २४-२४ ग्राम, रूफ गुलाब के फूल दोनों १२०-१२० ग्राम। इन सबको ... किलो पानी में मिलाकर पकावें, २ किलो रह जाने पर उतारकर छान लें फिर २ किलो मिश्री मिलाकर शर्बत तैयार कर लें।

मात्रा—छोटे-छोटे बच्चों को १-१ ग्राम दोनो समय माता या बकरी के दूध के साथ देने से सर्व वायुरोग, श्वास, कास, सूखा रोग, पसली चलना, कमजोरी, नींद का न आना, सुस्तो रहना आदि सब रोगो को नष्ट करके बलवान् बना देती है।

—धन्व० फर० ५१

(७) **कुचलापाक [माजन कुचला]**—(क) शुद्ध कुचला ६२ ग्रा०, गुलेबाबूना, चिलगोजा, नारियल

की गिरी केशर, प्रत्येक २४ २४ ग्राम, लौंग १८ ग्रा०, हाऊबेर, इलायची, अगर ६-६ ग्राम, नरकचूर, शकाकुल, जवाहरड, आवला, वालछड, कतीरागोद, कालीमिर्च, उदविलसा, श्वेत कालीमिर्च, दालचीनी, नागरमोथा, जाविश्री, जायफल, पीपल, सौफ, प्रत्येक १२-१२ ग्राम, बुरादा श्वेतचन्दन ६ ग्रा०, मकरध्वज उत्तम, अभ्रक-भस्म उत्तम, कस्तूरी उत्तम, अम्बर चारो ३-३ ग्राम, उत्तम शहद ४८० ग्रा०, मिश्री २४० ग्रा०, वर्क चादी ४२ नग, वर्क सोना २५ नग लेकर सब औषधियो को कूटकर कपडछान करे पश्चात् मिश्री की चाशनी बनाकर (चाशनी बनाते समय केशर, कस्तूरी और अम्बर को गुलाबजल व केवडा जल मे पीसकर मिला लें) उसमे उक्त कुचला आदि द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर देवें। नारियल गिरी और चिलगोजा के टुकडे करके डालें और मकरध्वज को खरल मे ३ घण्टे खरल करके मिला दे उसी के साथ अभ्रकभस्म भी मिला देवें और वर्क चादी और वर्क सोना मिलाकर अच्छी तरह घुटाई कर पाक जमा दें अथवा माजून की तरह वैसे ही काचपात्र मे भरकर रखें। तेल, गुड, खटाई आदि त्याज्य हैं।

मात्रा और गुण—१ ग्राम से २ ग्राम तक की मात्रा मे इसका सेवन करने से वातव्याधि पक्षाघात आदि शीघ्र दूर होते हैं। यह प्रयोग पुष्टिकारक, कमर का दर्द, पट्ठे का ढीलापन एव गठिया के लिए उत्तम है, रक्तवर्धक, बलवर्धक और पौष्टिक है। —वृ० पाकसग्रह

(ख) शुद्ध कुचला १४४ ग्राम, गुलेगावजवान ९६ ग्राम, छोटी इलायची ४८ ग्राम, कचूर ४८ ग्राम, शकाकुल ४८ ग्राम, चन्दन सफेद ४८ ग्राम, आवलादल ४८ ग्राम, बडी हरड का दल ४८ ग्राम, अगर २४ ग्राम, लौंग २४ ग्राम, मग्ज चिलगोजा ६२ ग्राम, मग्ज नारियल ७२ ग्राम, मग्ज भिलावा ६२ ग्राम, नागर २४ ग्राम, शुद्ध वच्छनाग १२ ग्राम, कालीमरिच २४ ग्राम, असगन्ध २४ ग्रा०, चोपचीनी ९६ ग्राम, सुरजान कडुवा ७२ ग्राम, जायफल २४ ग्राम, जाविश्री २४ ग्राम, अकरकरा ४८ ग्राम इन सबका कपडछन चूर्ण तथा अभ्रकभस्म २४ ग्राम, लोहभस्म २४ ग्राम, और शुद्ध सखिया १५ ग्राम लें, सबको तीन गुने शहद मे मिलाकर, काच की बरनी मे भरकर रख दे।

मात्रा और अनुपान—३ ग्राम सवेरे-शाम खाने के तीन घण्टा पहले गरम दूध के साथ दे। यह माजून सब प्रकार के वातरोग, विशेषत पक्षाघात, कटिशूल, जीर्ण सन्धिवात और अर्दित मे विशेष लाभ करता है तथा उत्तम, पाचन, दीपन, रसायन, वाजीकर, और बलकारक है। —सि० यो० स०

(ग) लौग ४५ ग्राम, सफेद चन्दन ४५ ग्राम, छोटी इलायची ९ ग्राम, गुलगाजवा १३५ ग्राम, नरकचूर १२५ ग्राम, उस्तखद्दूस १३५ ग्राम, शकाकुल मिश्री १३५ ग्राम, आवला २०५ ग्राम, मुनक्का २२५ ग्राम, हरड छोटी २२५ ग्राम, शुद्ध कुचला २६ ग्राम। सब चीजो को कूटकर कपडे मे छान ले और ५०० ग्राम शहद की चाशनी कर उसमे सब चीजें मिलाकर जमा लें। १२५ मि० ग्राम से ५०० मि० ग्रा० तक प्रात सायं महारास्नादि क्वाथ या दुग्ध या जल से देने से वात रोगो का शमन होता है।

—सुधा० श्री देवीशरण गर्ग स्मृति अङ्क

(घ) शुद्ध कुचला, मूसलीश्वेत, सालमकतीरा, गुलबाबूना प्रत्येक २४ ग्राम, बहमन ४८ ग्राम, पीपल, सौठ, धनिया, गोरखमुण्डी प्रत्येक १२ ग्राम, चिलगोजा ३६ ग्राम, अखरोट गिरी ३६ ग्राम, बादाम ७२ ग्राम, फौलादभस्म, मूगाभस्म, अकीकभस्म प्रत्येक १२ ग्राम, चादीवर्क ६ ग्राम, सोने के वर्क ३ ग्राम, मुनक्का ६० ग्राम, शहद दूना मिलाकर रखे। खुराक ३ ग्राम २ बार दिन मे दूध के साथ खावे।

गुण—शक्तिवर्धक, कफनाशक, नजला जुकाम को दूर करता है। —धन्व० अप्रैल ६१

(ड) शुद्ध कुचला ६० ग्राम, सफेदमिर्च, कालीमिर्च, दालचीनी, जायफल, जाविश्री, मस्तङ्गी, अयेविलसान, सोठ, अगर, लौग, नागरमोथा, आवला, वालछड, दाना इलायची सफेद, कलौजी, सफेद चन्दन, केशर, पीपल, सौफ प्रत्येक ३ ग्राम लेकर बारीक पीसकर कुल भार से तीनगुना शहद मिलाकर माजून बनावें। २-४॥

ग्राम तक सेवन करने से वातव्याधि, नपुसकता आदि मिटती हैं। —वनौ० शास्त्र

(८) कुचला तैल—(क) कुचला को जौकुट कर, भार से चारगुने जल मे भिगोकर रखे। इस पात्र को ऐसे स्थान पर रखे, जहा दिन मे सूर्य की धूप लगे और रात्रि मे चन्द्रमा का प्रकाश। पात्र, कलई की हुई कडाही हो तो उत्तम लाभ होता है। ७ दिन बाद इस कडाही मे कुचला के वजन से १० गुना तिल तैल डालकर मन्दाग्नि पर चढावे। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर सुरक्षित रखे। इस तैल के मर्दन से अर्दित, पक्षाघात, शूल आदि का शमन होता है। —चिकित्सा रहस्य

(ख) कुचला नग २५ को ५०० ग्राम गोमूत्र मे भिगोकर दूसरे दिन बीजो को लोह खरल मे कुचलकर पुन उक्त गोमूत्र मे मिलाकर कलईदार कडाही मे १ किलो तैल के साथ धीमी आच पर पकावें। गोमूत्र के जल जाने पर आग को धीरे-धीरे इतनी तेज करें कि सब कुचला जल जाय। फिर नीचे उतारकर घोट-छानकर बोतल मे भरकर रखे। इसकी मालिश से भी वात की समस्त पीडा दूर होती है। अधिक दर्द होने पर इसकी मालिश के बाद रुई से सेक करे तथा एरण्ड पत्र बाधे। —ध० व० वि०

(ग) कुचले के बीज ५ किलो, इमली के पेड की छाल ६ किलो ५०० ग्राम, रास्ना एव बच १-१ किलो। सबका पातालयन्त्र की विधि से तैल निकाल ले और सावधानी के साथ प्रयोग मे लें। तीव्र है, हल्के रोगाक्रमण मे चारगुना या आठगुना तक सादा तेल मिलाकर काम मे लें। पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, गृध्रसी आदि पर उत्तम है। —धन्व० सित० ६७

(घ) शुद्ध कुचला २५० ग्रा०, गाय का दूध ५ किलो मे पकाकर खोवा करे। फिर शक्कर मिलाकर हलवा बनावें। कढाई मे हल्की आच पर रखे और ताजे दूध की लस्सी के छींटे देते जावे और मावा (खोये) को दबाते रहे। एक तरफ चिकनाई आती रहेगी। यह तेल शीशी मे रखें पान पर १ बूद डालकर खावें, ऊपर से हलवा ताजा बनाकर खावें। यह कामशक्तिवर्धक, और गठिया, कब्जी, कमजोरी आदि दूर करता है। —धन्व० अप्रैल ६१

(ङ) कुचला, जायफल, शुद्ध जैपाल, जावित्री, अकरकरा, पलास, पापडी सब समान ६०-६० ग्रा०, कबूतर विष्टा १२० ग्रा० पीसकर १६ किलो जल मे पकावें। चौथाई रहे तब क्वाथ छान लें। फिर दूध ४ किलो, तिल तेल २ किलो, मालकागनी का तेल २ किलो फिर उपरोक्त ही सब क्वाथ की वस्तुओ को १/२ भाग लेकर पिष्टी बनावे। तीनो द्रव्यो (क्वाथ तेल पिष्टी) को एकत्र करके जलीयाश सूखने पर्यन्त अग्नि पर पकावें। तेल ठण्डा होने पर छानकर शीशियो मे भरकर रखा जाय।

उचित मात्रा मे इन्द्री पर मालिश करके एरड या ताम्बूल पत्र बाधा जाय। लिंग की मासपेशियो को शक्ति प्रदान कर छोटापन दूर करके दृढ बनाता है सभी खराबिया मिटाने मे अचूक योग है। —धन्व० अप्रैल ६१

लेप—(क) कुचला, सोठ और बारहसिंगे को जल के साथ घिसकर उसमे २५० से ५०० मि० ग्रा० तक अफीम मिला लें। फिर गरम कर लेप करने से पसलियो का शूल शान्त होता है।

न्यूमोनिया मे पसली और छाती पर लेप करने से फुफ्फुस दोष सत्वर दूर होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है। —र० त० सा०

(ख) कुचला चूर्ण, लौंग चूर्ण, कर्पूर, सोठ, दालचीनी, पीपलामूल प्रत्येक समभाग लेकर गोमूत्र के साथ एकत्र पीसकर लेप तैयार कर लें। इस लेप को शिर पर लगाने से आधासीसी की वेदना शान्त होती है। —र० त० भाषा

धूम्र—कुचला, कपूर, शमी (छोकर) के पत्ते, हल्दी, छोटी कटेरी के फल सब समभाग लेकर चूर्ण करे। कमर तक कपडा ओढाकर दो ईंटो पर उकडू बैठाकर गोबर की निर्धूम अग्नि पर १०-१२ ग्राम उक्त चूर्ण डालकर अर्श के मस्सो को धुआ देने से भयङ्कर अर्श भी शान्त हो जाता है। —र० त० सा०

पेटेण्ट प्रयोगो में कुचला—सूचीवेध निर्माण करने वाली प्राय सभी रसायनशालायें कुचला के सूचीवेध का निर्माण करती है। सिद्धि फार्मेसी ललितपुर कुचला

सूचीवेध का निर्माण करती है। इसके २ मि० लि० के सूचीवेध आते है। प्रति मि० लि० मे कुचला सत्व ० २५ मि० ग्रा० होता है। बन्देलखण्ड फार्मेस्युटिकल झासी भी कुचला नामक सूचीवेध तैयार करती है। इसके १ मि० लि० एम्पुल मे ० ५ मि० ग्रा० कुचला क्षार होता है। ये सूचीवेध वातनाडियो को वल देकर वात-रोगो को दूर करते है। पाचन एव प्रजननसस्थान के रोगो मे भी ये लाभप्रद है। इनके प्रयोग से सामान्य दौर्बल्य दूर होता है, हृदय की गति ठीक होती है और रक्तचाप ठीक होता है। वैद्यरत्न डा० श्री जयनारायण-गिरि "इन्दु" एक सफल चिकित्सक एव कुशल लेखक हैं। ये आयुर्वेदीय सूचीवेध के कुशल प्रयोगकर्त्ता हैं। इन्होने सन् १९७० मे धन्वन्तरि मासिक के आयुर्वेदिक सूचिकाभरणाङ्क का भी सफल सम्पादन किया है। सचित्र आयुर्वेद मासिक के जून १९६९ अङ्क मे भी आपने कुचला पर अपना अनुभव प्रकाशित किया है। इस लेख मे आपने ध्वजभङ्ग और श्वसनकज्वर पर कुचला के सूचीवेध की सफलता का उल्लेख किया है। प्रताप फार्मा धातु एव पौरुषत्व दौर्बल्य पर उपयोगी "शक्ति" नामक सूचीवेध का निर्माण करता है जिसमे भी कुचला डाला जाता है। जी० ए० मिश्रा फार्मेसी कुचला के प्रसिद्ध कल्प नवजीवन रस के सयोग से जो सूचीवेध तैयार करती है उसका नाम "नवजीवन" ही रखा गया है। यह वीर्यविकारो की उत्तम औषधि है। ए० बी० एम० रिसर्च जो पक्षाघातहर सूचीवेध का निर्माण करती है। इसमे कुचला, रास्ना लहसुन और एरण्ड का सम्मिश्रण होता है।

श्री ज्वाला आयुर्वेदभवन के "क्लीवारि", "गैसोना", "मदनशक्ति", "त्रिशक्ति" आदि कैपसूलो का कुचिला मुख्य घटक है। पकजफार्मा के "मदनोसूल" और निर्मल आयुर्वेद सस्थान के "वातरोगारि" कैपसूल का भी कुचला मुख्य घटक है। निर्मल आयुर्वेद सस्थान के "गैसारि" कैपसूल मे भी कुचला डाला जाता है। गर्ग वनौषधि भण्डार के "वातान्तक", "क्लीवान्तक" और "कृमिघ्न" कैपसूलो मे भी कुचला होता है।

बान की "गेस्ट्रेक्स", आर्य औषधि फार्मा० की "ओरोयोग" (शूलघ्न), चरक की "रिमानिल", यूनेक्सो की "यूनेक्सोजीम" चरक की "नीओ", जनहित की "गैस्ट्रोन", राजवैद्य रसायनशाला की "रसायन वटी" मार्तण्ड की "शक्ति मकरध्वजवटी" आदि गोलियो मे न्यूनाधिक कुचले की मात्रा होती है। बहुत सी फार्मेसिया जो बल्यवृष्य योगो का निर्माण करती हैं, उनमे प्राय. कुचला होता है।

गर्ग वनौषधि भण्डार के "वातनौल" और ज्वाला आयुर्वेद भवन के "वातोना" मलहम मे कुचला डाला जाता है। ये मलहम वायु के दर्द और सूजन को दूर करने मे श्रेष्ठ हैं। मलहम की मालिश करने के पश्चात् गरम रुई से सिकाई करनी चाहिये। शोथ शमन हेतु वट्पत्र बन्धन आवश्यक है।

अनुभूत प्रयोग—

(१) तीक्ष्णावटी—शुद्ध कुचिला-बीज सहित लालमिर्च रससिंदूर समानभाग लें।

विधि—पहिले मिरचो को पानी से खूब दो तीन घण्टे पीसे, फिर कुचला डालकर रगडे। पश्चात् रस-सिंदूर डालकर ६ घण्टे रगडाई करे। एक-एक रत्ती की वटी बना लें। एक रत्ती १२० मि० ग्रा०।

गुण—यह अजीर्णजन्य उदरशूल को तत्काल शान्त करता है। यह पाचक, बल्य, ग्रहणी, अजीर्ण, शूल, उदावर्त कम्प ज्वर अत्यन्त अवसाद, और तीव्र मन्द पानेच्छा को कम करता है। प्रलाप कम्प इत्यादि रोगो मे तथा अफीम छुडवाने मे इसका उपयोग करना चाहिए। समुद्र यात्रा की यन्त्रणा, मलेरिया जीर्णज्वर, वात विशूचिका मे लाभकारी है। यह मकरध्वज से भी उत्तेजक है। नाडी को बल देती है। वृष्य है। जननेन्द्रिय को उत्तेजक है। ध्वजभङ्ग, शुक्रमेह, शुक्राशय के श्लेष्मिक विकार मे वृष्य रूप से व्यवहृत होती है। वृक्करोगो मे अलब्युमिन के क्षय को बन्द करती है। किं बहुना यह अत्यन्त लाभकारी योग है और मेरा विशेष योग है जो आज तक किसी को भी नही बताया गया।

प्रयोग विधि—इस योग की ३ मात्रा दी जा सकती हैं, दूध या पानी के साथ १-१ गोली की मात्रा है। उत्तेजना के लिए ३ गोली एक दम दूध के साथ रात को दी जा सकती है।

उदरशूल तथा विशूचिका मे भी ३ गोली की एक मात्रा दी जा सकती है। मलेरिया रोकने के लिए ३-३ गोली की ३ मात्रा ज्वर आने से ३ घण्टे पूर्व दी जा सकती है। —कविराज श्री रामलुभाया द्वारा धन्वन्तरि अक्टूबर १९५५ से।

(२) चोटहर प्रयोग—कुचिला, एलुआ, नरकचूर समभाग। गुड इनसे आधा भाग। औषधियो को पीसकर गुड मे मिला दे चोट पर सेककर औषधि को बाध दे। या थोडा-सा तिल तेल किसी वर्त्तन मे डालकर गर्म करें उसमे गुड मिली हुई औषधि डालकर मिला दे और किसी कपडे पर डालकर सुहाता-सुहाता चोट पर बाध दें। वेदना थोडी देर मे शान्त हो जावेगी। २-३ दिन के प्रयोग से चोट नष्ट हो जायेगी।

—कविराज श्री प० दाताराम शर्मा द्वारा स्वास्थ्य फर० ६६ से।

(३) योषापस्मारहरप्रयोग—शुद्ध कुचला, मल्लचन्द्रोदय, केशर असली १२-१२ ग्राम, कस्तूरी १ ग्राम। समस्त औषधियो को २५० मि० लि० पान के रस के साथ भली-भाति खरल करके २४० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। जब हिस्टीरिया के दौरे आवे तो ३-३ घण्टे के बाद शीतल जल से दें।

—कवि० गयाप्रसाद जी शास्त्री द्वारा स० आयुर्वेद सित० ६५ से।

(४) प्राणप्रद प्रयोग—शोधित कुचला चूर्ण, कस्तूरी, केशर, अम्बर, मुक्ता, अकरकरा, जायफल, जावित्री, मकरध्वज (भैं० र०) सभी समान मात्रा मे लेकर पान के स्वरस मे २५ घण्टे घोटकर २४०-२४० मि० ग्रा० की गोलिया बनाकर रख ले। मरणासन्न व्यक्ति को लौग के पानी से देने से कोरामीन इन्जेक्शन के समान चेतना देता है। सामान्य पुरुषो को शतावरी स्वरस के साथ दने से इन्द्रिय शैथिल्य नाशक है। तथा वाजीकरण है। यह उच्च रक्तचाप के रोगियो को न दे। —चादप्रकाश मेहरा द्वारा सुधानिधि जनवरी ७३ से।

(५) हिस्टेरियाशान्तकर—शुद्ध कुचला १२० ग्राम, भीमसैनी कपूर ६० ग्राम दोनो को खरल मे डालकर ब्राह्मी क्वाथ या रस के साथ घोटकर २४०-२४० मि० ग्राम की गोलिया बना लें।

१-२ गोली हिस्टेरिया के दौरे मे ठण्डे जल के साथ १-१ मात्रा २-२ घण्टे के अन्तर से देनी चाहिए। दौडा बन्द हो जाने पर प्रात-साय १-१ मात्रा २० दिन तक देनी चाहिए। —धन्वन्तरि मई १९४८

(६) स्वर्णमकरमुष्टि—शुद्ध कुचला १ भाग, मकरध्वज १ भाग, स्वर्णभस्म ¼ भाग, लौहभस्म १ भाग। सब खरल मे खूब घोटकर रखे।

मात्रा—१२० मि० ग्राम।

अनुपान—मधु।

यह शक्तिवर्धक तथा आमवात व आमवातिक हृदयरोग मे लाभप्रद है।

—वैद्य श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री द्वारा चिकित्सादर्श २ से।

(७) मकरमुष्टियोग—मकरध्वज, शुद्ध कुचला, लौहभस्म, देशीकपूर प्रत्येक समभाग लेकर खूब खरल में घोटकर रखें। १२०-२४० मि० ग्रा० तक मक्खन मिश्री या दूध से सेवन करे। यह नपुसकतानाशक, शक्तिवर्धक है। — पूर्वोक्त

(८) अलर्कविषप्रतिकार प्रयोग—शु० कुचला, कालीमिर्च तथा खोपरा (गिरी) दूधिया समभाग लेकर पृथक्-पृथक् कूट छानकर एकत्र खरल मे डालकर सहजने के भुनगा के वक्कुल के रस की ३ भावना और अद्रक रस की चार भावना लगाकर मटर जैसी गोली बना ले। प्रात-सायकाल १-१ गोली २५० ग्राम गाय के दूध मे मिश्री मिलाकर पिलावे। परीक्षित है।

—प० श्री रामदयाल वैद्य नरसिंहपुर द्वारा धन्व० नव० ४७ से।

(९) रूपविलास गुटिका—शु० कुचला ५० ग्राम, अकरकरा, लौंग, जायफल, जावित्री, वङ्गभस्म १०-१० ग्राम, केसर ५ ग्राम, अफीम ५ ग्राम, नागरबेल के १५० पान का रस निकालकर उपरोक्त औषधियां घोटकर मटर से थोड़ी बड़ी गुटिका बना लें।

१ से २ गोली सुबह-शाम दूध से। नामर्दी को दूर करती है। स्तम्भनशक्ति बढ़ती है। जातीय निर्बलता को दूर करती है। उत्तेजक है।

—श्री आर्य वैद्य प० मिलिन्द वाचस्पति द्वारा
धन्व० अप्रैल ७४ से।

(१०) गठना कैपसूल—शु० कुचिला ५० ग्राम, त्रिकुटा ३० ग्राम, जायफल १० ग्राम, जावित्री १० ग्राम, सोमलभस्म (भृङ्गराज से बनी) १ ग्राम, पारदभस्म १ ग्राम, वङ्गभस्म ५ ग्राम लें। सबका वस्त्रपूत चूर्ण कर आद्रक स्वरस, ताम्बूल स्वरस, कुमारी स्वरस की ६-६ भावना दें। प्रत्येक भावना पर ५ घण्टे मर्दन करें फिर २५० मि० ग्राम के कैपसूल भर लें।

मात्रा—१ कैपसूल। दिन में ३ बार।

अनुपान—दुग्ध अथवा उष्णोदक चाय।

उपयोग—उठने बैठने में लाचार पराधीन रोगी इस भयानक क्लिष्टरोग (गठिया) से एक सप्ताह में ही छुटकारा पा सकता है। परम अनुभूत है।

—श्री मोहनसिंह आर्य द्वारा
सुधानिधि जुलाई ७५ से।

(११) वीर्यवर्धनी—कुचिला, धतूरा बीज, गंधक, पारा, जायफल, समानभाग लेकर पान के रस में १ गोली १२० मि० ग्राम की सेवन करना। प्रात:-सायं या सम्भोग से १ घण्टे प्रथम दूध से लेना कुचिला गोमूत्र में उबालकर छिलका जिमी निकालकर सिल पर पीसना धतूरा कूट कपडछन करके डालना। गंधक पारे की कज्जली करना। चिरकाल सेवन से वातरोग दूर होंगे तथा वीर्य पुष्ट होगा।

—स्व० वैद्य श्री लीलाधर शर्मा दारा श्री लक्ष्मीचन्द्र वैद्यनाथ द्वारा —धन्व० अप्रैल ७४ से।

(१२) क्षुधावर्धक कैपसूल—शु० कुचला, इन्द्रायणमूल, निम्बपत्र, गुडूचीपत्र समानभाग लें। प्रत्येक द्रव्य को पृथक्-पृथक् कूट-पीसकर सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण कर लें। फिर १२५ मि० ग्रा० चूर्ण कैपसूल में भर लें।

मात्रा—१-२ कैपसूल। भोजन के आधे घण्टे पूर्व।

अनुपान—जल।

उपयोग—पाचन शक्तिवर्धक है। आमाशयिक स्राव वर्धक है।

अरुचि एवं निर्बलता के लिए उपयोगी सिद्ध है। ज्वरादि रोग के पश्चात् भूख समाप्त हो जाय तो यह कैपसूल अवश्य दें। —वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य द्वारा
सुधानिधि जुलाई ७५ से।

(१३) वातनाशकवटी—कुचला ४८ ग्राम, गुग्गुल ४८ ग्राम, सोंठ २४ ग्राम, लहसुन ४८ ग्राम में घोटकर वटी बनाने योग्य होने पर एक चने के बराबर वटी बनाकर सुखा दीजिए। सूखने पर एक थाली शहद या चाशनी गाढ़ी डालकर गोलियों को दौड़ा दीजिए। हलकी सी चाशनी लग जायेगी, इनको उसी समय मुलहठी का चूर्ण डालकर थाली में फिर मिलाइए, गोलियों पर जो चाशनी लगी है उस पर बारीक चूर्ण मुलहठी लगकर सुन्दर दिखाई देने लग जायेगी, कई रोगी लहसुन की गन्ध से घबराते हैं। उनके लिए ऐसा करने से गोलियां निगलते समय कठिनाई या घृणा नहीं होगी।

—श्री शेख फैयाज खां द्वारा
सुधानिधि अगस्त ७५ से।

(१४) मकरध्वजवटी—यह अनुभूत है। मकरध्वज २० ग्राम, शुद्ध कुचला २० ग्राम, लोहभस्म शतपुटी २० ग्राम, सफेद मूसली २० ग्राम, गोखरू २० ग्राम, शतपुटी अभ्रकभस्म १० ग्राम लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ खरल कर लेना चाहिये। १२० मि० ग्राम की गोलियां बनाकर छाया में सुखाना चाहिए।

मात्रा—१ से २ गोली प्रात-सायकाल।

अनुपान—असम भाग घृत मधु तथा मक्खन और मिश्री क साथ व्यवहार करना चाहिए।

गुण—स्फूर्तिदाता, रक्तवर्धक, क्षुधावर्धक, वाजीकरण और रसायन है। —प० श्री रामप्रसाद उपाध्याय द्वारा धन्वन्तरि मई ५४ से।

(१५) पीड़ान्तक कवच—घटक—शु० कुचला चूर्ण, अहिफेन १-१ ग्रा०, रससिन्दूर ४ ग्राम ले। तीनो द्रव्यो को एकत्र खरल करे जब एकजीव हो जाय तो २०० मि० ग्रा० दवा के कवच भर ले।

मात्रा—१ कवच।

अनुपान—जल।

उपयोग—पीडा को सूचिका इन्जेशन के समान शीघ्र दूर करते हैं। —श्री एम० सी० आर्य द्वारा सुधानिधि जौलाई ६५ से।

(१६) हर्षुल अङ्गबलोजा—शु० कुचला १०० ग्राम, शु० भिलावा, सर्पगन्धा, अर्जुनत्वक् घनसत्व, पिसा हुआ रसोन शुष्क का चूर्ण, महानिम्ब वृक्ष का गोद, एरण्डमूल चूर्ण, पिप्पलीमूल अश्वगन्धामूल, शुण्ठी चूर्ण ५०-५० ग्राम, कान्तलोहभस्म, वङ्गभस्म मकरध्वज (स्वर्ण) ये २५-२५ ग्राम, निर्गुण्डीमूलत्वक् चूर्ण ५० ग्रा०। समस्त द्रव्यो को खरल मे डालकर १ कि० निर्गुण्डीपत्र रस की प्रतिवार के हिसाब से तीन भावना देकर ४-४ रत्ती की वटी वनावें।

मात्रा—१ वटी प्रात-सा'य गाय के दूध के साथ सेवन की जाय। वच्चो को आधी वटी दे। पुरानी गृध्रसी और लकवे के घोर आक्रमण मे इसकी मात्रा वढाकर धीरे-धीरे १ वटी से २ वटी तक कर देनी चाहिए। यह औषधि गृध्रसी, पक्षाघात मुह का जीभ का तथा मस्तिष्क का लकवा निश्चयपूर्वक ठीक करती है। इससे लकवा का मूर्च्छित रोगी १२ घण्टे मे होश मे आ जाता है। इससे हाथ पैरो मे होने वाला अङ्गघात (Poliomylitis) भी नि सन्देह ठीक हो जाता है। सर्वाङ्गपीडा, स्कन्धपीडा, वातकटक, शिर पीडा, उदरशूल, आध्मान आदि वातरोग नष्ट होते हैं।

—प्राणाचार्य प० श्री हर्षुल मिश्र "प्रवीण" द्वारा सुधानिधि जून ८३ से।

(१७) वाजीकरण योग—शोधित कुचला चूर्ण १०० मि० ग्रा०, कालीमिर्च का चूर्ण ५० मि० ग्रा०, छोटी पीपल का चूर्ण ५० मि० ग्रा०, जायफल चूर्ण ५० मि० ग्रा० इनको खरल मे एकजान कर लो और २५० मि० ग्रा० कैप्सूल भरकर रख लो। मैथुन से १ घण्टा पूर्व गर्म दूध से सेवन करने से अत्यन्त कामोत्तेजना आती है, अधेडावस्था वालो के लिए अच्छा उत्तेजनात्मक योग है। —श्री चादप्रकाश मेहरा द्वारा धन्वन्तरि सितम्बर ६६ से।

(१८) संस्कारित कुचला—घृतभृष्ट शु० कुचले के महीन चूर्ण को पत्थर के खरल मे डालकर रसोन स्वरस की ७ भावना दे और छाया मे सुखा ले फिर सर्पगन्धा क्वाथ की ७ भावना दे और छाया मे सुखा ले भृङ्गराज स्वरस की भावना दे और छाया मे सुखा ले अर्जुनत्वक् के क्वाथ की ७ भावना दें और छाया मे सुखा ले। विदारीकन्द ताजा खुदवाकर उसके रस की ७ भावना दे और छाया मे सुखा ले। इस सस्कारित कुचले की मात्रा १२० से २४० मि० ग्रा० तक है।

अनुपान—धारोष्ण मीठा गोदुग्ध।

समय—प्रात-साय।

गुण—यह सस्कारित कुचले वाजीकरण और रसायन है। इसके सेवन करने के दो घण्टे बाद ही सर्वाङ्ग मे स्फूर्ति आ जाती है थकान मिटती है, जिस दिन से इसे सेवन करे उसी दिन से कामोत्तेजना मे वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है। इन्द्रिय शिथिलता, नपुसकता, स्वप्नदोष, इसके सेवनकाल मे कभी अनुभव नही होते। जिन्हे हस्तमैथुन के कारण स्वप्नदोष होता है, उनका भी स्वप्नदोष व स्वप्न मे वीर्य क्षय रुक जाता है। यदा-कदा ही स्वप्नदोष होता है। इसके अलावा यह सस्कारित कुचला गृध्रसी (साइटिक) सर्वाङ्गवात, अङ्गशैथिल्य सिर पीडा, आध्मान, मन्दाग्नि, यकृत् दौर्बल्यता की सर्वोत्तम औषधि है। इसके सेवन से मैथुन के उपरान्त थकान नही होती। कितना भी परिश्रम करो शरीर हल्का और स्फूर्तिमान बना रहता है थकान का अनुभव नही होता। इस औषधि पर मीठा धारोष्ण तथा

मीठा गरम गोदुग्ध पर्याप्त मात्रा मे पीना चाहिए। २४ मि० ग्राम से ज्यादा इसे कदापि नही सेवन करना चाहिए १२ घण्टे के अन्दर मे २४ घण्टे मे केवल दो वार ही इसका सेवन करना चाहिए। १२० मि० ग्रा० से मात्रा बढ़ाते-बढ़ाते २४० मि० ग्रा० तक ले जाना चाहिए। —प० श्री हर्षुल मिश्र द्वारा सुधानिधि अप्रैल ६४ से।

(१९) पक्षाघातहर प्रयोग—कुचले को घृत मे भूनकर सूक्ष्म चूर्ण कर लो। उस चूर्ण मे शुद्धवत्सनाभ का समभाग चूर्ण मिलाकर आद्रक स्वरस मे चार दिन तक खरल कर १२० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। १-२ गोली गरम घृत के साथ प्रात-साय सेवन करने से लकवा शीघ्र दूर होता है।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य द्वारा धन्व० वनौ० वि० से।

(२०) कुचला शर्करा प्रयोग—शु० कुचला चूर्ण १ भाग, शर्करा १०० भाग दोनो को खूब खरल कर रखो। अधिक मर्दन अधिक प्रभावशाली होता है—मर्दनं गुणवर्धनम्।

१२५-५०० मि० ग्रा० तक इसकी मात्रा दूध किंवा जल से सेवन करने पर अशक्ति दूर होती है और पाचन सस्थान की क्रिया ठीक होती है। यह शिर शूल, कफ-ज्वर एव वातज्वर मे भी लाभप्रद है।

—मु० गुर्जर मासिक

(२१) विषहर प्रयोग—पागल कुत्ते तथा स्यार का जहर दूर करने मे अद्वितीय है। १९ जून सन् १९४६ ई० मे मेरे बडे भाईसाहब को एक पागल स्यार ने बुरी तरह से काट लिया, मैं उस समय एक रोगी का इलाज करने वाहर चला गया था, मेरे पास आदमी भेजा गया मै वहा से घर आया और भाईसाहब की हालत देखी तो बहुत घबडाये हुए थे। वे भी कुछ आयुर्वेद चिकित्सा करते है और आयुर्वेदिक के बडे प्रेमी हैं। मै भी विश्वास के साथ आयुर्वेदिक चिकित्सा करने लगा। शोधा हुआ कुचला मेरे पास था ही, १२ ग्राम शुद्ध कुचला, १२ ग्राम पीली सरसो, १२ ग्राम पुराना गुड तीनो को खूब अच्छी तरह खरल कर चना प्रमाण की गोली बनाकर १-१ गोली दोनो समय गरम पानी के साथ सेवन कराने लगा। ईश्वर कृपा से वे १०-१५ दिन मे ठीक हो गये थे और अभी अच्छे स्वस्थ है, पथ्य मे मूग की दाल, गेहूँ की रोटी और दूध देता था।

—वैं० श्री युधिष्ठिरसिंह द्वारा धन्व० फर० ५१ मे।

(२२) क्षुधावर्धक प्रयोग—अच्छे पुष्ट कुचले के बीज लेकर बालू रेत मे मिलाकर भिगो दे। तीन दिन बाद निकालकर ऊपर का छिलका उतारकर जीभी निकाल सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण कर ले। इस चूर्ण को प्रथम सात दिन नीम के पत्तो के रस मे खरलकर फिर गिलोय के पत्तो के रस मे खरल करे। इसके पश्चात् इन्द्रायण-मूल स्वरस मे घोटकर निम्बु स्वरस मे खरल करें। इसके बाद मे ६० मि० ग्रा० की गोलिया बना ले। १-२ गोली भोजन से आधा घण्टे पूर्व जल से सेवन करने पर पाचनशक्ति बढती है। —वैद्य श्री दलीपसिंह यादव

(२३) राजयक्ष्माहर प्रयोग—शुद्ध कुचला, सोठ, छोटी पीपल, वच, सौंफ, भाग के बीज, नकछिकनी बूटी प्रत्येक २०-२० ग्राम लेकर सबको पीसकर ब्राह्मी के अर्क मे एक दिन घोटकर १ ग्राम प्रमाण शहद मे प्रात-साय चटावे और ऊपर से गो का दुग्ध पिलावे। भोजन मे बकरी का दूध देवें। यह राजयक्ष्मा के रोगी के लिये उत्तम प्रयोग है। —वैं० श्री युधिष्ठिरसिंह

(२४) हिस्टीरियाहर प्रयोग—शु० कुचला, जुन्द-वेदस्तर, शुद्धहीग, जटामासी, वालवच समभाग लेकर ब्राह्मी स्वरस मे खरल कर १२५ मि० ग्राम की गोलिया बनावें। १-२ गोली दिन मे ३ वार मास्यादि क्वाथ के साथ देने से उन्माद, मूर्च्छा और हिस्टीरिया मे लाभ होता है। यह अनुभूत है।

(२५) पीयूषबिन्दु—शुद्ध कुचला ६०० ग्राम, चिरायता असली ५० ग्राम, कालमेघ (कल्पनाथ) ५० ग्राम, गिलोय (वासावत्क्) ५० ग्राम, कन्टका (भटकैया) की जड ५० ग्राम, छोटी पीपर ५० ग्राम, पानी १० किलो, गुड ५ किलो सब दवाओ को कुचलकर १० किलो पानी मे मिलाकर १ मिट्टी के मटके मे डालकर उसमे

५ किलो गुड घोल दें फिर २५० ग्राम धाय के फूल मिलाकर मटके के ऊपर एक सकोरा ढक कर कपड-मिट्टी कर दें और भूसे के ढेर मे रख दे। १ महीने बाद निकालकर छानकर बोतलो मे भर लें। १-२ महीने बाद उन बोतलो को बदल दें ऊपर का भाग निथार ले और नीचे जो कीट बैठ जाय, उसे फैंक दें। मात्रा २० बूद से ४० बूद तक २४ ग्राम पानी मे डालकर पिलावे। सवेरे शाम आवश्यक होने पर दोपहर मे भी दें। यह आसव हृदयरोग नाशक, बलवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, ज्वरनाशक, श्लेष्मानाशक, इन्फ्लूएञ्जानाशक, त्रिदोष-नाशक, तथा किसी रोग के पश्चात्, प्राप्त दुर्बलता को शीघ्र दूर करता है, मन्दाग्नि को मिटाता है। भूख लगाता है, थकान को दूर कर स्फूर्ति लाता है तथा तथा आलस्य को मिटाता है। यह हमारा शतअनुभूत योग है, जिसको हम पीयूषविन्दु के नाम से देते हैं।

—राजवैद्य श्री सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

(आयु० विकास दिस० ८४)।

(२६) कुचलाकल्प—कुचले को भूनकर पीस ले। फिर एक कुचले का आठवा हिस्सा प्रतिदिन खाना शुरू करे, यह ४५ रोज तक खायें। उसके बाद १ कुचले का पाचवा हिस्सा ४५ दिन तक खावे। उसके बाद चौथा हिस्सा ४५ दिन तक फिर तीसरा हिस्सा ४५ दिन तक फिर आधा हिस्सा ४५ दिन तक और फिर पूरा कुचला ४५ दिन तक खावे इस प्रकार इसका सेवन करने से सब तरह की वातव्याधिया और मन्दाग्नि मिटती है। —खजाइनुल अदविया

(२७) कारस्कर मिश्रण (पोलियो के लिए एक अद्भुत सफल प्रयोग)—कारस्कर मिश्रण यह हमारा स्वानुभूत योग है और कुछ फरक के साथ यह स्वकृत औषधि है। पोलियोमाइलाइटस के एक्यूट (आशुकारी) अवस्था मे देने के लिए इसे निर्माण किया था। आज तक इस योग के दो हजार से अधिक आतुरो मे प्रयोग किया गया है। ५ वर्ष पूर्व (३६ आतुरो का विवरणात्मक पेपर हमने प्रकाशित किया था) पोलियो माई-लाइटिसको "बालपक्षाघात" नाम से प्रचलित रोग यह सत्य है किन्तु आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अनुसार वातव्याधि, खज, पंगु, अर्धांगवातादि मे इसका समावेश होता है। साधारणतः यह बालकों मे १० वर्ष की उम्र तक अधिकतर होता है। तत्पश्चात् इसका होना बहुत कम पाया जाता है। इसके एक्यूट अवस्था में ज्वर आता है। ज्वर १०२°F से १०३°F तक रहता है। और अन्य सब लक्षण वातकफज ज्वर के समान होते हैं। कटिशूल होता है। पृष्ठशूल होता है। सामान्यतः इसे फ्लू समझकर डाक्टर लोग इन्जेक्शन देते हैं। जहां भी इन्जेक्शन दिया उसी अङ्ग का अङ्गाघात (Paralysis) उत्पन्न होता है। इन्जेक्शन न भी दे तो पोलियो वायरस २४ से ४० कलाक (घण्टों) मे सुषुम्ना काण्ड के चेष्टावाही केन्द्रों में प्रविष्ट होकर उसे नष्ट करके अङ्गाघात उत्पन्न करता ही है।

ऐसी अवस्था मे ज्वर को कम करने के लिए, वात कफज लक्षणो के प्रकाश के लिए शूल कम करने के लिए और सम्भाव्य अथवा सम्भूत अंगाघात को पुनर्जीवित करने के लिए कारस्कार मिश्रण एक अद्भुत औषधि है। इसका निर्माण निम्नलिखित प्रकार से करना चाहिए।

(१) शुद्ध कारस्कर चूर्ण १ भाग।

(२) सूतशेखर रस ४ भाग।

(३) कल्पतरु रस ४ भाग।

(४) मुक्ताप्रवालपञ्चामृत ४ भाग।

(५) तण्डुल चूर्ण (लाल चावल) ४ भाग। इनको एकत्र खरल मे लेकर ६ से १२ घण्टा तक पीसकर बोतल मे भरकर रख दें।

मात्रा—२४० मि० ग्रा० से ४८० मि० ग्रा०, मधु के साथ दिन मे तीन या चार बार अवस्थानुसार दे। इसको ज्वर प्रशम के बाद आगे से ३ मास तक देना चाहिए। —वैद्य ह० श्री० कस्तुरे द्वारा

धन्व० सफल सिद्ध प्रयो० से।

वनौषधि रत्नाकर

(द्वितीय भाग) में संकलित

प्रयोगों की रोगानुसार अनुक्रमणिका

(अकारादि क्रम से)

[नम्बर पृष्ठ संख्या सूचक है]

